

कल्याण

शिवाङ्क

श्री १०८ विज्ञान

आठवें वर्षका विशेषाङ्क

गीताप्रेस, गोरखपुर

कल्याण

श्रीशिवाङ्क

(परिशिष्टाङ्कसहित)



हर-हरिरूप शिव

शिवस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः ।

एक एव द्विधाभूतो लोके चरति नित्यशः ॥

नमश्चर्मनिवासाय नमस्ते पीतवाससे ।

नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये उमायाः पतये नमः ॥



साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
२६३ हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकिराम। गौरी-शंकर, सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। ब्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम॥

सं० २०५२ से २०५५ तक

१५,०००

सं० २०५९ पाँचवाँ संस्करण

४,०००

योग १९,०००

मूल्य—एक सौ रुपये

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय॥

जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥

जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, संयुक्त सम्पादक—चिम्पनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

visit us at: www.gitapress.org / e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

श्रीशिवाङ्क और परिशिष्टाङ्ककी विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- शङ्करकी शङ्कर-स्तुति (श्रीआद्यशङ्कराचार्यजी महाराज)	३	१२-शिव-तत्त्व (श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज, मण्डलेश्वर, काशी)	३४
२- शिव-शरणागति (शिवभक्त पं० श्रीअप्पय्यजी दीक्षित)	७	१३-आनन्द-वन (स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज गीतामन्दिर, गुजरात)	३६
३- शिवाष्टकम् (आचार्य पं० श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदी)	११	१४-शिव-योग (पं० श्रीगंगाधरजी शर्मा)	३८
४- महेश (श्री 'आर्जव')	१२	१५-शिव-महिमा (महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)	४१
५-शिव (डॉ० एच्० डब्लू० बी० मोरेनो एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्० एम्० एल्० सी०)	१२	१६-शिव-तत्त्व (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ...	६१
६- श्रीत्रिमूर्त्युपासनातत्त्व-रहस्य-मीमांसा (श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर श्रीजगदुरु श्रीशङ्कराचार्य स्वामी श्री ११०८ श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज)	१३	१७-परात्पर शिव (श्रीगौरीशङ्करजी गोयनका) ...	७०
७-ब्रह्म ही शिव है (श्रीकाञ्ची-प्रतिवादिभयङ्कर-मठाधीश्वर जगदुरु श्रीभगवद्रामानुज-सम्प्रदायाचार्य श्री ११०८ श्रीअनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज)	२३	१८-शिव—कल्याणरूप ('शिव')	७६
८-शिवाद्वैत-सिद्धान्त (श्री १०८ जगदुरु पञ्चाक्षर-शिवाचार्य महास्वामी, काशी-क्षेत्र)	२४	१९-काश्मीरीय शैव-दर्शनके सम्बन्धमें कुछ बातें (पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्० ए०, प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत-कालेज, काशी)	८१
९-शुद्धाद्वैत-पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तमें शिव-तत्त्व (अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य श्रीमद्वल्लभाचार्य-प्रकटित शुद्धाद्वैत-सम्प्रदायाचार्य गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी महाराजतनुज श्रीकृष्ण-जीवनजी 'विशारद' बड़ामन्दिर, बम्बई) ..	२९	२०-शिव हाथमें ! (भिक्षु श्रीगौरीशङ्करजी) ...	९६
१०-शिव-तत्त्व (श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य दार्शनिकसार्वभौम, साहित्य-दर्शनाद्याचार्य, तर्करत्न, न्यायरत्न गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री)	३२	२१-शिवं शान्तं सुन्दरम् (श्रीनलिनीकान्त गुप्त, श्रीअरविन्द-आश्रम, पाण्डिचेरी)	९६
११-शिव-तत्त्व (परम पूज्यपाद श्रीउड्डियास्वामीजी-के विचार, प्रेषक—श्रीमुनिलालजी)	३३	२२-शिव (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)	९७
		२३-भगवान् शङ्कर (वेददर्शनाचार्य मण्डलेश्वर स्वामी श्री १०८ श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज)	१०४
		२४-श्रीशिव-तत्त्व (पण्डितवर श्रीपञ्चाननजी तर्करत्न)	१०७
		२५-शिव-लिङ्ग और काशी (पं० श्रीभवानी-शङ्करजी)	११२
		२६-महायोगीश्वर भगवान् शङ्कर (स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी)	११६
		२७-देवदेव श्रीमहादेवका योगिराज-विग्रह और मदन-दहन-लीला (महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण, काशी)	११८
		२८-भगवान् विष्णुका स्वप्न	१२३

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
२९-शैवागम (श्रीश्रीशम्भुलिङ्गजी शिवाचार्य महाराज, बृहन्मठ)	१२५	पं० श्रीहाथीभाईजी शास्त्री)	१८५
३०-शिव-तत्त्व (भारत-धर्म-महामण्डलके एक महात्मा)	१२८	४७-शिव-परिवार (श्रीलालताप्रसादजी टण्डन एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट)	१९१
३१-शिव-भक्ति-रहस्य (श्रीयुत तपोवन स्वामीजी महाराज)	१३०	४८-शिव-परिवार (पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)	१९६
३२-सदाशिव और उनका अमोघ कवच (लाला श्रीकन्नोमलजी एम्० ए०)	१३२	४९-श्रीउमा-महेश्वर-स्तुति (पं० श्रीलक्ष्मण नारायणजी गर्दे)	१९८
३३-लिङ्ग-रहस्य (श्रीरामदासजी गौड़ एम्० ए०)	१३७	५०-शिवपुराणमें शिव-तत्त्व (चौधरी श्रीरघुनन्दन- प्रसादसिंहजी)	२०१
३४-शिव-तत्त्व (प्रो० पं० श्रीसकलनारायणजी शर्मा)	१५३	५१-संस्कृत-साहित्यमें शिव (साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)	२०६
३५-श्रीशिव (पं० हनुमान शर्मा)	१५४	५२-विद्या और सम्प्रदायके आचार्य श्रीसदाशिव (गोस्वामी श्रीलक्ष्मणाचार्यजी)	२१२
३६-लिङ्गपुराण और भगवान् शिव (श्रीवृन्दावन- दासजी बी० ए०, एल्-एल्० बी०)	१६१	५३-शिवके प्रति भक्तकी भावनाएँ (पं० श्रीजयदेवजी शर्मा विद्यालङ्कार)	२१३
३७-नटराज-उपाधिके रहस्य (श्री 'प्रसन्न')	१६३	५४-महारुद्रोपासना (ज्योतिर्विद् पं० श्रीशिवलालजी शास्त्री मेहता)	२१५
३८-श्रीश्रीमृत्युञ्जय-शिव-तत्त्व (पूज्यपाद ब्रह्मीभूत भार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्द- स्वामीजीके उपदेशसे)	१६४	५५-शिव (श्रीटेकनारायणजी तर्कवागीश)	२२४
३९-शैव-सम्प्रदाय (श्रीयुत चिन्ताहरण चक्रवर्ती एम्० ए०)	१६६	५६-श्रीकण्ठीय शिवदर्शन (श्रीयुत एस्० एस० सूर्यनारायण शास्त्री, रीडर, मद्रास- विश्वविद्यालय)	२२९
४०-शैव-मतकी प्राचीनता (श्रीयुत बी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार एम्० ए०, लेक्चरर, मद्रास-विश्वविद्यालय)	१६७	५७-श्रीशिव और श्रीराम-नाम (महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगङ्गानाथजी झा, एम्० ए०, डी० लिट०, एल्-एल्० डी०)	२३२
४१-शिव-सूत्रोंसे व्याकरणकी उत्पत्ति (डॉ० प्रभातचन्द्र चक्रवर्ती, काव्यतीर्थ, एम्० ए०, पी० आर० एस्०, पी-एच्० डी०)	१६९	५८-शङ्कर और शङ्करकी उपासना (पं० श्रीमधुसूदनजी कौल शास्त्री एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)	२३३
४२-शैव और वैष्णवोंका प्रेम (रावबहादुर राजा श्रीदुर्जनसिंहजी)	१७२	५९-शिव-पार्वतीकी पूजाकी लोकप्रियता (रायबहादुर अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए० 'भूप')	२३७
४३-वैष्णव-सिद्धान्त और शिव-तत्त्व (आचार्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)	१७४	६०-शिव नीलकण्ठ (रूसी-ऋषि श्रीनिकोलस रॉयरिक)	२३८
४४-श्रीरामचरितमानसमें शिव-चरित (साहित्यरञ्जन पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी)	१७६	६१-शिवके अठारह नाम (श्री 'प्रेमी' महाशय) ६२-श्रीवल्लभाचार्यके हृदयमें श्रीशिवका स्थान (देवर्षि पं० श्रीरमानाथजी शास्त्री)	२४० २४२
४५-श्रीशिवनिर्मात्यादिनिर्णय (श्रीहाराणचन्द्रजी भट्टाचार्य, प्रिंसिपल संस्कृत-कालेज, फतेपुर)	१७९	६३-ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी एकता (पं० श्रीनित्यानन्दजी जोशी साहित्यशास्त्राचार्य)	२४५
४६-श्रीकृष्णकी शिव-भक्ति (महामहोपाध्याय			

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
६४-वेदोंमें रुद्रस्वरूप (स्वामी श्रीशङ्करानन्दजी गिरि)	२४८	एम्० ए०)	२८९
६५-उपनिषदोंमें शिव-तत्त्व (पं० श्रीजौहरीलालजी शर्मा सांख्याचार्य)	२५२	८३-ब्रह्मा-विष्णु-कृत शिव-स्तवन	२९२
६६-शिव और धनुर्वेद (श्रीमहेन्द्रकुमारजी वेद-शिरोमणि)	२५५	८४-शिव-तत्त्व-विचार (श्रीविनायक नारायण जोशी, साखरे महाराज)	२९३
६७-भगवान् भूतनाथ और भारत (पं० श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध')	२५६	८५-शिवमय जगत् (अनु०—मेहता श्रीइन्दुलाल बापालाल)	२९५
६८-शिव और अर्थशास्त्र (श्रीभगवानदासजी केला)	२५८	८६-परमशिव-तत्त्व (डॉ० पं० श्रीहरदत्तजी शर्मा एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	२९७
६९-शिवत्व (पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस' साहित्यरत्न)	२६०	८७-शिव-तत्त्व (श्रीभीमचन्द्र चट्टोपाध्याय बी० ए०, बी० एल्०, बी० एस्-सी०, एम्० आर० इ० इ०, एम्० आइ० इ०)	३००
७०-संहारमें कल्याण (पं० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ)	२६३	८८-श्रीशिव-कथाओंका आध्यात्मिक रहस्य (स्वामी श्रीरामदासानन्दजी सरस्वती)	३०४
७१-शिव और शक्ति (पं० श्रीरामदयाल मजूमदार एम्० ए०)	२६४	८९-रुद्राक्षकी उत्पत्ति, धारण-विधि और माहात्म्य (अनु०—आई० बी० मेहता) ..	३०९
७२-शिव और सती (श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)	२६९	९०-शिव-तत्त्व (श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया) ..	३११
७३-एक और अनेक रुद्र (श्रीश्रीपाद दामोदर सातवलेकर)	२७२	९१-श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्य (पं० श्रीवृषभलिङ्ग शिवाचार्यजी गोब्बूर)	३१५
७४-पञ्चाक्षर-स्तोत्र (अनु०—श्रीचन्दूलाल बहेचर-लाल पटेल बी० ए०, विद्या-अधिकारी गोंडल-स्टेट)	२७६	९२-व्याघ्रपाद	३२८
७५-श्रीशिव-गीता (श्रीमोतीलाल रविशङ्कर घोड़ा बी० ए०, एल्-एल्० बी०)	२७६	९३-लक्ष्मीजीका शिव-पूजन	३२८
७६-शिव-तत्त्व और शक्ति-तत्त्व अर्थात् साम्ब सदाशिव (श्रीसुन्दरलाल नाथालाल जोशी)	२७७	९४-शिव-तत्त्व (श्रीयुत नृसिंहदासजी वर्मा) ..	३२९
७७-ब्रह्मका विश्वनृत्य (पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र एम्० ए०, साहित्याचार्य)	२७८	९५-शङ्कर-प्रणवरूप (स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी पुरी)	३३४
७८-योगके प्रवर्तक शिव (स्वामीजी श्री-एकरसानन्दजी सरस्वती)	२८१	९६-अत्रि और त्रिदेव	३३८
७९-तान्त्रिक दीक्षा (एक प्रेमी सज्जन)	२८४	९७-शिव-सूत्र-विमर्श (पं० श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी साहित्यरत्न)	३३९
८०-शिवका यथार्थ स्वरूप क्या है ? (पं० श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)	२८५	९८-भगवान् शङ्कर और शङ्कर-सम्बन्धी शास्त्र तामसिक नहीं हैं (पं० श्रीशंकरलालजी शर्मा त्रिवेदी)	३४३
८१-शिव और शक्ति (श्रीयुत स्वामी रामदासजी)	२८८	९९-भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीराम	३४६
८२-मृत्युञ्जय (श्रीयुत श्रीधर मजूमदार		१००-श्रीशिवाङ्क [शिव या शिवाके चिह्न] (पं० श्रीबाबूरामजी शुक्ल, पद्यार्थवाचस्पति, कविसम्राट्)	३४७
		१०१-जगद्गुरु श्रीरेणुकाचार्यकी लीलाएँ (श्री'वेदतीर्थ'जी)	३५०
		१०२-भगवान् कृष्ण और भगवान् शिव	३५४
		१०३-परानुग्रहव्यग्र शिवका हलाहलपान (विद्यालङ्कार पं० श्रीरामकुमारजी जोशी) ..	३५७

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१०४-शिव-नामकी महिमा (श्रीजनकनन्दन-सिंहजी)	३५८	१२४-भस्मविधि और माहात्म्य (अनु०—श्रीइन्दुलालजी)	४०३
१०५-शिव-विष्णुका अलौकिक प्रेम	३६४	१२५-हिन्दी-साहित्यमें शिव (श्रीगिरिधारीलाल झँवर 'अविनाश')	४०४
१०६-शिव-तत्त्व (श्री'ज्योतिः')	३६६	१२६-काशीमरणाभ्युक्तिः (पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री, प्रिंसिपल मारवाड़ी-संस्कृत-कालेज, काशी)	४०९
१०७-विष्णु-उपासक शिव	३७०	१२७-महाशिवरात्रि-व्रत (काव्यतीर्थ प्रोफेसर श्रीलौट्सिंहजी गौतम एम्० ए०, एल्० टी०, एम्० आर० ए० एस्०)	४१७
१०८-देवताका स्वरूप क्या है ? (श्रीयुत बी० भट्टाचार्य, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डाइरेक्टर, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा)	३७१	१२८-शिवमें श्रद्धासे लाभ (सौ० कमलाबाई किवे)	४२१
१०९-शिवपुराणकी कुछ उपयोगी बातें (एक शिव-भक्त)	३७४	१२९-शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवः केवलोऽहम् (श्रीअनन्तशङ्करजी कोल्हटकर बी० ए०)	४२३
११०-शिवजीके पूर्वज (श्रीभारतसिंहजी)	३७६	१३०-शिवगम (पं० श्रीसिद्धेश्वरजी शास्त्री) ...	४२३
१११-परमगुरु शिव (श्रीमती आर० एस्० सुब्बलक्ष्मी अम्मल, बी० ए०, एल्० टी०)	३७६	१३१-वेदोंमें भगवान् शिव (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०)	४२६
११२-शिवोपासनासे लाभ (श्रीयुत चिरञ्जीलालजी शर्मा)	३७८	१३२-वीर-शैव-विज्ञान (पं० श्रीसि० गुरुशान्तजी शास्त्री, आस्थान-विद्वान्, मैसूर)	४२७
११३-प्रसिद्ध शिवभक्त योगिवर्य कैलासवासी श्री १०८ परमहंस विप्रराजेन्द्र स्वामीजी महाराज	३८०	१३३-जगद्गुरु-तत्त्व (भा० ध० म० के एक साधु)	४३०
११४-शिव-सेवाका प्रत्यक्ष फल (पं० श्रीविद्या-भास्करजी शुक्ल)	३८१	१३४-शङ्कर-भक्ति (पं० श्रीकालूरामजी शास्त्री)	४३१
११५-भक्तराज पं० श्रीदेवीसहायजी (श्रीभगवती-प्रसादसिंहजी एम्० ए०, डिप्टी-कलेक्टर)	३८४	१३५-भगवान् शिवके परमतत्त्वका निरूपण (पं० श्रीबदरीदासजी पुरोहित वेदान्तभूषण)	४३५
११६-भगवान् शङ्करका उपदेश	३८७	१३६-महारानी मैनाका वात्सल्य (साहित्यभूषण पं० श्रीनाथूरामजी शुक्ल बी० ए०)	४४०
११७-शिव और तन्त्रशास्त्र (पं० श्रीजगदीशजी शर्मा, व्याकरणसाहित्याचार्य, प्रोफेसर धर्म-समाज-संस्कृत-कालेज, मुजफ्फरपुर)	३८८	१३७-त्रिपुण्ड्र और ऊर्ध्वपुण्ड्र (स्वामी श्रीहरिनामदासजी उदासीन श्रीसाधुबेला)	४४२
११८-षडक्षर वा पञ्चाक्षरमन्त्र (श्रीगौरीशङ्करजी गनेड़ीवाला)	३९०	१३८-वैष्णव हर और शैव हरि (पं० श्रीराम-सजीवनजी मिश्र, व्याकरण-शास्त्री)	४४३
११९-हरिहरात्मक रूप	३९५	१३९-प्रार्थना (पं० श्रीमौजीलालजी शर्मा 'मौजी')	४४५
१२०-वेदोंमें शिवका स्वरूप (श्रीयुत बी० एच्० वडेर, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)	३९६	१४०-कण्णप्प भील	४४५
१२१-रुद्रदेवतापर आधुनिक विद्वानोंके विचार (पं० श्रीगणेशदत्तजी शर्मा गौड़ 'विद्या-वाचस्पति')	३९८	१४१-धन्य थी वह घड़ी ! (एक बड़भागी) .	४४६
१२२-शिवोपासनाकी प्राचीनता (पं० श्रीवासुदेवजी उपाध्याय, बी० एस्-सी०)	३९९	१४२-शिवभक्तिका साक्षात्कार (काव्यालङ्कारभूषण पं० श्रीबालकृष्णजी जोशी कन्नडकर) ...	४४७
१२३-भक्त मानिक वाशगर	४०२		

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१४३-विद्यापति और उदना (पं० श्रीमथुराप्रसादजी दीक्षित)	४४९	१६२-शिव-तत्त्व-रहस्य (श्रीगणेशप्रसादजी एम्० ए०, बी० एस्-सी० मण्डला फोर्ट)	५११
१४४-तारकेश्वरके शिव (पं० श्रीपञ्चाननजी भट्टाचार्य, तर्करत्न)	४५०	१६३-शिव-तत्त्व (डॉ० श्रीदुर्गाशङ्करजी नागर सम्पादक 'कल्पवृक्ष')	५१६
१४५-भगवान्का भजन करनेकी विधि (श्रीरामयशजी गुप्त)	४५१	१६४-राजपूतानेका गणगौरपूजन (पं० श्रीझाबर-मल्लजी शर्मा)	५१९
१४६-श्रीशिवजीकी प्रत्यक्ष कृपा (एक जानकार)	४५३	१६५-अर्द्धनारीश्वर (श्रीएरच जे० एस्० तारापुरवाला, बी० ए०, पी-एच्० डी०, बार-एट-ला)	५२१
१४७-भील-भीलनीकी शिव-भक्ति	४५३	१६६-शिव-कृपा (श्रीलक्ष्मीनारायणजी, प्रोफेसर रसायन-शास्त्र, डी० ए० बी० कालेज, देहरादून)	५२३
१४८-परमभक्त उपमन्यु	४५५	१६७-पार्वतीके तपकी सफलता (सैयद कासिम अली विशारद, साहित्यालङ्कार)	५२५
१४९-सिख गुरु गोविन्दसिंहजीका शिव-काव्य (भाई श्रीअरूढसिंहजी)	४५६	१६८-सेवक-स्वामि-सखा सिय-पीके (श्री 'दीन' रामायणीजी और श्रीमथुराप्रसादजी बी० ए० रिटायर्ड रेवेन्यू कमिश्नर बीकानेर-स्टेट)	५२६
१५०-शिव-स्वरूप और महाराष्ट्र-साहित्य (पं० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर बी० ए०) ..	४५८	१६९-भगवान् शिवके साथ गोस्वामी तुलसीदास-जीका सम्बन्ध (श्रीमाताप्रसादजी गुप्त एम्० ए०)	५३१
१५१-श्रीशङ्करका अद्भुत अवतार (ह० भ० प० श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत)	४६०	१७०-हरिभक्तपर हरकी कृपा (आचार्य श्रीमदन-मोहनजी गोस्वामी वै० दर्शनतीर्थ, भागवतरत्न)	५३५
१५२-शिव-पूजाका फल	४६२	१७१-जगद्गुरु भगवान् शिवशङ्कर (श्रीमती श्याम-किशोरीजी गुप्ता)	५३८
१५३-शिवमहिम्नःस्तव (प्रोफेसर श्रीरामेश्वर गौरीशङ्कर ओझा एम्० ए० अजमेर)	४६७	१७२-भगवान् शिव (हनुमानप्रसाद पोद्दार)	५३८
१५४-हरदत्त शिवाचार्य (श्रीयुत एस्० एस्० सूर्यनारायण शास्त्री, एम्० ए०, रीडर मद्रास-विश्वविद्यालय)	४७२	१७३-दक्ष-यज्ञ-ध्वंस	५३९
१५५-लिङ्ग-रहस्य (पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्० ए०, प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत-कालेज, काशी)	४७३	१७४-शिव-सती-विवाह	५४०
१५६-शिवजीकी सर्वोत्तमता (पुराणरत्न पं० श्रीवृषभलिङ्गजी शास्त्री, आस्थानविद्वान्, श्रीरम्भापुरी-वीरसिंहासन)	४७७	१७५-भगवान् शिव (श्रीरसूल अहमद 'अबोध')	५४१
१५७-अद्भुत शिवकोटि (पं० श्रीवीरभद्रजी शर्मा तैलङ्ग, वेद-काव्य-तीर्थ)	४८१	१७६-क्षमा-याचना (सम्पादक)	५४२
१५८-शिवरात्रि-रहस्य (श्रीसुरेशचन्द्र सांख्य-वेदान्त-तीर्थ)	४८२	परिशिष्टाङ्क	
१५९-शिव-शक्ति-वाद (प्रो० श्रीभीखनलालजी आत्रेय, एम्० ए०, डी० लिट्०)	४८६	१७७-द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग	५४७
१६०-शिवका स्वरूप (श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल एम्० ए०, एल्-एल् बी०)	४९१	१७८-श्रीशिवकी अष्टमूर्तियाँ (श्रीपन्नलाल-सिंहजी)	५६१
१६१-काशीमें मृत्यु और मुक्ति (संकलनकर्ता—श्री 'सत्य' ठाकुर)	५०५	१७९-शिवजीके कुछ प्रसिद्ध स्थान (श्रीभगवती-प्रसादसिंहजी, डिप्टी-कलेक्टर)	५६७

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१८०-विदेशोंमें शिव-लिङ्ग-पूजा (पण्डितवर्य श्रीकाशीनाथजी शास्त्री, अध्यक्ष 'पञ्चाचार्य प्रभा' मैसूर)	५७३	एम्० एच्० कृष्ण, एम्० ए०, डी० लिट्० [लन्दन] अध्यक्ष पुरातत्त्व-विभाग मैसूर; श्रीमान् महाराजा साहब मैसूरकी आज्ञासे) ६२६	
१८१-बृहत्तर भारतमें शिव (डॉ० श्रीसुनीतिकुमार चटर्जी एम्० ए०, डी० लिट्० [लन्दन] प्रोफेसर कलकत्ता-विश्वविद्यालय)	५७९	१९४-दक्षिण-भारतके प्रधान शिव-मन्दिर (श्रीयुत जी० आर० जोशियर एम्० ए०, एफ्० आर०, ई०, एस्०, मैसूर)	६२८
१८२-'स्टोंक काक थॉम' के स्तम्भका शिलालेख (श्रीयुत डॉ० वेङ्कट सुब्बिया, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, मैसूर)	५८५	१९५-'श्रीशुचीन्द्र' शिवक्षेत्र (ह० भ० प० श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत)	६३०
१८३-शिव-तत्त्व-सम्बन्धी कुछ चित्र और मथुराका शैव-स्तम्भ (श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)	५९०	१९६-कलिङ्गदेशके प्रसिद्ध शिव-मन्दिर (श्री ३ लक्ष्मीनारायण हरिचन्दन जगदेव राजाबहादुर, एम्० आर० ए० एस्०, एम्० बी० डी० एम्०, पुरातत्त्वविशारद, विद्यावाचस्पति, राजासाहब टेक्काली)	६३२
१८४-बम्बईकी कुछ विलक्षण शैव-मूर्तियाँ (श्रीरणछोड़लालजी ज्ञानी एम्० ए०, एम्० आर० ए० एस्०)	५९६	१९७-श्रीवैद्यनाथ (पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी)	६३३
१८५-भारतशिव और वाकाटकराजवंशके इष्टदेव शिव (श्रीशारदाप्रसादजी, सतना)	५९९	१९८-श्रीमहाकालेश्वर (श्रीसूर्यनारायणजी व्यास, उज्जैन)	६३४
१८६-श्रीमहादेव-कामरूपराजवंशके इष्टदेव (अध्यापक पं० श्रीपद्मनाथजी भट्टाचार्य, विद्याविनोद, एम्० ए०)	६०१	१९९-गोवा-प्रान्तके श्रीमंगेश महादेव (श्रीरामचन्द्र शङ्कर टक्की महाराज)	६३६
१८७-राजपूतानेमें शिवमूर्तियाँ (महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० श्रीगौरीशङ्कर हीराचन्दजी ओझा)	६०६	२००-उज्जैनके भीमाशङ्कर (श्रीशिवशङ्करजी नागर, काशीपुर)	६३९
१८८-नर्मदातटके कुछ शिव-मन्दिर (पं० श्रीप्रबोधचन्द्रजी मिश्र)	६०९	२०१-नागेशं दारुकावने (पं० श्रीमथुरादत्तजी त्रिवेदी)	६४०
१८९-भगवान् श्रीएकलिङ्ग (ठाकुर श्रीचन्द्रनाथजी माथुर)	६१६	२०२-रुद्रमाल (प्रे०-श्रीचन्दूलाल बहेचरलाल पटेल बी० ए०)	६४४
१९०-ईरानमें शिव-मन्दिर (श्रीमहेशप्रसादजी मौलवी आलिम फाजिल)	६१९	२०३-जसदण-राज्यस्थित सोमनाथ (श्रीमयाशङ्कर दयाराम मोढूकावाला)	६४६
१९१-पुरातत्त्व और शिवार्चन (डॉ० श्रीहीरानन्दजी शास्त्री, एम्० ए०, डी० लिट्०, एम्० ओ० एल्०, गवर्नमेण्ट एपिग्राफिस्ट फार इण्डिया)	६२०	२०४-श्रीबैजनाथ महादेव [आगर-मालवा] (पं० श्रीगणेशदत्तजी शर्मा गौड़ 'इन्द्र') .	६४७
१९२-काशीमें अत्यन्त प्राचीन शिव-मठ (पं० श्रीवागीश शिवाचार्यजी)	६२३	२०५-जबलपुरके श्रीगौरीशङ्कर तथा गुप्तेश्वर महादेवके मन्दिर (पं० श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी)	६४९
१९३-मैसूरराज्यके शिव-मन्दिर (श्रीयुत डॉ०		२०६-क्षीरपुरके प्राचीन मन्दिर (श्रीबद्रीप्रसादजी साकरिया)	६५१
		२०७-आसामके दो शिव-मन्दिर (पं० श्रीवंशीधरजी शर्मा काव्यतीर्थ)	६५३

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
२०८-ईडर-राज्यके कुछ खास शिव-मन्दिर (पं० श्रीजदुराम रविशङ्करजी त्रिवेदी) ...	६५४	बी० ए०, एल्-एल् बी०)	३२७
२०९-बानपुरके श्रीकुण्डेश्वर महादेव (श्रीमथुरा- प्रसादजी)	६५६	१५-आशुतोष शिव (प्रेमयोगी 'मान')	३४५
२१०-श्रीशिवजीके अष्टोत्तरशत दिव्य देश (वैष्णव श्रीरामटहलजी बड़ास्थान, दारागंज, प्रयाग)	६५७	१६-श्रीशिवाष्टक (श्रीविनायकरावजी भट्ट) ...	३४९
२११-मथुराके रक्षक शिव (ज्योतिर्विद् पं० श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी)	६५८	१७-राजनीतिज्ञ शङ्कर (श्रीदेवीदासजी)	३५६
२१२-श्रीगोपेश्वर (आचार्य श्रीअनन्तलालजी गोस्वामी)	६६१	१८-भारत शिवका रूप है ! (स्व० पं० माधव- प्रसादजी मिश्र परलोकसे, प्रे०—पं० श्रीझाबरमल्लजी शर्मा)	३७३
२१३-गोरखपुरके तीन प्रधान शिव-लिङ्ग	६६१	१९-सौत-सन्ताप (श्रीशिवकुमारजी केडिया 'कुमार')	३७५
२१४-अयोध्याके शिव-मन्दिर	६६३	२०-हर हर हर (श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस' साहित्यरत्न)	३८९
२१५-उदयपुरका एक प्राचीन शिव-चित्र (पं० श्रीगिरिधरलालजी शर्मा)	६६४	२१-शिवकी व्यापकता (स्व० पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, परलोकसे, प्रे०—पं० श्री- झाबरमल्लजी शर्मा)	४०८
२१६-चित्र-परिचय	६६४	२२-शिव-महिमा (श्रीअवन्तविहारीजी माथुर 'अवन्त')	४२०
२१७-शिवभक्तोंका कर्तव्य टाइटल तीसरा पेज		२३-शङ्करकी कृपा (पं० श्रीभगवतीप्रसादजी त्रिपाठी विशारद, एम्० ए०, एल्-एल् बी०)	४२५
पद्य		२४-स्तव (श्री 'प्रभात')	४३४
१-आरती (श्रीनारायणदासजी पोद्दार)	४०	२५-शिव-ताण्डव (पं० श्रीश्यामनारायणजी पाण्डेय 'श्याम' साहित्यरत्न)	४३९
२-कल्याण-शिवाङ्को विश्वे विजयते (वेद- काव्यतीर्थसाहित्यविशारदोपाधिक पं० श्रीवीरभद्रजी शास्त्री, तैलङ्ग, काशी)	८०	२६-ताण्डव (श्रीरामचन्द्रजी मिश्र 'मोहन') ..	४६६
३-भगवान् शिव (श्रीआनन्दीप्रसादजी श्रीवास्तव)	१२७	२७-शिवस्तुति (पं० श्रीवासुदेवजी शास्त्री) ..	४७१
४-फल (श्रीशिवकुमारजी केडिया 'कुमार') ..	१३६	२८-बम् बम् बम् (पं० श्रीबुद्धिसागरजी मिश्र 'पञ्चानन')	४९०
५-शङ्कर (श्रीसरयूप्रसादजी पाण्डेय 'द्विजेन्द्र') ..	१५२	२९-संहार-सत्यता (ताजीमी सरदार पुरोहित श्रीप्रतापनारायणजी कविरत्न)	५०४
६-श्रीहरिहरसाम्यवर्णन (श्रीनन्दलालजी माथुर) ..	१७८	३०-शिव-प्रार्थना (पं० श्रीबालचन्द्रजी शास्त्री, विद्यावाचस्पति)	५२४
७-महेश-महिमा (श्रीजगदीशजी झा 'विमल') ..	१९५	३१-श्मशान (पं० श्रीकन्हैयालालजी मिश्र 'प्रभाकर' विद्यालङ्कार, एम्० आर० ए० एस्०)	५२५
८-आरती (श्रीबालकृष्णजी)	२०५	३२-शिव-नौरस (काव्याचार्य श्री 'शारद रसेन्द्र' जी)	५२९
९-शिव-भक्तिका फल (पं० श्रीगङ्गाविष्णुजी पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु')	२५४	३३-श्रीकृष्णजन्मसमयागत श्रीशिव-ध्यान (श्रीचाचा हितवृन्दावनदासजी, प्रे० श्रीहितरूपलालजी गोस्वामी)	५३४
१०-आशुतोष (श्रीअमृतलालजी माथुर)	२८३		
११-धन्य, धन्य ! (श्रीजगन्नारायणदेवजी शर्मा विशारद, साहित्यशास्त्री)	२८७		
१२-भोलानाथ (श्रीविश्वनाथप्रसादजी मिश्र) ..	२९१		
१३-मदन-दहन (पं० श्रीरामनारायणदत्तजी पाण्डेय 'राम' व्याकरण-शास्त्री)	३२६		
१४-शरणागत (श्रीदेवीप्रसादजी गुप्त 'कुसुमाकर')			

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
३४-ताण्डव-नृत्य (श्रीरामकुमारजी वर्मा एम० ए०)	५३४	५-शिव-समाज (महाकवि केशवदासजी)	१७१
३५-शिव-लीला (पं० श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम')	५३७	६-जगद्धर भट्टकी स्तुति-कुसुमाञ्जलि (आचार्य पं० श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदी)	३१७
३६-रुद्राष्टक (पं० श्रीरामभरोसजी पाण्डेय 'सूर्य')	५४४	७-भगवान् शिवका नित्यधाम महाकैलास	४०७
३७-शिव-अर्द्धाङ्गिनीकी लीला (पं० श्रीनारायणदासजी चतुर्वेदी)	५७२	८-स्तुति (स्व० श्रीदामोदरसहायसिंहजी कविकिंकर)	४५२
३८-आरती	टाइटलका चौथा पृष्ठ	९-पश्चात्ताप (शैवप्रमोदसे)	४५४
संगृहीत लेख और कविताएँ		१०-शङ्कर-नख-सिख-वर्णन (स्व० श्रीअर्जुन-दासजी केडिया)	५३६
१-शिव-स्तुति (यजुर्वेदसे)	१	११-कामना	५४६
२-शिव-महिमा और स्तुति (उपनिषद्से)	२	१२-शिव-कृपा	५६६
३-कुछ भी स्थिर नहीं है	१०	१३-काशी-केदार-महात्म्य	६१४
४-श्रीशिवस्तुति (स्व० श्रीअर्जुनदासजी केडिया)	९५	१४-मोह नहीं होगा	६२५
		१५-अब भी शिवकी शरण जाओ	६४३

चित्र-सूची

इकरङ्गे-सादे चित्र

१-हर-हरिरूप शिव	आवरण पृष्ठ	१७-गोरक्षनाथ-गर्व-हरण	३५२
२-कल्याणरूप शिव	१	१८-श्रीरुद्रमुनिशिवाचार्यका भूगर्भसे निकलना	३५३
३-देवसेनापति कुमार कार्तिकेय	४८	१९-श्रीसोमनाथलिङ्गमें प्रवेश	३५३
४-श्रीगणेश-परिवार	४८	२०-श्रीदक्षिणामूर्ति	३७७
५-कैलाश-मणिभवन	९६	२१-चूरुकी एक शिवप्रतिमा	३७८
६-शिवस्यार्धप्रदक्षिणा	९७	२२-शिवभक्त परमहंस श्रीविप्रराजेन्द्र स्वामीजी, इला	३८०
७-बिन्दुसर	९७	२३-विमलेश्वर महादेवका मन्दिर	३८२
८-श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्योंका आविर्भाव	३१६	२४-देवेश्वरजीकी विमलेश्वरपूजा	३८२
९-श्रीऊखीमठ	३१६	२५-भक्तराज पं० श्रीदेवीसहायजी	३८४
१०-श्रीउज्जयिनी-महापीठ	३१७	२६-श्रीमहाकैलासका चित्र	४०७
११-श्रीकोलपाक, श्रीसोमेश्वरलिङ्गसे श्री-रेणुकाचार्यका आविर्भाव	३५०	२७-भक्त कण्णप्प	४४५
१२-श्रीअगस्त्यके प्रति श्रीरेणुकाचार्यका शिव-तत्त्वोपदेश	३५०	२८-दाशार्ह राजाके पापनाश	४६२
१३-विभीषणकी प्रार्थनानुसार तीन कोटि लिङ्ग-स्थापन	३५१	२९-भद्रायुको जीवन-प्राप्ति	४६२
१४-श्रीशङ्कराचार्यको चन्द्रमौलीश्वर-लिङ्गदान	३५१	३०-चित्रांगद और सीमन्तिनी	४६३
१५-काञ्ची वरदराजका शिरःकम्पननिवारण ...	३५२	३१-सुधर्माकी यमपाशसे मुक्ति	४६३
१६-यक्ष-मिथुन-ध्वंस	३५२	३२-उमा ब्राह्मणीपर शिवकी कृपा	४६४
		३३-ब्रह्मराक्षसकी मुक्ति	४६४
		३४-भस्मासुर-भस्म	४६५
		३५-श्रियाल राजापर कृपा	४६५

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
३६-अमरेश्वर-मन्दिरमें खुदा हुआ शिव- महिम्नःस्तोत्र	४६८	६६-श्रीरामेश्वर-मन्दिरका पूर्वीय गोपुर.....	५५७
३७-श्रीशिवकोटि वीरभद्रय्यास्वामी	४८०	६७-श्रीधृष्णेश्वर-मन्दिर	५५७
३८-शिवरात्रि	४८४	६८-दौलताबादकिला, देवगिरि	५६०
३९-परम शिवभक्ता महारानी अहल्याबाई होल्कर	५२०	६९-इलोरामें चट्टान काटकर बनाया हुआ कैलाश-मन्दिर	५६०
४०-श्रीसिद्धेश्वर, शोलापुर	५२१	७०-इलोरा-कैलाशके मध्य-मन्दिरका सभाभवन	५६१
४१-श्रीशृंगार-मूर्ति, शोलापुर	५२१	७१-इलोराके कैलाश-मन्दिरमें रावणद्वारा उठाये हुए कैलाश-पर्वतका दृश्य	५६१
४२-शिवभक्त स्वामी श्रीगम्भीरनाथजी महाराज	५२१	७२-सूर्यकुण्ड	५६१
४३-शिवरामकिङ्कर स्वामी श्रीयोगत्रयानन्दजी महाराज	५२१	७३-श्रीचन्द्रनाथ	५६२
परिशिष्टाङ्क		७४-श्रीचन्द्रनाथ-बडवानल	५६२
४४-भक्त माणिक्य वाशगर	टाइटल	७५-श्रीसोमनाथका नया मन्दिर (दूरसे)	५६२
४५-भारतके प्रधान शिवपीठका नक्शा	५४६	७६-श्रीअरुणाचल	५६२
४६-प्राचीन सोमनाथका भग्न मन्दिर	५४८	७७-श्रीपशुपतिनाथ-नेपाल (बाहरी दृश्य)...	५६३
४७-कृष्णा नदीके तटपर श्रीशैलम् पर्वतके ऊपर श्रीमल्लिकार्जुनका शिव-मन्दिर.....	५४९	७८-श्रीपशुपतिनाथ-नेपाल (भीतरी दृश्य) ..	५६३
४८-श्रीमल्लिकार्जुन शिव-लिङ्ग	५४९	७९-श्रीशिवकाञ्चीके मन्दिरका बाहरी दृश्य ...	५६४
४९-श्रीमहाकालेश्वरका एक दृश्य	५५०	८०-श्रीजम्बुकेश्वरके मन्दिरका बाहरी दृश्य ...	५६४
५०-श्रीमहाकालेश्वरका दूसरा दृश्य	५५०	८१-श्रीकालहस्तीश्वरका बाहरी दृश्य	५६५
५१-भक्त श्रीकर गोप	५५१	८२-श्रीचिदम्बरम्-मन्दिरके गोपुर एवं हेमपुष्करणीतीर्थ	५६५
५२-श्रीओंकारेश्वर, शिवपुरी	५५२	८३-मदुरा-मन्दिरके द्वारस्तम्भ	५६६
५३-भृगुपतनवाली पहाड़ी	५५२	८४-श्रीमीनाक्षी और श्रीसुन्दरेश्वर-मन्दिर, मदुरा	५६६
५४-श्रीकेदारनाथ	५५३	८५-बृहदीश्वर-मन्दिर, तंजोर	५६७
५५-भीमा नदीके निकासपर श्रीभीमाशङ्करका मन्दिर	५५३	८६-पक्षि-तीर्थमें दिव्य पक्षी पर्वतके ऊपर प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं	५६७
५६-श्रीविश्वनाथजीका मन्दिर, काशी	५५४	८७-धारापुरी-गुफाका द्वार	५६८
५७-श्रीकाशी-विश्वनाथ	५५५	८८-धारापुरीकी ताण्डव-मूर्ति	५६८
५८-श्रीविश्वनाथ-शयन-आरती	५५५	८९-श्रीमहाबलेश्वर-शिव-मन्दिर	५६८
५९-ज्ञानवापी	५५५	९०-श्रीवैद्यनाथ-मन्दिर, कांगड़ा	५६९
६०-श्रीत्र्यम्बकेश्वरका मन्दिर	५५५	९१-श्रीअमरनाथजीकी बर्फसे बनी हुई मूर्ति	५६९
६१-श्रीत्र्यम्बकेश्वर	५५५	९२-श्रीअमरनाथ-गुफा	५६९
६२-श्रीवैद्यनाथ-मन्दिर	५५५	९३-श्रीलिङ्गराज-भुवनेश्वर	५७०
६३-श्रीवैद्यनाथधाम	५५५	९४-श्रीतारकेश्वर शिव	५७०
६४-श्रीनागनाथ-मन्दिर	५५६	९५-शिव-विवाह, खजुराहो	५७०
६५-श्रीरामेश्वर-मन्दिरका प्रसिद्ध चाँदीका रथ	५५७	९६-विश्वनाथ-मन्दिर, खजुराहो	५७१

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
९७-कण्डारिया-मन्दिर, खजुराहो	५७१	१२६-शिव-श्यामदेशकी धातुमूर्ति	५८५
९८-अनामके मी-सोन गाँवका शिवलिङ्ग	५७४	१२७-(२) गुप्तकालीन भव्य शिवलिङ्ग	५९०
९९-अनामदेशके मी-सोन गाँवका शिवालय	५७४	१२८-(३) हरि-हर-मूर्तिका सिर	५९०
१००-मी-सोनमें षण्मुख मयूरवाहन-विग्रह	५७५	(क) (४) हरि-हर	५९०
१०१-जावाका लाराजोंग्रांग शिवालय	५७५	(ख) (५) एकमुखी शिवलिङ्ग	५९०
१०२-मोहन-जो-दड़ोमें प्राप्त विशाल शिव- लिङ्ग (२)	५७८	(ग) (६) गुप्तकालीन सुन्दर एकमुखी लिङ्ग	५९०
१०३-मोहन-जो-दड़ोमें प्राप्त शिवलिङ्ग (२) ..	५७८	(घ) (७) ईस्वी द्वितीय शताब्दीकी महिषासुरमर्दिनी दुर्गा	५९०
१०४-मोहन-जो-दड़ोमें प्राप्त शिवलिङ्ग (६) ..	५७८	(ङ) (८) गुप्तकालीन नृत्यरत गणपतिमूर्ति	५९०
१०५-दक्षिण-भारत गुडिमल्लम्-मन्दिरकी शिव- मूर्ति	५७९	१२९-(९) पञ्चमुखी शिवलिङ्ग	५९१
१०६-मथुराकी लिङ्गमय शिवमूर्ति	५७९	१३०-(१०) उमा-महेश्वर-मूर्ति	५९१
१०७-कणिष्ककी मुद्रामें पाशत्रिशूलधारी वृषभ- सहित शिवकी मूर्ति	५७९	१३१-(११) चतुर्भुजी चन्द्रशेखर-मूर्ति	५९१
१०८-कणिष्ककी मुद्रामें सम्राट्की प्रतिकृति	५७९	१३२-(१२) सेनानी-स्कन्द कार्तिकेय, गुप्तकाल	५९१
१०९-कणिष्ककी मुद्रामें चतुर्भुज शिवमूर्ति	५७९	१३३-(१३) ईस्वी द्वितीय शताब्दीकी सप्त- मातृकाएँ	५९४
११०-गुप्तकालकी शिवमूर्ति लोकेश्वर (शिव) ..	५७९	१३४-(१४) मध्यकालीन सप्तमातृकाएँ, वीरभद्र गणपतिसमेत	५९४
१११-शिव और भीता उमा	५८०	१३५-(१५) मथुराका यज्ञीय यूप	५९४
११२-शिव नटराज	५८०	१३६-(१६) मथुराका पाशुपत शैव-स्तम्भ	५९५
११३-योगी महेश्वर	५८१	१३७-परेलकी अद्वितीय शैव-मूर्ति	५९६
११४-मध्य-एशिया (चीनी-तुर्किस्तान) के 'दन्दान्यूलिक' के खँडहरमें प्राप्त महेश्वरका चित्र	५८१	१३८-अन्धकासुरवध-मूर्ति	५९६
११५-चम्पाकी शिवमूर्ति	५८१	१३९-गजासुर-संहार-मूर्ति	५९६
११६-कम्बोजकी शिवमूर्ति	५८२	१४०-खजुराहोका विशाल नन्दी	५९८
११७-शिव या शैव राजा, कम्बोज	५८२	१४१-वाकाटक हरगौरी (कैलासपर)	५९८
११८-हरि-हर, कम्बोज	५८२	१४२-नचना-पार्वती-मन्दिरका द्वार, गङ्गा- यमुना-अंकित चौखटसहित	५९८
११९-यवद्वीप प्राम्बानान्के प्राचीन शिवक्षेत्रके प्रधान मन्दिरके गर्भगृहकी शिवमूर्ति	५८३	१४३-नचना-पार्वती-मन्दिरकी पर्वतरूप दीवाल- का अंश	५९८
१२०-धातुमय शिवमूर्ति (प्राचीन यवद्वीप)	५८३	१४४-नचनाका शिव-मन्दिर	५९९
१२१-शिव गुरु (अगस्त्यरूपी शिव) जावा	५८३	१४५-नचनाके वाकाटक महाभैरव (चतुर्मुख- लिङ्ग)	५९९
१२२-शिव (प्राम्बानान्-यवद्वीप)	५८४	१४६-नचनाके वाकाटक महाभैरव (स्मितमुख, गम्भीरमुख)	५९९
१२३-शिव-पार्वती (वर्मा थातोन्में प्राप्त)	५८४	१४७-नचनाके वाकाटक महाभैरव (शान्तमुख, महाभैरवमुख)	५९९
१२४-यवद्वीपके पूर्व बलिद्वीपके शिव	५८५		
१२५-ईरानके सासानी राजाओंके सिक्केमें शिवमूर्ति	५८५		

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१४८-भुमराका भारशिव-मन्दिर.....	६००	१८२-श्रीएकलिङ्गजीका भस्मधारण	६१७
१४९-भुमराके भारकुलदेव—एकमुखी.....	६००	१८३-श्रीएकलिङ्गजीका शृङ्गार.....	६१७
१५०-भारशिव-स्तम्भ	६००	१८४-ईरानमें शिव-मन्दिर.....	६१९
१५१-भारशिव-हरगौरी.....	६००	१८५-भीटामें प्राप्त पञ्चमुखी शिवप्रतिमा	६२२
१५२-शिव-ताण्डव-स्तोत्र.....	६०१	१८६-एलीफेण्टा-त्रिमूर्ति सदाशिव (धारापुरी)	६२२
१५३-काशीके श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें श्रीशिव-पार्वतीकी मूर्ति.....	६०२	१८७-जङ्गमबाड़ी पूर्वाचार्योंकी समाधिस्थली ...	६२४
१५४-काशीके श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें गङ्गावतरण	६०२	१८८-जङ्गमबाड़ी विश्वाराध्यकी तपोभूमि	६२४
१५५-अष्टभुजा-वीरभद्रमूर्ति, अवधारकोयल.....	६०३	१८९-जङ्गमबाड़ीका प्रांगण	६२४
१५६-शिव-पार्वतीकी सुन्दर मूर्ति	६०३	१९०-जङ्गमबाड़ी कैलासमण्डपमें ज्ञानसिंहासन	६२४
१५७-श्रीचिदम्बरम्की यात्रा	६०४	१९१-श्रीहायलेश्वर-मन्दिर, हालेविद	६२६
१५८-काञ्चीमें भगवान् श्रीशङ्कराचार्यजीकी मूर्ति	६०४	१९२-श्रीशिव-गङ्गा	६२६
१५९-श्रीपञ्चवक्त्रेश्वर-मन्दिर हरिद्वार	६०५	१९३-श्रीहायलेश्वर शिव-गौरीमूर्ति	६२७
१६०-श्रीदक्षेश्वरका प्राचीन मन्दिर—कनखल ...	६०५	१९४-विद्याशङ्कर-मन्दिर	६२८
१६१-बालकेश्वर, बम्बई	६०६	१९५-श्रीभोगनन्दीश्वरका मन्दिर	६२९
१६२-वाणगङ्गा बम्बई	६०६	१९६-महामखम्-मेला, कुम्भकोणम्	६२९
१६३-श्रीदक्षिणेश्वर-मन्दिर	६०६	१९७-पोठामराइ कुम्भकोणम्	६२९
१६४-पञ्चमुखी परमेश्वर.....	६०७	१९८-शुचीन्द्र	६३१
१६५-सम्मिदेश्वर-मन्दिर, चित्तौड़	६०७	१९९-अत्रि-आश्रम शुचीन्द्र	६३१
१६६-शिवालय, रतनगढ़	६०७	२००-महेन्द्रगिरि गोकर्णेश्वर	६३२
१६७-श्रीनर्मदेश्वर	६१०	२०१-मुखलिङ्गम् मधुकेश्वर	६३३
१६८-शूलपाणेश्वर	६१०	२०२-तीर्थपुरी-गुफा	६३४
१६९-अमरकण्ठक	६१०	२०३-मानसरोवर	६३४
१७०-कुम्भेश्वर	६१०	२०४-कैलाश	६३५
१७१-दशाश्वमेधतीर्थ	६११	२०५-कैलाश (डेरफू-गुफासे)	६३५
१७२-आदित्येश्वर	६११	२०६-मङ्गेश	६३६
१७३-कुबेरेश्वर	६११	२०७-चक्रवर्तीश्वर शिवलिङ्ग	६३७
१७४-हायेश्वर	६११	२०८-स्थाणु महादेवका मन्दिर थानेसर	६३८
१७५-काशी-केदारखण्डका मानचित्र	६१४	२०९-नन्दलाल बिगहा (गया) का विशाल श्रीहर-मन्दिर	६३८
१७६-श्रीकाशी-मणिकर्णिका-घाट	६१४	२१०-भगसिद्धेश्वर-मन्दिर ओंकार	६३८
१७७-श्रीकाशी-दशाश्वमेध-घाट	६१४	२११-उज्जैनकके भीमाशङ्कर-मन्दिरका पूर्वद्वार (बाहरी दृश्य)	६३९
१७८-श्रीकाशी-शिवाला-घाट	६१५	२१२-भीमाशङ्कर दक्षिणद्वारसे उज्जैनक (नैनीताल)	६३९
१७९-श्रीकाशी-अस्सी-घाट	६१५	२१३-श्रीसर्वेश्वर महादेव श्रवणनाथ, कुरुक्षेत्र ...	६३९
१८०-श्रीएकलिङ्ग-मन्दिर, कैलासपुरी	६१६	२१४-श्रीधर्मेश्वर-शृङ्गारमूर्ति, मेरठ	६३९
१८१-बाप्पा रावलकी शिवोपासना	६१६		

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
२१५-जागेश्वर	६४१	२३३-कानपुरके श्रीकुण्डेश्वर महादेव	६५६
२१६-बागेश्वर	६४१	२३४-पिप्पलेश्वर, मथुरा	६५९
२१७-रुद्रमाल	६४५	२३५-श्रीगोकर्णेश्वरनाथ, मथुरा	६५९
२१८-रुद्रमालका तोरणबन्द	६४५	२३६-श्रीभूतेश्वरनाथ, मथुरा	६६०
२१९-ओंकारेश्वर महादेव	६४६	२३७-श्रीरङ्गेश्वरनाथ महादेव, मथुरा	६६०
२२०-ओंकारेश्वर	६४६	२३८-गोपेश्वर महादेव, वृन्दावन	६६१
२२१-बैजनाथ महादेव, (पीछेके कमल- कुण्डसहित) आगर	६४८	२३९-श्रीमुक्तेश्वरनाथ, गोरखपुर	६६२
२२२-बैजनाथ महादेव, आगर	६४८	२४०-मानसरोवरेश्वर, गोरखपुर	६६२
२२३-श्रीगौरीशङ्कर-मन्दिर, जबलपुर	६५०	२४१-दुग्धेश्वर, रुद्रपुर-गोरखपुर	६६२
२२४-पार्वती-मन्दिर, जबलपुर	६५०	२४२-सोमेश्वर, प्रयाग	६६२
२२५-गुप्तेश्वरका भीतरी दृश्य, जबलपुर	६५०	२४३-शिवकोटि मन्दिर, प्रयाग	६६२
२२६-क्षीरपुरके मन्दिर	६५२	२४४-गुप्तेश्वर महादेव, कानपुर	६६२
२२७-क्षीरपुरके मन्दिर	६५२	२४५-श्रीदर्शनेश्वर, अयोध्या	६६३
२२८-मुक्तिनाथ	६५३	२४६-श्रीराजराजेश्वरकी मूर्ति, अयोध्या	६६३
२२९-तिनसुकिया-शिवमन्दिर	६५४	२४७-श्रीनागेश्वर, अयोध्या	६६३
२३०-वीरेश्वर महादेव, ईडर	६५५	२४८-उदयपुरका प्राचीन शिवचित्र	६६४
२३१-मुन्धेणा महादेव, ईडर	६५५	२४९-शिव-विष्णु और उमा-रमाका प्रेम- सम्मिलन	६६५
२३२-नीलकण्ठ महादेव, ईडर	६५५	२५०-शिव-कृष्णमूर्ति	६६५



ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



आराध्य यं सुमनसा पुरुषाः स्त्रियो वा कल्याणकल्पतरुमुक्तिफलान्युपेयुः ।
मूलं भजध्वमनिशं परमं तमीशं ब्रह्मस्वरूपमुमया सह विद्ययैव ॥

वर्ष ८ }

गोरखपुर, श्रावण १९९० अगस्त १९३३

{ संख्या १
पूर्ण संख्या ८५

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

—यजुर्वेद

शिव-महिमा और स्तुति

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
 र्य इमाँल्लोकानीशत ईशानीभिः ।
 प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले
 संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥
 यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
 विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
 हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
 स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥
 या ते रुद्रशिवा तनूरशोराऽपापकाशिनी ।
 तथा नस्तनुवा शन्तमया
 गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥
 ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं
 यया निकायं सर्वभूतेषु गूढम् ।
 विश्वस्यैकं परिवेष्टितार-
 मीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥
 सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
 सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥
 महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः ।
 सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ॥
 पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
 उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥
 सर्वतःपाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
 सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
 सर्वेन्द्रियगुणामासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
 सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥
 अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
 पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
 स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
 तमाहुरग्न्यं पुरुषं महान्तम् ॥

अणोरणीयान् महतो महीया-
 नात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
 तमकतुं पश्यति वीतशोको
 धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥
 मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
 तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥
 यो यानि यानिमधितिष्ठत्येको
 यस्मिन्निदं सं च विद्येति सर्वम् ।
 तमीशानं वरदं देवमीड्यं
 निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥
 यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
 विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
 हिरण्यगर्भं पश्यति जायमानं
 स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥
 सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये
 विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
 विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
 ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥
 घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं
 ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम् ।
 विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
 ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥
 यदातमस्तन्न दिवा न रात्रि-
 नं सन्न चासच्छिव एव केवलः ।
 तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यं
 प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥
 भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
 कलासर्गकरं देवं वे विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद्

शङ्करकी शङ्कर-स्तुति

(प्रातःस्मरणाय श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यरचित शिवानन्दलहरीसे)

गलन्ती शम्भो ! त्वच्चरितसरितः किञ्चिदपरजो
दलन्ती धीकुल्यासरणिषु पतन्ती विजयताम् ।
विशन्ती संसारभ्रमणपरितापोपशमनं
वसन्ती मच्चेतोद्दभुवि शिवानन्दलहरी ॥ १ ॥

हे शम्भो ! यह 'शिवानन्दलहरी' (शिवस्तुतिरूप आनन्दकी लहर) आपके अगाध चरितरूपी सरितासे निकल कर (अपने भावरूप निर्मल जलसे अवगाहन करनेवालोंके) पापपङ्कका प्रक्षालन करती हुई तथा भयावहीभ्रमणजनित क्लान्तिको शान्त करती हुई मेरी बुद्धिरूपी कुल्या (नहर) मेंसे होती हुई, मेरे हृदयरूपी हृदमें प्रवेशकर सदाके लिये उसीमें स्थिर हो जाय ।

प्रभुस्त्वं दीनानां खलु परमबन्धुः पशुपते !
प्रमुख्योऽहं तेषामपि किमुत बन्धुस्त्वमनयोः ।
त्वयैव क्षन्तव्याः शिव ! मदपराधाश्च सकलाः
प्रयत्नान् कर्तव्यं मदवनमियं बन्धुसरणिः ॥ २ ॥

हे पशुपति ! आप दीनानाथ एवं दीनबन्धु हैं और मैं दीनोंका सरदार हूँ । क्या ही अच्छा जोड़ बैठा है ! बन्धुका कर्तव्य है कि वह अपने सम्बन्धीको सर्वनाशसे बचावे । फिर क्या आप मेरे सारे अपराधोंको क्षमाकर मुझे इस घोर भवसागरसे नहीं उबारेंगे ? अवश्य उबारेंगे, अन्यथा आप अपने कर्तव्यमें च्युत होंगे और आपके 'दीनबन्धु' नामपर वृद्धा लगेगा ।

उपेक्षा नो चेत् किं न हरसि भवद्वयानविमुखां
दुराशाभूयिष्ठां विधिलिपिमशक्तो यदि भवान् ।
शिरस्तद्वैधात्रं ननु खलु सुवृत्तं पशुपत !
कथं वा निर्यत्नं करनखमुखेनैव लुलितम् ॥ ३ ॥

आप मेरा शीघ्र उद्धार नहीं करते, इसमें तो यही जाहिर होता है कि आप मेरी उपेक्षा करते हैं, मेरी परियादको सुनकर आपके कानपर त्रुँ भी नहीं रेंगती; नहीं तो भला अवतक मेरी यह हाजत रहती ? यदि आप कहें कि भाई, हम क्या करें, विधाताने तुम्हारे कर्ममें यही लिखा है कि तुम हमारे ध्यानमें विमुक्त रहकर दुराशाओंमें पूर्ण जीवन व्यतीत करो, तो मैं आपमें यह पूछता हूँ कि क्या आप

विधाताके लेखको नहीं मेट सकते, उसके लिखे हुए पर कलम नहीं चला सकते ? आप तो, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हैं, ब्रह्मा-विष्णु सब कठपुतलीकी भाँति आपके इशारे-पर नाचते हैं । फिर क्या आप मेरे लिये इतना भी नहीं कर सकते ? यदि आप कहें कि ब्रह्माजीके सामने मेरी पेश नहीं आती, तो मैं आपसे पूछता हूँ; क्या आप उस दिनको भूख गये जब आपने उनका गोल-गोल पाँचवाँ मुख जो बहुत बड़-बड़कर बातें कर रहा था, बात-की-बातमें अपने नखके अग्रभागसे ही कलम कर दिया था और इसप्रकार बेचारे ब्रह्माजी, जो आपकी बराबरी करने चले थे, चतुरानन ही रह गये ? वस, यह सब बहानेबाज़ी रहने दीजिये, मैं इसप्रकार भुलावेमें नहीं आनेका । अब तो जिस तरहसे भी हो आपको मेरा उद्धार करना ही होगा । इस बार तो मैं आपमें बाजी लेकर ही मानूँगा, यों सहजहीमें नहीं छोड़नेका ।

करोमि त्वत्पूजां सपदि सुखदो मे भव विभो !
विधित्वं विष्णुत्वं दिशसि खलु तस्याः फलमिति ।

पुनश्च त्वां द्रष्टुं दिवि भुवि वहन् पक्षिमृगता-
मदृष्ट्वा तत्खेदं कथमिह सहे शङ्कर विभो ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! मैं अपनी पूजाका फल आपसे यही चाहता हूँ कि आप मुझे अपने चरणोंसे कभी अलग न करें । आपके चरणोंमें दूर रहकर मैं और तो क्या, ब्रह्मा और विष्णुका पद भी नहीं चाहता । क्योंकि ब्रह्मा और विष्णुको भी आपको ढूँढ़नेके लिये क्रमशः हंस और वराहका रूप धारण करना पड़ा; किन्तु फिर भी वे आपका पता न पा सके । वह ब्रह्मा और विष्णुका पद किस कामका जिसमें रहकर आपमें विछोह हो । बाज़ आया ऐसे बड़प्पनसे, मुझे वह नहीं चाहिये । मैं तो छोटे-से-छोटा होकर आपके चरणोंमें पड़ा रहना चाहता हूँ, कृपया मुझे वहीं स्थान दीजिये ।

करस्ये हेमाद्रौ गिरिश ! निकटस्ये धनपतौ
गृहस्ये स्वर्भूजामरसुरभिचिन्तामणिगणे ।

शिरःस्ये शीतांशौ चरणयुगलस्येऽखिलशुभे

कमर्थं दास्येऽहं भवतु भवदर्थं मम मनः ॥ ५ ॥

हे गिरिश ! स्वर्णगिरि (मुमेरु) आपके समीप ही है, करतलगत ही है । मनमें आयी कि सोना-ही-सोना ।

ऐसी दशामें आपको सोनेकी दरकार तो हो ही नहीं सकती और फिर यदि कोई सोना आपकी नजर करना ही चाहे तो बेचारा कहाँतक देगा ? जगत्भरका सोना यदि इकट्ठा कर लिया जाय तो भी वह सुमेरुगिरिके एक पासंगमें भी नहीं आ सकता । इधर देवताओंके खजानची कुवेरजी, जो साक्षात् धनपति हैं, आपके बगलमें ही—अलकापुरीमें रहते हैं, जब चाहा उनसे मँगवा लिया । जब धनपति आपके पड़ोसी हैं तब आपको धनकी भी क्या कमी रह सकती है ? कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणियोंका ढेर आपके घरमें ही मौजूद है, क्योंकि ऋद्धि-सिद्धि आपकी पुत्र-वधू हैं । वे जब चाहें एक क्षणमें दुनियाभरका सामान लाकर जुटा सकती हैं, आपके इशारेभरकी देरी है । ऐसी दशामें आपको किसी भी वस्तुका अभाव नहीं हो सकता जिसकी मैं पूर्ति कर सकूँ । चन्द्रमा जो सुधाकर (अमृतका खजाना) है सदा आपके मस्तकपर ही रहता है और आपके चरणयुगल समस्त कल्याणोंके धाम हैं । फिर ऐसी कौन-सी वस्तु हो सकती है जो मैं आपकी भेंट करूँ ? और फिर मेरे पास तो मनके सिवा और कोई वस्तु है भी नहीं । अतः आप कृपाकर इसीको स्वीकार कीजिये । मैं अपनेको इसीसे कृतार्थ समझूँगा ।

सारूप्यं तव पूजने शिव महादेवेति सङ्कीर्तने

सामीप्यं शिवभक्तिधुर्यजनतासाङ्गस्यसम्भाषणे ।

सालोक्यञ्च चराचरामकतनुध्याने भवानीपते !

सायुज्यं मम सिद्धमत्र भवति स्वामिन् ! कृतार्थोऽस्म्यहम्॥

हे भवानीपते ! हे स्वामिन् !! मुझे सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य और सायुज्य—इन चार प्रकारकी मुक्तियोंमेंसे एक भी नहीं चाहिये, क्योंकि मुझे ये चारों ही आपकी कृपासे प्राप्त हैं, जब प्रेमपूर्वक मैं आपकी षोडशोपचारसे पूजा करता हूँ, उस समय मेरी वृत्तियाँ स्वाभाविक ही तदाकार हो जाती हैं और मुझे अनायास ही सारूप्य-सुखका अनुभव होने लग जाता है । शास्त्रोंमें भी कहा है—‘देवो भूत्वा यजेद्देवम् ।’ इसी प्रकार जब मैं मस्त होकर आपका नामसङ्कीर्तन करने लगता हूँ, उस समय मुझे सहजहीमें आपके सामीप्यका सुख मिल जाता है, क्योंकि नाम भी तो आपका ही स्वरूप है । शास्त्रोंने आपमें और आपके नाममें कोई भेद नहीं माना है । भगवान् विष्णुने तो यहाँतक कह दिया—

नाहं वसामि वैकुण्ठं योगिनां हृदये न च ।

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

शिव-भक्तोंकी मण्डलीमें बैठकर आपकी चर्चा और आपका गुणानुवाद करनेमें मुझे सालोक्यमुक्तिका आनन्द मिलता है, क्योंकि उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो मैं शिवलोकमें ही बैठा हूँ । और जिस समय मैं आपके विराट् रूपका ध्यान करता हूँ उस समय मैं अपनेको आपसे अलग नहीं पाता, आपके ही शरीरमें समाया हुआ देखता हूँ । उस समय मैं साक्षात् सायुज्य-सुखका अनुभव करने लगता हूँ । इस तरह जब मैं चारों प्रकारकी मुक्तियोंका सुख एक ही शरीरसे लूट रहा हूँ तब मैं उनमेंसे किसी एक प्रकारकी मुक्तिको लेकर क्या करूँ ? तात्पर्य यह कि आपकी पूजा-अर्चा, जप-ध्यान, कीर्तन एवं गुणानुवादमें मुझे जो अलौकिक सुख मिलता है उसकी तुलना मुक्ति-सुखसे भी नहीं हो सकती, सांसारिक सुखोंकी तो बात ही क्या है ? आपके सच्चे भक्त आपकी भक्तिको छोड़कर मुक्ति भी नहीं चाहते—

‘मुक्ति निरादरि भक्ति लुभाते ।’

भक्तिकी ऐसी ही महिमा है । वस, ऐसी कृपा कीजिये कि मुझे आपकी भक्तिको छोड़कर मुक्तिका कभी ध्यान ही न हो ।

नालं वा परमोपकारकमिदं त्वेकं पशूनां पते !

पश्यन् कुक्षिगतांश्चराचरणान् बाह्यस्थितान् रक्षितुम् ।

सर्वामर्थपलायनौषधमतिज्वालाकरं भीकरं

निक्षिप्तं गरलं गले न गिलितं नोद्गीर्णमेव त्वया ॥ ६ ॥

हे पशुपते ! आपकी दयालुताका क्या कहना ! समुद्र-से निकले हुए कालकूट महाविषकी प्रलयङ्करी ज्वालाओंसे भयभीत हो देवतालोग जब आपकी शरण आये तो आप दयापरवश हो उस उग्र विषको अपनी हथेलीपर रखकर आचमन कर गये । इसप्रकार उसे आचमन तो कर गये, किन्तु उसे मुँहमें लेते ही आपको अपने उदरस्थ चराचर विश्वका ध्यान आया और आप सोचने लगे कि जिस विषकी भयङ्कर ज्वालाओंको देवतालोग भी नहीं सह सके, उसे मेरे उदरस्थ जीव कैसे सह सकेंगे ? यह ध्यान आते ही आपने उस विषको अपने गलेमें ही रोक लिया, नीचे नहीं उतरने दिया । इसप्रकार आपने उस भयङ्कर विषसे देवताओंकी ही नहीं, अपितु समस्त चराचर जगत्की रक्षा

की। धन्य है आपकी परदुःखकालरताको ! इसीसे तो आपको 'भूतभावन' कहते हैं। उम्मी स्वाभाविक दयासे प्रेरित हो आप इस विषय-विषये जर्जरित सन्तत हृदयकी भी सुध लीजिये और इसे अपने अभय चरणोंकी सुखद मुर्तीतल छायामें रखकर शाश्वत सुख एवं शान्तिका अधिकारी बनाइये।

जडता पशुता कलङ्कितता कुटिलचरत्वं च नास्ति मयि देव।
अस्ति यदि राजमौले, भवदाभरणस्य नास्मि किं पात्रम् ॥७॥

हे राजशिरोमणि ! (राजाओंके सिरमौर तथा चन्द्रशेखर— राजा=चन्द्र) मैं न तो जड़ (मूर्ख) हूँ, न पशु हूँ; न कलङ्की हूँ और न वक्रगति हूँ। इन सारे दुर्गुणोंसे मुक्त होनेपर भी आप मुझपर कृपा नहीं करते, इसमें क्या कारण है ? यदि आप कहें कि नहीं, तुम्हारे अन्दर ये सभी दुर्गुण मौजूद हैं, तो मैं कहूँगा कि तब तो मैं आपके अङ्ग-का भूषण बननेका विशेष अधिकारी हूँ, फिर आप मुझे इसप्रकार क्यों दुतकारते हैं ? आपने गङ्गाजीको सिर चढ़ा रक्खा है, क्या वे जड़ (शीतल) नहीं हैं; मृगको हाथमें ले रक्खा है, वह भी तो आखिर पशु ही है। चन्द्रमा भी तो कलङ्की है, उसे तो आपने अपने मस्तकका मुकुट बना रक्खा है और साँपको गलेका हार बना रक्खा है, वह भी तो वक्रगति है। फिर मैंने ही कौन-सा अपराध किया है जिसके कारण आप मुझे अङ्गीकार नहीं करते ? इसप्रकारकी विषमता आपको कदापि शोभा नहीं देती। अतः आपसे प्रार्थना है कि आप इस दीनको अपनाकर इसे सदाके लिये कृतार्थ कर दीजिये। इसे अपने उत्तम अङ्गोंमें नहीं, तो चरणोंमें ही लिपटाये रहिये। इसीमें यह अपना अहोभाग्य समझेगा।

अरहसि रहसि स्वतन्त्रबुद्ध्या बरिवसितुं सुलभः प्रसन्नमूर्तिः।
अगणितफलदायकः प्रभुर्मे जगदधिको हृदि राजशेखरोऽस्ति ॥

हमारे स्वामी राजशेखर (राजराजेश्वर चन्द्रमौलि) की अन्य लौकिक नरेशोंके साथ तुलना नहीं हो सकती। उनकी हम अकेले-दुकेले अथवा सब लोगोंके सामने, चाहे जहाँ, बिना किसी रुकावटके पूजा कर सकते हैं। उन्होंने अपनेको हमारे लिये सर्वदा सुलभ बना दिया है। सुबह-शाम, दिनमें, रातमें, दोपहरको, आधी रात—जब हमें फुरसत हो, तभी हम उनकी पूजा बिना किसी सङ्कोचके कर सकते हैं। उनकी पूजाके लिये हमें मौसर लेनेकी आवश्यकता नहीं होती।

उनकी पूजाके लिये देश-कालका कोई नियम नहीं है। चाहे जहाँ और चाहे जिस समय हम उनकी पूजा कर सकते हैं।

अन्य राजाओंके साथ हम इसप्रकारका व्यवहार नहीं कर सकते। उनकी सेवा-शुश्रूषा पहले तो हर एक व्यक्ति कर नहीं सकता, विशेष योग्यता एवं विशेष कुलके लोगोंको यह अवसर प्राप्त होता है। फिर उनके सेवकको उनके नियमोंमें बँधना पड़ता है और निर्दिष्ट स्थान एवं निर्दिष्ट समयमें ही निर्दिष्ट प्रणालीके अनुसार उनकी सेवा हो सकती है। निर्दिष्ट प्रणाली एवं निर्दिष्ट समयमें ज़रा भी चूक पड़नेपर उनके कुपित होनेका डर रहता है। फिर उसे उनकी अनुकूलता-प्रतिकूलता तथा उनके मिजाजका, जो समय-समयपर बदल सकता है, बड़ा ध्यान रखना पड़ता है। राजाओंकी अव्यवस्थितचित्तता तो प्रसिद्ध ही है। भगवान् शङ्करके लिये यह बात नहीं है। वे कभी प्रतिकूल तो होते ही नहीं। भक्तपर सदा अनुकूल, सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। अन्य राजाओंकी भाँति उनकी रुख देखनेकी आवश्यकता नहीं होती। वे तो उलटी हमारी रुचि रखते हैं। 'राम सदा सेवक रुचि राखी' प्रसिद्ध ही है। फिर एक बात और है। किसी राजाको प्रसन्नकर हम परिमित फल ही पा सकते हैं, क्योंकि उसके पास जो कुछ है सब परिमित ही तो है। उससे अधिक वह कहाँसे देगा ? इसके विपरीत भगवान् शङ्कर अमित फलके देनेवाले हैं। वे और तो और, भक्तको अपना स्वरूपतक दे डालते हैं। ऐसे भक्तभावन भगवान्को छोड़कर जो दूसरोंका मुँह ताकते हैं वे निश्चय ही मन्दमति हैं, अतिशय दयाके पात्र हैं। अतः सब कुछ छोड़कर आशुतोष भगवान् शङ्करकी ही शरण ग्रहण करनी चाहिये। इसीमें जीवका सब प्रकारसे मङ्गल है।

निरयं योगिमनःसरोजदलसञ्चारक्षमस्वत्क्रमः

शम्भो तेन कथं कठोरयमराड्वक्षःकवाटक्षतिः।

अत्यन्तं मृदुलं त्वदङ्घ्रियुगलं हा ! मे मनश्चिन्तय-

त्येतल्लोचनगोचरं कुरु विभो ! हस्तेन संवाहये ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! कहाँ तो आपके सुकोमल चरणयुगल, जो सदा योगियोंके हृत्पङ्कजोंमें रमण करते रहते हैं और कहाँ यमराजका कठोर वज्रोपम वक्षःस्थल, जिसे आपने अपने उन चरणोंके प्रहारसे भेदन किया। उस कर्कश आघातसे आपके चरणोंको जरूर गहरी चोट आयी होगी। लाइये,

उन्हें मुझे सौंपिये । मैं उन्हें सुह्लाकर ठीक कर दूँ ।
(इसी वहाने आपके पैर पछोटनेको तो मिलें ।)

एष्यस्येष जनिं मनोऽस्य कठिनं तस्मिन्नटानीति मद-
रक्षायै गिरिसीमि कोमलपदन्यासः पुराऽभ्यासितः ।
नो चेद्विष्यगृहान्तरेषु सुमनस्तल्पेषु वेद्यादिषु
प्रायः सस्सु शिलातलेषु नटनं शम्भो ! किमर्थं तव ॥१०॥

नहीं-नहीं, मैं भूलता हूँ । माझूम होता है, आपको कठोर भूमिपर पाद-प्रहार करनेका अभ्यास-सा हो गया है । यमराजके वधःस्थलको विदीर्ण करके ही आपने सन्तोष कर लिया हो, सो बात नहीं है । आपने तो जान-बूझकर कैलास-शृङ्गकी कर्कश भूमिपर कोमल पदन्यासका अभ्यास किया है । वह इसलिये कि आपने अपनी सर्वज्ञता-के बलसे इस बातका पता लगा लिया था कि आपका एक भक्त अमुक समयमें जन्म लेगा और उसकी वज्रतुल्य कठोर हृदय-भूमिमें आपको विहार एवं पदसञ्चार करना होगा । कहीं उसके कठोर हृदयसे आपके कोमल चरणोंको चोट न पहुँचे, इस भयसे आपने पथरीली भूमिपर हल्के-हल्के कदम रखकर नृत्य करनेका युगों पहले अभ्यास कर लिया था । नहीं तो भला, दिव्य-मणि-भवनके सुकोमल फर्श, मखमली गद्दों तथा फूँटोंकी सेजको छोड़कर पथरीली जमीनपर घूमनेका किसको शौक होगा ? धन्य है आपकी भक्त-वत्सलता एवं दूरदर्शिता ! ऐसे दयालु स्वामीको छोड़कर हे पापी मन ! तू कहाँ भटकता फिरता है ?

अशनं गरलं फणी कलापो

वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः ।

मम दास्यसि किं किमस्ति शम्भो !

तव पादाम्बुजभक्तिमेव देहि ॥११॥

(परन्तु) हे शम्भो ! मैं आपसे क्या माँगूँ ? आपके पास देनेलायक है ही क्या, जिसे आप मुझे देंगे ? खाते तो हैं आप ज़हर, अधिक हुआ तो सुटीभर भौंग भकोस ली अथवा आक-धतूरा चबा लिया, जिसके खानेसे मनुष्य अव्वल तो वचे ही नहीं और यदि किसी तरह वच जाय तो

पागल हुए बिना कदापि न रहे । फिर भला आपसे कोई खानेकी चीज तो क्या माँगें ? मनुष्यको ही क्या, प्रत्येक प्राणीको प्रथम आवश्यकता होती है भोजनकी, पेट भर जानेपर और बातोंकी सूझती है । सो वह आवश्यकता तो आपसे किसीकी पूरी होनेकी नहीं ।

भोजनके बाद दूसरा नम्बर आता है वस्त्रका । उसके लिये तो आप दिगम्बर प्रसिद्ध ही हैं, कुछ कहने-सुननेकी आवश्यकता ही नहीं है । कभी कोई भूला-भटका, आफत-का मार्ग आपसे मिलन आ गया तो भले ही शर्मके मारे चमड़ेका टुकड़ा लँगोटीकी जगह लपेट लिया, नहीं तो वही नंग-धड़ंग घूमते रहते हैं । इस तरह कपड़ेकी सुराद पूरी हुई ।

वदन ढँका हुआ होनेपर गहने आदिसे उसे सजानेकी फिक्र होती है । सो गहने आपने सौँपोंके धारण कर रखे हैं, जिन्हें धारण करनेकी तो बात ही कौन कहे, दर्शन होते ही होश-हवास कूच कर जाते हैं और किसी तरह उनसे प्राण वचानेकी चिन्ता होती है । ऐसी दशामें कोई अभागा ही होगा जो आपसे गहनोंका सवाल करेगा । घरमें खाने-पहननेको भरपूर होता है और पासमें दो पैसेकी इज्जत हो जाती है तब मनुष्यको पाँव-पियादे चल्नेमें शर्म आने लगती है और वह ग्वयाल होने लगता है कि चार आदमी हमें पैदल चरते देखकर क्या कहेंगे । उस समय मनुष्यको सवारीकी जरूरत होती है । सो सवारी आपकी साँड़ है, जिसके पास जानेमें ही भय माझूम होता है कि कहीं वह साँग न भौंक दे । सागंश यह कि आपके पास सांसारिक वस्तु कोई भी ऐसी नहीं है जो आप किसीको दे सकें । इसलिये आपमें मैं केवल एक वस्तु माँगता हूँ, जिसे देनेमें आपको कभी आनाकानी हो ही नहीं सकती और जिसका आपके पास अटूट भण्डार है । वह है आपके चरणारविन्दकी अनन्य एवं अनपायिनी भक्ति । आशा है, मेरे इस छोटे-से सवालको आप अवश्य पूरा करेंगे और अपनी दैनसे मुझे वञ्चित नहीं रखेंगे ।



शिव-शरणागति

(प्रसिद्ध शिवभक्त श्रीअप्पय्य दीक्षितकृत)

त्वं वेदान्तैर्विविधमहिमा गीयसे विश्वनेत-
स्त्वं विप्राद्यैर्वरदनिखिलैरिज्यसे कर्मभिः स्वैः ।
त्वं दृष्टानुश्रविकविषयानन्दमात्रावितृष्णै-
रन्तर्ग्रन्थिप्रविलयकृते चिन्त्यसे योगिष्टुदैः ॥

हे विश्वनायक ! उपनिषदोंमें आपकी ही अनन्त महिमाका ब्रह्मान है; हे वरदायक ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने वर्णानुकूल आचरण-के द्वारा आपका ही पूजन करते हैं; इहलौकिक एवं पारलौकिक—दोनों प्रकारके सुखोंसे जिन्हें वैराग्य हो गया है, ऐसे योगिजन भी अविश्वरूपी हृदयग्रन्थिके भेदनके लिये सदा आपका ही चिन्तन करते हैं ।

ध्यायन्तस्त्वां कतिचन भवं दुस्तरं निस्तरन्ति
त्वत्पादाब्जं विज्जिघदितरे नित्यसाराध्यन्तः ।
अन्ये वर्णाश्रमविधिरताः पालयन्तस्त्वदाज्ञां
सर्वं हित्वा भवजलनिधावेष मज्जामि घोरे ॥

कुछ लोग आपके विज्ञानानन्दधन परब्रह्मस्वरूपका ध्यान करके इस दुस्तर भवार्णवको पार करते हैं, कुछ लोग आपके सुरदुर्लभ चरणारविन्दका पूजन कर अपने मनोरथको सिद्ध करते हैं और कुछ लोग वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार आचरण करते हुए शान्तरूप आपकी आज्ञाका पालन करते हैं; किन्तु मैं सब कुछ छोड़कर इस घोर संसारसागरमें गोते खा रहा हूँ—मुझसे न तो आपका ध्यान होता है, न आपका पूजन बन पड़ता है और न शान्त्र-मर्यादानुकूल आचरण ही करते बनता है । मुझसे अधिक अभागा एवं हरामी संसारमें कौन होगा ?

उत्पद्यापि स्मरहर महत्युत्तमानां कुलेऽस्मि-
न्नास्वाद्य त्वन्महिमजलधेरप्यर्धं शीकराणून् ।
त्वत्पादार्चाविमुखहृदयश्चापलादिन्द्रियाणां
व्यग्रस्तुच्छेष्वहह जननं व्यर्थयाम्येष पापः ॥

हे स्मररिपो ! मैंने उत्तम ब्राह्मण-कुलमें जन्म लिया और आपकी महिमारूपी अपार सागरके कतिपय विन्दुओंका आस्वादन भी किया; किन्तु फिर भी मैं पापात्मा आपकी पादसेवासे मुँह मोड़कर इन्द्रियोंकी चपलताके कारण क्षुद्र सांसारिक विषयोंके पीछे पागल हुआ धूमता हूँ

और इस दुर्लभ मनुष्य-जन्मको व्यर्थ गवाँ रहा हूँ, हीरेको काचके मोल बेच रहा हूँ । मुझसे अधिक अज्ञानी और कौन होगा ?

अर्कद्रोणप्रभृतिकुसुमैरर्चनं ते विधेयं
प्राप्यं तेन स्मरहर ! फलं मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ।
एतज्जानन्नपि शिव ! शिव !! व्यर्थयन् कालमात्म-
जात्मद्रोही करणविधिशो भूयसाधः पतामि ॥

हे स्मरारे ! आपके पूजनके लिये न तो पैसा चाहिये और न विशेष सामग्रीकी ही अपेक्षा है । आककी डोंड़ियों और धनूरेके पुष्पोंसे ही आप प्रसन्न हो जाते हैं, कौड़ियोंमें काम होता है; किन्तु आपका पूजन इतना सस्ता होनेपर भी आप उसके बदलेमें क्या देते हैं ? आक और धनूरेके एवजमें आप देते हैं मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मी, जो देवताओंको भी दुर्लभ है । कितना सस्ता सौदा है ? इसीलिये तो आप 'आशुतोष' एवं 'औदरदानी' की उपाधिते विभूषित हैं । किन्तु शिव ! शिव ! मैं ऐसा आत्मद्रोही हूँ कि यह सब कुछ जानता हुआ भी अपना जीवन व्यर्थ ही नहीं खो रहा हूँ, अपितु इन्द्रियोंके बशीभूत होकर बार-बार पापोंके गड्ढेमें गिरता हूँ ।

नाहं रोद्धुं करणनिचयं दुर्नयं पारयामि
स्मरं स्मरं जनिपथरुजं नाथ ! सीदामि भीत्या ।
किं वा कुर्वे किमुचितमिह काय गच्छामि हन्त !
त्वत्पादाब्जप्रपतनमृते नैव पश्याम्युपायम् ॥

हे नाथ ! मेरी इन्द्रियाँ बड़ी दुर्दमनीय हो गयी हैं, ये मेरे काबूसे बाहर हो चली हैं । इन्हें नियन्त्रणमें रखना मेरे बसका नहीं है । इधर इनको स्वतन्त्र छोड़ देनेसे मेरी जो दुर्दशा होगी उसे सोचकर एकवारगी रूह काँप उठती है । क्योंकि इनकी लगाम ढोली कर देनेसे संसारमें बार-बार जन्म लेना तो निश्चित ही है और गर्भवासमें जो नरक-यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं, उनका ध्यान आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं । ऐसी दशामें मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कुछ समझमें नहीं आता । इस दुविधामें पड़कर मैं किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया हूँ । अब तो आपके भक्त-भय-हारी चरणारविन्दोंका आश्रय लेनेके अतिरिक्त कोई

दूसरा मार्ग नहीं सूझता। अतः कृपया आप मुझे उन्हीं चरणोंकी शरणमें ले लीजिये।

उलङ्घ्याज्ञामुदुपतिकलाचूड ! ते विश्ववन्द्य !
त्यक्ताचारः पशुवदधुना त्यक्तलज्जश्वरामि ।
एवं नानाविधभवततिप्रासदीर्घापराधः
क्लेशाभ्योधि कथमहमृते त्वत्प्रसादात्तरेयम् ॥

हे शशिशेखर ! हे जगद्वन्द्य प्रभो ! मैं आपकी आज्ञाकी अवहेलना करता हुआ सदाचारके मार्गका परित्याग कर पशुकी भाँति निर्लज्ज हुआ घूमता हूँ। जन्मजन्मान्तरोंमें मैंने इतने बड़े पाप किये हैं कि करोड़ जन्मोंमें भी उनसे छुटकारा सम्भव नहीं है। अब तो इस दुःखार्णवके पार जानेका यदि कोई उपाय है तो आपकी कृपाका अवलम्बन ही है। अतः इस दीनकी ओर भी तनिक कृपाकी कोर हो जाय।

क्षाम्यस्येव त्वमिह करुणासागरः कृत्स्नमागः
संसारोत्थं गिरिश ! सभयप्रार्थनादैर्न्यमात्रात् ।
यद्यप्येवं प्रतिकलमहं व्यक्तमागः सहस्रं
कुर्वन्मूकः कथमिव तथा निरूपः प्रार्थयेयम् ॥

हे गिरिश ! आप ऐसे दयासागर हैं कि जो मनुष्य संसाररूपी घोर दावानलसे भयभीत होकर दीनतापूर्वक आपसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगता है उसके जन्मजन्मान्तरके पापोंको आप अपनी कृपासे नष्ट कर देते हैं और उसको कल्मषहीन एवं मोक्षपदका अधिकारी बना देते हैं; किन्तु मैं तो ऐसा निर्लज्ज हूँ कि अपने पूर्वकृत अपराधोंके लिये क्षमा माँगना तो दूर रहा, उल्टा प्रतिफल नये-नये पाप बटोर रहा हूँ और इसप्रकार मेरे पापोंका बोझ क्रमशः वृद्धिगत हो रहा है, उसका ध्य होनेकी तो बात ही क्या है ! ऐसी हालतमें मैं अपने पापोंके लिये आपसे क्षमा भी किस मुँहसे माँगूँ ? अब तो आप स्वयं ही अपनी स्वाभाविक दयालुतासे मेरे पापोंको क्षमा कर दें तभी निस्तार हो सकता है, अन्यथा नहीं।

ध्यातो यत्नाद्विजितकरणैर्योगिभिर्भ्यो विमृग्य-
स्तेभ्यः प्राणोत्क्रमणसमये संनिधायात्मनैव ।
तद्दृष्ट्याचष्टे भवभयहरं तारकं ब्रह्म देव-
स्तं सेवेऽहं गिरिश ! सततं ब्रह्मविद्यागुरुं त्वाम् ॥

जितेन्द्रिय योगीगण ध्यानमार्गसे आपको प्राप्त करनेका यत्न करते हैं; किन्तु फिर भी वे आपको नहीं देख पाते।

अन्त समयमें जब उनके प्राणपत्येक उड़नेको होते हैं, तब आप बिना बुलाये अपने आप ही उनके निकट उपस्थित हो जाते हैं और उनके कानमें मोक्षदायक तारक-मन्त्र फूँककर उन्हें भवबन्धनसे सदाके लिये मुक्त कर देते हैं। ऐसे ब्रह्मविद्याके उपदेशक आपकी मैं शरण लेता हूँ।

भक्ताऽयाणां कथमपि परैर्योऽचिकित्स्याममर्थैः
संसाराल्यां शमयति रुजं स्वात्मबोधीपधेन ।
तं सर्वाधीश्वर ! भवमहादीर्घतीव्रामयेन
क्लिष्टोऽहं त्वां वरद ! शरणं यामि संसारवैद्यम् ॥

हे सर्वेश्वर वरदायक शम्भो ! आप आत्मबोधरूपी औषधके द्वारा अपने भक्तवरोंके भवरोगको हर लेते हैं। अन्य देवताओंकी सामर्थ्य नहीं कि वे इस दुःसाध्य रोगकी चिकित्सा कर सकें। इस भवरूपी महाभयङ्कर एवं जन्म-जन्मान्तरसे पीछे लगे हुए रोगसे पीड़ित होकर मैं आप संसार-वैद्यकी शरण आया हूँ। कृपया ऐसा कीजिये कि जिससे फिर इस संसार-रोगका मुँह न देखना पड़े।

दासोऽस्मीति त्वयि शिव ! मया नित्यसिद्धं निवेद्यं
जानास्येतत् त्वमपि यदहं निर्गतिः सम्भ्रमामि ।
नास्त्येवान्यन्मम किमपि ते नाथ ! विज्ञापनीयं
कारुण्यान्मे शरणवरणं दीनवृत्तेर्गृहाण ॥

हे शिव ! मैं आपका दास हूँ, यही मुझे आपके चरणोंमें नित्य निवेदन करना है। आप भी इस बातको जानते ही हैं कि मैं असहाय होकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। बस, आपसे और कुछ नहीं माँगता, केवल इतनी ही प्रार्थना है कि आप मुझ दीनको अपनी अकारण करुणाका कणमात्र प्रदानकर सदाके लिये अपनी शरणमें ले लें।

ब्रह्मोपेन्द्रप्रभृतिरपि चेत् स्वेष्टितप्रार्थनाय
स्वामिन्नग्रे चिरमवसरस्तोपयद्भिः प्रतीक्ष्यः ।
द्रागेव त्वां यदिह शरणं प्रार्थये कीटकल्प-
स्तद्विश्वाधीश्वर ! तव कृपामेव विश्वस्य दीने ॥

हे स्वामिन् ! हे विश्वेश्वर ! ब्रह्मा और विष्णु-प्रभृति देवतातक जब अपनी किसी प्रार्थनाको लेकर आपके समीप उपस्थित होते हैं तब उन्हें चिरकालतक आपके दर्शनके लिये अवसर ढूँढ़ना पड़ता है। किन्तु मैं एक अधम कीड़ेके समान होते हुए भी आपसे अपनी शरणमें ले लेनेके लिये इस तरह तकाजा कर रहा हूँ जैसे कोई ऋणदाता अपने ऋणीसे कर्ज दिया हुआ रुपया लौटानेका तकाजा करता

हो। आपकी मुझे-जैसे असहाय दीनोंपर अहेतुकी कृपाको देखकर ही मुझे ऐसी अनुचित धृष्टता हो रही है। आशा है, आप मेरी दीन अवस्थाको ध्यानमें रखते हुए मेरे इस अपराधको अवश्य क्षमा करेंगे और मुझे अविलम्ब अपनी शरणमें ले लेंगे ताकि मुझे आपको बारम्बार तंग न करना पड़े। जबतक आप मुझे अपना न लेंगे, तबतक मैं आपको हैरान करता ही रहूँगा। आप कहाँतक मौन साधन किये बैठे रहेंगे? एक-न-एक दिन मेरी बाँह अवश्य पकड़नी होगी। इसलिये अच्छा है कि तुरंत ही यह काम कर डालें, जिससे दोनोंको ही तंग न होना पड़े।

क्षान्तव्यं वा निखिलमपि मे भूतभ्राविष्यलीकं
दुर्व्यापारप्रवणमथवा शिक्षणीयं मनो मे।
न त्वेवार्था निरतिशयया त्वत्पदाब्जं प्रपन्नं
त्वद्विन्यस्ताखिलभरममुं युक्तमीश ! प्रहातुम् ॥

हे स्वामिन् ! या तो आप मेरे भूत एवं भविष्यके सभी अपराधोंको क्षमा कर दीजिये या इस कुमार्गगामी दुष्ट मनको ठीक रास्तेपर लाइये। दोनोंमेंसे एक काम तो करना ही होगा, नहीं तो काम कैसे चलेगा? यह तो हो नहीं सकता कि आप इस घोर दुःखमें मेरा हाथ छोड़ दें, क्योंकि यह कार्य आप-जैसे दयालु स्वामीके लिये उचित नहीं होगा। जिसे आपके चरणोंका ही एकमात्र अवलम्ब है और जिसने अपना सारा भार आपके ऊपर डाल दिया है उसे आप कभी धोखा नहीं देंगे, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।

सर्वज्ञस्त्वं निरवधिकृपासागरः पूर्णशक्तिः
कसादेनं न गणयसि मामापदब्धौ निमग्नम्।
एकं पापात्मकमपि रुजा सर्वतोऽत्यन्तदीनं
जन्तुं यद्युद्धरसि शिव ! कस्तावतातिप्रसङ्गः ॥

हे शङ्कर ! आप सर्वज्ञ हैं, दयाके अपार समुद्र हैं तथा पूर्ण सामर्थ्यवान् हैं; फिर भी न जाने क्यों मुझे आप इस दुःखसागरसे नहीं उबारते? माना कि मैं पापात्मा हूँ, किन्तु साथ ही दुःखसे अत्यन्त कातर भी हूँ। ऐसी दशामें यदि आप मुझे उबार लें तो इससे आपकी न्यायपरायणतामें कौन-सी बाधा आती है? सभी नियमोंमें अपवाद भी होते हैं। इसलिये यदि मुझे आप अपवादरूप मानकर भी अपनी दयाकी भिक्षा दे दें तो इसमें क्या आपत्ति है? जैसे भी हो, इस बार तो दया करनी ही होगी।

कीटा नागास्तरव इति वा किं न सन्ति स्थलेषु
त्वत्पादाग्नोरुहपरिमलोद्वाहिमन्दानिलेषु ।
तेष्वेकं वा सृज पुनरिमं नाथ ! दीनार्तिहारि-
घातोषं ते मृद ! भवमहाङ्गारनद्यां लुठन्तम् ॥

हे नाथ ! जिन-जिन स्थलोंमें आपके चरण-कमल जाते हैं, उन-उन स्थलोंमें कीड़े-मकोड़े, साँप-बिच्छू अथवा झाड़-झंखाड़ भी तो अवश्य होंगे। यदि और कुछ नहीं, तो उन्हींमेंसे कोई शरीर मुझे दे दें, जिससे उन चरण-कमलोंके सुमधुर गन्धसे सम्पृक्त सुशीतल वायुका सुखकर स्पर्श पाकर मैं अपने शरीर और आत्मा—दोनोंकी तपनको बुझा सकूँ और इस सुतप्त अङ्गारोंसे पूर्ण भवनदीसे छुटकारा पाऊँ। उस योनिमें मुझे आप, जबतक आपकी तबीयत चाहे, रख सकते हैं। उसमें मुझे कोई आपत्ति न होगी, बल्कि जितने अधिक समयतक आप मुझे उस शरीरमें रखेंगे, उतना ही अधिक आनन्द मुझे होगा और मैं अपना अहो-भाग्य समझूँगा। क्या मेरी इस प्रार्थनाको भी आप स्वीकार नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे।

अन्तर्बाष्पाकुलितनयनानन्तरङ्गानपश्य-
न्ममे घोषं रुदितबहुलं कातराणामशृण्वन् ।
अप्युत्क्रान्तिश्रममगणयन्नन्तकाले कपर्दि-
नश्चन्द्रिद्वन्द्वे तव निविशतामन्तरात्मन्ममात्मा ॥

हे कपर्दिन् ! हे मेरे अन्तरात्मा ! अपने अन्तर्कालका चित्र इस समय मेरी इन आँखोंके सामने आ रहा है। मैं देख रहा हूँ कि मेरे आत्मीय जन डबडबाये हुए कातर नेत्रोंसे मानो मेरी ओर निहार रहे हैं, चारों ओर स्त्रियों और बच्चे बिलला रहे हैं और कोई-कोई उनमेंसे डाढ़ मारकर रो रहे हैं। उस हृदयविदारक दृश्यकी कल्पना करनेपर शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सोचता हूँ, उस समय मेरी खुदकी क्या दशा होगी। वस, उस समय तो ऐसी कृपा हो कि कुटुम्बियोंके वाष्पाकुलित नेत्र तो दिखायी न पड़ें, स्त्रियों और बच्चोंकी क्रन्दन-ध्वनि सुनायी न दे, प्राणोत्सर्गकी व्यथासे विचलित न होऊँ और चित्त आपके चरणयुगलके चिन्तनमें लीन हो जाय। आप यदि चाहें तो ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं, आपके लिये कुछ भी दुःसाध्य नहीं है।

स्वमे वापि स्वरसचिकसद्विषयपङ्केरुहाभं
पश्येयं तत्तव पशुपते ! पादयुग्मं कदाचिद् ।

झाहं पापः क्व तव चरणालोकभाग्यं तथापि
पश्याशां मे घटयति पुनर्विश्रुता तेऽनुकम्पा ॥

हे पशुपते ! क्या आपके खिले हुए पङ्कजके समान
चरणयुगलको स्वप्नमें भी देखनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा ?
जब अपने आचरणोंकी ओर देखता हूँ तब तो मैं निराशासे
घिर जाता हूँ, किन्तु आपकी अपार दयाका स्मरण कर मनमें
फिरसे आशाका सञ्चार होने लगता है। उस समय मैं अपने
मनको आश्वासन देता हूँ और कहता हूँ, तू नीच है तो
क्या हुआ ! तेरा स्वामी तो परमकृपालु है। वह तुझपर
अवश्य कृपा करेगा, निश्चिन्त रह।

भिक्षावृत्तिं चर पितृवने भूतसहस्रभेदं
विज्ञातं ते चरितमखिलं विप्रलिप्सोः कपालिन् ।

भावैकुण्ठदुहिणमखिलप्राणिनामीश्वरस्त्वं
नाथ ! स्वमेऽप्यहमिह न ते पादपद्मं त्यजामि ॥

हे कपालिन् ! हे नाथ ! आप चाहे भीख माँगनेका
नाट्य करें अथवा भूतोंके दलके साथ श्मशानोंमें गश्त
लगावें; कुछ भी करें, आपका ऐश्वर्य मुझसे छिपा नहीं रह
सकता। मैं जान गया हूँ कि आप ब्रह्मा, विष्णुपर्यन्त समस्त
चराचर जगत्के स्वामी हैं; इसलिये आप मेरी कितनी ही
प्रवञ्चना करें, मैं स्वप्नमें भी आपके सुरमुनिदुर्लभ चरण-
कमलका परित्याग नहीं कर सकता, अब तो आपका ही
होकर रहूँगा।

न किञ्चिन्मे नेतः ! समभिलषणीयं त्रिभुवने
सुखं वा दुःखं वा मम भवतु यद्वापि भगवन् ।

समुन्मीलितपाथोरुहकुहरसौभाग्यमुषि ते
पदद्वन्द्वे चेतः परिचयमुपेयान्मम सदा ॥

हे नाथ ! हे भगवन् ! मुझे त्रिभुवनकी किसी भी
वस्तुकी अभिलाषा नहीं है और न मुझे सुख-दुःखकी ही
परवा है, जो कुछ प्रारब्धमें बदा है सो होता रहेगा। बस,
मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि आपके खिले हुए पङ्कजके
समान चरणयुगलमें मेरा चित्तरूपी चञ्चरीक सदा चिहूँटा
रहे, कभी उससे पृथक् न हो।

कर्मज्ञानप्रचयमखिलं दुष्करं नाथ पश्यन्
पापासक्तं हृदयमपि चापारयन् सञ्चिरोदुम् ।
संसारालये पुरहर ! महत्यन्धकूपे विषीदन्
हस्तालम्बप्रपतनमिदं प्राप्य ते निर्भयोऽस्मि ॥

धन्य प्रभो ! धन्य भक्तवत्सल ! आखिर आपने मेरी
प्रार्थना स्वीकार कर ही ली और मुझे अपने वरद हस्तका
अवलम्ब दे ही दिया। अब क्या है ? अब तो बाजी मार
ली। अब मुझे किस बातका डर है ? अबतक मुझे यह डर
था कि न तो मैं ज्ञानमार्गका ही अधिकारी हूँ और न
कर्ममार्गका ही अनुसरण कर सकता हूँ, मुझे दोनों ही पहाड़-से
माझूम होते हैं। इधर मेरा मन पापोंमें गर्क हो रहा है,
उसे पापकी ओर जानेसे मैं किसी प्रकार रोक ही नहीं
सकता। वह इतना बेकाबू हो गया है। ऐसी दशामें इस
संसाररूपी अन्धकूपसे मेरा निस्तार कैसे होगा, यही चिन्ता
मुझे बारंबार सताती थी। किन्तु अब आपका सहारा पाकर
मैं निश्चिन्त हो गया हूँ। अब मेरा कोई कुछ भी नहीं कर
सकता।

कुछ भी स्थिर नहीं है

मोह छाँड मन-मोत ! प्रीतियों चन्द्रचूड भज ।
सुरसरिताके तीर धीर धर दृढ़ आसन सज ॥
शम, दम, भोग-विराग त्याग, तपको तू अनुसरि ।
वृथा विषय-बकवाद स्वाद सब ही तू परिहरि ॥
थिर नहि तरंग बुदबुद तडित अगिनशिखा पन्नग सरित ।
त्यों ही तन जोवन धन अथिर, चल दलदल-केसे चरित ? ॥

शिवाष्टकम्

(लेखक—आचार्य पं० श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदी)

शीतांशुशुभ्रकलया कलितोत्तमाङ्गं

ध्यानस्थितं धरणिभृत्तनयाचितं तम् ।

कालानलोपमहलाहलकृष्णकण्ठं

श्रीशङ्करं कलिमलापहरं नमामि ॥

चारु चन्द्रमाकी शुभ्रकलासे आपका शिरोभाग शोभित है। पर्वतराज हिमालयकी कन्या पार्वतीजी स्वयं ही आपकी पूजा-अर्चा करती हैं। संसारको दग्ध हो जानेसे बचानेके लिये, कालानलके समान महा भीषण हलाहल पी जानेसे आपका कण्ठ काला हो गया है। इस कलिकालका मल अपहरण करनेमें आप अपना सानी नहीं रखते। ऐसे ध्यानावस्थित आप शङ्करको मेरा प्रणाम।

गायन्ति यस्य चरितानि महाद्भुतानि

पद्मोद्भवोद्भवमुखाः सततं मुनीन्द्राः ।

ध्यायन्ति यं यमिनमिन्दुकलावतंसं

सन्तः समाधिनिरतास्तमहं नमामि ॥

आपके अत्यन्त अद्भुत चरितोंका गान कोई ऐसे-वैसे नहीं, नारदादि बड़े-बड़े महामुनितक किया करते हैं। साधु-शिरोमणि योगीश्वर भी, समाधि लगाकर आपहीका ध्यान करते रहते हैं। ऐसे आप चन्द्रशेखरको मेरा पुनरपि प्रणाम।

त्रैलोक्यमेतदखिलं ससुरासुरञ्च

भस्मीभवेद्यदि न यो दययाद्रदेहः ।

प्रीत्वाऽहरतूरलमाशु भयं तदुत्थं

विश्वावनैकनिरताय नमोऽस्तु तस्मै ॥

आप बड़े ही दयालु हैं। आपकी दया सीमारहित है। उसका प्रमाण लीजिये। समुद्र-मन्थनसे हलाहल निकलनेपर उसकी आग असह्य हो गयी। उस समय और किसीसे कुछ भी करते-धरते न बना। जब आपने देखा कि सुरासुरोंसे पूर्ण त्रैलोक्यका नाश होना ही चाहता है तब उस कालकूटका पान स्वयं ही करके तीनों लोकोंको जल जानेसे बचा लिया। संसारकी रक्षाका इतना ख्याल रखनेवाले आपके पादपद्मों-पर मैं अपना सिर रखता हूँ।

पापप्रसाधनरता दितिजा अपीन्द्रं

सद्यो विजित्य सुरधामधराधिपस्यम् ।

यस्य

प्रसादलवलेशवशाद्वासा-

स्तस्मै ममास्तु विनतिः परमेश्वराय ॥

लङ्केश्वरादि राक्षस पुण्यात्मा तो थे नहीं। वे तो महा उत्पातकारी और पापिष्ठ थे। परन्तु आपकी सेवा-शुश्रूषाकी बदौलत वही महेन्द्रतकको जीतकर, देवलोकके अधीश्वर बन बैठे। अतएव आपसे बढ़कर परमैश्वर्यशाली मुझे तो और कोई देवता नहीं दीख पड़ता, मेरी विनीत प्रणति स्वीकार कीजिये।

नो शक्यमुग्रतपसापि युगान्तरेण

प्राप्तुं यदन्यसुरपुङ्गवतस्तदेव ।

भक्त्या सकृत्प्रणमनेन सदा ददाति

यो नौमि नम्रशिरसा च तमाशुतोषम् ॥

युग-युगान्त-पर्यन्त तपस्या करनेपर भी जो फलप्राप्ति भक्तोंको अन्य सुरपुङ्गवोंसे भी नहीं हो सकती, वही आपको भक्तिभावपूर्वक प्रणाममात्र करनेसे आपके सच्चे भक्तोंको सुलभ हो जाती है। बात यह कि आप आशुतोष हैं—थोड़ी ही सेवासे प्रसन्न हो जाते हैं। मैं आपके सामने अपना सिर झुकाता हूँ।

भूतिप्रियोऽपि वितरस्थनिशं विभूर्ति

भक्ताय यः फणिगणानपि धारयन् सन् ।

हन्ति प्रखण्डभवभीमभुजङ्गभीतिं

तस्मै नमोऽस्तु सततं मम शङ्कराय ॥

आपकी महिमा अपरंपार है। वह साधारणजनोंकी समझमें आ ही नहीं सकती। देखिये न, इधर तो आप स्वयं ही विभूति-प्रिय (विभूति=भस्म) हैं, उधर वही अपनी प्यारी वस्तु विभूति अपने भक्तोंको रोज ही लुटाया करते हैं। और देखिये, स्वयं तो आप महाभयङ्कर नागोंके कण्ठे और मालाएँ आदि धारण करते हैं; उधर आप ही जन्म-मरणरूपी भीम भुजङ्गके भयसे अपने सेवकोंकी रक्षा करते हैं। परम कारुणिक और कल्याणकर्ता आपको मेरा नमस्कार।

येषां भयेन विबुधा रजनीचराणां

नो तस्यजुर्हिममर्हाभ्रगुहागृहाणि ।

हृत्वा ददौ गिरिश तानपि शैवधाम

स्वस्तः परोऽस्ति परमेश्वर को दयालुः ॥

हे गिरिश ! जरा उन रजनीचरोंका तो स्मरण कीजिये । वे लोग इतने प्रबल पराक्रमी हो गये थे कि अपने विपक्षी देवोंका तरह-तरहसे उत्पीडन करने लगे थे—यहाँतक कि उनके भयसे देवगण हिमालयकी कन्दराओंमें छिपे पड़े रहते थे। ऐसे अत्याचारी और पापी राक्षसोंको भी मारकर आपने पुण्यलोकको भेज दिया । बताइये, क्या कोई आपसे भी अधिक दयालु देवता कहीं है ? आप यथार्थ ही परमेश्वर हैं ।

अर्चा कृता न तव नाम हर स्मृतम्

नो भक्तवत्सल कृतं तव किञ्चिदन्यत् ।

महेश

(श्री 'आर्जव'*)

स्वयं निर्विकार रहकर इस विकारमय जगत्की व्यवस्था करनेवाले उस गगनभेदी पर्वतमालाके उत्तुङ्ग शृङ्गों पर क्षण-क्षणमें रूप बदलनेवाली आलोक-रश्मियाँ विचित्र वर्णविभ्रमको वक्षःस्थलमें वहन करती हुई दिशा-विदिशाओंमें विकीर्ण हो रही हैं । तुम्हारे उस निर्मल ज्योतिःस्वरूप धामके अनन्त विस्तारमें चिन्ता और शोकके पद-चिह्न कहीं दृष्टि-गोचर नहीं होते ।

स्वयं अरूप होते हुए भी जगत्के विविध रूपोंको नया रूप देनेवाले ! तुम समस्त बन्धनोंसे निर्मुक्त होनेपर भी नाम-रूपात्मक भवबन्धनको तोड़नेवाले हो । तुम जीवोंके अन्तःकरणको कलुषित करनेवाले वासनारूपी मलोंको धोनेवाले हो और काम-क्रोधादि उद्दाम विकारोंके प्रचण्ड झञ्झावातसे उनके हृदयरूप नौकाकी सतत रक्षा करते हो । सारे पार्थिव सुख तुम्हारे चरणोंपर न्यौछावर हैं । तुम्हारे अभयङ्कर चरणोंकी मुक्त पुरुष भी शरण लेते हैं ।

तुम सङ्कल्परहित होते हुए भी प्रत्येक सङ्कल्पको जानते हो । तुम अनन्त आकाशकी भाँति अविचल एवं स्थिर हो, निरीह एवं निश्चेष्ट होते हुए भी कण-कणमें व्याप्त हो । तुम्हारे चरणोंपर तुम्हारे भक्तजन प्रेमाश्रुओंसे प्रक्षालित विल्वपत्रोंको चढ़ाते हैं, उस समय तुम्हारे वदनारविन्दपर करुणाकी आभा झलकने लगती है । †

* आप एक अंगरेज साधक हैं । † अंगरेजी कविताका अनुवाद ।

वीक्ष्य स्वपादकमलोपनतं तथापि

मां पाहि कारुणिकमौलिमणे महेश ॥

मैं पापी आपसे किस मुँहसे कुछ याचना करूँ । मैंने कभी भूलकर भी आपका अर्चन—शिवार्चन नहीं किया; कभी भूलसे भी आपका नाम नहीं लिया; कभी भूलकर भी आपकी और कोई सेवा नहीं की । फिर भी सिर्फ यह देखकर कि यह अधम आपके चरणोंपर पड़ा हुआ नाक रगड़ रहा है, आप, आशा है, मुझपर भी कृपा करके मेरा उद्धार करेंगे । भरोसा तो मुझे आपसे ऐसा ही है; क्योंकि आप आशुतोष होकर परम भक्तवत्सल भी हैं ।

महावीरप्रसादो यो द्विवेदिकुलसम्भवः ।

स भक्त्या परया युक्तश्चकारेदं शिवाष्टकम् ॥

शिव

(डा० एच० डब्लू० बी० मॉरेनो)

हिमाच्छादित कैलासके उत्तुङ्ग शृङ्गपर जगदम्बा पार्वतीके साथ आप समाधिमग्न होकर विराजमान हैं । भूमण्डलमें चाहे जितनी उथल-पुथल मच जाय; यही क्यों, अखिल ब्रह्माण्डका कार्यक्रम चाहे अस्तव्यस्त हो जाय; परन्तु आपकी समाधि किसी प्रकार भी नहीं टूटती । बेचारे ब्रह्माजी ब्रह्माण्डोंको रचते-रचते थक जाते हैं और विष्णु उनके पालनमें अथक परिश्रम करते हैं; किन्तु आप उनके इस अविराम परिश्रमका तनिक भी विचार न कर अपने भ्रूमङ्गमात्रसे ही, केवल अपने तीसरे नेत्रको खोल देनेसे ही इस सारे खेलको क्षणभरमें चौपट कर देते हैं । क्योंकि आप इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि प्रकृतिकी अन्धतमिस्राके विलीन हो जानेपर नवनवोन्मेषशालिनी आशारूप उषाका उदय होता है । बीजसे अङ्कुर, अङ्कुरसे पल्लव, पल्लवसे प्रसून और प्रसूनसे फल—इसप्रकार सारी सृष्टिका क्रम फिरसे जारी हो जाता है और आप मस्त होकर चुपचाप यह सारा तमाशा देखते रहते हैं । हे देवाधिदेव महादेव ! आपके चरणोंमें मेरी यही प्रार्थना है कि जिसप्रकार जगत्के जीर्ण-शीर्ण हो जानेपर आप उसका संहारकर उसे नवीन रूप दे डालते हैं, उसी प्रकार त्रिविध तापोंसे जर्जरित मेरे अन्तःकरणके त्रिविध मलको जलाकर उसे सुवर्णकी भाँति परिष्कृत, शुद्ध बना दीजिये । *

* अंगरेजी कविताका अनुवाद ।

श्रीत्रिमूर्त्युपासनातत्त्व-रहस्य-मीमांसा

(लेखक — श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य स्वामी श्री ११०८ श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज)

करधात्रीकृतनतजनकरधात्रीकृतपरात्मपरविद्याम् । धात्रीधात्रीमेकामनाथधात्रीं नमामि जगद्भ्याम् ॥
धात्री पात्री हत्रीं वेत्त्री चाम्ब स्वस्य लोकस्य । दात्री सकलार्थानां पात्रीकुरु मां स्वदीयकरुणायाः ॥
धात्रीधरोजन्मधरासपत्नीधात्रीनिजाख्यत्रिविधस्वशक्तिम् । पद्मारिरेखाधरपद्मनेत्रपद्मासनाख्याजुषमीशमीडे ॥

हमने कल्याणके श्रीरामायणाङ्क, श्रीकृष्णाङ्क और श्रीईश्वराङ्कमें प्रकाशित लेखोंमें भगवान् श्रीरामचन्द्र और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमाका वर्णन करते हुए केवल अपने श्रुति-स्मृति-पुराणादि प्रमाणोंसे ही नहीं, बल्कि बाइबल आदि ग्रन्थों तथा बड़े-बड़े पाश्चात्य तत्त्वशास्त्रियों (Philosophers) और विज्ञानशास्त्रियों (Scientists) के ग्रन्थोंके जवरदस्त आधारपर भी हमारे सनातन-धर्मके इस परमसिद्धान्तका विस्तृत निरूपण किया था कि आत्मा यथार्थमें एक ही है; परमात्मा अखण्ड, अपरिच्छिन्न, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त सच्चिदानन्दधन-स्वरूप है; ईश्वरकी उपासना सगुणरूपसे ही हो सकती है, निर्गुणसे नहीं, इत्यादि-इत्यादि ।

अब आगे बढ़ते हुए 'कल्याण' के इस श्रीशिवाङ्कमें हमें निम्नलिखित विषयोंका दिग्दर्शनरूप विचार करना है कि उपासनाकाण्डमें जिन सगुण मूर्तियोंकी उपासना विहित है उनका वास्तविक आध्यात्मिक तत्त्व-रहस्य क्या है, उनका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है और खासकर विष्णु-पासक कहलानेवाले तथा शिवोपासक कहलानेवाले लोग जो आपसमें गाली-गलौज करते हुए परस्पर निन्दा-तिरस्कार, द्वेषादिका भाव प्रकट किया करते हैं, वह कहाँ-तक हमारे शास्त्रोंके आधारपर है, इत्यादि ।

आश्चर्य और खेदकी बात

जिन श्रीहरि और श्रीहरके बारेमें आपसमें इतनी लड़ाई होती है, उनके परस्पर-सम्बन्धके विषयमें शास्त्रोंसे ऐसे प्रमाण खूब मिलते हैं कि उनमें परस्पर अत्यन्त ही नहीं, बल्कि अनुपम तथा अद्वितीय प्रेम और आदरका सम्बन्ध है । बड़े ही आश्चर्य और खेदकी बात है कि इतने-पर भी उनके अनुयायी, भक्त और उपासक कहलानेवालोंमें पारस्परिक द्वेषकी तीव्र प्रगतिका वेग यहाँतक पहुँच गया है कि कोई भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति या स्मरण चाहे न करें, पर भगवान् श्रीशङ्करकी निन्दा करनेसे ही वैष्णव बन

जाते हैं । इसी प्रकार भगवान् श्रीशिवकी भक्ति या स्मरण-तक न करनेवाले भी भगवान् श्रीनारायणकी निन्दा करने-से ही शैव बन जाते हैं ।

विचारकी शैली

क्योंकि राग-द्वेष-रहित तथा निष्पक्षपात-बुद्धिके आधारपर शास्त्रके प्रमाणोंपर शान्तिपूर्वक विचार करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है, इसी खयालसे यथार्थ सिद्धान्तके निश्चयके लिये अत्यन्त उपयोगी कुछ खास-खास प्रमाणोंका इस लेखमें उल्लेख किया जाता है ।

परमाद्वैतकी दृष्टिसे विचार

श्रुति, स्मृति, श्रीमद्भागवतादि पुराण, बाइबल तथा पाश्चात्य तत्त्वशास्त्रियों और विज्ञानशास्त्रियोंके विचारोंके अटल आधारपर 'ईश्वराङ्क' में हमने जिस परम अद्वैत-वेदान्त-सिद्धान्तको सिद्ध किया था, उसके अनुसार तो यह स्वतः और निर्विवाद सिद्ध है कि श्रीविष्णु, श्रीशिव आदि-सम्बन्धी कोई भी विवाद शास्त्रीय नहीं हो सकता, क्योंकि हमारे सनातन-धर्मशास्त्रग्रन्थोंका बताया हुआ सिद्धान्त तो यही है कि ये सब मूर्तियाँ उसी एक परमात्माकी हैं । भक्तोंके श्रद्धा, भक्ति और प्रेमके साथ किये हुए एक खण्ड, परिच्छिन्न मूर्तिके ध्यानके परिणामरूप जो अखण्ड अपरिच्छिन्न, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी—

भक्तचित्तानुरोधेन भक्ते नानाकृतीः स्वयम् ॥

अद्वैतानन्दरूपो यः.....

—अर्थात् स्वयं एक और केवल आनन्दस्वरूप होते हुए भी जो भक्तोंकी चित्तवृत्तिके अनुसार अनेक प्रकारकी आकृतियोंको धारण करता है वही परमेश्वर—

धन्यैश्विरादपि यथारुचि गृह्यमाणः

यः प्रस्फुरत्यविरतं परिपूर्णरूपः ।

—अर्थात् भक्तोंसे अपनी-अपनी रुचिके अनुसार एक-एक परिच्छिन्न मूर्तिके रूपसे एकाग्रताके साथ ध्यान किये

जानेपर अपने अखण्ड और परिपूर्णरूपसे साक्षात् दर्शन देता है। अतः हमारे श्रुति-स्मृति-पुराणादिप्रतिपादित सनातन अद्वैत-वेदान्त-सिद्धान्तकी दृष्टिसे तो शिव, विष्णु आदिका झगड़ा सर्वथा निराधार तथा भयङ्कर अविवेकका स्पष्ट चिह्न है। अब देखना है कि पारमार्थिक अद्वैत-सिद्धान्तकी दृष्टिके अतिरिक्त अन्यान्य दृष्टियोंसे इस सम्बन्धमें यथार्थ तत्त्व क्या है ?

नाम-विचार

श्रीविष्णु और श्रीशिवके सबसे प्रसिद्ध नाम 'हरि' और 'हर' हैं। इन दोनोंका संस्कृत-भाषाकी मूल व्युत्पत्तिसे एक ही अर्थ होता है—'चुरानेवाला'। पाण्डवगीतामें कहा है—

नारायणो नाम नरो नराणां

प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम् ।

अनेकजन्मार्जितपापपुञ्जं

हरस्यशेषं स्मरणेन पुंसाम् ॥

अर्थात् भूमण्डलभरके मनुष्योंके बीचमें नारायण नामका चोर बहुत प्रसिद्ध है जो मनुष्यके हजारों जन्मोंके कमाये हुए पापसञ्चयको स्मरणमात्रसे एकदम और निःशेषरूपसे चुरा लेता है। श्रीगोपालसहस्रनाममें भगवान् श्रीकृष्णको चोर-शिखामणि बतलाया गया है। इसी प्रकारसे यजुर्वेदके श्रीरुद्राध्यायमें तो भगवान् श्रीशिवको 'स्तेनानां पतिः' तथा 'तस्कराणां पतिः' कहा है। यह तो हुई 'हरि' और 'हर' शब्दोंके अर्थकी एकताकी बात।

इसी तरह श्रीकाशीजीमें भगवान् श्रीशिवजीका जो प्रसिद्ध नाम श्रीविश्वनाथ है और पुरीधाममें श्रीकृष्णका जो प्रसिद्ध नाम श्रीजगन्नाथ है इन दोनोंका भी 'दुनियाका मालिक'—यही एक अर्थ है।

शिवसहस्रनाम और विष्णुसहस्रनाम

हमें पाठकोंकी दृष्टिको अब इस ओर आकर्षित करना है कि श्रीशिवसहस्रनाम और श्रीविष्णुसहस्रनाम, जिनका शैव और वैष्णव नित्य पाठ किया करते हैं, दोनों एक ही भगवान् श्रीवेदव्यासके बनाये हुए एक ही महाभारतके, एक ही अनुशासनपर्वके अन्तर्गत हैं और इन दोनों सहस्रनामोंके उपदेशके प्रकरण अति सुन्दर हैं।

प्रथम तो श्रीशिवसहस्रनामका प्रकरण आता है कि कुरुक्षेत्रके युद्धके बाद शरशय्यामें लेटे हुए पितामह श्री-भीष्मजीसे राजा युधिष्ठिरने पूछा कि 'सब देवताओंमें सर्वथा श्रेष्ठ कौन हैं जिनकी उपासनासे ऐहिक, पार-लौकिक तथा पारमार्थिक कल्याण प्राप्त हो सकता है?' इसपर श्रीभीष्मजीने कहा कि 'मैं इस प्रश्नका उत्तर देनेका अधिकारी नहीं हूँ। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं यहीं विराजमान हैं। उन्हींसे पूछो।' तदनन्तर राजा युधिष्ठिरद्वारा पूछे जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने यह कहकर कि—'भगवान् श्रीशिवजी ही सब देवताओंमें सर्वथा श्रेष्ठ और पूज्य हैं। मैंने भी उन्हींकी घोर तपस्यापूर्वक उपासना करके अमुक-अमुक महान् वरदान आदि लाभोंको प्राप्त किया था'—भगवान् शङ्करकी खूब महिमा गायी है और अन्तमें पाण्डवोंको श्रीशिवसहस्रनामका उपदेशकर अनुग्रहीत किया है।

इसी महाभारतके इसी अनुशासनपर्वमें कुछ आगे चलकर दूसरा प्रसङ्ग श्रीविष्णुसहस्रनामके बारेमें यह आता है कि भगवती जगन्माता श्रीपार्वतीजीने भगवान् श्रीशिवजीसे पूछा कि 'सब देवताओंमें सर्वथा श्रेष्ठ कौन हैं जिनकी उपासनासे ऐहिक, पारलौकिक तथा पारमार्थिक श्रेय प्राप्त हो सकता है?' इसके उत्तरमें भगवान् श्रीशङ्करने स्वयं यह कहकर कि 'सब देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णु ही हैं, मैंने भी इन्हींकी उपासनासे अमुक-अमुक महान् वरदान आदि लाभोंको प्राप्त किया है,' और श्रीनारायणकी महिमाका खूब बखान कर अन्तमें श्रीपार्वतीजीको श्रीविष्णुसहस्रनामका उपदेश दिया है।

इसप्रकारके और भी बहुत-से प्रकरण श्रीमन्महाभारत तथा पुराणोंमें आते हैं, जिनसे यह निःसन्देहरूपसे सिद्ध होता है कि श्रीहरि और श्रीहर आपसमें अपार पूज्यत्व-बुद्धि और प्रेमका सम्बन्ध रखते हैं।

अन्यान्य प्रकरण

श्रीमद्रामायण तथा श्रीमन्महाभारतरूपी इतिहासों और सब पुराणोंसे सिर्फ इतना ही सिद्ध नहीं होता कि रावण, बाणासुर आदिने ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये; महर्षि अत्रि, गर्गाचार्य आदिने पुत्रकी प्राप्तिके लिये; विश्वामित्र, अश्वत्थामा आदिने अस्त्र-शस्त्रादिकी प्राप्तिके लिये और अन्यान्य असंख्य स्त्री-पुरुषोंने अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न कामनाओंकी प्राप्तिके लिये महेश्वर श्रीशिवजीकी उपासना की थी, बल्कि यह भी

स्पष्ट है कि भगवान् पुण्डरीकाक्ष श्रीमहाविष्णुने भी घोर तपस्यामें रत होकर भगवान् महादेव श्रीशङ्करजीकी कमलोंसे पूजा की और सहस्रनामार्चन करनेके समय एक पद्मके घट जानेपर अपने एक नेत्ररूपी कमलको निकालकर शिवजीके अर्पण कर दिया और श्रीशङ्करको प्रसन्न करके उनसे सर्वशत्रुदमन करनेवाले सुदर्शनचक्रको (जो भगवान् श्रीनारायणका जगत्प्रसिद्ध और खास आयुध है) प्राप्त किया। भगवान् श्रीनारायणके बड़े जवरदस्त अवतार श्री-परशुरामजीने भी अस्त्र-शस्त्र-प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीशङ्करकी आराधना की थी। उन्हीं भगवान् श्रीहरिके और भी पराक्रमी अवतार श्रीरामचन्द्रजीने भी रावणको परास्त करने तथा भगवती जगन्माता श्रीसीतादेवीकी पुनः प्राप्तिके लिये दक्षिण-सागरके तटपर सेतुबन्धमें श्रीरामेश्वर महादेवकी स्थापना तथा उपासना की थी और रावणसंहारके बाद ब्रह्महत्यादोषसे मुक्त होनेके लिये उसी श्रीरामेश्वर महादेवकी आराधना की थी। उन्हीं भगवान् श्रीमहाविष्णुके पूर्णावतार आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र परमात्माने भी तो अपने शरणागत परमभक्त, शिष्यशिरोमणि और खास परम प्रेमपात्र अर्जुनको ही कुरुक्षेत्रके युद्धमें सबसे अत्यन्त उपयोगी पाशुपतास्त्रके लिये श्रीशङ्करकी उपासनामें नहीं लगाया, बल्कि स्वयं भी भगवती श्रीरुक्मिणीजीके उदरसे पुत्र (श्रीप्रद्युम्न) को तथा भगवती श्रीजाम्बवतीके उदरसे पुत्र (श्रीसाम्ब) को प्राप्त करनेके लिये हिमालय आदि भयङ्कर पर्वतोंमें घोर तपस्या कर बिल्वेश्वर महादेव आदिकी स्थापना तथा आराधना करके पूर्वोक्त रीतिसे पाण्डवोंको भगवान् श्रीशिवजीकी महिमा बताकर श्रीशिवसहस्रनामका उपदेश दिया था।

इसी प्रकार ऐसे भी बहुत-से प्रसङ्ग हैं जिनमें भगवान् श्रीशङ्करजी अपनेको श्रीराम-भक्त बताते हुए कहते हैं—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥

खास चमत्कारकी बात

इन प्रसङ्गों और प्रकरणोंके बारेमें खास चमत्कारकी बात तो यह है कि श्रीविष्णु-महिमा बतानेवाले खास-खास प्रकरण श्रीशिवप्रधान पुराणोंमें और श्रीशिव-महिमा बतानेवाले खास-खास प्रसङ्ग श्रीविष्णुप्रधान पुराणोंमें आते हैं। उदाहरणतः स्कन्दपुराणान्तर्गत काशी-खण्ड आदि शिव-

प्रधान ग्रन्थोंसे पता लगता है कि श्रीशिवजी श्रीराम-भक्त हैं और श्रीमद्भागवतादि विष्णुप्रधान ग्रन्थोंसे सिद्ध होता है कि श्रीनारायण श्रीशिव-भक्त हैं, इत्यादि।

अतः यह भी शिकायत की नहीं जा सकती कि वैष्णवों और शैवोंने अपने-अपने घरमें बैठकर अपनी-अपनी पुस्तकोंमें अपने-अपने इष्टदेवकी मनमानी महिमा गायी है। इसलिये हमारी समझमें नहीं आता कि अपनेको श्रीहरि, श्रीपरशुराम, श्रीरामचन्द्र या श्रीकृष्णचन्द्र आदिके भक्त बतानेवाले 'वैष्णव' नामधारी महाशय अपने उसी पूज्य इष्टदेवके—परमपूज्य भगवान् श्रीशङ्करके द्वेषी या निन्दक कैसे बन सकते हैं और अपनेको श्रीशिवजीके भक्त बतानेवाले 'शैव' नामधारी महाशय अपने उन्हीं पूज्य इष्टदेवके—परमपूज्य भगवान् श्रीनारायणके द्वेषी या निन्दक कैसे बन सकते हैं ?

श्रीमद्भागवत

अब इस विचित्र दृश्यको देखना है कि जो श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीविष्णुकी महिमा बतानेके लिये ही लिखा हुआ खास पुराण है, अतएव वैष्णवोंके नित्यपाठका खास ग्रन्थ है, उसमें भी भगवान् श्रीशिवजीकी ऐसी अद्भुत स्तुतियाँ आती हैं जिनसे बढ़कर किसीकी कोई स्तुति हो ही नहीं सकती। न केवल भगवती श्रीदाक्षायणीजी, भगवती श्रीपार्वतीजी, श्रीदितिजी, महर्षि श्रीकश्यपजी, श्रीब्रह्माजी, श्रीसूतजी, महर्षि श्रीमैत्रेयजी और ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजीने भगवान् श्रीशङ्करकी श्रीमद्भागवतमें स्तुतियाँ की हैं, बल्कि भगवान् श्रीमहाविष्णुने भी स्वयं अपने श्रीमुखसे श्रीशिवजीकी बड़ी स्तुतियाँ की हैं। इनमेंसे यहाँ कुछ दृष्टान्त दिये जाते हैं, जिनसे रागद्वेषरहित और निष्पक्षपात जिज्ञासुओंको पता लग सकता है कि श्रीविष्णुप्रधान श्रीमद्भागवतमें भी श्रीशङ्करकी कितनी और किस-किस प्रकारकी स्तुतियाँ हैं।

श्रीदाक्षायणीका प्रकरण

श्रीमद्भागवतके चौथे स्कन्धमें भगवती श्रीदाक्षायणी कहती हैं—

‘जिसके दो अक्षरवाले (शिव) नामका किसी आकस्मिक प्रकरणसे उच्चारण करनेवाला आदमी समस्त पापोंसे तुरन्त मुक्त होता है, जिसकी कीर्ति पवित्र है और जिसकी आज्ञाका उल्लङ्घन कदापि नहीं हो सकता ऐसे (श्रीशङ्कर) को.....।’

‘परब्रह्मानन्दरूपी उसके आस्वादनाथ महात्माओंके मनरूपी भ्रमर जिनके चरणकमलोंकी सेवामें रहा करते हैं और जो अपने आश्रितोंकी सारी इच्छाओंको पूरा किया करते हैं ऐसे (श्रीशङ्कर) को.....।’

‘ब्रह्मादि देवता भी उन (श्रीशङ्कर) के श्रीचरणोंके प्रसाद (रजकण आदिको) अपने सिरपर धारण करते हैं।’*

श्रीपार्वतीका प्रसङ्ग

एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं

जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयम् ।

(श्रीमद्भा० ६।१७।१३)

श्रीपार्वतीजी कहती हैं कि ‘भगवान् श्रीशङ्कर जगद्गुरु हैं और मङ्गलशिरोमणि हैं। उनके चरणोंका ब्रह्माजी, भृगु, नारदादि महर्षिगण, सनकादि कुमारमण्डली, महर्षि कपिल, मनुजी आदि भी ध्यान करते हैं।’

दितिदेवीकृत शिवस्तोत्र

नमो रुद्राय महते देवायोम्राय मीदुषे ।

शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे ॥

(श्रीमद्भा० ३।१४।३४)

‘महादेव श्रीरुद्रको नमस्कार, जो उग्र मूर्ति धारण करके (दुष्टोंको) दण्ड देता है और (सज्जनोंके लिये) मङ्गल-मूर्ति धारण करके शान्त हो जाता है और परब्रह्मलिङ्ग-स्वरूपी है।’

परन्तु इन तीनों प्रकरणोंको तो प्रतिपक्षी यह कहकर उड़ा सकते हैं कि श्रीदाक्षायणी तथा श्रीपार्वतीजी श्रीशङ्करकी पत्नियाँ थीं, इसलिये इन दोनोंने पक्षपात किया होगा और दितिदेवी असुरोंकी माता है, अतः उसकी बातें आदरणीय नहीं हो सकती, इत्यादि। अतः अब देखना है कि केवल इन्द्रादि देवताओंके ही नहीं, बल्कि श्रीवामन-रूपी भगवान् श्रीनारायणके भी पिता महर्षि श्रीकश्यपजी क्या कहते हैं।

महर्षि कश्यपजीकी गवाही

श्रीमद्भागवतके तृतीयस्कन्धमें महर्षि श्रीकश्यपजी भी तो कहते हैं कि—

* श्रीमद्भागवत-चतुर्थस्कन्ध, अध्याय ४, श्लोक १४-१५-१६ देखिये।

‘हम (महर्षि) इतनी तपस्या करनेपर भी जिस अनादि मायारूपी उच्छिष्टका त्याग न कर सकनेके कारण उसकी गुलामीमें रहा करते हैं उसे जिन्होंने (श्रीशङ्कर) ने लात मारकर निकाल दिया है। जो स्वजन और परजनका भेद नहीं जानते और जिनका न कोई प्रेमपात्र और न घृणापात्र ही है।’

‘जो सज्जनोंकी गति हैं, जिसके बिल्कुल निर्दोष चरित्रका अविद्या-ग्रन्थि-भेदनार्थ उद्युक्त महामनस्वीगण अनुसन्धान किया करते हैं और जिन्होंने सम तथा विषम आदि भेदशून्य होते हुए भी स्वयं पिशाचचर्या की है।’

‘जिन आत्मनिष्ठ श्रीशङ्करके चरित्रका वही दुर्भाग्य-शालीलोग उपहास करते हैं जो लक्ष्यों नहीं जानते हैं और जो कुत्तोंका भोजन बननेवाले शरीरको ही आत्मा समझकर वस्त्र, माला, भूषण, अनुलेपनादिसे लालन करते हुए उसकी गुलामीमें रहते हैं।’

‘जिनकी बनायी हुई मर्यादाको ब्रह्मादि देवता पालते हैं, जो जगत्की सृष्टि करनेवाले हैं, जिनकी आशाके अनुसार मायाशक्ति भी चलती है, उन सर्वस्वरूपी महाप्रभु भगवान् श्रीशङ्करकी पिशाचचर्या भी एक विडम्बनामात्र है।’*

महर्षि कश्यपजीके किये हुए इस वर्णनसे स्पष्ट हो जाता है कि कम-से-कम उक्त महर्षिके खयालमें तो वही लोग भगवान् श्रीशङ्करकी ‘श्मशानवासी’, ‘प्रमथनाथ’ आदि शब्दोंसे निन्दा कर सकते हैं जो अपने शरीरको ही आत्मा समझते हुए उसीके गुलाम बने हुए हैं अर्थात् नास्तिक ही शिव-निन्दक हो सकते हैं।

श्रीब्रह्माजीकी गवाही

श्रीमद्भागवतके चतुर्थस्कन्धमें श्रीब्रह्माजीने भी श्रीशङ्करकी इसप्रकार स्तुति की है—

जाने स्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिवीजयोः ।

शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥

(६।४२)

स्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः स्वरूपयोः ।

विश्वं सृजसि पास्वरिसि क्रीडन्पूर्णपटो यथा ॥

(६।४३)

* श्रीमद्भागवत-तृतीयस्कन्ध, अध्याय १४, श्लोक २५, २६, २७, २८ देखिये।

‘मैं जानता हूँ कि आप ही वह सर्वव्यापी परब्रह्म हैं जो जगत्के योनि-बीजरूपी प्रकृति और पुरुषके भी परे हैं और जो सारी दुनियाँके नाथ हैं ।’

‘हे भगवन् ! आप ही समस्त रूपसहित प्रकृति और पुरुषकी इस दुनियाँकी उसी प्रकारसे सृष्टि, रक्षण और संहार करते हैं जैसे मकड़ी (अपने भीतरसे तन्तुको बाहर निकालती है, रखती है और पुनः भीतर खींच लेती है) ।’

अतः ब्रह्माजीके विचारमें भी भगवान् श्रीशङ्कर जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले सर्वान्तर्यामी परमेश्वर हैं ।

सूतजीका वर्णन

अब आगे श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्ध, दशम अध्यायके अन्तर्गत श्रीमार्कण्डेयोपाख्यानमें एक खास प्रसङ्ग उदाहरण-रूपसे उद्धृत किया जाता है, जिसमें श्रीमद्भागवतके सुनानेवाले श्रीसूतजी स्वयं श्रीशौनक महर्षिसे कहते हैं कि—

‘समस्त विद्याओंके ईशान (अर्थात् अधिष्ठाता), समस्त जीवोंके ईश्वर (अर्थात् शासक) और सज्जनोंके गतिरूप भगवान् (श्रीशङ्कर) उन (मार्कण्डेय महर्षि) के पास आ पहुँचे ।’

‘मार्कण्डेयमुनिने आँखें खोलकर देखा कि त्रिलोकीके एकमात्र गुरु भगवान् श्रीरुद्र श्रीपार्वतीजी तथा प्रमथ-गणोंके साथ आये हुए हैं और उनका शिरसे वन्दन किया ।’

तदनन्तर कहा कि ‘हे प्रभो ! हे ईश्वर !! आप आत्मानुभावसे नित्य तृप्त हैं और आपसे इस सारी दुनियाँको सब प्रकारके आनन्द मिलते हैं । आज्ञा कीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?’

‘जो सत्त्वरूप, मङ्गलमूर्ति, शान्तस्वरूप और रक्षा करनेवाले हैं तथा जो रजोगुण और तमोगुणको धारण करते हुए भी अधोर (शान्त) हैं, उन आपको मेरा नमस्कार स्वीकार हो ।’

‘इसप्रकारसे स्तुति किये जानेपर आदिदेव और सज्जनोंके गतिरूप भगवान् (श्रीशङ्कर) ने सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर उन (मार्कण्डेय महर्षि) से कहा—’

‘चन्द्रकलाधारी (भगवान् श्रीशङ्कर) की इस-प्रकार धर्मके रहस्योंसे भरी हुई वाणीरूपी अमृतरसायनको पीते-पीते (मार्कण्डेय) ऋषि तृप्त नहीं हुए ।’

‘दीर्घकालसे विष्णु-मायाके द्वारा भ्रमित और अत्यन्त कर्षित (मार्कण्डेयजी) के सब क्लेशोंका शिवजीके वाणीरूपी अमृतसे नाश हो गया और वे बोलने लगे—...’^{*} इत्यादि ।

इस उपाख्यानके कहनेवाले भी वे ही श्रीसूतजी थे जिन्होंने सारे श्रीमद्भागवतकी कथा नैमिषारण्यमें श्री-शौनक महर्षि आदि श्रोताओंको सुनायी थी और दुनियाँमें उसका प्रचार किया था । क्या श्रीदाक्षायणी, श्रीपार्वती, श्रीदितीदेवी आदिके वचनोंके साथ श्रीसूतजीका कहना भी अप्रमाण ही समझा जायगा ? ऐसा होनेपर, श्रीमद्भागवतके प्रामाण्यकी ही मूलसे हानि हो जायगी, जो किसी भी सनातनीको कदापि अभीष्ट नहीं हो सकती, क्योंकि यह तो श्रीमद्भागवतके लिये कुठाराघात या आत्महत्याकी बात होगी ।

श्रीमैत्रेय महर्षिकृत शिव-वर्णन

अब श्रीमैत्रेय महर्षिकी गवाही लीजिये, जिनका भगवद्भक्तशिखामणि और श्रीमद्भागवतके वक्ता ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजीने स्वयं ज्ञानिशिरोमणि होते हुए भी ‘अगाध-बोध’ (जिनके ज्ञानकी गहराईका माप ही नहीं हो सकता) आदि शब्दोंसे श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें वर्णन किया है और जिनके विषयमें श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके षोडशाध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णकी विभूतियोंके वर्णन-के प्रसङ्गमें—

एवं च भागवतेष्वहम्

—इसप्रकारसे भगवान्के श्रीमुखसे ‘परमभागवत’ शब्दसे वर्णित उद्धवजीने स्वयं कहा है कि भगवान्की खास आज्ञासे महर्षि मैत्रेयजी श्रीयमराजके अवतार, धर्ममूर्ति और बड़े ज्ञानी श्रीविदुरजीको श्रीवराहावतार, श्रीकपिलावतार, पुरञ्जनोपाख्यान आदि बड़े-बड़े ज्ञानयज्ञरूपी उपाख्यानोसे भरे हुए तृतीय और चतुर्थ स्कन्धोंका उपदेश किया था । ऐसे महामान्य महर्षि मैत्रेयजी भी यही कहते हैं कि—

‘सन्दिग्धानादि शान्तिमय महासिद्ध पुरुष तथा कुबेरजी जिस अत्यन्त शान्त मूर्तिवाले (भगवान् श्रीशङ्कर) की उपासना करते थे ।’

* श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध, दशम अध्यायके क्रमशः श्लोक ८, १३, १४, १५, १६, १७, २५, २६ देखिये ।

‘जो (श्रीमहादेव) सारे जगत्के अधीश्वर होते हुए विश्वबन्धु होनेके कारण विद्या, तपस्या और योगके मार्ग-पर आरुढ़ होकर जगद्वात्सल्यसे जगत्का कल्याण करते रहते हैं।’

‘जो (भगवान् श्रीशिव) तपस्वियोंके अभीष्ट चिह्न-भस्म, दण्ड, जटा और अजिनको धारण करते हैं और अपने सन्ध्याकालीन मेघकी कान्तिवाले शरीरपर चन्द्रमाकी कला धारण करते हैं।’

‘जो (भगवान् श्रीशङ्कर) दर्भासनपर विराजमान, प्रह्नकर्ता श्रीनारदजी और सुननेके लिये उपस्थित सज्जन-मण्डलीको सनातन-ब्रह्मका तत्त्वोपदेश करते थे।’

‘जो दक्षिण-उत्सङ्गपर, वाम चरणको रखकर कोहनीमें रुद्राक्षमालाको धारण करके तर्कमुद्रासे बैठे हुए थे।’

‘परमानन्द-समाधिमें मग्न, योगकक्षामें आरुढ़ और समस्त मनुओंके आदि मनु परब्रह्म श्रीशङ्करको समस्त लोकपालसहित समस्त ‘महर्षिमण्डलीन’ हाथ जोड़कर नमस्कार किया।’*

यह प्रसङ्ग तो इतना स्पष्ट है कि इसकी व्याख्या या टीका करनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं। तो भी इस खास बातकी ओर पाठकोंकी दृष्टि आकर्षित की जाती है कि भस्म तथा रुद्राक्षकी, जिनकी आजकल खूब निन्दा की जाती है, महिमा तथा विधि केवल उपनिषदोंमें ही अत्यन्त विस्तारके साथ बतायी गयी हो सो नहीं, बल्कि श्रीमद्भागवतमें भी भगवान् श्रीनारायणके परमभक्त महर्षि श्रीमैत्रेयजीने भी उन दोनोंका ज्ञानकाण्डी, तपस्वी और योगीके अभीष्ट चिह्नरूपसे वर्णन किया है और भगवान् श्रीशङ्करका भगवान् श्रीमहाविष्णुके परमभक्त सनन्दनादि महासिद्ध पुरुषों तथा श्रीहरिभक्तिपरायणशिरोमणि और भक्तिसूत्रकर्ता और ‘ब्रह्मर्षीणां च नारदः’—इन शब्दोंसे भगवान् श्रीकृष्णके श्रीमुखसे वर्णित श्रीनारदजीके भी ब्रह्म-ज्ञानके तत्त्वका उपदेश करनेवाले गुरुके रूपसे वर्णन किया है। अब उन वैष्णवों-वैष्णव कहानेवालोंके रागद्वेषप्रयुक्त दुराग्रहके बारेमें क्या कहें जो केवल भस्मत्रिपुण्ड्र तथा

रुद्राक्षकी ही नहीं, अपितु श्रीनारदादिके भी ज्ञानगुरु श्रीशङ्करकी भी निन्दा किया करते हैं ?

श्रीशुकदेवजीका कथन

अब यह देखना है कि श्रीमद्भागवतमें श्रीमद्भागवत-प्रणेता श्रीशुकदेवजी भगवान् श्रीशङ्करके विषयमें स्वयं क्या कहते हैं। श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धके सातवें अध्यायमें ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजी समुद्रमन्थनके प्रकरणका वर्णन करते हुए कहते हैं—

‘भगवान् (श्रीमहाविष्णु) ने वासुकिरूपी मन्थन-रज्जुको अपने करकमलोंमें लेकर मन्दरपर्वतरूपी मन्थन-दांडसे समुद्रका मन्थन किया।’

‘भीतरके मत्स्य, मकर, सर्प, कच्छप, तिमि, गज, ग्राह और तिमिङ्गिलोंके भ्रमणसे विक्षुब्ध हुए समुद्रसे हालाहल नामका अत्यन्त उग्र विष निकल आया।’

‘सारी दिशाओंमें तथा ऊपर और नीचे फैलनेवाले उस अत्युग्र, असह्य और अनुपम विषसे रक्षा करनेवाले किसीके न मिलनेके कारण भयभीत होकर सारी प्रजा (अर्थात् देवता और असुर) अपने-अपने नेताओंको भी साथमें लेकर भगवान् श्रीसदाशिवकी शरणमें पहुँची।’

‘(कैलास) पर्वतपर श्रीपार्वतीजीके साथ रहते हुए, त्रैलोक्यके कल्याण यानी मुक्तिके लिये तपस्या करनेवाले उस मुनिमण्डलमान्य देवश्रेष्ठको देखकर उन प्रजानाथोंने नमस्कार करते हुए स्तुति की और कहा’—

‘हे देवोंके देव श्रीमहादेव ! आप सारे पदार्थोंकी अन्तरात्मा एवं रचयिता हैं; हमें, जो आपके शरणागत हैं, त्रैलोक्यको भी जला देनेवाले इस जहरसे बचाइये।’

‘आप समस्त जगत्के बन्धन तथा भोक्षके एकमात्र ईश्वर हैं, शरणागतोंके सङ्कटोंको दूर करनेवाले तथा गुरु हैं, आपको भी बुद्धिमान् पूजते हैं।’

‘हे आत्मज्ञानप्रकाशस्वरूपी और सर्वस्वरूपी प्रभो ! आप ही जब त्रिगुणात्मक मायाशक्तिसे जगत्की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं तब आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन नामोंको धारण करते हैं।’

* श्रीमद्भागवत-चतुर्थ स्कन्ध, अध्याय ६, श्लोक ३४ से ३९ देखिये।



नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति । तपश्च सत्त्वञ्च रजस्तमश्च त्वामेव सत्यं च वदन्ति सन्तः ॥ (महाभारत अनु० १४।७)



पाशुपतास्त्र-दान (पृष्ठ-संख्या २५५)



अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । भयउ सकल मख हाहाकारा ॥



विरञ्चिनारायणवन्दनीयो मानं विनेतुं गिरिशोऽपि यस्याः।
कृपाकटाक्षेण निरीक्षणानि व्यपेक्षते साऽवतु वो भवानी॥

श्रीनारायणरूप और श्रीशिवरूपसे श्रीकृष्णरूपका स्तवन (पृष्ठ संख्या ३५४)



तपस्तत्फलदं शश्वत्तपस्वीशं च तापसम् । वन्दे नवघनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम् ॥
जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम् । प्रवरं जयदानां च वन्दे नमपगजितम् ॥ (द्रव्यवैतनपृ० ३। ११, २४)



अथोस्थितो हरिस्तोयमादायाञ्जलिना ततः । अवाकिरदथो शम्भुश्च विष्णुश्चो हरः ॥ (यद्वापुर्गण पान लघुगुह)



ततो जगाम निर्विण्णः शङ्करः कुरुजाङ्गलम् । तत्र गत्वा ददर्शाथ चक्रपाणिं खगस्थितम् ॥

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हरः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥

(वामनपुराण ३।१२ १३)



भगवान् श्रीरामका रामेश्वर-पूजन (पृष्ठ संख्या ५५८)

‘आप ही परब्रह्म हैं, सदसत्कारण हैं, गूढ़ तत्त्व हैं, सारी शक्तियोंसे विराजमान हैं, जगत्की आत्मा हैं और जगत्के ईश्वर हैं ।’

‘आप ही वेदादि शास्त्रोंके जन्मस्थान हैं, जगत्के कारण हैं, जगत्की अन्तरात्मा हैं, प्राण-इन्द्रिय-द्रव्य-गुणादि-रूपी सर्वपदार्थस्वरूपी हैं, कालस्वरूपी हैं, यज्ञस्वरूपी हैं, सत्य और ऋतस्वरूपी एवं धर्मस्वरूपी हैं और आपहीमें यह अक्षर वस्तु है जिसका वेद वर्णन करते हैं ।’

‘अग्नि, भूमि, दिशाएँ, वरुण, आकाश, वायु, सूर्य, जल, चन्द्रमा, समुद्र, पर्वत, ओषधियाँ, वेद, धर्म, उपनिषद्, मन्त्रवर्ग, सत्त्वादि गुण आदि सारे पदार्थ आपके ही मुख, चरण, कर्ण, जिह्वा, नाभि, श्वास, नेत्र, वीर्य, मन, उदर, अस्थि, रोम इत्यादि अवयव हैं । और हे भगवन् ! स्वयंज्योतिःस्वरूपी परमार्थतत्त्व ही आपके शिव-नामका स्वरूप है ।’

‘हे समस्तलोकरक्षक ! आपके परमार्थज्योतिको, जो त्रिगुणातीत है, भेदरहित है और परब्रह्मस्वरूपी है, ब्रह्माजी, महाविष्णु, देवेन्द्र आदि भी नहीं समझ सकते ।’

‘हे भगवन् ! जो श्रीपार्वतीजीके साथ भ्रमण करते हुए भी तपस्वीशिरोमणि बने रहते हैं और जिनके चरणारविन्दोंका आत्मनिष्ठ गुरु भी ध्यान करते हैं, ऐसे आपको जो दमशानमें रहनेवाले तथा उग्र पुरुष इत्यादि समझते हैं वे (निर्लज्ज) हैं । जब ब्रह्मादि देवता भी आपके परापरतत्त्वसे अतीत एवं परमतत्त्वसे भी अतीत स्वरूपको नहीं जान पाते, तब हम आपको कैसे जान सकते हैं ?’

‘परन्तु इतना तो देखते हैं कि आपसे बढ़कर और कोई नहीं है । जगत्के कल्याणके लिये आप अमूर्त होते हुए भी मूर्तिमान् बन जाते हैं ।’

‘उनके इस सङ्कटको देखकर सर्वजीवदयालु भगवान् (श्रीशङ्कर) ने अत्यन्त कारुण्यभावसे श्रीपार्वतीजीसे कहा—

‘देखो, क्षीरसमुद्रके मन्थनसे उत्पन्न हुए कालकूट विषसे प्रजाको कितना कष्ट हो रहा है ! इनको अभय-दान देना मेरा कर्तव्य है, क्योंकि दीनोंकी रक्षा ही प्रभुका प्रयोजन है । अविद्याके मोहसे परस्पर द्वेष करनेवालोंके अन्दर सज्जन वे हैं जो अपने प्राण देकर प्राणियोंकी रक्षा करते हैं । इसलिये मैं इस जहरको पी जाता हूँ । मेरी प्रजाका कल्याण हो ।’

‘इतना कहकर भगवान् श्रीशङ्कर जीवोंके प्रति कृपा-परवश हो उस जहरको हाथमें लेकर पी गये और उनकी महिमाको जाननेवाली देवीने भी उनके इस कार्यका अनुमोदन किया ।’

‘इस कार्यको देखकर प्रजाने तथा ब्रह्माजी और श्रीविष्णुने देवदेव श्रीमहालिङ्ग श्रीशङ्करभगवान्का स्तवन किया ।’* इत्यादि ।

श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजीके बताये हुए इस प्रसङ्ग-से पता लगता है कि भगवान् श्रीमहाविष्णुके होते हुए भी जगत्की रक्षाके लिये श्रीशङ्करकी खास जरूरत होती है । इसके कारण तथा गूढ़ तत्त्वका आगे चलकर विचार किया जायगा । परन्तु अब इस बातपर जोर देना है कि भगवान् श्रीशङ्कर ब्रह्माविष्णुशिवस्वरूपी हैं, परब्रह्मस्वरूपी हैं और वे लोग बेसमझ हैं जो भगवान् श्रीशङ्करको उग्र, तामसिक आदि बताते हुए उनकी निन्दा करते हैं ।

श्रीमहाविष्णुकृत श्रीशिवमहिमावर्णन

अब यह देखना है कि भगवान् श्रीमहाविष्णुने भगवान् श्रीशङ्करके बारेमें क्या भाव दिखाया है ?

श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीमहाविष्णुने अपने श्रीमुखसे श्रीशङ्करका जहाँ-जहाँ गुणगान किया है उनमेंसे पहला उदाहरण यह है कि जब दक्षप्रजापतिने शिवद्वेषके कारण यज्ञमें शिवजीके लिये हविर्भाग न देते हुए और सब देवताओंको बुलाया । उस समय अन्यान्य सब देवता तो आये, परन्तु—

..... भगवान् वज्रसम्भवः ।

नारायणश्च विश्वात्मा न कल्याध्वरमीयतुः ॥

(४ । ६ । ३)

अर्थात्, ‘ब्रह्माजी और भगवान् श्रीनारायण वहाँ गये ही नहीं ।’ इससे स्पष्ट है कि जहाँ श्रीशङ्करका तिरस्कार होता हो वहाँ श्रीनारायण भी नहीं जाते । यह सिर्फ अनुमानकी ही बात नहीं है, अपितु इसे भगवान् श्रीहरिने स्वयं स्पष्ट किया है, क्योंकि जब उस यज्ञका वीरभद्र तथा उसके भटोंसे नाश होनेके बाद भगवान् श्रीरुद्रके प्रसन्न किये जानेपर यज्ञका पुनः सन्धान हुआ तब तो भगवान् श्रीनारायणने स्वयं आकर अति स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि—

* श्रीमद्भागवत-अष्टम स्कन्ध, सप्तम अध्याय, श्लोक १७ से ३१, ३३ से ४२ और ४५ देखिये ।

अहं ब्रह्मा च सर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंभूविशेषणः ॥
(४।७।५०)

आत्ममायां समावेश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्ने संज्ञां क्रियोचिताम् ॥
(४।७।५१)

तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।
ब्रह्मरूपौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥
(४।७।५२)

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥
(४।७।५४)

‘मैं, ब्रह्मा और शिव जगत्के कारण हैं, परे हैं, आत्मा हैं, ईश्वर हैं, उपद्रष्टा हैं, स्वयंप्रकाश हैं और भेदरहित हैं ।’

‘त्रिगुणात्मक मायाको लेकर जब-जब मैं जगत्को बनाता, पालता और संहार करता हूँ तब-तब मैं उसी कामके अनुरूप नामको धारण करता हूँ ।’

‘ऐसे केवल, अद्वितीय परमात्मामें अज्ञानी ही ब्रह्मा, रुद्रादिको भेददृष्टिसे देखते हैं ।’

‘समस्त वस्तुओंके अन्तरात्मस्वरूपी और एकभाववाले हम तीनोंमें जो भेद नहीं देखता, वही शान्तिको प्राप्त करता है ।’

श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धके दशवें अध्यायमें भगवान् श्रीशङ्करने भी मार्कण्डेय महर्षिको यही उपदेश दिया है। जब श्रीहरि और श्रीहर दोनों कहते हैं कि हमको भेदबुद्धिसे देखनेवाले अज्ञानी हैं और समानदृष्टिसे माननेवाले ही शान्तिको प्राप्त कर सकते हैं, तो कितने खेदकी बात है कि वैष्णव कहलानेवाले श्रीशङ्करकी और शैव कहलानेवाले श्रीनारायणकी निन्दा करते हुए नहीं सकुचाते !

पाञ्चरात्रकी गवाही

इसी प्रसङ्गके साथ यह भी जानने और हमेशा याद रखनेयोग्य है कि श्रीनारदजीने (जो ब्रह्मर्षियोंके बीचमें भगवान्की खास विभूति हैं) पाञ्चरात्रग्रन्थमें (जो श्री-रामानुजाचार्यके श्रीवैष्णवसम्प्रदायका खास साम्प्रदायिक ग्रन्थ है) स्पष्ट आज्ञा दी है कि जिस ग्राम या शहरके मुहल्लेमें भगवान् श्रीशङ्करका आलयन हो वहाँ कोई वैष्णव आपद्धर्ममें भी और एक रातके लिये भी वास न करें इत्यादि ।

त्रिमूर्तियोंका असली तत्त्व और सम्बन्ध उपर्युक्त

प्रमाणोंसे बिल्कुल स्पष्ट है। एक ही परमात्मा जगत्की सृष्टि करते हुए ‘ब्रह्मा’, पालन करते हुए ‘महाविष्णु’ और संहार करते हुए ‘महारुद्र’ कहलाते हैं। जिन शक्तियोंको साथमें लेकर वह यह सब काम करता है उनके नाम हैं—महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली। अब अन्तमें यह विचार करना है कि इन त्रिगुणात्मक त्रिशक्तिसमेत त्रिमूर्तियोंका असलमें क्या तत्त्व है और इनका आपसमें क्या सम्बन्ध है ?

वैद्यका दृष्टान्त

वैद्यके दृष्टान्तसे इस प्रश्नके यथार्थ उत्तरका पता लगाया जा सकता है, क्योंकि उसे भी तो यही तीन काम करने पड़ते हैं। जब वह व्याधिका संहार करनेवाली औषध देता है तब वह रुद्रका काम करता है। परन्तु जब ज्वरादिके उतारनेकी प्रक्रियासे व्याधि हटने लगती है उस समय ज्वरादिके साथ-साथ रोगीकी जानके भी चले जानेकी सम्भावना रहती है। उसे रोक रखनेके लिये अर्थात् प्राणोंकी रक्षाके लिये जब वह औषध आदिका प्रबन्ध करता है तब वह महाविष्णुका कार्य करता है और रोगके चले जाने तथा प्राणोंके बच जानेपर जब वह पौष्टिक आहार तथा टॉनिक आदि औषधकी व्यवस्था करता है तब वह शरीरमें नया बल देता है अर्थात् ब्रह्माजीका सृष्टिरूपी काम करता है। इस दृष्टान्तसे स्पष्ट है कि रुद्र, विष्णु और ब्रह्माका परस्पर क्या सम्बन्ध है।

दार्शनिक

अतः जो मनुष्य यह कहे कि मैं विष्णुका भक्त हूँ, पर शङ्करको नहीं मानता, वह उसी श्रेणीका बुद्धिमान् है जो यह कहता हो कि मैं अपने प्राणोंकी रक्षा ही चाहता हूँ, पर त्रिदोषरूप विषम सन्निपात-ज्वरको नष्ट करना नहीं चाहता। परन्तु वह इस बातको भूल जाता है कि जबतक यह भयङ्कर रोग मूलसे नहीं मिट जाता, तबतक प्राण बचनेकी आशा ही नहीं हो सकती। सारांश यह कि जबतक रुद्रका काम नहीं होता तबतक विष्णुका कार्य ही कैसे सकता है ? इसीलिये शास्त्रोंमें कहा है कि दक्ष-प्रजापतिके यज्ञमें रुद्रके भागका प्रबन्ध न होनेपर नारायण भी नहीं आये, ब्रह्माकी बात तो दूर रही। कालकूट-विषसे जगत्को श्रीशङ्करने ही बचाया (श्रीहरिने नहीं)। श्रीहरिके श्रीरामादि अवतार जगत्की रक्षाके लिये अवश्य हुए, परन्तु उनमें जो संहारका काम किया गया वह तो सब श्रीरुद्रके अंशसे ही किया गया इत्यादि ।

दूसरी ओर, जो मनुष्य यह कहता है कि मैं शिवको ही मानता हूँ, हरिको नहीं, वह उस श्रेणीका बुद्धिमान है जो यह कहे कि मैं इस ज्वरको तो उतरवाना चाहता हूँ, परन्तु प्राण-रक्षा नहीं चाहता !

इन दोनों बातोंपर विचार करनेसे ही निम्नलिखित शास्त्र-वचनोंके औचित्यका पता लग जाता है ।

वैष्णवानां यथा शम्भुः

और—

शाम्भवानां यथा विष्णुः

अर्थात् श्रीशिव परमवैष्णव हैं और श्रीहरि परमशैव हैं ।

शिवसहस्रनाम, विष्णुसहस्रनाम, काशीखण्ड, श्री-मद्भागवत आदि ग्रन्थोंसे इस लेखमें दिये हुए अनेकानेक प्रमाणोंसे भी यही तात्पर्य स्पष्ट होता है ।

ब्रह्माजीकी बात तो यह है कि जैसे सन्निपात-ज्वरके उतर जाने और जान बच जानेपर पौष्टिक पदार्थ खाने या टॉनिक आदिके सेवनकी बात अपने आप ही आ जाती है, उसी प्रकार रुद्र और विष्णुके कार्य पूरे हो जानेपर ब्रह्माका कार्य अपने आप उपस्थित हो जाया करता है, इसीलिये शङ्कर और नारायणकी उपासनाकी खास जरूरत होती है, परन्तु ब्रह्माजीके आराधनकी खास आवश्यकता नहीं होती ।

गुरुका दृष्टान्त

हम इस तत्त्वको गुरुके दृष्टान्तसे भी समझ सकते हैं । गुरुका यह वर्णन प्रसिद्ध है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुरेव महेश्वरः ।

गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

इसका कारण यह है कि जब गुरु अपने शिष्योंकी बुद्धिमें समाये हुए अन्यथाज्ञानरूपी अज्ञानको यानी भ्रमको दूर करता है तब तो संहाररूपी कार्य करनेके कारण वह रुद्र है, जब वह शिष्यकी बुद्धिमें यथार्थ ज्ञानकी रक्षा करता है तब रक्षक होनेके कारण विष्णु है और जब उस ज्ञानको नयी-नयी विशाएँ देकर बढ़ाता है तब वह नयी सृष्टि करनेवाला होनेके कारण ब्रह्मा है ।

इस दृष्टान्तमें भी आपसमें यही क्रम होता है जो वैद्यके दृष्टान्तमें समझाया गया है । अर्थात् रुद्र पहले अज्ञानका संहार करें, इसीके साथ-साथ विष्णु प्राण अर्थात् ज्ञानमूलकी

रक्षा करें और इन दोनोंके होनेपर ब्रह्मा ज्ञान बढ़ाते चले । अतः सन्निपात-ज्वरको हटानेवाले वैद्यकी भाँति अज्ञानरूपी रोगको हटानेवाले गुरुके सदृश श्रीशङ्करको पहले अपना कार्य करना पड़ता है, तत्पश्चात् सब अपने-अपने कार्यका सञ्चालन करते हैं ।

गुरु शब्दका अर्थ

अब गुरु-शब्दके अर्थपर विचार करना है । गु=अज्ञान और रु=निवारण करनेवाला । इसलिये वैद्य और गुरुके कर्त्तव्यकी दृष्टिसे भी, जिसमें व्याधि और अज्ञानका निवारण ही प्रथम कार्य है, श्रीशङ्कर ही सबके लिये आदिवैद्य (या वैद्यनाथ) और आदिगुरु (या जगद्गुरु) हैं । अतएव कल्पावसरे दक्षिणामूर्तिरूपसे वही प्रथम गुरु होते हैं, श्रीहरिभक्तशिरोमणि श्रीनारदादि ब्रह्मपिरजोंको भी वही ज्ञानोपदेश देते हैं । (श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें महर्षि श्रीमैत्रेयजीने यही कहा है) और हमारे इस कलियुगके आरम्भमें भी वही श्रीशङ्कराचार्यरूपसे पहले गुरु होते हैं ।

इसीलिये भगवान् श्रीनारायणने श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध, अध्याय ८८ में वृकासुरोपाख्यानमें भगवान् श्रीशङ्करका देव, महादेव, ईश, विश्वेश और जगद्गुरु—इन पाँच शब्दोंसे सम्बोधन और वर्णन किया है और उन्हीं श्रीशङ्करके श्रीशङ्कराचार्यरूपी अवतारमें भी श्रीपद्मपादाचार्यरूपसे स्वयं आकर सबसे प्रथम शिष्य बनकर हमलोगोंको सिखाया है कि भगवान् श्रीशङ्कर सबके अज्ञानको हरनेवाले हैं । अर्थात् वही यथार्थमें सर्वजगद्गुरु हैं अतएव सर्व-जगत्पूज्य हैं ।

यथार्थ सिद्धान्त

उपर्युक्त प्रमाणोंसे सिद्ध हो गया है कि श्रीनारायण और श्रीशङ्करमें कोई विवाद हो ही नहीं सकता । प्रत्युत इनका आपसमें अत्यन्त आदर और प्रेमका ही भाव शास्त्र-सिद्ध है । ऐसे जबरदस्त प्रमाणोंके होते हुए भी जो लोग श्रीहरिके भी परम आदरणीय, परम पूज्य, विश्वेश तथा जगद्गुरु शिवजीका द्वेष, तिरस्कार या निन्दा करते हैं वे कभी सच्चे वैष्णव नहीं माने जा सकते । इसी प्रकार जो लोग श्रीमहादेवजीके लिये परम आदरणीय और परम पूज्य इष्टदेव और उपास्यमूर्ति श्रीहरिका द्वेष, तिरस्कार या निन्दा करनेवाले हैं वे कभी सच्चे शैव नहीं माने जा सकते । वाम्भवमें ऐसे लोग अपने-अपने इष्टका तिरस्कार करनेवाले होनेके कारण निःसन्देह इष्टद्रोही ही हैं ।

साधनका विचार

मूर्ति-सम्बन्धी झगड़ोंको इसप्रकार हल करनेके बाद अब शेष रह जाता है साधनोंका विचार। इसमें भी बहुत-से भ्रम फैले हुए हैं। स्मार्त और वैष्णवोंका खूब झगड़ा चलता है। भक्ति मुख्य है या ज्ञान और वैराग्य—इसको लेकर विवाद हुआ करते हैं। कुछ 'वैष्णव' कहानेवाले लोग ऐसे भी होते हैं जो ज्ञान और वैराग्यको शैव-सम्प्रदायके साधन बतलाकर उनकी शुष्क ज्ञान और शुष्क वैराग्य आदि शब्दोंसे निन्दा करते हैं, इसी प्रकार कुछ 'शैव' भी ऐसे होते हैं जो ज्ञान और वैराग्य आदि साधनोंका नाम लेकर भक्तिको मन्दाधिकारियोंके लिये विहित किया हुआ साधन बताते हुए उसकी निन्दा करते हैं। ये दोनों ही पक्ष दुराग्रही हैं अर्थात् भ्रमपूर्ण हैं। यद्यपि भगवान् श्रीशङ्कराचार्य ज्ञानकाण्डके खास और जबरदस्त आचार्य थे, तथापि उन्होंने भक्तिकी खूब महिमा गायी है और भक्तिरससे भरे हुए अनेकों स्तोत्र रचे हैं। श्रीशङ्कराचार्यके सिद्धान्तके शिरोमणिरूपी 'अद्वैतसिद्धि' के ग्रन्थकर्ता श्रीमधुसूदन सरस्वती महाराज तो भगवान् श्रीकृष्णके परमभक्त तथा उपासक थे और 'भक्तिरसायन' नामक अद्वितीय भक्ति-प्रधान ग्रन्थके रचयिता भी थे।

पद्मपुराणका भक्त्युपाख्यान

इस सम्बन्धमें अब विस्तारमें उतरनेकी आवश्यकता नहीं है। पद्मपुराणके उत्तरखण्डके भक्ति-नारदसंवादरूपी छः अध्यायवाले एक सुन्दर उपाख्यानसे ही इन तीनों साधनोंका सम्बन्ध सहजहीमें स्पष्ट हो जाता है। उस उपाख्यानका सारांश यह है कि ज्ञान और वैराग्य दोनों भक्तिके पुत्र हैं और इन दोनों पुत्रोंकी अस्वस्थताके कारण माता भक्तिदेवी दुखी रहती हैं। इसका तो अर्थ अति स्पष्ट है कि भक्तिसे ही ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होते हैं और इन दोनोंके स्वस्थ न होनेपर भक्ति भी अच्छी नहीं रह सकती—ऐसी दशामें ज्ञान और वैराग्यकी प्रशंसा करनेवाले शैव उनकी

माता भक्तिकी निन्दा कैसे कर सकते हैं ? और इसी प्रकार भक्तिकी प्रशंसा करनेवाले वैष्णव उसके इन दोनों प्यारे पुत्रोंकी निन्दा कैसे कर सकते हैं ? हमारी समझमें तो यह बात उतरती ही नहीं।

इन सब विचारोंसे स्पष्ट है कि साधनोंमें भी वस्तुतः कोई झगड़ा नहीं है, बल्कि समन्वय ही है। भगवान् आनन्दकन्द परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने भी श्रीमद्भगवद्गीताके सातवें अध्यायके पहले श्लोकमें कहा है—

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युजन्मदाश्रयः ।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

भगवान्का भक्त होकर, भगवदेकशरण होकर अपने-अपने अधिकारके अनुसार स्वस्वधर्मानुष्ठानरूपी कर्मयोगमें तत्पर रहकर (अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा) हम निःसन्देह और अखण्ड भगवद्विज्ञानको प्राप्त कर सकते हैं। अतः भक्ति-सहित स्वधर्माचरणका फल चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञान है और उस फलका फल मोक्ष है।

इसलिये हम सबको जिज्ञासु, मुमुक्षु, आरुक्षु और साधककी हैसियतसे, इन आपसके रागद्वेष और पक्षपातके झगड़ोंको छोड़कर भगवान्के बताये हुए इस दिव्य सुन्दर मार्गको ग्रहणकर अपने परमात्म-साक्षात्काररूपी लक्ष्यमें दत्तचित्त हो और सब बातोंको छोड़कर अपने साधनमें तत्पर रहना चाहिये। क्योंकि भगवती श्रुति स्वयं कहती है—

अन्या वाचो विमुञ्चत

यही इहलोकमें सुख, परलोकमें सद्गति और अन्तमें मोक्षप्राप्तिरूपी सर्वतोमुख कल्याणका एकमात्र साधन है।

अनन्तभुवनावलीस्थितसमस्तविद्याव्रत-

प्रवीणजनताम्रणीविहितपादपद्मानतम् ।

सरोजचरणाभिधाकृतिधरोरगक्षमापति-

स्वतत्त्वमुखशिष्यसत्कृतपदं भजे शङ्करम् ॥३॥

ओं तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु ।

* पूज्य श्रीजगद्गुरु महाराजने यह लेख बहुत पहले भेज दिया था, किन्तु पोस्ट-आफिसकी भूलसे वह हमें नहीं मिला। दुबारा भेजनेपर भी वह हमारे पास नहीं पहुँचा। इसलिये यह लेख उन्होंने तीसरी बार लिखकर भेजा है। इस कष्टके लिये हम आपके अत्यन्त आभारी हैं। लेख बहुत विलम्बसे तथा निरकालतक प्रतीक्षा करनेके बाद मिला, इसलिये हम उसे अविकलरूपसे नहीं छाप सके। हमें बाध्य होकर उन श्लोकोंको निकाल देना पड़ा, जिन्हें जगद्गुरु महाराजने प्रमाणरूपमें विभिन्न ग्रन्थोंसे उद्धृत किया था। उनके अथके अन्तमें पाठकोंके परिचयके लिये ग्रन्थका नाम, अध्याय तथा श्लोक-संख्या हमने दे दी है। हमारी परिस्थितिको समझकर आशा है, श्रीजगद्गुरु महाराज एवं पाठक हमें क्षमा करेंगे।

—सम्पादक

ब्रह्म ही शिव है

(श्रीकाशी-प्रतिवादिभयङ्करमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीभगवद्रामानुजसम्प्रदायाचार्य श्री ११०८ श्रीअनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज)

न सन्न चासच्छिव एव केवलः ।

उपर्युक्त वाक्य वेदका है। इसका अर्थ है कि सृष्टिके पूर्व न सत् ही था और न असत्, किन्तु केवल शिव था।

यह बात सर्वसम्मत है कि जो वस्तु सृष्टिके पूर्व हो वही जगत्का कारण है और जो जगत्का कारण है वही ब्रह्म है।

ब्रह्मका लक्षण बतलाते हुए वेद कहता है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि
जीवन्ति यत् प्रथम्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म ।

अर्थात् ये भूत जिससे पैदा होते हैं, जन्म पाकर जिसके कारण जीवित रहते हैं और नाश होते हुए जिसमें प्रविष्ट हो जाते हैं, वही जिज्ञासाके योग्य है और वही ब्रह्म है। वेदान्तदर्शनकार भगवान् व्यासने भी 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस प्रथम सूत्रमें ब्रह्मजिज्ञासाकी कर्तव्यता बतानेके बाद ही 'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्रमें ब्रह्मका लक्षण जगज्जन्मादि-कारणत्व ही बताया है। अस्य—इस जगत्के, जन्मादि-जन्म-स्थिति-लय आदि, यतः—जिससे हैं, वह ब्रह्म है—यह इस सूत्रका अर्थ है।

ब्रह्म ही जगत्के जन्मादिका कारण है, इस विषयमें तो किसीका मतभेद है नहीं। वही जगज्जन्मकारणत्व जो ब्रह्मके लक्षणमें अन्तर्गत है, 'न सन्न चासत्' इस श्रुतिमें शिवमें बताया गया है। कार्यकी उत्पत्तिके पूर्व जो नियमेन रहता हो वही कारण है। श्रुति कहती है कि सृष्टिके पूर्वकालमें सत् और असत् दोनों ही नहीं थे, केवल शिव ही था। 'सत्' चेतन वस्तुको कहते हैं और 'असत्' कहते हैं जड़ वस्तुको। इस संसारमें दो ही तत्त्व हैं, चेतन और अचेतन। ये दोनों जब नहीं थे तब एक शिव ही था, अर्थात् सद-सद्वस्तुओंकी उत्पत्तिके पूर्व शिव था। तब शिव ही उनका कारण होना चाहिये। वेदोंमें जगत्के कारणका निर्देश करनेकी यही प्रक्रिया है। यथा—

'नासदासांनो सदासात्तदानीं तम आसीत्तमसा गूळह-
मग्नेऽप्रकेतम् ।' इत्यादि ।

'सत्' उसको कहते हैं जो सदा एकरूप है। 'असत्' उसको कहते हैं जो परिणामके कारण नाना कालोंमें नानारूप है। चेतन अपरिणामी होनेसे सदा एकरूप है। अतएव वह 'सत्' कहलाता है। जड़ वस्तु परिणामी होनेसे नानारूप है, अतएव वह 'असत्' कहलाती है। जिस समय ये दोनों नहीं होते—वही सृष्टिके पूर्वका काल है, उस समय जो वस्तु रहती है वही सृष्टिका कारण है। 'न सन्न चासत्'—इस श्रुतिके अन्दर उस कालमें केवल शिवकी सत्ता बतायी गयी है, अतएव वही जगत्कारण होना चाहिये। समस्त वेदान्तशास्त्र ब्रह्मको जगत्कारण बता रहे हैं। अतएव यह बात माननी पड़ेगी कि ब्रह्महीका नाम शिव है।

'शिव' शब्द शुभावह या श्रेयस्कर वस्तुका वाचक है। ब्रह्म सर्वशुभकारी या सर्वश्रेयस्करी है, अतएव 'शिव' शब्द ब्रह्मवाचक भी हुआ। शुभार्थक 'शीङ्' धातुके साथ 'वन्' प्रत्ययका योग होनेसे 'शिव' शब्द बनता है।

ब्रह्म ही शिव है, इस तरह शिवको जगत्का कारण बतानेवाली श्रुतिकी सङ्गति हो जाती है।

यद्यपि त्रिमूर्तिके अन्तर्गत देवता-विशेषके नामोंमें भी 'शिव' शब्दका पाठ कोशोंमें है तथापि परब्रह्मके अर्थमें 'शिव' शब्दका प्रयोग मुख्य और त्रिमूर्तिके अन्तर्गत देवता-विशेषके अर्थमें गौण मानना होगा, जैसा कि इन्द्रादि शब्दोंका स्वर्गाधिप आदिके अर्थमें मुख्य और शचीपति आदिके अर्थमें गौण प्रयोग होता है। यह बात वेदान्त-दर्शनके ज्ञाता विद्वान् पुरुष जानते हैं। वेदान्तदर्शनमें 'आकाशस्तद्विज्ञात्', 'प्राणन्तथानुगमात्' इत्यादि सूत्रोंसे आकाश, प्राण आदि शब्दोंकी मुख्य वृत्ति ब्रह्ममें सिद्ध करके भौतिक आकाश आदिमें गौणवृत्ति स्थापित की गयी है। इसी प्रकार 'शिव' शब्दका भी परब्रह्ममें मुख्य वृत्ति और त्रिमूर्तिके अन्तर्गत देवता-विशेषमें गौण वृत्ति स्वीकार करना आवश्यक और युक्त है। सर्वोत्कृष्ट शुभावह ब्रह्म हो सकता है। त्रिमूर्तिके अन्तर्गत देवता-विशेष शिव संहारकर्तामाने जाते हैं, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हैं। यदि उन्हीं शिवको उपर्युक्त वेदवाक्यके अन्तर्गत 'शिव' शब्दका वाच्य मानें तो उनका जगत्कर्तृत्व सिद्ध नहीं होगा, अतएव इस

श्रुतिमें प्रतिपादित शिव त्रिमूर्तिके अन्तर्गत शिव न होकर जगत्के जन्म आदिके कारण ब्रह्म ही हैं—ऐसा मानना होगा।

कुछ लोग ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—इन त्रिमूर्तियोंमें समानता मानते हैं, कुछ लोग इनमेंसे एकको मुख्यत्व देते हैं। समानता माननेवाले तीनोंको एक ही ब्रह्मका अंश मानते हैं, एकको मुख्यत्व देनेवाले उस एकको साक्षात् ईश्वरका अवतार और शेष दोको ईश्वरांशविशिष्ट जीवरूप मानते हैं।

एष खलु वा अस्य राजसोऽंशो योज्यं ब्रह्मा, एष खलु वा अस्य सात्त्विकोऽंशो योज्यं विष्णुः, एष खलु वा अस्य तामसोऽंशो योज्यं रुद्रः।

—इस श्रुतिके अनुसार तीनों ही ब्रह्मांश हैं, इसमें सन्देह नहीं। अतएव ब्रह्मांशभावसे तीनोंमें समानता है—इसमें

भी सन्देह नहीं। किन्तु, तीनों मूर्तियोंके कार्योंमें भेद और तन्मूलक गुणभेद तो अवश्य ही वर्तमान है, यह बात उक्त श्रुतिसे स्पष्ट हो जाती है। इन तीनोंका जो मूल है वही ब्रह्म है। एक मूर्तिकी प्रधानता माननेवालोंके मतमें, तीनोंमेंसे एक साक्षात् परमात्माका अवताररूप है, बाकी दो ईश्वराविष्ट जीवरूप हैं। इस पक्षमें भी त्रिमूर्तियोंमें मुख्य एकके अवतार-रूप होनेसे उसका भी मूलभूत परब्रह्म है। अतएव त्रिमूर्तिके अन्तर्गत शिव मुख्य न होकर तन्मूलभूत ब्रह्म ही मुख्य शिव है। वह तो ब्रह्म ही है। कुछ लोग त्रिमूर्तिके परे तुरीय-तत्त्वको शिव मानते हैं। अर्थात् वे तीनों मूर्तियोंको सादि मानकर सबकी मूलभूत जो वस्तु है, वही ब्रह्म है, उसीका नाम शिव है—ऐसा मानते हैं। इन सभी पक्षोंमें ब्रह्म ही शिव है—यह सिद्धान्त अधुण ही रहता है।

शिवाद्वैत-सिद्धान्त

(श्री १०८ जगद्गुरु पञ्चाक्षरशिवाचार्य महास्वामी, काशीक्षेत्र)

त्रैलोक्यसम्पदालेख्यसमुल्लेखनभित्तये । सच्चिदानन्दरूपाय शिवाय ब्रह्मणे नमः ॥



स शिवाद्वैत-मतके शक्ति-विशिष्टाद्वैत, विशेषाद्वैत, भेदाभेद आदि अनेक नाम होनेपर भी इन सबका अर्थ एक ही है। 'शिव' शब्दका अर्थ है चिच्छक्तिविशिष्ट। इसके साथ (मुक्तदशामें) चित्तशक्ति-विशिष्ट जो जीव है उसके अद्वैत (अभेद) का प्रतिपादन करनेवाला मत ही शिवाद्वैत-मत है। इसी प्रकार 'वि' का अर्थ है शिव और 'शेष' कहते हैं जीवको; मुक्ति-दशामें इन दोनोंके अद्वैतको माननेवाला विशेषाद्वैत-मत है। बद्धदशामें शिवके साथ जीवोंके पारमार्थिक भेदको और मुक्तदशामें पारमार्थिक अभेदको जो मत मानता हो, उस मतका ही नाम भेदाभेद है। शास्त्रकारोंने इस शिवाद्वैतको 'लिङ्गाङ्ग-सामरस्य' के नामसे निर्दिष्ट किया है। 'लिङ्ग' का अर्थ है शिव; इसके साथ अङ्ग अर्थात् जीवका सामरस्य (अभेद) ही इसका वाच्यार्थ है। स्वप्रकाशता-शक्ति- (चिच्छक्ति) विशिष्ट ही शिव है। 'वश कान्तौ' धातुके वर्ण-व्यत्ययसे 'शिव' शब्द निष्पन्न हुआ है, जैसे 'दश' धातुसे 'कश्यप' और 'हिसि' धातुसे 'सिंह' शब्दकी व्युत्पत्ति हुई है। इसमें यह नीचेकी सूक्ति प्रमाण है—

हिसिभातोः सिंहशब्दो वशकान्तौ शिवः स्मृतः ।

वर्णव्यत्ययतः सिद्धः पश्यतेः कश्यपो यथा ॥

शिवके अति परिशुद्ध, आश्रितोंके कल्याणदाता, सबके साथ समता रखनेवाले और भक्तोंके सिद्धिप्रद होनेके कारण इनका 'शिव' नाम सार्थक है। इस विषयमें—

अनादिमलसंश्लेषप्रागभावात् स्वभावतः ।

अत्यन्तपरिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते ॥

अथवाशेषकल्याणगुणैकघन ईश्वरः ।

आश्रितात्यन्तशिवदः शिव इत्युच्यते बुधैः ॥

इत्यादि शिवपुराणके वचन और—

समा भवन्ति ते सर्वे दानवा मानवाश्च ये ।

शिवोऽस्मि सर्वभूतानां शिवश्च तेन मे स्मृतम् ॥

—यह महाभारत-कर्णपर्वका श्लोक भी प्रमाण है। 'शिव एव केवलः', 'शिवमद्वैतम्', 'शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्' 'तस्मात् सर्वगतः शिवः'—इत्यादि श्रुतियोंमें शिव नाम सुप्रसिद्ध ही है। शिव-नामके मङ्गल-वाचकत्वमें 'शिवा ऋतवः सन्तु' आदि सूक्तियाँ साक्षी हैं। ये परमशिव ही

उत्तरमीमांसाशास्त्रके प्रतिपाद्य हैं। ये निर्विशेष नहीं हैं। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' नामक सूत्रमें पठित ब्रह्मको भी निर्विशेष मान लेनेसे आगे 'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्रसे कथ्यमान 'जगज्जन्मादिजनकत्व' रूपी जो ब्रह्मका लक्षण है उसकी सङ्गति नहीं होगी। इसलिये 'जगज्जन्मादि-कार्यानुकूलशक्तिविशेष' को परमशिव ब्रह्मके अन्दर मानना ही पड़ेगा। शक्तिहीन जो चैत्र, मैत्रादि (मृत) हैं वे कुछ भी नहीं कर सकते। यह सब लोग जानते ही हैं कि चुम्बकमें सूईको खींचनेकी शक्ति है। बीजमें भी अङ्कुरोन्मुख शक्ति न रहे तो आगे वह पल्लवित होकर फल नहीं सकेगा। विशाल और महत्तरकाय वृक्षमात्रको अपने-में अन्तर्गत करनेकी शक्ति वट-बीजमें माननी ही पड़ेगी। इसी तरह संसारमें दृश्यमान जो कारण-वस्तुएँ हैं उनमें रहनेवाली कार्यानुकूल शक्तिको मानना जरूरी है। अग्निमें दाहानुकूल शक्ति न हो तो प्रतिबन्धक मणिके रहनेपर भी उससे दाह-क्रिया हो जानी चाहिये और उत्तेजक मणिकी सन्निधिमें दाह-क्रिया नहीं होनी चाहिये; परन्तु ऐसा होता नहीं। इसलिये प्रतिबन्धकके रहनेपर दाह-शक्तिके सङ्कोचको और उत्तेजकके होनेपर उसके विकासको अग्निके अन्दर स्वीकार करना ही होगा। यह शक्ति अग्निसे न तो अतिरिक्त है, न अनतिरिक्त; किन्तु आविनाभूत (भिन्नाभिन्न) है—इस बातको शिवाद्वैती (वीरशैव) मानते हैं; इसलिये शक्ति-स्वीकारके विषयमें नैयायिकोंद्वारा दिखाये जानेवाले किसी दोषकी गुंजाइश नहीं है। चुम्बकमें शक्ति न हो तो उसके आकर्षणरूपी कार्यकी उत्पत्ति जैसे नहीं होती, उसी तरह परमशिव ब्रह्ममें शक्ति न हो तो संसारको उत्पत्ति आदि कार्य ही न हों; इसी कारण भगवान् वादरायणका सविशेष (शक्तिविशिष्ट) ब्रह्ममें ही तात्पर्य है, यह स्पष्ट है। और 'उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्' इत्यादि श्रुति-वाक्योंसे भी यही प्रतिपादित होता है कि उमारूपी शक्तिसे विशिष्ट ही परमशिव ब्रह्म हैं। रज्जुमें सर्प-की तरह ब्रह्ममें रहनेवाली शक्ति मिथ्या नहीं है, किन्तु सहजसिद्ध है। इस विषयमें—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

यह श्वेताश्वतर-श्रुति प्रमाण है। इसके अतिरिक्त—

एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे आसुस्तं रुद्रं पशुस्तं
शुपस्वैव ते भागः सह स्वस्वाम्बिकया तं जुपस्व ।

—यह यजुर्वेद-वाक्य भी प्रमाण है। इस श्रुतिका 'क्रिया-सार' के प्रणेता श्रीमन्नीलकण्ठ शिवाचार्यने जो अर्थ किया है उसका कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

'रुद्र ही शिव हैं, वे संसाररूपी दावानलसे परितप्त जीवरूपी पशुके रोगरूपी पाशको काटनेवाले हैं, इसलिये उनका 'रुद्र' नाम सार्थक और प्रसिद्ध है। जैसे 'शङ्खः श्वेत एव' इस वाक्यका 'शङ्खमें श्वेतातिरिक्त वर्ण नहीं है'—यही अर्थ होता है, उसी तरह 'एव रुद्रः' इस वाक्यसे यही सिद्ध होता है कि संसारके दुःखोंको दूर करनेवाला एकमात्र रुद्र ही है, दूसरा कोई नहीं। ×××××××××××××××× धर्मरूपिणी शक्ति और धर्मरूपी शिव—इन दोनोंमें शिव ही एकमात्र क्रतुपति हैं, शक्ति नहीं—ऐसा आक्षेप होनेपर उसका परिहार 'सह स्वस्वाम्बिकया' इस वाक्यसे हो जायगा। 'अम्बिकया=जगज्जननीरूपिणी शक्तिसे ('अम्बा माता'—इस अमरकोशके वचनसे भी 'अम्बिका' शब्दका अर्थ जगज्जननी होता है) सह=युक्त होकर हविर्भागको स्वीकार करो'—यह अर्थ होनेसे क्रत्वधीश्वरत्वरूप लक्षण शक्तिविशिष्ट शिवमें ही घटता है। यहाँ 'अम्बिकया' पदसे शिव-शक्तिको अखिल जगत्की उत्पत्तिकारण बतलाया गया है। वह इसप्रकार है—पुष्पकी कलीमें रहनेवाली शक्ति जब विकासोन्मुख होगी तब उसका कोरकभाव विलीन होकर उसके अन्दर गन्धका सञ्चार होने लगेगा। उसके बाद वायु-सम्पर्कसे पुष्पके अवयव भी गन्धविशिष्ट हो जायेंगे; इसप्रकार विकसित अवयववाले पुष्पसे गन्ध-विशिष्ट पुष्पांश बाहर निकल आवेंगे; इसी प्रकार शिवकी चिच्छक्ति भी जब अङ्कुरोन्मुख बीजकी भाँति सृजनोन्मुख होती है, उस समय उस शक्तिसे सकल चेतनाचेतनरूपी शिवांश शक्तिविशिष्ट होकर ही प्रकट होते हैं, इसीलिये दूसरोंकी भाँति जीवको व्यापक न मानकर शिवाद्वैतीलोग यह कहते हैं कि जीव अणु है। परमात्मामें इसप्रकार जगज्जननीरूपिणी शक्तिको नहीं माननेवाले केवलाद्वैती लोग ऐसे क्षीण हो जाते हैं जैसे बिना माताके बच्चे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। शिशु बन्धनमें फँसकर जब छटपटाता एवं रोता है तब आड़में रहनेवाली माता तुरन्त आकर उसको गोदमें उठा लेती है और उसके सङ्कटको दूरकर उसको सुख पहुँचाती है; वैसे ही जीव भी चित्तरूपी बन्धनमें पड़कर सांसारिक तापत्रयकी अग्निसे जलता हुआ जब छटपटाने लगता है तब वह जगज्जननी चिच्छक्ति

(पराहंतामय विमर्शक शक्ति) प्रकट होकर जीवकी सकल सांसारिक तापाश्रिको शमन करती हुई जीव-भावको भी नष्ट कर उस शुद्धांशको शिवमें मिलाकर 'शिव' बना देती है। इसप्रकार 'विश्वात्मकः शिवोऽहम्'—इस आकारकी बुद्धि-शक्तिको भी परमात्मामें नहीं माननेवालोंको कोई भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता, यह निर्विवाद सिद्ध है।

शक्ति और शिव भिन्न-भिन्न दो पदार्थ हैं, वही संसार-के माता-पिता हैं—ऐसा माननेसे 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतियोंसे सिद्ध होनेवाले अद्वैतकी हानि होगी। इसलिये यदि कोई कहे कि शिवमें मिथ्याभूत माया-शक्तिको मानना ही अनुचित है, तो इसका उत्तर यह है कि 'अम्बिकया' पदके साथ 'स्वत्वा' यह विशेषण उसके परिहारार्थ ही तो दिया गया है। 'स्वत्वा' का अर्थ है 'सहजसिद्ध'। इस अर्थको श्रीहरदत्ताचार्य और श्रीसुदर्शनाचार्यने भी स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि पुष्पमें गन्ध, चन्द्रमें चन्द्रिका और प्रभाकरमें प्रभा जैसे नित्य एवं स्वभावसिद्ध है, उसी प्रकार शिवमें शक्ति भी नित्य और स्वभावसिद्ध है। इससे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतियोंका तात्पर्य केवलद्वैतमें न होकर शक्तिविशिष्टाद्वैत (शिवाद्वैत) में ही है। जैसे 'इस घरमें देवदत्त एक ही है'—इस वाक्यका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि उसके कर-चरणादि अवयव नहीं हैं, उसी प्रकार 'ब्रह्म एक ही है' इस वाक्यसे भी यह अर्थ नहीं निकल सकता कि उसमें सहजसिद्ध शक्ति भी नहीं है, इसलिये अनेकानेक श्रुतियोंके अनुभवसे शक्तिविशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तकी ही प्रतिष्ठा होती है। 'क्रियासार' के रचयिता श्रीमन्निलकण्ठ शिवाचार्यका तात्पर्य भी यही है।

हमने पहले सूचित किया था कि शक्तिविशिष्टाद्वैत-का अर्थ लिङ्गाङ्ग-सामरस्य है। वह इसप्रकार है—

शक्तिश्च शक्तिश्च शक्ती; शक्तिभ्यां विशिष्टौ शक्ति-विशिष्टौ; शक्तिविशिष्टयोः अद्वैतं शक्तिविशिष्टाद्वैतम्।

यहाँ 'विशिष्टौ' पदसे शिव और जीवका तात्पर्य है; इनमें रहनेवाली दो शक्तियोंको चिच्छक्ति और चित्तशक्ति जानना चाहिये। इनका सामरस्य अर्थात् अभेद ही है। शिव और जीवको ही 'लिङ्ग' और 'अङ्ग' नामसे निर्दिष्ट किया गया है। 'लिङ्गाङ्ग' में जो चिच्छक्ति है उसने 'मयूराण्डरसगत-पादपक्षवर्णवैचित्र्य' न्यायसे सूक्ष्म चिदचित्प्रपञ्चको अपने

अन्तर्गत कर रक्खा है। इसीको 'विमर्श-शक्ति' या 'इच्छा-शक्ति' भी कहते हैं। इसप्रकारकी शक्तिसे विशिष्ट ही लिङ्ग है, इस विषयमें 'चैतन्यमात्मा' यह शिवसूत्र प्रमाण है। यह शक्ति फूले हुए बीजकी भाँति सृष्ट्युन्मुख होकर 'घृत-काठिन्य' न्यायसे अपने अन्दर स्थित समरस ज्ञान-क्रियाओंका परस्पर भेद करती है। वह भेद-बुद्धि ही माया-तत्त्व है। इसमें वह माया स्वयं प्रतिस्फुरण-गतिसे प्रविष्ट होकर सुख-दुःख एवं मोहको पैदा करनेवाली सत्त्वरजस्तमः-स्वभावरूप प्रकृति अथवा चित्तशक्ति कहलाती है। यहाँ 'चित्तिरेव चेतनपदावरूढा चैत्यसङ्कोचिनी चित्तम्'—यह शक्तिसूत्र ही प्रमाण है। इसप्रकारका चित्तशक्तिविशिष्ट शिवांश (चैतन्य) ही अङ्ग है। इसके 'जीव' और 'पुरुष'—ये दो नाम और भी हैं। 'चित्तमात्मा' नामक शिवसूत्रसे यही सिद्ध होता है और जीवके शिवांश होनेके विषयमें भी जगद्गुरु श्रीरेणुकाचार्य भगवत्पादकी—

अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तदंशो जीवनामकः।

—यह उक्ति, श्रीनीलकण्ठ शिवाचार्यकी—

शिवांशा ब्रह्मचिष्णवाद्या अंशी देवः शिवः स्मृतः।

—नामक सूक्ति, श्रीमद्भगवद्गीताका 'ममैवांशो जीव-लोके' यह वचन और 'अंशो नाना व्यपदेशात्' यह ब्रह्मसूत्र भी प्रमाण है। इस जीवके स्वतन्त्र, स्वप्रकाश शिवसे विभक्त होनेका कारण यह है कि मायाने जब उसपर आक्रमण किया तब वह आणवमायीय कर्म मलोंसे आवृत होकर संसारी कहलाया और उपासक बना। लिङ्गकी 'स्थल' संज्ञा भी है। अनुभवसूत्रकी—

स्थलं नाम परं तत्त्वं शिवरूपादिसंज्ञकम्।

उपास्योपासकत्वेन स्वयमेव द्विधा भवेत्॥

—इस सद्भुक्तिके अनुसार लिङ्गाङ्ग-भेदसे दो प्रकारका होकर वह लिङ्ग-तत्त्व आगे चलकर पृथिव्यादिके अभिमान-से भक्तादि भिन्न नामवाला ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव और शुद्धात्मा—इस तरह छः प्रकारका हुआ। लिङ्ग भी भक्तादिके अनुग्रहार्थ पृथिव्यादिका अधिष्ठान होनेसे आधारदि छः स्थलोंमें सद्योजातादि भिन्न नामवाला आचारादि लिङ्ग-भेदसे छः प्रकारका हुआ। इस तरहके लिङ्गाङ्गोंका अद्वैत ही 'शक्तिविशिष्टाद्वैत' पदसे व्यक्त किया जाता है। इन लिङ्गाङ्गोंका अग्नि और उसके कर्णा-की भाँति भेदाभेद होनेके कारण—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वर्य-
नभस्सन्नयोऽभिचाकशीति ॥

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परब्रह्मापरब्रह्म ।

—इत्यादि भेद-प्रतिपादक श्रुतियोंका और—

‘एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म,’ ‘नेह नानास्ति किञ्चन,’ ‘एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्ये,’ ‘यत्र नान्यद् पश्यति, नान्यच्छृणोति, नान्यद्विजानाति स भूमा ।’

—इत्यादि अभेद-प्रतिपादक श्रुतियोंका परस्पर विरोध नहीं है। जीव और ईश्वरका भेदवादियोंकी भाँति केवल भेद ही कहें तो अग्नि और उसके कणको भी भिन्न कहना पड़ेगा। तब कपासमें लगे हुए कणोंमें दाहकता न रहनी चाहिये, क्योंकि वे कण अग्निसे भिन्न ही तो हैं। अग्निसे भिन्न जलमें जो दाहकत्वका अभाव है वह सभीको विदित है। इसके अतिरिक्त ‘यदग्रे रोहितं रूपम्’ इस छान्दोग्य-श्रुतिसे सिद्ध अग्निके रोहित (लोहित=लाल) रूपसे कणका भिन्न रूप दिखायी पड़ना चाहिये! इसीलिये अग्नि और कणोंमें दाहकत्व एवं रोहित रूप होनेसे केवल भेदका ही प्रतिपादन नहीं किया जा सकता, किन्तु अभेद भी मानना पड़ेगा। यदि उनका केवल अभेद ही दृष्ट हो तो अग्निके पाक-साधनत्व, शीत-निवर्तकत्वादि समस्त धर्म उसके कणमें भी होने चाहियें! सभीके अनुभवसे यह सिद्ध है कि ऐसा होता नहीं। इसीलिये ‘क्रियासार’के रचयिताने—

अग्निस्फुल्लिङ्गयोर्नास्ति यथा भेदः स्वरूपतः ।

अग्निस्त्वेन कणस्त्वेन भेदोऽपि स्फुरति कचिव ॥

—यह कहा है। इसी तरह अंशीरूप शिवमें और अंशरूप जीवमें भी भेद और अभेद दोनों ही मानने उचित हैं, उपनिषदादिमें लिङ्गके निरंश कहे जानेपर भी अघटन-घटना-शक्ति-परिकल्पित जो अंश है उसका भेद सम्भव है। वह इसप्रकार है—अपने चक्रवर्तित्वके अनुसार छत्र, चामर, बाहनादि राजचिह्नोंसे युक्त होनेपर भी सार्वभौम अपने विनोदके लिये जैसे पैदल चलना स्वीकार करता है उसी प्रकार शिव भी अखण्डानन्दरसके आस्वादसे परितृप्त होनेपर भी खण्डरसके आस्वादनकी इच्छासे ‘घृत-काठिन्य’ न्यायसे अंशतः स्वस्वातन्त्र्यकल्पित आणवादि मलत्रयसे आवृत होकर शरीरी बन जाता है। इस

मलावरणके कारण उस शिवांशरूपी जीवको उसी प्रकार अपने शिवत्वका ज्ञान नहीं रहता, जिसप्रकार पैदल चलने-वाले राजाको अपने राजा होनेका। ‘एकाकी न रमते स तु द्वितीयमैच्छत्’ इत्यादि श्रुतिके अनुसार परमशिव स्वयं अपनी स्वातन्त्र्य-शक्तिसे लिङ्गाङ्गरूपसे तथा उपास्योपासक-भावसे युक्त होकर रमण करता है, हमारे सिद्धान्तका यही अभिप्राय है।

मुक्त-दशामें जीवका जो (चित्तशक्ति नामक) विशेषण है उसमें रहनेवाले आणवमलरूपी अज्ञान एवं तमोभूत अविद्याके लय होनेपर वह जीव ‘तामसनिरसन-स्थलापन्न’ हो जाता है, उसकी चित्त-शक्ति चित्ति-शक्ति-रूपिणी हो जाती है। इस विषयमें शक्ति-सूत्रोंका ‘तत्परिज्ञाने चित्तमेवान्तर्भावेन चेतनपदाध्यारोहाश्रितिः’ यह सूत्र प्रमाण है। लिङ्गाङ्ग-सामरस्यके दृढ़ ज्ञानसे जीवभावको पैदा करनेवाले मलत्रयका नाश होनेपर शुद्ध ‘शिवांश’ रूपी आत्मा नदी-सागरोंके सामरस्यकी भाँति महालिङ्गके साथ अभेदको प्राप्तकर शिव ही हो जाता है, उस समय शिव और जीवोंका अभेद ही है। बद्धदशामें लिङ्गाङ्ग-सामरस्यका ज्ञान न होकर चित्ति-सङ्कोचरूपी मलोंसे आवृत होनेसे जीवको शिवत्वकी प्राप्ति नहीं होती, इसीलिये उनमें भेद है! इसलिये भेद और अभेदका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियोंका परस्परविरोध इस-शक्तिविशिष्टाद्वैतरूपी वीरशैव-सिद्धान्तमें नहीं है।

केचिद्वैतं प्रज्ञांसन्ति केचिद्वैतवादिनः ।

द्वयोः श्रुत्येकदेशित्वात् सर्वश्रुतिसमन्वयः ॥

भेदाभेदमते श्रौतैः परिग्राह्ये मुमुक्षुभिः ।

—इस कूर्मपुराणके वचनसे यह जान पड़ता है कि द्वैत और अद्वैत-मतोंमें श्रुतियोंकी एकदेशीयता होनेके कारण और भेदाभेद-मतमें सारी श्रुतियोंका समन्वय होनेसे पिछला मत मुमुक्षु वैदिकोंको परिग्राह्य है और यह भेदाभेदरूपी वीरशैव-मत ही परम वैदिक है। इसी बातको सिद्धान्तागममें भी स्पष्ट किया गया है—

द्वैताद्वैतमतं वीरशैवं मोक्षैककल्पकम् ।

सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥

यहाँपर यह शङ्का नहीं उठानी चाहिये कि शिव और जीवको भिन्न और अभिन्न-दोनों कहना परस्परविरुद्ध-सा है, क्योंकि प्रायः यह शास्त्र और लोकमें प्रसिद्ध ही है कि

जहाँ अभेद है वहाँ भेद भी है और जहाँ भेद है वहाँ अभेद भी है। नृसिंह-विग्रहमें नर और सिंहका भेद भी है और अभेद भी है। अर्धनारीश्वरमें नर (शिव) और नारी (गौरी) का भेद और अभेद दोनों हैं। लक्षणा एकमें ही जहदभेद और जहदभेद दोनों हैं, लोकमें भी एक ही वृक्षमें कपिके रहनेपर कपि-संयोगीका अभेद और कपिके न रहनेपर कपि-संयोगीका भेद देखा गया है। इसके अतिरिक्त जो भेद और अभेदको परस्परविरुद्ध कहता है उसको भेद और अभेदका ज्ञान तो रहना ही चाहिये, अन्यथा उनमें परस्परविरोधकी स्फूर्ति ही नहीं हो सकती। इसलिये उस भेदाभेदके ज्ञानमें जैसे भेद और अभेद दोनों हैं वैसे ही जीवके साथ शिवका भेद और अभेद दोनों ही हैं, क्योंकि शिव और जीवके भेदाभेद-विषयमें कोई विरोध नहीं है। हमारे इस शिवा-द्वैत-मतमें भेद और अभेद सहज ही हैं। बद्ध-दशामें जीव-भेदको सहज कहें तो उसके बन्धको भी सहज मानना पड़ेगा ! ऐसी दशामें उसकी निवृत्ति नहीं हो सकती। कोई यह कहे कि नीमके पेड़का कड़वापन किसी उपायसे भी निवृत्त नहीं हो सकता, तो यह ठीक नहीं है। हमारे शक्ति-विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तमें सृष्टि स्वाभाविक होकर जगत् शिव-रूप है। कटक-कुण्डलादि सोनेके स्वरूप ही तो हैं ? उनमें भी तो सुवर्णका स्वभाव निवृत्त नहीं हुआ है। उसी तरह वह कटक-कुण्डलादि जब गलकर कठोर हो जाते हैं तब कटक-कुण्डलोंके नाम-रूपका नाश न होकर उनका लय अर्थात् सङ्कोच हो जाता है। हमारे मतमें निवृत्तिका अर्थ लय ही है। इसी तरह जगत् और उसके अन्तःपाती बन्ध-के स्वाभाविक होनेपर भी उनकी निवृत्ति सम्भव है। यह नियम नहीं है कि सभी जगह स्वाभाविक पदार्थकी निवृत्ति हो ही नहीं सकती, क्योंकि मौक्तिकत्व-दशामें शुक्तिगत जलस्वभावकी निवृत्ति दिखायी देती है। और—

कीटो भ्रमरयोगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम् ।

मानवः शिवयोगेन शिवो भवति निश्चितम् ॥

—इस स्मृति-वाक्यके अनुसार कीटके भ्रमरत्वकालमें पहलेके कीट-स्वभावकी निवृत्ति देखी जाती है। उसी तरह शिवयोगसे जीवभाव (बन्ध) की निवृत्ति भी होती है, मुक्तात्मा शिवयोगाभ्याससे अपनी चित्तशक्तिका विकास करके चिच्छक्तिमें मिलकर शिव ही हो जाता है। उसे शिवकी भाँति 'विश्वात्मकः शिवोऽहम्' 'अस्मि, प्रकाशे, नन्दामि'—इसी प्रकारके अनुभव होते हैं, न कि 'स्थूलोऽहं

गच्छामि', 'अहं सुखी दुःखी' इत्यादि अभिमान। इसीलिये मुक्तात्मा सारे संसारको अपना शिवस्वरूप ही देखता है। उसकी दृष्टिमें दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है, होती तो उससे बन्ध होता। कारण, मुक्तात्माके लिये बन्धकी सम्भावना ही नहीं है। घड़ा बाहर हो तो उसको रस्तीसे बाँध सकते हैं; परन्तु जब वह इच्छा-भूमिमें सूक्ष्मरूपसे प्रवेश करता है तब उसके बन्धकी सम्भावना नहीं रहती, इसी प्रकार जीव शिवयोगसे अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण-शरीरोंमें इष्ट, प्राण एवं भावलिङ्गोंको दृढ़तासे धारणकर उन शरीरोंमें 'मैं' और 'मेरा' रूप अहङ्कार और ममकारको छोड़कर 'वह लिङ्ग ही मैं हूँ' इसप्रकारके साक्षात्कारके द्वारा शरीरत्रयकी निवृत्ति करके देहपातके बाद सर्वज्ञत्वादि छः शक्तियोंसे युक्त होकर जब शिवत्वको प्राप्त हो जाता है तब उसका पुनर्बन्ध नहीं होता। इसमें निम्नलिखित श्रुतियाँ प्रमाण हैं—

'न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते ।'

'अनाद्यस्यशब्दात् ।'

स्थूल शरीर ही कार्मिक मल है। इसके अन्तर्गत प्रकृतिसे लेकर पृथिवीतक २४ तत्त्व हैं। सूक्ष्म शरीर ही मायीय मल है, इसमें मायासे लेकर अविद्यापर्यन्त तत्त्व अन्तर्भूत हैं। 'मायोपरि महामाया'—इस उक्तिसे शुद्ध विद्याके नीचे और माया-तत्त्वके ऊपर रहनेवाली ही महामाया है। यह आणव-मलस्वरूप है। इस मलत्रयको श्रीगुरुमूर्तिके द्वारा—

देहत्रयगतानादिमलत्रयमसौ गुरुः ।

दीक्षात्रयेण निर्दश लिङ्गत्रयमुपादिशत् ॥

शिवदीक्षासे ही निवारण होकर 'यः शिवत्वसमावेशो वैधी दीक्षेति सा मता' के अनुसार शिष्यमें शिवत्वका भी समावेश हो जानेके बाद फिर शिष्यका क्या कर्तव्य रह जाता है ? क्या फिर श्रवण-मननादि व्यर्थ नहीं हो जाते—इत्यादि आशङ्काएँ नहीं करनी चाहियें। क्योंकि गुरुमूर्ति दीक्षात्रयसे शिष्यके मलत्रयको नष्टकर उसे 'शुद्धाध्व' में प्रवेश कराकर जब उसके अन्दर शिवत्वका आपादन कर देती है, तब उस शिष्यको 'मैं शिव ही हूँ'—ऐसा दृढ़तर स्वरूपसाक्षात्कार हो जाता है और वह मुक्त हो जाता है। पर यह मुक्ति सद्योनिर्वाण-दीक्षासे ही हो सकती है। इस दीक्षाके बाद देहपतनके साथ ही शिष्य मुक्त हो जाता है। उसे फिर श्रवण-मननादिकी ज़रूरत नहीं रहती। परन्तु चिरनिर्वाण-दीक्षाके योग्य स्त्री,

बालकादिको सद्योनिर्वाण-दीक्षा नहीं दी जा सकती। इनको चिरदीक्षा देकर गुरुमूर्ति 'तत्त्वमसि' महावाक्यार्थका ही बोध करानेवाले पञ्चाक्षरी महामन्त्रका उपदेश देकर 'इस मन्त्रका जप मत छोड़ो', 'तीनों सन्ध्याओंमें शिवपूजन करो', 'इस इष्टलिङ्गको ही परमशिव ब्रह्म समझो' इत्यादि आज्ञा देकर लिङ्ग और अङ्गके भेदको समझाकर लिङ्गोंके साथ उन अङ्गोंके सामरस्यको बतलाकर इस षडङ्गयोगके अभ्यासके लिये बाध्य करता है। शिष्य यदि दीक्षागुरुकी आज्ञाका पालन करता जायगा तो आगे मुक्तिरूप फलकी सिद्धि होनेमें कोई शङ्का नहीं रह जायगी। इस फलके लिये चिर-निर्वाण-दीक्षा-सम्पन्न लोगोंको दीक्षागुरुपदिष्ट शिवपञ्चाक्षरी-महामन्त्रका श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करते ही रहना चाहिये। साथ ही इस मन्त्रार्थके अनुकूल ब्रह्म-मीमांसाशास्त्र

और पुराणादिका पठन-पाठन करना चाहिये। इस मार्गका अनुसरण करनेसे दीक्षाकालमें गुरुका बोधा हुआ शिवतत्त्व-समावेशरूप लिङ्गाङ्ग-सामरस्यबीज अङ्कुरित और पल्लवित होकर फलीभूत होता है, अतएव—

आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया ।

दद्यान्नाद्यसरं किञ्चित् कामादीनां मनागपि ॥

—इत्यादि वचनोंकी सार्थकता है। इसप्रकार यह शिवा-द्वैतसिद्धान्त समस्त श्रुतियोंका समन्वय करनेवाला और मोक्षका एकमात्र कल्पतरु होनेके कारण मोक्षार्थी शिष्टलोग इसके आचरणको अपनाकर अनादि कालसे मुक्त होते आ रहे हैं।

ध्यातव्यः परमः शिवः ।

शुद्धाद्वैत-पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तमें शिव-तत्त्व

(लेखक—अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य श्रीमद्वल्लभाचार्यप्रकाशित शुद्धाद्वैत-सम्प्रदायाचार्य गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी महाराज-तनुज श्रीकृष्णजीवनजी 'विशारद,' बङ्गामन्दिर, बम्बई)



जकल जिस तरह हिन्दू-मुसलमान लड़ते हैं, उसी तरह प्राचीन कालमें शैवों और वैष्णवोंमें झगड़े हुआ करते थे। दोनों ओरसे गाली-गलौज और बलप्रयोगमें कोई कसर नहीं रक्खी जाती थी। रक्तपात करनेमें कोई ज़रा भी नहीं हिचकता था। ईश्वरको धन्यवाद देना चाहिये कि अब यह दशा नहीं है। तो भी आज कहीं आग्रही वैष्णव और आग्रही शैव मिल जायँ तो हाथा-पाई हो ही जाती है। क्योंकि दोनों अपने-अपने सिद्धान्तोंका उत्कर्ष बताते-बताते एक-दूसरेके आराध्य देवोंको अवाच्य शब्द कहने लग जाते हैं। शैव श्रीविष्णुके लिये अवाच्य शब्द कहने लगता है और वैष्णव श्रीशिवको गालियाँ देनेमें नहीं सकुचाता। यह व्यवहार सर्वथा अनुचित है। पुष्टिमार्गीय वैष्णवके लिये तो श्रीशिव परमादरणीय हैं।

कई एक वैष्णव-सम्प्रदायोंमें श्रीशिवकी जीवकोटिमें गणना की गयी है, क्योंकि वे अहङ्कारके अधिष्ठाता हैं। अहङ्कारका अध्यास जीवको ही होता है, ईश्वरको नहीं; अतः वे लोग श्रीशिवको ईश्वर नहीं मानते। पर श्रीमद्वल्लभाचार्य-चरणोंके सिद्धान्तसे श्रीशिवको जीव नहीं माना जा सकता;

क्योंकि श्रीशिवको अहङ्काराध्यास नहीं है, किन्तु अभिमान-मात्र है। अतएव 'शिवः शक्तियुतः' (श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध ८८ । ३)—इत्यादिपर श्रीसुबोधिनीके 'अहङ्काराभिमानेऽपीति' इस वाक्यकी व्याख्या करते हुए, 'लेख' में श्रीवल्लभजी महाराज लिखते हैं—'अहङ्काराध्यासी जीववन्नास्ति, किन्तु अभिमानमात्रमेव।' ऐसी दशामें श्रीशिवकी जीव-कोटिमें गणना करना ठीक नहीं; प्रत्युत श्रीमद्भागवतमें उन्हें तमोगुणावतार कहकर ईश्वर बताया है। अतएव श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज स्वरचित 'उत्सव-प्रतान'में लिखते हैं—

अहङ्काराधिष्ठातुर्जीवत्वेऽपि गुणावतारस्येश्वरकोटिस्त्वात् ।

तथाहि—श्रीमद्भागवतचतुर्थस्कन्धे (१ । २०)—

शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगद्गोश्वरः ।

प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छस्विति चिन्तयन् ॥

इति मनस्यभिसन्धायात्रिणा प्रजार्थं तपःकरणे—

तत्प्रमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाऽग्निना ।

निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्निः सर्माक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥

अप्सरोमुनिगन्धर्वविद्याधरमहोरगैः ।

विगीयमानथशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥

—हरयन्तेन

'विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानै-

र्मयागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ।

ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्यहं च-

स्तेभ्यः क एव भवतां म ह्योपहृतः ॥

इत्यग्निस्तुत्यादिना च त्रयाणामीश्वरस्वमवगम्यते ।

अर्थात् मात्र अहङ्काराधिष्ठाताको जीव कह सकते हैं; पर श्रीशिवको जीव नहीं कह सकते, क्योंकि श्रीशिव निर्गुण श्रीकृष्णके तमोगुणावतार हैं। यही बात श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें लिखी है—'मैं उसकी शरण हूँ जो जगत्का ईश्वर है; वह मुझे अपने समान सन्तति दे', यह विचार करके जब अत्रि ऋषि पुत्रके लिये तप करने लगे तब उनके मस्तकसे निकली हुई और उनके प्राणायामसे बढ़ी हुई अग्निसे त्रिभुवनको सन्तत देखकर तीन स्वरूप प्रकट हुए। यशोगान करनेवाले अप्सरा, मुनि, गन्धर्व, विद्याधर और शेषनागके साथ वे अत्रिके आश्रमको गये। वहाँ अत्रिने उन तीनों स्वरूपोंकी स्तुति करते हुए कहा कि 'जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये प्रत्येकमें मायाकी सहायतासे सत्त्व, रज और तमोगुणसे देह ग्रहण करनेवाले विष्णु, ब्रह्मा और शिवको प्रणाम करता हूँ। आप तीनोंमें वे कौन हैं, जिनको मैंने बुलाया है।' इस स्तुतिसे श्रीशिवकी ईश्वरता प्रकट होती है, क्योंकि उनको गुणावतार बताया गया है।

यहाँ 'मायागुणैः' इस शब्दसे यह सन्देह हो सकता है कि श्रीशिव प्राकृत तमोगुणके अवतार हैं, पर वस्तुतः यह बात नहीं है। वे तो भगवदीय तमोगुणके अवतार हैं। क्योंकि श्रीमद्भागवत-द्वितीयस्कन्धके पाँचवें अध्यायके श्लोक १८ में लिखा है—

सर्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ।

सर्गस्थितिनिरोधेषु गृहीता मायया धिभोः ॥

इसकी व्याख्या करते हुए श्रीमद्बलभाचार्यचरण लिखते हैं—

यथोर्णनाभिः सृष्ट्यर्थमेकामूर्णामुद्रमते, तथा भगवानपि त्रिविधसृष्ट्यर्थं त्रीन् गुणानुद्रमते; गुणरूपत्वाच्च गुणशब्द-व्यवहारः । सद्रूपेण निर्गतं सर्वमित्युच्यते, केवलचिद्रूपेण निर्गतं क्रियाशक्तिप्रधानत्वाच्च सदानन्दाभावाच्च रज इत्युच्यते, आनन्दांशाच्च तमः । ते भगवद्रूपा एव भगवता सृष्टाः । न च भगवति ते पूर्वं स्थिताः, तथा सति भगवदात्मकास्ते न भवेयुः । यथा कार्पासे नहि सूत्रं तदेव हि पश्चात् स्वावयवैः पौर्वापर्यमापद्यमानं सूत्रतामापद्यते, अत एव भगवान् निर्गुणः । ते गुणाः पुनः सर्गस्थितिनिरोधेषु उत्पत्तिस्थितिलयार्थं गृहीताः, तेषामपि ग्रहणं मायया ।

अर्थात् मकड़ी जिस तरह जाला बनानेके लिये तन्तु निकालती है, उसी तरह भगवान् भी त्रिविध सृष्टिके लिये आरम्भकालमें सदंशसे सत्त्व; सदंश-आनन्दांशसे रहित, क्रियाशक्तिप्रधान, केवल चिद्रूपसे रज; और आनन्दांशसे तमकी सृष्टि करते हैं। ये तीनों भगवद्रूप हैं। इनका और भगवान्का तादात्म्य-सम्बन्ध है, न कि आधाराधेयभाव। क्योंकि आधाराधेयभाव स्वीकार करनेसे इनकी भगवदात्मकताकी व्याप्ति होती है। जैसे रूईमें सूत नहीं दीखता, तो भी रूईके ही अवयवोंके पौर्वापर्यभावसे सूत बनता है, उसी तरह भगवान् निर्गुण रहते हुए भी इन तीनों गुणोंकी सृष्टि करते हैं और उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये इनका मायासे ग्रहण करते हैं।

इन तीनोंमेंसे जो भगवान्के आनन्दांशसे उत्पन्न शुद्ध भगवदात्मक तम है, वही श्रीसङ्कर्षण कहा जाता है और यह परमशिवकी प्रकृति है। क्योंकि श्रीभागवतके पञ्चम स्कन्धके १७ वें अध्यायके श्लोक १६ में लिखा है—

भवानीनाथैः स्त्रीगणार्जुदसहस्रैरवस्थमानो भगवत-
श्रुतमूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः
सङ्कर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण सन्निधाप्यैतदभिगृणन्
भव उपधावति ।

जब इसी तमको भगवान् अपनी सर्वसामर्थ्यरूपा और सर्वप्रतिकृतिरूपा मायासे आकृतियुक्त करके प्रवेश करते हैं, तब वह उनका गुणावतार कहलाता है। यही श्रीमद्बलभाचार्यचरणोंके सिद्धान्तमें 'परमशिव' पदार्थ है। पुष्टिमार्गके मर्मज्ञ विद्वान् श्रीबालकृष्ण भट्ट 'प्रमेयरत्नार्णव' नामक ग्रन्थके अन्तर्गत 'मूलस्वरूपनिरूपणम्' नामक प्रकरणमें शिव-तत्त्वका निर्णय करते हुए इसी बातको सुस्पष्टरूपसे लिखते हैं—

अप्राकृते तमसि विग्रहभूते बह्वययोगोलकन्यायेन
प्रविष्टः शिवशब्दवाच्यो भवति ।

'अग्नि जिस तरह लोहेके गोलेमें प्रवेश करती है, उसी तरह सृष्टिके आरम्भकालमें निर्गुण श्रीकृष्ण जब साकार, भगवदात्मक, अप्राकृत तमोगुणमें प्रवेश करते हैं, तब वह श्रीशिव कहलाते हैं।' वही श्रीशिव जब प्राकृत तमोगुणके नियामक बनते हैं तब सगुण कहलाते हैं। किन्तु तब भी उनका ईश्वरत्व अव्याहत ही रहता है, अतएव श्रीमद्बलभाचार्यचरणोंने—

स वै ह्योद देवानां पूर्वजो भगवान् भवः ।

(श्रीमद्भागवत ३।१२।८)

—की श्रीसुबोधिनीमें लिखा है—‘स तु भगवान् न जीवांशः’—वह भगवान् हैं, जीव नहीं ।

श्रीशिवके इसी स्वरूपको भिन्न-भिन्न स्थलोंपर भिन्न-भिन्न रूपसे कहा गया है । एक जगह श्रीशिवको ‘वेदः शिवः शिवो वेदः’ कहकर वेदात्मक बताया है । ठीक ही है; क्योंकि श्रीमद्भागवत (६।१६।५१) के ‘शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू’—इस श्लोकमें श्रीसङ्कर्षणको वेदस्वरूप कहा है—और यही श्रीशिवके उपादान-कारण हैं । अतः शुद्धाद्वैत-सिद्धान्तमें कार्य-कारणका अभेद होनेसे श्रीशिवकी वेदात्मकता सिद्धान्तविरुद्ध नहीं है । अतएव ‘विद्याकामस्तु गिरिशम्’—इस वाक्यमें ब्रह्मविद्या आदि विद्याओंकी प्राप्ति श्रीशिवसे होती है, यह कहा है । क्योंकि श्रीशिव श्रीसङ्कर्षण-के कार्य हैं और ज्ञानप्राप्ति श्रीसङ्कर्षणसे होती है—यह ‘ज्ञानशक्तिस्तस्य मुख्या’ इस एकादश स्कन्धके ‘तत्त्वदीप’ निबन्धसे मालूम होता है । इसलिये श्रीशिवको सर्वविद्येश्वर भी कहते हैं ।

श्रीशिव वैष्णवाग्रगण्य हैं, क्योंकि श्रीमद्भागवतमें ‘वैष्णवानां यथा शम्भुः’ कहा है । आप प्रचेता-जैसे भगवदीयोंको भागवत-धर्मका उपदेश करते हैं । क्योंकि तृतीय स्कन्धीय निबन्धमें सृष्टिके आरम्भकालमें श्रीशिवके रोदनका कारण बताया हुआ श्रीमद्बलभाचार्यचरणोंने कहा है—‘अयमंशः कृपारूपः ।’ अविद्याग्रस्त जीवोंको उत्पन्न होते हुए देखकर श्रीशिवको रोना आया । इसीलिये आप दैवी जीवोंको भागवत-धर्मका उपदेश देकर उनके अविद्यारूपी अन्धकारको दूर करते हैं और इसप्रकार भगवत्प्राप्तिमें उनकी सहायता करते हैं । परन्तु असुरोंका तो वे मोहन ही करते हैं, क्योंकि—

त्वं च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय ।

(पञ्चपुराण)

—ऐसी भगवदाज्ञा है ।

यह श्रीशिवका आधिदैविक स्वरूप है । ‘रुद्राणां शङ्करश्चास्मि’ (गीता)—इसमें शङ्करशब्दप्रतिपाद्य यही

हैं । इनका आध्यात्मिक रूप है एकादश रुद्रगण और आधिभौतिक रूप है ‘ससर्जात्मसमाः प्रजाः’ (श्रीमद्भागवत ३।१२।१४)—इस पद्यांशमें प्रतिपादित रुद्रसृष्ट रुद्र । अतएव श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज तामस-सृष्टि-प्रकरणीय ‘श्रीसुबोधिनी’ के ‘प्रकाश’ में लिखते हैं—

आधिभौतिका रुद्रसृष्टा रुद्राः, आध्यात्मिका गण-रुद्राः, आधिदैविको नीलरुद्रो ज्ञातव्यः ।

इस तरह विचार करनेसे यह प्रकट होता है कि श्रीशिव निर्गुण श्रीकृष्णके गुणावतार हैं, सर्वविद्येश्वर हैं, वेदस्वरूप हैं, वैष्णवाग्रगण्य हैं, वैष्णव-धर्मोपदेष्टा हैं और सर्वदेहीश्वर हैं; इसलिये श्रीशिव परमादरणीय और प्रणम्य हैं । शिवरात्रि-व्रत और शिव-पूजन वैष्णवोंको करना चाहिये या नहीं, इसका विचार करते हुए श्री-पुरुषोत्तमजी महाराज ‘उत्सवप्रतान’ में यही बात लिखते हैं—

व्रतं तु न कार्यम्, ‘भवव्रतधराः’ इति भागवते चतुर्थस्कन्धे निन्दाश्रवणात् । ... व्रताकरणं तु निषिद्ध-त्वादेव न तु शिवद्वेषात् । ... अवतारत्वेऽपि देवतान्तर-स्याक्षतेः, तद्व्रतकरणेऽविधिपूर्वकभजनापत्तिः ‘येऽप्यन्य-देवता भक्ताः’ इत्यादि भगवद्वाक्यात् । तस्मान्नगवान् शिवः अवतारत्वात्, वैष्णवमुख्यत्वात्, वैष्णवधर्मोपदेष्टृ-त्वात्, वेदरूपत्वात्, सर्वविद्येश्वरत्वात्, सर्वदेहीशान-त्वाच्च नमस्य एव मान्य एव, व्रतं तु निन्दितत्वादकरणीयम् ।

अर्थात् ‘वचनात्प्रवृत्तिर्वचनानिवृत्तिः’ इस सिद्धान्तके अनुसार श्रीमद्भागवत आदि वैष्णव-शास्त्रोंमें ‘भवव्रतधराः’ आदि श्लोकोंमें निषिद्ध होनेसे शिवरात्रि-व्रत वैष्णवोंके लिये अकर्तव्य है, न कि शिव-द्वेषके कारण । यद्यपि श्रीशिव निर्गुण श्रीकृष्णके गुणावतार हैं, तो भी देवतान्तर तो हैं ही; इसलिये शिवरात्रि-व्रत करनेसे—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

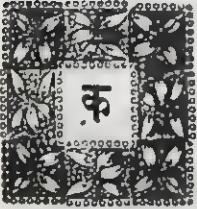
—इस गीतावाक्यके अनुसार श्रीकृष्णका अविधिपूर्वक भजन होगा । तब भी भगवान् श्रीशिव गुणावतार हैं, वैष्णवश्रेष्ठ हैं, वैष्णवाचार्य हैं, वेदरूप हैं, सर्वविद्येश्वर हैं, सर्वदेहीशान हैं; इसलिये परममान्य हैं और नमस्करणीय हैं ।



शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य दार्शनिक-सार्वभौम, साहित्य-दर्शनाचार्य, तर्करत्न, न्यायरत्न गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री)

एको हि भगवान् विश्वं प्रकारैर्भेदमावहन् । चरीकृत्ति वरीभर्त्ति सञ्जरीहृत्ति लीकृत्ति ॥



कल्याणमयस्वरूप परमात्माके अनन्त कल्याणगुणराशिमेंसे यथासम्भव कल्याण-गुणोंका चयन करनेवाले लेखोंसे भूषित कल्याणकारी 'कल्याण' पत्रके वाचक महोदयवृन्दकी सेवामें प्रायः एक वर्षके अनन्तर मैं सुमनःप्रसादक सुमनःप्रवर (देववर) की सुमनःसम्पादित सपर्याका अम्लान प्रसादरूप सुमनः- (कुसुम) सप्तकोपहार लेकर उपस्थित हो रहा हूँ ।

'कल्याण' का यह विशेषाङ्क 'शिवाङ्क' के नामसे निकल रहा है, सुतरां यहाँ 'शिव' शब्दका अर्थ कौन-सा विवक्षित है—इसका निश्चय अवश्यकर्त्तव्य है ।

'शिव' शब्दके चार प्रधान अर्थ प्रसिद्ध हैं—

(१) मायासे तटस्थ तत्त्व अर्थात् निर्विशेष ब्रह्म, (२) श्रीविष्णु-तत्त्व, (३) श्रीशम्भु-तत्त्व और (४) मङ्गल । यहाँ चौथे पक्षमें अर्थजिज्ञासाके हेतु यत्न अनावश्यक है; क्योंकि पूर्व तीनों अर्थोंमेंसे किसी एकके सम्बन्धमें प्रयुक्त शब्द-मात्रसे ही उसका लाभ अवश्य हो जायगा । और प्रथम पक्षवाला अर्थ भी अभिप्रेत नहीं है—इसका वर्णन 'ईश्वराङ्क' में यथाशक्ति हो चुका है । 'श्रीकृष्णाङ्क' में यथाशक्ति भगवान् श्रीकृष्णका गुणकीर्त्तन हो जानेसे दूसरे पक्षमें भी वक्ताका तात्पर्य नहीं झलकता । परिशेष-न्यायसे तृतीय पक्षके अनुसार भव-तत्त्वकी छायाका आश्रय लेकर भवतापोंके पराभवके सम्भवका अनुभव करना ही इस लेखका प्रतिपाद्य है ।

यद्यपि शिव-तत्त्व भी अत्यन्त निगूढ़ है तथा इसका समझना नितान्त दुरूह है, तथापि हताश होनेकी आवश्यकता नहीं है । क्योंकि एक भक्तप्रवरने—

अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्

—कहकर प्रबल समाश्वासन दे रक्खा है । किन्तु किया भी क्या जाय ? पशुपतिके अमोघ पाशोंमें जकड़े हुए पशु-विशेष नाना कारणोंसे एवं नाना प्रकारसे नानाविध व्यामोहों-से आक्रान्त होकर, सर्वसमन्वयरूप शान्त राजमार्गसे बहक कर, कण्टकित पगडण्डियोंसे चलकर स्वयं लक्ष्यभ्रष्ट होते हैं । पूछनेपर पथ-प्रदर्शकोंके बतलानेकी दुहाई भी दे देते हैं

तथा कोमल भ्रष्टाशाली पथिक भी पगडण्डीसे चलकर लक्ष्यलाभकी शीघ्रताके उन स्वप्नोंको देखते हैं जिनसे छुट-कारा पाकर जागरणावस्थाका अनुभव अनन्त समयतक दुर्लभ हो जाता है । सारांश यह है कि जो विचारक महाशय शब्दको भी प्रमाण मानते हैं उनकी इस भान्यताका महत्त्व तभी है जब प्रमाणस्वरूप शब्दोंमें अप्रमाणताका कलङ्क स्पर्श न कर सके । यह भय सर्वसमन्वयके मार्गमें ही दूर होता है ।

इस मार्गके प्रधान प्रदर्शकोंमें उत्तरमीमांसादर्शन अर्थात् वेदान्तशास्त्र भी है । इस दर्शनने हर पहलूसे मायाके ऊपर निरङ्कुश एवं नित्य प्रभुताका जीवमात्रके अन्दर निषेध किया है । फलतः ईश्वर ही मायापरिचालक सिद्ध होते हैं । यहाँ भी शास्त्रोंमें जिस तारतम्यादिका वर्णन है वह पादविभूतिमें प्राकट्याप्राकट्यके अभिप्रायोंको लेकर ही है । अनादि संसारप्रवाहमें बहते हुए जीवोंके उद्धारके लिये तथा भक्तवत्सलतावश—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

—इस गीताके वाक्यके अनुसार श्रीशिवरूपसे पाद-विभूतिमें जब लीला-अभिनय आरम्भ होता है, तब स्वात्माराम श्रीसदाशिव सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष एवं ईशानरूपसे क्रमशः जगत्की सृष्टि, स्थिति, प्रलय, निग्रह एवं अनुग्रहरूप कार्य करते हैं । इनमेंसे पहले तीन कृत्य तो समष्टि-दृष्टिसे साधारणतया स्पष्ट ही हैं, व्यष्टि-दृष्टिसे शेष दो कृत्योंके अन्दर त्रिपुरदाह, अन्धकविजय, गजासुरमर्दन, मखविध्वंस एवं मदनदहनादि तथा हरिहरैक्य, अर्धनारी-श्वरविग्रह, दारुवनविहार, किरातलीला, शबरलीला, शरभ-लीला तथा बाण प्रभृतियोंको वरदानादि असंख्यात दिव्य चरित्र आ जाते हैं । अर्चाद्वारा भी भगवान् शिव ज्योतिर्लिङ्ग, सतीपीठेश्वर एवं बाणलिङ्गादिरूपसे जीवोंपर अनुग्रह करते ही हैं । ऐसी स्थितिमें—

स्थिरादयो हरिश्चिरञ्जिहरेति संज्ञाः

—इत्यादि शास्त्रप्रमाण विशेष कारण न रहनेपर सामान्य जगत्प्रबन्धको सिद्ध करते हैं; क्योंकि—

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥

तात्पर्य-निर्णयकी इस सर्वसम्मत रीतिके अनुसार इस-प्रकारके वाक्योंका तात्पर्य कैतवशून्य परमधर्मके ही प्रति-पादनमें है, न कि सृष्टि आदि कार्योंके कर्तृत्व आदिकी विशेष व्यवस्थाके दिखलानेमें, यद्यपि सामान्यरूपसे इसका उल्लेख तो महापुराणोंके लक्षणरूप सर्ग-विसर्ग आदि दस घटनाओंके वर्णनमें प्रसङ्गवश आना ही चाहिये ।

दार्शनिक सिद्धान्तके अनुसार विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत एवं द्वैत-प्रस्थानोंमें भी शिवपरताका निदर्शन श्रीकण्ठीय दर्शन, पाशुपत दर्शन, प्रत्यभिज्ञा-दर्शन आदि शैव दर्शनोंमें यथासम्भव मिलता ही है । केवलाद्वैत-प्रस्थान-में तो निर्विशेष ब्रह्मका प्रतिपादन होनेसे सविशेष ब्रह्मकी उपासनाके लिये गुंजाइश ही नहीं है ।

इसप्रकार श्रीशिवके सम्बन्धमें आवश्यक बातें सूत्ररूपसे निवेदनकर पाठकवर्गसे इस समय मैं विदा लेता हूँ ।*

शिव-तत्त्व

(परमपूज्यपाद श्रीउड्डियास्वामीजीके विचार)

प्र०-शिव-तत्त्व क्या है ? लिङ्गोपासनाका क्या रहस्य है ? उसका अधिकारी कौन है और उसका मुख्य फल क्या है ? कुछ ऐसी सत्य घटनाएँ सुनाइये जो आपके अनुभवमें आयी हों ।

उ०-हमारे विचारसे शिव-तत्त्व वही है जिसका वर्णन श्वेताश्वतर उपनिषद्के इस मन्त्रमें किया गया है—

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥†

(१ । ११)

लिङ्गका अर्थ प्रतीक (चिह्न) है । शिवलिङ्ग पुरुषका प्रतीक है और शक्ति प्रकृतिका चिह्न है । पुरुष और प्रकृतिका संयोग होनेपर ही सृष्टि होती है, जैसा कि कहा है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम् ।

उन पुरुष और प्रकृतिकी संयुक्त उपासना करनेसे बहुत शीघ्र फल मिलता है, इसीलिये शक्तिस्थित शिवलिङ्ग-की उपासना की जाती है ।

भगवान् शिव आशुतोष हैं । वे यों तो जिसकी जैसी इच्छा होती है उसीको तत्काल पूर्ण कर देते हैं; परन्तु

मुख्यतया मोक्ष और विद्या-प्राप्तिके इच्छुकोंको शिवोपासना करनी चाहिये । मोक्षदाता देव मुख्यतया भगवान् शङ्कर ही हैं । इसीलिये शिवपुरी काशीके विषयमें 'काशी-मरणान्मुक्तिः' ऐसा प्रसिद्ध है । अन्य देवों या अवतारोंकी पुरियोंमें निवास करनेवालोंके लिये उन्हीं लोकोंकी प्राप्ति शास्त्रमें बतलायी है—कैवल्यमोक्षकी नहीं ।

[तदनन्तर, श्रीमहाराजने कुछ सच्ची घटनाएँ सुनायीं, उनमेंसे एक यहाँ लिखी जाती है—]

एक बार एक ब्रह्मचारी और एक बंगाली नवयुवकने श्रीवैद्यनाथके मन्दिरमें धरना देनेका निश्चय किया । ब्रह्मचारी महोदयके पास एक छतरी और दस-ग्यारह रुपये थे । वे कविवर श्रीहर्षके समान कवित्व-शक्ति प्राप्त करना चाहते थे । बंगाली नवयुवकको शूल-रोग था और उसके पास सौ सवा सौ रुपयेकी सम्पत्ति थी । दोनोंने अपना रुपया-पैसा और सामान एक पंडाको सौंप दिया और अपने भोजनादिका प्रबन्ध भी पंडेको ही सौंपकर स्वयं धरना देकर पड़ गये । परन्तु वह पंडा उनका सारा सामान लेकर चला गया और उनके प्रसाद-ग्रहणकी भी कोई व्यवस्था न रही ।

चार दिन बीतनेपर ब्रह्मचारी महोदयके अन्तःकरणमें

* इस लेखके सम्बन्धमें जिन महाशयोंको कुछ कहना-सुनना हो वे कृपया सूचित करेंगे तो लेखक सादर उनका समाधान करनेकी चेष्टा करेगा ।

† समस्त मुख, समस्त शिर और समस्त ग्रीवाएँ भगवान् शिवकी ही हैं, वे सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित हैं और सर्वव्यापी हैं, अतः शिव सर्वगत हैं ।

अकस्मात् वैराग्यका प्रादुर्भाव हुआ। वे सोचने लगे, 'आखिर, श्रीहर्ष भी तो कालके गालमें ही चले गये, फिर उनके कवित्वसे ही मुझे क्या लेना है?' ऐसा सोचकर उन्होंने धरना छोड़ दिया और अपने बंगाली मित्रके लिये प्रसाद आदिकी सुव्यवस्था करा दी। ग्यारह दिन बीतनेपर उस बंगाली युवकको स्वप्नमें भैरवका दर्शन हुआ। उसे भौंति-भौंतिके भय दिखाये गये; परन्तु वह अपने निश्चयसे विचलित न हुआ। तेरहवें दिन उसे फिर भैरवका स्वप्नमें दर्शन हुआ। उस समय उसने अपना दुःख निवेदन किया। तब भैरवजीने कहा—'तुम पूर्वजन्ममें शिवोपासक थे। उस समय तुम्हें भगवान् शङ्करकी

उपासनाके लिये जो द्रव्य दिया जाता था उसमेंसे बहुत-सा तुम हरण कर लेते थे। उस पापके कारण ही तुम्हें यह रोग हुआ है, यह तुम्हारे इस जन्ममें दूर नहीं हो सकता। परन्तु तुमने भगवान् शिवकी शरण ली है, इसलिये इस जन्ममें भी यह और अधिक नहीं बढ़ेगा।'

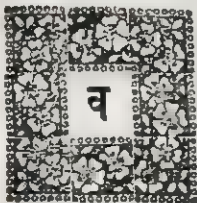
तदनन्तर उस बंगाली युवकने धरना छोड़ दिया और उसका रोग, जो अबतक निरन्तर बढ़ता रहा था, और अधिक नहीं बढ़ा तथा वह भगवान् शिवका अनन्य भक्त हो गया।

(प्रेषक—श्रीमुनिलालजी)



शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रीमत्परमहंस परित्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज, मण्डलेश्वर, काशी)



स्तुतः पक्षपातरहित दृष्टिसे विचार किया जाय तो समस्त प्राणियोंके अन्तःकरण शिव-तत्त्वकी ओर स्वभावतः ही खिंचे हुए हैं। अथवा यों कह सकते हैं कि शिव-तत्त्वका ही यह असाधारण स्वभाव है कि वह समग्र जीवोंके अन्तःकरणोंको अपनी ओर खींचे रखता है। कारण, 'शिवः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्' (अमरकोष) एवं 'शिवं च मोक्षे क्षेमे च महादेवे सुखे' इत्यादि (विश्वकोष) के अनुसार शिव, अद्वैत, कल्याण और आनन्द—ये सारे शब्द एक ही अर्थके बोधक हैं। और यह अनुभवसिद्ध है कि कल्याण या आनन्दके लिये ही सारा संसार प्रवृत्त हो रहा है। अवश्य ही, पामर और विषयी जीवोंकी प्रवृत्तिका विषय अज्ञानवश निरवच्छिन्न कल्याण या आनन्द नहीं है; तथापि पुत्र, धनादि-सम्बन्धी सुखको विषयीजन भी चाहते हैं। परन्तु इससे क्या! वे हैं तो आनन्द या सुखकी ही खोजमें! इसप्रकार सभी प्राणी सुखके ही गीत गाते हैं। 'तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः' (छान्दोग्य)—यह श्रुति भी यह बतलाती है कि वीणाकी झङ्कारमें जो सङ्गीत निकलता है उसका लक्ष्य सर्वान्तर्यामी आनन्द ही है। समस्त वेद भी शिवरूप आनन्दके ही गीत गाते हैं—उनमें अद्वैत शिव-तत्त्वका ही प्रतिपादन है। यह बात 'आनन्दाद्देवोऽखल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि

जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति', 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'—इत्यादि श्रुतियोंसे और 'शास्त्रयोनित्वात्', 'तत्तु समन्वयात्', 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' इत्यादि स्मृतियोंसे भी सिद्ध है। मुक्तिकोपनिषद्में श्रीरामचन्द्रजी और श्रीहनुमान्-जीका जो संवाद है उससे भी यह निश्चय होता है कि सम्पूर्ण वेदोंका प्रतिपाद्य विषय अद्वैत शिव-तत्त्व ही है। उक्त संवाद इसप्रकार है—

अयोध्यानगरीमें सुरम्य रत्नमण्डपके मध्यमें लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—तीनों भाइयों एवं भगवती सीताके सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं। पास ही सनकादि, वशिष्ठादि और शूकादि ऋषि-मुनि अवस्थित हैं और इधर-उधर अन्य अनेक भागवत जन भी बैठे स्तुति कर रहे हैं। उसी समय उन सबकी बुद्धिके साक्षी और स्वयं निर्विकार, स्वरूपध्याननिरत भगवान् के समाधिविरत होनेपर भक्ति एवं श्रद्धाके साथ स्तुति करते हुए हनुमान्-जीने कहा—

'हे श्रीरामजी! आप परमात्मा हैं, सच्चिदानन्दविग्रह हैं। हे खुकुलश्रेष्ठ! मैं आपको बारंबार प्रणाम करता हूँ। भगवान्! मैं इस समय मुक्तिकी कामनासे आपके स्वरूपको तत्त्वतः जानना चाहता हूँ, जिससे मैं अनायास ही भव-बन्धनसे मुक्त हो जाऊँ। अतः कृपाकर मेरी मुक्तिके लिये ब्रह्मज्ञानका उपदेश कीजिये।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी बोले—‘हे महाबाहो ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया । मैं उसे तत्त्वतः बतलाता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो । देखो, मैं वेदान्तमें सुप्रतिष्ठित हूँ, तुम उसी वेदान्तका आश्रय ग्रहण करो ।’

हनूमान्—हे रघुकुलसूर्य ! वेदान्त किसे कहते हैं और यह कहाँ है ?

श्रीराम—हे हनूमान् ! सुनो, मैं तुम्हें वेदान्तकी स्थिति बतलाता हूँ । जिसप्रकार बिना प्रयत्नके ही श्वास-प्रश्वास निकलते हैं उसी प्रकार मुझ विष्णुसे श्वास-प्रश्वासरूप महाविस्तारवाले ये वेद उत्पन्न हुए हैं; और जैसे तिलोंमें तेल रहता है वैसे ही इन वेदोंके अन्तर्गत वेदान्त स्थित है ।

हनू०—भगवन् ! वेद कितने प्रकारके हैं और उनकी कितनी शाखाएँ हैं, उनके अन्तर्गत उपनिषद् कौन-कौन हैं, कृपया तत्त्वसे बतलाइये ?

श्रीराम—ऋक्, यजु, साम, अथर्व—ये चार वेद हैं, जिनकी अनेक शाखाएँ हैं । इसी प्रकार उपनिषद् भी अनेक हैं । ऋग्वेदकी २१ शाखाएँ हैं, यजुर्वेदकी १०९, सामवेदकी १००० और अथर्ववेदकी ५० । एक-एक शाखाका एक-एक उपनिषद् है । उनकी एक ऋचा (मन्त्र) को भी यदि कोई भेरी भक्तिके साथ पाठ करता है तो वह मेरी मुनि-दुर्लभ सायुज्य-पदवीको प्राप्त होता है ।

हनू०—हे प्रभो ! कोई-कोई मुनिश्रेष्ठ कहते हैं कि मुक्ति एक है । कोई सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य-भेद-से चार प्रकारकी मुक्ति बतलाते हैं । कोई कहते हैं कि आपके नाम-भजनसे मुक्ति मिलती है, कोई कहते हैं—काशीमें मरकर तारक-मन्त्रके उपदेशसे, और इसी प्रकार कोई सांख्ययोगसे, कोई भक्तियोगसे और कोई वेदान्तवाक्योंके अर्थ-विचारसे मुक्तिका होना बतलाते हैं । हे भगवन् ! ठीक बात क्या है, कृपया मुझे बतलाइये ?

श्रीराम—हे पवनकुमार ! पारमार्थिकरूप कैवल्यमुक्ति एक ही है । हे तात ! कोई दुराचारीसे भी दुराचारी क्यों न हो, मेरे नाम-स्मरणके प्रतापसे वह सालोक्यमुक्तिको प्राप्त होता है—उसे लोकान्तरकी प्राप्ति नहीं होती । काशीमें ब्रह्मनाल-स्थानमें मरा हुआ पुरुष मेरे तारक-मन्त्रका उपदेश पाकर आवागमनरहित कैवल्य-मुक्तिको प्राप्त करता है । काशीमें कहीं भी मरे, महेश्वर उसके दाहिने कानमें मेरे तारक-मन्त्रका उपदेश दे देते हैं, जिससे

वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर मेरी सादृश्य-मुक्तिको पाता है, वही सालोक्य और सारूप्यमुक्ति कहलाती है । जो द्विज सदाचारनिरत होकर नित्य अभेदभावसे मुझ सर्वात्मामें चित्त लगाता है वह मेरे सामीप्यको प्राप्त होता है; यही सामीप्य, सारूप्य, सामीप्य-मुक्ति कहलाती है । जो गुरुपदिष्ट मार्गसे मेरे अव्यय स्वरूपका सम्यक् ध्यान करता है वह द्विज भ्रमरकीटवत् मेरा सायुज्य लाभ करता है; यही ब्रह्मानन्दकरी कल्याणी सायुज्यमुक्ति है । यह चार प्रकारकी मुक्ति है, जो बेरी उपासनासे प्राप्त होती है ।

हनू०—भगवन् ! कैवल्यमुक्ति कैसे प्राप्त होती है ?

श्रीराम—समुद्रधुओंकी मुक्तिके लिये एक माण्डूक्योपनिषद् ही पर्याप्त है; यदि इसे पढ़नेसे ज्ञानसिद्धि न हो तो दसों उपनिषदोंको पढ़े, इससे अविलम्ब ज्ञान प्राप्त होकर मेरे धामकी प्राप्ति हो जाती है । और यदि दशोपनिषद्के पढ़नेसे भी विज्ञानकी दृढ़ता न हो तो बत्तीस उपनिषदोंका विशेषरूपसे अभ्यास कर मुक्तिको प्राप्त करे और यदि विदेह-मुक्तिकी आकांक्षा हो तो एक सौ आठ उपनिषदोंको पढ़े ।

इस संवादको पढ़नेसे यह निश्चय होता है कि समस्त उपनिषदों या चारों वेदोंमें वही ज्ञान बतलाया गया है जो सारूप्यसे माण्डूक्योपनिषद्में बतलाया गया है । अच्छा तो उस माण्डूक्यका निर्णय क्या है ? माण्डूक्यका ‘ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्’ इसप्रकार उपक्रम और ‘अमात्र-श्रुतार्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मात्मानं य एवं वेद य एवं वेद’ यह उपसंहार है । इसप्रकार इसमें आदिसे लेकर अन्ततक प्रपञ्चोपशम (निर्गुण), अद्वैत (सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेदशून्य) शिवतत्त्व ही निर्णीत है । इसके सिवा इस संवादमें शिव और विष्णुका अभेद भी निश्चित हुआ है । क्योंकि श्रीहनूमान्जीने श्रीरामजीसे ‘त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतो राम मुक्तये’ इस प्रश्नके द्वारा उनका वास्तविक रूप पूछा था, जिसके उत्तरमें भगवान्ने समग्र वेदोंकी रहस्यभूता माण्डूक्योपनिषद्में प्रतिपादित अद्वितीय शिवतत्त्वको ही अपना स्वरूप बतलाया है ।

इधर कैवल्योपनिषद् भी ‘स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् । स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः’—इसप्रकार शिव, विष्णु आदिका अभेद ही

प्रतिपादन करती है। और माण्डूक्योपनिषद्में निर्गुण तुरीय ब्रह्मका प्रतिपादक शिव-पद दो बार आया है—एक बार 'नान्तः-प्रज्ञम्'—इस मन्त्रमें और फिर 'अमात्रश्चतुर्थः'—इस मन्त्रमें। इससे यह निश्चय होता है कि शिव-पद प्रायः अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मका ही बोधक है। और जब माण्डूक्योपनिषद् सब वेदोंका सार है तब अन्य सब उपनिषद् भी उसीका समर्थन करेंगे और करते भी हैं। उदाहरणार्थ—

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्वात्मैवाभूद्विजानतः ।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ (३१०)

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विदमो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव । तद्विदितादथो अविदितादधि । (केन)

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।

मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ (कठ०)

यत्तददृश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रम् । (मुण्डक०)

विद्वान्नाम नामरूपाद्विमुक्तः । (मुण्डक०)

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चेति ॥

(तैत्तिरीय०)

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत् ।

(ऐतरेय०)

सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ।

(छान्दोग्य०)

ही प्रतिपादन है। इति शिवम् ।

मनसैवानुदृष्टव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।

मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥

(बृहदारण्यक०)

स एष नेति नेतीत्यात्मा ।

(बृहदारण्यक०)

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः क्षत्रं वेद सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः सर्वं वेद ।

इसी प्रकार—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ (गीता)

आत्मैव देवता सर्वा आत्मनि सर्वमवस्थितम् ।

आत्मैव जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥ (मनुस्मृति)

अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति ।

अतः शास्त्राण्यधीयन्ते श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तराः ॥

(दक्षस्मृति)

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या-

दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।

तन्माययाऽतो बुध आभजेत्

भक्त्यैक्येशं गुरुदेवतात्मा ॥

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो

ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ॥

(श्रीमद्भा० ११।२।३७-३८)

—आदि स्मृतियों और पुराणोंमें भी अद्वैत शिव-तत्त्वका

आनन्दवन

(लेखक—स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज गीता-मन्दिर, गुजरात)

शङ्कराच्छमहं

याचे

'सदाचरणतत्परः' ।



सत् आचरणमें तत्पर मैं भगवान् शङ्करसे कल्याणकी कामना करता हूँ, आशुतोषके बिना मेरा कहीं भी ठिकाना नहीं है, मैं आब्रह्मस्तम्भ-पर्यन्त ब्रह्माण्डमें घूम आया, किन्तु कहीं भी मेरे खड़े होनेको जगह न मिली। मैंने चावाभूमि (जमीन-आसमान) के कोने-कोनेमें स्थित चराचरसे सहायता माँगी, पर किसीने फूटे मुखसे बाततक नहीं की। विष्णुलोकमें मैं घुसने ही नहीं पाया, ब्रह्मलोकमें मुझे पानी-

तक पीनेको नहीं मिला, मातृशक्ति भगवतीने 'मुझे राक्षसोंसे निपटना है, जा, फुरसत नहीं है'—यह कहकर फटकार दिया। क्षीरसागरशायीकी शरण गया तो वहाँका समुद्र ही सूख गया; यही नहीं, मेरे ऊपर बार-बार मार भी पड़ी। इसीसे वह स्थान अबतक मारवाड़के (र और डका अभेद माना है) नामसे प्रसिद्ध है।

अनन्तर घूमते-घूमते मैं दैवात् 'आनन्द-कानन' नामक स्थानमें पहुँच गया। वहाँ जाते ही बहुत कालसे दुःख-दावानलसे-दग्ध शरीरको लोकोत्तर शान्ति प्राप्त हुई। यहाँ-की उत्तरवाहिनी देवनदीके पुण्य-पवनसे मेरा रोम-रोम

विकसित हो गया। यहाँके वेदघोषने मेरे दोषोंको शोष लिया। यहाँके प्राणिमात्रने कुटुम्बीकी तरह मेरा स्वागत किया। मैं भी उनके बीचमें अपनेको पाकर ऐसा अनुभव करने लगा कि मानों मैं यहाँका रहनेवाला इनका आत्मीय जन हूँ।

यहाँ मैंने एक बड़ी विलक्षण बात देखी। इस आनन्द-वनके वृक्षोंके प्रत्येक पत्र, पुष्प और फलमें सारी भाषाओंमें 'सदाचरणतत्परः' यह वाक्य स्थूल स्वर्णाक्षरोंमें लिखा देखा, कुटीरोंपर यही 'साइनबोर्ड' था, शरीरोंपर यही लिखा था, पुस्तकोंमें यही श्लोक था, ज्वानपर यही बात थी, प्रश्नोत्तर और अभिवादन एवं आशीर्वचनोंमें इसी वाक्यका प्रयोग होता था।

यह देख और बाँचकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। अनन्तर इसी काननके एक कोनेके परमप्राचीन कुटीरमें स्थित एक वृद्ध साधुके पास जा अभिवादन कर उनसे उक्त वाक्यका रहस्य पूछा। पहले तो वे मुस्कराये, फिर बैठनेका इशारा किया और वादमें बोले—

'प्रिय ! यह शङ्करका साम्राज्य है, यहाँ कोई भी दुखी नहीं रहने पाता। यहाँ मनुष्य-कर्मोंके शुभाशुभका रजिस्टर नहीं खोला जाता। यहाँ किसीके पाप-पुण्य नहीं तोले जाते। यहाँ खरे-खोटकी परख नहीं की जाती। अग्यान्य लोकोंमें मनुष्यके लिये 'जैसा करता है वैसा भरता है'—यह नियम है, पर यहाँ कोई जो चाहे जैसा करे, वह वही पावेगा जो सबको मिलेगा। कर्म भिन्न-भिन्न होनेपर भी फलांशमें ऐक्य है। यह सिद्धान्त तार्किक नास्तिकके समझमें भले ही न आवे, पर जिज्ञासु विद्वान् इस गूढ़ रहस्यको खूब समझते हैं।

'सदाचरणतत्परः'—इस वाक्यांशका, जिसके कारण तुझे इतना कुतूहल हो रहा है, यह अभिप्राय है कि यहाँके सबलोग वर्णाश्रम-धर्मकी मर्यादा यथावत् पालन करें। ब्राह्मणके लिये 'सति आचरणे तत्परः', अर्थात् ब्राह्मणको सदा उत्तम आचरणवान् होना चाहिये—ऐसी आज्ञा है। ब्राह्मणका परमधर्म आचार है। ब्राह्मण जगद्गुरु है, उसे सबका नियन्त्रण करना है। बड़े-बड़े दुर्दान्त राजसप्रकृति-बालोंको और उग्रातिउग्र तामस-प्रवृत्तिवाले प्राणियोंको सूईकी नोकमेंसे निकालना सत्त्वगुणप्रधान ब्राह्मणका ही काम है। यह बड़ा कठिन काम है। इसे सत् अर्थात् उत्तम

आचारवाला ब्राह्मण ही कर सकता है। अतः शङ्कर-भगवान्की अविमुक्त-क्षेत्रवासियोंको यह आज्ञा है कि हे ब्राह्मणो ! उत्तमोत्तम आचरणोंका पालन करते हुए लोक-संग्रह करो, जिससे जगत्का कल्याण-साधन कर सको।

इसी तरह 'सदा च रणे तत्परः' इस वाक्यसे क्षत्रियोंको भी अपना धर्म-पालन करनेकी भगवान्की आज्ञा है। इसका अभिप्राय यह है कि हे क्षत्रियो ! तुम सदैव रणमें तत्पर रहो। तुम्हारी चमकती हुई तलवार आततायियोंको प्रत्यक्ष काल और धर्मात्माओंको साक्षात् स्वर्गसुख प्रतीत हो। तुम्हारे शस्त्रोंकी दीप्ति तभी बनी रह सकती है जब तुम हमेशा रण (लड़ाई) में लगे रहो। एक योगयुक्त संन्यासी और दूसरा अभिमुख रणमें मरनेवाला क्षत्रिय—यही दोनों सूर्यमण्डलको भेदकर आगेके लोकमें जानेके अधिकारी हैं।

इसी तरह 'सदा चरणे तत्परः' इस वाक्यसे वैश्यको आज्ञा दी गयी है कि हे वैश्यो ! तुम हमेशा घूमनेमें लगे रहो। देखो, कहाँ किस पदार्थकी आवश्यकता है ? बादमें यहाँकी वस्तु वहाँ और वहाँकी वस्तु यहाँ पहुँचाकर लोगोंके अभावकी पूर्ति करो और स्वयं धनवान् बनो। समयपर-तुम्हारा धन ब्राह्मणोंके यज्ञके लिये और नृपतियोंके राज्य-प्रबन्धके लिये काम आ सकता है। तुम्हारे धनसे स्थापित सार्वजनिक संस्थाओंसे भी सर्वसाधारण लाभ उठा सकेंगे।

एवं 'सदा चरणे (पदे) तत्परः'—इससे शूद्रको कहा गया है कि तू सदा तीनों वर्णोंकी पाद-सेवा कर। सबसे कठिन सेवा-धर्म तेरे अधीन है। तेरी सहायताके बिना उक्त तीनों वर्ण और आश्रम पङ्क्तु हैं।

ब्रह्मचारीको भी इसी वाक्यसे सदाचारका उपदेश दिया गया है। पहली अवस्थाका अभ्यस्त सदाचार जीवनरूपी हर्म्य (महल) की नींव है। गृहस्थाश्रमीको भी उपदेश दिया गया है कि तू 'सदा चरणे (भक्षण) तत्परः' हो। तेरे पास अधिक परिमाणमें खाद्य-सामग्री होनी चाहिये। जैसे वायुके आधारसे प्राणिमात्र जीवन-धारण करते हैं उसी प्रकार गृहस्थाश्रमपर सारे वर्ण-आश्रमोंका निर्वाह निर्भर है। यहाँ भक्षण उपलक्षण है सभी सामग्रियोंका। इसी तरह वानप्रस्थको भी यह आज्ञा दी गयी है कि तू 'सदा आचरणतत्परः' का अक्षरशः पालन कर। दाराको साथ रखते हुए भी 'नलिनीदल-

मम्बुवत्' के अनुसार निर्लेप रह। सब कुछ सम्पत्ति रहते हुए भी 'आचारवान् पुरुषो वेद'—यह तेरा ध्येय होना चाहिये।

संन्यासी इसी वाक्यकी शिक्षासे 'सदा चरणे (भ्रमणे) तत्परः' रहते हैं। वे 'अनिकेत' कहे गये हैं। वे सदा घूमते रहते हैं, यही उनको आज्ञा है।

यहाँ नमस्कार करनेवाला कहता है कि मैं आपके 'सदाचरणोंमें तत्पर हूँ', अर्थात् मैं आपसे छोटा हूँ। इसका उत्तर भी इसी वाक्यमें यों दिया जाता है कि 'तू 'सदाचरणतत्परः' रह।

यह है इस वाक्यका साधारण अभिप्राय। मैं तो कुछ जानता नहीं हूँ, किन्तु किसी विज्ञ सन्तके पास जाकर यदि तू पूछेगा तो तुझे वे इसके गूदातिगूढ तत्त्वका परिचय करा सकेंगे। स्वस्वधर्म-पालन करनेकी श्रीशङ्करजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर यहाँके सबलोग प्रभुजीसे यह प्रार्थना किया करते हैं कि—

शिव-योग

(लेखक—पं० श्रीगंगाधरजी शर्मा)

मनुष्यके कल्याणके लिये योग एक मुख्य साधन है। तभी तो हमारे प्राचीन ऋषि-मुनिजन बड़े आदरसे योगशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करते थे। इससे उन्हें कैवल्य-सुखकी प्राप्ति होती थी। विषादका विषय है कि आजकल इस शास्त्रका ह्रास हो रहा है। भगवान्की प्रेरणासे ही इस शास्त्रका उद्धार हो सकता है। अस्तु! योगके सम्बन्धमें श्रीशिवजी कहते हैं—

मदुक्तेनैव मार्गेण मय्यवस्थाप्य चेतसः।

वृत्त्यन्तरनिरोधो यः स योग इति गीयते ॥

अर्थात् 'मेरे बतलाये हुए मार्गके अनुसार मुझमें मन लगाकर दूसरी वृत्तियोंका निरोध करना ही योग है।' यद्यपि मायावृत्त संसारमें इस योगका साधन साधारण बात नहीं है तथापि जैसे एक धान कुटनेवाली स्त्री एक हाथसे ढेंकी चलाती जाती है, दूसरेसे उछलते हुए धानोंको समेटकर ऊखलमें डालती रहती है, बीच-बीचमें उसीसे बच्चेको स्तन्यपान भी करा लेती है और साथ ही ग्राहकोंके साथ धानका मोल-तौल भी करती जाती है; परन्तु यह सब होनेपर भी ऊखलमें पड़कर कहीं हाथमें चोट न आ जाय, इसके लिये पूर्ण सतर्कताके साथ मनको उसी जगह स्थिर रखती है, वैसे ही चञ्चल स्वभाववाले इस मनको बाहरके कामोंसे निवृत्त करके दहराकाशके पर-शिवमें स्थिर करना ही योग

शङ्कराच्छमहं याचे सदाचरणतत्परः।

अर्थात् हम अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुकूल सदा-चरणतत्पर रहते हुए, यानी आपकी तत्-तत् आज्ञा मानते हुए आपसे मङ्गल-कामना करते हैं।

भक्तोंकी यह धारणा है कि आनन्दवन नामक अविमुक्त वाराणसीपुरी एक धनुषकी तरह है। श्रीगङ्गाजी-रूपी उसमें प्रत्यक्षा (डोरी) बँधी हुई है। आदिकेशवका मन्दिर और लोलाककुण्ड उस धनुषके दोनों किनारे हैं। शाला और सत्रादिजन्य धर्म शर हैं। कलियुगके पाप शिकार हैं। शिकारी हैं शङ्करजी। जैसे शिकारसे शिकारी-का परिवार शुद्ध शान्त करता है, उसी तरह भगवान्के कुटुम्बी भक्तगण इस मृगयासे कल्याण प्राप्त करते हैं। आनन्दवनके शिकारीकी शरणमें आनेवाला फिर किसीके आश्रयका इच्छुक नहीं रहता, यानी मुक्त हो जाता है। 'महेशान्नापरो देवः' इति।

है। यह योग मन्त्र, लय, हठ, राज, शिव-पाँच प्रकारका है। इस मोक्षदायी योगशास्त्रका बोध शिवजीने सर्वप्रथम अपने अट्टाईस शिष्योंको कराया, पीछे इन शिष्योंने भी अपने चार-चार शिष्योंको इसका उपदेश किया। इस विषयका शिवागम, स्कन्दपुराण और लिङ्गपुराणमें सविस्तर वर्णन है।

श्वेतस्तु तारो मदनः सुहोत्रः कङ्क एव च।

लौगाक्षिश्च महामाथो जैगीपव्यस्तथैव च ॥

दधिवाहश्च ऋषभो मुनिरुग्रोऽभिरैव च।

सुबालो गौतमश्च तथा वेदशिरोमुनिः ॥

गोर्कणश्च गुहावासी शिखण्डी चापरः स्मृतः।

जटामाली चाट्टहासी दारुको लाङ्गली तथा ॥

महाकालश्च झूली च दण्डी मुण्डी तथैव च।

सहिष्णुः सोमशर्मा च नकुलेश्वर एव च ॥

अष्टाविंशतिसंख्याका योगाचार्या युगक्रमान् ॥

इसी प्रकार शिवमहापुराणकी वायवीयसंहितामें भी श्रीव्यासजीने २८ योगके आचार्योंको और ११२ उपाचार्योंको इस योगशास्त्रकी शिक्षा देनेकी बात कही है। महर्षि पतञ्जलिने इन आगमोंके सारसे योगसूत्रोंकी रचना करके समुत्तुम्हनोंका बड़ा उपकार किया है। योगाभ्याससे शिवैक्यको चाहनेवाले साधकों चाहिये कि गुरुमुखसे शिव-दीक्षाद्वारा

उपदिष्ट होकर प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें शिव-ध्यानपूर्वक उठकर शौच, आचमन, दन्तधावनादिसे निवृत्त होकर जलस्नान और भस्मस्नानसे शुद्ध हो जावे, और फिर एकान्तमें धर्म, वन्य या कम्यलके आसनमें पूर्व या उत्तरकी ओरको मुख करके बैठे। सङ्कल्पके उपरान्त प्राणायामको तीन बार करके गुरुपदिष्ट महामन्त्रके अनुसार ऋषि, देवता, छन्द, बीज, शक्तियोंको सिरसे लेकर पैरतकके उन-उन स्थलोंमें स्थापना करके अपने आश्रमोचित अङ्गन्यास-करन्यासादि षडङ्गन्यासों-को करके कल्पोक्त विधानसे मन्त्र-पुरश्चरणपूर्वक रुद्राक्ष-माला या हाथकी अङ्गुलियोंसे ध्यानसहित जप करे। यही मन्त्रयोग है। इसको पर-शिवने अपने मतके, वीर, नन्दि, भृङ्गी, वृषभ, स्कन्द नामक पाँच गोत्र पुरुषोंके लिये मूलपञ्चाक्षरी, मायापञ्चाक्षरी, शक्तिपञ्चाक्षरी, स्थूलपञ्चाक्षरी, प्रसादपञ्चाक्षरी—इसप्रकार पाँच भागोंमें विभक्त किया है। इस मतके संस्थापक पाँच आचार्य अपने-अपने शिष्योंको यथागोत्र बीजाक्षरोंके व्यत्याससे उपदेश देकर शिवयोगसम्पन्न बना देते हैं।

लययोगका स्वरूप इसप्रकार बतलाया गया है—

यस्य चित्तं निजध्येये मनसा भरता सह।

लानं भवति देवेश लययोगो स एव हि॥

इस सदाशिव ब्रह्मयोगीके कथनानुसार परिशुद्ध चैतन्यसहित होकर अपने ध्येयमें या वैकृत प्राणायामसे प्रकट हुए नादमें मन और प्राणोंके साथ लय हो जाना ही लययोग है। और यही योगी यदि यम-नियमादि अष्टाङ्ग-पूर्वक—

महामुद्रा महाबन्धो महावेदश्च खेचरी।

उड्डियाणं मूलबन्धस्ततो जालं भराभिधः॥

करणा विपरीता सा वज्रोली शक्तिचालनम्॥

—उपर्युक्त वाक्योंके अनुसार मुद्राबन्धोंके अनुसन्धानसे और पट्कर्मोंके आचरणसे केवल कुम्भकमें वायुको रोककर शिवका ध्यान करता है तो हठयोगी कहलाता है। इस हठयोगमें पारङ्गत होनेपर बाह्य, मध्य और आन्तर्य नामक तीन लक्ष्योंमें पडध्वातीत और पडध्वोपादानकारण जो ब्रह्म है, उसका साक्षात् करनेके बाद बाह्य प्रपञ्च-व्यापार-से डरकर सब विषयोंको त्याग केवल समाधिनिष्ठ हो जाना ही राजयोग है। ये चारों योग अधिकारी-भेदसे 'मृदु, मध्य, अतिमात्र, अतिमात्रतर' इसप्रकारसे चार प्रकारके हैं। जो बलहीन, संसारी, पराधीन, अल्पज्ञ, रोगशील, भोगासक्त और बाह्य-कार्याकुल होकर भी योगाभ्यास करे,

वह मृदु-योगी है। यह मन्त्रयोगासक्त है। जो सुख-दुःखोंके भागी, सज्जनसङ्गी, सर्वेन्द्रियोंके उद्रेकसे शून्य, शुद्धान्तःकरणवाला योगाभ्यासका प्रेमी होगा वह मध्य योगी है। यह लययोगासक्त है। जो शम-दमादि सदगुणोंसे युक्त, धैर्य-सत्त्व-शौचादिनिष्ठ, निश्चल और निष्काम योगानुरागी हो, वह अतिमात्र योगी है। वह हठयोगका अधिकारी है। और जो सकल शास्त्रोंका ज्ञाता, सर्वभोगत्यागी, सर्वबाह्य-व्यापारशून्य, विकाररहित होकर योगाभ्यास करे वह अतिमात्रतर योगी है। वह राजयोगका अधिकारी है। मुक्ति-दायक और उत्तमोत्तम राजयोग अधिकारी-भेदसे सांख्य, तारक, अमनस्क नामसे तीन प्रकारका है। पृथिवीसे लेकर प्रकृतितक जो पचीस तत्त्व हैं इनके ज्ञानसे होनेवाला योग सांख्ययोग है। समाधिस्थ होकर मन, दृष्टि और प्राणोंको बहिर्मुख न होने देते हुए मुद्राबन्धन करना तारक योग है। मनको प्रकृतिमें लीन-सा करके अन्तर्मुद्रा-ज्ञानसे युक्त होना अमनस्कयोग है। ये तीन योग सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य नामक त्रिविध मुक्तिके साधन हैं।

राजत्वात्सर्वयोगानां राजयोग इति स्मृतः।

—इस वचनके अनुसार राजयोग ही सब योगोंमें श्रेष्ठ है। इस योगको ही कुछ लोग 'शिवयोग' कहते हैं, परन्तु शिवसिद्धान्त तो इसे शिवयोगका प्रवेशद्वार मानता है। श्रीशिवयोगिपुङ्गव चक्रसदाशिवजीके—

प्रतिपाद्यस्तयोर्भेदस्तथा शिवरतात्मनाम्।

तस्मान्मनाधिग्राह्योऽयं शिवयोगोऽस्तु केवलः॥

—इस वचनके अनुसार वह योग शिवयोग नहीं हो सकता जो पातञ्जलादि शास्त्रोंमें वर्णित है। अर्थात् गुणत्रय-साक्षात्कार ही 'तारकत्रय' है, प्रकृतिमें मनका लय ही 'अमनस्क' है, पुरुषका साक्षात्कार ही राजयोग है—

तदात्मवत्त्वं योगिरत्वं जिताक्षः सोपपद्यते।

—इस श्रुतिके अनुसार जितेन्द्रिय साधकका पर-शिव ब्रह्ममें आत्माको बाँधना ही शिवयोग हो सकता है। यह शिवयोग—

ज्ञानं शिवमयं भक्तिः शैवी ध्यानं शिवात्मकम्।

शैवव्रतं शिवाचैति शिवयोगो हि पञ्चधा॥

—के अनुसार पाँच प्रकारका है। इनमें 'शिवज्ञान, शिवभक्ति, शिवध्यान, शिवव्रत' नामक ये चार भेद शिव-पूजाके प्रमुख अङ्ग होनेके कारण शिवपूजा ही असली शिवयोग है। जो इस पर-शिवके ब्रह्मअभिमुख होगा उसीको महासुखकी प्राप्ति हो सकती है। कहा भी है—

शिवार्चनविहीनो यः पशुरेव न संशयः ।

शतसंसारचक्रेऽस्मिन्नजस्रं परिवर्तते ॥

इस शिवपूजारूपी शिवयोगका हठयोग तो साधनमात्र है। 'शिवयोगः साधकानां साध्यः स्यात्साधनं हठः'—इस हठ-योगके यम, नियम, आसन एवं प्राणायामरूपी चार बाह्याङ्ग और प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, एवं समाधिरूपी चार आभ्यन्तराङ्ग भी हैं। इन अष्टाङ्गोंसे युक्त और शिवयोगका साधक मुमुक्षु ही शैवपदवाच्य है। कहा है—

स्वात्मनैव सदाष्टाङ्गैः पूजयेच्छिवमन्वहम् ।

शैवः स एव विद्वान् स च योगविदां वरः ॥

वीरशैवोंमें यही अष्टाङ्ग ही 'षट्स्थल' के नामसे प्रसिद्ध हैं। लिङ्गपुराणके उत्तर-भागके २१ वें अध्यायमें श्रीव्यासजीने इसका विस्तार इसप्रकार किया है—

यमेन नियमेनैव मन्ये भक्त इति स्वयम् ।

स्थिरासनसमायुक्तो माहेश्वरपदान्वितः ॥

चराचरलयस्थानलिङ्गमाकाशसंज्ञकम् ।

प्राणायामसमायुक्तः प्राणलिङ्गी भवेत् पुमान् ॥

प्रत्याहारेण संयुक्तः प्रसीदति न संशयः ।

ध्यानधारणसम्पन्नः शरणस्थलवान् सुधीः ॥

लिङ्गैक्योऽद्वैतभावारमा निश्चलैक्यसमाधिना ।

एवमष्टाङ्गयोगेन वीरशैवो भवेन्नरः ॥

इन श्लोकोंको श्रीसदाशिवयोगीने अपनी 'शिवयोग-प्रदीपिका' में उद्धृत किया है। इनका भाव यह है कि जो निष्ठारूपी स्थिर आसनपर आसीन होगा वही माहेश्वर है। जो चराचरके लयस्थान और आकाशसंज्ञारूपी शुद्ध प्रसादलिङ्गमें प्राणवायुके साथ मनको स्थिर करेगा वही प्राणलिङ्गी है। जो उस प्राणलिङ्गमें लीन होनेवाले मनः-प्राणोंका निश्चलतापूर्वक प्रत्याहार करेगा वही प्रसादी है। और जो उस महालिङ्गके ध्यान-धारणादिसे युक्त होकर केवल निश्चल शिवयोगसे शिवाद्वैतभावसम्पन्न होगा वही लिङ्गैक्य-प्राप्त है। इसप्रकारका अष्टाङ्गसम्पन्न शिवयोगी ही षट्स्थल-सिद्धिको पावेगा। इसीलिये आर्यगण यह उपदेश देते हैं कि—

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्मणा ज्ञानतोऽपि वा ।

स्वमन्यष्टाङ्गयोगेन शिवयोगी भवानघ ॥

अर्थात् 'अष्टाङ्गयोग भी शैवसिद्धान्त है, अतएव हे अनघ ! तुम भी कर्मरूपी अष्टाङ्गयोगसे अथवा बाह्य और आभ्यन्तरिक / ज्ञानरूपी अष्टाङ्गयोगसे शिवयोगकी सिद्धि प्राप्तकर शिव-सायुज्य-मुक्तिके भागी बनो।' हमारी इच्छा है कि सारे संसारमें शिवयोगसे पवित्र शान्ति फैल जाय।

कीटो भ्रमरयोगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम् ।

मानवः शिवयोगेन शिवो भवति निश्चयात् ॥

आरती

जयति जयति जग-निवास, शङ्कर सुखकारी ॥
अजर अमर अज अरूप, सत चित आनंदरूप;
व्यापक ब्रह्मस्वरूप, भव ! भव-भय-हारी ॥ जयति०
शोभित विधुबाल भाल, सुरसरिमय जटाजाल;
तीन नयन अति विशाल, मदन-दहन-कारी ॥ जयति०
भक्तहेतु धरत शूल, करत कठिन शूल फूल;
हियकी सब हरत हूल, अवल शान्तिकारी ॥ जयति०
अमल अरुण चरण-कमल, सफल करत काम सकल;
भक्ति मुक्ति देत विमल, माया-भ्रम-टारी ॥ जयति०
कार्तिकेययुत गणेश, हिमतनया सह महेश;
राजत कैलास-देश, अकल-कला-धारी ॥ जयति०
भूषण तन भूति व्याल, मुण्डमाल कर-कपाल;
सिंह-चर्म हस्ति-खाल, डमरू कर-धारी ॥ जयति०
अशरण-जन नित्य शरण, आशुतोष आर्तिहरण;
सब विधि कल्याण-करण, जय जय त्रिपुरारी ॥ जयति०

—नारायणदास पोद्दार

शिव-महिमा

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)



झरकी अर्द्धाङ्गभूता भगवती पार्वती जिस समय अद्भुत तपस्यामें निरत थीं और उनके प्रेमकी परीक्षाके लिये स्वयं भगवान् शङ्करने ब्रह्मचारीका वेष बनाकर उनके सामने अपनी ही भर-पेट निन्दा की थी, 'शङ्कर इतना दरिद्र है कि उसे वस्त्रतक पहननेको नहीं मिलता, इसीसे 'दिगम्बर' कहलाता है, वह इमशानवासी है, उसका रूप ही भयङ्कर है,' इत्यादि अनेकानेक दोष जब अपनेआपमें बताये थे, उस समय पार्वतीका उत्तर महाकवि कालिदासके शब्दोंमें यों अङ्कित हुआ है—

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः ।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥

अर्थात् शिव परम दरिद्र होकर भी सब सम्पत्तियोंके उद्गमस्थान हैं, सब सम्पत्तियाँ वहींसे प्रकट होती हैं, वे इमशानवासी होकर भी तीनों लोकोंके नाथ हैं, भयानक रूपमें रहनेपर भी उनका नाम 'शिव' है, सत्य तो यह है कि पिनाकधारी भोलानाथका यथार्थ तत्त्व कोई जान ही नहीं पाया, वे क्या हैं और कैसे हैं—यह तत्त्व कोई नहीं जानता। यह भगवान् शङ्करकी अत्यन्त अन्तरङ्ग, परमशक्ति भगवती पार्वतीकी राय है। इसी प्रकार बाल-ब्रह्मचारी परमतत्त्वज्ञ भीष्मपितामहसे नीति, धर्म और मोक्षके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रहस्यका विवेचन सुनते हुए महाराज युधिष्ठिरने जब शिव-महिमाके सम्बन्धमें प्रश्न किया तो वृद्ध पितामहने भी यही उत्तर दिया था कि—

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः ।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ॥

(महा० अनु० १४।३)

'जो सबमें रहते हुए भी कहीं किसीको दिखायी नहीं देते, उन महादेवके गुणोंका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ।' 'मैं असमर्थ हूँ' इतना ही कहकर भीष्मपितामहको

सन्तोष नहीं हुआ, किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कह दिया कि मनुष्य-देह-धारी कोई भी महादेवकी महिमा नहीं कह सकता—

को हि शक्तो गुणान् वक्तुं देवदेवस्य धीमतः ।
गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः ॥

आगे भीष्मपितामहने युधिष्ठिरको निराश होते देख यों धैर्य दिलाया कि इस सभामें साक्षात् विष्णुके अवतार भगवान् श्रीकृष्ण उपस्थित हैं, वे शिवकी महिमा कह सकते हैं, साथ ही स्वयं भगवान् कृष्णसे प्रार्थना की कि आप युधिष्ठिरको और सब ऋषि-मुनि आदिको शिव-महिमा सुनावें। भगवान् श्रीकृष्णने भी यहाँसे प्रारम्भ किया कि 'हिरण्यगर्भ, इन्द्र, महर्षि आदि भी शिव-तत्त्व जाननेमें असमर्थ हैं, मैं उनके कुछ गुणोंका ही व्याख्यान करता हूँ' ऐसी स्थितिमें एक क्षुद्रातिक्षुद्र नर-कीटका शिव-महिमाकी व्याख्याके लिये मुँह खोलना वा लेखनी उठाना सर्वथा दुःसाहस वा अनधिकार चेष्टा ही कही जा सकती है, किन्तु इसका उत्तर श्रीपुष्पदन्ताचार्यने अपने सुप्रसिद्ध 'महिम्नःस्तोत्र' के आरम्भमें ही दे दिया है—

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावाधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥

'यदि आपकी महिमाको पूर्णरूपसे बिना जाने स्तुति करना अनुचित हो, तो ब्रह्मादिकी भी वाणी रुक जायगी। कोई भी स्तुति नहीं कर सकेगा, क्योंकि आपकी महिमाका अन्त कोई जान ही नहीं सकता। अनन्तका अन्त कैसे जाना जाय। तब अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार जिसने जितना समझ पाया है, उतना कह देनेका उसका अधिकार दूषित न ठहराया जाय, तो मुझ-जैसा तुच्छ पुरुष भी स्तुतिके लिये कमर क्यों न कसे। कुछ तो हम भी जानते ही हैं, जितना जानते हैं, उतना क्यों न कहें?' आकाश अनन्त है, सृष्टिमें कोई भी पक्षी ऐसा नहीं, जो आकाशका अन्त पा ले, किन्तु इसलिये वे उड़ना नहीं छोड़ते, प्रस्थित जिसके पक्षोंमें जितनी शक्ति है, उतनी उड़ान वह आकाशमें भरता

है। हंस अपनी शक्तिके अनुसार उड़ता है और कौआ अपनी शक्तिके अनुसार। यदि न उड़े, तो उनका पक्षि-जीवन व्यर्थ ही हो जाय, फिर उन्हें पक्षी कहे ही कौन ? इसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार अनन्त शिव-तत्त्वमें जितना समझ सकें उतना समझना और जितना समझा है उसके मननके लिये परस्पर कहना और सुनना मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये सबका आवश्यक कर्तव्य है। बस, उसी कर्तव्यकी आंशिक पूर्तिके लिये यह छोटा-सा लेख भी पाठकोंकी सेवामें समर्पित है।

ईश्वर-निरूपण

शिव जगन्नियन्ता जगदीश्वर हैं। ईश्वर और महेश्वर शिवके पर्याय शब्द हैं, शिवके ही नाम हैं—यह अमर-कोष पढ़नेवाला भी जानता है। श्रुति भी यही कहती है—

एको हि रूद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाल्लोकीनीशत ईशनीभिः ।
प्रत्यङ्मूर्तिरिति सञ्चुकोच्चान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥
(श्वेताश्वतर० ३।२)

‘एक ही रूद्र है, जो कि इन सब लोकोंको अपनी शक्तिले वशमें रखता है; अतएव वह ईश्वर है, उसीकी सब उपासना करते हैं, वह सब लोकोंको उत्पन्न कर अन्तकालमें संहार भी करता है, वही सबके भीतर अन्तर्यामीरूपसे स्थित है,’ इत्यादि। अतएव शिव-तत्त्वका विचार वा ईश्वर-तत्त्वका विचार एक ही बात है। ईश्वरका निरूपण वैदिक सिद्धान्तमें दो भावोंसे है—एक वैज्ञानिक भावसे अर्थात् व्यापक रूपसे; दूसरा उपासना-भावसे अर्थात् मनुष्यरूपमें। वैज्ञानिक रूपकी भी मनुष्याकार कल्पना होती है और अवताररूपसे मनुष्याकार-धारी भी ईश्वर होता है। इन दोनों रूपोंमें आश्चर्यजनक समानता होती है। अस्तु, वैज्ञानिक भावमें—ईश्वरका जगत्के साथ छः प्रकारका सम्बन्ध शास्त्रमें बताया जाता है—(१) ‘जगति ईश्वरः’ (२) ‘ईश्वरे जगत्’ (३) ‘जगद् ईश्वर एव’ (४) ‘जगद् ईश्वरश्च भिन्नौ’

(५) ‘ईश्वरो जगतोऽतिरिच्यते, जगत्तु ईश्वरात्तातिरिच्यते,’ (६) ‘ईश्वराद् भेदेन अभेदेन वा अनिर्वचनीयं जगत्’ [(१) जगत्में ईश्वर है (२) ईश्वरमें जगत् है (३) जगत् ईश्वर ही है (४) जगत् और ईश्वर भिन्न-भिन्न हैं—ईश्वर जगत्से परे है (५) ईश्वर जगत्से भिन्न है, किन्तु जगत् ईश्वरसे भिन्न नहीं (६) जगत् अनिर्वचनीय है, भिन्न वा अभिन्न कुछ भी नहीं कहा जा सकता] ये सम्बन्ध देखनेमें परस्परविरुद्ध प्रतीत होते हैं, किन्तु विचारदृष्टिसे देखनेपर उपादान-कारणके साथ कार्यके छहों प्रकारके सम्बन्ध व्यवहारमें आते हुए प्रतीत होते हैं। वस्त्रमें तन्तु हैं, तन्तुओंके आधारपर वस्त्र है, तन्तु ही पटरूपताको प्राप्त हो गये हैं, पट एक अतिरिक्त वस्तु (अवयवी) है जो तन्तुओंसे उत्पन्न हुआ है, तन्तुओंकी सत्ता स्वतन्त्र है—तन्तु पटसे पूर्व भी थे; आगे भी रहेंगे और जहाँ पट उत्पन्न नहीं हुआ वहाँ भी हैं, किन्तु पट तन्तुओंसे स्वतन्त्र अपनी सत्ता नहीं रखता; कह नहीं सकते कि तन्तु और पट भिन्न-भिन्न हैं वा एक हैं; यों छहों प्रकारके व्यवहार लोकमें भी उपादान और उपादेयमें प्राप्त होते हैं। ईश्वरने अपनी इच्छासे स्वयं ही जगद्रूप धारण किया है—‘एकोऽहं बहु स्याम्, प्रजायेय’—वह जगत्का उपादान-कारण भी है और निमित्त-कारण भी, इसलिये उसके साथ जगत्के छहों प्रकारके सम्बन्धोंका होना युक्तियुक्त ही है। हाँ, तन्तु, पट आदिकी अपेक्षा इतनी विशेषता यहाँ समझने योग्य है कि ईश्वर चेतन है, अतः वह जगत्को अपनी इच्छासे रचकर शासकरूपसे भी उसके प्रत्येक अवयवमें प्रविष्ट हो रहा है—

तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । (श्रुति)

‘ईश्वर जगत्को बनाकर उसीमें अनुप्रविष्ट होता है।’ यह श्रुति इस दूसरे रूपका ही वर्णन करती है, क्योंकि सृष्टिके अनन्तर प्रविष्ट होना इसमें बताया गया है—

एतस्यैवाक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः । (बृहदारण्यक उपनिषद्)

- १-२ यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
(गीता ६।३०)
३-मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
(गीता ७।७)
४-परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
(गीता ८।२०)

- ५-मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥
(गीता ९।४)
६-नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
(गीता ७।२५)
इत्यादि

‘हे गार्गि ! इसी अक्षर पुरुषके शासन—नियन्त्रण-में सूर्य और चन्द्रमा ठहरे हैं ।’

भीषास्माद्वातः पवते भीषेदेति सूर्यः । (कठोपनिषद्)

‘इसीके भयसे पवन चलता है, इसीके भयसे सूर्य उदय होता है ।’

—इत्यादि श्रुति भी शासकरूपसे इसी प्रविष्ट रूपका वर्णन करती है । लकड़ी, पत्थर, वृक्ष आदि जितने पार्थिव पदार्थ हम देखते हैं, उनमें वैज्ञानिक दृष्टिसे दो प्रकारकी प्राणरूप अग्नि है, एक वह जो उन पदार्थोंकी उत्पादक (उपादान-कारण) है और दूसरी उनमें उत्पत्तिके अनन्तर प्रविष्ट हुई है । इन दोनोंका नाम वैदिक परिभाषामें क्रमसे ‘चित्स्थ’ और ‘चित्ते निधेय’ है । जिसका चयन हुआ है, तब-पर-तबके क्रमसे जिसकी चुनाई होकर ये सब वस्तुएँ बनी हैं, वह ‘चित्स्थ’ अग्नि है और वस्तु बन जानेपर समुदायपर जो प्राणशक्ति बैठकर उसे अपने स्वरूपमें रखती है, वह ‘चित्ते निधेय’ (चुने हुएपर ठहरनेवाली) कहाती है । इस प्राणशक्तिकी व्याप्ति उस स्थूल वस्तुकी सीमातक ही नहीं रहती, किन्तु यह उसकी परिधिसे बाहर भी बहुत दूरतक व्याप्त रहती है । भिन्न-भिन्न वस्तुओंके आकारकी हमारे नेत्रोंतक लाकर हमें दिखाना, फोटोग्राफीके आईनेमें वस्तुके आकारको ले आना, उत्कट, गरम वा ठण्डे पदार्थकी गर्मी वा सर्दीका दूरतक प्रभाव होना, अत्यन्त प्रकाशमान पदार्थका दूरसे ही आँखों-को चौंधिया देना, हमलीके वृक्षके नीचे जाते ही वायुका प्रभाव हो जाना या नामके वृक्षके नीचे सोने-बैठनेसे आरोग्य प्राप्त होना आदि शतशः इस दूसरी (चित्ते निधेय) प्राणशक्तिके ही कार्य हैं । वैदिक विज्ञान बहुत कुछ इसीपर निर्भर है । अस्तु, इसी प्रकार ईश्वर भी उपादानरूपसे और शासकरूपसे—दोनों प्रकारसे सब जगत्में प्रविष्ट माना गया है । यों ईश्वरके तीन रूप हैं—सृष्ट, प्रविष्ट और विविक्त । जो जगत्का उपादान-कारण बना है—वह सृष्टरूप कहा जाता है, जो उसका शासन कर रहा है—वह प्रविष्टरूप है और—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

(पुरुषसूक्त)

‘यह सम्पूर्ण भूतग्राम उस परमात्माका एक पाद

है, शेष तीन पाद तो उसके अमृतरूपमें प्रकाशमान रहते हैं ।’

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

(गीता १० । ४२)

‘मैं सम्पूर्ण जगत्में एक अंशसे व्याप्त होकर उसका धारण करता हुआ विराजमान हूँ ।’ इत्यादि श्रुति-स्मृतिद्वारा जो जाना जाता है, वह जगत्से असंस्पृष्ट शुद्ध रूप ईश्वरका तीसरा ‘विविक्त’ रूप है, इन्हीं तीनोंको क्रमसे ‘विश्व,’ ‘विश्वचर’ और ‘विश्वातीत’ नामोंसे भी कहा जाता है ।

पशुपति वा प्रजापति

विश्वको ‘सत्य’ वा ‘प्रजापति’ भी कहते हैं । उसमें तीन भाग हैं, आत्मा, प्राण और प्रजा वा पशु । शैव दर्शनमें इन तत्त्वोंको ‘पशुपति,’ ‘पाश’ और ‘पशु’ कहा जाता है । निरूपणकी परिभाषा भिन्न-भिन्न होनेके कारण परस्पर थोड़ा-बहुत भेद हो जाता है; किन्तु मूल-तत्त्व सब जगह एक ही रहते हैं, शब्दोंका ही भेद रहता है । कार्य-जगत् वा जगत्का वाह्यरूप ‘पशु’ नामसे कहा जाता है, इसमें जड़-चेतन दोनों नामोंसे कहे जानेवाले सभीका अन्तर्भाव हो जाता है । जीवभावमें रहता हुआ जीव भी ‘पशु’ श्रेणीमें ही आता है, क्योंकि जीवभाव उसका जगत्सम्बन्धी रूप है । इन सबका नियमन करनेवाला वा उत्पन्न करनेवाला, सबका पिता, सबका स्वामी तथा आत्मा ईश्वर वा पशुपति है, और वह जिन साधनोंसे इन्हें उत्पन्न करता है वा बाँधकर बशमें रखता है, वे ‘प्रकृति’ वा ‘प्राण’ पाश कहे जाते हैं । प्रकृति-पाश, प्रजा वा पशु आत्मासे सर्वथा पृथक् नहीं कहे जा सकते—इस कारण तीनोंकी समष्टिका भी प्रजापति वा पशुपति-नामसे निर्देश हुआ है । अस्तु, ये आत्मा और प्राण आदि शब्द सापेक्ष होनेके कारण भिन्न-भिन्न स्थानोंमें अपेक्षा-कृत व्यवहारमें आते हैं । किसी दृष्टिसे जो ‘प्राण’ है, दूसरी दृष्टिसे वह ‘आत्मा’ भी कहा जा सकता है । एक दृष्टिसे जिसे ‘पशु’ कह सकते हैं, दूसरी दृष्टिसे वह ‘आत्मा’ भी हो सकता है । जैसे श्रुतिके सिद्धान्तमें इस सब जगत्का

१—यह विषय ‘श्रीकृष्णावतारपर वैज्ञानिक दृष्टि’ शीर्षक लेखमें कुछ विस्तारसे लिखा गया है, देखिये कल्याण ‘श्रीकृष्णाङ्क-

मूलतत्त्व एक है, वह सब नाम-रूपसे परे, सब गुण-धर्मों-का मूल होनेके कारण उनसे रहित—स्वतन्त्र एक निर्विशेष-तत्त्व है, जो मन और बुद्धिकी पहुँचसे बाहर है। यद्यपि गुण-धर्मसे रहित होनेके कारण उसका वाचक कोई शब्द नहीं हो सकता, तथापि व्यवहारके लिये उसे 'रस' नामसे पुकारते हैं—'रसो वै सः' (तैत्तिरीय श्रुति)। वह मुख्य 'आत्मा' है, सबका आत्मा होनेके कारण उसे 'परमात्मा' भी कह सकते हैं। यह निर्विकार होनेके कारण जगत्का कारण नहीं बन सकता, इसलिये जो उसकी आत्मभूत 'शक्ति' सृष्टि, प्रलय और स्थितिके कारणरूपसे मानी जाती है, वह 'बल' वा 'शक्ति' प्राणरूप है और इससे आगे उत्पन्न होनेवाले पुरुष, प्रकृति आदि सब 'पशु' हैं। यह एक दृष्टि हुई। यह निर्विशेष 'क्षर,' 'अक्षर' और 'अव्यय' तीनों पुरुषोंसे भी पर—उनका भी आत्मा है, यही शिवका मुख्य रूप 'परमशिव' है।

अदृष्टमन्यवहार्यमप्राप्तमलक्षणमचिन्त्यमन्यपदेयमेकात्म-प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विशेषः। (माण्डूक्योपनिषद् ७)

यह श्रुति निर्विशेष रूपका ही वर्णन करती है और उसे ही 'शिव' कहती है। इस रूपकी उपासना नहीं हो सकती, क्योंकि यह मनमें नहीं आ सकता। 'नेति-नेति' कहकर श्रुति किसी प्रकार उसका परिचय कराती है, कम वा उपासनासे उसका साक्षात् सम्बन्ध नहीं बन सकता; किन्तु यह भी सिद्धान्त है कि लक्ष्य हमारा वही है। आगे उत्पन्न होनेवाले प्रतीकोंके द्वारा उसीकी उपासना की जाती है, मुख्य आत्मा वही है, वही प्राप्य मुख्य लक्ष्य है।

अब आगे चलिये। शक्तिसहित आत्मा वा बल-विशिष्ट रस 'परात्पर' कहलाता है। बल वा शक्ति जब माथारूपसे प्रकट होकर अपरिच्छिन्न रसको परिच्छिन्न (सीमाबद्ध) कर लेती है, तब अव्यय पुरुषका प्रादुर्भाव होता है। उसकी पाँच कलाएँ हैं—आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और वाक्। क्रमसे बलोंकी चित्ति होकर अक्षर पुरुष और आगे उसीसे क्षर पुरुष भी प्रकट हो जाता है। अब इस दशामें अव्यय पुरुष 'आत्मा', अक्षर उसकी 'प्रकृति' वा 'प्राण' और क्षर 'पशु' कहा जाता है।

का परिशिष्टाङ्क' पृ० ५२२। यहाँ आवश्यकतानुसार उसका सारांश दिया जाता है।

अर्थात् 'क्षर' रूप पशुके लिये 'अव्यय' पशुपति और अक्षर पाश है। वा यों कहो कि अव्यय ईश्वर, अक्षर प्रकृति और क्षर जगत् है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें अव्यय पुरुषको ही 'ईश्वर' कहा है। नारायणोपनिषद्में भी अव्ययकी कलाओंका प्रतिसङ्चार (विपरीत) क्रमसे जन्यजनकभाव कहा गया है—

अन्नात् प्राणा भवन्ति भूतानाम्, प्राणैर्मनो, मनसश्च विज्ञानम्, विज्ञानादानन्दो ब्रह्मयोनिः, स वा एष पुरुषः पञ्चधा, पञ्चात्मा, येन सर्वमिदं प्रोतम्.....

ज्ञात्वा तमेवं मनसा हृदा च

भूयो न मृत्युमुपयाति विद्वान्।

(नारायणोपनिषद् ७९)

इन पाँचों कलाओंके अधिष्ठातारूपसे भगवान् शङ्कर-के पाँच रूप माने जाते हैं, जिनके भिन्न-भिन्न ध्यान तन्त्र-ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध हैं। आनन्दमय रूपकी 'मृत्युञ्जय' नामसे उपासना होती है, क्योंकि 'रस' स्वयं आनन्दरूप है—'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' (श्रुति)। और बल जिसका दूसरा नाम मृत्यु भी है, उस आनन्दका तिरोधान करता है। मृत्यु (बल) का जय करनेसे, मनसे हटा देने-से आनन्द प्रकट होता है, वा यों कहिये कि आनन्द ही मृत्युका जय करके प्रकट हुआ करता है। इसलिये आनन्द 'मृत्युञ्जय' है। दूसरी कला विज्ञानमय शङ्करमूर्तिकी 'दक्षिणामूर्ति' नामसे उपासना प्रसिद्ध है। 'विज्ञान' बुद्धिका नाम है, उसका घन 'सूर्यमण्डल' है, सूर्यमण्डलसे ही विज्ञान सौर-जगत्के सब प्राणियोंको प्राप्त होता है। सूर्य सौर-जगत्के केन्द्रमें स्थित है, वृत्त (मण्डल) में केन्द्र सबसे उत्तर माना जाता है। यह वृत्तकी परिभाषा है, अतः विज्ञान उत्तरसे दक्षिणकी आनेवाला सिद्ध हुआ। इसी कारण विज्ञानमय मूर्ति 'दक्षिणामूर्ति' कही जाती है। 'वर्णमातृका' पर यह मूर्ति प्रतिष्ठित है। विज्ञानका आधार वर्णमातृका है। इसके स्पष्टीकरणकी सम्भवतः आवश्यकता न होगी। ये दोनों (मृत्युञ्जय और दक्षिणामूर्ति) प्रकाश-प्रधान होनेके कारण श्वेतवर्ण माने जाते हैं। तीसरी मनो-मय (अव्यय पुरुषकी) कलाका अधिष्ठाता 'कामेश्वर' शिव है। मन कामप्रधान है—

कामस्तदग्रे

समवर्तताधि

मनसो रेतः प्रथमं तदासीत्। (श्रुति)

इस कारण इसका 'कामेश्वर' नाम है और मनके धर्म-अनुरागका वर्ण 'रक्त' माना जाता है, इसलिये यह कामेश्वर-मूर्ति तन्त्रोंमें रक्तवर्ण मानी गयी है। पञ्चप्रेतपर्यङ्कपर शक्तिके साथ विराजमान इस कामेश्वरमूर्तिकी उपासना तान्त्रिकोंमें प्रसिद्ध है। चौथी कला 'प्राणमय मूर्ति' 'पशु-पति', 'नीललोहित' आदि नामोंसे उपासित होती है। यह पञ्चमुखी मूर्ति है। आत्मा-पशुपति, प्राणरूप पाशके द्वारा विकाररूप पशुओंका नियमन करता है—यह पूर्व कह चुके हैं, अतः प्राणमय मूर्तिको ही 'पशुपति' कहना युक्तियुक्त है। प्राण वैदिक परिभाषामें दो प्रकारका है, एक आग्नेय, दूसरा सौम्य। अग्निका वर्ण लोहित-सुनहरी और सोमका नील वा कृष्ण माना गया है। 'यदग्ने रोहितं रूपम्,' 'तेजसस्तद्रूपम्,' 'यच्छुक्ले तद्रूपम्,' 'यस्कृष्णं तदन्नस्य' (छान्दोग्योपनिषद् ६ प्रपा० ४ खं०) (सोम ही अन्न होता है, इस कारण यहाँ अन्न शब्दसे सोमका निर्देश हुआ है), इसीलिये यह मूर्ति 'नीललोहित कुमार' नामसे प्रसिद्ध है। इन दोनों रूपोंके समिश्रणसे पाँच रूप बनते हैं—इसलिये पाँच वर्णके पाँच मुखोंका ध्यान इस मूर्तिका ध्यान कहा गया है—

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पश्चि-
मधक्षैरश्रितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम् ।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान्नगोन्द्रवण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ॥

सोम (कृष्णवर्ण) पर जब अग्नि (लोहित) आरूढ़ हो तो धूमल रक्त होता है और अग्निपर सोम आरूढ़ हो तो पीतरूप हो जाता है। सोम और अग्निकी मात्राके तारतम्यसे और भी मोतिया, बैंगनी, हरित आदि रूप बनते हैं। अस्तु, यहाँ इस विषयका विस्तार करनेसे प्रकरण-विच्छेदका भय है, इसलिये उक्त शिव-मूर्तिके ध्यानपर विशेष वक्तव्य यथास्थान उपस्थित किया जायगा। इस पञ्चमुख मूर्तिका एक मुख सबके ऊपर है और चार मुख चारों दिशाओंमें। ऊर्ध्वमुख ईशान नामसे, पूर्वमुख तत्पुरुष नामसे, दक्षिण अघोर नामसे, उत्तर वामदेव नामसे और पश्चिम सद्योजात नामसे पूजा जाता है। अवसर हुआ तो इन बातोंका स्पष्टीकरण मूर्तिनिरूपणमें करेंगे। पाँचवीं कला वाङ्मयमूर्ति 'भूतेश' नामसे उपास्य है। वाक्, अन्न और भूत—ये शब्द एक ही अर्थके बोधक हैं, यही 'भूतेश' शिव अष्टमूर्ति माने जाते हैं, इस सम्बन्धमें भी आगे बहुत कुछ वक्तव्य होगा।

यह अव्यय पुरुष सर्वात्मा, सर्वाधार, सबका आयतन है। आगे जो दूसरे प्रकारसे शिवमूर्तियाँ कहीं जायँगी, वे भी इससे पृथक् कभी नहीं हो सकतीं, सब इसीका विस्तार है।

हाँ, तो यह बताया जा चुका है कि तीनों पुरुषोंका प्रादुर्भाव होनेपर अव्यय पुरुष आत्मा वा पशुपति, अक्षर पुरुष प्राण वा पाश और क्षर पुरुष विकार वा पशु समझा जाता है—यह दूसरी दृष्टि हुई। अब क्षर पुरुषके प्रथम विकार—प्राण, अप्, वाक्, अन्न आदि और अन्न—ये पाँच जब प्रादुर्भूत होते हैं, तो अव्यय पुरुष आत्मा, अक्षर और क्षर दोनों उसकी परा और अपरा-प्रकृति वा प्राण और प्राण, अप् आदि पाँचों विकार कहे जाते हैं; इन्हींको इस दृष्टिसे पशुपति, पाश और पशु कहा जाता है। आगे जब क्रमसे प्राण आदि पाँचों तत्त्व परस्पर पञ्चीकरणके द्वारा आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक रूपोंमें विस्तृत होते हैं और आधिदैविक रूपमें इनके स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, पृथिवी और चन्द्रमा; आध्यात्मिक रूपमें अव्यक्त, महान्, विज्ञान, प्रज्ञान और शरीर एवं आधिभौतिक रूपमें गुहा (सत्य वा आकाश) अप्, ज्योति, रस और अमृत—ये नाम पड़ते हैं, तब अव्यय, अक्षर और क्षर—ये तीनों 'पुरुष' 'आत्मा' वा 'पशुपति', प्राण आदि पाँचों पूर्वोक्त 'प्रकृति' 'प्राण' वा 'पाश' और ये आधिदैविक आदिसब रूप 'विकार' वा 'पशु' कहे जाते हैं। आधिदैविक आदि रूपोंमें भी पुरुष और प्रकृतिसे अनुगत स्वयम्भू और परमेष्ठीका एक संसृग्धरूप 'पशुपति', सूर्य और चन्द्रमा 'पाश' और पृथिवी 'पशु' कहे जाते हैं। यों ही सौर-जगत्की दृष्टिसे सूर्य पशुपति (आत्मा) सूर्यरश्मि पाश और पृथिवी, चन्द्रमा आदि पशु होते हैं। आगे इन पाँचों मण्डलोंमें जो-जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनकी दृष्टिसे ये मण्डल पशुपति और वे जन्य पदार्थ पशु समझे जाते हैं—जैसे पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले ओषधि, पार्थिव शरीर आदिके लिये पृथिवी ही 'पशुपति' है, पृथिवीका आकर्षण पाश है और वे ओषधि आदि पशु हैं। आगे अग्निके भेदोंमें भी पाँच प्रकारके पशुओंका उल्लेख होगा और नियन्ता ईश्वरके प्रकरणमें 'ऋत' पदार्थोंको 'पशु' कहा

१—ये पाँचों ब्रह्माण्डके अधिष्ठानमण्डल हैं, इन्हें ही 'सप्त-लोक' कहा जाता है। देखो श्रीकृष्णाङ्कका परिशिष्टाङ्क पृ० ५२४-५२५।

२—'सूर्य आत्मा जगत्स्तत्पुरुषश्च'। (ऋग्वेद)

जायगा—वहाँ 'पशुपति' भी भिन्न-भिन्न होंगे। यों ही दृष्टिभेदसे शब्द-व्यवहारमें भेद होता जायगा। नियामकको ईश्वर, आत्मा वा पशुपति, नियम्यको विकार वा पशु और जिसके द्वारा नियमन हो उसे प्राण वा पाश कहा जाता है; किन्तु यह स्मरण रहे कि ये सब पदार्थ वैदिक सिद्धान्तमें एक ही मूलतत्त्वके भिन्न-भिन्न रूप हैं, इसलिये अनेकेश्वरवादका वैदिक दृष्टिमें कोई प्रसङ्ग नहीं आता। अव्यय पुरुषकी भावनासे ही हम भिन्न-भिन्न रूपोंकी उपासना किया करते हैं, अधिकारके अनुसार उपास्यरूपमें भेद होता है; किन्तु लक्ष्य एक है, उसमें किसीका भेद नहीं। आगे इसका कुछ स्पष्टीकरण सुनिये—

अक्षर पुरुष और महेश्वर

पूर्व कह चुके हैं कि अव्यय पुरुष सबका आलम्बन है; किन्तु वह कार्य और कारण दोनोंसे अतीत है। वह न जगत् है, न जगत्कर्ता; हाँ, जगत् और जगत्कर्ता दोनोंका आलम्बन अवश्य है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते । (श्रुति)
तस्य कर्तारमपि मां विद्व्यकर्तारमव्ययम् ।
मत्स्यानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्वावस्थितः ।
न च मत्स्यानि भूतानि । (गीता)

इत्यादि विचित्र भावोंसे श्रुति-स्मृतिमें उसका वर्णन मिलता है। जब बलोंकी ग्रन्थि होकर बलप्रधान अक्षर पुरुषका प्रादुर्भाव होता है, तब जगत्की सृष्टिका उपक्रम होता है। अतः सृष्टिकर्ता ईश्वर 'अक्षर' पुरुषको ही कहते हैं। यह सदा स्मरण रखना आवश्यक है कि अव्यय, अक्षर और क्षर—ये तीनों पुरुष कभी पृथक्-पृथक् नहीं रहते। जहाँ क्षर है, वहाँ अक्षर और अव्यय भी अवश्य है। अक्षर भी बिना अव्ययके निरालम्ब कभी नहीं रहता। विशिष्टरूप एक है और वही उपलब्ध होता है, अपेक्षाकृत दृष्टिभेदसे तीनों पुरुषोंका विभाग है। अस्तु, अक्षर पुरुष जो कि जगत्का निमित्तकारण है, ईश्वर है। वह बलप्रधान है; बलका नाम शक्ति, प्राण वा क्रिया भी है। सोता हुआ बल शक्ति-नामसे, जागकर कार्य करनेको उद्यत होनेपर प्राण-नामसे और कार्यरूपमें परिणत होनेपर क्रिया-नामसे पुकारा जाता है। शक्तिका बल तीन प्रकारसे सब पदार्थोंमें लक्षित होता है—गति, आगति और प्रतिष्ठा। प्रत्येक पदार्थमेंसे प्रतिक्षण प्राणोंकी गति वा उत्क्रान्ति

होती रहती है। किन्तु केवल उत्क्रान्ति ही हो तो सब पदार्थोंका प्रतिक्षण समूल नाश हो जाय, इसलिये जैसे गति है वैसे आगति (आमद) भी है। जगत्के सब पदार्थ प्रतिक्षण लेते और देते रहते हैं, इसी व्यवहारको दार्शनिक परिभाषामें 'आदान' और 'विसर्ग' कहते हैं। सूर्यमण्डलमें आदान और विसर्ग स्फुट रूपसे हमें दिखायी देते हैं। सूर्य अपनी किरणोंसे सब पदार्थोंको ताप देता है, ओषधि आदिका परिपाक करनेमें अपनी शक्ति लगाता है और चारों ओरसे जल, रस वा सोमको लेता भी रहता है। न केवल सूर्य, किन्तु पृथिवी भी अपना बल पार्थिव पदार्थोंको देती रहती है और आकर्षणद्वारा उनमेंसे कुछ लेती भी रहती है। किसी भी पदार्थमें आदान-विसर्ग न हों, तो वह कभी परिवर्तित न हो, पुराना न पड़े, सदा एक रूप रहे; किन्तु एक रूपमें कोई भी पदार्थ रहता नहीं, इससे सबमें आदान और विसर्गका होना सिद्ध है। जब आदान अधिक होता है और विसर्ग न्यून, तो सब पदार्थ बढ़ते हैं, बाल्यावस्थासे युवावस्थामें जाते हैं और इसके विपरीत आदानकी अपेक्षा विसर्ग जब अधिक होता है, तब घटनेकी वारी आती है; इससे ही जरा (वृद्धावस्था) आती है। यों आदान और विसर्गके द्वारा परिवर्तन होता रहनेपर भी पदार्थमें जो सत्ता-स्थिरता-एकरूपता प्रतीत होती है उससे तीसरा प्रतिष्ठा-बल भी स्वीकार करना पड़ता है। बौद्ध दर्शनमें केवल आदान-विसर्ग ही माने जाते हैं—इससे वहाँ प्रत्येक पदार्थको क्षणिक कहा गया है, किन्तु इस क्षणिकताको उच्छृङ्खल मान लेनेपर व्यवहारका लोप हो जायगा। 'स एवायम्' (यह वस्तु वही है)—यह प्रत्यभिज्ञा सबको होती है और इसीके आधारपर सारे जगत्का व्यवहार चलता है। एक कुम्हार बड़े परिश्रमसे बड़ा पक्का घड़ा बनाता है और इत्नीनीयर बड़े कला-कौशलसे मशीन बनाता है। अपना बनाया घड़ा और अपनी बनायी मशीन एक क्षणमें ही नष्ट हो जायगी—ऐसी सम्भावना इन्हें हो तो ये कभी बुद्धि और शरीरका श्रम न करें। हमारे बोये आमके बीजसे एक वृक्ष लगेगा और वह चिरस्थायी होकर फल देता रहेगा, ऐसा विश्वास न हो तो कोई भी चतुर माली सुयोग्य स्थानमें वृक्ष लगाकर उसे सींचनेका प्रयास न करे। यह एक विषयान्तर है, विस्तारकी आवश्यकता नहीं।

ऐसी बहुत-सी युक्तियोंसे क्षणिकवादका निराकरण कर वैदिक दर्शनमें प्रतिष्ठा-बल भी माना जाता है। बलकी इन तीनों अवस्थाओंके अधिष्ठाता अक्षर पुरुषके भी तीन रूप हैं—ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र। प्रतिष्ठा-बलका अधिष्ठाता ब्रह्मा है, आदानका विष्णु और विसर्ग वा उत्क्रान्तिका इन्द्र। ये तीनों ईश्वरके रूप हैं। बारह आदिस्थोंमें जो विष्णु और इन्द्र हैं वा अन्तरिक्षका देवता जो इन्द्र है, वे देवतारूप इन्द्र वा विष्णु आगे उत्पन्न होनेवाले हैं, उनको और इनको एक न समझ लिया जाय। अस्तु, इन तीनोंकी स्थिति स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा वा इन मण्डलोंसे उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थोंके केन्द्र वा हृदयमें रहती है, अथवा यों कहिये कि यही तीनों इन सब मण्डलोंको वा इनके आध्यात्मिक और आधिभौतिक (पूर्वाक्त) रूपोंको बनाकर उनमें विराजमान होते हैं। ऋग्वेद-संहिता म० ६ अ० ६ का ६९ सूक्त इन्द्र और विष्णुका सूक्त है, उसका सूक्ष्मदृष्टिसे मनन करनेपर यह तत्त्व स्फुट होता है। उसका अन्तिम मन्त्र है—

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे

न परा जिग्ये कतरश्च नैनाः।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां

त्रेधा सहस्रं वि तदरेथाम्॥

इसका अर्थ है कि इन्द्र और विष्णु दोनों ही विजय करनेवाले हैं, ये कभी नहीं हारते और इन दोनोंमें भी कोई एक नहीं हारता। ये दोनों स्पर्धा (युद्ध) करते रहते हैं और इसीसे तीन प्रकारके 'सहस्र' को प्रेरित करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ६-१५ में इस मन्त्रकी व्याख्या करते हुए तीन प्रकारके 'सहस्र' का अर्थ लोकसहस्र, वेद-सहस्र और वाक्सहस्र किया है। लोक, वेद और वाक् ही अक्षर पुरुषसे निकलकर सब संसारके उपादान-कारण होते हैं। यह वैदिक विज्ञानका एक जटिल विषय है, इस छोटे-से लेखमें इस विषयपर कुछ कहा नहीं जा सकता। जिन सज्जनोंको इस विषयको जाननेकी अभिरुचि हो, वे इसका स्पष्टीकरण गुरुवर श्री ६ मधुसूदन झा विद्यावाचस्पति महानुभावके 'ब्रह्मविज्ञान' का 'संशयोच्छेदवाद', 'अहोरात्र-वाद' या 'सिद्धान्तवाद' पढ़ें। अस्तु, शतपथब्राह्मण, काण्ड ११, अ० १ ब्रा० ६ में भी क्षर और अक्षर पुरुषको

कलाओंका निरूपण प्राप्त होता है। अन्यान्य स्थानोंमें भी इनका निरूपण ब्राह्मणोंमें बहुधा हुआ है।

उत्क्रान्ति और आगतिके साथ जब प्रतिष्ठा-बलका सम्बन्ध होता है, तो क्रमसे अग्नि और सोम नामकी दो कलाएँ और प्रकट हो जाती हैं। यहाँ भी यह स्मरण रहे कि जिसे हम 'अग्नि' कहते हैं वह भौतिक अग्नि तथा रसरूप सोम अभी बहुत पीछे उत्पन्न होनेवाले हैं। ये अग्नि और सोम अक्षर पुरुषके केवल शक्तिविशेष हैं, इन्हें 'मैटर' न समझा जाय। बाह्य गतिशील (भीतरसे बाहरको जानेवाली) प्राणशक्तिको अग्नि और अन्तर्गति-शील (बाहरसे भीतरकी ओर जानेवाली) प्राणशक्तिको सोम कहा जाता है। अग्नि विकासशील है और सोम सङ्कोचशील। अग्नि प्रसरणशील (फैलनेवाला) है, तो सोम आकुञ्चनशील (सिकुड़नेवाला)। अग्नि विरलभाव (पतलापन) करनेवाला है, तो सोम घनीभाव (ठोसपन, मोटापन) करनेवाला। किसी भी वस्तुका विकास वा प्रसरण होते-होते जब अन्तिम सीमापर पहुँच जाता है—जहाँसे आगे विकास सम्भव हो न हो, प्रत्येक अवयव विशकलित (पृथक्-पृथक्) हो चुका हो, तब फिर स्वभावतः सङ्कोचन आरम्भ हो जाता है; इसलिये वैज्ञानिक प्रक्रियामें ऐसा समझा गया है कि अग्नि ही सोम बन जाता है और सोम फिर अग्निमें गिरते ही अग्निरूप हो जाता है। इन्हीं विकास और सङ्कोचनके परिणामरूपमें पिण्डों (सूर्य, पृथिवी आदि गोलों) की उत्पत्ति होती है और उन पिण्डोंमें भी ये ही अग्नि और सोम बराबर यज्ञ करते रहते हैं। यों अक्षर पुरुषकी पाँच कलाएँ सिद्ध हुई—ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि और सोम। इनमें आदिके तीन अन्तश्चर, अन्तर्यामी वा हृद्य (केन्द्रमें रहनेवाले) और आगेके दोनों अग्नि और सोम बहिश्चर (पिण्डमें व्याप्त रहनेवाले) वा सूत्रारमरूप हैं।

आदिके तीन रूपोंमें प्रतिष्ठा-बल-ब्रह्मा और आदान-बल-विष्णुको बाहर जानेका अवसर नहीं आता, ये केन्द्रमें ही अपना-अपना कार्य करते हैं; किन्तु उत्क्रान्ति-बल-इन्द्र केन्द्रमें रहता हुआ भी केन्द्रस्थ शक्तिको बाहर फँकनेवाला है, इसलिये वह स्वयं भी उत्क्रान्त होता है

१—ये सब ग्रन्थ संस्कृतभाषामें पद्यबद्ध हैं। आदिके दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं।

२—यज्ञकी व्याख्याके लिये देखो 'कल्याण श्रीकृष्णार्कका परिशिष्टाङ्क' पृ० ५२१।

अर्थात् बाहर जाता है। बाहर जानेपर अग्नि और सोमके साथ भी उसका योग होता है। वा सूक्ष्म दृष्टिसे यों कहो कि अग्नि और सोमका प्रादुर्भाव उत्क्रान्तिके कारण ही है, अतः वे दोनों इन्द्रके ही रूपान्तर हैं। वस, इन्द्र, अग्नि और सोम इन तीनों सम्मिलित शक्तियोंका नाम 'महेश्वर' वा 'शिव' है। अक्षर पुरुष ही जगत्कर्ता ईश्वर कहाता है, यह कह चुके हैं। उसकी प्रत्येक कला भी 'ईश्वर' है; किन्तु तीन कलाएँ जहाँ सम्मिलित हों, उस रूपको महत्त्वके कारण 'महेश्वर' कहा जाता है। इसी-लिये भगवान् शङ्कर 'त्रिनेत्र' हैं, वे तीन बलोंके 'नेता' हैं। श्रुतिमें भी उनका नाम 'व्यम्बक' है और पुराणादिमें तो स्पष्ट ही उनके तीन नेत्रोंके नाम बताये गये हैं—

वन्दे सूर्यशशङ्कवह्निधनम्
सूर्यमण्डल 'इन्द्रप्रधान' है—

यथाग्निर्गर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी।

(श्रुति)

'जैसे पृथिवीके गर्भमें अग्नि है, वैसे सूर्यमण्डलके गर्भमें इन्द्र है।'

चन्द्रमाका 'सोम' मण्डल होना प्रसिद्ध ही है और अग्नि तो अग्नि है ही; यों इन्द्र, अग्नि और सोम—तीनोंकी समष्टिका महेश्वर होना स्पष्ट बताया जाता है। यद्यपि हम कह चुके हैं कि अक्षरकी कलाएँ शक्तिरूप हैं—प्रत्यक्ष-अदृश्य भौतिक अग्नि, सोम, सूर्य आदिसे वे बहुत परे हैं; किन्तु उन अदृश्य शक्तियोंका परिचय शास्त्र हमें इन सूर्य आदिके द्वारा ही देता है। यदि ऐसा न किया जाय तो उन अदृश्य शक्तियोंका ज्ञान ही मनुष्योंको कैसे हो। ईश्वरकी उपासना प्रकृतिको वा जगत्को आलम्बन वा प्रतीक बनाकर ही की जाती है। इन सूर्य, पृथिवी आदि मण्डलोंकी परिचालिका भी तो वही अक्षरशक्ति है, इन्हींमें कार्य करती हुई उस शक्तिको हम पाते हैं और इनमें ही उसकी दृष्टि रखकर उपासना करते हैं। यही क्यों, वह शक्ति भी तो इन्हीं पाशोंके द्वारा हमारा सबका नियमन करती है। इसलिये भगवान् शिव इन तीनों नेत्रोंसे सब जगत्को देखते हैं, वा सब जगत् इनके द्वारा उन्हें देखता है (नेत्रोंसे ही मनुष्यका भाव पहचाना जाता है)। किसी भी प्रकारसे उलट-पुलटकर समझ लीजिये, वैज्ञानिक भाषामें सब तरह कहा जा सकता है।

तीन बलोंकी समष्टि होनेके कारण तीनोंके धर्म शिवमें व्यवहृत होते हैं। इन्द्र उत्क्रान्ति (विसर्ग) बलका अधिष्ठाता है और उत्क्रान्तिसे ही वस्तुका विनाश होता है। जब आमदसे व्यय अधिक हो, तो शनैः-शनैः जीर्ण होकर प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपको खो देता है, इसी दृष्टिसे महेश्वरको 'संहारक' वा 'प्रलयकर्ता' कहा जाता है। आदानसे (बाहरसे खुराक लेनेसे) वस्तुका पालन होता है और आदान ही यज्ञ है, इसलिये विष्णुको पालकका यज्ञरूप और प्रतिष्ठासे ही वस्तुका स्वरूप बनता है, इस-लिये ब्रह्माको 'उत्पादक' कहा जाता है; किन्तु यह सब अपेक्षाकृत है। एक वस्तुकी दृष्टिसे जिसे 'उत्क्रान्ति' कहते हैं, दूसरी वस्तुके लिये वही 'प्रतिष्ठा' वा 'आगति' (आदान) हो जाती है। जैसे दीपशिखा उत्क्रान्त हुई, उससे कज्जलकी प्रतिष्ठा (जन्म) हो गयी। समुद्रसे जलकी उत्क्रान्ति हुई—उससे मेघका जन्म हो गया। सूर्यमण्डलसे किरणोंकी उत्क्रान्ति हुई, इससे पृथिवी वा पार्थिव ओषधि आदिका पालन होता है। सूर्यसे प्रकाश उत्क्रान्त हुआ, उससे चन्द्रमण्डल प्रकाशित वा पालित हो गया। सूर्यने रसका आदान किया, इससे जलका सरोवर सुख गया। यही न्याय सृष्टि और प्रलयमें भी चलता है। स्वयम्भू आदि मण्डलोंसे प्राणोंकी उत्क्रान्ति होकर परमेष्ठी, सूर्य आदि नये-नये मण्डल बनते हैं; सूर्यसे पृथिवी बनती है और वह इसकी शक्तियोंको अपनेमें ले लेता है, तो यह लीन हो जाती है। तात्पर्य यह है कि एकका 'आदान' दूसरेकी दृष्टिसे विसर्ग और एकका विसर्ग दूसरेकी दृष्टिसे आदान कहा जा सकता है। एकका विनाश दूसरेका उत्पादक है। बीज नष्ट हुआ, अङ्कुरने जन्म लिया; इसलिये आदान और विसर्गमें ही प्रतिष्ठा भी अनुगत है। इसी विचारसे स्पष्ट कहा जाता है कि—

एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक ही हैं। एक ही अक्षर पुरुषके तो तीन रूप हैं, एक ही शक्तिके तो तीन व्यापार हैं—दृष्टिमात्रका भेद है। एक ही बिन्दुपर तीनों शक्तियाँ रहती हैं; किन्तु कार्यवश कभी भिन्न-भिन्न स्थान भी ग्रहण कर लेती हैं। चेतन प्राणियोंमें विशेषकर शक्तियोंका स्थान-भेद देखा गया है; वहाँ प्रतिष्ठा-बल मध्यमें और गतिबल और आगति-बल इधर-उधर रहते हैं। जैसा कि मनुष्य-शरीरके अन्तर्गत हृदयकमलमें ब्रह्माकी, नाभिमें विष्णुकी और मस्तक-

कल्याण



देवसेनापति कुमार कार्तिकेय



श्रीगणेश-परिवार

श्रीगणेशजी, सिद्धि, बुद्धि (दो पलियाँ), लक्ष, लाभ (दो पुत्र)

में शिवकी स्थिति मानी गयी है। मनुष्य-शरीर पार्थिव है, पृथिवीसे जो प्राण मानव-शरीरमें आता है, वह नीचेसे ही आता है। इसलिये आदान-शक्तिके अधिष्ठाता विष्णुकी स्थिति नाभिमें कही गयी है और उत्क्रमण उससे विपरीत-दिशामें होना सिद्ध ही है; इससे महेश्वरकी स्थिति शिरो-भागमें मानी जाती है। सम्पूर्ण शरीरकी प्रतिष्ठा हृदय है, हृदयमें ही एक प्रकारकी तिलमात्र ज्योति याज्ञवल्क्य-स्मृति आदिमें बतायी जाती है, वहाँसे सब शरीरको चेतना मिलती है, अतः वह ब्रह्माका स्थान हुआ। सन्ध्योपासनमें इन्हीं स्थानोंमें इन तीनों देवताओंका ध्यान होता है; किन्तु वृक्षोंमें यह स्थिति कुछ बदल गयी है, वहाँके लिये यों कहा जाता है—

मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ।

अग्रतः शिवरूपाय अश्वत्थाय नमो नमः ॥

यहाँ अश्वत्थको प्रधान वृक्ष मानकर उपलक्षणरूपसे अश्वत्थका नाम लिया गया है, सभी वृक्षोंकी स्थिति इसी प्रकार है। उनकी प्रतिष्ठा (जीवन) मूलपर निर्भर है, इसलिये मूलमें ब्रह्मा कहा जाता है। मूलसे जो रस आता है, उसके द्वारा वृक्षका पालन वा पोषण मध्यभागसे होता है। आया हुआ रस यज्ञद्वारा गुदा, त्वचा आदिके रूपमें मध्यभागमें ही परिणत होता है, इससे यज्ञरूप पालक विष्णुकी स्थिति मध्यमें मानी गयी है और यह रस ऊपरके भागसे उत्क्रान्त होता रहता है; इसीसे वृक्षके ऊपरी भागसे शाखा, पत्ते आदि निकलते रहते हैं। अतएव उत्क्रान्तिका अधिपति महेश्वर वहाँ भी अग्रभागमें ही माना गया है। यह सब इन्द्रप्राणरूपसे महेश्वरकी उपासना है।

रुद्र और शिव

अब अग्नि और सोमके सम्बन्धको लेकर भी शिव-तत्त्वका विचार आवश्यक है, क्योंकि तीनों प्राणोंकी समष्टिका नाम 'महेश्वर' वा 'शिव' कहा गया है। अग्निको 'रुद्र' कहते हैं। 'अग्निर्वै रुद्रः' (शतपथब्रा० ५।३।१।१०, ६।१।३।१०), 'अत्रैव सर्वोऽग्निः संस्कृतः स एषोऽग्र रुद्रो देवता' (शतपथब्रा० ९।१।१।१) इत्यादि अनेकानेक श्रुतियोंमें अग्निको 'रुद्र' कहा गया है। यद्यपि इन वाक्योंमें सामान्यरूपसे अग्निको 'रुद्र' कहा है, तथापि देवताओंकी स्वरूपविवेचनाके लिये इस सम्बन्धमें कुछ विशेष समझनेकी

आवश्यकता है। अक्षरकी पाँच कलाएँ और क्षर पुरुषसे पाँच प्रकृतियोंका प्रादुर्भाव होकर उनसे उत्पन्न होनेवाले स्वयम्भू आदि पाँच मण्डल कहे जा चुके हैं, ये मण्डल क्षर पुरुषकी आधिदैविक पाँच कलाएँ कही जाती हैं। इनमें यद्यपि सब अक्षर-प्राण सर्वत्र व्यापक हैं, तथापि एक-एक मण्डलमें क्रमसे एक-एक अक्षर-प्राणकी प्रधानता रहनेसे वह मण्डल उसीका कहा जाता है। स्वयम्भूमण्डलमें ब्रह्मा, परमेष्ठिमें विष्णु, सूर्यमें इन्द्र, पृथिवीमें अग्नि और चन्द्रमा-में सोमकी प्रधानता है—

यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा घौरिन्द्रेण गर्भिणी ।

—इत्यादि श्रुतियोंमें पृथिवीमें अग्निकी प्रधानता सर्वत्र घोषित है। पृथिवीमें अग्नि दो प्रकारसे रहता है—'चित्य' और 'चिते निधेय', यह पूर्व ईश्वर-निरूपणमें कह आये हैं। पृथिवी-पिण्डकी सृष्टिके अनन्तर जो अग्नि-प्राण इस पिण्डमें प्रविष्ट हुआ है, वह 'अमृताग्नि' नामसे ब्राह्मणोंमें व्यवहृत है। वह अमृताग्नि पृथिवीके गोलेसे प्रतिक्षण निकलता हुआ सूर्यमण्डलतक जाता है, इसकी व्याप्तिको कई भागोंमें बाँटकर उनके नाम श्रुतिमें 'स्तोम' वा 'अहर्गण' रखे गये हैं और उन भागोंके आधारपर ही त्रिलोकीकी कल्पना है। अमृताग्निकी स्थिति पृथिवी-गोलके हृदय वा केन्द्रमें है। वहाँसे पृथिवी-गोलकी परिधितक तीन 'अहर्गण' मान लिये जाते हैं। इन तीनसे आगे क्रमसे छः-छःका एक-एक विभाग है, जिसे पृथक्-पृथक् स्तोमके नामसे पुकारा जाता है। पहला स्तोम ३+६=९ अहर्गणपर पूरा होता है, जिसे 'त्रिवृत्स्तोम' कहते हैं, (त्रिवृत् नाम ९ का है), दूसरा ९+६=१५ पर पूर्ण होनेवाला पञ्चदश-स्तोम कहलाता है और तीसरा १५+६=२१ एकविंशस्तोम है। नौतक पृथिवीलोक, पन्द्रहतक अन्तरिक्ष और इक्कीस-तक चुलोक माना गया है, इक्कीसवें भागका सूर्यमण्डलसे सम्बन्ध है—'असौ वा आदित्यो एकविंशः' (श्रुति)। इस त्रिलोकीमें त्रिवृत् (९) स्तोमतक इस अग्निका नाम 'अग्नि' ही रहता है, अन्तरिक्षलोकमें अर्थात् ९ से १५ तक इसे 'वायु' कहते हैं और १५ से २१ तक चुलोकमें 'आदित्य' नामसे इसका निर्देश होता है। यह सब विषय निरुक्त दैवतकाण्डके प्रथमाध्यायमें वर्णित है। अस्तु, तात्पर्य

१—त्रिलोकी दस प्रकारकी है, उनमें यह त्रिलोकी 'सौम्य त्रिलोकी' कही जाती है।

यह कि एक ही अग्निकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—अग्नि, वायु, आदित्य । अग्निके सहचर 'आठ वसु', वायुके सहचर 'एकादश रुद्र' और आदित्यके सहचर 'द्वादश आदित्य' कहलाते हैं। अर्थात् अग्नि आठ रूपोंमें, वायु ग्यारह रूपोंमें और आदित्य बारह रूपोंमें प्राप्त होता है। इससे आगे (सूर्यमण्डलसे परे) यह अमृताग्नि सोमरूपमें परिणत होकर बारह अहर्गणतक और जाता है, जिसमें $29+6=35$ का त्रिणवस्तोम और $27+6=33$ तक त्रयस्त्रिंशस्तोम कहा जाता है। ये दोनों स्तोम त्रिलोकीसे बाहर हैं, इनमें 'दिकस्तोम' और 'मास्वरस्तोम'—दो 'प्रकारके' सोमकी स्थिति है। यह स्तोम फिर ऊपरसे नीचेको आकर अग्निका अन्न (खाद्य) बनता रहता है, इसी 'अन्न' से 'अन्नाद' अग्निका जीवन है। जिसप्रकार अग्निकी तीन अवस्थाएँ बतायी गयी हैं, वैसे ही सोमकी भी तीन अवस्थाएँ हैं—सूक्ष्म दशामें 'सोम', किञ्चित् घन होनेपर 'वायु' और अधिक घन होनेपर उसे ही 'अप्' कहते हैं। इसलिये सूर्यसे ऊपरका परमेष्ठिमण्डल (महः और जनलोक) 'अप्लोक', 'वायुलोक' वा 'सोमलोक' कहलाता है। स्मरण रहे कि अग्निकी अवस्थाओंमें भी एक वायुका उल्लेख आया है, वह 'आग्नेय वायु' है और सोमकी अवस्थाओंका यह 'सौम्य वायु' है। ये दोनों प्राणरूप हैं अर्थात् शक्तिविशेष हैं, 'मैटर' वा भूत नहीं। यह भी स्मरण रहे कि बिना अग्निके सोम वा बिना सोमके अग्नि कहीं रह नहीं सकता, इसलिये सौम्य वायुमें भी अग्निका सम्बन्ध है; किन्तु सोमकी प्रधानताके कारण उसे 'सौम्य वायु' कहते हैं और आग्नेय वायुमें भी सोम है, किन्तु अग्निकी प्रधानता है। पृथिवी और सूर्यके मध्यमें जो अन्तरिक्ष है, उसमें आग्नेय वायु रहता है और सूर्य और परमेष्ठीके मध्यमें जो अन्तरिक्ष है, उसमें सौम्य वायु रहता है। यही आग्नेय वायु भौतिक वायु और भौतिक अग्निका उत्पादक है, अतएव श्रुतिमें कहा गया है कि 'मरुतो रुद्रपुत्रासः'—मरुत् रुद्रके पुत्र हैं। 'मरुत्' नाम भौतिक वायुका है। और इस अग्निको भी रुद्रका वीर्य कहा जाता है, जिससे कि रुद्रका नाम 'कृशानुरेताः' है। सूर्यके ताप (धूप) में भी रुद्रप्राणकी ही प्रखरता रहती है, अतः धूपको 'रौद्र' वा 'रौद' कहते हैं। रुद्र-प्राणसे ही भूमिके स्तरमें पारद बनता है, अतः उसे 'रुद्रवीर्य'

कहा गया है। यह सब 'ब्रह्मविज्ञान' ग्रन्थका विषय है, यहाँ इसका विशेष विस्तार किया नहीं जा सकता। यहाँ इतना ही कहना है कि सौम्य वायु 'साम्य सदाशिव' और आग्नेय वायु 'रुद्र' कहा जाता है। आग्नेय वायु उपद्रावक है। वह रूक्षता पैदा करता है, रोग उत्पन्न करता है, हर एक पदार्थका भेदक है, अतः वह 'रुद्र' (रुलानेवाला, भयङ्कर) कहा गया है और सौम्य वायु सबका प्राणप्रद, सब उपद्रवोंका शान्त करनेवाला, संयोजक है। अतः वह 'शिव' है। जैसा कि आगे कहते हैं—रुद्र भी किसी अवस्थामें 'शिव' होता है; किन्तु सौम्य वायु सदा ही शिव है, अतः उसे 'सदाशिव' कहते हैं। अम्बा वैदिक परिभाषा-में 'जल' का नाम है। सौम्य वायु जलसे मिश्रित रहती है, अतः वह 'साम्य सदाशिव' कहलाता है।

रुद्रके सम्बन्धमें ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है—

अग्निर्वा रुद्रः, तस्यैते द्वे तन्वी, घोरान्या च शिवान्या च।

अर्थात् अग्निका नाम रुद्र है। उसके दो रूप हैं—एक घोर, दूसरा शिव। जो अग्निका रूप उपद्रावक, रोगप्रद, नाशक है, उसे 'घोररुद्र' कहते हैं और जो लाभप्रद, रोग-नाशक, रक्षक है, उसे 'शिव' कहते हैं। यों रुद्र भी 'शिव' माने गये हैं। घोर रुद्रोंसे 'मा नो वधोः पितरं मोत मातरम्', 'मा नः स्तोके तनये मा न आयुषि' 'नमस्ते अस्त्वायुधाया-नातताय धृणवे' इत्यादि रक्षाकी प्रार्थना वा 'परो मूजवतो-स्तीहि' इत्यादि दूर रहनेकी प्रार्थना की जाती है, उनसे बचना आवश्यक है। और शिव-रुद्रकी पूजा-उपासना होती है, उनकी रक्षामें हम सब रहना चाहते हैं। अग्निमें जितना सोम-सम्बन्ध है, वह उतना ही 'शिव' (कल्याणकर) हो जाता है, यह शतपथ—नवमकाण्डमें आरम्भमें ही स्पष्ट किया गया है।

रुद्र ग्यारह प्रसिद्ध हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक वा अधियज्ञ-भेदसे इन ग्यारहके पृथक्-पृथक् नाम श्रुति, पुराण आदिमें प्राप्त होते हैं। शतपथ—चतुर्दशकाण्ड (बृहदारण्यक उपनिषद्)—५ अध्याय, ९ ब्राह्मणमें शाकल्य और याज्ञवल्क्यके प्रश्नोत्तरमें देवतानिरूपणमें (दशमे पुरुषे प्राणाः, आत्मैकादशः) पुरुषके दस प्राण और ग्यारहवाँ आत्मा आध्यात्मिक रुद्र बताये गये हैं। दस प्राणोंकी व्याख्या अन्यत्र श्रुतिमें इसप्रकार है—'सप्त शीर्षण्याः प्राणाः, द्वाववाङ्मौ, नाभिर्दशमी'—मस्तकमें

१—यह वायु देवतारूप वायु है, भौतिक वायु नहीं। भौतिक वायु इससे उत्पन्न होता है।

रहनेवाले सात प्राण, दो आँख, दो नाक, दो कान और एक मुख, नीचेके दो प्राण, मल-मूत्र त्यागनेके दो द्वार और दशवीं नाभि। अन्तरिक्षस्थ वायुप्राण ही हमारे शरीरोंमें प्राणरूप होकर प्रविष्ट है और वही इन दसों स्थानोंमें कार्य करता है, इसलिये इन्हें रुद्रप्राणके सम्बन्धसे 'रुद्र' कहा गया है। ग्यारहवाँ आत्मा भी यहाँ 'प्राणात्मा' ही विवक्षित है, जो कि इन दसोंका अधिनायक 'मुख्य प्राण' कहाता है। आधिभौतिक रुद्र पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान (विशुक्), पवमान, पावक और शुचि नामसे कहे गये हैं। इनमें आदिके आठ शिवकी अष्टमूर्ति कहाते हैं, जिनका निरूपण आगे लिखते हैं—और आगेके तीन (पवमान, पावक और शुचि) घोररूप हैं। ये उपद्रावक रुद्र (वायुविशेष) हैं। इनमें शुचि सूर्यमें, पवमान अन्तरिक्षमें और पावक पृथिवीमें कार्य करता है; किन्तु हैं तीनों अन्तरिक्षके वायु। अष्ट-मूर्तिकी उपासना है और तीनोंसे पृथक् रहनेकी प्रार्थना है। आधिदैविक एकादश रुद्र तारामण्डलोंमें रहते हैं—इनके कई नाम भिन्न-भिन्न रूपसे मिलते हैं—(१) अज एकपात् (२) अहिर्बुध्न्य (३) विरूपाक्ष (४) स्वष्टा, अयोनिज वा गर्भ (५) रैवत, भैरव, कपर्दी वा वीरभद्र (६) हर, नकुलीश, पिङ्गल वा स्थाणु (७) बहुरूप, सेनानी वा गिरीश (८) व्यम्बक, भुवनेश्वर, विश्वेश्वर वा सुरेश्वर (९) सावित्र, भूतेश वा कपाली (१०) जयन्त, वृषाकपि, शम्भु वा सन्ध्य (११) पिनाकी, मृगव्याध, लुब्धक वा शर्व—इनका पुराणोंमें स्थान-स्थानपर विस्तृत वर्णन है। ये सब तारामण्डलमें तारारूपसे दिखायी देते हैं। रुद्र-प्राण इनमें अधिकतासे रहता है और इनकी रश्मियोंसे भूमण्डलमें आया करता है, इसीसे इन्हें 'रुद्र' कहा गया है। इनमें भी 'घोर' और 'शिव' दोनों प्रकारकी रुद्राग्नि है। इनके आधारपर फलाफल हिन्दू-शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं—जैसे कि इलेपा-नक्षत्रपर सूर्यके रहनेपर जो वर्षा होती है, उसे रोगोत्पादक और मघाकी वर्षाको रोगनाशक माना जाता है, इत्यादि। रोम-देशके पुराने तारामण्डलके चित्रोंमें सर्पधारी, कपालधारी, शूलधारी आदि भिन्न-भिन्न आकारोंके इन तारोंके चित्र दिखायी देते हैं, उन तारोंका आकार ध्यानपूर्वक देखनेपर उसी सन्निवेशका प्रतीत

होता है, इसीलिये उनके वैसे आकार बनाये गये हैं। ऐसे ही शिवके भी भिन्न-भिन्न रूप उपासनामें प्रसिद्ध हैं। पुराणोंमें कई एक शिवके आख्यान इन तारोंके ही सम्बन्धके हैं, जैसा कि शिवने ब्रह्माका एक मस्तक काट दिया—इस कथाका 'लुब्धकबन्धु' तारेसे सम्बन्ध है। यह कथा ब्राह्मणोंमें भी प्राप्त होती है और वहाँ इसका तारापरक ही चिवरण मिलता है। दक्षयज्ञकी कथा भी आधिदैविक और आधिभौतिक—दोनों भावोंसे पूर्ण है। वह मनुष्याकारधारी शिवका चरित्र भी है और 'दक्षका सिर काटकर उसके बकरेका सिर लगाया गया'—इसका यह आशय भी है कि प्राचीन कालमें नक्षत्रोंकी गणना कृत्तिका-को आरम्भमें रखकर होती थी, किन्तु उसे अश्विनी (मेघ) से आरम्भ किया गया। यों ही कई एक कथाएँ आधिदैविक भावसे हैं। यज्ञमें ग्यारह अग्नि होते हैं। पहले तीन अग्नि हैं—गार्हपत्य, आहवनीय और धिष्य। इनमें गार्हपत्यके दो भेद हो जाते हैं। इष्टिमें जो गार्हपत्य था, वह सोमयाग-में 'पुराणगार्हपत्य' कहाता है और इष्टिके आहवनीयको सोमयागमें गार्हपत्य बना लेते हैं—वह 'नूतनगार्हपत्य' कहाता है। धिष्ययागिके आठ भेद हैं—जिनके नाम श्रुतिमें आश्विनीय, अच्छावाकीय, नेष्ट्रीय, पोत्रीय, ब्राह्मणाच्छंसीय, होत्रीय, प्रशास्त्रीय और मार्जालीय हैं। आहवनीय एक ही प्रकारका है, यों ग्यारह होते हैं। ये सब अन्तरिक्षस्थ अग्नियोंकी अनुकृति हैं—इसलिये ये भी एकादश रुद्र कहे जाते हैं। ये शिवरूप ही यज्ञमें ब्राह्म हैं, घोर रूपोंका यज्ञमें प्रयोजन नहीं।

एक रुद्र और अनन्त रुद्र

'एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः' और 'असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूस्याम्', यों तन्त्रोंमें एक रुद्र और असंख्यात रुद्र—दोनों प्रकारके वर्णन प्राप्त होते हैं। इसकी व्यवस्था शतपथब्राह्मण—नवमकाण्डके आरम्भमें (प्रथमाध्याय, प्रथम ब्राह्मण) ही इसप्रकार की गयी है कि 'क्षत्र रुद्र' एक है और असंख्यात रुद्र 'विट्' (वैश्य) रुद्र हैं, विट्को ही 'प्रजा' कहते हैं। इसका अभिप्राय यही होता है कि एक रुद्र राजा—अधिनायक मुख्य है और अनन्त रुद्र उसकी प्रजा—अनुगामी है। मुख्य रुद्रको 'शतशीर्षा', 'सहस्राक्ष', 'शतेषुधि' कहा गया है। उसकी उत्पत्ति प्रजापतिके मन्यु (क्रोध) और अश्रुके सम्बन्धसे वहाँ बताया गयी है। 'नमस्ते रुद्र मन्यवे'

१—यह नामावली श्रीगुरुवरणोंकी 'देवताविधि' पुस्तकके आधारपर लिखी गयी है। —लेखक

इत्यादि मन्त्रोंकी व्याख्या भी वहाँ है। अस्तु—इसका तात्पर्य पूर्वोक्त ही है कि अग्नि (प्रजापतिका मन्त्रु वा क्रोध) और सोम (अश्रुजल) के सम्बन्धसे 'रुद्र' प्राण होता है। जिनमें 'विप्रुट्'-विन्दुमात्रका सम्बन्ध है, वे वायुके अनन्त भेद असंख्यात रुद्र बताये गये हैं। विकृत वायुके भिन्न-भिन्न अंश जो पृथिवी, अन्तरिक्ष वा सूर्यलोकमें व्याप्त हैं, उनका ही विस्तृत वर्णन रुद्राध्यायके मन्त्रोंमें आया है—उन रुद्रोंके अस्त्र आदि भी बताये हैं। 'येषां वात इषवः' इत्यादि, और किस तरह इनका प्रभाव प्राणियोंपर पड़ता है, इसका भी जिक्र है। 'ये आमे पात्रे विध्यन्ति' इत्यादि स्थानविशेष भी इनके आये हैं—'परो मूजवतो-ऽतीहि' (आप मूजवान् पर्वतसे परे चले जाइये)। मूजवान् पर्वत हेमकूट (हिन्दूकुश) का प्रत्यन्त पर्वत है—जो कि पश्चिमके सुलेमान पर्वतसे बहुत उत्तर, श्वेतगिरि (सफेद कोह) से भी उत्तर है। इसीसे पूर्वकी ओर क्रौञ्चगिरि (काराकुरम्) है, जिसका विदारण स्वामिकातिर्केयके द्वारा पुराणोंमें वर्णित है। 'उमावन', 'शरवण' आदि स्थान इसीके आसपास हैं। वहाँसे आगेका वायु बहुत ही विकृत माना जाता है, इसीलिये विकृत वायुसे वहाँसे चले जानेकी प्रार्थना की गयी है। अस्तु, रुद्रका विज्ञान न समझकर आजकलके कई विद्वान् रुद्रपाठवर्णित रुद्रोंको 'जर्म्स' कहने लगे हैं; किन्तु हैं वे विकृतवायुप्रविष्ट 'रुद्रप्राण'। यह सब 'घोर रुद्र' का विस्तार है। रुद्रका वर्णन श्रुति, मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंमें ओतप्रोत है। घोर रुद्र दूरसे नमस्कार्य हैं और शिवरुद्र उपास्य।

अष्टमूर्ति शिव

अक्षर पुरुषकी 'इन्द्र', 'अग्नि', 'सोम'—इन तीनों कलाओंके एक अधिष्ठाता 'महेश्वर' वा 'शिव' कहाते हैं—इस पूर्वोक्त तत्त्वका स्मरण रखिये। जितने पिण्ड बने हैं, वे सब अग्नि और सोमसे बने हैं; किन्तु किसी पिण्डमें अग्निकी और किसीमें सोमकी प्रधानता है। स्वयम्भू-मण्डल आग्नेय, परमेष्ठि-मण्डल सौम्य, फिर सूर्यमण्डल आग्नेय, चन्द्रमा सौम्य और फिर पृथिवी आग्नेय है। जो-जो आग्नेय हैं, उन्हें 'महेश्वर', 'रुद्र' वा 'शिव' कहकर पूजते हैं। सोमसम्युक्त अग्निकी ही पूर्वप्रकरणमें 'रुद्र' कहा जा चुका है।

असौ यस्ताग्रे अरुण उत वभ्रुः सुमद्गलः ।

ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशः ॥

'जो यह लाल (बैंगनी), गुलाबी, खाखी वा मिश्रित रूप-का दिखायी देता है और इसके चारों ओर जो हजारों रुद्र हैं' इत्यादि वर्णन सूर्यमण्डलका ही रुद्ररूपसे है, वही सर्ववर्ण है और उसके चारों ओर सब देवता रहते हैं—'चित्रं देवानामुदगादनीकम् ।' अस्तु, सूर्यमण्डलसे जो मण्डलाकार आग्नेय प्राण निकलता रहता है, उसे 'संवत्सराग्नि' कहते हैं। इसकी पूर्ति एक वर्षमें होती है, इसलिये वर्षको भी 'संवत्सर' कहा करते हैं। यह सौर अग्नि ही पृथिवीमें 'वैश्वानर' अग्निरूपसे परिणत होता है, यह निरुक्तकारने सिद्ध किया है। भूमण्डलके चारों ओर बारह योजन ऊपरतक एक 'भूवायु' है, जिसमें भूमिका-सा आकर्षण है। पक्षी उसीके आधारपर रहते हैं, इसे ज्योतिषमें 'आवृह वायु' और वैदिक परिभाषामें 'एमूष वराह' वा 'उषा' कहते हैं। इस उपारूप पत्नीमें संवत्सराग्निरूप पुरुष जब गर्भाधान करता है (प्रविष्ट होता है) तब दोनोंके योगसे 'कुमार' नामक अग्निकी उत्पत्ति होती है—यह सब विषय शतपथब्राह्मण—काण्ड ६, अध्याय १, ब्राह्मण ३ में स्पष्ट है। यही कुमाराग्नि 'कुमारो नीललोहितः' कहकर रुद्ररूपसे उपास्य माना गया है। इस कुमाराग्निके आठ रूप हैं, जो कि 'चित्राग्नि' नामसे कहे जाते हैं। इन आठों रूपोंका विवरण उनके आठ नाम—रुद्र, सर्व (शर्व), पशुपति, उग्र, अशानि (भीम), भव, महादेव और ईशान और उनके आठ स्थान—अग्नि (भौतिक तेज), अप् (जल), ओपधि (पृथिवी), वायु, विशुत् (वैश्वानराग्नि, यजमानका आत्मा), पर्जन्य (आकाश), चन्द्रमा और सूर्य शतपथके उक्त स्थानमें स्पष्ट रूपसे गिनाये हैं। पौराणिक निरूपणमें जो नामभेद हैं—उन्हें हमने क्रोष्टोंमें प्रकट कर दिया है। इसी श्रुतिका इशारा करते हुए महिम्नःस्तोत्रमें कहा गया है—

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-

स्तथा भमिशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।

अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि

प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥

उक्त आठों स्थानोंमें जो आग्नेय प्राण हैं—वे 'रुद्र' वा 'शिव' रूपसे उपास्य हैं, यही शिवकी आठ मूर्तियाँ कही जाती हैं। इसके आगे ही शतपथके काण्ड ६ अ० २ ब्रा० १ में इस कुमाराग्निसे पाँच पशुओं—पुरुष, अश्व, गो, अज और अघिकी उत्पत्ति बतायी है। ये पाँचों भी अग्नि

(प्राणविशेष) हैं, जिनकी प्रधानतासे आधिभौतिक पशुओंके भी यही नाम पड़ते हैं। इन पशुओंका पति (अधिनायक) होनेके कारण भी यह कुमारग्निरुद्र 'पशुपति' कहाता है।

शिव और शक्ति

रुद्र-निरूपणमें पूर्व कह आये हैं कि पार्थिव अग्नि इक्कीस अहर्गण (एकविंशस्तोम) तक अर्थात् ह्यलोक वा स्वर्लोक-तक (सूर्यमण्डलतक) व्याप्त है, उससे आगे सोममण्डल है। अग्नि की गति ऊपरको और सोम की गति ऊपरसे नीचेकी ओर रहती है। यह भी कह चुके हैं कि विशकलन-की सीमापर पहुँचकर अग्नि ही सोमरूपसे परिणत हो जाता है और फिर ऊपरसे नीचेकी ओर आकर अग्निमें प्रवेश कर सोम अग्नि बन जाता है। इनमें अग्नि को 'शिव' और सोम को 'शक्ति' कहते हैं। 'सोम' शब्द उमासे ही बना है—'उमया सहितः सोमः'। शक्तिरूपकी विवक्षा कर उमा भगवती कह लीजिये और शक्तिमान् द्रव्य वा प्राणको शक्तिका आश्रय, शक्तिसे अतिरिक्त मानकर 'उमया सहितः सोमः' कह लीजिये, बात एक ही है। भेद-अभेदकी विवक्षामात्रका भेद है। यह तत्त्व बृह-जाबालोपनिषद्-ब्राह्मण २ में स्पष्ट है—

अग्नीषोमात्मकं विश्वमित्यग्निराचक्षते । रौद्री घोरा या तैजसी तनूः । सोमः शक्त्यमृतमयः शक्तिकरी तनूः ।

अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजोविद्याकला स्वयम् ।

स्थूलसूक्ष्मेषु भूतेषु स एव रसतेजसि (सी) ॥ १ ॥

द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका ।

तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चान (नि) लात्मिका ॥ २ ॥

वैद्यदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः ।

तेजोऽसविभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम् ॥ ३ ॥

अग्रेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते ।

अतएव हविः कलसमग्नीषोमात्मकं जगत् ॥ ४ ॥

ऊर्ध्वशक्तिमयं (यः) सोम अधो (धः) शक्तिमयोऽनलः ।

ताभ्यां सम्पुटितस्तस्माच्छब्दद्विश्वमिदं जगत् ॥ ५ ॥

अग्ने (मिन्) रूर्ध्वं भवत्येषा (व) यावत्सौम्यं परामृतम् ।

यावदग्न्यात्मकं सौम्यममृतं विमृज्यधः ॥ ६ ॥

अतएव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्ध्वगा ।

यावदादहनश्चोर्ध्वमधस्तात्पावनं भवेत् ॥ ७ ॥

आधारशक्त्यावधृतः कालाग्निरधोर्ध्वगः ।

तथैव निम्नगः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः ॥ ८ ॥

शिवश्चोर्ध्वमयः शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः ।

तदित्यं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्तमिह किञ्चन ॥ ९ ॥

इसका तात्पर्य है कि 'इस सब जगत्के आत्मा अग्नि और सोम हैं वा इसे अग्निरूप भी कहते हैं। घोर तेज (अग्नि) रुद्रका शरीर है; अमृतमय, शक्ति देनेवाला सोम शक्तिरूप है। अमृतरूप सोम सबकी प्रतिष्ठा है, विद्या और कला आदिमें तेज (अग्नि) व्याप्त है। स्थूल वा सूक्ष्म सब भूतोंमें रस (सोम) और तेज (अग्नि) सब जगह व्याप्त हैं। तेज दो प्रकारका है—सूर्य और अग्नि; सोमके भी दो रूप हैं—रस (अप्) और अनिल (वायु)। तेजके विद्युत् आदि अनेक विभाग हैं और रसके मधुर आदि भेद हैं। तेज और रससे ही यह चराचर जगत् बना है। अग्निसे ही अमृत (सोम) उत्पन्न होता है और सोमसे अग्नि बढ़ता है, अतएव अग्नि और सोमके परस्पर हविर्यज्ञसे सब जगत् उत्पन्न है। अग्नि ऊर्ध्वशक्तिमय होकर अर्थात् ऊपरको जाकर सोमरूप हो जाता है और सोम अधःशक्तिमय होकर अर्थात् नीचे आकर अग्नि बन जाता है, इन दोनोंके सम्पुटमें निरन्तर यह विश्व रहता है। जबतक सोमरूपमें परिणत न हो, तबतक अग्नि ऊपर ही जाता रहता है और सोम—अमृत जबतक अग्निरूप न बने तबतक नीचे ही गिरता रहता है। इसलिये कालाग्निरूप रुद्र नीचे हैं और शक्ति इनके ऊपर विराजमान है। दूसरी स्थितिमें फिर (सोमकी आहुति हो जानेपर) अग्नि ऊपर और पावन-सोम नीचे हो जाता है। ऊपर जाता हुआ अग्नि अपनी आधारशक्ति सोमसे ही धृत है (बिना सोमके उसका जीवन नहीं) और नीचे आता हुआ सोम शिवकी ही शक्ति कहाता है अर्थात् बिना शिवके आधारके वह भी नहीं रह सकता। दोनों एक दूसरेके आधारपर हैं। शिव शक्तिमय है और शक्ति शिवमय है, शिव और शक्ति जहाँ व्याप्त न हों—ऐसा कोई स्थान नहीं।'।

अब इसपर और व्याख्या लिखनेकी आवश्यकता नहीं रही। अग्निसे सोम और सोमसे अग्नि बनते हैं—वे दोनों एक ही तत्त्व हैं। इसलिये शिव और शक्तिका अभेद (एकरूपता) माना जाता है, एकके बिना दूसरा नहीं

रहता। इसलिये शिव और उमा मिलकर एक अङ्ग है, उमा शिवकी अर्द्धाङ्गिनी है। सोम भोज्य है और अग्नि भोक्ता, इसलिये अग्नि पुरुष और सोम स्त्री माना गया है। लोकक्रममें सोम ऊपर रहता है, इससे शिवके वक्षःस्थलपर खड़ी हुई शक्तिकी उपासना होती है। शिव ज्ञानस्वरूप वा रसस्वरूप है और शक्ति क्रिया वा बलरूपा। क्रिया वा बल, ज्ञान वा रसके आधारपर खड़ा रहता है, इसलिये भगवतीको शिवके वक्षःस्थलपर खड़ी हुई मानते हैं—यह भी भाव इसमें अन्तर्निहित है। बिना क्रियाके ज्ञानमें स्फूर्ति नहीं—वह सुर्दा है, इसलिये वहाँ शिवको 'शव' रूप माना जाता है। अथवा यों भी कह सकते हैं कि विश्वरूप (विराटरूप) शिव है, उसपर चिस्कलारूपा (ज्ञानशक्तिरूपा) भगवती खड़ी है। वही इसकी प्रधान शक्ति है, उसके बिना विश्वरूप निश्चेष्ट है। वह 'शव' रूप है। ज्ञान और क्रियाको अर्द्धाङ्ग भी कह सकते हैं। यों कोई भी भाव मान लिया जाय, सभी प्रमाणसिद्ध और अनुभवगम्य हैं।

विश्वचर ईश्वर और शिवमूर्ति

विश्वकी उत्पत्तिसे शिवका सम्बन्ध संक्षेपमें दिखाया गया है, यह शिवका 'विश्व' रूप वा 'ब्रह्मसत्य' कहा जाता है। हम ईश्वर-निरूपणमें पूर्व कह चुके हैं कि ईश्वर जगत्को रचकर उसमें प्रविष्ट होता है। वह प्रविष्ट होने-वाला रूप ईश्वरका 'विश्वचर' रूप कहा जाता है, इसे वैदिक परिभाषामें 'देवसत्य' कहते हैं। यही सब जगत्का नियन्ता है और व्यवहारमें, न्यायदर्शनमें वा उपासना-शास्त्रोंमें यही नियन्ता 'ईश्वर' कहलाता है। ईश्वर-के इस रूपकी व्याप्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें है, समष्टि-ब्रह्माण्डमें और प्रत्येक व्यष्टि-पदार्थमें यह व्यापकरूपसे विराजमान है और ब्रह्माण्डसे बाहर भी व्याप्त रहकर ब्रह्माण्डको अपने उद्गममें रखे हुए है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चैताः केवलो निर्गुणश्च ॥

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् ।

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥

यो योनिं योनिमवितिष्ठत्येको
यस्मिन्निदं स च विचैति सर्वम् ।

तमीशानं वरदं देवमीश्वरं
निचायेमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।

सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥

(श्वेताश्वतर उपनिषद्)

—इत्यादि शतशः मन्त्रोंमें ईश्वरके विश्वचर रूपका वर्णन मिलता है और इनमें 'शिव', 'ईशान', 'रुद्र' आदि पद भी स्पष्ट हैं।

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वरका शरीर कहलाता है, इस शरीरका वर्णन इसप्रकार प्राप्त होता है—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ।

वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य

पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥

(मुण्ड० २।१।४)

'अग्नि जिसका मस्तक है, चन्द्रमा-सूर्य दोनों नेत्र हैं, दिशाएँ श्रोत्र हैं, वेद वाणी हैं, विश्वव्यापी वायु प्राणरूपसे हृदयमें है, पृथिवी पादरूप है—वह सब भूतोंका अन्तरात्मा है।'

इसी प्रकारका संक्षिप्त वा विस्तृत वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होता है। इसी वर्णनके अनुसार उपासनामें शिवमूर्तिके ध्यान हैं। हम पूर्व कह चुके हैं कि अग्निकी व्याप्ति इक्कीस स्तोम तक (सूर्यमण्डलतक) है, इसी अग्निको यहाँ मस्तक बताया गया है और उसी मस्तकके अन्तर्गत सूर्य, चन्द्रमाको नेत्र माना है। यों पृथिवीसे आरम्भकर सूर्यमण्डलसे परे, स्वयम्भूमण्डलतक ईश्वरकी व्याप्ति बतायी जाती है। हमारी आराध्य शिवमूर्तिमें भी तृतीय नेत्ररूपसे अग्नि ललाटमें विराजमान है, जोकि अन्य दोनों नेत्रोंसे किञ्चिद् ऊँचेतक है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों नेत्र हैं ही—

'वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनम्'

यहाँतक अग्निकी व्याप्ति हुई, इससे आगे सोममण्डल है और सोमकी तीन अवस्थाएँ हैं—अप्, वायु और सोम, यह भी पूर्व कह चुके हैं। इनमेंसे सोम चन्द्रमारूपसे, अप् गङ्गारूपसे और वायु जटारूपसे शङ्करके मस्तकमें (अग्नि आदिसे ऊपर) विराजमान है। सूर्यमण्डलसे ऊपर परमेष्ठिमण्डलका सोम मण्डलरूपमें नहीं है—इसलिये शिवके मस्तकपर भी चन्द्रमाका मण्डल नहीं, किन्तु कलामात्र है। सोमके ही तीन भाग हैं, जोकि तीन कला (अंश, अवयव) कही जा सकती हैं। केवल सोम पूर्णरूपमें नहीं रहता; किन्तु भागोंमें विभक्त होकर रहता है—इसलिये भी चन्द्रकी कलाका मस्तकपर विराजित होना युक्तियुक्त है। मण्डलरूप पृथिवीका चन्द्रमा पहले नेत्रोंमें आ चुका है यह स्मरण रहे; परमेष्ठिमण्डलका 'अप्' ही गङ्गाके रूपमें परिणत होता है—यह गङ्गाके विज्ञानमें कहीं अन्यत्र स्पष्ट किया जायगा। वह गङ्गा जटामें है अर्थात् वायुमण्डलमें व्याप्त है। शिवका नाम 'व्योमकेश' है, अर्थात् आकाशकी उनकी जटा माना गया है और आकाश वायुसे व्याप्त ही मिलता है—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।

इससे भी जटाओंका वायुरूप होना सिद्ध है। एक-एक केशके समूहको 'जटा' कहते हैं और वायुका भी एक-एक डोरा पृथक्-पृथक् है, जिनकी समष्टि 'वायु' कहलाता है—यह जटा और वायुका सादृश्य है। पृथिवीका अधिकतर सम्बन्ध सूर्यसे ही है, आगेके सोममण्डलका पृथिवीसे साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता—सूर्य, चन्द्रद्वारा होता है; इससे हमारा असली ब्रह्माण्ड सूर्यतक ही है। यही यहाँ भी (शिवमूर्तिमें भी) सूचित किया है, क्योंकि मस्तकतक ही शरीरकी व्याप्ति है—केश मुख्यतः शरीरके अंश नहीं कहे जाते। शरीरका भाग ही अवस्थान्तरित होकर केशरूपमें परिणत होता है, इसी प्रकार अग्नि ही अवस्थान्तरित होकर सोमरूपमें परिणत होता है—यह कह चुके हैं। यह परमेष्ठिमण्डलका वायु जटारूपसे है और जिसे श्रुतिमें प्राणरूपसे हृदयमें विराजमान कहा है, वह इस हमारे अन्तरिक्षका वायु है। पञ्चपुराणमें पृथिवीका पञ्चरूपसे निरूपण किया है; और शङ्करका ध्यान पञ्चासनस्थितरूपमें है—'पञ्चासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैः', इससे पृथिवीकी पादरूपता भी ध्यानमें आ जाती है।

ईश्वरके शरीर इस ब्रह्माण्डमें विष और अमृत—दोनों हैं। विष भी कहीं बाहर नहीं, ईश्वर-शरीरमें ही है। किन्तु ईश्वर विषको गुप्त-अन्तर्लीन रखता है और अमृतको प्रकट। जो ईश्वरके उपासक ईश्वरके शरीररूपसे जगत्को देखते हैं, उनकी दृष्टिमें अमृत ही आता है, विष बिलीन हो रहता है। अतएव शङ्करकी मूर्तिमें विष गलेके भीतर है, वह भी कालिमारूपसे मूर्तिकी शोभा ही बढ़ा रहा है और अमृतमय चन्द्रमा स्पष्टरूपसे सिरपर विराजमान है। वैज्ञानिक समुद्रमन्थनके द्वारा जो विष प्रकट होता है, उसे रुद्र ही धारण करते हैं; किन्तु इस संक्षिप्त लेखमें उस कथाका भाव नहीं बताया जा सकता। ईश्वरको शास्त्रकारोंने 'विरुद्धधर्माश्रय' माना है; जो धर्म हमें परस्पर-विरुद्ध प्रतीत होते हैं, वे सब ईश्वरमें अविरुद्ध होकर रहते हैं। सभी विरुद्ध धर्मोंको ब्रह्माण्डमें ही तो रहना है, बाहर जायँ कहाँ? और ब्रह्माण्ड ठहरा ईश्वर-शरीर, फिर वहाँ विरोध काहेका? यह भाव भी शिवमूर्तिमें स्पष्ट है कि वहाँ अमृत भी है, विष भी; अग्नि भी है, जल भी—किसीका परस्पर विरोध है ही नहीं। इस भावको पार्वतीकी उक्तिमें कविकुलगुरु कालिदासने बड़े सुन्दर शब्दोंमें चित्रित किया है। इस प्रकरणका एक पद्य हम लेखके आरम्भमें दे चुके हैं, दूसरा भी बड़ा मार्मिक है—

विभूषणोद्भासि भुजङ्गभोगि वा
गजाजिनारुम्बि दुकूलधारि वा ।

कपालि वा स्यादथ वेन्दुशेखरं
न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः ॥

(कुमारसंभव ५)

वह शरीर भूषणोंसे भूषित भी है और सर्प-शरीरोंसे वेष्टित भी। गजचर्म भी ओढ़े हुए है और सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य वस्त्रधारी भी हो सकता है। वह शरीर कपालपाणि भी है और चन्द्रमुकुट भी। जो विश्वमूर्ति ठहरा, उस शरीरका एक रूपसे निश्चय कौन कर सकता है?

भगवान् शङ्करके हाथमें परशु, मृग, वर और अभय बताये गये हैं—

परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसजम् ।

ध्यानमें हाथोंके द्वारा देवमूर्तिके कार्य प्रकट किये जाते हैं—यह 'निदान' की परिभाषा है। यहाँ भी शङ्करके (ईश्वरके) चार कर्म इन चिह्नोंद्वारा बताये गये हैं।

परशु (वा त्रिशूल) रूप आयुधसे दुष्टोंका, आत्मविघातक दोषों और उपद्रवोंका और पवमान, पावक, शुचि आदि घोर रुद्रोंका हनन सूचित किया जाता है। काल आनेपर सबका हनन भी इसीसे सूचित हो जाता है। दूसरे हाथमें मृग है। शतपथब्राह्मण—काण्ड १, अध्याय १, ब्राह्मण ४ में कृष्ण मृगको यज्ञका स्वरूप बताया गया है। अन्यत्र शतपथ और तैत्तिरीयमें यह भी आख्यान है कि अग्नि वनस्पतियोंमें प्रविष्ट हो गया, 'वनस्पतीनाविवेश' इस ऋचाको भी वहाँ प्रमाणरूपमें उपस्थित किया गया है। उस अग्निको देवताओंने ढूँँडा, इससे 'मृत्युत्वान्मृगः'—ढूँँदनेयोग्य होनेसे वह अग्नि 'मृग' कहाया। यह अग्नि वेदका रक्षक है। अस्तु, दोनों ही प्रकारसे मृगके धारण-द्वारा यज्ञकी रक्षा वा वेदकी रक्षा—यह ईश्वरका कर्म सूचित किया गया है। वरमुद्राके द्वारा सबको सब कुछ देनेवाला ईश्वर (शङ्कर) ही है, अग्नि, वायु और इन्द्ररूप-से वही सब जगत्का पालक है—यह भाव व्यक्त किया है और अभयके द्वारा अनिष्टसे जगत्का त्राण विवक्षित है। यम, निर्ऋति, वरुण और रुद्र—ये चार जगत्के अनिष्ट-कारक माने गये हैं; इनमें रुद्र समयपर हनन करता है और अन्य अनिष्टोंका उपमर्दनकर रक्षा भी करता है। इसीसे रुद्रमूर्तिमें अभयमुद्रा आवश्यक है। शङ्कर व्याघ्र-चर्मको नीचेके अङ्गमें पहनते हैं वा आसन बनाकर बिछाते भी हैं और गजचर्मको ऊपर ओढ़ते हैं, इससे भी उपद्रवी दुष्टोंका दबना और सम्पत्ति देना लक्षित होता है। उनके गलेमें जो मुण्डमाला है, उससे यही सूचित होता है कि सब जगत्के पदार्थ ईश्वरके रूपमें अन्तर्गत हैं, उनके रूपमें सब पिरोये हुए हैं—

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

ईश्वरसत्तासे पृथक् किये जानेपर सब पदार्थ अचेतन—मृत हैं, यही भाव 'मुण्ड' रूपसे सूचित किया है। प्रलय-कालमें शिव ही शेष रहते हैं, शेष सब पदार्थ चेतनाशून्य होकर मृत-मुण्डरूपसे उनमें प्रोत रहते हैं—यह भी मुण्डमालाका भाव है।

सर्प

शिवको 'सर्पभूषण' कहा जाता है। उनकी मूर्तिमें जगह-जगह साँप लिपटे हुए हैं। इसका स्थूल अभिप्राय कह चुके हैं कि मङ्गल और अमङ्गल सब कुछ ईश्वर-शरीरमें

है। दूसरा अभिप्राय यह भी है कि संहारकारक शिवके पास संहारसामग्री भी रहनी ही चाहिये। समयपर उत्पादन और समयपर संहार—दोनों ईश्वरके ही कार्य हैं। सर्पसे बढ़कर संहारक तमोगुणी कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि अपने बालकोंको भी खा जाना—यह व्यापार सर्प-जातिमें ही देखा जाता है, अन्यत्र नहीं। तीसरा अभिप्राय किञ्चित् निगूढ़ है। चन्द्रमा, मङ्गल, बृहस्पति आदि ग्रह जो सूर्यके चारों ओर घूमते हैं—वे अपने एक परिभ्रमणमें जिस मार्गपर गये थे, ठोक उन्हीं बिन्दुओंपर दूसरी बार नहीं जाते। किञ्चित् हटकर उसी मार्गपर चलते हैं, यों एक-एक बारके भ्रमणका एक-एक कुण्डलाकार वृत्त बनता जाता है। कुछ नियत परिभ्रमणोंके बाद वे फिर अपने उस पूर्व वृत्तपर आ जाते हैं, यह नियम भिन्न-भिन्न ग्रहोंका भिन्न-भिन्न रूपसे है। मङ्गल ७९ वर्षमें फिर अपने पूर्व-वृत्तपर आता है, और-और ग्रहोंका भी समय नियत है। यह भिन्न-भिन्न मण्डलोंका समुदाय रस्सीकी तरह लपेटा हुआ खयालमें लाया जाय तो वह सर्पकुण्डलीके आकारका ही होता है। अतः वेदोंमें इनका व्यवहार नाग वा सर्प कहकर ही किया गया है। आधुनिक ज्योतिष-शास्त्रमें इन्हें 'कक्षावृत्त' कहते हैं। सूर्यको मध्यमें रखकर घूमने-वालोंमें आठ ग्रह मुख्य हैं, अतः आठ ही सर्प प्रधान माने गये हैं। और भी बहुत-से तारे घूमनेवाले हैं, उनके लघु सर्प बनते हैं। ये सब ग्रह और उनके कक्षावृत्त (सर्प) ईश्वरके शरीर—ब्रह्माण्डमें अन्तर्गत हैं—इसलिये शिवके शरीरमें भूषणरूपसे सर्पोंकी स्थिति बतायी गयी है। तारामण्डलमें भी अनेक रुद्र हैं, और उनके आकार सर्प-जैसे दिखायी देते हैं—यह पूर्व रुद्रनिरूपणमें कह चुके हैं। उन सबके धारक मुख्य रुद्र भगवान् शङ्कर हैं—यह चौथा अभिप्राय भी भुलाया न जाय।

श्वेत मूर्ति

भगवान् शङ्करकी मूर्ति उज्ज्वल—श्वेत है—

रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गम्

इसके अभिप्राय निम्नलिखित हैं—

(१) व्यापक ईश्वर चेतन अर्थात् ज्ञानरूप है। ज्ञानको 'प्रकाश' कहते हैं, अतः उसका वर्ण श्वेत ही होना चाहिये।

(२) श्वेत वर्ण कृत्रिम नहीं, स्वाभाविक है। वस्त्र आदिपर दूसरे रंग चढ़ानेके लिये यत्न करना पड़ता है, किन्तु श्वेत रंगके लिये कोई रँगरेज नहीं होता। श्वेतपर और-और रूप चढ़ते हैं और धोकर उतार दिये जाते हैं, श्वेत पहले भी रहता है और पीछे भी। धोबीद्वारा दूसरे रंगके उतार दिये जानेपर श्वेत प्रकट हो जाता है। इससे श्वेत नैसर्गिक ठहरा। वस, यही बताना है कि ईश्वरका कृत्रिम रूप नहीं है, सब रूप उसमें उत्पन्न होते हैं और लीन होते हैं, वह स्वभावतः एकरूप है, वा यों कहो कि कृत्रिम रूपोंसे वर्जित है, नीरूप है।

(३) वैज्ञानिक लोग जानते हैं कि श्वेत कोई भिन्न रूप नहीं। सब रूपोंके समुदायको ही श्वेत कहते हैं। सब रूपोंको जब मिलाया जाय तब वे यदि सब-के-सब मूर्च्छित हो जायँ तो काला रूप बनता है और सब जाम्बू रहें तो श्वेत प्रतीत होता है। सूर्यकी किरणोंमें सब रूप हैं—यह वैज्ञानिकलोग जानते हैं। तिकोने काँचकी सहायतासे सर्वसाधारण भी देख सकते हैं। किन्तु सजके मिलनेके कारण प्रतीत श्वेत रूप ही होता है। भिन्न-भिन्न सब वर्णोंके पत्ते एक यन्त्रमें रखकर उसे जोरसे घुमाया जाय तो श्वेत ही दिखायी देगा। इससे सिद्ध है कि सब रूप हों, किन्तु उनमें भेद-भाव न हो; वह शुद्ध होता है। यही स्थिति ईश्वरकी है। जगत्के सब रूप उसीमें ओत-प्रोत हैं, किन्तु भेद छोड़कर। भेद अविद्याकृत है। ईश्वरमें अभिन्नरूपसे सबकी स्थिति है। तब उस ईश्वरको श्वेत ही कहना और देखना चाहिये।

(४) सात लोकोंमें जो स्वयम्भूसे पृथिवीतक पाँच मण्डल बताये गये हैं, उनमेंसे सूर्यमण्डलमें सब वर्ण हैं। आगे परमेष्ठिमण्डल कृष्ण है—यह हम कल्याणके कृष्णाङ्क-परिशिष्टाङ्कके पृष्ठ ५३६-५३७ में दिखा चुके हैं। उससे आगे स्वयम्भूमण्डल प्रकाशमय श्वेतवर्ण है और आग्नेय-मण्डल होनेके कारण वह 'शिवमण्डल' वा 'रुद्रमण्डल' भी कहा जाता है। वही मण्डल सर्वव्यापक होनेके कारण ईश्वरका रूप कहा जा सकता है। उसके प्रकाशमय श्वेतवर्ण होनेके कारण शिवमूर्तिका श्वेतवर्ण युक्तियुक्त है।

विभूति

शङ्करभगवान् सर्वाङ्गमें विभूतिसे अनुलित—आच्छन्न रहते हैं। इसका भी यही कारण है। उक्त पाँचों मण्डलोंके

प्राण सारे पार्थिव पदार्थोंमें व्याप्त हैं। उनमेंसे सौर-जगत्में सूर्यप्राण उद्भूत (सबसे ऊपर, प्रकाशित) रहते हैं और आगेके अमृतमण्डलों (परमेष्ठी और स्वयम्भू) के प्राण आच्छन्न (ढके हुए, गुप्त) रहते हैं। सूर्यकिरणोंके कारण ही भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें भिन्न-भिन्न रूप दीख पड़ते हैं—यह वैज्ञानिकोंका सुप्रसिद्ध सिद्धान्त है। सूर्यकी किरणोंमें सब रूप हैं, हर एक पदार्थ अपनी विशेष शक्तिसे अन्य रूपोंको निगल जाता है और एक रूपको उगल देता है। जिसे उगलता है वही हमें उस पदार्थका रूप प्रतीत होता है, यह आधुनिक वैज्ञानिकोंका कथन है। अस्तु, जब इन पदार्थोंमें अभि लगायी जाती है तो अभि का स्वभाव है कि घनीभूत पदार्थोंका विशकलन करे—उन्हें तोड़े। यों अभिद्वारा पृथक् किया जाकर सौर-प्राणोंका ऊपरी स्तर जब निकल जाता है, तो भीतरका छिपा हुआ परमेष्ठि-मण्डलके प्राणका समनुगत कृष्णरूप काले कोयलेके रूपमें निकल आता है, किसी भी पदार्थको जलानेपर वह काला ही होगा—यह प्रत्यक्ष है। यह पदार्थोंमें दूसरा स्तर है। जब इसपर भी फिर अभि का प्रयोग किया जाय और अभिद्वारा विशकलित होकर दूसरा स्तर भी निकल जाय—उड़ जाय—तब तीसरा अन्तर्निगूढ़ स्वयम्भू प्राणोंका स्तर प्रकट होता है और वह स्वयम्भू प्राणके समनुगत श्वेत रूपका देखा जाता है। किसी भी रंगके पदार्थको जलाइये, अन्तमें प्रकाशमान श्वेत भस्म ही शेष रहता है। यह मौलिक तत्त्व है, इसे अभि नहीं उड़ा सकता। भगवान् शङ्कर इसी मौलिक तत्त्व-भस्मसे सदा उद्धूलित रहते हैं। इसी मौलिक तत्त्वसे वे सृष्टिकी रचना करते हैं—यह शिवपुराणकी सृष्टि-प्रक्रियामें स्पष्ट है। स्वयम्भूमण्डलके अधिष्ठाता श्वेत मूर्ति शिवका जगद्ग्याप्त स्वयम्भू-प्राणरूप भस्मसे उद्धूलित रहना सर्वथा स्वासिक है—इसमें सन्देह नहीं। शिवके अन्य प्रकारके भी ध्यान हैं, यह पूर्व लिखा गया है। उन अन्यान्य शिवमूर्तियोंके सम्बन्धमें भी विवेचना आवश्यक थी। और शिवलिङ्गके सम्बन्धमें भी बहुत कुछ वक्तव्य था; किन्तु लेख विस्तृत हो गया, अब लिखनेके लिये न तो उपयुक्त समय है और न स्थान ही। इसलिये इन विवेचनाओंको समयान्तरके लिये छोड़कर, दो-एक आवश्यक बातें और कहकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं।

शिव और विष्णु

उपासनाके प्रेमियोंमें इस बातपर आधुनिक युगमें बहुत विवाद रहता है कि शिव और विष्णुमें कौन बड़ा ? कोई विष्णुको ही परमात्मा कहकर शिवको उनके उपासक मानते हुए जीवकोटिमें माननेका साहस करते हैं और कोई शिवको परतत्त्व कहकर विष्णुको उनके अनुगत, सेवक वा जीवविशेष कहनेतकका पाप करते हैं। कुछ सज्जन दोनोंको ईश्वरके ही रूप कहते हुए भी उनमें तारतम्य रखते हैं। वैज्ञानिक प्रक्रियामें वस्तुतः इन विवादोंका अवसर ही नहीं है। यहाँ न कोई छोटा है, न बड़ा। अपने-अपने कार्यके सब प्रभु हैं। यह उपासककी इच्छा और अधिकारके अनुसार नियत है कि वह किसी रूपको अपनी उपासनाके लिये चुन ले, किन्तु किसीको छोटा कहना या निन्दा करना अपनेको विज्ञानशून्य घोषित करना है। अस्तु, अब क्रमसे देखिये—निर्विशेष, परास्पर वा अव्यय पुरुष, जो उपासना और ज्ञानका मुख्य लक्ष्य है, जो जीवका अन्तिम प्राप्य है, उसमें किसी प्रकारका भेद नहीं। उसे 'वेवेष्टीति विष्णुः'—सर्वत्र व्यापक है, इसलिये 'विष्णु' कह लीजिये, अथवा 'शेरतेऽस्मिन् सर्वे इति शिवः'—सब कुछ उसीके पेटमें है, इसलिये 'शिव' कह लीजिये। उसका कोई नाम-रूप न होते हुए भी—
सर्वधर्मोपपत्तेश्च।

—इस वेदान्तसूत्रके अनुसार सभी गुण, कर्म और नाम उसके हो सकते हैं। अतएव विष्णुसहस्रनाममें शिवके नाम और शिवसहस्रनाममें विष्णुके नाम आते हैं, मूलरूपमें भेद है ही नहीं। यों परमशिव वा महाविष्णु एक ही वस्तु है, उपासकके अधिकार वा रुचिके अनुसार उसकी भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे उपासना होती है। अब आगे अक्षर पुरुषमें आइये—यहाँ विष्णु और महेश्वर शक्ति-भेदसे पृथक्-पृथक् प्रतीत होंगे, जैसा कि कहा गया है कि आदान-क्रियाके अधिष्ठाता विष्णु और उत्क्रान्तिके अधिष्ठाता महेश्वर हैं; किन्तु वस्तुतः विचार करनेपर एक ही अक्षर पुरुषकी दोनों कलाएँ हैं, इसलिये मौलिक भेद इनमें सिद्ध नहीं होता। आदान और उत्क्रान्ति दोनों एक ही गतिके भेद हैं। गति यदि केन्द्राभिमुखी हो तो 'आदान' कहाता है और यदि केन्द्रसे विपरीत दिशामें अर्थात् पराङ्मुखी हो तो 'उत्क्रान्ति' कहाती है, यों एक ही गतिके दिग्भेदसे दो विभेद हैं—

तब वास्तविक भेद कहाँ रहा ? नाममात्रका ही तो भेद है। एक कविने बड़ी सुन्दरतासे कहा है—

उभयोरेका प्रकृतिः प्रत्ययतो भिन्नवद्भाति ।

कलयतु कश्चन मूढो हरिहरभेदं विना शास्त्रम् ॥

व्याकरणके अनुसार हरि और हर दोनों शब्द एक ही 'ह' धातुसे बनते हैं, अतः प्रकृति (मूल धातु) दोनोंमें एक है, केवल प्रत्यय जुदा-जुदा है—तब इनका भेद मानना शास्त्रसे अनभिज्ञोंका ही काम है। दूसरा अर्थ श्लोकका यह है कि दोनोंकी प्रकृति एक है अर्थात् मूलतत्त्व-रूपसे दोनों एक हैं, केवल प्रत्यय-प्रतीति-बाहरी दृष्टिसे भेद हो रहा है; यह भेद शास्त्र-दृष्टिवालोंको कभी प्रतीत नहीं होता। अतएव उत्क्रान्तिका नेता 'इन्द्र' कहाता है तो आदानका 'उपेन्द्र' (दूसरा इन्द्र)। विष्णुका दूसरा नाम 'उपेन्द्र' भी है।

कुछ सज्जन शिवको संहारकर्ता कहकर उपासनाके अयोग्य मानते हैं; किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे यह भी तर्क नहीं ठहरता। हम अक्षर पुरुषके निरूपणमें स्पष्ट कर चुके हैं कि एक दृष्टिसे जो संहार है, दूसरी अपेक्षासे वही उत्पादन वा पालन है। नाममात्रका भेद है, वास्तविक भेद इसमें भी नहीं है। इसके अतिरिक्त संहार भी तो ईश्वरका ही काम है और वह अवश्यम्भावी है। समयपर उत्पादन और पालन जैसे नियत हैं, वैसे ही संहार भी नियत है। तीनों कार्य ईश्वरके द्वारा ही होते हैं। यदि एक ही शक्ति तीनों कार्योंकी करनेवाली न मानी जाय तो बड़ा युक्तिविरोध आ पड़े। संहार करनेवाला कोई और है, तो वह पालकसे जबर्दस्त कहा जायगा—क्योंकि उसके पालितको वह नष्ट कर देता है। फिर संहारक ही ईश्वर कहाएगा, पालक नहीं। इसके अतिरिक्त जिसने सबका संहार किया वही तो अन्तमें शेष रहेगा, फिर सृष्टिके समय सृष्टि भी वही करेगा। दूसरा रूप है ही कहाँ, जो सृष्टि करे ? इन सब कुतर्कोंका समाधान तभी होता है जब कि एक ही ईश्वरके कार्यापेक्षासे तीनों रूप माने जायँ—उनमें भेद न माना जाय। जिस समय जिस रूप वा शक्तिकी आवश्यकता होती है, उस समय वह प्रकट हो जाता है, तत्त्व एक ही है। फिर भी कहा जाय कि तत्त्व चाहे एक हो, किन्तु संहारकारक रूपसे हमें ध्यान नहीं करना चाहिये—तो यह युक्ति भी निःसार है। सब रूपोंके उपासक अपने उपास्यमें सभी शक्तियोंका

ध्यान करते हैं। विष्णुके उपासक भी उनको उत्पादक, पालक और संहर्ता तीनों कहते हैं और शिवके उपासक भी ऐसा ही करते हैं। कोई भी शक्ति न माननेसे ईश्वरमें न्यूनता आ जायगी। ईश्वरका काम यथाकाल सब कार्य करना है, कालमें संहार अभीष्ट ही है। क्या संहारका ध्यान न करनेवालोंका संहार न होगा? फिर महेश्वर तो केवल संहारक हैं भी नहीं, तीन अक्षर कलाओंकी समष्टि को 'महेश्वर' बताया गया है; इनमें अग्नि और सोम ही तो सब जगत्के उत्पादक हैं, इसलिये यह उरुर्ध्वपक्षकी कल्पना कोरी कल्पना ही है। कुछ सज्जन शिवको तमोगुणी कहकर उपासनाके अयोग्य ठहरानेका साहस करते हैं, किन्तु यह भी साहसमात्र ही है। शिव ईश्वर हैं, वे तमोगुणके वशमें तो हो ही नहीं सकते। ईश्वर और जीवमें यही तो भेद है कि जीव प्रकृतिके वशमें है और ईश्वर प्रकृतिका नियन्ता है। तब शिव तमोगुणी हैं—इसका अभिप्राय यह होगा कि वे तमोगुणके नियन्ता हैं। तो फिर सत्त्वगुणके नियमन करनेकी अपेक्षा तमोगुणके नियमन करनेका कार्य कितना कठिन है और वैसा कार्य करनेवाला रूप और भी उत्कृष्ट है कि नहीं—इसका विचारशील स्वयं निर्णय करें।

वस्तुतः तमोगुण 'आवरक' कहलाता है, भूतोंकी उत्पत्ति तमोगुणसे ही मानी जाती है और वैज्ञानिक प्रक्रियामें भूतोंके उत्पादक अग्नि और सोम हैं। उन अग्नि और सोमके अधिनायक महेश्वर हैं, इसलिये उन्हें तमोगुणका अधिष्ठाता कहा गया है। इससे उपास्यतामें कोई हानि नहीं। उपासक उन्हें तमोगुणके नियन्ता कहकर उपासना करते हैं; अतएव परमवैराग्यवान्, अत्यन्त शान्त, विषयनिर्लिप्त रूपमें वे उनका ध्यान करते हैं, इससे उपासकोंमें तमोगुणकी वृद्धि होगी—इसकी लेशतः भी सम्भावना नहीं। तमोगुणके नियन्ता वे भी हो जायेंगे।

अब प्राकृत स्वयम्भू आदि मण्डलोंपर विचार कीजिये। यहाँ भी एक दृष्टिसे एककी व्याप्ति न्यून रहती है, तो दूसरी दृष्टिसे दूसरेकी। विष्णु यज्ञस्वरूप हैं, और यज्ञद्वारा ही रुद्र आदि सब देवता उत्पन्न होते हैं—यज्ञके आधार-पर ही सब देवताओंकी स्थिति है। रुद्र शिवका रूप है, इसलिये कहा जा सकता है कि शिव विष्णुके उदरमें हैं—उनसे उत्पन्न होते हैं। किन्तु दूसरी दृष्टिसे अग्निप्रधान सूर्यमण्डल रुद्रका रूप है, उस मण्डलकी व्याप्तिमें

अर्थात् सौर-जगत्के अन्तर्गत यज्ञमय विष्णु हैं। सौर-जगत्में जो यज्ञ हो रहा है उसीसे हमारा जीवन है और 'यज्ञो वै विष्णुः'—यज्ञ ही विष्णुका रूप है, इस दृष्टिसे शिव वा रुद्रके पेटमें विष्णु रहे। अब आगे बढ़िये—सूर्यका उत्पादक यज्ञ परमेष्ठिमण्डलमें होता है, अतएव वह मण्डल विष्णुप्रधान कहा गया है—उस मण्डलके पेटमें सूर्यमण्डल आ जाता है, इससे विष्णुके पेटमें शिवका अन्तर्भाव हुआ। और आगे चलें तो परमेष्ठिमण्डल स्वयम्भूमण्डलके अन्तर्गत रहता है, स्वयम्भूमण्डल आग्नेय होनेके कारण रुद्रका वा अग्निके नियन्ता महेश्वरका मण्डल कहा जा सकता है—यह अभी विस्तारसे निरूपित हो चुका है। स्वयम्भूमण्डलके अन्तर्गत एक वाचस्पति-तारा है, वह श्रुतिमें इन्द्र माना गया है और इन्द्र महेश्वरके रूपमें अन्तर्गत है। उस मण्डलकी व्याप्तिमें परमेष्ठिमण्डलके अन्तर्भूत रहनेके कारण फिर शिवके उदरमें विष्णु आ गये। इसीलिये स्पष्ट कहा गया है—

शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोस्तु हृदयं शिवः।

सब जिसके अन्तर्गत हैं—वह परमाकाश सर्वरूप है, उसे परमशिव कह लीजिये वा महाविष्णु। इसलिये इस दृष्टिसे भी कोई भेद वा छोटा-बड़ापन सिद्ध नहीं होता।

अब आगे जो हमने विश्वचररूप ईश्वरका बताया है, वह विष्णु भी कहा जा सकता है और शिव भी। विष्णुका वर्णन भी पृथिवी पाद, सूर्य-चन्द्रमा नेत्र इत्यादि रूपसे ही मिलता है और शिवका भी वैसा ही वर्णन हम लिख चुके हैं। जिसप्रकार शिवकी उपास्य मूर्तिमें हमने सब ब्रह्माण्ड-का अन्तर्भाव बताया है, वैसा ही विष्णुमूर्तिका रहस्य-विवरण भी विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत आदिमें मिलता है। इसमें केवल इतना विवक्षाभेद है—जगत्के तीन मूल हैं, ज्ञान, क्रिया और अर्थ। वा यों कहो कि इनका समुदाय ही जगत् है। इनमें क्रियाको 'यज्ञ' कहते हैं और यज्ञ विष्णुका रूप बताया गया है। इससे क्रियाप्रधान-रूपसे—कुर्वद्रूपतामें—जिसमें बराबर कार्य हो रहा है—यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी प्रतिकृति बनायी जाय, तो वह विष्णुकी मूर्ति होगी और ज्ञानकी प्रधानता-से—प्रशान्तभावमें यदि ब्रह्माण्डकी प्रतिकृति बनायी जाय तो वह शिवमूर्ति कही जायगी। इसीलिये यह प्रवाद भी चला है कि उपासनाका विष्णुसे और ज्ञान-

काण्डका शिवसे सम्बन्ध है, क्योंकि उपासना क्रियारूप है। महेश्वरकी उपासना भी ज्ञान-प्राप्तिके लिये ही मानी गयी है—‘ज्ञानं महेश्वरादिच्छेत्।’ ज्ञानप्राप्तिके अनन्तर भी प्रथम भूमिकाओंमें निदिध्यासन आदि क्रियाओंकी मुक्तिके लिये आवश्यकता रहती है—इसलिये फिर ‘मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्’ मान लिया गया। ज्ञान बिना अर्थके नहीं रहता, वही अर्थका धारक है—इसलिये विद्वानोंकी उक्ति है कि—

शब्दजातमशेषं तु धत्ते शर्वस्य बलमा।

अर्थजातमशेषं च धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः॥

‘सब अर्थोंके धारण करनेवाले बालेन्दु-मुकुट भगवान् शङ्कर हैं।’

इस दृष्टिमें भी अर्थ मुख्य है वा यज्ञ—इसका निर्णय कोई नहीं कर सकता। यज्ञसे अर्थ बनते हैं, अर्थ होनेपर ज्ञान होता है और ज्ञानसे क्रिया वा यज्ञ होता है, बिना अर्थके भी यज्ञ नहीं हो सकता। यों दोनों रूप परस्पर-सापेक्ष रहते हैं, विवक्षाभेदसे कोई किसीको प्रधान मान ले। वस्तुतः यज्ञ और अर्थ एक ही मूलसे निकले हैं—अतः एक ही हैं।

यों वैज्ञानिक भावमें किसी भी दृष्टिसे हरि और हरका मौलिक भेद वा छोटा-बड़ापन सिद्ध नहीं हो सकता। केवल दृष्टिभेद है। उसमें उपासकके अधिकार और रुचिके अनुसार किसी भी रूपमें प्रधान-दृष्टि की जा सकती है। पुराणादिमें जो कहीं किसीकी और कहीं किसीकी प्रधानता लिखी है, वह भी उस अधिकारीका मनोभाव उस रूपमें दृढ़ करनेके लिये—उसी रूपमें ‘ब्रह्मदृष्टि’ करानेके उद्देश्यसे है—किसीके वास्तविक उत्कर्ष वा अपकर्षका कहीं भी तात्पर्य नहीं।

न हि निन्दा निन्दान् निन्दितुं प्रवर्तते, अपितु स्तुत्यान् स्तोतुम्।

‘निन्दा निन्दनीयकी निन्दाके उद्देश्यसे नहीं होती, अपितु स्तुत्यकी स्तुतिके उद्देश्यसे होती है’—यह भीमांसाका न्याय भी इसीके अनुकूल है।

मनुष्याकारधारी शिव

लेखके आरम्भमें हम कह आये हैं कि हमारे शास्त्रोंमें ईश्वरका दो भावोंमें वर्णन है, वैज्ञानिकरूपसे और मनुष्याकारसे। वे मनुष्याकार ईश्वरके सगुणरूप वा

अवतार कहे जाते हैं। वैज्ञानिक निरूपणमें और इन मनुष्याकारधारी ईश्वररूपोंके चरित्रोंमें आश्चर्यजनक सादृश्य देखा जाता है। अतएव आर्य-शास्त्रोंका विश्वास है कि उपासकोंपर अनुग्रहके कारण ईश्वर मनुष्यरूप ग्रहण करता है। गुरुवर श्री ६ मधुसूदनजी ओझा विद्या-वाचस्पतिके ‘देवासुरख्याति’, ‘अत्रिख्याति’ और ‘इन्द्र-विजय’ आदिमें निरूपण है कि पृथिवीमें भी एक त्रिलोकी है। कारणावतपर्वत—जिससे इरावती नदी निकलती है—के उत्तरका प्रदेश भूस्वर्ग (त्रिविष्टप) कहाता है, उसके ‘इन्द्रविष्टप’, ‘विष्णुविष्टप’, ‘ब्रह्मविष्टप’ आदि विभाग भी पुराणादिमें सुप्रसिद्ध हैं। आर्य सभ्यताके प्राधान्यकालमें इस प्रदेशमें सब वैज्ञानिक देवताओंके समान ही संस्था प्रचलित थी। अन्तु, इस अप्रकृत विषयका हम यहाँ विस्तार न करेंगे; यहाँ हमारा वक्तव्य केवल इतना ही है कि एक भगवान् शङ्करका मनुष्यरूप भी है। वह लक्ष्यालक्ष्यरूप है, कभी कार्यकालमें प्रकट होता है और कभी अलक्षित रहता है। इसी प्रकारके वर्णन इस रूपके पुराणोंमें हैं। इसे शिवावतार कह सकते हैं। समय-समयपर इन शङ्करभगवान्की तीन स्थानोंपर स्थिति बतायी गयी है। प्रथम भद्रवट-स्थानमें—जोकि कैलाससे पूर्वकी ओर लौहित्यगिरिके ऊपर है, ब्रह्मपुत्रा नदी उसके नीचे होकर बहती है। दूसरा स्थान कैलास पर्वतपर और तीसरा मूजवान् पर्वतपर। मूजवान्का स्थान-निर्देश हम पहले कर चुके हैं। इन शङ्करके गण, भूत आदिका निवास हिमालय और हेमकूटके दरोंमें बताया गया है। ये शङ्कर-भगवान् भी पूर्ण वैराग्यरत, आत्मसंयमी हैं। कादाखण्डमें एक कथा है कि इन शङ्कर भगवान्ने अपना सारा राज्य मानसरोवरपर विष्णुभगवान्को दे दिया और स्वयं विरक्त होकर एकान्तमें रहने लगे। देवताओंके कार्यके लिये—स्वामिकार्तिकेयकी उत्पत्तिके लिये पार्वती-विवाह करनेको वा त्रिपुरासुरका वध करनेको—ऐसे ही अन्यान्य समयोंमें देवताओंकी प्रार्थनापर ये प्रकट होते रहे हैं। पार्वती-विवाह, त्रिपुरवध आदिकी कथाएँ इनकी बड़ी रोचक और आर्यसभ्यताके युगमें पदार्थ-विज्ञानका अद्भुत महत्त्व प्रकट करनेवाली हैं; किन्तु उनका विवरण शङ्कर-भगवान्की कृपासे कभी समयान्तरमें सम्भव होगा—यह आशा कर शङ्कर-स्मरण करते हुए इस लेखको पूर्ण किया जाता है। ॐ शान्तिः।

शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षभागे वहन्तम् ।
नागं पाशं च घण्टां प्रलयहुतवह्निं साङ्कशं धामभागे नानालङ्कारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥



य-तत्त्व बहुत ही गहन है। मुझ-सरीखे साधारण व्यक्तिका इस तत्त्वपर कुछ लिखना एक प्रकारसे लड़कपनके समान है। परन्तु इसी बहाने उस विज्ञानानन्दधन महेश्वरकी चर्चा हो जायगी, यह समझकर अपने मनो-विनोदके लिये कुछ लिख रहा हूँ।

विद्वान् महानुभाव क्षमा करें।

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णन मिलता है। इसपर तो यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न ऋषियोंके पृथक्-पृथक् मत होनेके कारण उनके वर्णनमें भेद होना सम्भव है; परन्तु पुराण तो अठारहों एक ही महर्षि वेदव्यासके रचे हुए माने जाते हैं, उनमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिके वर्णनमें विभिन्नता ही पायी जाती है। शैवपुराणोंमें शिवसे, वैष्णवपुराणोंमें विष्णु, कृष्ण या रामसे और शाक्तपुराणोंमें देवीसे सृष्टिकी उत्पत्ति बतलायी गयी है। इसका क्या कारण है? एक ही पुरुषद्वारा रचित भिन्न-भिन्न पुराणोंमें एक ही खास विषयमें इतना भेद क्यों? सृष्टिके विषयमें ही नहीं, इतिहासों और कथाओंमें भी पुराणोंमें कहीं-कहीं अत्यन्त भेद पाया जाता है। इसका क्या हेतु है?

इस प्रश्नपर मूल-तत्त्वकी ओर लक्ष्य रखकर गम्भीरताके साथ विचार करनेपर यह स्पष्ट मान्य हो जाता है कि सृष्टिकी उत्पत्तिके क्रममें भिन्न-भिन्न श्रुति, स्मृति और इतिहास-पुराणोंके वर्णनमें एवं योग, सांख्य, वेदान्तादि शास्त्रोंके रचयिता ऋषियोंके कथनमें भेद रहनेपर भी वस्तुतः मूल-सिद्धान्तमें कोई खास भेद नहीं है। क्योंकि प्रायः सभी कोई नाम-रूप बदलकर आदिमें प्रकृति-पुरुषसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति बतलाते हैं। वर्णनमें भेद होने अथवा भेद प्रतीत होनेके निम्नलिखित कई कारण हैं—

१-मूल-तत्त्व एक होनेपर भी प्रत्येक महासर्गके आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता। क्योंकि

वेद, शास्त्र और पुराणोंमें भिन्न-भिन्न महासर्गोंका वर्णन है, इससे वर्णनमें भेद होना स्वाभाविक है।

२-महासर्ग और सर्गके आदिमें भी उत्पत्ति-क्रममें भेद रहता है। ग्रन्थोंमें कहीं महासर्गका वर्णन है तो कहीं सर्ग-का, इससे भी भेद हो जाता है।

३-प्रत्येक सर्गके आदिमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता, यह भी भेद होनेका एक कारण है।

४-सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहारके क्रमका रहस्य बहुत ही सूक्ष्म और दुर्बिज्ञेय है, इसे समझानेके लिये नाना प्रकारके रूपकोंसे उदाहरण-वाक्योंद्वारा नाम-रूप बदलकर भिन्न-भिन्न प्रकारसे सृष्टिकी उत्पत्ति आदिका रहस्य बतलाने-की चेष्टा की गयी है। इस तात्पर्यको न समझनेके कारण भी एक-दूसरे ग्रन्थके वर्णनमें विशेष भेद प्रतीत होता है।

ये तो सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें वेद-शास्त्रोंमें भेद होनेके कारण हैं। अब पुराणोंके सम्बन्धमें विचार करना है। पुराणोंकी रचना महर्षि वेदव्यासजीने की। वेदव्यासजी महाराज बड़े भारी तत्त्वदर्शी विद्वान् और सृष्टिके समस्त रहस्यको जाननेवाले महापुरुष थे। उन्होंने देखा कि वेद-शास्त्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शक्ति आदि ब्रह्मके अनेक नामोंका वर्णन होनेसे वास्तविक रहस्यको न समझकर अपनी-अपनी रुचि और बुद्धिकी विचित्रताके कारण मनुष्य इन भिन्न-भिन्न नाम-रूपवाले एक ही परमात्माको अनेक मानने लगे हैं और नाना मत-मतान्तरोंका विस्तार होनेसे असली तत्त्वका लक्ष्य छूट गया है। इस अवस्थामें उन्होंने सबको एक ही परम लक्ष्यकी ओर मोड़कर सर्वोत्तम मार्गपर लानेके लिये एवं श्रुति, स्मृति आदिका रहस्य ज्ञी, शूद्रादि अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको समझानेके लिये उन सबके परमहितके उद्देश्यसे पुराणोंकी रचना की। पुराणोंकी रचनाशैली देखनेसे प्रतीत होता है कि महर्षि वेदव्यासजीने उनमें इसप्रकारके वर्णन और उपदेश किये हैं, जिनके प्रभावसे परमेश्वरके नाना प्रकारके नाम

और रूपोंको देखकर भी मनुष्य प्रमाद, लोभ और मोहके वशीभूत हो सन्मार्गका त्याग करके मार्गान्तरमें नहीं जा सकते। वे किसी भी नाम-रूपसे परमेश्वरकी उपासना करते हुए ही सन्मार्गपर आरूढ़ रह सकते हैं। बुद्धि और रुचि-वैचित्र्यके कारण संसारमें विभिन्न प्रकारके देवताओंकी उपासना करनेवाले जनसमुदायको एक ही सूत्रमें बाँधकर उन्हें सन्मार्गपर लगा देनेके उद्देश्यसे ही वेदोक्त देवताओंको ईश्वरत्व देकर भिन्न-भिन्न पुराणोंमें भिन्न-भिन्न देवताओंसे भिन्न-भिन्न भाँतिसे सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका क्रम बतलाया गया है। जीवोंपर महर्षि वेदव्यासजीकी परम कृपा है। उन्होंने सबके लिये परम धाम पहुँचनेका मार्ग सरल कर दिया। पुराणोंमें यह सिद्ध कर दिया है कि जो मनुष्य भगवान्‌के जिस नाम-रूपका उपासक हो, वह उसीकी सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण गुणाधार, विज्ञानानन्दधन परमात्मा माने और उसीकी सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशके रूपमें प्रकट होकर क्रिया करनेवाला समझे। उपासकके लिये ऐसा ही समझना परम लाभदायक और सर्वोत्तम है कि मेरे उपास्यदेवसे बढ़कर और कोई है ही नहीं। सब उसीका लीला-विस्तार या विभूति है।

वास्तवमें बात भी यही है। एक निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दधन परब्रह्म परमात्मा ही हैं। उन्हींके किसी अंशमें प्रकृति है। उस प्रकृतिको ही लोग माया, शक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। वह माया बड़ी विचित्र है। उसे कोई अनादि, अनन्त कहते हैं तो कोई अनादि, सान्त मानते हैं; कोई उस ब्रह्मकी शक्तिको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं तो कोई भिन्न बतलाते हैं; कोई सत् कहते हैं तो कोई असत् प्रतिपादित करते हैं। वस्तुतः मायाके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाता है, माया उससे विलक्षण है। क्योंकि उसे न असत् ही कहा जा सकता है, न सत् ही। असत् तो इसलिये नहीं कह सकते कि उसीका विकृत रूप वह संसार (चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न हो) प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं कह सकते कि जड़ दृश्य सर्वथा परिवर्तनशील होनेसे उसकी नित्य सम स्थिति नहीं देखी जाती एवं ज्ञान होनेके उत्तरकालमें उसका या उसके सम्बन्धका अत्यन्त अभाव भी बतलाया गया है

और ज्ञानीका भाव ही असली भाव है। इसीलिये उसको अनिर्वचनीय समझना चाहिये।

विज्ञानानन्दधन परमात्माके वेदोंमें दो स्वरूप माने गये हैं। प्रकृतिरहित ब्रह्मको निर्गुण ब्रह्म कहा गया है और जिस अंशमें प्रकृति या त्रिगुणमयी माया है उस प्रकृतिसहित ब्रह्मके अंशको सगुण कहते हैं। सगुण ब्रह्मके भी दो भेद माने गये हैं—एक निराकार, दूसरा साकार। उस निराकार, सगुण ब्रह्मको ही महेश्वर, परमेश्वर आदि नामोंसे पुकारा जाता है। वही सर्वव्यापी, निराकार, सृष्टिकर्ता परमेश्वर स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनों रूपोंमें प्रकट होकर सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार किया करते हैं। इसप्रकार पाँच रूपोंमें विभक्त-से हुए परात्पर, परब्रह्म परमात्माको ही शिवके उपासक सदाशिव, विष्णुके उपासक महाविष्णु और शक्तिके उपासक महाशक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण आदि सभीके सम्बन्धमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं। शिवके उपासक नित्य विज्ञानानन्दधन निर्गुण ब्रह्मको सदाशिव, सर्वव्यापी, निराकार; सगुण ब्रह्मको महेश्वर; सृष्टिके उत्पन्न करनेवालेको ब्रह्मा, पालनकर्ताको विष्णु और संहारकर्ताको रुद्र कहते हैं और इन पाँचोंको ही शिवका रूप बतलाते हैं। भगवान् विष्णुके प्रति भगवान् महेश्वर कहते हैं—

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुरुद्राख्यया ।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽपि सदा हरे ॥
यथा च ज्योतिषः सङ्गाज्जलादेः स्पर्शता न वै ।
तथा ममागुणस्यापि संयोगाद्बन्धनं न हि ॥
यथैकस्या मृदो भेदो नास्ति पात्रे न वस्तुतः ।
यथैकस्य समुद्रस्य विकारो नैव वस्तुतः ॥
एवं ज्ञात्वा भवद्भ्यां च न दृश्यं भेदकारणम् ।
वस्तुतः सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम ॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति ।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत् ॥
तथापीह मदीयं वै शिवरूपं सनातनम् ।
मूलभूतं सदा प्रोक्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ॥

(शिव० ज्ञान० ४. ४१-४४, ४८—५१)

‘हे विष्णो ! हे हरे !! मैं स्वभावसे निर्गुण होता हुआ भी संसारकी रचना, स्थिति एवं प्रलयके लिये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन तीन रूपोंमें विभक्त हो रहा हूँ। जिस-

प्रकार जलादिके संसर्गसे अर्थात् उनमें प्रतिविम्ब पड़नेसे सूर्य आदि ज्योतिषोंमें कोई स्पर्शता नहीं आती उसी प्रकार मुझ निर्गुणका भी गुणोंके संयोगसे बन्धन नहीं होता। मिट्टीके नाना प्रकारके पात्रोंमें केवल नाम और आकारका ही भेद है, वास्तविक भेद नहीं है—एक मिट्टी ही है। समुद्रके भी फेन, बुदबुदे, तरङ्गादि विकार लक्षित होते हैं; वस्तुतः समुद्र एक ही है। यह समझकर आपलोगोंको भेदका कोई कारण न देखना चाहिये। वस्तुतः मात्र दृश्य पदार्थ शिवरूप ही हैं, ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ये ब्रह्माजी और आगे चलकर मेरी जो रुद्रमूर्ति उत्पन्न होगी—ये सब एकरूप ही हैं, इनमें कोई भेद नहीं है। भेद ही बन्धनका कारण है। फिर भी यहाँ मेरा यह शिवरूप नित्य, सनातन एवं सबका मूल-स्वरूप कहा गया है। यही सत्य, ज्ञान एवं अनन्तरूप गुणातीत परब्रह्म है।’

साक्षात् महेश्वरके इन वचनोंसे उनका ‘सत्यं ज्ञान-मनन्तं ब्रह्म’—नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुणरूप, सर्वव्यापी, सगुण निराकाररूप और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप—ये पाँचों सिद्ध होते हैं। यही सदाशिव पञ्चवक्त्र हैं।

इसी प्रकार श्रीविष्णुके उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्मको महाविष्णु, सर्वव्यापी, निराकार; सगुण ब्रह्मको वासुदेव तथा सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रूपोंको क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। महर्षि पराशर भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने ।
सद्रैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च ।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।
अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगतोऽस्य जगन्मयः ।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् ।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥

(विष्णु० १।२।१—५)

‘निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा एकरूप, सर्वविजयी, हरि, हिरण्यगर्भ, शङ्कर, वासुदेव आदि नामोंसे प्रसिद्ध संसार-तारक, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति तथा

लयके कारण, एक और अनेक स्वरूपवाले, स्थूल, सूक्ष्म—उभयात्मक व्यक्ताव्यक्तस्वरूप एवं मुक्तिदाता भगवान् विष्णुको मेरा बारंबार नमस्कार है। इस संसारकी उत्पत्ति, पालन एवं विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशके भी मूलकारण, जगन्मय उस सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव परमात्माको मेरा नमस्कार है। विश्वाधार, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सर्वभूतोंके अन्दर रहनेवाले, अच्युत पुरुषोत्तमभगवान्को मेरा प्रणाम है।’

यहाँ अव्यक्तसे निर्विकार, नित्य, शुद्ध परमात्माका निर्गुण स्वरूप समझना चाहिये। व्यक्तसे सगुण स्वरूप समझना चाहिये। उस सगुणके भी स्थूल और सूक्ष्म—दो स्वरूप बतलाये गये हैं। यहाँ सूक्ष्मसे सर्वव्यापी भगवान् वासुदेवको समझना चाहिये, जो कि ब्रह्मा, विष्णु और महेशके भी मूल-कारण हैं एवं सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म पुरुषोत्तम नामसे बतलाये गये हैं। तथा स्थूलस्वरूप यहाँ संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेशके वाचक हैं जो कि हिरण्यगर्भ, हरि और शङ्करके नामसे कहे गये हैं। इन्हीं सब वचनोंसे श्रीविष्णु-भगवान्के उपर्युक्त पाँचों रूप सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार भगवती महाशक्तिकी स्तुति करते हुए देवगण कहते हैं—

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमयी नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

(मार्कण्डेय० ९१।१०)

‘ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपसे सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाश करनेवाली हे सनातनी शक्ति ! हे गुणाश्रये ! हे गुणमयी नारायणीदेवी ! तुम्हें नमस्कार हो।’

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

एवमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
एवमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥
कार्यार्थे सगुणा एवं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।
परब्रह्मस्वरूपा एवं सत्या नित्या सनातनी ॥
तेजः स्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा ।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परास्परा ॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥

(ब्रह्मवै० प्रकृति० २।६६।७—११)

‘तुम्हीं विश्वजननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टिकी उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें विराजमान रहती हो और स्वेच्छासे त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो; परमतेजःस्वरूप और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके हेतु शरीर धारण करती हो; तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं परात्पर हो। तुम सर्वबीजस्वरूप, सर्वपूज्या एवं आश्रय-रहित हो। तुम सर्वश, सर्वप्रकारसे मङ्गल करनेवाली एवं सर्वमङ्गलोंका भी मङ्गल हो।’

ऊपरके उद्धरणसे महाशक्तिका विज्ञानानन्दधन स्वरूप-के साथ ही सर्वव्यापी सगुण ब्रह्म एवं सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाशके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवके रूपमें होना सिद्ध है।

इसी प्रकार ब्रह्माजीके बारेमें कहा गया है—

जय देवातिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे ।
अव्यक्तजन्मरूपाय कारणाय महात्मने ॥
एतत्त्रिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक ।
रजोगुणगुणाविष्ट सृजसीदं चराचरम् ॥
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहारसेऽखिलम् ।
X X X X

(देवीपुराण ८३।१३—१६)

‘आपकी जय हो। उत्तम बुद्धिवाले, अव्यक्त-व्यक्तरूप, त्रिगुणमय, सबके कारण, विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहारकारक ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप तीनों भावोंसे भावित होनेवाले महात्मा देवाधिदेव ब्रह्मदेवके लिये नमस्कार है। हे महाभाग! आप रजोगुणसे आविष्ट होकर हिरण्यगर्भरूप-से चराचर संसारको उत्पन्न करते हैं तथा सत्त्वगुणयुक्त होकर विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं तमोमूर्ति धारण करके रुद्ररूपसे सम्पूर्ण संसारका संहार करते हैं।’

उपर्युक्त वचनोंसे ब्रह्माजीके भी परात्पर ब्रह्मसहित पाँचों रूपोंका होना सिद्ध होता है। अव्यक्तसे तो परात्पर पर-ब्रह्मस्वरूप एवं कारणसे सर्वव्यापी, निराकार सगुणरूप तथा उत्पत्ति, पालन और संहारकारक होनेसे ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप होना सिद्ध होता है।

इसी तरह भगवान् श्रीरामके प्रति भगवान् शिवके वाक्य हैं—

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे ।
यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ॥
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम् ।
एक एव त्रिधा रूपं गृह्णासि कुहकान्वितः ॥
सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्नभामयः ।
प्रलये जगतः साक्षादहं शार्वाख्यतां गतः ॥

(पद्म० पाता० २८।६—८)

‘आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकलाके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूपसे विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं। आप अरूप होते हुए भी अखिल विश्वके परम कारण हैं। आप एक होते हुए भी माया-संवलित होकर त्रिविध रूप धारण करते हैं। संसारकी सृष्टिके समय आप ब्रह्मारूपसे प्रकट होते हैं, पालनके समय स्वप्नभामय विष्णुरूपसे व्यक्त होते हैं और प्रलयके समय मुह्य शर्व (रुद्र) का रूप धारण कर लेते हैं।’

श्रीरामचरितमानसमें भी भगवान् शङ्करने पार्वतीजीसे भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें कहा है—

अगुण अरूप अलस अज जोई । भगत प्रेमबस-सगुन सो होई ॥
जो गुनरहित सगुन सो कैसे । जल हिम-उपल बिलग नहि जैसे ॥
राम सच्चिदानंद दिनेश । नहि तहँ मोहनशा-रुक्मलेश ॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानंद परेश पुराना ॥

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्म परमात्मा होनेका विविध ग्रन्थोंमें उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कथा है कि एक महासर्गके आदिमें भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य अङ्गोंसे भगवान् नारायण और भगवान् शिव तथा अन्यान्य सब देवी-देवता प्रादुर्भूत हुए। वहाँ श्रीशिवजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम् ।
विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम् ॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वज्ञं विश्वजं परम् ।
फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम् ॥

(ब्रह्मवै० १।३।२५-२६)

‘आप विश्वरूप हैं, विश्वके स्वामी हैं, नहीं नहीं, विश्वके स्वामियोंके भी स्वामी हैं, विश्वके कारण हैं, कारणके भी कारण हैं, विश्वके आधार हैं, विश्वस्त हैं, विश्वरक्षक हैं, विश्वका संहार करनेवाले हैं और नाना रूपोंसे विश्वमें

आविर्भूत होते हैं। आप फलोंके बीज हैं, फलोंके आधार हैं, फलस्वरूप हैं और फलदाता हैं।*

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने श्रीमुखसे कहा है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।

शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥

(१४।२७)

गतिर्भूता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।

प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥

(९।१८)

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥

(९।१९)

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

(७।७)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।

असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

(१०।३)

‘हे अर्जुन ! उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्य-धर्मका एवं अखण्ड एकरस आनन्दका मैं ही आश्रय हूँ; अर्थात् उपर्युक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वत-धर्म तथा ऐकान्तिक सुख—यह सब मैं ही हूँ तथा प्राप्त होने योग्य, भरण-पोषण करनेवाला, सबका स्वामी, शुभाशुभका देखनेवाला, सबका वासस्थान, शरण लेनेयोग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला, उत्पत्ति-प्रलयरूप, सबका आधार, निधान * और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ तथा वर्षाको आकर्षण करता हूँ और बरसाता हूँ एवं हे अर्जुन ! मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत् और असत्—सब कुछ मैं ही हूँ।

‘हे धनञ्जय ! मेरेसे सिवा किञ्चिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मेरेमें गुं था हुआ है। जो मुझको अजन्मा (वास्तवमें जन्मरहित) अनादि† तथा लोकोंका महान् ईश्वर तत्त्वसे जानता है, वह

* प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत सूक्ष्मरूपसे जिसमें लय होते हैं, उसका नाम ‘निधान’ है।

† अनादि उसको कहते हैं जो आदिरहित होवे और सबका कारण होवे।

मनुष्योंमें ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।’

ऊपरके इन अवतरणोंसे यह सिद्ध हो गया कि भगवान् श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण, तत्त्वतः एक ही हैं। इस विवेचनपर दृष्टि डालकर विचार करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि सभी उपासक एक सत्य, विज्ञानानन्दधन परमात्माको मानकर सबे सिद्धान्तपर ही चल रहे हैं। नाम-रूपका भेद है, परन्तु वस्तु-तत्त्वमें कोई भेद नहीं। सबका लक्ष्यार्थ एक ही है। ईश्वरको इसप्रकार सर्वोपरि, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दधन समझकर शास्त्र और आचार्योंके बतलाये हुए मार्गके अनुसार किसी भी नाम-रूपसे उस परमात्माको लक्ष्य करके जो उपासना की जाती है, वह उस एक ही परमात्माकी उपासना है।

विज्ञानानन्दधन, सर्वव्यापी परमात्मा शिवके उपर्युक्त तत्त्वको न जाननेके कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान् विष्णुकी निन्दा करते हैं और कुछ वैष्णव भगवान् शिवकी निन्दा करते हैं। कोई-कोई यदि निन्दा और द्वेष नहीं भी करते हैं तो प्रायः उदासीन-से तो रहते ही हैं। परन्तु इस-प्रकारका व्यवहार वस्तुतः ज्ञानरहित समझा जाता है। यदि यह कहा जाय कि ऐसा न करनेसे एकनिष्ठ अनन्य उपासनामें दोष आता है, तो वह ठीक नहीं है। जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पतिको ही इष्ट मानकर उसकी आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई, पतिके माता-पिता, गुरु-जन तथा अतिथि-अभ्यागत और पतिके अन्यान्य सम्बन्धी और प्रेमी बन्धुओंकी भी पतिकी आज्ञानुसार पतिकी प्रसन्नताके लिये यथोचित आदरभावसे मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पातिव्रत-धर्मसे जरा भी न गिरकर उलटें शोभा और यशको प्राप्त होती है। वास्तवमें दोष पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष-बुद्धिमें है अथवा व्यभिचार और शत्रुतामें है। यथोचित वैध-सेवा तो कर्तव्य है। इसी प्रकार परमात्माके किसी एक नाम-रूपको अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्यभावसे भक्ति करते हुए ही अन्यान्य देवोंकी अपने इष्टदेवकी आज्ञानुसार उसी स्वामीकी प्रीतिके लिये श्रद्धा और आदरके साथ यथायोग्य सेवा करनी चाहिये। उपर्युक्त अवतरणोंके अनुसार जब एक नित्य विज्ञानानन्दधन ब्रह्म ही हैं तथा वास्तवमें उनसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है, तब किसी एक नाम-रूपसे द्वेष या उसकी निन्दा, तिरस्कार

और उपेक्षा करना उस परब्रह्मसे ही वैसा करना है। कहीं भी श्रीशिव या श्रीविष्णुने वा श्रीब्रह्माने एक दूसरेकी न तो निन्दा आदि की है और न निन्दा आदि करनेके लिये किसी-से कहा ही है; बल्कि निन्दा आदिका निषेध और तीनोंको एक माननेकी प्रशंसा की है। शिवपुराणमें कहा गया है—

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ।
परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रताः ॥
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते ।
नानेव तेषामधिक्यमैश्वर्यञ्चातिरिच्यते ॥
अयं परस्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः ।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः ॥

(शिवपुराण)

‘ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरेको धारण करते हैं, एक दूसरेके द्वारा वृद्धिगत होते हैं और एक दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णुकी और कहीं महादेवकी। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरेकी अपेक्षा इसप्रकार अधिक कहा है मानों वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है वे अगले जन्ममें राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।’

स्वयं भगवान् शिव श्रीविष्णुभगवान्से कहते हैं—

मद्दर्शने फलं यद्वै तदेव तव दर्शने ।
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ब्रह्मम् ॥
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम ।

(शिव० ज्ञान० ४ । ६१-६२)

‘मेरे दर्शनका जो फल है वही आपके दर्शनका है। आप मेरे हृदयमें निवास करते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। जो हम दोनोंमें भेद नहीं समझता, वही मुझे मान्य है।’

भगवान् श्रीराम भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम् ।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः ॥
ये भेदं विदधत्यद्वा आवयोरैकरूपयोः ।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम् ॥

ये त्वद्भक्ताः सदासंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः ।

मद्भक्ता अपि भूयस्या भवत्या तव नतिङ्कराः ॥

(पञ्च० पाता० २८ । २१—२३)

‘आप (शङ्कर) मेरे हृदयमें रहते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अन्दर भेद समझते हैं। हम दोनों एकरूप हैं, जो मनुष्य हमारे अन्दर भेद-भावना करते हैं वे हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकोंमें यातना सहते हैं। जो आपके भक्त हैं वे धार्मिक पुरुष सदा ही मेरे भक्त रहे हैं और जो मेरे भक्त हैं वे प्रगाढ़ भक्तिसे आपको भी प्रणाम करते हैं।’

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयास्त्वं मदीयात्मनः परः ।

ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः ॥

पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।

कृत्वा लिङ्गं सकृत्पृथग् वसेत्कल्पायुतं दिवि ।

प्रजावान् भूमिमान् विद्वान् पुत्रवान्धववांस्तथा ॥

ज्ञानवान्मुक्तिमान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत् ।

शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्थजति यो नरः ।

कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः ॥

(ब्रह्मवैवर्त० प्र० ६ । ३१, ३२, ४५, ४७)

‘मुझे आपसे बढ़कर कोई प्यारा नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मासे भी अधिक प्रिय हैं। जो पापी, अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, वे जवतक चन्द्र और सूर्यका अस्तित्व रहेगा तवतक कालसूत्रमें (नरकोंमें) पचते रहेंगे। जो शिवलिङ्गका निर्माण कर एक बार भी उसकी पूजा कर लेता है, वह दस हजार कल्पतक स्वर्गमें निवास करता है। शिवलिङ्गके अर्चनसे मनुष्यको प्रजा, भूमि, विद्या, पुत्र, बान्धव, श्रेष्ठता, ज्ञान एवं मुक्ति सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य ‘शिव’ शब्दका उच्चारण कर शरीर छोड़ता है वह करोड़ों जन्मोंके सञ्चित पापोंसे छूटकर मुक्ति-को प्राप्त हो जाता है।’

भगवान् विष्णु श्रीमद्भागवत (४ । ७ । ५४) में दक्षप्रजापतिके प्रति कहते हैं—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिद्माम् ।

सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥

‘हे विप्र ! हम तीनों एकरूप हैं और समस्त भूतोंकी आत्मा हैं, हमारे अन्दर जो भेद-भावना नहीं करता, निःसन्देह वह शान्ति (मोक्ष) को प्राप्त होता है ।’

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामने कहा है—

शंकर-प्रिय मम द्रोही, शिव-द्रोही मम दास ।
ते नर करहि कलप मरि, घोर नरकमहँ बास ॥
औरो एक गुप्त मत, सबहि कहैं कर जोरि ।
शंकर-भजन बिना नर, भगति न पावहि मोरि ॥

ऐसी अवस्थामें जो मनुष्य दूसरेके इष्टदेवकी निन्दा या अपमान करता है, वह वास्तवमें अपने ही इष्टदेवका अपमान या निन्दा करता है। परमात्माकी प्राप्तिके पूर्व-कालमें परमात्माका यथार्थ रूप न जाननेके कारण भक्त अपनी समझके अनुसार अपने उपास्यदेवका जो स्वरूप कल्पित करता है, वास्तवमें उपास्यदेवका स्वरूप उससे अत्यन्त विलक्षण है; तथापि उसकी अपनी बुद्धि, भावना तथा रुचिके अनुसार की हुई सच्ची और श्रद्धायुक्त उपासना-को परमात्मा सर्वथा सर्वांशमें स्वीकार करते हैं। क्योंकि ईश्वर-प्राप्तिके पूर्व ईश्वरका यथार्थ स्वरूप किसीके भी चिन्तनमें नहीं आ सकता। अतएव परमात्माके किसी भी नाम-रूपकी निष्काम-भावसे उपासना करनेवाला पुरुष शीघ्र ही उस नित्य विज्ञानानन्दधन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। हाँ, सकाम-भावसे उपासना करनेवालेको विलम्ब हो सकता है। तथापि सकाम-भावसे उपासना करनेवाला भी श्रेष्ठ और उदार ही माना गया है (गीता ७।१८), क्योंकि अन्तमें वह भी ईश्वरको ही प्राप्त होता है। ‘मद्भक्ता यान्ति मामपि’ (गीता ७।२३)।

‘शिव’ शब्द नित्य, विज्ञानानन्दधन परमात्माका वाचक है। यह उच्चारणमें बहुत ही सरल, अत्यन्त मधुर और स्वाभाविक ही शान्तिप्रद है। ‘शिव’ शब्दकी उत्पत्ति ‘वश कान्तौ’ धातुसे हुई है, जिसका तात्पर्य यह है कि जिसको सब चाहते हैं उसका नाम ‘शिव’ है। सब चाहते हैं अखण्ड आनन्दको। अतएव ‘शिव’ शब्दका अर्थ आनन्द हुआ। जहाँ आनन्द है वहीं शान्ति है और परम आनन्दको ही परम मङ्गल और परम कल्याण कहते हैं, अतएव ‘शिव’ शब्दका अर्थ परम मङ्गल, परम कल्याण समझना चाहिये। इस आनन्ददाता, परम कल्याणरूप शिवको ही शङ्कर कहते हैं। ‘शं’ आनन्दको कहते हैं और ‘कर’ से करनेवाला

समझा जाता है, अतएव जो आनन्द करता है वही ‘शङ्कर’ है। ये सब लक्षण उस नित्य विज्ञानानन्दधन परम ब्रह्मके ही हैं।

इसप्रकार रहस्य समझकर शिवकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उपासना करनेसे उनकी कृपासे उनका तत्त्व समझमें आ जाता है। जो पुरुष शिव-तत्त्वको जान लेता है उसके लिये फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता। शिव-तत्त्वको हिमालयतनया भगवती पार्वती यथार्थरूपसे जानती थीं, इसीलिये छद्मवेशी स्वयं शिवके बहकानेसे भी वे अपने सिद्धान्तसे तिलमात्र भी नहीं टलीं। उमा-शिवका यह संवाद बहुत ही उपदेशप्रद और रोचक है।

शिव तत्त्वैकनिष्ठ पार्वती शिवप्राप्तिके लिये घोर तप करने लगीं। माता मेनकाने स्नेहकातरा होकर उ (वत्से!) मा (ऐसा तप न करो) कहा, इससे उनका नाम ‘उमा’ हो गया। उन्होंने सूखे पत्ते भी खाने छोड़ दिये, तब उनका ‘अपर्णा’ नाम पड़ा। उनकी कठोर तपस्याको देख-सुनकर परम आश्चर्यान्वित हो ऋषिगण भी कहने लगे कि ‘अहो, इसको धन्य है, इसकी तपस्याके सामने दूसरोंकी तपस्या कुछ भी नहीं है।’ पार्वतीकी इस तपस्याको देखनेके लिये स्वयं भगवान् शिव जटाधारी वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें तपो-भूमिमें आये और पार्वतीके द्वारा फल-पुष्पादिसे पूजित होकर उसके तपका उद्देश्य शिवसे विवाह करना है, यह जानकर कहने लगे।

‘हे देवि ! इतनी देर बातचीत करनेसे तुमसे मेरी मित्रता हो गयी है। मित्रताके नाते मैं तुमसे कहता हूँ, तुमने बड़ी भूल की है। तुम्हारा शिवके साथ विवाह करनेका सङ्कल्प सर्वथा अनुचित है। तुम सोनेको छोड़कर काँच चाह रही हो, चन्दन त्यागकर कीचड़ पीतना चाहती हो। हाथी छोड़कर बैलपर मन चलाती हो। गङ्गाजल परित्याग-कर कुँएका जल पीनेकी इच्छा करती हो। सूर्यका प्रकाश छोड़कर खद्योतको और रेशमी वस्त्र त्याग कर चमड़ा पहनना चाहती हो। तुम्हारा यह कार्य तो देवताओंकी सन्निधिका त्याग कर असुरोंका साथ करनेके समान है। उत्तमोत्तम देवोंको छोड़कर शङ्करपर अनुराग करना सर्वथा लोकविरुद्ध है।

जरा सोचो तो सही, कहाँ तुम्हारा कुसुम-सुकुमार शरीर और त्रिभुवनकमनीय सौन्दर्य और कहाँ जटाधारी, चिताभस्मलेपनकारी, श्मशानविहारी, त्रिनेत्र भूतपति

महादेव ! कहाँ तुम्हारे घरके देवतालोग और कहाँ शिवके पार्षद भूत-प्रेत ! कहाँ तुम्हारे पिताके घर बजनेवाले सुन्दर बाजोंकी ध्वनि और कहाँ उस महादेवके डमरू, सिंगी और गाल बजानेकी ध्वनि ! न महादेवके माँ-बापका पता है, न जातिका ! दरिद्रता इतनी कि पहननेको कपड़ातक नहीं है। दिगम्बर रहते हैं, बैलकी सवारी करते हैं और बाधका चमड़ा ओढ़े रहते हैं ! न उनमें विद्या है और न शौचाचार ही है ! सदा अकेले रहनेवाले, उत्कट विरागी, रुण्डमालाधारी महादेवके साथ रहकर तुम क्या सुख पाओगी ?

पार्वती और अधिक शिव-निन्दा न सह सकी। वे तमककर बोली—‘बस, बस, बस, रहने दो, मैं और अधिक सुनना नहीं चाहती। मालूम होता है, तुम शिवके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते। इसीसे यों मिथ्या प्रलाप कर रहे हो। तुम किसी धूर्त ब्रह्मचारीके रूपमें यहाँ आये हो। शिव वस्तुतः निर्गुण है, करुणावश ही वे सगुण होते हैं। उन सगुण और निर्गुण—उभयात्मक शिवकी जाति कहाँसे होगी ! जो सबके आदि हैं, उनके माता-पिता कौन होंगे और उनकी उम्रका ही क्या परिमाण बाँधा जा सकता है ! सृष्टि उनसे उत्पन्न होती है, अतएव उनकी शक्तिका पता कौन लगा सकता है ! वही अनादि, अनन्त, नित्य, निर्विकार, अज, अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणाधार, सर्वज्ञ, सर्वोपरि, सनातनदेव हैं। तुम कहते हो, महादेव विद्याहीन हैं। अरे, ये सारी विद्याएँ आयी कहाँसे हैं ! वेद जिनके निःश्वास हैं उन्हें तुम विद्याहीन कहते हो ! छिः छिः !! तुम मुझे शिवको छोड़कर किसी अन्य देवताका वरण करनेको कहते हो। अरे, इन देवताओंको, जिन्हें तुम बड़ा समझते हो, देवत्व प्राप्त ही कहाँसे हुआ ! यह उन भोलेनाथकी ही कृपाका तो फल है। इन्द्रादि देवगण तो उनके दरवाजेपर ही स्तुति-प्रार्थना करते रहते हैं और बिना उनके गणोंकी आज्ञाके अन्दर घुसनेका साहस नहीं कर सकते। तुम उन्हें अमङ्गलवश कहते हो ! अरे, उनका ‘शिव’—यह मङ्गलमय नाम जिनके मुखमें निरन्तर रहता है, उनके दर्शनमात्रसे सारी अपवित्र वस्तुएँ भी पवित्र हो जाती हैं, फिर भला स्वयं उनकी तो बात ही क्या ! जिस चिता-भस्मकी तुम निन्दा करते हो, नृत्यके अन्तमें जब वह उनके श्रीअङ्गोंसे झड़ती है उस समय देवतागण उसे अपने मस्तकोंपर धारण करनेको

लालायित होते हैं। बस, मैंने समझ लिया, तुम उनके तत्त्वको बिल्कुल नहीं जानते। जो मनुष्य इसप्रकार उनके दुर्गम तत्त्वको बिना जाने उनकी निन्दा करते हैं, उनके जन्म-जन्मान्तरोंके सञ्चित किये हुए पुण्य विलीन हो जाते हैं। तुम-जैसे शिव-निन्दकका सत्कार करनेसे पाप लगता है। शिव-निन्दकको देखकर भी मनुष्यको सचैल स्नान करना चाहिये, तभी वह शुद्ध होता है। बस, अब मैं यहाँसे जाती हूँ। कहीं ऐसा न हो कि यह दुष्ट फिरसे शिवकी निन्दा प्रारम्भकर मेरे कानोंको अपवित्र करे। शिवकी निन्दा करनेवालेको तो पाप लगता ही है, उसे सुननेवाला भी पापका भागी होता है।’ यह कहकर उमा वहाँसे चल दी। ज्यों ही वे वहाँसे जाने लगीं, वटु-वेश-धारी शङ्करने उन्हें रोक लिया। वे अधिक देरतक पार्वतीसे छिपे न रह सके, पार्वती जिस रूपका ध्यान करती थीं उसी रूपमें उनके सामने प्रकट हो गये और बोले—‘मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो !’

पार्वतीकी इच्छा पूर्ण हुई, उन्हें साक्षात् शिवके दर्शन हुए। दर्शन ही नहीं, कुछ कालमें शिवने पार्वतीका पाणिग्रहण कर लिया।

जो पुरुष उन त्रिनेत्र, व्याघ्राम्बरधारी, सदाशिव परमात्माको निर्गुण, निराकार एवं सगुण, निराकार समझकर उनकी सगुण, साकार दिव्य मूर्तिकी उपासना करता है उसीकी उपासना सच्ची और सर्वाङ्गपूर्ण है। इस समग्रतामें जितना अंश कम होता है, उतनी ही उपासनाकी सर्वाङ्गपूर्णतामें कमी है और उतना ही वह शिव-तत्त्वसे अनभिज्ञ है।

महेश्वरकी लीलाएँ अपरंपार हैं। वे दया करके जिनको अपनी लीलाएँ और लीलाओंका रहस्य जनाते हैं, वही जान सकते हैं। उनकी कृपाके बिना तो उनकी विचित्र लीलाओंको देख-सुनकर देवी, देवता एवं मुनियोंको भी भ्रम हो जाया करता है, फिर साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है ! परन्तु वास्तवमें शिवजी महाराज हैं बड़े ही आशुतोष ! उपासना करनेवालोंपर बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। रहस्यको जानकर निष्काम-प्रेमभावसे भजने-वालोंपर प्रसन्न होते हैं, इसमें तो कहना ही क्या है ! सकाम-भावसे, अपना मतलब गाँठनेके लिये जो अज्ञानपूर्वक उपासना करते हैं उनपर भी आप रीझ जाते हैं। भोले भण्डारी मुँहमाँगा वरदान देनेमें कुछ भी आगा-पीछा नहीं सोचते।

जरा-सी भक्ति करनेवालेपर ही आपके हृदयका दयासमुद्र उमड़ पड़ता है। इस रहस्यको समझनेवाले आपको व्यङ्ग्यसे 'भोलानाथ' कहा करते हैं। इस विषयमें गोसाईं तुलसीदास-जी महाराजकी कल्पना बहुत ही सुन्दर है। वे कहते हैं—

बावरो रावरो नाह भवानी !

दानि बड़ो दिन दंत दये बिनु, बेद बड़ाई मानो ॥ टंक ॥

निज घरकी बर बात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी ।

शिवकी दई सम्पदा देखत, श्रीशारदा सिहानी ॥

जिनके भाल लिखां लिपि मेरो, सुखकी नहीं निसानी ।

तिन रंकनको नाक सँवारत, हौं आयो नकवानी ॥

दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ।

यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भौख भली मैं जानी ॥

प्रेम-प्रशंसा बिनय ब्यंगजुत, सुनि बिधिकी बर बानी ।

तुलसी मुदित महेश मनहिं मन, जगतमातु मुसकानी ॥

ऐसे भोलानाथ भगवान् शङ्करको जो प्रेमसे नहीं भजते, वास्तवमें ये शिवके तत्त्वको जानते नहीं हैं, अतएव उनका मनुष्य-जन्म लेना ही व्यर्थ है। इससे अधिक उनके लिये और क्या कहा जाय। अतएव प्रिय पाठकगणो! आपलोगोंसे मेरा नम्र निवेदन है, यदि आपलोग उचित समझें तो नीचे लिखे साधनोंको समझकर यथाशक्ति उन्हें काममें लानेकी चेष्टा करें—

(क) पवित्र और एकान्त स्थानमें गीता अध्याय ६, श्लोक १० से १४ के अनुसार—

(१) भगवान् शङ्करके प्रेम, रहस्य, गुण और प्रभावकी अमृतमयी कथाओंका, उनके तत्त्वको जाननेवाले भक्तोंद्वारा श्रयण करके, मनन करना एवं स्वयं भी सत्-शास्त्रोंको पढ़कर उनका रहस्य समझनेके लिये मनन करना और उनके अनुसार आचरण करनेके लिये प्राणपर्यन्त कोशिश करना।

(२) भगवान् शिवकी शान्तमूर्तिका पूजन-वन्दनादि श्रद्धा और प्रेमसे नित्य करना।

(३) भगवान् शङ्करमें अनन्य प्रेम होनेके लिये विनय-भावसे रुदन करते हुए गद्गद वाणीद्वारा स्तुति और प्रार्थना करना।

(४) 'ॐ नमः शिवाय'—इस मन्त्रका मनके द्वारा या श्वासोंके द्वारा प्रेमभावसे गुप्त जप करना।

(५) उपर्युक्त रहस्यको समझकर प्रभावसहित यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका श्रद्धा-भक्तिसहित निष्कामभावसे ध्यान करना।

(ख) व्यवहारकालमें—

(१) स्वार्थको त्यागकर प्रेमपूर्वक सबके साथ सद्व्यवहार करना।

(२) भगवान् शिवमें प्रेम होनेके लिये उनकी आज्ञाके अनुसार फलासक्तिको त्यागकर शास्त्रानुकूल यथाशक्ति यज्ञ, दान, तप, सेवा एवं वर्णाश्रमके अनुसार जीविकाके कर्मोंको करना।

(३) सुख, दुःख एवं सुख-दुःखकारक पदार्थोंकी प्राप्ति और विनाशको शङ्करकी इच्छासे हुआ समझकर उनमें पद-पदपर भगवान् सदाशिवकी दयाका दर्शन करना।

(४) रहस्य और प्रभावको समझकर श्रद्धा और निष्काम प्रेमभावसे यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका निरन्तर ध्यान होनेके लिये चलते-फिरते, उठते-बैठते, उस शिवके नाम-जपका अभ्यास सदा-सर्वदा करना।

(५) दुर्गुण और दुराचारको त्यागकर सद्गुण और सदाचारके उपार्जनके लिये हर समय कोशिश करते रहना।

उपर्युक्त साधनोंको मनुष्य कटिबद्ध होकर ज्यों-ज्यों करता जाता है, त्यों-ही-त्यों उसके अन्तःकरणकी पवित्रता, रहस्य और प्रभावका अनुभव तथा अतिशय श्रद्धा एवं विशुद्ध प्रेमकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है। इसलिये कटिबद्ध होकर उपर्युक्त साधनोंको करनेके लिये प्राणपर्यन्त कोशिश करनी चाहिये। इन सब साधनोंमें भगवान् सदाशिवका प्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करना सबसे बढ़कर है। अतएव नाना प्रकारके कर्मोंके बाहुल्यके कारण उसके चिन्तनमें एक क्षणकी भी बाधा न आवे, इसके लिये विशेष सावधान रहना चाहिये। यदि अनन्य प्रेमकी प्रगाढ़ताके कारण शास्त्रानुकूल कर्मोंके करनेमें कहीं कमी आती हो तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु प्रेममें बाधा नहीं पड़नी

चाहिये। क्योंकि जहाँ अनन्य प्रेम है वहाँ भगवान्‌का चिन्तन (ध्यान) तो निरन्तर होता ही है। और उस ध्यानके प्रभावसे पद-पदपर भगवान्‌की दयाका अनुभव करता हुआ मनुष्य भगवान् सदाशिवके तत्त्वको यथार्थरूपसे समझकर

कृतकृत्य हो जाता है, अर्थात् परम पदको प्राप्त हो जाता है। अतएव भगवान् शिवके प्रेम और प्रभावको समझकर उनके स्वरूपका निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर चिन्तन होनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

परात्पर शिव

(लेखक—श्रीगौरीशंकरजी गोयन्दका)

नोदयति यन्न नश्यति निर्वाति न निर्धृतिं प्रयच्छति च। ज्ञानक्रियास्वभावं तत्तेजः शाम्भवं जयति ॥



क परमतत्त्व है, जो सर्वत्र अनुस्यूत है, सब कारणोंका कारण है। सबका अधिपति, सबका रचयिता, पालयिता एवं संहर्ता है। जिसके भयसे सूर्य प्रतिदिन यथा-समय उदित होता है और यथा-समय अस्त। वायु अथिरत बहता है, चन्द्र प्रतिपक्ष घटता-बढ़ता है, ऋतुएँ यथावसर आविर्भूत होती हैं, अपने वैभवसे प्रकृतिकी छविको नयनाभिराम बनाती हैं। कभी अवनितल, तरु, निकुञ्ज और लताएँ पल्लवों और पुष्पोंसे आच्छन्न होकर मनोशताकी मूर्ति बन जाती हैं, तो कभी उनमें एक पीला पत्ता भी नहीं दिखायी देता। कभी नाना पक्षियोंके कल-रवसे कोने-कोनेमें चहल-पहल मच जाती है, तो कभी कहीं एक शब्द भी नहीं सुनायी देता। कभी काले-काले बादलोंकी घटाएँ, विद्युलताओंका परिनर्तन, मेघका तर्जन-गर्जन अपना दृश्य उपस्थित करते हैं, तो कभी लूकी लपटें, हेमन्तका शीतजन्य हाहाकार और शिशिरका सीत्कार आदि अपना अभिनय दिखाते हैं। यह सब उसी सुचतुर शिल्पीकी कुशलता ही तो है, उसी मायावीकी मायाका विलास ही तो है। वसन्तके बाद सदा ग्रीष्मका ही आविर्भाव होता है। उसके पश्चात् वर्षा, इसी क्रमसे अन्यान्य ऋतुएँ आती हैं और जाती हैं। इसमें तनिक भी परिवर्तन या विपर्यय नहीं होता। ये सब बातें बिना सञ्चालकके सम्भव नहीं हैं।

जो दिग्वसन होते हुए भी भक्तोंको अतुल ऐश्वर्य देने-वाले हैं, इमशानवासी होते हुए भी त्रैलोक्याधिपति हैं, योगिराजाधिराज होते हुए भी अर्द्धनारीश्वर हैं, सदा कान्तासे आलिङ्गित रहते हुए भी मदनजित् हैं, अज होते हुए भी अनेक रूपोंसे आविर्भूत हैं, गुणहीन होते हुए भी

गुणाध्यक्ष हैं, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त हैं, सबके कारण होते हुए भी अकारण हैं, अनन्त रत्नराशियोंके अधिपति होते हुए भी भस्मविभूषण हैं। वही इस जगत्के सञ्चालक हैं, वही परात्पर शिव हैं। विपत्ति पड़नेपर सब देवता जिनकी शरणमें जाते हैं; ब्रह्मा, विष्णु आदि देव भी घोर तपस्या कर जिनके कृपाभाजन हुए हैं। जिन्होंने अन्धक, शुक्र, दुन्दुभि, महिष, त्रिपुर, रावण, निवातकवच आदि अनेकोंको अतुल ऐश्वर्य देकर फिर उनका संहार किया। जिन्होंने मयभीत देवताओंकी प्रार्थनापर हालाहल गरलको अमृतके समान पी लिया। चन्द्र, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं; स्वर्ग शिर है, आकाश नाभि है, दिशाएँ कान हैं; जिनके मुखसे ब्राह्मण और ब्रह्मा पैदा हुए, इन्द्र, विष्णु और क्षत्रिय जिनके हाथोंसे उत्पन्न हुए, जिनके ऊरुदेशसे वैश्य और पाँवसे शूद्र पैदा हुए। अनेक देव, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, राक्षस आदि जिनकी कृपासे अनन्त ऐश्वर्यके अधिपति हुए हैं; जो ज्ञान, तप, ऐश्वर्य, लीला आदिसे जगत्के कल्याणमें रत हैं; जिनके समान न कोई दाता है, न तपस्वी है, न ज्ञानी है, न त्यागी है, न वक्ता है, न उपदेष्टा है, न ऐश्वर्यशाली है। जो सदा सब वस्तुओंसे परिपूर्ण हैं; जिनके आवास कैलासका विशाल वर्णन करते-करते शेष, शारदा आदि भी थकित रह जाते हैं; जो श्रुतियोंमें महादेव, देवदेव, महेश्वर, महेशान, आशु-तोष आदि अनेक नामोंसे पुकारे गये हैं, वही परात्पर हैं, परमकारण हैं।

उनके अनन्त नाम हैं और हैं अपरिमित विभूतियाँ। कोई उनकी शिव, महादेव कहकर उपासना करता है तो कोई ब्रह्म, नारायण, पुरुष, कर्ता, कर्म, अर्हन्, बुद्ध आदि विभिन्न नामोंसे उन्हींकी उपासना करते हैं। महाकवि कालिदासने बहुत ठीक कहा है—

बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः ।

स्वयमेव निपतन्त्योद्या जाह्नवीया इवार्णवे ॥

निश्चय ही ये विभिन्न मार्ग उसी एक परात्परको विषय करते हैं। नद-नदी-नाले, इनमेंसे भले ही कोई पूर्वकी ओर बहे और कोई पश्चिमकी ओर, अन्तमें वे सब समुद्रमें ही जा गिरते हैं।

महिम्नःस्तोत्रं पुष्पदन्ताचार्यने भी इसी भावका सङ्केत किया है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति

प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।

रुचीनां वैचिष्यादजुकुटिलनानापथजुषां

नृणांमेको गम्यस्त्वमसि पथसामर्णव इव ॥

‘स्मार्त, सांख्य, योग, पशुपतमत, पाञ्चरात्रमत आदि विभिन्न शास्त्रोंमें ‘यह श्रेष्ठ है, यह हितकर है’, इत्यादि अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सीधे-टेढ़े अनेक मार्गोंका अवलम्बन करनेवाले लोगोंके एक आप ही गम्य हैं, जैसे कि नद, नदी, नाले, झरनों, स्रोतोंके जलका एकमात्र आश्रय सागर है।’

कहाँ अतुल महिमावाले परात्पर शिव, कहाँ मैं अत्यल्पज्ञ प्राणी ! उनकी परात्परता तथा सर्वकारणताके विषयमें लिखनेकी भला मेरी क्या सामर्थ्य ? तथापि अपनी लेखनीको उनके गुणगानसे पवित्र करनेके लिये कुछ निवेदन करनेका साहस करता हूँ। सम्भव है, इससे पाठकोंका यत्किञ्चित् मनोविनोद हो जाय।

जैसे नृपतिके छत्र, चँवर आदि असाधारण अभिज्ञान हैं, उसी प्रकार जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार करना परात्परका असाधारण अभिज्ञान है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि
जानन्ति यत्प्रयस्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्म ।
(तैत्ति०)

‘जिससे हिरण्यगर्भसे लेकर कीटपर्यन्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न होकर प्राण धारण करते हैं, अन्तमें जिसमें विलीन हो जाते हैं, उसको जाननेकी इच्छा करो, वही ब्रह्म है।’

द्यावाभूमौ जनयन् देव एकः ।

(देव० ३।३)

‘घौ और पृथिवी (ब्रह्माण्डके दो कटाहों) की सृष्टि,

स्थिति और लय करनेवाला स्वयंप्रकाश एक है।’ इत्यादि अनेक श्रुतियों एवं ‘जन्माद्यस्य यतः’ (ब्र० १।१।२) ‘जिससे इस जगत्के जन्म आदि होते हैं, वह ब्रह्म है’—इत्यादि सूत्रोंसे उपर्युक्त कथनकी पुष्टि होती है।

यहाँपर देखना यह है कि उक्त लक्षण शिवजीमें घटता है या नहीं ? श्वेताश्वतर-उपनिषद्में एक गाथा आयी है। उसका आशय यह है कि कतिपय ब्रह्मवादी ऋषियोंको ‘यतो वा’ श्रुतिके बलसे जगत्के जन्म आदिका कारण, सबका अधिष्ठाता ब्रह्म है—ऐसा निश्चय हुआ; किन्तु वह ब्रह्म अमुक देवतारूप है, इसप्रकार विशेष ज्ञान उन्हें नहीं था। अतः उन्हें संशय हुआ कि समस्त संसारकी रचना, पालन तथा संहार करनेवाला वह ब्रह्म किरूप है। उक्त संशयको ‘किं कारणं ब्रह्म’ (श्वे० १।१) इत्यादि प्रकरणसे दिखाकर जगत्के हेतु काल, स्वभाव, नियति, महाभूत, पुरुष हैं या इनका संयोग है, अथवा यह बिना किसी कारणके बना है, इसप्रकारकी आशङ्काओंका—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा

भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् ।

संयोग एषां न त्वात्मभावात्

—इत्यादिसे उपर्युक्त संशयकी सिद्धिके लिये निराकरण करते हुए ब्रह्म किरूप है, इस विषयमें स्वयं निर्णय करनेमें असमर्थ हो ऋषियोंने सोचा कि ब्रह्मविद्या देनेमें अतिनिपुण तथा उदार परमशक्तिस्वरूप अम्बिका देवीके प्रसादसे ही इस विषयका निर्णय हो सकेगा। वे ऐसा निश्चय कर समाधिस्थ हो गये। उन्हें परमात्माकी शक्तिके दर्शन हुए। उसके प्रसादसे उन्हें पूर्वोक्त काल, स्वभाव आदि कारणोंके कारण, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, सत्-अभिन्न चित्, चित्-अभिन्न सत्, आनन्दाम्बुनिधि परमात्माका विशेषरूपसे साक्षात्कार हुआ। अनन्तर—

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः

क्षरात्मानावीशते देव एकः ।

(श्वे० १।१०)

—इत्यादि उपसंहारसे विस्तारपूर्वक यह निर्णय किया है कि ‘यतो वा’ श्रुतिमें जिसे ब्रह्म-नामसे जगत्के जन्म आदिका कारण कहा गया है, वह शिव ही हैं। कूर्मपुराणमें इसी गाथाका विस्तृत वर्णन इस तरह किया गया है—

समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः ।
वितेनिरे बहून् वादानात्मविज्ञानसंश्रयान् ॥
किमस्य जगतो मूलमात्मा वास्माकमेव हि ।
कोऽपि स्यात्सर्वभूतानां हेतुरीश्वर एव च ॥
इत्येवं मन्यमानानां ध्यानकर्मावलम्बिनाम् ।
आचिरासीन्महादेवी गौरी गिरिवरात्मजा ॥

—इत्यादिसे लेकर

निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या
तदन्तरे देवमशेषहेतुम् ।
पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं
रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम् ॥

—एतत्पर्यन्त श्वेताश्वतर-उपनिषद्की गाथाका ही विशद रूपसे उल्लेख है। इसका भी सारांश यही है कि शिवजी सबके कारण हैं, परात्पर हैं, पुराणपुरुष हैं, इत्यादि।

अथर्वशिखर-उपनिषद् २ में कहा है—

देवा इ वै स्वर्गं लोकमगमन्ते देवा रुद्रमपृच्छन् को भवानिति । सोऽप्रवीदद्भमेकः प्रथममासं वर्तामि भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति ।

‘देवतालोग महाकैलासमें गये, उन्होंने रुद्रसे पूछा—‘आप कौन हैं?’ रुद्रभगवान् बोले—‘मैं एक (प्रत्यग्रूप) हूँ। मैं सृष्टिके पूर्णमें था, इस समय हूँ और भविष्यमें रहूँगा—मैं तीनों कालोंसे अपरिच्छिन्न हूँ। मुझ सर्वेश्वरसे अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है।’

अथर्वशिखा-उपनिषद्में भी सनत्कुमार आदिने अथर्वण ऋषिसे प्रश्न किया है—

भगवन् ! किमादौ प्रयुक्तं ध्यानं ध्यायितव्यं किं तद्धानं को वा ध्याता कश्च ध्येयः ।

वे क्रमशः तीन प्रश्नोंका उत्तर देकर कहते हैं—

ध्यायीतिशानं प्रध्यायितव्यम् । सर्वमिदं ब्रह्मविष्णु-रुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते.....कारणं तु ध्येयः सर्वेश्वर्य-सम्पन्नः । सर्वेश्वरः शम्भुराकाशमध्ये ।

यहाँपर ‘ध्यायीतिशानम्’ से शिवजीको ध्यानयोग्य कहा। तदनन्तर शिवसे इतर सम्पूर्ण देवताओंकी उपेक्षा कर शिवजीका ही ध्यान करना चाहिये, यह दिखानेके लिये

कहा है। सब देवताओंमें प्रधान देवता ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारमें नियुक्त हैं; किन्तु वे भी भूत और इन्द्रिय आदिके समान परमेश्वरसे उत्पन्न होते हैं। सब कारणोंके कारण शिवजी कदापि उत्पत्ति, विनाश आदि विकारोंको प्राप्त नहीं होते। इस-प्रकार सब देवताओंसे शिवजीकी विशिष्टताका निश्चय कर, उपपत्तिपूर्वक—वे सबके ध्येय हैं, ऐसा उपसंहार किया है।

श्वेताश्वतर-उपनिषद्में—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं
स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु ॥

(श्वे० ४।१२)

‘जो देवताओंकी उत्पत्ति करनेवाला है, ऐश्वर्य देने-वाला है, जगत्में सबसे अधिक (श्रेष्ठ) है, उस महर्षि रुद्रने पैदा होते हुए हिरण्यगर्भको देखा, वह हमको अच्छी बुद्धिसे युक्त करे।’

यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रि-

नं सन्न चासच्छिव एव केवलः ।

तदक्षरं

तत्सवितुर्वरेण्यं

प्रशा च तस्मात् प्रसूता पुराणी ॥

(श्वे० ४।१८)

‘सृष्टिके आदिकालमें जब केवल अन्धकार ही अन्धकार था; न दिन था, न रात्रि थी, न सत् (कारण) था, न असत् (कार्य) था, केवल एक निर्विकार शिव ही विद्यमान थे। वही अक्षर हैं, वही सबके जनक परमेश्वरका प्रार्थनीय स्वरूप हैं, उन्हींसे शास्त्रविद्या प्रवृत्त हुई है।’

इत्यादि अनेक उपनिषद्-खण्डोंसे स्पष्टतया प्रतीत होता है कि भगवान् शङ्कर अनादि हैं, अनन्त हैं, सबके कारण हैं, परम उपास्य हैं, आनन्दमय हैं, सच्चित् हैं, उनके बराबर दूसरा कोई है ही नहीं। उन्होंने सबसे प्रथम उत्पन्न हुए जीव हिरण्यगर्भको पैदा होते देखा। वे देश तथा कालके परिच्छेदसे शून्य हैं।

श्वेताश्वतर-उपनिषद्को देखनेसे ज्ञात होता है कि वह आदिसे लेकर अन्ततक सारा-का-सारा शिवपरक ही है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः ।

(श्वे० ३।२)

‘केवल एक रुद्र ही तो हैं, इसलिये ब्रह्मवादीलोग दूसरेके मुखका अवलोकन नहीं करते थे—

‘विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः’

(श्वे० ३।४)

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं

तं देवतानां परमं च दैवतम् ।

पतिं पत्नीनां परमं परस्ताद्

विदाम देवं भुवनेशमीदृयम् ॥

(श्वे० ६।७)

‘जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारण ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसे भी उत्कृष्ट, इन्द्र आदि देवताओंके भी देवता, जगत्के पति हिरण्यगर्भ आदिके भी अधिपति, पर-अक्षरसे भी पर, भुवनोंके परमेश्वर देवको हम जानते हैं।’

मायिनं तु महेश्वरम् ।

—इत्यादि अनेक वचन उपर्युक्त कथनका समर्थन करते हैं। श्वेताश्वतरकी भाँति अथर्वशिर-उपनिषद् भी पूर्णतया शिवपरक ही है।

यस्सुक्ष्मं तद्वैद्युतम्, यद्वैद्युतं तत् परं ब्रह्म, यत् परं ब्रह्म स एकः, य एकः स रुद्रः, यो रुद्रः स ईशानः, य ईशानः स भगवान् महेश्वरः । (अथर्वशिर० ३)

—इत्यादिसे शिवजीकी ज्योतिःस्वरूपता, अद्वितीयता, परब्रह्मता, परात्परताका स्पष्ट वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार श्वेताश्वतरके ‘तमेव विदित्वा तिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय’ आदि अनेक मन्त्रखण्डोंके अविकलरूपसे मिलने तथा ‘विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुग्रो विश्वतोबाहुस्त विश्वतस्पात्’ आदि कितने ही मन्त्रोंका अर्थसाम्य होनेसे पुराणपुरुषके विराटरूपका प्रतिपादन करनेवाला पुरुषसूक्त भी शिवपरक ही है। रुद्रपरक होनेके कारण ही रुद्राभिषेकमें उसे स्थान मिला है। लिङ्गपुराणमें शिवजीकी पूजाकी विधिमें कहा गया है—

ज्येष्ठसाम्नां त्रयेणैव तथा देवव्रतैरपि ।

रथन्तरेण पुण्येन सूक्तेन पुरुषेण च ॥

‘तीन ज्येष्ठसाम (सामके भेद), तीन देवव्रत, पुण्य-रथन्तर (सामभेद) तथा पुण्यपुरुषसूक्तसे शिवजीका

अभिषेक करे।’ इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पुरुषसूक्त शिवपरक ही है। इसके अतिरिक्त लिङ्गपुराणमें, पुरुषसूक्तमें प्रतिपादित पुराणपुरुषकी महिमा शिवजीकी ही महिमा है, शिवजी ही पुराणपुरुष हैं, यह स्पष्टतया कहा गया है—

द्यौर्मूर्द्धा हि विभोस्तस्य खं नाभिः परमेष्ठिनः ।

सोमसूर्याग्नयो नेत्रं दिशः श्रोत्रे महात्मनः ॥

वक्त्राद्वै ब्राह्मणा जाता ब्रह्मा च भगवान् विभुः ।

इन्द्रविष्णू भुजाभ्यां तु क्षत्रियाश्च महात्मनः ॥

वैश्याश्चौरुप्रदेशात्तु शूद्राः पादात् पिनाकिनः ।

इत्यादि

अन्य पुराणोंमें भी शिवजीकी परात्परता, सर्वकारणताके वचनोंकी जहाँ-तहाँ भरमार है। शिवपुराणमें इसका वर्णन देखिये—

त्रयस्ते कारणात्मानो जाताः साक्षात् महेश्वरात् ।

चराचरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यन्तहेतवः ॥

पित्रा नियमिताः पूर्वं त्रयोऽपि त्रिषु कर्मसु ।

ब्रह्मा सर्गे हरिस्त्राणे रुद्रः संहरणे पुनः ॥

इत्यादि

यहाँपर महेश्वरपदवाच्य शिवजीको ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रका जनक और शासक साफ ही कहा गया है।

महाभारतमें देखिये—

यत्र भूतपतिः सृष्ट्वा सर्वलोकान् सनातनः ।

उपास्यते तिग्मतेजा मृतो भूतैः सहस्रशः ॥

(भीष्मपर्व)

—इत्यादि मैनाकके वर्णनके प्रकरणमें भूतपति शिवजीको सब लोकोंका स्रष्टा, सब प्राणियोंका उपास्यदेव तथा पुराण-पुरुष कहा गया है।

शान्तिपर्वमें—

ईश्वरश्चेतनः कर्त्ता पुरुषः कारणं शिवः ।

विष्णुर्ब्रह्मा शशी सूर्यः शक्रो देवाश्च सान्वयाः ॥

सृज्यते प्रस्यते चैव तमोभूतमिदं जगत् ।

अप्रज्ञातं जगत्सर्वं तदा ह्येको महेश्वरः ॥

—इत्यादिसे ईश्वर शिवजीको सर्वकारण एवं सर्वदेवमय बतलाया गया है और सृष्टिके पूर्व केवल उन्हींकी स्थितिका निर्देश किया गया है।

अनुशासनपर्वमें—

स एष भगवानीशः सर्वतत्त्वादिरव्ययः ।

सर्वतत्त्वविधानज्ञः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥

सोऽसृजदक्षिणादङ्गाद् ब्रह्माणं लोकसम्भवम् ।

वामपाद्वात्तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः ॥

युगान्ते चैव सग्रासे रुद्रं प्रभुरथासृजत् ।

यहाँपर भी ब्रह्मा, विष्णु तथा संहारकर्ता रुद्र आदि-की सृष्टि करनेवाले शिवजी सर्वादि, सर्वप्रधान, सब तत्त्वोंको जाननेवाले हैं—ऐसा स्पष्टतया उल्लेख है ।

महाभारतमें शिवजी सर्वप्रधान, देवाधिदेव, परिपूर्ण-तम, परात्पर एवं क्या ज्ञानमें, क्या दानमें, क्या सम्मानमें सबसे अधिक हैं—इस बातकी द्योतक अनेकानेक आख्यायिकाएँ हैं ।

जाम्बवतीके अत्यन्त अनुनय-विनय करनेपर भगवान् कृष्ण उसकी पुत्र-प्राप्तिके लिये शिवजीकी आराधना करनेको कैलासपर गये । ऋषिप्रवर उपमन्युके सुत्तारविन्दसे उनकी अतुल महिमाको सुनकर अति मुग्ध हुए और ऋषिके उपदेशसे विधिपूर्वक भगवान् शिवजीकी आराधनामें संलग्न हुए । एक मासतक फल खाकर, दूसरे मासमें पानी पीकर और तीन मास केवल वायुका भक्षण करके, ऊपरको हाथ उठाये, एक पैरसे खड़े रहे । उनकी इस उग्र तपस्यासे भगवान् प्रसन्न हुए । जगदम्बा पार्यतीसमेत उनको दर्शन देकर मनोवाञ्छित आठ वरदान दिये । उस समय उनके चारों ओर सभी देवगण वेदमन्त्रोंसे उनका जयजयकार मना रहे थे । श्रीकृष्णभगवान्ने—

त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः ।

धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वबोमुखः ॥

त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।

सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।

सर्वतःश्रुतिर्माँलोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ॥

(महा० अनु० ४५ । ३९६-९७, ४०७)

—इत्यादि वाक्योंसे उनकी स्तुति की और उनके साक्षात्कारसे अपनेको कृतकृत्य माना । द्रोणपर्वमें अभिमन्युके शोकसे कातर अर्जुनकी प्रतिज्ञाको पूर्ण कराने तथा पाशुपतास्त्रकी प्राप्तिके लिये अर्जुनको लेकर भगवान् कृष्ण कैलासमें देवाधिदेव महादेवके समीप गये और—

नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ।

नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥

सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ।

भक्तानुकम्पिने नित्यं सिद्धयतां नो वरः प्रभो ॥

महा० द्रोण० ८० । ६३-६४)

—इत्यादि अनेक प्रकारकी स्तुतिसे उन्हें प्रसन्न कर कृतकृत्य हुए । इसप्रकारकी अनेक गाथाएँ हैं । कहाँतक कहें, कृष्ण-भगवान्का प्रधान अस्त्र सुदर्शन भी शिवजीका प्रसादरूप ही है । यह गाथा शिवपुराण आदिमें विस्तारसे कही गयी है । किसी समय दैत्य बड़े बलवान् हो गये थे । उन्होंने देवताओंको बड़ा कष्ट दिया । देवताओंने विष्णुभगवान्की शरण ली । विष्णुभगवान्ने उन्हें आश्वासन देकर देवदेव शिवजीकी बड़ी आराधना की । अन्तमें नियम किया कि भगवान् शिवजीके सहस्रनामका पाठ किया जाय और प्रत्येक नामपर भगवान्को मानसरोवरमें पैदा हुए सुन्दर कमल चढ़ाये जायें । इसप्रकार स्तुति करनेसे भगवान् शिव अवश्य प्रसन्न होंगे । विष्णुकी दृढभक्तिको जाननेके लिये शिवजीने एक दिन चढ़ानेके लिये प्रस्तुत हजार कमलोंमेंसे एक कमल उठा लिया । जब विष्णुको श्रात हुआ कि एक कमल कम है, तो उन्होंने सारी पृथिवी खोज डाली, किन्तु उन्हें कमल नहीं मिला । तब अन्तमें उन्होंने अपनी आँख कमलके बदलेमें चढ़ा दी । भगवान् शिव दृढभक्त जानकर विष्णुपर रीझ गये और साक्षात् दर्शन देकर बोले—‘हे हरे ! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ, तुम मेरे दृढभक्त हो; जो इच्छा हो, माँगो । तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है ।’

प्रसन्नवदन विष्णुने हाथ जोड़कर कहा—‘आप अन्तर्यामी हैं, सबके अभिलाषको जानते हैं । यद्यपि आपसे कुछ छिपा नहीं है, तथापि आपकी आज्ञानुसार कहता हूँ, हे देवदेव ! दैत्योंने सारे संसारको पीड़ित कर रक्खा है । उनका संहार करनेमें मेरे अस्त्र-शस्त्र समर्थ नहीं हैं । मैं क्या करूँ ? आपको छोड़ मेरा कोई दूसरा आसरा नहीं है ।’ यह सुनकर भगवान् देवाधिदेव शिवने तेजपुञ्जरूप अपना सुदर्शनचक्र विष्णुके अर्पण कर दिया । उसे पाकर उन्होंने अनायास दैत्योंको मार डाला और देवोंकी रक्षा की, इत्यादि ।

हरिवंशमें शिवजीकी स्तुति करते हुए श्रीकृष्णभगवान्ने कहा है—

अहं ब्रह्मा कपिलोऽथाप्यनन्तः

पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः ।

त्वत्तः सर्वे देवदेव प्रसूता

एवं सर्वेश कारणात्मा त्वमोज्ज्वः ॥

इस वचनसे भी भगवान् शिवकी सर्वदेवमयता, सबका आधिपत्य, देवाधिदेवता, सर्वकारणता और परात्परता साफ झलकती है।

वायुसंहितामें शिवजीका उपक्रम करके कहा है—

सोमं ससर्ज यज्ञार्थं सोमाद् द्यौः समवतंत ।

धरा वह्निश्च सूर्यश्च वज्रपाणिः शर्चापतिः ॥

विष्णुनारायणः श्रोमान् सर्वं सोममयं जगत् ।

इससे भी स्पष्टतया प्रतीत होता है कि पुरुषसूक्तमें उक्त महाविषाट् पुराणपुरुष शिवजी ही हैं। वही जगत्के मूल हैं। उन्हींसे चराचर जगत्की सृष्टि हुई है।

पराशरपुराणके निम्नलिखित वचनोंसे भलीभाँति विदित होता है कि श्रुतियों, स्मृतियों एवं पुराणोंमें जहाँ कहीं अन्यान्य देवताओंको जगत्का कारण बतलाया गया है—उसका पर्यवसान शङ्करजीमें ही है। उसमें साफ कहा गया है—साम्बशिव ही सबके कारण हैं। सत्य, ज्ञान, अनन्त वही हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि उनके अधीन हैं, उनकी आज्ञा तथा कृपा बिना कुछ नहीं कर सकते।

सर्वकारणमीशानः साम्बः सत्यादिलक्षणः ।

न विष्णुर्न विरञ्चिश्च न रुद्रो नापरः पुमान् ॥

श्रुतयश्च पुराणानि भारतादीनि सत्तम ।

शिवमेव सदा साम्बं हृदि कृत्वा ब्रुवन्ति हि ॥

इत्यादि ।

परमेश्वर सबसे परे हैं, यह बात स्मृतिमें भी डिण्डिम-घोषसे स्पष्ट कही गयी है—

सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीषिणः ।

मनसश्चाप्यहङ्कारः अहङ्कारान्महान् परः ॥

महत्तः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।

पुरुषाद् भगवान् प्राणः तस्य सर्वमिदं जगत् ॥

प्राणात् परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः ।

ईश्वरात् परं किञ्चित् ॥

‘विद्वान् लोग कहते हैं कि सारी द्रष्टियोंसे मन पर है, मनसे अहङ्कार पर है, अहङ्कारसे महत्त्व पर है, महत्त्वसे प्रकृति पर है प्रकृतिसे पुरुष पर है, पुरुषसे भगवान् प्राण श्रेष्ठ है, प्राणका ही यह सारा जगत् है। प्राणसे व्योम परतर है

ज्योतिःस्वरूप ईश्वर (शिव) व्योमसे भी परे है; ईश्वरसे कुछ भी पर नहीं है,—वह परात्पर है। श्रुति भी कहती है—

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्

अर्थात् ‘जिससे परे और कुछ भी नहीं है।’

पूर्व-उद्धृत श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहासके वचनोंपर गौर करते हुए किसीको भी शिवजीके देवाधिदेव, सर्वकारण, परात्पर, परमोपास्य, अनादि, अनन्त, परमैश्वर्य-शाली, सबके शोक-सन्तापको हरनेवाले ज्योतिरूप होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं हो सकता। लेकिन अनेक स्थलोंमें व्यक्ष, शूलपाणि, रुद्र, नीललोहित, महेश आदि नामोंका उल्लेख करते हुए उन्हें कहींपर विष्णुभगवान्से उत्पन्न और कहींपर ब्रह्मासे उत्पन्न माना गया है। यहाँपर लोगोंको सन्देह हो जाता है कि बात क्या है, कहींपर उसी नामवाले-व्यक्तिकी ऐसी महिमा गायी गयी है और कहींपर उन्हें जन्म तथा संहारका कर्तामात्र माना गया है ? जैसे—

तस्य ललाटात् व्यक्षः शूलपाणिः पुरुषोऽजायत ।

अर्थात् ‘विष्णुके ललाटसे शूलको हाथमें लिये हुए एक त्रिनेत्र पुरुष पैदा हुए।’

एतौ द्वौ पुरुषश्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजौ मम ।

अर्थात् ‘ये दो पुरुषश्रेष्ठ (ब्रह्मा और रुद्र) मेरे (विष्णु-के) प्रसाद और क्रोधसे पैदा हुए हैं।’

प्रादुरासीत्प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः ।

अर्थात् ‘ब्रह्माकी गोदमें कुमार नीललोहित (शिव) पैदा हुए।’

इत्यादि श्रुति और स्मृतिमें नारायण (विष्णु) तथा ब्रह्मासे जो उनकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया है, वह अन्यान्य कल्पोंमें संहाररुद्ररूपसे नारायणसे उनके आविर्भाव मात्रका कथन है। उसका कारण भी भगवान् परात्पर शिवका वरदान ही है। जैसे कूर्मपुराणमें उन्होंने कहा है—

अहं च भवतो वक्त्रात् कल्पान्ते घोररूपधृक् ।

शूलपाणिर्भविष्यामि क्रोधजस्तव पुत्रकः ॥

इत्यादि

ब्रह्मासे आविर्भूत होनेमें भी कारण भगवान्का अनुग्रह ही है। वायुपुराणमें कहा है—

निर्दिष्टः परमेशेन महेशो नीललोहितः ।

पुत्रो भूत्वानुगृह्णाति ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽनुजः ॥

इत्यादि

महाभारतमें भी कहा है—

अनादिनिघ्नो देवश्चैतन्यादिसमन्वितः ।

ज्ञानानि च वशे यस्य तारकादीन्यशेषतः ॥

अणिमादिगुणोपेतमैश्वर्यं न च कृत्रिमम् ।

सृष्ट्यर्थं ब्रह्मणः पुत्रो ललाटादुत्थितः प्रभुः ॥

अर्थात् 'अनादि, अनन्त एवं चैतन्य आदिसे युक्त देव (परमशिव), जिनके वशमें तारक आदि समस्त ज्ञान हैं और जिनका अणिमा आदिसे युक्त ऐश्वर्य कृत्रिम नहीं है, वे प्रभु (परमशिव) सृष्टिके लिये ब्रह्माके ललाटसे पुत्ररूपसे उदित हुए ।'

भगवान् परात्पर शिव कितने दयालु हैं कि परम उत्कृष्ट होते हुए भी अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये स्वेच्छासे उनके नियम्य बन जाते हैं । महान् लोगोंका यह स्वभाव ही है, अपनी मान-मर्यादाको कम करके भी अपने आश्रितकी मान-मर्यादाको बढ़ाना ।

परमपुरुषार्थकी इच्छा करनेवाले जनोंको परमशिवकी उपासना अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि उनके समान दूसरा कोई नहीं है—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः ।

नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे ॥

(महा० अनु० ४६ । ११)

शिव-कल्याणरूप

लोकत्रयस्थितिलयोदयकेलिकारः

कार्येण यो हरिहरद्विगुणस्त्वमेति ।

देवः स विश्वजनवाङ्मनसातिवृत्त-

शक्तिः शिवं दिशतु शश्वदनश्वरं वः ॥



रात्पर सच्चिदानन्द परमेश्वर शिव एक हैं; वे विश्वातीत हैं और विश्वमय भी हैं । वे गुणातीत हैं और गुणमय भी हैं । वे एक ही हैं और अनेक रूप बने हुए हैं । वे जब अपने विस्ताररहित अद्वितीय स्वरूपमें स्थित रहते हैं तब मानो यह विविध विलासमयी असंख्य रूपोंवाली विश्वरूप जादूके खेलकी जननी प्रकृतिदेवी उनमें विलीन रहती है । यही शक्तिकी शक्तिमान्में अक्रिय, अव्यक्त स्थिति है—शक्ति है, परन्तु वह दीखती नहीं है और बाह्य क्रियारहित है । पुनः जब वही शिव अपनी शक्तिको व्यक्त और क्रियान्विता करते हैं, तब वही क्रीडामयी शक्ति—प्रकृति शिवकी ही विविध रूपोंमें प्रकटकर उनके खेलका सामान उत्पन्न करती है । एक ही देव विविध रूप धारणकर अपने-आप ही अपने-आपसे खेलते हैं । यही विश्वका विकास है । यहाँ शिव-शक्ति दोनोंकी लीला चलती है । शक्ति क्रियान्विता होकर शक्तिमान्के साथ तब प्रत्यक्ष-प्रकट विलास करती है । यही परात्पर परमेश्वर शिव, महाशिव, महाविष्णु, महाशक्ति, गोकुल-विहारी श्रीकृष्ण, साकेताधिपति श्रीराम आदि नाम-रूपोंसे प्रसिद्ध हैं । सच्चिदानन्द विशानानन्दधन परमात्मा

शिव ही भिन्न-भिन्न सर्ग और महासर्गोंमें भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे अपनी परात्परताको प्रकट करते हैं । जहाँ जटाजूटधारी श्रीशिवरूप सत्त्वके आदि-उत्पन्नकर्ता और सर्वपूज्य महेश्वर उपास्य हैं तथा अन्य नाम-रूप-धारी उपासक हैं, वहाँ वे शिव ही परात्पर महाशिव हैं तथा अन्यान्य देव उनसे अभिन्न होनेपर भी उन्हींके स्वरूपसे प्रकट, नाना रूपों और नामोंसे प्रसिद्ध होते हुए सत्त्व-रज-तम गुणोंको लेकर आवश्यकतानुसार कार्य करते हैं । उस महासर्गमें भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डोंमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता भिन्न-भिन्न होनेपर भी सब उन एक ही परात्पर महाशिवके उपासक हैं । इसी प्रकार किसी सर्ग या महासर्गमें महाविष्णुरूप परात्पर होते हैं और अन्य देवता उनसे प्रकट होते हैं; किसीमें ब्रह्मारूप, किसीमें महाशक्ति-रूप, किसीमें श्रीकृष्णरूप और किसीमें श्रीरामरूप परात्पर ब्रह्म होते हैं तथा अन्यान्य स्वरूप उन्हींसे प्रकट होकर उनकी उपासनाकी और उनके अधीन सृष्टि, पालन और विनाशकी विविध लीलाएँ करते हैं । इस तरह एक ही प्रभु भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रकट होकर उपास्य-उपासक, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा, शासक-शासितरूपसे लीला करते हैं । हाँ, एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, परात्परसे प्रकट त्रिदेव उनसे अभिन्न और पूर्ण शक्तियुक्त होते हुए भी तीनों भिन्न-भिन्न प्रकारकी क्रिया करते हैं तथा तीनोंकी शक्तियाँ भी अपने-अपने कार्यके अनुसार सीमित ही देखी जाती हैं ।

यह नहीं समझना चाहिये कि परात्पर महाशिव परब्रह्मके ये सब भिन्न-भिन्न रूप काल्पनिक हैं। सभी रूप भगवान्‌के होनेके कारण नित्य, शुद्ध और दिव्य हैं। प्रकृतिके द्वारा रचे जानेवाले विश्वप्रपञ्चके विनाश होनेपर भी इनका विनाश नहीं होता, क्योंकि ये प्रकृतिकी सत्तासे परे स्वयं प्रभु परमात्माके स्वरूप हैं। जैसे परमात्माका निराकार रूप प्रकृतिसे परे नित्य निर्विकार है, इसी प्रकार उनके ये साकार रूप भी प्रकृतिसे परे नित्य निर्विकार हैं। अन्तर इतना ही है कि निराकार रूप कभी शक्तिको अपने अन्दर इस कदर विलीन किये रहता है कि उसके अस्तित्वका ही पता नहीं लगता और कभी निराकार रहते हुए ही शक्तिको विकासोन्मुखी करके गुणसम्पन्न बन जाता है। परन्तु साकार रूपमें शक्ति सदा ही जागृत, विकसित और सेवामें नियुक्त रहती है। हाँ, कभी-कभी वह भी अन्तःपुरकी महारानीके सदृश बाहर सर्वथा अप्रकट-सी रहकर प्रभुके साथ क्रीडारत रहती है और कभी बाह्य लीलामें प्रकट हो जाती है, यही नित्यधामकी लीला और अवतार-लीलाका तारतम्य है।

नित्यधामके शिव-शक्ति, विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सावित्री, कृष्ण-राधा और राम-सीता ही समय-समयपर अवताररूपसे प्रकट होकर बाह्य लीला करते हैं। ये सब एक ही परम-तत्त्वके अनेक नित्य और दिव्य स्वरूप हैं। अवतारोंमें, कभी तो परात्पर स्वयं अवतार लेते हैं और कभी सीमित शक्तिसे कार्य करनेवाले त्रिदेवोंमेंसे किसीका अवतार होता है। जहाँ दण्ड और मोहकी लीला होती है, वहाँ दण्डित एवं मोहित होनेवाले अवतारोंको त्रिदेवोंमेंसे, तथा दण्डदाता और मोह उत्पन्न करनेवालेको परात्पर प्रभु समझना चाहिये, जैसे नृसिंहरूपको शरभरूपके द्वारा दण्ड दिया जाना और शिवरूपका विष्णुद्वारा मोहिनी-रूपसे मोहित होना आदि। कहीं-कहीं परात्परके साक्षात् अवतारमें भी ऐसी लीला देखी जाती है परन्तु उसका गूढ़ रहस्य कुछ और ही होता है जो उनकी कृपासे ही समझमें आ सकता है।

आज श्रीशिवस्वरूपकी कुछ चर्चा करके लेखनीको पवित्र करना है। कुछ लोगोंकी अनुभवहीन समझ, सूझ या कल्पना है कि भगवान्‌ शिवका साकार स्वरूप कल्पना-मात्र है। उनके एकमुख, पञ्चमुख, सर्पधारण, नीलकण्ठ, मदनदहन, वृषभ, कार्तिकेय, गणेश आदि सभी काल्पनिक रूपक हैं। इसलिये इन्हें वास्तविक न मानकर रूपक ही

समझना चाहिये। परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। ये सभी सत्य हैं। जिन भक्तोंने भगवान्‌ श्रीशिवकी कृपासे इन रूपों और लीलाओंको देखा है या जो आज भी भगवत्कृपासे प्राप्त साधन-बलसे देख सकते हैं अथवा देखते हैं तथा साक्षात् अनुभव करते हैं, वे ही इस तत्त्वको समझते हैं और उन्हींकी बातका वस्तुतः कुछ मूल्य है। उल्लूको सूर्य नहीं दीखता—इससे जैसे सूर्यके अस्तित्वमें कोई बाधा नहीं आती, इसी प्रकार किसीके मानने-न-माननेसे भगवत्स्वरूपका कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं। हाँ, माननेवाला लाभ उठाता है और न माननेवाला हानि। एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि भगवान्‌की प्रत्येक लीला वास्तवमें इसी प्रकारकी होती है, जिससे पूरा-पूरा आध्यात्मिक रूपक भी बँध सके। क्योंकि वे जगत्की शिक्षाके लिये ही अपने नित्य-स्वरूपको धरातलमें प्रकट करके लीला किया करते हैं। वेद, महाभारत, भागवत, विष्णु-पुराण, शिवपुराण आदि सभी ग्रन्थोंमें वर्णित भगवान्‌की लीलाओंके रूपक बन सकते हैं। परन्तु रूपक ठीक बैठ जानेसे ही असली स्वरूपको काल्पनिक मान लेना वैसी ही भूल है जैसी पिताके छायाचित्र (फोटो) को देखकर उसके अस्तित्वको न मानना !

कुछ लोग कहते हैं कि शिव-पूजा अनायोंकी चीज है, पीछेसे आयोंमें प्रचलित हो गयी। इस कथनका आधार है वह मिथ्या कल्पना या अन्धविश्वास, जिसके बलपर यह कहा जाता है कि 'आर्य-जाति भारतवर्षमें पहलेसे नहीं बसती थी। पहले यहाँ अनाय रहते थे।' आर्य पीछेसे आये। दो-चार विदेशी लोगोंने अटकलपच्चू ऐसा कह दिया; बस, उसीको ब्रह्मवाक्य मानकर लगे सब उन्हींका अनुकरण करने ! शिव-पूजाके प्रमाण अब उस समयके भी मिल गये हैं, जिस समय इन लोगोंके मतमें आर्य-जाति यहाँ नहीं आयी थी। इसलिये इन्हें यह कहना पड़ा कि शिव-पूजा अनायोंकी है ! जो भ्रान्तिवश वेदोंके निर्माण-कालको केवल चार हजार वर्ष पूर्वका ही मानते हैं, उनके लिये ऐसा समझना स्वाभाविक है। परन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है। भारतवर्ष आयोंका ही मूल-निवास है और शिव-पूजा अनादि कालसे ही प्रचलित है। क्योंकि सारा विश्व शिवसे ही उत्पन्न है, शिवमें ही स्थित है और शिवमें ही विलीन होता है। शिव ही इसको उत्पन्न करते हैं, शिव ही इसका पालन करते हैं और शिव ही संहार करते हैं। विभिन्न

तीन कार्योंके लिये ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—ये तीन नाम हैं जब शिव अनादि हैं तब शिवकी पूजाको परवर्ती बतलाना सरासर भूल है। परन्तु क्या किया जाय? वे लोग चार-पाँच हजार वर्षसे पीछे हटना ही नहीं चाहते। उनके चारों युग इसी कालमें पूरे हो जाते हैं। उनके इतिहासकी यही सीमा है। इससे पहलेके कालको तो वे प्रागैतिहासिक युग मानते हैं। मानों उस समय कुछ था ही नहीं और कहीं कुछ था तो उसको समझने, जानने या लिखनेवाला कोई नहीं था। प्राचीनताको—चारों युगोंको चार-पाँच हजार वर्षकी सीमामें बाँधकर वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि समस्त ग्रन्थोंमें वर्णित घटनाओंको तथा उनके ग्रन्थोंको इसी कालके अन्दर सीमित मानकर तरह-तरहकी अद्भुत अटकलोंद्वारा इधर-उधरके कुलावे मिलाकर मनगढ़न्त बातोंका प्रचार करते हैं और इसीका नाम आज नवीन शोध या रिसर्च है। इस विचित्र रिसर्चके युगमें प्राचीनताकी बातें सुनना बेवकूफी समझा जाता है। भला बेवकूफी कौन करे? अतः स्वयं बेवकूफीसे बचनेके लिये पूर्वजोंको बेवकूफ बनाना चाहते हैं। कुछ लोग श्रीशिव आदिके स्वरूप और उनकी लीलाएँ तथा उनकी उपासना-पद्धतिका पूरा रहस्य न समझनेके कारण उनमें दोष देखते हैं, फिर इनके रहस्यसे सर्वथा अनभिज्ञ, विद्वान् माने जानेवाले अन्यदेशीय आधुनिक शिक्षाप्राप्त प्रसिद्ध पुरुष भगवान्‌के इन स्वरूपों, लीलाओं तथा पूजा-पद्धतिका जब उपहास करते हैं तथा इन्हें माननेवालोंको मूर्ख बतलाते हैं, तब तो इन लोगोंको आदर्श विद्वान् समझनेवाले एतद्देशीय उपर्युक्त पुरुषोंकी दोषदृष्टि और भी बढ़ जाती है और प्रत्यक्षदर्शी तत्त्वज्ञ ऋषियोंद्वारा रचित इन ग्रन्थोंसे, इनमें वर्णित घटनाओंसे, इनके सिद्धान्तोंसे लज्जाका अनुभव करते हुए, घरमें, देशमें इन्हें कोसते हैं और बाहर अपने धर्म तथा देशको लज्जा तथा उपहाससे बचानेके लिये उन कथाओंसे नये-नये रूपकोंकी कल्पना कर विदेशी विद्वानोंकी दृष्टिमें अपने धर्म और इतिहासको तथा देवतावादको निदोष एवं विज्ञान-सम्मत उच्च दार्शनिक भावोंसे सम्पन्न सिद्ध करनेका प्रयत्न कर उसके असली तत्त्वको ढँक देते हैं, और इस तरह तत्त्वसे सर्वथा वञ्चित रह जाते हैं। शास्त्ररहस्यसे अनभिज्ञ, अतत्त्वविद् आधुनिक विद्वानोंकी बुद्धिको ही सर्वांशमें आदर्श मानकर उनसे उत्तम कहे जानेके लिये भारतीय विद्वानोंने भारतीय धर्म-ग्रन्थोंमें वर्णित तत्त्व तथा इतिहासोंको एवं भगवान्‌की

लीलाओंको, अपनी सभ्यताके और ग्रन्थोंके गौरवको बढ़ानेकी अच्छी नीयतसे भी जो सर्वथा उद्धाने तथा उनका बुरी तरह अर्थान्तर करने और उन्हें समझानेकी चेष्टा की है एवं कर रहे हैं, उसे देखकर रहस्यविद् तत्त्वज्ञ लोग हँसते हैं। साथ ही इन लोगोंकी इसप्रकारकी प्रगतिका अशुभ परिणाम सोचकर खिन्न भी होते हैं। रहस्य खुलनेपर ही पता लगता है कि हमारे शास्त्रोंमें वर्णित सभी बातें सत्य हैं और हमें लज्जानेवाली नहीं, वरं संसारको ऊँची-से-ऊँची शिक्षा देनेवाली हैं। परन्तु इस रहस्यका उद्घाटन भगवत्कृपासे प्राप्त योग्य तत्त्वज्ञ सद्गुरुकी कृपासे ही हो सकता है। खेद है कि आजकल गुरुमुखसे ग्रन्थोंका रहस्य जाननेकी प्रणाली प्रायः नष्ट होकर अपने आप ही अध्ययन और मनमाना अर्थ करनेकी प्रथा चल पड़ी है, जिससे रहस्य-मन्दिरके दरवाजे-पर ताले-पर-ताले लगते जा रहे हैं। पता नहीं, इसके परिणामस्वरूप हमारा जीवन कितना बहिर्मुख और जड़-भावापन्न हो जायगा।

इनके अतिरिक्त कुछ लोग भगवान् शिवको मानते तो हैं, किन्तु उन्हें तामसी देव मानकर उनकी उपासना करनेमें दोष समझते हैं। वास्तवमें यह उनका भ्रम है, जो बाह्य दृष्टि-वाले साम्प्रदायिक आग्रही मनुष्योंका पैदा किया हुआ है। जिन भगवान् शिवका गुणगान वेदों, उपनिषदों और वैष्णव कहे जानेवाले पुराणोंमें भी गाया गया है, उन्हें तामसी बतलाना अपने तमोगुणी होनेका ही परिचय देना है। परात्पर महाशिव तो सर्वथा गुणातीत हैं, वहाँ तो गुणोंकी क्रिया ही नहीं है। जिस गुणातीत, नित्य, दिव्य, साकार चैतन्य रसविग्रह स्वरूपमें क्रिया है, उसमें भी गुणोंका खेल नहीं है। भगवान्‌की दिव्य प्रकृति ही वहाँ क्रिया करती है। और जिन त्रिदेव मूर्तियोंमें सत्त्व, रज और तमकी लीलाएँ होती हैं, उनमें भी उनका स्वरूप गुणोंकी क्रियाके अनुसार नहीं है। भिन्न-भिन्न क्रियाओंके कारण सत्त्व, रज, तमका आरोप है। वस्तुतः ये तीनों दिव्य चेतन-विग्रह भी गुणातीत ही हैं।

कुछ लोग भगवान् शङ्करपर श्रद्धा रखते हैं, उन्हें परमेश्वर मानते हैं, परन्तु मुक्तिदाता न मानकर लौकिक फलदाता ही समझते हैं और प्रायः लौकिक कामनाओंकी सिद्धिके लिये ही उनकी भक्ति या पूजा करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि परम उदार आशुतोष, भगवान् सदा-शिवमें दयाकी लीलाका विशेष प्रकाश होनेके कारण वे भक्तोंको मनमानी वस्तु देनेके लिये सदा ही तैयार रहते हैं,

परन्तु इससे इन्हें मुक्तिदाता न समझना बड़ा भारी प्रमाद है। जब भगवान् शिवके स्वरूपका तत्त्वज्ञान ही मुक्तिका नामान्तर है, तब उन्हें मुक्तिदाता न मानना सिवा भ्रमके और क्या हो सकता है? वास्तवमें लौकिक कामनाओंने हमारे ज्ञानको हर लिया है, इसीलिये हम अपने अज्ञानका परमज्ञानस्वरूप शिवपर आरोप करके उनकी शक्तिको लौकिक कामनाओंकी पूर्ति तक ही सीमित मान लेते हैं और शिवकी पूजा करके भी अपनी मूर्खतावश परमलाभसे वञ्चित रह जाते हैं। भगवान् शिव शुद्ध, सनातन, विज्ञान-नन्दधन परब्रह्म हैं, उनकी उपासना परम लाभके लिये ही या उनका पुनीत प्रेम प्राप्त करनेके लिये ही करनी चाहिये। सांसारिक हानि-लाभ प्रारब्धवश होते रहते हैं, इनके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। शङ्करकी शरण लेनेसे कर्म शुभ और निष्काम हो जायेंगे, जिससे आप ही सांसारिक कष्टोंका नाश हो जायगा। और पूर्वकृत कर्मोंके शेष रहनेतक कष्ट होते भी रहें तो क्या आपत्ति है। उनके लिये न तो चिन्ता करनी चाहिये और न भगवान् शङ्करसे उनके नाशार्थ प्रार्थना ही करनी चाहिये। नाम-रूपसे सम्बन्ध रखनेवाले आने-जानेवाले, सुख-दुःखोंकी भक्त क्यों परवा करने लगा? लौकिक सुखका सर्वथा नाश होकर महान् विपत्ति पड़नेपर भी यदि भगवानका भजन होता रहे तो भक्त उस विपत्तिको परम सम्पत्ति मानता है, परन्तु उस सम्पत्ति और सुखका वह मुँह भी नहीं देखना चाहता जो भगवान्के भजनको भुला देते हैं। भजन बिना जीवन, धन, परिवार, यश, ऐश्वर्य—सभी उसको विषवत् भासते हैं। भक्तकी तो सर्वथा देवी पार्वतीकी भाँति अनन्य प्रेमभावसे भगवान् शिवकी उपासना ही करनी चाहिये। एक बात बहुत ध्यानमें रखनेकी है, भगवान् शिवके उपासकमें जगत्के भोगोंके प्रति वैराग्य अवश्य होना चाहिये। यह निश्चित सिद्धान्त है कि विषय-भोगोंमें जिनका चित्त आसक्त है, वे परमपदके अधिकारी नहीं हो सकते और उनका पतन ही होता है। ऐन्द्रिय विषयोंको प्राप्त करके अथवा विषयोंसे भरपूर जीवनमें रहकर उनसे सर्वथा निर्लिप्त रहना जनक-सरीखे इनेगिने पूर्वाभ्यास-सम्पन्न पुरुषोंका ही कार्य है। अनुभव तो यह है कि विषयोंके सङ्ग तो क्या, उनके चिन्तनमात्रसे मनमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं। भगवान् भोलेनाथ विषय माँगनेवालेको विषय और मोक्ष माँगनेवालेको मोक्ष दे देते हैं और प्रेमका

भिखारी उनके प्रेमको प्राप्तकर धन्य होता है। वे कल्पवृक्ष हैं। मुँहमाँगा वरदान देनेवाले हैं। यदि उपासकने उनसे विषय माँगा तो वे विषय दे देंगे, परन्तु विषय उसके लिये विषका कार्य करेगा और अन्तमें दुःखदायी होगा। कामनासे घिरे हुए विषयपरायण मूढ़ पुरुष ही असुर हैं। ऐसे असुरोंके अनेकों दृष्टान्त प्राप्त होते हैं जिन्होंने भगवान् शिवजीकी उपासना करके उनसे विषय माँग लिये और जो यथार्थ लाभसे वञ्चित रह गये। अतएव भगवान् शिवके उपासकको जगत्के विषयोंकी आसक्ति छोड़कर यथार्थ वैराग्यसम्पन्न होकर परमवस्तुकी चाहना करनी चाहिये, जिससे यथार्थ कल्याण हो। याद रखना चाहिये कि शिव स्वयं कल्याणस्वरूप ही हैं, इससे उनकी उपासनासे उपासकका कल्याण बहुत ही शीघ्र हो जाता है। सिर्फ विश्वास करके लग जाने मात्रकी देर है। भगवान्के दूसरे स्वरूप बहुत छान-बीनके अनन्तर फल देते हैं परन्तु औढ़र-दानी शिव तत्काल फल दे देते हैं।

औढ़रदानी या आशुतोषका यह अर्थ नहीं करना चाहिये कि शिवस्वरूपमें बुद्धि या विवेककी कमी है। ऐसा मानना तो प्रकारान्तरसे उनका अपमान करना है। बुद्धि या विवेकके उद्गम-स्थान ही भगवान् शिव हैं। उन्हींसे बुद्धि प्राप्तकर समस्त देव, ऋषि, मनुष्य अपने-अपने कार्योंमें लगे रहते हैं। अलग-अलग रूपोंमें कुछ अपनी-अपनी विशेषताएँ रहती हैं। शङ्करमें यही विशेषता है कि वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं, और भक्तोंकी मनोकामना-पूर्तिके समय भोले-से बन जाते हैं। परन्तु जब संहारका मौका आता है तब रुद्ररूप बनते भी उन्हें देर नहीं लगती।

भगवान् शङ्करको भोलानाथ मानकर ही लोग उन्हें गँजेड़ी, भँगेड़ी, नशेवाज और बावला समझकर उनका उपहास करते हैं। विनोदसे भक्त सब कुछ कर सकते हैं और भक्तका आरोप भगवान् स्वीकार भी कर ही लेते हैं। परन्तु जो वस्तुतः शिवको पागल, श्मशानवासी औघड़, नशेवाज आदि समझते हैं, वे गहरी भूलमें हैं। शङ्करका श्मशाननिवास, उनकी उन्मत्तता, उनका विष-पान, उनका सर्वाङ्गीपन आदि बहुत गहरे रहस्यको लिये हुए हैं, जिसे श्रीशिवकी कृपासे शिव-भक्त ही समझ सकते हैं। जैसे व्यभिचारप्रिय लोग भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीलाको व्यभिचारका रूप देकर प्रकारान्तरसे अपने व्यभिचार-दोषका समर्थन करते हैं, इसी प्रकार सदाचारहीन, अवैदिक क्रियाओंमें

रत नशेबाज मनुष्य शिवके अनुकरणका ढोंग रचकर अपने दोषोंका समर्थन करना चाहते हैं। वस्तुतः शिवभक्तको सदाचारपरायण रहकर गाँजा, भाँग, मतवालापन, अपवित्र वस्तुओंके सेवन, अपवित्र आचरण आदिसे सदा बचते रहना चाहिये—यही शङ्करका आदेश है।

भगवान् शिवको परात्पर मानकर सेवन करनेवालेके लिये तो वे परमब्रह्म हैं ही। अन्यान्य भगवत्-स्वरूपोंके उपासकोंके लिये, जो शिवस्वरूपको परमब्रह्म नहीं मानते, भगवान् शिव मार्गदर्शक परमगुरु अवश्य हैं। भगवान् विष्णुके भक्तके लिये भी सद्गुरुरूपसे शिवकी उपासना आवश्यक है। वैष्णवग्रन्थोंमें इसका यथेष्ट उल्लेख है और साधकोंके अनुभव भी प्रमाण हैं। शक्तिके उपासक शक्तिमान् शिवको छोड़ ही कैसे सकते हैं? शिव बिना शक्ति अकेली क्या करेगी? गणेश तो शिवके पुत्र ही हैं। पुत्रको पूजे और पिताका अपमान करे, यह शिष्ट मर्यादा कभी नहीं हो

सकती। सूर्यदेव तो भगवान् शिवके तेजोलिङ्गके ही नामान्तर हैं। इसके सिवा अन्यान्य मतावलम्बियोंके लिये भी कम-से-कम श्रद्धा-विश्वासरूप शक्ति-शिवकी आवश्यकता रहती ही है। योगियोंके लिये तो परमयोगीश्वर शिवकी आराधनाकी आवश्यकता है ही। ज्ञानके साधक परमकल्याण-रूप शिवकी ही प्राप्ति चाहते हैं, न्याय, वैशेषिक आदि दर्शन भी शिवविद्याके ही प्रचारक हैं। तन्त्र तो शिवोपासनाके लिये ही बना है। ऐसी अवस्थामें जिस किसी भी दृष्टिसे शिवको परम परात्पर परमात्मा, महाज्ञानी, महान् विद्वान्, योगीश्वर, देवदेव, जगद्गुरु, सद्गुरु, महान् उपदेशक, उत्पादक, संहारक—कुछ भी मानकर उनकी उपासना करना सबके लिये कर्तव्य है। और सुख—कल्याणकी इच्छा स्वाभाविक होनेके कारण प्रत्येक जीव कल्याणरूप शिवकी ही उपासना करता है।

‘शिव’

कल्याण-शिवाङ्को विश्वे विजयते

(रचयिता—वेदकाव्यतीर्थसाहित्यविशारदोपाधिक पण्डित श्रीवीरभद्रजी शास्त्री, तैलङ्ग, काशी)

(बहिरालापबन्धः)

(प्रश्नाः)

कः कुम्भिनं समदमप्यपहन्ति नीरे ?
किं पत्रमुच्चसुखदं कथयार्यदेशे ?
को वेदराशिपठनप्रथमप्रयुज्यः ?
कः कौशिकान्वयगुरुः कथितः पुराणे ? ॥
‘कल्याण’पत्रपतिभिः कलितोऽत्र कोऽङ्कः ?
किं बीजमात्मकुजमेति भुवः सकाशात् ?
का सर्वशास्त्रविदुषोऽपि सुदुर्लभाऽस्ते ?
किं रूपमद्रिपतिकूटसमुच्चयस्य ? ॥
गाहान्धकारविलयैकमहापटुः कः ?
वीरः कमिच्छति सदा समरप्रविष्टः ?
आशीः किमित्यभिधाति गुरुः स्वशिष्यम् ?
कः सर्वभूतनिवहैः खलु नित्यमीड्यः ? ॥

एतन्मन्त्रप्रश्नानां त्रिवर्णान्युत्तराणि च। येषां मध्याक्षरादाने ‘कल्याण’स्य जयो भवेत् ॥

* अथो निक्षिप्तमङ्गोलबीजम् उद्धृत्य पुनः स्ववृक्षशाखां लगतीति प्रसिद्धिः। १ अत्र ‘विश्वस्मिन्’ इत्युचितम्।

(उत्तराणि)

म	क	रः
क	क्या	णं
प्र	ण	वः
कु	शि	कः
शि	वा	ङ्कः
अ	ङ्को	लं
क	वि	ता
प्र	श्वे	तं
स	वि	ता
वि	ज	थं
ज	य	तु
भू	ते	शः

काश्मीरीय शैव-दर्शनके सम्बन्धमें कुछ बातें

(लेखक—पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम० ए० प्रिंसिपल, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी)

१ सूचना—काश्मीरीय शैव-दर्शन प्रत्यभिज्ञादर्शनके नामसे प्रसिद्ध है। पाठक 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' नाम सुनकर ऐसा न समझें कि मैं किसी नयी दर्शन-प्रणालीका सूत्रपात कर रहा हूँ। प्रत्यभिज्ञादर्शन नयी वस्तु नहीं है। यह भारतीय विचारसाम्राज्यकी एक अति प्राचीन दुर्लभ सम्पदा है। कालकी विचित्र गतिसे आज यह अपरिचितप्राय हो गयी है तथापि यह बात माननी ही पड़ेगी कि एक दिन इसका प्रभाव भारतीय साधनक्षेत्रमें सर्वत्र परिब्याप्त था। जो लोग हमारी सभ्यताकी विशिष्ट धाराकी ऐतिहासिक दृष्टिसे सूक्ष्मभावसे पर्यालोचना करनेकी चेष्टा करते हैं वे प्रत्यभिज्ञादर्शनके महत्त्वको सहज ही समझ सकते हैं। निगम और आगम अर्थात् वेद और तन्त्र क्या हैं और इनका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है, यहाँ इसके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह ध्रुव सत्य है कि इस निगम और आगमके अन्दर ही भारतवर्षकी सनातन साधनाका बीज निहित है। श्रीमद्भागवतको 'निगम-कल्पतरुका गलित फल' कहा गया है। मेरे विचारसे इसमें आंशिक ही सत्य है, क्योंकि श्रीमद्भागवत जिसप्रकार निगमका, उसी प्रकार 'आगमकल्पतरु' का भी 'गलित फल' है। पञ्चरात्र-आगममें जो कुसुमित होता है वही श्रीमद्भागवतमें परिपक्व रससे भरपूर फलके रूपमें परिणत है। इसी प्रकार प्रत्यभिज्ञा-सिद्धान्त भी आगमका—शैवागमका सारभूत रसस्वरूप है। जैसे श्रीमद्भागवतका अवलम्बन कर गौडीय वैष्णवोंने 'अचिन्त्यभेदाभेद' रूप अपूर्व दार्शनिक सिद्धान्तकी अवतारणा की है, इसी प्रकार स्वच्छन्द, मालिनीविजय प्रभृति आगम एवं तैत्तिरीय-संहिता प्रभृति निगम-समुद्रका मन्थन करके काश्मीरीय शैवोंने 'ईश्वराद्वयवाद'रूप जागृत्यमान रत्नमालाका आविष्कार किया है। दोनों ही भारतीय साधनाके गौरव-स्तम्भ हैं।

२ नामकरण—'प्रत्यभिज्ञादर्शन' नाम बहुत पुराना है, ऐसा नहीं प्रतीत होता। माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें इस नामका प्रयोग किया है और हमलोगोंने भी उन्हींका अनुसरणकर इसी नामको ग्रहण किया है। अवश्य ही प्रत्यभिज्ञा-हृदय, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी प्रभृति प्राचीन

ग्रन्थोंके नामकरणमें प्रत्यभिज्ञा शब्दका व्यवहार किया गया था, किन्तु हमारा विश्वास है कि यह न्याय, वैशेषिक प्रभृतिके समान दार्शनिक सिद्धान्तविशेषका वाचक नहीं है। सर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकरने कहा है कि काश्मीरीय शैवागम दो भागोंमें विभक्त है। प्रथम स्पन्दशास्त्र और द्वितीय प्रत्यभिज्ञाशास्त्र। स्पन्दशास्त्रके प्रचारक वसु-गुप्त हैं और प्रत्यभिज्ञाशास्त्रके प्रवर्तक सोमानन्द हैं। यह विभाग ऐतिहासिक दृष्टिसे कुछ अंशमें सत्य होनेपर भी विचार करनेपर भ्रान्तिमूलक जान पड़ता है। क्योंकि स्पन्द और प्रत्यभिज्ञाप्रतिपादक ग्रन्थोंमें अवान्तर दो-एक विषयोंमें किञ्चित् मतभेदका आभास होनेपर भी दोनों शास्त्रोंके मूल सिद्धान्त और आलोचना-प्रणालीमें कुछ भी भेद नहीं है। सुतरां 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' शब्दसे स्पन्द और प्रत्यभिज्ञा दोनों ही मतोंका निर्देश होता है। प्राचीन साहित्यमें 'त्रिकदर्शन' 'माहेश्वरदर्शन' प्रभृति नाम विशेष प्रचलित थे, किन्तु माधवाचार्यका अनुकरण होनेसे अब प्रत्यभिज्ञा नामका ही अधिकतः प्रचार है।

३ प्रत्यभिज्ञासम्मत अद्वैतवाद—यद्यपि आगम और उपनिषदोंमें द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत प्रभृति सभी प्रकारके दार्शनिक वादोंके मूलसूत्र देखे जाते हैं तथापि अधिकार-भेद एवं रुचि-वैचित्र्यके कारण कोई-कोई प्रस्थान किसी एक विशेष सिद्धान्तकी प्रधानता स्वीकार करके प्रवर्तित होते हैं। शंकर, रामानुज, मध्व प्रभृति आचार्योंके उपनिषद् और गीतापर किये हुए भाष्योंकी तुलनात्मक आलोचना करनेसे यह बात भलीभाँति समझमें आ सकती है। यह अवश्य स्वभावतः ही होता है। सभी देशोंके आध्यात्मिक शास्त्रोंके इतिहासमें इसके दृष्टांत हैं। इसी प्रकार आगमकी व्याख्याके प्रसङ्गमें काश्मीरीय शैवाचार्योंने अद्वैतवादको ही ग्रहण किया तथा इस वादका माहात्म्य दिखलानेके लिये वे एक अभिनव दर्शन-शास्त्रका निर्माण कर गये। भारतीय दर्शनशास्त्रके इतिहासमें यह अद्वैत-सिद्धान्त ईश्वराद्वयवादके नामसे प्रसिद्ध है। आचार्य अभिनवगुप्त इस सिद्धान्तके सर्वश्रेष्ठ व्याख्याता हैं।

४ अद्वैतवादके प्रकार-भेद-आचार्य गौडपादने माण्डूक्य-कारिकामें एवं आचार्य शङ्करने शारीरक सूत्र और उपनिषदादिके भाष्यमें ब्रह्माद्वैतवादकी जो व्याख्या की है, आजकल साधारणतः अद्वैतवाद शब्दके एकमात्र अर्थरूपमें उसीको लिया जाता है। कहना न होगा कि यह सिद्धान्त समीचीन नहीं है। अद्वैत-प्रस्थानके अनेक प्रकार हैं। ब्रह्मवाद उन्हींके अन्तर्गत एक मतविशेष मात्र है। श्रीकण्ठ, रामानुज, बल्लभ प्रभृतिके सिद्धान्त शुद्ध अद्वैतमत नहीं हैं, यह बात ठीक है, परन्तु शुद्ध अद्वैतवादकी भारतीय दर्शनशास्त्रके इतिहासमें कभी कमी नहीं थी।

बौद्ध अद्वैतवादी थे। बुद्धदेवका 'अद्वयवादी' भी एक नाम था, इसका उल्लेख अमरकोशमें पाया जाता है। यद्यपि 'कथावस्तु' नामक ग्रन्थमें अनेकों प्रकारके, विशेषतः अष्टादशभागमें विभक्त—बौद्ध-सम्प्रदायके दर्शन और धर्म-सम्बन्धी मतोंका वर्णन है और यह सभी परस्पर विरोधी मत आगे चलकर सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार और माध्यमिक—इन चार प्रधान श्रेणियोंमें अन्तर्निहित हो जाते हैं तथापि इन सभी मतोंका तात्पर्य माध्यमिक-प्रदर्शित शून्यवादमें है इस बातको बोधिचिस-विवरणकारने स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार किया है—

‘भिन्नापि देशानामिह शून्यताद्वयलक्षणा ।’

यह शून्यवाद कठोर अद्वयवाद है। सत्, असत् प्रभृति कोटिचतुष्टयसे विनिर्मुक्त कर तीक्ष्ण युक्तियोंकी सहायतासे नागार्जुनादि आचार्यगण इस शून्य तरवको द्वैत-विकल्पसे सब प्रकार बचानेका प्रयास करते हैं। बहुतांका विश्वास है कि स्वयं शङ्कराचार्य अपने ब्रह्माद्वैतवादके लिये विज्ञानाद्वैत अथवा शून्याद्वैत सिद्धान्तके सामने ऋणी हैं। बौद्धागमकी 'संवृति' शङ्करके दर्शनमें 'माया' रूपमें स्थान पाती है। दार्शनिक दृष्टिसे शङ्करकी 'माया' प्राचीन आर्ष मायासे कुछ अंशमें विलक्षण है, इसे स्वीकार करना होगा। फ्रांस-देशके सुविख्यात अध्यापक पूस (Poussin) ने वेदान्त और बौद्धमतकी तुलनात्मक आलोचनाके प्रसङ्गमें गौडपादकारिकामें बौद्धभावका प्रभाव प्रदर्शित किया है। पण्डितप्रवर विधुशेखर शास्त्री महाशयने इसे और भी स्पष्ट करके दिखलाया है। यद्यपि शङ्कर योगाचार और माध्यमिक मतका खण्डन करते हैं तथापि अनेक स्थलोंपर वे स्वयं उनकी उद्भाविता युक्ति, यहाँतक कि भाषा भी, ग्रहण करनेमें नहीं हिचकते।

बौद्धमत और शङ्करमतके बीचमें केवल एक ही पदका व्यवधान है। परन्तु इस विषयमें एक बात याद रखनी होगी। भारतवर्षमें बौद्धमत भी कोई नवीन मत नहीं है। जो यह समझते हैं कि शून्यवाद नागार्जुनद्वारा प्रवर्तित हुआ है, पहले ऐसा मत नहीं था, वे महासङ्घिकमत और उपनिषदादिकी आलोचना करनेपर एवं आगमकी प्राचीनताके सम्बन्धमें विचार करनेपर यह समझ सकते हैं कि नागार्जुनने किसी नये सिद्धान्तका प्रवर्तन नहीं किया है। पहले जो अस्पष्ट एवं आभासरूपमें था, उसीको उन्होंने केवल स्पष्ट और प्रणालीबद्ध कर दिया।

वैयाकरणलोग भी अद्वैतवादी थे। 'वाक्यपदीयकार' ने मुक्तकण्ठसे कहा है कि व्याकरणका सिद्धान्त अद्वैतवाद है। व्याकरणके मतसे अखण्ड चिन्मय शब्द-तरव ही जगत्का मूलकारण है, यह एक और अभिन्न है। त्रिपुरा-सम्प्रदाय भी अत्यन्त कट्टर अद्वैतवादी है। इनके मतसे मूलतरव महाशक्ति एक एवं अद्वितीय है। इन सब अद्वैतवादोंकी विशेषता तथा इनके पारस्परिक सम्बन्धकी आलोचना करनेका यहाँ स्थान नहीं है। परन्तु इन सब सिद्धान्तोंसे यह स्पष्ट ही समझा जा सकता है कि प्राचीनकालमें अद्वैतवादके अनेकों प्रकारके प्रस्थान थे। ब्रह्माद्वैतके साथ-साथ शून्याद्वैत, शब्दाद्वैत, शाक्ताद्वैत, ईश्वराद्वैत प्रभृति विभिन्न प्रकारके अद्वैत-सिद्धान्त उस समय प्रचलित थे।

निगम और आगम—वेद और तन्त्र दोनोंमें अद्वैतवाद था, द्वैतवाद भी था, इस विषयमें कोई सन्देहका कारण नहीं है। वैदिक सिद्धान्तका मूलस्थान प्रधानतः उपनिषद् एवं तद्वलम्बी दार्शनिक सूत्रग्रन्थ—विशेषतः ब्रह्मसूत्र है। तान्त्रिक सिद्धान्तके आकर ग्रन्थ प्राचीन आगमराशि तथा शिवसूत्र, शक्तिसूत्र, परशुरामकल्पसूत्र प्रभृति सूत्रमाला हैं। शैव, वैष्णव, शाक्तादि भेदसे आगम नाना प्रकारके थे। पाञ्चरात्र और भागवतमत वैष्णवागम-मूलक हैं। प्रत्यभिज्ञा और स्पन्दनशास्त्र अर्थात् काश्मीरीय त्रिकदर्शन, दक्षिणदेशके सिद्धान्तशास्त्र प्रभृति तथा व्याकरण शैवागमसे उद्भूत होते हैं। त्रिपुरादि सिद्धान्त शाक्तागममूलक हैं। अवश्य ही प्रत्येक सम्प्रदायके आगमोंमें भी अनेक प्रकारके विभाग हैं।

५ ब्रह्मवाद और ईश्वराद्वयवादमें भेद-आचार्य गौडपाद और शङ्करके द्वारा प्रचारित अद्वैतवाद तथा श्रीमदभिन्नव-

गुप्तादिद्वारा व्याख्यात परमेश्वराद्वयवाद ठीक एक ही प्रकारके नहीं हैं। ब्रह्मवाद मायाको सत् एवं असत् दोनोंसे विलक्षण तथा अनिर्वचनीय मानता है। किन्तु शैवाचार्य कहते हैं कि इससे द्वैत भङ्ग नहीं होता। अवश्य ही परमार्थदृष्टिसे माया जब तुच्छ होती है तब व्यवहार-भूमिकी सत्यता तथा विचारभूमिकी अनिर्वचनीयता वस्तुतः ब्रह्मके अद्वैत-तत्त्वको स्पर्श नहीं करती। यह बात ठीक है; किन्तु इससे अद्वैततत्त्वमें जो संकीर्णता आती है उस संकीर्णताके हेतुका पता दूँ देनेपर भी नहीं लगाया जा सकता। इस जीव-जडात्मक विश्व-वैचित्र्यका हेतु क्या है? मूलमें जब एक ही अद्वय ज्ञानतत्त्व है, तब यह द्वैतकी स्फुरण क्यों होती है? तथा किसके निकट होती है? अज्ञानका आश्रय कौन है, द्रष्टा कौन है? ईश्वरादि पदपदार्थोंको अनादि और परम्परासिद्ध बतलानेका व्यवहार भी अनादि है। शुद्ध ब्रह्म विवर्तात्मक अनादि प्रवर्तमान व्यवहारका अधिष्ठान वा अधिकरणमात्र है। उसका कर्तृत्व और स्वातन्त्र्यकल्पित है, वास्तवमें नहीं है। परन्तु कल्पना कौन करता है? जीव अथवा ईश्वर—पर ब्रह्म नहीं करते हैं। स्वरूपदृष्टिसे स्रष्टृत्वादि सभी धर्म उसीमें आरोपित और अध्यस्त होते हैं। परन्तु वस्तुतः ब्रह्मसे जीवभाव या ईश्वरभाव किस प्रकार होता है, यह समझमें नहीं आता। बस, यह प्रचाररूपसे अनादि है, यह कहकर ही चुप हो जाना पड़ता है। अज्ञानकी प्रवृत्ति कहाँसे और क्यों होती है, इसका कोई उत्तर नहीं है। स्वप्रकाश चिरभास्वर ज्ञान-सूर्यको अकस्मात् अज्ञानान्धकार कहाँसे आकर ढक लेता है। ज्ञान यों ही अवशभावसे उसके अधीन होकर जीव बनता है, अथवा अधीश्वर होकर ईश्वर बनता है। किन्तु अज्ञानका प्रथमाविर्भाव ही जब समझमें नहीं आता तब जीवत्व अथवा ईश्वरत्वके बीज कालके मध्यमें अन्वेषण करके आविष्कार करनेकी चेष्टा तो पागलपन मात्र है।

ईश्वराद्वयवादमें भी अज्ञान है, माया है, किन्तु उसकी प्रवृत्ति आकस्मिक नहीं है। वह आत्माका स्वातन्त्र्यमूलक अर्थात् स्वेच्छा-परिगृहीत रूप है। नट जिसप्रकार जान-बूझकर नाना प्रकारका अभिनय करता है, परमेश्वर भी उसी प्रकार अपनी इच्छामात्रसे नाना प्रकारकी भूमिका ग्रहण करते हैं। वह स्वतन्त्र हैं, अपने स्वरूपको ढाँकनेमें भी समर्थ हैं और प्रकट करनेमें भी समर्थ हैं। पर जब वह

अपने स्वरूपको ढँकते हैं तब भी उनका अनाद्युत रूप च्युत नहीं होता। अज्ञान उनकी स्वातन्त्र्य-शक्तिका विजृम्भण मात्र है। जिसप्रकार सवितृदेव अपने ही द्वारा सृजन किये हुए मेघसे अपनेको आच्छादित करते हैं, यह भी उसी प्रकार होता है। परन्तु सूर्य आच्छादित होकर भी जैसे अनाच्छादित रहते हैं, क्योंकि वैसा न होनेसे मेघको प्रकाशित कौन करता? विश्व-वैचित्र्य भी इसी प्रकार अपने स्वरूपका ही विमर्शमूलक है। क्रीड़ा-परायण महेश्वरकी लीला ही इसप्रकारके अभिनयका कारण है। आत्माराममें स्पृहा ही कैसी? यही स्वभाववाद है। ब्रह्मवादी स्वभावको बिल्कुल ही नहीं मानते हैं, सो बात नहीं है। अज्ञान आत्माकी ही शक्ति है इस बातको उन्हें भी स्वीकार करना पड़ता है। परन्तु ईश्वरवादी कहते हैं कि यह स्वातन्त्र्यमूलक, स्वातन्त्र्यात्मक, कर्तृत्वस्वरूप है, और ब्रह्मवादी कहते हैं कि यह शुद्ध साक्षी अथवा अधिष्ठान-चैतन्यात्मक है, यही दोनोंमें प्रधान भेद है। अर्थात् शाङ्करवेदान्तसे आत्मा विश्वोत्तीर्ण, सच्चिदानन्द, एक, सत्य, निर्मल, निरहङ्कार, अनादि, अनन्त, शाश्वत, सृष्टि-स्थिति और संहारका हेतु, भावाभावविहीन, स्वप्रकाश, नित्यमुक्त है, किन्तु उसमें कर्तृत्व नहीं है। परन्तु आगम-सम्मत अद्वैतमतसे विमर्श ही आत्माका स्वभाव है। ज्ञान और क्रिया उसके लिये एक-से हैं। उसकी क्रिया ही ज्ञान है, क्योंकि वह ज्ञाताका धर्म है। तथा उसके कर्तृत्वभाव होनेके कारण उसका ज्ञान ही क्रिया है। इस ज्ञान और क्रियाकी उन्मुखताका नाम इच्छा है। इसी कारण वह इच्छामय है अथवा इच्छादि शक्तित्रयसे युक्त, स्वातन्त्र्यमय है। ऐश्वर्य, विमर्श, पूर्णाहन्ता प्रभृति इसी स्वातन्त्र्यके नामान्तर हैं।

आगमसम्मत आत्मा सर्वदा ही पञ्चकृत्यकारी है। यह उसका असाधारण स्वभाव है। सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह एवं विलयको ही पञ्चकृत्यके नामसे पुकारते हैं। शाङ्करमतसे ब्रह्म इसप्रकारके स्वभाववाला नहीं है। इसीलिये ब्रह्मवादमें आत्माका स्वस्फुरण वैसा न होनेके कारण वह सत्य होते हुए भी असत्कल्प है। महेश्वरानन्द कहते हैं—

‘तत्र हि अद्वैतमाग्रहेणोपपाद्यमानमपि द्वैतकश्वामेवाधि-

* महेश्वरानन्द-कृत ‘महार्थमञ्जरी-टीका परिमल’ पृ० ५२।
‘प्रत्यभिज्ञाहृदयसूत्र’ १० पृ० २२, २३ देखिये।

रोहति, यदत्र सत्यासत्यव्यवस्थया हेयोपादेयकल्पनायां तेनैवा-
कारेण द्वैतमर्यादापर्यवसायित्वमनिवार्यम् ।'

त्रिकदर्शन अत्यन्त कष्टर अद्वैतवादी है, उस अद्वैत-
वादके सामने ब्रह्माद्वैत-सिद्धान्त मानो ग्लान-सा जान
पड़ता है। जान पड़ता है कि मानो शाङ्करमतमें द्वैताभास
वस्तुतः वर्जित नहीं है। संविदुल्लासमें लिखा है—

द्वैतादन्यदसत्यकल्पमपरैरद्वैतमाख्यायते

तद् द्वैते वत पर्यवस्यति कृतं वाचादुर्विद्यया ।

एते ते वयमेवमभ्युदयिनोः कस्यापि कस्याश्चिद्-

प्यालस्योज्झितमैकरस्यमुभयोरद्वैतमाचक्ष्महे ॥

जान पड़ता है मानो शाङ्करवेदान्त द्वैतसे भीत और
त्रस्त है, इसी कारण उसके मतमें अद्वैत द्वैतसे विलक्षण
है, अतएव यह असत्कल्प है। वह विचारसे द्वैत-कोटिमें
आ जाता है। आगमके मतमें अद्वैत शब्दका अर्थ है दोका
नित्य सामरस्य। शङ्कर ब्रह्मको सत्य और मायाको
अनिर्वचनीय कहते हैं। इसलिये वाक्यद्वारा जितना ही
अद्वैतभावका उत्कर्ष दिखानेकी चेष्टा की गयी है उतना
ही पूर्णभावके प्रकाशमें बाधा पड़ी है। वे मायाको सत्य
नहीं मान सकते, इसीसे उनका अद्वैतभाव व्यावृत्तिमूलक
(exclusive), संन्यासमूलक (based on renun-
ciation or elimination) है, अनुवृत्ति किंवा ग्रहण-
मूलक (all-embracing) नहीं। माया ब्रह्मशक्ति,
ब्रह्माश्रित है, पर ब्रह्म सत्य है परन्तु विचार-दृष्टिसे माया
सदसद्विलक्षण है। किन्तु मायाको स्वीकार कर उसको
ब्रह्ममयी, नित्या और सत्यस्वरूपा माननेसे ब्रह्म और
मायाकी एकरसता हो जाती है। यह एकरसता मायाको
त्यागकर या तुच्छ समझकर नहीं बल्कि उसको अपनी ही
शक्ति समझनेमें है। बादलके द्वारा दृष्टिशक्तिके ढकी
जानेपर हम कहते हैं कि मेघने सूर्यको ढक लिया है किन्तु
यह मेघ क्या स्वयमेव सूर्यसे ही उत्पन्न नहीं है? क्या मेघ सूर्यकी ही महिमा नहीं है? सुतरां जो सूर्य
है वही मेघ है, क्योंकि यह उसीकी शक्ति है। मायामेघ
भी इसी प्रकार ब्रह्मसे आविर्भूत होता है, उसीके आश्रयमें
आत्म-प्रकाश करता है और उसीमें विश्राम-लाभ करता
है। जो माया है वही ब्रह्म है। ब्रह्म स्वयं ही मानो
अपनेको अपनेद्वारा अर्थात् अपनी शक्ति—मायाके द्वारा
ढक लेता है, परन्तु ढकनेपर भी पूर्णतः ढक नहीं

जाता। क्योंकि वह अनावृतरूप है। अतः कहना पड़ता
है कि वही अपना आवरक (ढकनेवाला) है और वही
अपना उन्मीलक (खोलनेवाला) है। उसके सिवा और
है ही क्या? ब्रह्म और माया एक ही वस्तु है। ब्रह्म
सत्य, माया मिथ्या है, ऐसा कहनेपर प्रकारान्तरसे
द्वैताभास आ ही जाता है। जिस अवस्थामें माया मिथ्या
है, उस अवस्थामें ब्रह्म भी मिथ्या है, क्योंकि मायाको
मिथ्या अनुभव करते ही मायाकी सत्ताका स्वीकार करना
अपरिहार्य हो जाता है, और मायाको स्वीकार करनेसे ही
उस अवस्थामें जो ब्रह्मबोध होता है वह मायाकल्पित
वस्तु है। यह बात वेदान्तीको भी किसी-न-किसी प्रकार
स्वीकार करनी ही पड़ती है। इधर मायाको सत्य समझनेमें
ब्रह्म भी सत्य हो जाता है। मायाकी विचित्रताके अनुसार
यह ब्रह्मबोध भी विचित्र ही होगा और वह सभी बोध
समानरूपसे सत्य होंगे। उस समय जगत्के यावत्
पदार्थ ब्रह्मरूपमें प्रतिभात होंगे। सब ही सत्य है, सभी
विस्मय और आनन्दमय है, इस तत्त्वकी उपलब्धि होगी।
'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह उपनिषद्-वाक्य उस समय
सार्थक हो जायगा। माया अथवा तत्प्रसूत जगत्का
त्याग करके नहीं, वरं उसको साक्षात् ब्रह्मशक्ति और
उसके विकासरूपमें अनुभव करनेसे, आलिङ्गन करनेसे
ही जीवनकी सार्थकता सम्भव हो सकती है। शक्ति
सत्य है, सुतरां जीव और जगत् भी सत्य है—मिथ्या
नहीं है, इसलिये सभी वस्तुतः शिवमय है। यह वैचित्र्य
एकका ही विलास है, भेद अभेदका ही आत्मप्रकाश है,
शक्तिरूप किरणराशि शिवरूप सूर्यका अपना ही स्फुरण-
मात्र है, अन्य कुछ भी नहीं। भगवान् शङ्कराचार्यके
'तमः प्रकाशवद्विरुद्धयोः' पदकी यथार्थता स्वीकार करके
भी यह बात कही जा सकती है कि प्रकाशसे ही घर्षणके
द्वारा अन्धकारका आविर्भाव होता है और अन्धकार
ही घर्षणके द्वारा प्रकाशमें पर्यवसित होता है। दोनों
ही नित्य संयुक्त हैं, स्वरूपमें समरस-भावापन्न हैं।
घर्षणसे प्राधान्यका विकास होता है। इस प्राधान्यके
अनुसार व्यपदेश होता है। आगमशास्त्रका यही सिद्धान्त
है। पुरुषसे प्रकृति किंवा प्रकृतिसे पुरुष एकान्ततः
पृथक् नहीं हैं, हो भी नहीं सकते। जो ऐसा करते हैं
वह केवल विचार (logical abstraction) के द्वारा
तत्त्वविश्लेषण मात्र करते हैं। वस्तुतः सांख्यके प्रकृति-

पुरुष-विवेकका अर्थ भी पृथक्करण नहीं है, इसके प्रमाण सांख्यकारिका और योगभाष्यमें स्पष्ट पाये जाते हैं। इसकी आलोचना किसी दूसरे समय की जा सकती है। स्पन्दशास्त्रकार कहते हैं—

इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत् ।

स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥

इसका तात्पर्य यही है कि जीवन्मुक्त जगत्भरको ही आत्मक्रीडा अर्थात् आत्मशक्तिके विलासरूपमें देखते हैं, उनकी योगावस्था कभी भग्न नहीं होती। भेद और अभेद, व्युत्थान और निरोध दोनोंके अन्दर साम्यदर्शन होनेपर और कोई आशङ्का नहीं रह जाती। क्योंकि दोनों एकहीके दो प्रकार हैं। इसीको शिवशक्तिका सामरस्य या चिदानन्दकी प्राप्ति कहते हैं। यही ईश्वराद्वयवादकी विशिष्टता है।

६ प्रत्यभिज्ञादर्शनमें ज्ञान और भक्तिका सामञ्जस्य-इस अद्वयवादमें एक और विशेषता यह है कि यह न तो शुष्क ज्ञानमार्ग है और न ज्ञानहीन भक्तिमार्ग ही है—इसमें ज्ञान और भक्ति दोनोंका सामञ्जस्य है। शङ्कर-द्वारा प्रवर्तित अद्वैतवादकी चरमावस्थामें भक्तिका स्थान नहीं है। शङ्करके मतसे भक्ति द्वैतमूलक है, इसी कारण अद्वैतावस्थामें ज्ञानाविर्भावमें इसकी सत्ता नहीं रहती। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह साधनरूपा अज्ञान-मूलक भक्ति है। परन्तु जो अद्वैत-भक्तिरूप पदार्थ है, वह शास्त्र और महात्माओंके अनुभवसे जाना जा सकता है। यह नित्य-पदार्थ है। साधारणतः जिसे हम मोक्ष कहते हैं वह वस्तुतः इस नित्यसिद्ध ज्ञान-भक्तिका ही आवरणभङ्ग-जनित समुन्मेष मात्र है। त्रिकदर्शनमें इसीको चिदानन्दलाभ अथवा पूर्णाहन्ता चमत्काररूपमें अभिहित किया गया है। चिदंश ज्ञानभाव है और आनन्दांश भक्ति है। परम तत्त्व स्वातन्त्र्यमय है; स्वतन्त्रता ही पूर्ण शक्ति है; इसी कारण इस मतमें चरमावस्थामें भी शिवशक्तिका सामरस्य ही माना गया है। शक्तिके अभावकी अथवा उसके अवास्तव्यकी कल्पना कभी नहीं की गयी। वस्तुतः शिव और शक्ति अभिन्न हैं, दोनोंमें भेद नहीं है और हो भी नहीं सकता। परन्तु विश्वदृष्टिसे सृष्टि और संहारकी, किंवा उन्मेष और निमेषकी ओर लक्ष्य देनेसे शक्ति-प्रधान अथवा शिवप्रधानरूपसे केवल एक ही परम तत्त्वका निर्देश किया जाता है। परन्तु शक्तिप्रधान अवस्थामें भी

शिवभाव रहता है, क्योंकि प्रकाशमय शिवभावमें ही विमर्शात्मक शक्तिका विकासस्वरूप विश्व प्रतिबिम्बित होता है, और शिवप्रधान अवस्थामें भी शक्तिभाव रहता है, विश्वबीजशक्ति उस समय प्रकाशमें विलीन रहती है और इन दोनोंकी सामरस्य अवस्थाको, जहाँ शिव और शक्ति दोनों साम्यको प्राप्त हैं, न शिव कहा जाता है और न शक्ति ही कहा जाता है; परन्तु दोनों ही भाव वहाँ एकाकारमें विद्यमान रहते हैं। यही परम भाव है। हमारे दर्शनोंमें इसको सर्वभावकी प्रतिष्ठाके रूपमें वर्णन किया गया है। यहाँचिदंश शिवभाव और आनन्दांश शक्ति-भाव परस्पर मिले हुए हैं, इसी कारण यह ज्ञान-भक्तिकी सामञ्जस्य-अवस्था है। यह याद रखना चाहिये कि पूर्वोक्त शिव और शक्ति तथा यह सामरस्य दोनों ही नित्य हैं, केवल एक ही पदार्थकी दो दिशाएँ हैं।

कहा जाता है कि षट्पञ्चरिकास्तोत्र श्रीशङ्कराचार्यका रचा हुआ है। उसमें है—

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।

सामुद्रो हि तरङ्गः कचन समुद्रो न तारङ्गः ॥

यदि यह श्लोक वस्तुतः शङ्करका ही है तो यह कहना पड़ेगा कि वह अद्वैतभक्तिका प्रचार करते हैं। 'सत्यपि भेदापगमे' इस वाक्यांशकी योजनाके द्वारा समझा जा सकता है कि उनका अभिप्राय, भेद दूर हो जानेपर भी 'मैं तुम्हारा हूँ' यह कहनेका है। सुतरां अभेद-अवस्थामें भी 'मैं तुम्हारा हूँ' यह भाव रह सकता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह दास्यात्मक भक्तिभाव ही है। यद्यपि ज्ञानके द्वारा 'तुम और मैं' का वास्तविक भेद मिट जाता है तथापि पराभक्तिके प्रभावसे उस अद्वैत-समुद्रमें भी कल्पित भाव द्वैतकी लहरी उठती है। यह द्वैत वस्तुतः द्वैत नहीं है इसलिये इस अवस्थाकी भक्तिको अद्वैत-भक्ति कहना असङ्गत नहीं है। यही नित्यभाव है।

बोधसारमें (पृ० २००-२०१) नरहरि कहते हैं—

द्वैतं मोहाय बोधात्प्राक् प्राप्ते बोधे मनीषया ।

भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम् ॥

ज्ञाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम् ।

मित्रयोरिव दम्पत्योर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥

अद्वैत-भक्ति क्या है तथा उसके स्वरूपकी प्राप्ति कैसे होती है, यह विवरण यहाँ प्रयोजनीय नहीं है। नारायण-

तीर्थ अपनी भक्तिचन्द्रिका नाम शाण्डिल्यसूत्रके भाष्यमें इस भक्तिकी विस्तारपूर्वक व्याख्या करते हैं तथा अन्य भी अनेक स्थलोंमें इसका प्रसङ्ग मिलता है। त्रिपुरारहस्य ज्ञानखण्ड (२० वाँ अध्याय श्लोक ३३-३४) में है— प्रकाशसार परम तत्त्वको अपरोक्षरूपमें आत्माभिन्न-भावमें साक्षात्कार करनेपर भी कोई-कोई परम भक्त प्रेम-पूर्वक उसकी सेवा किया करते हैं। सेवा करनेके लिये सेव्य-सेवकभाव होना आवश्यक है, अद्वयावस्थामें यह भाव किसप्रकार सम्भव हो सकता है? इसीलिये कहा गया है कि भेदभाव अवलम्बन करके सेवा की जाती है। निश्चय ही यह आहार्य-भेद है, वास्तविक भेद नहीं है। जहाँ परम तत्त्व साम्यस्वरूप है वहाँ तो भेद है ही नहीं, वह तो सब अवस्थाओंका सन्निध्यस्थ है। परन्तु इस भेदके आहरण करनेका प्रयोजन क्या है? प्रयोजन और कुछ भी नहीं है, है केवल रुचिभेद, 'स्वभावका स्वरस'—

यत् (अर्थात् परं पदं प्रतिमात्मकम्) सुभक्तैरतिशयप्रीत्या
कैतववर्जनात् ॥३३॥

स्वभावस्य स्वरसतो ज्ञात्वाऽपि स्वाद्वयं पदम्।

विभेदभावमाहस्य सेव्यतेऽप्यन्ततत्परैः ॥३४॥

इससे ज्ञात होता है कि ज्ञानके अनन्तर भी भक्ति रह सकती है। यह कैतवहीन होनेके कारण सुभक्ति है। अज्ञानमूलक द्वैत या साधनभक्तिके समान स्वार्थानुसन्धानात्मिका नहीं है। अद्वैत-भक्तिके पक्षमें भी एक भेद आवश्यक है, यह कल्पित और ज्ञानपूर्वक होती है। परन्तु एक बात है, ज्ञानके बाद यह अद्वैतभक्ति सर्भीके होती हो, ऐसी बात नहीं है। जिसका हृदय स्वभावतः भक्ति-प्रवण है उसीके अद्वैतभक्तिका उदय होता है, ज्ञानार्थीको ऐसा नहीं होता।

किन्तु उदित हो या न हो, अन्तमें ज्ञान और भक्ति एकाकार हो ही जाते हैं। जिसे पूर्णाहन्ता या स्वात्म-चमत्कार कहा जाता है वही ज्ञानकी सीमा और वही प्रेमकी भी पराकाष्ठा है। इसीलिये यह समन्वय-भूमि है। यहीसे दोनों स्रोत प्रवाहित होते हैं।

त्रिकदर्शनमें दास्यात्मक भक्ति ही स्वीकार की गयी है। भगवान् प्रभु, पिता अथवा गुरु हैं, भक्त दास, पुत्र अथवा शिष्य है। केवल त्रिकदर्शनमें ही नहीं, शैवागम मात्रमें ही इसी भावकी प्रधानता दीख पड़ती है। वीर

शैवादि-मतमें भी यही सिद्धान्त स्वीकृत देखा जाता है। ॐ शाक्तागममें भी मूलतः इस विषयमें कोई भेद नहीं दिखायी देता। हाँ, पितृभावकी जगह उसमें मातृभावकी कल्पना की जाती है, यही विशेषता है। परन्तु इस भावत्रयीमें दास्यभाव ही मूलभूत है, अतः इसीका प्राधान्य बतलाया गया है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, भक्तिका मूलतत्त्व ही दास्यभावाश्रित है, इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। शान्त-भक्ति भक्तिकी एक स्फुरण-अवस्थामात्र है। किञ्चित् विकसित होते ही उसपर दास्य-भावका रंग चढ़ जाता है। अद्वैतसे द्वैतकी तरफ़ इसी भावमें उठती है। फिर चाहे कितना ही विकास हो, यह रंग नहीं छूटता। यद्यपि गौडीय वैष्णव प्रभृति सम्प्रदायोंमें सख्य, वारसह्य और माधुर्यभाव भी माने गये हैं तथापि यह सत्य है कि सभी भावोंके मूलमें यह दास्यभाव अनुस्यूत है। भूत-सृष्टिमें जिसप्रकार वेदान्तके अनुसार आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि इत्यादि क्रमसे पृथिवीका आविर्भाव होता है, रसविकासमें भी इसी प्रकार शान्तसे दास्य, दास्यसे सख्य इत्यादि क्रमसे उत्तरोत्तर रसपुष्टि होती है। आकाशका अपना गुण शब्द है; वायुके उत्पन्न होनेपर शब्द-गुणकी तो प्राप्ति होती है, इसके अतिरिक्त उसका अपना गुण स्पर्श भी विकसित हो उठता है। इसप्रकार क्रमशः एक-एक गुण बढ़ते रहते हैं और पूर्वगुण क्रमशः अनुवृत्त होते जाते हैं। इसीलिये पृथिवीमें पाँचों भूतोंके गुण हैं; इनमें शब्दादि चार उसके समागत सामान्य गुण हैं, गन्ध उसका विशेष गुण है। इसी प्रकार भावके क्रमविकासके विषयमें भी समझना चाहिये। शान्त भावका विशेष गुण, निष्ठा दास्यभावमें अनुवृत्त होती है और उसका अपना गुण सेवा भी उस समय विकसित हो उठता है। सख्यमें शान्त और दास्य दोनोंके गुण अनुवृत्त होते हैं तथा अपने गुण असङ्कोचका भी विकास होता है। इसी प्रकार माधुर्यमें सभी रसोंके गुण अर्थात् निष्ठा, सेवा, असङ्कोच, लालन वर्तमान रहते हैं और इनके अतिरिक्त उसका विशेष गुण आत्म-समर्पण भी स्फूर्त हो उठता है।

त्रिकदर्शन दास्यात्मक भक्तिको मानकर भक्तिके मूल-तत्त्वको ही मान लेता है। पर केवल मूलको ही मानता हो तो बात नहीं, भक्तिके चरम फल माधुर्य-प्रेमको भी आभासरूपमें स्वीकार करता है। परन्तु याद रखना चाहिये

* मायिदेवकृत 'अनुभवसूत्र' देखिये।

कि यह भक्ति अज्ञानमूलक द्वैतभावसे उत्पन्न नहीं है। यह परिस्फुटित अद्वैतकी अवस्था है और एक हिसाबसे यह परिस्फुटित द्वैत-अवस्था भी है—परन्तु यह अलौकिक 'द्वैत' है, यही विशेषता है। इसीलिये यहाँ एक ही साथ ज्ञान और भक्तिका, चित् और आनन्दका समावेश दिखलायी पड़ता है। इसीका नाम शिवशक्तिका सामरस्य है। यह रसतत्त्व ही ऐक्य और वैचित्र्यका पूर्ण सामञ्जस्य है। यह रस 'ब्रह्मानन्द' से विलक्षण एवं विशिष्ट है। ब्रह्मानन्दमें आस्वादन नहीं, चर्वण नहीं, अहं-भाव नहीं, त्रिपुटी नहीं, परन्तु रसमें सभी कुछ है पर अलौकिक है। पूर्णाहन्ताका चमत्कार ही रसबोध है—इसमें अभेदमें भी अलौकिक भेद है, नहीं तो आस्वादन ही नहीं हो सकता। परन्तु यह भेद लौकिक भेदके समान नहीं है, यह वैकल्पिकमात्र है। अभिनवगुप्ताचार्यने नाट्यशास्त्रकी अभिनवभारती नामक टीकामें रसतत्त्वकी जो प्रत्यभिज्ञा-दर्शनानुसार आलोचना की है उसमें रसका स्वरूप बहुत कुछ परिष्कृत हो गया है।

प्रश्न हो सकता है कि यह रस केवल शान्तरस है अथवा दास्य भी है? इस प्रश्नका समाधान, पहले जो कुछ कहा जा चुका है, उससे हो जा सकता है। भक्तिके मूलमें दास्यभाव रहेगा ही। शान्तभावको भक्तिका बीज-भाव कहा जा सकता है सही, किन्तु वह परिस्फुट भक्ति नहीं है। दास्यबोध जबतक नहीं हो जाता, अपनेको एक अनन्त वस्तुके साथ अभिन्न जानकर भी जबतक तदाश्रित-रूपसे बोध नहीं हो जाता, तबतक भक्तिराज्यका आरम्भ ही नहीं होता। शान्तभाव इसीका सूत्रपात करता है। किन्तु यह अनन्त वस्तु अपने आत्मासे भिन्न और कुछ नहीं है। इसीसे जिस ब्रह्मभावसे शान्तरस और तदनन्तर दास्यादिका आविर्भाव होता है, शान्त अथवा दास्यादिमें वही ब्रह्मभाव अनुवृत्त रहता है—परन्तु उसीके ऊपर शुद्ध अप्राकृत सत्त्वकी लहर क्रीड़ा करती है।

अन्धकार दबा रहता है, आलोकके वक्षःस्थलपर आलोककी ही तरङ्गें नाचा करती हैं। यह तरङ्ग ही 'उल्लास' या रस है। इसका वैचित्र्य ही लीलाविस्तार है। यह तरङ्ग शुद्धस्वरूपमें सदा वर्तमान रहती है, इसीलिये वैष्णवोंके समान शैव भी नित्यलीला मानते हैं। इसीलिये क्षेमराजने अपनी स्तवचिन्तामणिटीका पृ० ६०-६१में शिवको—

'कैलासादिषु नित्यप्रवर्तमानप्रमोदनिर्भरक्रीडामयं लोकोत्तर-प्रभावं विस्तारयित्रे'

—कहा है। परन्तु कोई-कोई पुरुष, विशेषतः आलङ्कारिक-गण भक्तिको रसस्वरूप नहीं मानते। काव्यप्रकाशकार मम्मट, रसगंगाधरके कर्ता पण्डितराज जगन्नाथ ऋषि आलङ्कारिक-गणोंने भक्तिको भावकोटिमें ही ढाल दिया है। परन्तु इससे कोई विरोध नहीं आता। साहित्यसारकर्ता अच्युतरायने दिखलाया है कि गीताके 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्' से 'यो मद्भक्तः स मे प्रियः' पर्यन्तके वाक्योंसे जाना जाता है कि मुख्य भक्ति जीवनमुक्तिका ही नामान्तर है। जीवनमुक्ति-विवेकमें विद्यारण्य स्वामी भी यही बात कहते हैं—

'जीवन्मुक्तः स्थितप्रज्ञो विष्णुभक्तश्च कथ्यते।'

इस दृष्टिसे भक्ति कुछ-कुछ शान्तरसके अन्तर्गत हो जाती है। इसीलिये आलङ्कारिक लोग भक्तिको स्वतन्त्र रस नहीं मानना चाहते। अर्थात् मुख्य भक्तिको रस माननेमें आलङ्कारिक लोग असम्मत नहीं हैं किन्तु वे उसे शान्तरससे पृथक् माननेका कोई कारण नहीं देखते। दूसरी ओर भक्तगण जो कुछ कहते हैं वह भी सत्य है। वे कहते हैं कि भक्ति जब अद्वैत-आरमतत्त्व-विषयक वृत्ति-विशेष है तो उसके रसत्वका अस्वीकार नहीं किया जा सकता। साहित्यसारके टीकाकारने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि भक्ति मुख्य और गौण, अथवा परा और अपरा-भेदसे दो प्रकारकी है। अलङ्कारशास्त्रमें मुख्य भक्ति शान्तरसके अन्तर्गत है और गौणभक्ति भावमात्र है। भक्तिशास्त्रमें शान्तरस स्वयं ही भक्तिविशेष है और मुख्यभक्ति तो रसस्वरूपा है।

शाण्डिल्य और नारदने अपने भक्तिसूत्रोंमें, मधुसूदन सरस्वतीने भक्तिरसायनमें और श्रीरूपगोस्वामीने भक्ति-रसामृतसिन्धुमें भक्तिके रसत्वका उपपादन किया है। यहाँ उन सबकी आलोचना आवश्यक नहीं है। यहाँ केवल इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि प्रत्यभिज्ञादर्शनके आचार्योंने भक्तिको रसके रूपमें स्वीकार कर अध्यात्मराज्यके एक गम्भीर तत्त्वको प्रकट कर दिया है। उत्पलाचार्य अपनी शिवस्तोत्रावलीके प्रथम स्तोत्रमें कहते हैं—

जयन्ति भक्तिपीयूषरसासवरोन्मदाः।

अद्वितीया अपि सदा त्वद्वितीया अपि प्रमो॥

पराभक्तिकी यही विशेषता है कि इस अवस्थामें

दूसरेके न होते हुए भी दूसरा रहता है। नदियाके श्री-गौराङ्ग महाप्रभुने इसीलिये अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्वका प्रचार किया। जो समझते हैं कि दो होनेही से मिथ्या हो जायगा, उन्होंने पूर्ण सत्यके केवल एक देश मात्रको देखा है। अज्ञानके नष्ट हो जानेपर भी, ऐक्यस्फुरण होनेपर भी उस ऐक्यकी गोदमें दो रह सकते हैं, यद्यपि वे दोनों ही एकका ही शुद्धभावमें आत्मप्रसारण है।

नाथ वेद्यक्षये केन न दृश्योऽस्येककः स्थितः ।

वेद्यवेदकसंक्षोभेऽप्यसि भक्तैः सुदर्शनः ॥

अन्तर्मुखावस्थामें कुछ भी जाननेयोग्य न रह जानेपर भी एकके रूपमें जिसका स्फुरण होता है, ज्ञेय और ज्ञाताके इस संक्षोभमें—इस वैचित्र्यमें भी भक्तगण समावेशकी अधिकताके कारण उसीको देखते हैं। जो विश्वातीत हैं वही तो विश्वात्मक भी हैं और दोनों समकालमें ही हैं। इसीलिये ज्ञान और भक्ति जहाँ समरस हैं, वहाँ विश्वातीत और विश्वात्मक समभावमें ही प्रकाशमान हैं। यहीं द्वैताद्वैतका सामञ्जस्य होता है। यही ईश्वराद्वयवादकी विशिष्टता है।

७ शङ्कर और आगम-सम्प्रदाय-शङ्करद्वारा प्रचारित ब्रह्मवादके साथ ईश्वराद्वयवादका जो भेद दिखलाया गया है इससे कोई यह न समझे कि शङ्कराचार्य ईश्वराद्वयवादको नहीं मानते थे। वस्तुतः शङ्कराचार्य प्रत्यभिज्ञासिद्धान्तको मानते थे तथा अनेकों स्थलोंपर उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें इस बातको घोषित किया है। इसकी आलोचना पीछे की जायगी। साधारणतः संन्यासी-सम्प्रदायमें जो मत प्रचलित है तथा जिसका अवलम्बन कर अद्वैत-प्रस्थानके ग्रन्थ आदि रचे गये हैं, आजकल एकमात्र उसीको शङ्करका मत समझा जाता है। किन्तु उसके साथ अन्यान्य मतोंका भी सम्बन्ध था, इसे एकवारगी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हमारा खयाल है कि आगम और निगम दोनों मार्गोंके ही सम्प्रदायप्रवर्तक बनकर शङ्कराचार्यने जगद्-गुरु-पदकी सार्थकता सम्पादन की थी। ज्ञान और उपासना—संन्यास और गार्हस्थ्य—दोनों दिशाओंमें ही उनकी प्रचारशक्ति अव्याहत थी। महापुरुषोंके उपदेश देनेकी यही सनातन-पद्धति है। बुद्धदेव, महावीर प्रभृति धर्मप्रचारकगण सभी न्यूनाधिकरूपमें इसी पद्धतिका अनुसरण कर गये हैं।

उपलब्ध ग्रन्थावलीसे कई शङ्कराचार्योंके विषयमें पता

लगता है परन्तु इस विषयकी आलोचना यहाँ अप्रासङ्गिक है। तन्त्रशास्त्रमें भी एकाधिक शङ्कराचार्यका परिचय प्राप्त होता है या नहीं, यह एक स्वतन्त्र विषय है। तथापि अनेकों प्रकारकी ऐतिहासिक आलोचनासे यही अनुमान होता है कि ब्रह्मवादी शङ्कर आगमशास्त्रके ज्ञाता थे। केवल यही बात नहीं, बल्कि उन्होंने अनेकों आगम-ग्रन्थोंकी रचना और व्याख्या की थी। इसी प्रकारकी जनश्रुति भी है।

प्रत्यभिज्ञामतके साथ त्रिपुरासिद्धान्तका अथवा श्रीविद्याका अति घनिष्ठ सम्बन्ध है। शङ्कर इस श्रीविद्याके एकनिष्ठ साधक थे। शृङ्गेरीमठमें आज भी उनका श्रीचक्र स्थापित है, आज भी वहाँ उसकी उपासना होती है। शङ्कराचार्यके परम गुरु गौडपादाचार्यने श्रीविद्याका प्रतिपादन करनेके लिये सुभगोदय नामक ग्रन्थकी रचना की थी। इसके ऊपर शङ्करकी टीका है।^३ और सम्भवतः इसीके अनुकरणमें उन्होंने अत्यन्त गम्भीर रहस्यपूर्ण सौन्दर्यलहरी नामक स्तोत्र रचा था।†

* सुभगोदयके ऊपर माधवाचार्यकी भी व्याख्या है। टीका भी दो प्रकारकी पायी जाती है। लक्ष्मीधर सौन्दर्यलहरीकी व्याख्यामें केवल शाङ्करी-टीकाका ही उल्लेख करते हैं, सम्भवतः द्वितीय टीका उनके हस्तगत नहीं हुई थी। पण्डित महादेव शास्त्री लक्ष्मीधरका समय चतुर्दश शताब्दीके प्रथमांशमें निर्णय करते हैं। किन्तु यह सिद्धान्त निर्विवाद नहीं है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि लक्ष्मीधर भास्करराजके बहुत ही पूर्व हो गये हैं। हमारी समझमें उन्हें माधवाचार्यसे परवर्ती मानना चाहिये।

† कोई-कोई सौन्दर्यलहरीके शङ्करकी रचना होनेपर विश्वास नहीं करते। परन्तु हमारी समझमें यह शङ्कराचार्यकी ही अपनी रचना है। पण्डित महादेव शास्त्रीने इस विषयमें जो कुछ कहा है वह ध्यान देनेयोग्य है—

‘The fact that Sri Sankaracharya was a reformer in his days of the Shakta Cult as of various others, the very important part still played by Sakti Worship in all the Advait Mutts, the identity of the soul and the Goddess spoken of in verse 22, the reference to Vedanta in verse 84

इस ग्रन्थके ऊपर सुरेश्वराचार्यकृत टीका है, शृङ्गेरी-मठमें इसी टीकाकी एक अति प्राचीन हस्तलिखित प्रति वर्तमान है।* प्रपञ्चसार-ग्रन्थ शङ्करकृत माना जाता है। इसके ऊपर पद्मपादाचार्यकी टीका है। उत्तर और दक्षिण-भारतमें विभिन्न समयमें लिखित इस टीकाकी दो हस्त-लिखित प्रतियाँ हमारे दृष्टिगोचर हुई हैं। सूतसंहिता और पराशरसंहिताकी टीकामें माधवाचार्यने प्रपञ्चसारको जगद्-गुरु शङ्कराचार्यकृत माना है। शारदातिलककी टीकामें राघवभट्ट भी यही कहते हैं। सम्मोहनतन्त्रमें शङ्कर और उनके चार शिष्योंका वर्णन है। यह सब देखकर शङ्करको शाक्तागमके, विशेषतः त्रिपुरागमके एक अति प्रधान आचार्य मानना ही होगा।

उनका दक्षिणामूर्तिस्तोत्र और सुरेश्वराचार्यकृत उस-पर वार्तिक देखकर यह बात और भी स्पष्टरूपेण समझी जा सकती है। यहाँ संक्षेपमें इस बातको दिखलाया जाता है। 'दक्षिणामूर्ति' त्रिपुरा-सम्प्रदायका शब्द है। 'दक्षिणामूर्ति-संहिता,' 'दक्षिणामूर्ति-उपनिषद्' प्रभृति उक्त सम्प्रदायके मतका प्रतिपादन करनेवाले प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। सुतरां, गुरुत्व किंवा स्वात्मदेवताका दक्षिणामूर्तिके आकारमें वर्णन करनेसे शङ्करका आगमानुराग प्रमाणित होता है। इस स्तोत्रके प्रथम श्लोकमें कहा गया है कि ज्ञानीकी दृष्टिमें विश्व स्वात्मगत तथा दर्पणमें प्रतिबिम्बित नगरवत् है। अर्थात् वस्तुतः यह विश्व अपने

the peculiar style of the hymn, and an impartial reference to, and an attempt to unify the peculiar doctrines of, the mutually opposed sects of Samaya Marga and Koula Marga, and lastly, the unanimous testimony of such writers as Lakshmi-dhara and Bhaskararaj--all these incline me to believe that the hymn is a genuine work of Sri Sankaracharya.'

--Preface to Soundarya-Lahari

(Mysore Oriental Series) p. vii.

* काशीवासी पण्डित श्रीयुत सीताराम शास्त्री दीर्घकालतक शृङ्गेरीमठमें रहे थे। उन्होंने वहाँ रहनेके समय सुरेश्वरकी टीकाको देखा था। उनके द्वारा इस टीकाके विषयमें हमने सुना था।

अन्तर्गत है, परन्तु मायासे बहिर्वत् जान पड़ता है। प्रबोधकालमें, मायाके नष्ट होनेपर पुनः यह अपने अद्वय आत्मस्वरूपमें ही साक्षात्कृत होता है। यहाँ विश्व स्वीकृत होता है; परन्तु वह चिन्मय है, अपने स्वातन्त्र्यके विलास एवं आत्मभित्तिस्थ चित्ररूपमें अङ्गीकृत है, जडरूपमें नहीं। द्वितीय श्लोकमें कहा है कि यह विश्व आविर्भावके पूर्व निर्विकल्पावस्थामें वर्तमान रहता है, यह स्वगतादि भेद-कल्पना-विहीन शक्तिमात्र है। जिसप्रकार अक्षुर उद्गमसे पूर्व बीजरूपमें रहता है, इसकी भी ठीक वही अवस्था है। पीछे मायाके द्वारा देश और कालके कल्पित होनेपर वह नाना प्रकारके विचित्र आकारोंमें प्रतिभात होता है। जो मायावीके समान, महायोगीके समान, केवल स्वेच्छासे इस वैचित्र्यमय विश्वका विजृम्भण करते हैं वही आत्मदेव हैं, गुरुदेव हैं। यहाँ यह जो मायावी और योगीके दृष्टान्त दिये गये हैं, प्रत्यभिज्ञा और त्रिपुरा-दर्शनमें भी ठीक यही दोनों दृष्टान्त हैं तथा जगत्की सृष्टि इच्छाशक्तिमूलक—उपादाननिरपेक्ष—है, इसका विचार किया गया है।†

प्रत्यभिज्ञाकारिकामें उत्पलदेव कहते हैं—

चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद् बहिः।

योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्॥

अर्थात् सृष्टि-शब्दका अभिप्राय है अन्तःस्थित पदार्थका बहिःप्रकाश। सभी पदार्थ चिदात्माके अन्तःस्थित हैं, केवल इच्छावश कभी-कभी कुछ-कुछ बहिःप्रकाशित होते हैं। यह बहिःप्रकाशन ही सृष्टिशब्दका अर्थ है। सुतरां, कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इसप्रकारकी सृष्टिमें उपादानकी अपेक्षा नहीं है। इच्छाशक्तिके अवलम्बनसे जब वस्तु-निर्माण होता है तब पूर्वसिद्ध परमाणुका प्रयोजन नहीं रहता। जिन्होंने योगीके सृष्टि-व्यापारको प्रत्यक्ष किया है वे इस दृष्टान्तकी सार्थकता सहज ही जान सकते हैं। कोई-कोई यहाँ कह सकते हैं कि योगीकी सृष्टि भी परमाणुसापेक्ष है—योगी जब इच्छाशक्तिका प्रयोग करते हैं तब उनकी प्रेरणासे समस्त परमाणु स्वयमेव आकर एकत्र हो जाते हैं। परन्तु अभिनवगुप्त उक्त कारिकाकी

† प्रत्यभिज्ञा-दर्शनके सिद्धान्तकी आलोचना करते समय इन विषयोंका विस्तृत विवेचन किया जा सकता है।

व्याख्या करते हुए कहते हैं कि इसप्रकारकी कल्पनाका कोई मूल नहीं—

नहि एवं वक्तुं शक्यम्—परमाणवो योगीच्छया झटिति संघटिताः कार्यमारभ्यन्ते इति । (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, पृ० १३८)

इसका कारण यही है कि परमाणुवादी साक्षात् रूपसे परमाणुओंद्वारा स्थूल वस्तुकी उत्पत्ति स्वीकार नहीं करते । वे मानते हैं कि बीचमें अवान्तर अवयवोंका व्यवधान होता है । घट-निर्माण करते समय केवल परमाणुसमूहको विशिष्ट संस्थानमें अर्थात् घटाकारमें सज्जित करना साक्षात् रूपसे सम्भव नहीं । परमाणुसे द्व्यणुक, द्व्यणुकके सम्मिलनसे त्रसरेणु—इसप्रकार क्रमशः स्थूलतर कार्यकी उत्पत्ति होती है । फिर कपाल निर्मित होनेके बाद दो कपालोंके परस्पर संयोगसे घटकी सृष्टि होती है । केवल यही बात नहीं । लौकिक सृष्टिमें अथवा उपादान-सापेक्ष सृष्टिमें निर्दिष्ट सहकारीका आश्रय आवश्यक है, शिक्षा और अभ्यासका प्रकर्ष आवश्यक है । नहीं तो वस्तु-निर्माण सम्भव नहीं है । परन्तु योगीकी सृष्टिमें इन सबकी कुछ भी अपेक्षा नहीं होती । सुतरां, यह कल्पना व्यर्थ है कि योगी भी पूर्वसिद्ध परमाणुका अवलम्बन करके सृष्टि करता है । योगिज्ञानकी ही ऐसी महिमा है कि आभास-वैचित्र्यमय पदार्थसमूह इच्छामात्रसे ही प्रकाशित होते हैं । असल बात यह है कि संवित् स्वातन्त्र्यमयी (free) है, जब उसमें इच्छाका उदय होता है तब अप्रतिघातरूप इच्छाके कारण अन्तःस्थित अर्थात् ज्ञानरूपमें अथवा आत्माके साथ अभिन्नरूपमें स्थित पदार्थसमूह ज्ञेयरूपमें अवभासित होते हैं । जो 'अहं' रूपमें द्रष्टाके साथ एकाकार था वही 'इदं' रूपमें पृथक्-भावमें परिस्फुट हो उठता है । कल्पित प्रमाता अर्थात् देहादिमें तादात्म्यबोधयुक्त द्रष्टाके समीप—परिच्छिन्न संवित्के सामने—यह पदार्थ बाह्य प्रतीत होता है ।

अतएव इस विश्वरूप आभास-वैचित्र्यका मूल

* माधवाचार्य सर्वदर्शनसंग्रहमें 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' शीर्षक प्रस्तावमें (आनन्दाश्रमसंस्करण पृ० ७८) 'ये तु वर्णयन्ति नोपादानं विना' इत्यादि वाक्यद्वारा इस मतका उल्लेख करते हुए खण्डन करते हैं, अर्थात् जो लोग कहते हैं कि योगीकी इच्छासे परमाणुओंके आकृष्ट होनेसे स्थूल वस्तु निर्मित होती है, उनके सिद्धान्तको वे असङ्गत प्रतिपादन करते हैं ।

चिदात्माकी स्वातन्त्र्य-शक्ति है । सुरेश्वराचार्य उक्त द्वितीय श्लोकके वार्तिकमें भी इसी प्रकार इच्छाशक्तिके उपादान-निरपेक्ष सृष्टि-सामर्थ्यका वर्णन करते हैं । वे दिखलाते हैं कि विश्वामित्र प्रभृति परिपक्वसमाधि ऋषियोंने उपादान, उपकरण और प्रयोजनके बिना भी केवल स्वेच्छामात्रसे सब प्रकारकी भोगसामग्रीसे परिपूर्ण स्वर्गलोककी सृष्टि की थी । यही योगि-सृष्टिका दृष्टान्त है । ईश्वर-सृष्टि भी इसी प्रकारकी है, क्योंकि वे स्वतन्त्र और सर्वशक्तिमान् (वार्तिक ४८) हैं । वे और भी कहते हैं कि ईश्वर कारक-व्यापारके बिना कर्ता, तथा प्रमाण-व्यापारके बिना सर्वज्ञ हैं, क्योंकि वे स्वप्रकाश हैं । उनके ज्ञातृत्व, कर्तृत्व प्रभृति उनकी स्वातन्त्र्यशक्तिके ही नामान्तर हैं । उनकी इच्छाशक्ति स्वच्छन्दकारितास्वरूप है, वह अन्यनिरपेक्ष तथा अप्रतिहत है । इसी इच्छाशक्तिके बलसे वे 'कर्तुम्' 'अकर्तुम्' और 'अन्यथा कर्तुम्' अर्थात् प्रवर्तन, निवर्तन और परिवर्तन करनेमें समर्थ हैं, यही स्वतन्त्रता है । योगी लोग इस इच्छाशक्तिके स्फुरणको ही 'साम्राज्य' कहते हैं—(दशम श्लोककी २१ वीं कारिका देखिये) । 'साम्राज्य' सर्वत्र आत्मभावका विकास है, जिनकी समाधि परिपक्व हो गयी है वही इसे प्राप्त करते हैं । यही परमैश्वर्य है—अन्यान्य विभूतियाँ इसकी तुलनामें कुछ भी नहीं हैं । आत्मा महेश्वर है, इसीलिये वार्तिक (१०।६) में सुरेश्वर कहते हैं—

यदीयैश्वर्यविप्रुड्भिर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।

ऐश्वर्यवन्तो भासन्ते स एवात्मा सदाशिवः ॥

आगेकी कारिकामें है कि पूर्णाहंता-लाभ होनेपर यह ऐश्वर्य स्वयं विकसित होता है, इसके लिये स्वतन्त्र चेष्टा नहीं करनी पड़ती । अग्निके साथ-साथ तापकी प्राप्ति के समान पृथक् रूपसे कोई यत्न नहीं करना पड़ता । स्तोत्रके दशम श्लोकमें शङ्कर स्वयं भी इस सर्वोत्तमता अथवा पूर्णाहंताका 'महाविभूति' के नामसे वर्णन करते हैं । यही अव्याहत ऐश्वर्य है, अणिमादि अष्टसिद्धियाँ इसका परिणाममात्र हैं । वह 'अहं' निर्विकल्प है, सुतरां अपरिच्छिन्न और पूर्ण है । यह न तो शुद्ध है और न मलिन है (४।३१) । नवम और दशम उल्लासके वार्तिक

+ ईश्वरोऽनन्तशक्तित्वात् स्वतन्त्रोऽन्यानपेक्षयतः ।

स्वेच्छामात्रेण सकलं सृजत्यवति हन्ति च ॥

(१।२, ९।४, १०।१०) में परमेश्वरकी मूर्तिको छत्तीस तत्त्वात्मक अर्थात् विश्वात्मक बतलाया गया है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि ये छत्तीस तत्त्व प्रत्यभिज्ञा और त्रिपुरा-दर्शनका सुपरिचित सिद्धान्त है। इन सब-पर विचार करनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि शङ्कर और सुरेश्वर इस ग्रन्थमें साक्षात् रूपसे आगमका ही अनुसरण करके चलते हैं ❁।

पहले जो सृष्टिमें उपादान-निरपेक्षताकी बात कही गयी है, शङ्करवेदान्तमें यही अभिन्ननिमित्तोपादानवादके नामसे परिचित है। अवश्य ही अद्वैतवाद माननेपर निमित्त और उपादानके भेदको अस्वीकार करना ही पड़ता है। परन्तु बात यह है कि शरीरकभाष्यमें ब्रह्मके मुख्य कर्तृत्वको स्वीकार नहीं किया गया है। शङ्कर स्पष्ट कहते हैं कि ईश्वरत्व, सर्वज्ञत्व और सर्वशक्तित्व वास्तविक नहीं है, वह अविद्यारूप उपाधिका परिच्छेदनिबन्धन है, अतः कल्पित है—

तदेवमविद्यात्मकोपाधिपरिच्छेदापेक्षमेवेश्वरस्येश्वरत्वं सर्वज्ञत्वं सर्वशक्तित्वञ्च न परमार्थतो विद्यायापास्तसर्वापाधिस्वरूप आत्मनीशित्रीशितव्यसर्वज्ञत्वादिव्यवहार उपपद्यते।

(वेदान्तसूत्र २।१।१४ भाष्य)

इस भाष्यांशसे स्पष्ट समझा जा सकता है कि चिदात्मका ईश्वरत्व अविद्यामूलक है, स्वतःसिद्ध नहीं। सुतरां, मुक्तावस्थामें जब विद्याके आलोकसे अविद्यान्धकार तिरोहित हो जाता है तब ईश्वरत्व नहीं रहता। परन्तु दक्षिणामूर्ति-स्तोत्रके दशम श्लोकमें शङ्कर स्पष्ट लिखते हैं कि ईश्वरत्व रहता है, सर्वात्मतास्वरूप महाविभूति रहता है, पूर्णाहंता रहती है। क्योंकि यह आत्मस्वरूपसे विलक्षण नहीं है, यह आत्मदेवका स्वभावभूत है, अविद्या-निमित्तक नहीं। सुरेश्वराचार्य भी यही बात कहते हैं—

ऐश्वर्यमीश्वरत्वं हि तस्य नास्ति पृथक् स्थितिः।

पुरुषे धावमानोऽपि छाया तमनुधावति ॥

ईश्वरभाव और शुद्ध चैतन्यभाव पृथक् नहीं हैं। सुतरां, आत्मज्ञान होनेपर ऐश्वर्य-लाभ अपने आप हो जाता है।

* स्वयंप्रकाश, रामतीर्थ प्रभृति टीकाकारोंने प्रत्यभिज्ञा और त्रिपुरा-सिद्धान्तमें अनेक स्थलोंपर श्लोक और वार्तिककी व्याख्यामें भूलें की हैं। मूलमें जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन हुआ है, टीकामें उसका आभास भी नहीं है।

८ त्रिपुरा और प्रत्यभिज्ञा-मतका पारस्परिक सम्बन्ध—
प्रसङ्गतः हमने प्रत्यभिज्ञाशास्त्रके साथ त्रिपुरा और स्पन्द-मतके घनिष्ठ सम्बन्धके विषयमें कहा है। जो आगम एकका आकर-ग्रन्थ है, दूसरेका भी वही है। उपासनाकी पृथक्ताको बचाये रखनेके लिये अवश्य ही पृथक् प्रस्थान रचे गये हैं, परन्तु वे एक ही मूलके ऊपर प्रतिष्ठित हैं। पद्धतिके भेदको छोड़कर तार्किक दृष्टिसे दोनोंके फलमें कोई भेद नहीं दाख पड़ता। इसीलिये हम देखते हैं कि प्राचीन आचार्योंने त्रिपुरा-सिद्धान्तके सम्बन्धमें लिखते समय शिवसूत्र, प्रत्यभिज्ञाहृदय, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, तन्त्रालोक प्रभृति सुप्रसिद्ध शैवग्रन्थोंसे प्रमाण संग्रह किये हैं। इसी प्रकार दूसरी ओर उत्पलदेव, क्षेमराज, अभिनवगुप्त, महेश्वरानन्द प्रभृति शैवाचार्योंने प्रयोजनानुसार योगिनीहृदय, कामकला-विलास, त्रिपुरसुन्दरामन्दिर प्रभृति ग्रन्थोंका प्रामाण्य स्वीकार किया है। जिसप्रकार सांख्य और योगमें निकट सम्बन्ध है उसी प्रकार त्रिक-मत और त्रिपुरा-मतमें भी है। परशुराम-कल्पसूत्र, विन्दुसूत्र, तन्त्रराज, त्रिपुरारहस्य, नित्याहृदय, वामकेश्वर-तन्त्र, परमानन्द-तन्त्र सौभाग्यरत्नाकर प्रभृति त्रिपुरा-मतके श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। भास्करराय, कवि रामेश्वर, लक्ष्मोधर, उमानन्दनाथ, अमृतानन्द प्रभृति इस मतके उत्कृष्ट व्याख्याता हैं। इस-प्रकार पर्यालोचना करनेसे अच्छी तरह समझा जा सकता है कि प्रत्यभिज्ञा-दर्शनके साथ त्रिपुरा-सिद्धान्तके दार्शनिक अंशकी अर्थात् ज्ञानकाण्डकी ऐसी कोई पृथक्ता नहीं है।

परन्तु एक बात अवश्य स्मरण रखनी चाहिये। दोनों ही मतोंमें छत्तीस तत्त्व माने गये हैं। इनके परे जो है वह तत्त्वातीत है। संसार इन्हीं छत्तीस तत्त्वोंका समष्टि है। तत्त्वातीतसे हो तत्त्वोंका उद्भव होता है, इसलिये दोनों मूलमें एक ही हैं। इसीलिये वह परम वस्तु साथ-ही-साथ तत्त्वातीत अर्थात् विश्वोत्तीर्ण भी है और सर्वज्ञत्वमय, अतः विश्वात्मक भी है। इस विश्वमें पैंतीस और छत्तीस संख्यक तत्त्व हैं। जिसका पारिभाषिक नाम शक्ति और शिव है, वह नित्य है। यहाँतक कि इसका आविर्भाव और तिरोभाव नहीं है, यह सदा उदित है। इसलिये वास्तवमें पृथिवीसे लेकर सदाशिव-तत्त्वतक ३४ ही तत्त्व विश्वनामसे अभिहित होनेयोग्य हैं। अतः सृष्टि-शब्दसे सदाशिव प्रभृति तत्त्वमालाका क्रमशः आविर्भाव समझना चाहिये।

इस आविर्भावका बीज, जिसका क्रमविकास ही विश्व है, 'शक्ति' कहलाता है। इस शक्तिके साथ शिव सदा मिलित रहते हैं। शक्ति ही अन्तर्मुख होनेपर शिव है और शिव ही बहिर्मुख होनेपर शक्ति है। अन्तर्मुख और बहिर्मुख, दोनों भाव सनातन हैं, क्योंकि परमेश्वर नित्य ही 'पञ्चकृत्यकारी' हैं। शिवतत्त्वमें शक्तिभाव गौण और शिवभाव प्रधान है—शक्तितत्त्वमें शिवभाव गौण और शक्तिभाव प्रधान है। परन्तु जहाँ शिव और शक्ति दोनों एकरस हैं वहाँ न शिवका प्राधान्य है और न शक्तिका। वह साम्यावस्था है। यही नित्य अवस्था है। यही तत्त्वातीत है। कोई-कोई इसे सैंतीसवाँ तत्त्व कहते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि इसके सम्बन्धमें न तो कुछ कहा ही जा सकता है और न कुछ सोचा ही जा सकता है। यही सबके चरम लक्ष्य हैं। शैवोंके ये परमशिव, शाक्तोंकी पराशक्ति और वैष्णवोंके श्रीभगवान् हैं। परन्तु यह याद रखना होगा कि ये सब नाम भी केवल नाममात्र हैं। व्यवहारकी सुगमताके लिये इनका कल्पित व्यपदेश है।

१. आगम और सूफीमत—त्रिपुरा-मतके साथ प्रत्यभिज्ञा-मतका मौलिक अभेद स्थापित किया गया। इन दोनों मतोंके साथ गौडीय वैष्णव-सम्प्रदायके सिद्धान्तका ऐतिहासिक सम्बन्ध जान पड़ता है। गौडीय सिद्धान्तका विस्तृत वर्णन करनेके समय कभी इस विषयकी आलोचना की जायगी। किन्तु केवल यही नहीं; हमारे विश्वाससे सूफीमतके साथ भी त्रिपुरादि-सिद्धान्तका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अबतक इस विषयकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं गया है। इसलिये इस सम्बन्धमें दो-चार बातें कहकर अभी इस लेखका उपसंहार किया जायगा।

क्रेमर (Von Kremer), डोज़ी (Dozy), साचि (Sylvestre de Sacy) प्रभृति आचार्योंका मत है कि सूफीलोग अपने सिद्धान्तके लिये वेदान्तदर्शनके अत्यन्त कर्णी हैं। जर्मनीके सुप्रसिद्ध कवि गेटेका भी यही विश्वास था। उसके 'West Ostlicher Divan' नामक ग्रन्थमें इसका प्रमाण पाया जाता है। दूसरे पक्षमें निकल्सन (Nicholson), गिब (Gibbe) प्रभृति विद्वान् समझते हैं कि नव-प्लेटोनिक (Neo-platonic) मतके साथ सूफी-मतका सादृश्य अधिक है। इस विरुद्ध सिद्धान्तका सामञ्जस्य हो सकता है कि नहीं; अथवा

इनमें कौन-सा सिद्धान्त समीचीन है, किंवा दोनों समान-रूपसे अप्राप्त हैं, इन बातोंकी आलोचना यहाँ आवश्यक नहीं है। हमें केवल यहाँ कहना है कि सूफी-सम्प्रदायके सिद्धान्त और आचारविशेषके साथ प्रत्यभिज्ञा, त्रिपुरा और गौडीय वैष्णवमतका सादृश्य परिदृष्ट होता है।

सूफीमतके दर्शनोंमें स्थूलतः तीन सिद्धान्तोंका परिचय मिलता है—

१—पहला यह है कि परमार्थ-तत्त्व चिन्मयी इच्छा-शक्ति (Self-conscious will) स्वरूप है, जगत् उसीका परिच्छिन्न विकास है। इस सिद्धान्तके समर्थकोंका कहना है कि भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म ही प्रधान है तथा किसी-किसीके मतसे तो यही एकमात्र उपाय है—ज्ञान नहीं। कर्मसे निष्ठा, सदाचार तथा अशुभके सम्पर्कसे उद्धार पानेके लिये भगवत्संसर्गकी तीव्र आकांक्षा समझनी चाहिये।

२—दूसरा यह है कि परमार्थतत्त्व एक और नित्य सौन्दर्यस्वरूप है। चिरसुन्दरका यह स्वभाव है कि वह अपने भावमें विभोर होकर विश्वदर्पणमें अपने 'मुख' को—आत्मस्वरूपको निरन्तर ही देखता रहता है। अतएव जगत् प्रतिबिम्बमात्र है, परिणाम नहीं है। सौन्दर्यका आत्मप्रकाश ही सृष्टिका कारण है—यह बात मीर सय्यद शरीफने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है। सूफी कवियोंमें इस-प्रकारका एक हदीश प्रचलित है।^१

कहा जाता है कि जब दायदने भगवान्से जीव-सृष्टिके उद्देश्यके सम्बन्धमें प्रश्न किया तो भगवान्ने उसे उत्तर दिया—

I was a Hidden Treasure, therefore was I fain to be known, and so I created creation in order that I should be known.

अर्थात् 'गोपन-स्थितिमें अकेले न रह सकनेके कारण

* महम्मदमें प्रकटित देववाणीको इस्लामधर्म-ग्रन्थोंमें 'हदीश' कहा जाता है। इस वाणीके वक्ता सादात् भगवान् हो सकते हैं, महम्मद केवल आधारमात्र हैं। अर्थात् महम्मदके कण्ठको अवलम्बित कर, आविष्ट कर भगवान् स्वयं ही इसप्रकारकी वाणीके वक्ता हो सकते हैं। वहाँ इसे 'हदीश-ए-नुदसि' कहा गया है। यदि इस वाणीके यथार्थ वक्ता और यन्त्र स्वयं महम्मद हों तो इसप्रकारके हदीशको 'हदीश-ए-शरीफ' कहते हैं।

भगवान् ने आत्मप्रकाशके लिये सृष्टि की।' परन्तु विरोधके बिना आत्मप्रकाश सम्भव नहीं है। भगवान् अखण्ड सत्य, सौन्दर्य और मंगलस्वरूप हैं, वे भावमय हैं। उन्होंने अपने स्वातन्त्र्य-बलसे एक विराट् अभाव, एक महाशून्य (Not being) का आविर्भाव किया। इस अभावरूप दर्पण-में भावमयका प्रतिबिम्ब पड़ा। वह अभाव-प्रतिबिम्बित भाव ही विश्व है। इसी कारण विश्व उभयात्मक और परिवर्तनशील है। इसमें भाव और अभाव, दोनोंके स्वभाव परिलक्षित होते हैं। मनुष्य इस विश्वात्मक-प्रतिबिम्बका चक्षुस्वरूप है। प्रतिबिम्बस्थ चक्षुकी पुतलीमें जिसप्रकार द्रष्टा (बिम्ब) की पूर्ण प्रतिच्छवि देखी जाती है उसी प्रकार इस अनन्त विश्वमें एकमात्र मनुष्यमें ही भगवान् की पूर्ण प्रतिच्छवि वर्तमान है। मनुष्य भी विश्वका ही अंश है, इसीलिये मनुष्यमें भी भाव और अभाव, दोनोंका एक साथ समावेश है। इस अभावांशको दूरकर पूर्णभाव-स्वरूप भगवत्स्वरूपमें प्रतिष्ठित होना ही मनुष्य-जीवनका उद्देश्य है। परन्तु इस अभावांशको दूर करनेके लिये हमें 'अहं' भावका दमन करना होगा। यह 'अहं' भाव ही समस्त अनर्थोंका मूल है। सूफीलोग कहते हैं कि भगवान् ही जब एकमात्र सत्य वस्तु हैं और जब सभी मिथ्या है तो हमें अभिमान करनेका कोई वास्तविक कारण नहीं है। इस अभिमान-निवृत्तिका एकमात्र उपाय है प्रेम। एक बार हृदयमें भगवत्प्रेमके उदित होनेपर सारा अभिमान गल जाता है, सारे अभाव मिट जाते हैं, मायाका राज्य निमेषमात्रमें कहाँ-का-कहाँ विलीन हो जाता है, चित्त अद्वैत प्रेमस्वरूपमें, पूर्ण सौन्दर्यमें विश्राम पा जाता है। यह सौन्दर्य और प्रेम अनन्त और मुक्त है, इसमें न आदि है और न अन्त, इसमें ऊँच-नीच, दक्षिण-वामका भेद नहीं है। यहाँ शक्ति और शक्तिमान् अभिन्न हैं (नसफी-कृत 'मकसदी अकसा' देखिये)। नसफी कहते हैं कि मनुष्य—जीव पूर्णका ही अंश है, परन्तु भ्रमवश वह अपनी पृथक् सत्ता कल्पित कर कष्ट पाता है। जन्मसे ही वह पूर्णकी ही गोदमें स्थित है, तो भी मिथ्या विरहकी चिन्तामें मर रहा है। विरहबोध, भेदबोध अज्ञानजनित है; वास्तविक भेद आभासमात्र है, यथार्थ नहीं।

उमर खैयाम, इब्र तैमिया और वाहिद मामूद प्रभृति अद्वैतवादके विरुद्ध खड़े हुए थे। मामूदने एक

सम्प्रदाय प्रवर्तित किया था, महाकवि हाफिज उसी सम्प्रदायके थे। ये लोग विश्वको नित्यसिद्ध अणुसमष्टि मानते थे। किन्तु इनके मतसे ये अणु (आफ़ाद) जड़ नहीं, चैतन्यमय हैं—अवश्य ही चैतन्यके विकासका तारतम्य होता है।

३—तीसरा यह है कि परमार्थवस्तु विज्ञान या ज्योतिःस्वरूप है। वह एक ओर अभिन्न है, परन्तु इसमें वैचित्र्य-सम्पादक भेद-प्रतिनिधिभावकी सत्ता है। यह स्वरूपज्योतिः नित्य स्वप्रकाश है। इसके सिवा जो कुछ है सब इसाँके आश्रित है, अधीन है, इसीका शक्तिस्वरूप है। उसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। ज्योति भाव है, तम अभाव है—ज्योतिका अभाव या अन्धकार है। इसको प्रकाशित करना ही ज्योतिका स्वभाव है। ज्योति सब क्रियाओंका मूल है। स्थानपरिच्युति स्थूल क्रिया है। प्रकृत क्रिया स्पन्दारमक है। इसी स्पन्दनके बलसे अनन्त रश्मिमाला के द्रसे निकलकर चारों ओर बिखरती है। रश्मिसे पुनः रश्मिका उदय होता है। परन्तु क्रमशः रश्मि क्षीण होती जाती है। तब फिर इस क्षीणावस्थामें पड़ी हुई रश्मिसे नवीन रश्मिकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। ये रश्मियाँ ही देवता हैं। इन देवताओंके मध्यसे ही समग्र जगत् मूलज्योतिसे प्रकाश और अमृत (चिदानन्द) प्राप्त करता है। ऊपर जो तम, अन्धकार—अप्रकाशकी बात कही गयी है वह प्रकाशकी ही एक और दिशा है। सांख्यशास्त्र और अरिष्टदलने जिसप्रकार इसके स्वातन्त्र्यकी कल्पना की है, ये लोग वैसा नहीं करते।

जो हो, अब इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं। संक्षेपमें जो कहा गया है इसीसे हमारा वक्तव्य स्पष्ट हो जाता है। ऊपर जो तीन सिद्धान्त लिखे गये हैं उनका स्वरूप आगम-शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक वर्णित है। तीन मार्ग ही त्रिविध उपायस्वरूप हैं। क्रमशः आणवोपाय, शास्त्रवोपाय, शाक्तोपायके साथ इनका कुछ अंशमें सादृश्य जान पड़ता है। दूसरा सिद्धान्त भारतवर्षमें बहुत दिनोंका परिचित मत है। इस मतसे भगवान् सौन्दर्यस्वरूप और चिर सुन्दर हैं, आनन्दरूप और आनन्दमय हैं। सूफी लोग नररूपमें इसकी पराकाष्ठा देख पाते हैं। जिन लोगोंने सूफी कवियोंकी काव्य-ग्रन्थमालाका ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि सूफी लोग सुन्दर नरमूर्तिकी उपासना, ध्यान

और सेवा करना ही परमानन्द-प्राप्तिका साधन मानते हैं। इतना ही नहीं, वे कहते हैं कि मूर्ति किशोरावस्थाकी हो तो रससंस्कृतिमें सहायक होता है। किसीके मतसे पुरुषमूर्ति श्रेष्ठ है तो किसीके मतसे रमणीमूर्ति श्रेष्ठ है। परन्तु सूफी लोग कहते हैं कि उस वस्तुमें प्रकृति-पुरुष-भेद नहीं है, वह अभेद-तत्त्व है। यही क्यों, उनके गजल, रुबाइयात, मसनवी आदिमें जो वर्णन मिलता है, उससे किशोरवयस्क पुरुष किंवा किशोरवयस्का स्त्रीके प्रसङ्गका निर्णय नहीं किया जा सकता। टोकाकारोंमेंसे रुचिवैचित्र्यके अनुसार कोई पुरुषभावमें व्याख्या करते हैं और कोई रमणीभावमें करते हैं। बाह्य साधनमें भी यह भेद लक्षित होता है। यह केवल संस्कार है; परन्तु मूलवस्तु न पुरुष है न प्रकृति है, बल्कि वह दोनोंका अभेदात्मक सामरस्य है, इसमें किसीको सन्देह नहीं। जगत्में जितना सौन्दर्य है, वह सब उस पूर्ण सौन्दर्यके कणमात्र विकासके कारण ही है, वह उसीको विभूतिमात्र है, उसको छायामात्र है। वह एक पूर्ण सौन्दर्य ही मानों अकेला न रह सकनेके कारण कालके ऊपर महाकालके ऊर्ध्वदेशमें प्रस्फुटित हो पड़ा है—वहो जगत्स्वरूपमें खण्ड-सौन्दर्यमय होकर विकसित होता है। अथवा वह मानों अपनेमें ही अपने स्वरूपके प्रतिबिम्बको अपने आप ही देखता है, यह प्रतिबिम्ब ही विश्व है। आगम भी क्या ठीक यही बात नहीं कहते? नटनानन्दनाथ चिद्वर्ली या कामकलाकी टोकामें कहते हैं कि जिसप्रकार कोई अति सुन्दर राजा अपने सामनेके दर्पणमें अपने ही प्रतिबिम्बको देख उस प्रतिबिम्बको 'मैं' समझता है, परमेश्वर भी उसी प्रकार अपनी ही अधीन आत्मशक्तिको देख 'मैं पूर्ण हूँ' इसप्रकार आत्मस्वरूपको जानते हैं। यही पूर्णाहंता है। इसी प्रकार परम शिवके सङ्गसे पराशक्तिका स्वान्तःस्थ प्रपञ्च उनसे निर्गत होता है। इसीका नाम विश्व है। सचमुच भगवान् अपने रूपको देखकर आप ही मुग्ध हैं—सौन्दर्यका स्वभाव ही यही है। श्रावैतन्यचरितामृतमें है—

रूप हेरि आपनार कृणेर लगे चमत्कार

आलिङ्गिते मने उठे काम ।

* E. J. W. Gibbe का A History of Ottoman Poetry, Vol, I, p. 65 देखिये ।

यह चमत्कार ही पूर्णाहंता-चमत्कार है, काम या प्रेम इसीका प्रकाश है। यहाँ शिव-शक्ति-सम्मिलनका प्रयोजक और कार्यस्वरूप है—आदिरस अथवा शृङ्गाररस है। विश्वसृष्टिके मूलमें ही यह रस-तत्त्व प्रतिष्ठित है। प्रत्यभिज्ञा-दर्शनमें जो ३५ और ३६ तत्त्व अथवा शक्ति और हैं, त्रिपुरा-सिद्धान्तमें वही कामेश्वर और कामेश्वरी हैं, और गौडीय वैष्णवदर्शनमें वही श्रीकृष्ण और राधा हैं। शिव-शक्ति, कामेश्वर-कामेश्वरी, कृष्ण-राधा एक और अभिन्न हैं, यह सुप्रसिद्ध है। सूफीलोग भी यही बात कहते हैं। यही चरम वस्तु त्रिपुरा-मतमें 'सुन्दरी' अथवा 'त्रिपुर-सुन्दरी' है। शङ्कराचार्यकी सौन्दर्यलहरीमें इसीके स्वरूपका वर्णन है। सौन्दर्यलहरीके १२ वें श्लोकमें कहा है कि, 'पूर्ण सौन्दर्य अनन्त है, उसकी तुलना नहीं है। कवि उसका वर्णन नहीं कर सकते, अप्सराओंका सौन्दर्य उसके लेशमात्रके बराबर भी नहीं है। देवाङ्गनाएँ ही उसके दर्शनके लिये उत्सुक रहती हैं, सो नहीं; समग्र जगत् उसके लिये आकुल है। इसी सौन्दर्यके कणमात्रको प्राप्तकर विष्णुने मोहिनीमूर्तिसे साक्षात् शङ्करको भी मोहित कर दिया था। इसीकी कृपासे मदन मुनिजनोंके मनको मोहित करते हैं।' सौन्दर्यलहरीके पञ्चम श्लोक और वामकेश्वर महातन्त्रकी चतुःशतीमें भी यही बात कहाँ गयी है।

इस सुन्दरीके उपासक इसकी उपासना चन्द्ररूपमें करते हैं। चन्द्रकी सोलह कलाएँ हैं, सभी कलाएँ नित्य हैं। इसलिये सम्मिलित भावसे इनका नित्यषोडशिकाके नामसे वर्णन किया गया है। परन्तु पहली १५ कलाओंका उदय-अस्त होता है, हास-वृद्धि होती है; पर सोलहवींकी नहीं होती। वहो अमृता नामकी चन्द्रकला है। वैयाकरणलोग इसीको 'पश्यन्ती' वाणी कहा करते हैं। दर्शनशास्त्रमें इसका पारिभाषिक नाम आत्मा है, मन्त्रशास्त्रमें इसीको मन्त्र या देवताका स्वरूप कहा गया है। हम जिसे पूर्णचन्द्र कहते हैं, वस्तुतः वह पूर्णचन्द्र नहीं है, क्योंकि उसका क्षय और उदय होता है। जो वास्तविक पूर्ण है, उसमें न्यूनधिकभाव नहीं रह सकता। इसप्रकारकी पूर्णता षोडशी कलामें ही है, वह नित्योदित, अमृतस्वरूप और अखण्ड है। वही महात्रिपुरसुन्दरी ललिता हैं, सौन्दर्य और आनन्दका परमभाष्य है। यहाँ परा कलाचिदेकरसा—श्राविया है। पहली १५ कलाओंका

कालचक्रके साथ सम्बन्ध है, जो सूर्य और चन्द्रके व्यवधान और संयोगके फलस्वरूप प्रतिपदा आदि तिथिरूप हैं। सुतरां, निरर्थ होनेपर भी इनका आविर्भाव और तिरोभाव है; किन्तु षोडशी कला निरर्थ ज्योत्स्नामय, सहस्रदलकमलस्थ, निरर्थकलायुक्त, श्रीचक्रात्मक चन्द्रबिम्ब है। इसीलिये सुभगोदयमें कहा है—

षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।

इसी कारण उपासकके निकट सुन्दरी निरर्थ षोडश-वर्षीया रहती है। गौडीय सम्प्रदायमें भी ठीक यही बात कही गयी है। वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण निरर्थ षोडशवर्षीय हैं, निरर्थ किशोर हैं—

नित्यं किशोर एवासौ भगवानन्तकान्तकः।

प्रभुपाद श्रीरूप गोस्वामी अपने भक्तिरसामृत-सिन्धु (दक्षिण, प्रथमलहरी श्लोक १५८) में कहते हैं—

आषोडशाच्च कैशोरम्।

तत्पश्चात् जैसे सुन्दरी या ललिता कभी पुरुष है, कभी रमणी है, वैसे ही श्रीकृष्ण भी हैं। तन्त्रराजमें है—

कदाचिदाद्या ललिता पुरुषा कृष्णविग्रहा।

वंशीनादसमारम्भादकरोद् विवशं जगत्॥

यहाँ ललिता पुरुषरूपमें कृष्णभावमें प्रकटित है। एक और भी रहस्यकी बात है। उपासनाकी पद्धतिके अनुसार जप-समर्पणका यही साधारण नियम है कि स्त्री-देवताके वाम करमें और पुं-देवताके दक्षिण करमें जप-फल समर्पण किया जाता है। परन्तु ललिताके दक्षिण करमें ही जप-फल देनेकी व्यवस्था है। दूसरे पक्षमें श्रीकृष्णका रमणी-मूर्ति ग्रहण करना, मोहिनी मूर्तिमें प्रकट होना भी सुप्रसिद्ध है।

त्रिपुरा एवं गौडीय मत और आचारके साथ सूफियों-का सादृश्य अनेकों विषयोंमें देखा जा सकता है। प्रत्यभिज्ञा-मतावलम्बी काश्मीरीय शैवाचार्य भी परम शिवका इसी भावसे ध्यान किया करते हैं।

तत्पश्चात् तीसरा सिद्धान्त अथवा इशाराकी-मत भी आगममें पाया जाता है। यह मूल ज्योति ही चिदात्मा, चन्द्रबिम्ब (अथवा वैदिक मतविशेषमें सूर्यबिम्ब) है। सभी देवता उसीकी रश्मि हैं। इन्हें मातृका, वर्ण, कला, शक्ति प्रभृति नामोंसे पुकारते हैं। इस रश्मिमाला अर्थात् वर्णमाला या मातृका-चक्रका बहिर्विकास ही सृष्टि तथा अन्तःसंकोच ही प्रलय है।

अध्यापक गिब (Gibbe) भारतीय अद्वैत-प्रस्थानमें रस और प्रेमतत्त्वका सन्धान न पाकर (Ottoman Poetry, vol. 1, p. 64) सूफीमतके ऐतिहासिक सम्बन्ध-का आविष्कार करते समय नव-प्लेटोनिक (Neo-platonic) मतका आश्रय ग्रहण करते हैं। किन्तु भारतवर्षके आगममूलक सिद्धान्त और आचारकी गवेषणा करनेपर जान पड़ता है कि सूफी-सम्प्रदायके मतामतके साथ भारतवर्षका जितना सम्बन्ध है उतना अलेक्जेंड्रियाका नहीं है।

१० उपसंहार—हमने अति संक्षेपमें प्रत्यभिज्ञा-मतका साधारण परिचय दिया। प्रत्यभिज्ञा-शास्त्रकी ग्रन्थावली तथा काश्मीर और दक्षिणापथमें इसके प्रचारका इतिहास यहाँ नहीं दिये गये। आशा है कि पाठकवृन्द भारतीय दर्शनके इस विस्तृत अध्यायका पुनरुद्धार देखकर प्राचीन गौरवकी स्मृतिमें आनन्द लाभ करेंगे।

श्रीशिव-स्तुति

मख-हन, मरदन-मयन, नयन त्रय, बट-तर अयन रजत-परबतपर।

चरम-बसन, तन भसम, प्रमथ-गन, ससधर-धरन, गरल-गर-गरधर ॥

हरन-व्यसन-जन, करन-अमल-मन, भज मन ! असरन-सरन अमर-वर।

चढ़त बरद, बर बरद प्रनत-रत, हरत जगत-भय, जय जय जय हर ॥

—अर्जुनदास केडिया

शिव हाथमें !

(लेखक—भिक्षु श्रीगौरीशङ्करजी)

एक समयकी बात है कि पंजाब-प्रान्तान्तर्गत अम्बाला जिलेके भोवा नामक ग्रामका नम्बरदार किसी दूसरे स्थानसे घर लौट रहा था; परन्तु लौटते समय मार्गमें पड़नेवाली बरसाती नदी, जो जाते समय सूखी पड़ी थी, एकाएक उमड़ आयी। उसे पार करनेका कोई उपाय नहीं था, पर घर आना अत्यन्त आवश्यक था। बेचारा बड़े सोच-विचारमें पड़कर भगवान्‌को स्मरण करने लगा। इतनेमें उसने देखा कि एक जटा-जूट-धारी महात्मा, जो साक्षात् शिव प्रतीत होते थे, सामने आ खड़े हुए और अपनी अर्धतुकी कृपाके वशीभूत होकर, उसके बिना कुछ कहे ही बोले—‘क्यों, बच्चा ! नदी-पार जाना चाहता है ? पर करीब दो सौ कदम चौड़ी गहरी नदीको, नौका आदि साधनके बिना, कैसे पार करेगा ?’

बेचारा नम्बरदार आर्तभावसे उनके मुँहकी ओर ताकने लगा। उन परम कारुणिक महापुरुषने फिर उससे कहा—‘अच्छा, एक काम कर। अपने दोनों हाथ तो मेरे सामने कर।’ पथिकने तुरन्त आज्ञाका पालन किया। उसके हाथ पसारनेपर महात्माजीने उसके बायें हाथमें ‘शि’ और दाहिनेमें ‘व’ लिख दिया और बोले कि ‘जा, अब दोनों हाथोंको देखते-देखते चला जा।’ बस, महात्माजीके आदेशानुसार वह ऐसे नदी पार करने लगा मानों साधारण मैदानमें जा रहा हो। परन्तु जब कोई दस कदम नदी बाकी रह गयी तब एकाएक उसके मनमें यह भाव उठा कि अरे ! महात्माने इस ‘शिव’ को लिखकर कौन-सी करामात दिखलायी ? यह शिव-नाम तो मेरे माता-पिता बराबर लिया करते थे। शिवके सम्बन्धमें कथा-वार्ताएँ भी मैंने खूब सुनी हैं। फिर इस शिवमें और कौन-सी विशेषता है ? बस, यह भाव उसके अन्दर उठा ही था कि वह नदीमें गोते खाने लगा। मालूम हुआ कि गया। विवश होकर उन्हीं अशरण-शरणको पुकारा—‘भगवन् ! मेरी रक्षा करो।’ यह सुनते ही उस पार खड़े हुए महात्माने जोरसे पुकारकर कहा—‘अरे ! तू अपने उस शिवको छोड़कर इसी शिवका ध्यान कर।’ बस, महात्माकी वाणी सुनते ही उसका उठा हुआ अविश्वास जहाँ-का-तहाँ दब गया और वह अनायास ही नदी पार कर गया !

पाठक ! जब उस हाथमें लिखे हुए ‘शिव’ को देखने-मात्रसे वह व्यक्ति नदी पार कर गया तब तो अहर्निश ‘शिव-शिव’ रटनेसे क्या नहीं हो सकता ? हमें चाहिये कि हम अनवरतभावसे उसमें लग जायें।

शिवं शान्तं सुन्दरम्

(ले०—श्रीनलिनिकान्तजी गुप्त, श्रीअरविन्द-आश्रम, पाण्डिचेरी)

इस चञ्चल विशुद्ध जगत्‌के अन्तरालमें विराजित है समाहित स्थिति।

सृष्टिका, नानात्वका विचित्र वर्ण-विभ्रम विचित्रित होता है एक निभृत श्वेत-शुभ्र ज्योति-केन्द्रमेंसे।

प्रकृतिकी उद्भ्रान्त प्रवृत्ति विधृत है अटूट, अटल निवृत्तिके मध्यमें।

निखिल ऐश्वर्यमयी राजराजेश्वरी दशभुजाके आश्रय हैं दिगम्बर महादेव।

प्रकृतिकी शक्ति विपुल वेगसे दौड़ी जा रही है बाहरकी ओर, क्रमागत अपनेको प्रकटित करती हुई, बिल्वरती हुई। इसी प्रकार विपरीत दिशामें, उसीके साथ ताल-में-ताल मिलाकर एक अमित सङ्कर्षण-शक्ति चल रही है अपनेको अपनेमें ही सम्पुटित करके, सिकोड़ करके।

शिवका और एक नाम है रुद्र—वे इस प्रत्याहारके, प्रलयके आकर्षण हैं।

इसीलिये वे हैं नटराज !

वे रूपको निरन्तर तोड़ रहे हैं, उसे सर्वदा अरूपकी बात याद दिला देनेके लिये, इसलिये कि खण्डित नाम-धाममें बँध-कर सत्य कहीं जीर्ण शुष्क न हो जाय, प्राण न खो बैठे।

सङ्कीर्णताका, माया-मोहका कपाल-कङ्काल उनके ताण्डव-चालित पादविक्षेपसे दलित एवं चूर्ण-विचूर्ण हो रहा है।

शिव हैं सत्यकी ऋजुता—उनकी वही निर्निमेष तापस ऊर्ध्व-दृष्टि, जो कुटिलको सरल बनाती है, अस्पष्टको स्फुट करती है, द्विधाको स्थिर, निश्चित कर देती है।

ताण्डवकी गति है उपरति, निवृत्ति, समाधि, प्रलयकी ओर—अर्थात् अन्तरतमकी, ऊर्ध्वतमकी ओर।

नाम-रूप, देश-काल उसमें टूटते-फूटते चले जा रहे हैं।

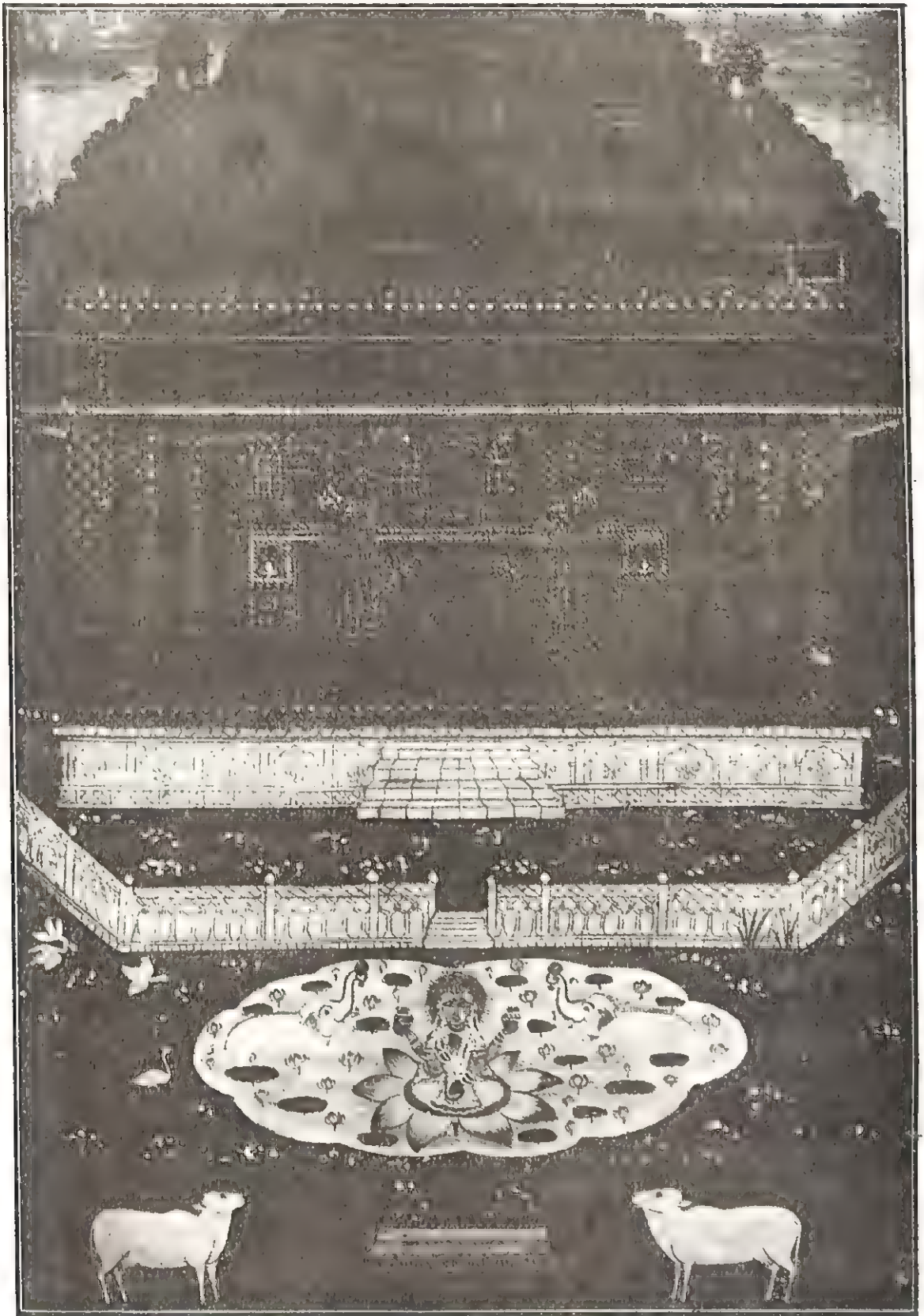
फिर उसीमें, उसी कल्याणसे क्रमशः नाम-रूप शुद्धतर होकर संगठित हो चला है, वही सब सृष्टि मूर्त हो चली है, जहाँ अधिकतर गोचर हो चला है अन्तरतम, ऊर्ध्वतम, सत्यतम।

जो रह गया था सबके पीछे घूमकर वही दिखायी दे रहा है विलकुल सामने।

जो अन्तरतम है वही फिर हो चला है बाह्यतम। जो ऊर्ध्वतम है वही आ खड़ा हुआ है अधस्तमके द्वारपर।

ध्यानके, समाधिके, प्रलयके ताप-जटारमें जो बीज जन्म ग्रहण कर रहा है व्युत्थानकी, प्रकाशकी ओर वही मञ्जरित विकसित हो चला है—क्रमशः शाखा-प्रशाखा, पत्र-पल्लव और फूल-फलसे रूपवान् होकर।

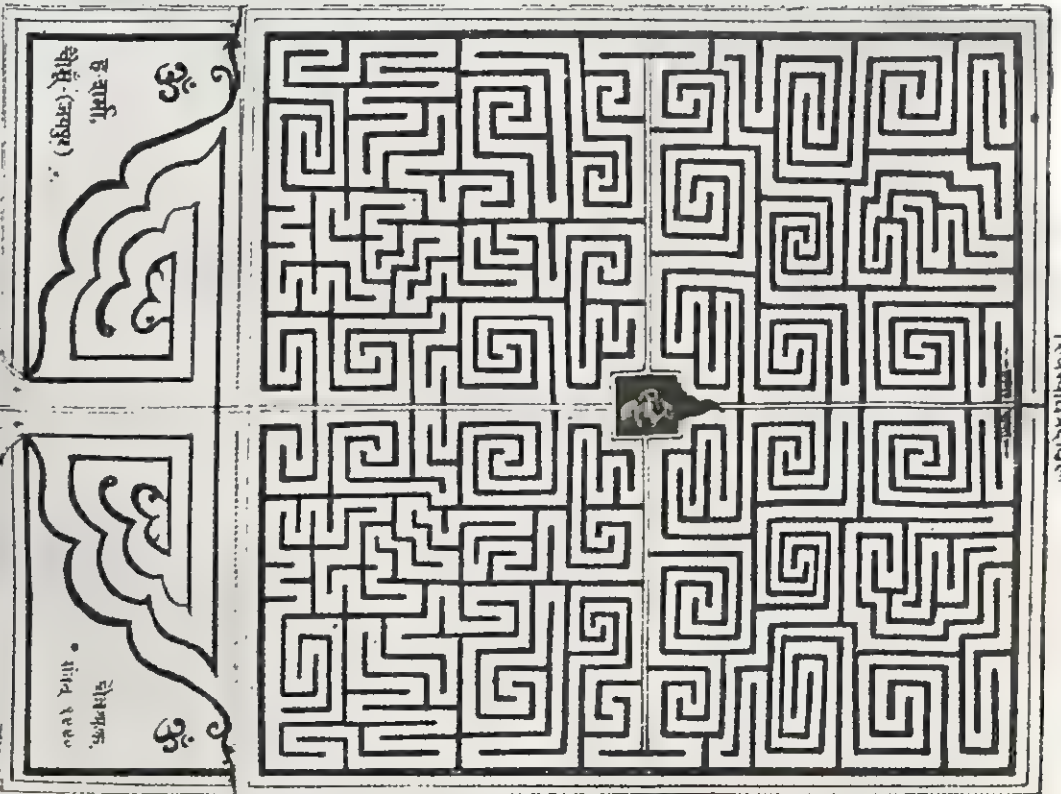
शान्तम् इसीलिये अन्तमें हो गया है सुन्दरम्।



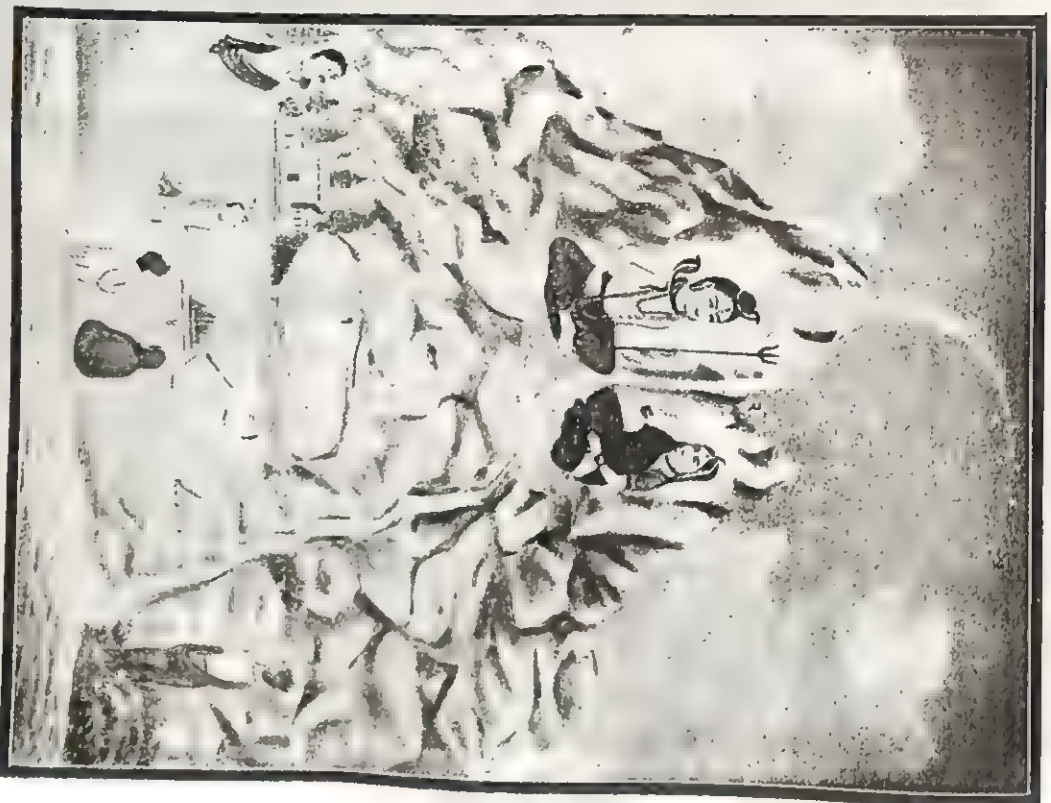
कैलाश-मणिभवन

कल्याण

विजयपुर प्रसिद्धि



विजयपुर प्रसिद्धि



विजयपुर

शिव

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

सर्वगं सर्वकर्तारं सर्वं सर्वावभासरम् ।
सर्वावलम्बनं शान्तं शिवं पूर्णं भजाम्यहम् ॥
विना यस्य कृपां नैव जीवानां मोक्षसम्भवः ।
कथं तं शङ्करं त्यक्त्वा देहं मोहमयं भजे ॥



मेरी प्यारी बाणी ! क्या अब भी बनी रहेगी अयानी ! अब तो हे सुभगे ! बन जा सयानी ! त्याग दे विषय-भोगों की विषमयी कहानी ! गाना आरम्भ कर दे शिवकी सुधामयी कथा सुहानी ! जबतक तू जगत्के गीत गाती रहेगी तबतक तुझे स्वप्नमें भी शान्ति नहीं मिलेगी ! पञ्च-फैसला करना छोड़

दे, वाद-विवाद करना त्याग दे, तर्क-वितर्क करती हुई बालकी खाल कबतक खींचा करेगी ! जितना बकवाद करेगी, उतनी ही दुःखी होगी, सुखी कभी नहीं होगी । सुखी तो शिवका गान करनेसे ही होगी । बेकन, स्पेन्सरकी फिलॉसफी पढ़नेसे विक्षेपके सिवा अन्य कुछ हाथ नहीं लगेगा, कल्याण तो शिव-ग्रन्थोंके अध्ययन करनेसे ही होगा । क्या तूने नहीं पढ़ा है कि देवर्षि नारद वेद-वेदाङ्ग, इतिहास-पुराण आदि बहुत-से ग्रन्थ पढ़ चुके थे और समस्त विद्याओंमें कुशल थे, फिर भी उनको लेशमात्र भी शान्ति प्राप्त न हुई ! उलटे अशान्ति बढ़ गयी । जब उन्होंने भगवान् सनत्कुमारसे शिव-तत्त्वका उपदेश लेकर भूमारूप शिवको भजा, तभी उनको शान्ति प्राप्त हुई । इसलिये हे बाणी ! अब अन्य सब कथाएँ छोड़कर शिव-कथा पढ़नेका अभ्यास कर । सब मन्त्रोंका त्याग करके शिव-मन्त्रका निरन्तर प्रेमपूर्वक आदर-सत्कार-सहित जप किया कर । शिव-भक्तोंके पावन चरित्र पढ़ा कर । सब प्रकारके गीतोंको तिलाञ्जलि देकर शिवके ही गीत गाया कर । यही कल्याणका मार्ग है, इसके सिवा अन्य कल्याणका मार्ग नहीं है । जो शिवको भजते हैं, वे निश्चय शिवको ही प्राप्त होते हैं और जो शिवरूप संसारको भजते हैं, वे अन्धकूप संसारमें करोड़ों जन्मोंतक पड़े हुए अनेक प्रकारके कष्ट उठाते हैं । इसमें श्रुति, स्मृति, युक्ति और विद्वानोंका अनुभव प्रमाण है । इसलिये हे बाणी ! विषय-भोगोंका नाम लेना तज दे और

कल्याणरूप शिवको भज ले ! शिवका नाम लेनेमें खर्च कुछ नहीं है, परिश्रम भी कुछ नहीं है, सहायताकी भी आवश्यकता नहीं है, विशेष बुद्धि भी नहीं चाहिये, जीभ हिलानेका काम है । चिलाकर जप, धीरे-धीरे जप । बहुत ही धीरे जप अथवा जीभ भी मत हिला । भीतर-ही-भीतर जप । सब प्रकारसे सुलभ है, लाभ अक्षय है, सब दुःख दूर हो जायँगे, समस्त चिन्ताएँ कपूर हो जायँगी । अद्भुत आनन्द आवेगा, देहतककी भी सुध भूल जायगी, आनन्द-सागरमें मग्न हो जायगी । इसलिये हे बाणी ! शिव-शिव-शिव कहती हुई शिवमें ही लीन हो जा !

हे प्यारे हाथ ! अबतक तू लम्बे-चौड़े हाथ मारता रहा, पर कुछ भी तेरे हाथ न आया ! कोयलोंकी दलाली-में हाथ काले ही हुए, अन्य कुछ स्वार्थ सिद्ध न हुआ । अब तू किसीको हाथ मत जोड़, शिवको ही हाथ जोड़ ; किसीके सामने हाथ मत फैला, शिवके सामने ही फला ; किसीका पूजन मत कर, शिवका ही पूजन कर ! बहुत चित्र खींच चुका, मिला कुछ नहीं, हाथ ही मलने पड़े ; शिवका चित्र खींचता तो लोक-परलोक दोनों सुधर जाते ! रेखागणित देखकर अबतक रेखाएँ ही खींचता रहा, उस बिन्दुको तूने आजतक नहीं जाना जिस बिन्दुमेंसे श्रद्धा, भक्ति और वैराग्य—ये तीन रेखाएँ निकलती हैं, जिस शिवरूप बिन्दुमेंसे समस्त रेखाएँ प्रकट होती हैं, उन्हीं शाश्वत शिवकी प्रतिमा बनाकर अब तू पूज, तभी तेरा कल्याण होना सम्भव है, नहीं तो संसार-चक्रमें घूमता हुआ बारम्बार यमराजका ग्रास ही होता रहेगा । शान्ति कभी भी नहीं पावेगा, शान्ति तो शिवलिङ्गके पूजनसे ही होगी । शैवतन्त्रोंमें स्थल-स्थलपर मणि, सुवर्णादिका शिवलिङ्ग बनानेका आदेश है, फिर भी मिट्टीके लिङ्गका ही सबसे अधिक माहात्म्य है, इसलिये मृण्मय लिङ्ग ही तुझे बनाना चाहिये । जिस अलौकिक मिट्टीमेंसे ब्रह्मासे लेकर स्थावर-जंगम सभी आकृतियाँ कल्पनामात्रसे बनायी गयी हैं, शैव लोग उसी अद्भुत मिट्टीके बने हुए शिवलिङ्गका पूजन करते हैं । जिस सत्यरूप त्रिकालाबाधित शिवरूप मृत्तिकामेंसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड शरावोंके समान बने हुए हैं, जिस

मृत्तिकाका 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि श्रुतियाँ वर्णन करती हैं, उसी मृत्तिकाका शिवलिङ्ग बनाकर 'शिव-शिव-शिव' करता हुआ, शिवका आलिंगन करता हुआ शिवमें ही लीन हो जा।

हे प्यारे पैर ! बहुत पैर फैलाये, अब तो मत फैला ! बहुत उछला, कूदा, फाँदा, घूमा; अब उछलना, कूदना, फाँदना और घूमना छोड़ दे ! दौड़-धूप करनेमें सिवा हानिके लाभ कुछ नहीं है, चलना-फिरना क्या है ? पैर तोड़ना ही है। वे ही अधिकारी धन्य हैं, जो कैलास-मन्दिरमें जा पहुँचे हैं ! वे ही सुकृति प्रशंसनीय हैं, जो कैलासपावन मन्दिरमें शिवके साथ निवास करते हैं। उन्हींका जन्म सफल है, जिनका घर कैलास है, जो स्वयंप्रकाश है, स्वयंज्योति है और स्वयंसिद्ध है। जिन्होंने उस धामको नहीं देखा, नहीं सुना और जो वहाँ जानेका यत्न भी नहीं करते, उनका जन्म निष्फल है, भाररूप है, माताको उन्होंने व्यर्थ ही कष्ट दिया है। मनुष्य-जन्मका यही लाभ है कि कैलासकी यात्रा करे, वहाँकी सैर करे, कैलासवासी शिवके दर्शन करे। वेदवेत्ताओंका कथन है कि रुद्र नामक परमात्मा सदा ही कैवल्यमें अर्थात् अखण्ड एकरस आत्मामें विलास करते हैं, उनके भक्त भी सदा ही उसी कैवल्यको प्राप्त होकर स्वयंप्रकाश हो जाते हैं। इसप्रकार सदा ही कैवल्यका विलास बना रहनेसे सकल जगत्को सुख देनेवाले शम्भुका वासस्थान, सदा ही कैलासके समान स्वयंप्रकाशमान बना रहता है और अनन्त-कोटि भक्तोंकी भीड़ हो जानेपर भी वहाँका कैवल्य नष्ट नहीं होता। हे पैर ! यदि तू सदाके लिये सुखी और स्वतन्त्र होना चाहता है, तो उसी कैलासकी यात्रा कर, वहाँ ही जा पहुँच और 'शिव-शिव-शिव' कहता हुआ वहीं सर्वदाके लिये ठहर जा। वहाँ ठहरनेसे ही तेरा चलना समाप्त होगा। 'कोसका चलना भी बुरा है'—यह विद्वानोंका वचन है। जबतक चलता रहेगा, पैर थकाता और दबवाता ही रहेगा, इसलिये पैर थकाना और पैर दबवाना अब छोड़ दे और कैलासको ही अपना नित्य-घर बना ले, वहीं पैर फैलाकर सदाके लिये सो जा।

हे भाई कान ! अब तो छोड़ दे अज्ञान, बन जा सुज्ञान ! सुदुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर भी और सन्त-महात्माओंका संग करके भी यदि तू विषय-भोगोंकी मरकथा ही सुनता रहा और शिव-पार्वतीकी अमरकथा नहीं सुनी, तब तो तू बहिरा ही अच्छा था, संसारियोंकी दन्तकथा सुनकर संसार-

अन्धकूपमें तो नहीं पड़ता। बृद्ध पुरुषोंका कथन है कि जिस कानने शिवकी अमरकथा नहीं सुनी, वह कान भूत-प्रेतोंका मकान है और जो कान शिवकी अमरकथा सुनता है, वह कान देवताओंके रहनेका दिव्य स्थान है। अमरकथा सुनने-सुनानेके लिये ही अद्वितीय एक ही शिष्य अपनी मायासे शिव और पार्वती दो रूप धारण करके उत्तराखण्डमें अमरकथा कहते और सुनते रहते हैं, यही उनकी क्रीडा है। वहीं चलकर शिवकी अमरकथा सुन, उसे सुनकर तू भी अमर हो जायगा। यदि तू कहे कि वहाँ तो कोई जा नहीं सकता, जो कोई वहाँ जाता है, उसे शिवजी शाप देकर पुरुषसे स्त्री बना देते हैं, तो यह बात नहीं है। अनधिकारी पुरुष ही शिवजीके शापसे स्त्री हो जाता है, अधिकारी पुरुषको शिवजी शाप नहीं देते। वह तो अमर ही हो जाता है, यह बात शुकदेवजीके दृष्टान्तसे सिद्ध है। अमरकथा सिंहिनीके दूधके समान है। जैसे सिंहिनीका दूध सुवर्णके पात्रमें ही ठहरता है, अन्य पात्रको फोड़कर निकल जाता है, इसी प्रकार अनधिकारी पुरुषके हृदयमें अमरकथा नहीं ठहरती, फोड़कर निकल जाती है। भाव यह है कि विषयासक्त पुरुष शिव-तत्त्वको समझ नहीं सकता, उसको शिवतत्त्व शून्य और नीरस जँचता है। इसलिये शिव-तत्त्वको न समझनेसे वह भोगोंको ही रसरूप जानकर उनमें ही आसक्त होता है, भोगोंमें आसक्त होनेसे उसे भिन्नता ही रुचती है और भेद-बुद्धि होनेसे वह भयरूप संसारको ही प्राप्त होता है। भोगोंमें आसक्त होना, भेद देखना और जन्म-मरणरूप भयको प्राप्त होना—यही पुरुषसे स्त्री बन जाना है। विषयासक्त भेददर्शी ही स्त्री है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। और विरक्त अभेददर्शी ही पुरुष है, चाहे स्त्री हो और चाहे पुरुष, इसीलिये विषयासक्त पुरुषको अमरकथा सुननेका अधिकार नहीं है। विरक्त बहिन-भाइयोंको ही अमरकथा सुननेका अधिकार है। विरक्त बहिन-भाई तो शिव-पार्वतीके क्रीडास्थानमें शुकदेवजीके समान निःशंक होकर चले ही जाते हैं और अमरकथा सुनकर अमर हो जाते हैं। संसारियोंको वहाँ जानेसे डर लगता है, वे अमरकथाके अधिकारी भी नहीं हैं, इसीलिये पूर्व आचार्योंने कहा है कि अभयमें भय देखनेवालोंको निर्दिकल्प-समाधिकी प्राप्ति असम्भव है। हे कान ! भय मत मान, भवानी-शंकरके क्रीडास्थानमें जाकर ही अमरकथाका पान कर ! यदि ऐसा नहीं कर सकता, तो शुकदेवजीकी

कही हुई अमरकथामें मन लगाकर 'शिव-शिव-शिव' सुनता हुआ ताल, स्वर और सरगमको लौंघकर 'सम' हो जा ! कृष्ण-कथा और शिव-कथामें भेद नहीं है, शिव ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही शिव हैं, इसमें रञ्जक भी सन्देह नहीं है। शिवके ही राम, कृष्ण, विष्णु आदि अनेक नाम हैं।

हे मेरी बहिना खाल ! कोमल तोशक-गद्दोंपर सो-सोकर फूलकर क्यों हुई जाती है पखाल ? स्पर्शके आधार, अधिष्ठान, अवधि शिवकी कर सँभाल ! चाहे जितने कोमल गद्दोंपर शयन कर, चाहे जितने रेशमी यस्त्र धारण कर, चाहे जितने रत्नजटित आभूषणोंसे अलंकृत हो, रहेगी तो तू चमड़ी ही, सुवर्णकी तो हो नहीं जायगी, फिर कोमलसे राग और कठिनसे द्वेष क्यों करती है ? जबतक तू राग-द्वेष करती रहेगी, तबतक शीतोष्ण आदि अनेक प्रकारके कष्ट सहती ही रहेगी। सर्प कोमल है, फिर भी कोई उसका स्पर्श नहीं करता। सर्पका स्पर्श तो एक बार ही मारता है, संसारकी कोमल वस्तुके स्पर्शमें राग करनेवाला तो करोड़ों जन्मतक मरता ही रहता है। भगवान्‌का गीतामें वचन है कि संस्पर्शसे—सम्बन्धसे उत्पन्न हुए जितने भोग हैं, वे सब दुःख देनेवाले और आदि-अन्तवाले हैं, उनमें विद्वान् रमण नहीं करते। इसलिये हे खाल ! यदि तुझे पहनने-ओढ़नेमें प्रेम हो, तो ज्ञानाम्रिकी भस्म शरीरमें लपेट ले, श्रद्धा, भक्ति, वैराग्य तीन रेखाओंका तिलक माथेपर लगा ले और समदृष्टिरूप रुद्राक्षमाला गलेमें डाल ले, इनके सिवा समस्त स्पर्शकी इच्छाका त्याग करके, हे बहिन ! अपने कारणरूप शिवकी खोज कर और उन्हींका स्पर्श कर। शिवका स्पर्श करनेसे तू इतनी कोमल और चिकनी हो जायगी कि पुण्य-पापरूप कर्मका जल तेरे ऊपर ठहर नहीं सकेगा और इतनी कठिन हो जायगी कि जन्म-मरणरूप संसार तुझमें प्रवेश नहीं कर सकेगा। जैसे पत्थरसे लगकर मिट्टीका ढेला बिखर जाता है, इसी प्रकार जन्म-कर्मरूप ढेला तुझ शिव-रूप ठोस पत्थरसे लगकर चूर-चूर हो जायगा। शिवका स्पर्श करनेसे तुझे ऐसा सुख होगा कि उसका वाणीसे वर्णन नहीं हो सकता। फिर तू दमड़ीकी चमड़ी नहीं रहेगी किन्तु पावनसे भी पावन और अमूल्य रसायन हो जायगी। भगवान्‌का गीतामें वचन है कि जो बाहरके स्पर्शमें मन न लगानेवाला आत्माके सुखको प्राप्त कर लेता है, वह ब्रह्मके योगसे युक्त मनवाला अक्षय सुखको भोगता है। हे प्यारी खाल ! यदि अक्षय सुख भोगना चाहती है, तो कोमल-

कठिन, शीतोष्ण आदि द्वन्द्वोंको मायामय जानकर परम सुखरूप शिवका 'शिव-शिव-शिव' कहती हुई स्पर्श करके अस्पर्शरूप शिवमें लीन होकर स्पर्शातीत हो जा !

हे दिव्यदृष्टिवाली आँख ! इस मिथ्या दृश्यको आँख फाड़-फाड़कर कबतक देखती रहेगी ? जहाँ देखेगी, वहीं सृष्टि दिखायी पड़ेगी, अन्त कभी नहीं आवेगा ! जहाँ दृष्टि रोकी कि सृष्टि समाप्त हुई। 'जहाँ दृष्टि वहाँ सृष्टि' यह वेदवेत्ताओंका वचन प्रमाणरूप है। समस्त पदार्थोंमें लाल रंग अग्निका है, श्वेत रंग जलका है और काला रंग पृथिवीका है, इसलिये समस्त पदार्थ अग्नि, जल और पृथिवीरूप हैं, इन तीनोंके सिवा जगत् कहीं नहीं है, क्योंकि वाणीमात्रसे कहनेमें आता है, वस्तुरूप नहीं है। जैसे सब पदार्थ अग्नि आदिमें कल्पित हैं, इसी प्रकार अग्नि आदि सदाशिवरूप परमात्मामें कल्पित हैं, इसलिये अग्नि आदि मिथ्या हैं और एक अद्वितीय शिव ही सत्य हैं। इसीलिये तत्त्ववेत्ता इस जगत्की श्मशानसे उपमा देते हैं और शिवको श्मशानवासी कहते हैं। जहाँ मृतक रहते हैं उस स्थानका नाम श्मशान है। इस जगत्में सब मृतक ही रहते हैं, इसलिये जगत् श्मशान है। इस श्मशानरूप जगत्को शिवने अपनी सत्तासे व्याप्त कर रक्खा है, इसलिये यहाँके मुद्दे चेतन दिखायी देते हैं। जो आँख इस श्मशानरूप जगत्में भी जीते-जागते शिवको देखती है, वही सच्ची आँख है और जो आँख श्मशानको चेतन करनेवाले शिवको नहीं देखती किन्तु जगत्‌रूप श्मशानको ही देखती है, वह आँख अन्धी आँख है अथवा मोरके पंखकी आँखके समान निरर्थक है। श्रुति कहती है कि ईश्वरके देखनेसे जगत् बना है और श्रुति यह भी कहती है कि आत्मा आँखमें दिखायी देता है। इन दोनों श्रुतियोंसे सिद्ध है कि जगत् ईश्वरकी आँखमें है और ईश्वर जगत्की आँखमें है। युक्ति भी है कि दर्पणमें पड़ा हुआ मुखका प्रतिबिम्ब मुखसे भिन्न नहीं होता किन्तु जल और तरङ्गके समान अभिन्न ही होता है। इसी प्रकार शिवसे भिन्न जगत् नहीं है और जगत्से भिन्न शिव नहीं है, फिर भी शिवकी मायासे मोहित पुरुषोंको मायारूप दर्पणमें पड़ा हुआ शिवका प्रतिबिम्ब जगत् तो दिखायी देता है और बिम्बरूप शिव दिखायी नहीं देते, यह आश्चर्य है ! जगत्में शिवका दर्शन न होनेसे भेद दिखायी देता है, भेद दीखनेसे राग-द्वेष होता है, राग-द्वेष ही संसाररूप अनर्थके कारण हैं। हे आँख ! गुरु-शास्त्रके उपदेशसे भेद देखना छोड़ दे, अनेकमें भी एक शिवका ही दर्शन कर और पश्चात्

अनेकका देखना छोड़कर एक शिवका ही दर्शन कर, इसीमें कल्याण है। भेददृष्टिवाले होनेसे ही सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि और मृत्यु समर्थ देव अवतक चक्रमें हैं। इसलिये हे आँख ! जगत् देखना छोड़कर 'शिव-शिव-शिव' देखती हुई अग्नि, सूर्य, चन्द्ररूप त्रिनेत्रधारी शिवके नेत्रोंमें सदाके लिये प्रवेश कर जा।

हे मेरी प्यारी रसभरी जीभ ! तू सब रसोंको जाननेवाली है, इसलिये वेदवेत्ता तुझे रसना और रसज्ञा नामसे पुकारते हैं। प्रत्यक्ष देखनेमें आया है कि रेवतीवल्लभ वैश्व पचास द्रव्योंके बने हुए चूर्णमेंसे एक रसी चूर्ण चखकर पचासों चीजोंको बता देते हैं, फिर तेरे रसज्ञा होनेमें क्या सन्देह है? फिर भी हे बहिन ! घट्टरस पहचान लेनेसे तत्त्वदर्शी पुरुष तुझे रसना या रसज्ञा नहीं कह सकते, वे तो तुझे तभी रसज्ञा कहेंगे, जब तू रसोंके भी रस शिवको पहचान लेगी। श्रुति कहती है कि 'रसो वै सः' अर्थात् रस तो शिव ही हैं, अन्य रस तो रसाभास हैं, रस नहीं हैं किन्तु रसके आभास यानी छाया हैं। भगवान् गीतामें कहते हैं कि 'जलोंमें मैं रस हूँ'—भगवत्के इस वचनके अनुसार सब रसोंमें शिव ही रस हैं। शिवमें और भगवान्में भेद नहीं है, भगवान् कहते हैं कि 'रुद्रोंमें मैं शङ्कर हूँ' इसलिये शिव ही रस हैं, शिवके रससे ही सब पदार्थ रसीले प्रतीत होते हैं। शिवविमुख पुरुष रसोंको देखकर या चखकर मोहित हो जाते हैं और शैव यानी शिवभक्त तो शिवके रसका ही अथवा शिवरूप रसका ही सर्वत्र अनुभव करते हैं। हे बहिन जिह्वा ! 'यथा नाम तथा गुणः' इस लोकोक्तिके अनुसार अपना नाम सार्थक कर ले। ईश्वरने तुझे दो शक्तियाँ प्रदान की हैं, रसको तू जान सकती है और उसका वर्णन भी कर सकती है, इसलिये हे बहिन ! दिलीके दालमोठ, आगरेका हलवासोहन, हापड़के पापड़ और मथुराके पेड़े देखकर लारमत टपकाया कर और मुख बना-बनाकर उनकी प्रशंसा मत किया कर, सब पदार्थोंमें शिव-रस ही चखला कर और शिव-रसका ही निरूपण किया कर। अन्तमें खानमें, पानमें शिव-रसका स्वाद लेती हुई 'शिव-शिव-शिव' कहती हुई शिव-रसमें मिलकर सर्वदाके लिये रसरूप होकर मौन हो जा !

हे सुहानी नाक ! सचमुच तू ही इस शरीरकी नाक है, तुझसे ही इस शरीरकी शोभा है, यदि तू न हो तो इस शरीरकी सुन्दरता ही न रहे। तू शरीरहीकी शोभा नहीं है किन्तु चराचर प्राणियोंकी भी तू ही शोभा है, क्योंकि नाक-

वाला ही लोकमें शिष्ट समझा जाता है। जो नाकवाला नहीं होता, उसकी लोकमें प्रतिष्ठा ही बिगड़ जाती है। यदि तू नहीं होती तो मनुष्य भक्ष्याभक्ष्य चाहे जो कुछ खाने लगता। जैसे तेरी मा पृथिवी समस्त विश्वको भोजन-वसन देकर पालती है, इसी प्रकार पृथिवीकी बेटी तू भी भक्ष्याभक्ष्य-का ज्ञान कराके लोकोंकी रक्षा करती है। प्रथम तू गन्धद्वारा भोजनके गुण-अवगुण बताती है, पीछे जिह्वा भोजनका स्वाद बताती है, इसलिये तू जिह्वासे श्रेष्ठ है, इसी कारण महेश्वरने तुझे ऊपर और प्रत्यक्ष रक्खा है और जिह्वाको नीचे और गुप्त रक्खा है। जिह्वासे एक गुण तुझमें और भी अधिक है कि तू वस्तुका गुण दूरसे ही बता देती है जिह्वा तो वस्तुसे संसर्ग होनेपर उसका गुण बताती है। सारांश यह है कि तू प्राणियोंके बड़े कामकी है और शिष्ट पुरुषोंकी शोभा और प्रतिष्ठा जो कुछ है, तू ही है। जिसके नाक नहीं, वह न शिष्ट है, न प्रतिष्ठित है। शिष्ट और प्रतिष्ठित पुरुष और स्त्रियोंको उत्तम कर्म करते हुए अपनी नाककी रक्षा करनी चाहिये, यही बात दिखानेके लिये सुमित्रानन्दन रामानुज, लक्ष्मणजीने शूर्पणखाकी नाक काटकर सबको शिष्ट और प्रतिष्ठित होनेकी शिक्षा दी है। वेदवेत्ता तुझे घ्राण और गन्धवहा नामसे पुकारते हैं और मैंने तो एक विद्वान्के मुखसे ऐसा सुना है कि क नाम सुलका है, अक नाम सुलके अभाव यानी दुःखका है और जहाँ अक यानी दुःख न हो, उसका नाम नाक है। यही अर्थ तुझे रुचता है, क्योंकि शिवमें दुःख नहीं है, इसलिये शिव ही नाक हैं। जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है, इसलिये शिवमेंसे प्रकट हुई तू भी नाक ही है, इसीसे सब तुझसे ही अपनी शोभा समझते हैं। हे सुभगे ! नाकरूप शिवकी शक्ति होकर तुझे गन्दी न होना चाहिये किन्तु सबमें तुझे शिवरूप पवित्र गन्ध ही सूँघनी चाहिये। इसलिये अब तू मायिक गन्धोंका त्याग करके 'शिव-शिव-शिव' सूँघती हुई शिवमें लीन होकर अक्षय शोभन गन्ध सर्वदाके लिये हो जा।

हे भाई मन ! क्या तुझे मान्दम नहीं है कि तू शिवही-का अंश है ? शिवकी अद्भुत शक्ति है ? भगवान्का गीतामें वचन है कि इन्द्रियोंमें मैं मन हूँ। शिवका अंश होनेसे ही तू क्षणभरमें पातालसे सत्यलोकमें पहुँच जाता है। वेदवेत्ताओंका कथन है कि मन त्रिगुणमय और सत्त्वगुणकी विशेषतावाला है। वेदवेत्ताओंका यह कथन लोकदृष्टिसे है

नहीं तो तू त्रिगुणमय होते हुए भी तीनों गुणोंसे अतीत है। हे मन ! तू जड-चैतन्य-मिश्रित है, जब तुझमें तमोगुण अधिक हो जाता है, तब जडता अधिक हो जाती है और जब तुझमें सत्त्वगुण अधिक होता है, तब जडता थोड़ी हो जाती है। तेरे जडभागसे मोहमय जगत्-भ्रम दिखायी देता है और उसी भागसे विषयोंका ग्रहण होता है। जिस पदार्थको तू देखता है, उसीके आकारका हो जाता है। तमोगुणी पदार्थोंका ध्यान करनेसे तू तमोगुणी, रजोगुणी पदार्थोंका ध्यान करनेसे रजोगुणी और सत्त्वगुणी पदार्थोंका ध्यान करनेसे सत्त्वगुणी हो जाता है। जब तू वृत्तिहीन, निरालम्ब, शान्त, स्थिर और निर्विषय होता है, तब निर्मलसे भी निर्मल सुप्रशान्त महामौनी शिवस्वरूप ही हो जाता है। जब ऐसा है, तो हे मन ! तू त्रिगुणमय कहाँ है ? जब तू जगत्का ध्यान करता है, तब जगन्मय हो जाता है और जब तू शिवका ध्यान करता है, तब शिवमय हो जाता है। जगत्में अनेक पदार्थ हैं, अनादि कालसे तू जगत्में घूम रहा है, अबतक तुझे शान्ति प्राप्त नहीं हुई। हो भी कहाँसे ? कहीं ओसमें स्नान हो सकता है या मरुजलसे प्यास बुझ सकती है ? न ओसमें स्नान हो सकता है, न मरुजलसे प्यास बुझ सकती है। इसलिये हे मन ! अनर्थकारी नीरस भोगोंका ध्यान करना छोड़ दे ! विषयोंमें सुख नहीं है, सुख और शान्ति तो शिवमें ही है। जिन महाशम्भुमें करोड़ों ब्रह्माण्ड रुण्डमालाके समान लटक रहे हैं, उन्हीं सत्य, निरञ्जन एक महादेवका ध्यान कर ! नाम-रूपको छोड़कर महेश्वरमें ही रति कर, उन्हींमें प्रेम कर, उन्हींमें वृत्ति मान, उन्हींमें सन्तुष्ट हो ! संसार असार है, हरका आराधन ही सार है ! यदि शम्भुको न भजा, तो जन्म, यज्ञसूत्र, विद्या और कमण्डलुसे क्या लाभ है ? स्वप्नमें, जागतेमें शम्भुका ध्यान करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और जीव मायाको तर जाता है, इसलिये हे मन ! 'शिव, शिव' शिव' ऐसा ध्यान करता हुआ शिवमें लीन होकर अमन हो जा !

हे चित्त ! तेरा स्वरूप चित्स्वरूप शिव ही है। जबसे तू कल्याणस्वरूप शिवको भूल गया है, तबसे ही तू चित्त है और चित्त होनेसे तू कभी चित्त और कभी पट्ट होता रहता है। जब तू सुषुप्तिमें चित्स्वरूप शिवमें लीन हो जाता है, तब शवरूप संसार भी लीन हो जाता है, केवल चित्स्वरूप शिव ही शेष रहते हैं। जब तू जाग जाता है, तब फिर

संसार देखने लगता है, इससे सिद्ध होता है कि केवल शिव ही सत्य हैं और यह संसार स्वप्नके समान तेरा रचा हुआ होनेसे मिथ्या है, क्योंकि तेरे भावमें ही जगत्का भाव है और तेरे अभावमें जगत्का अभाव है। जबतक तू संसारका ध्यान करता रहेगा, तबतक तू जन्म-मरणरूप संसारसे छूट नहीं सकता, यह बात सम्यक् सत्य है। गीतामें भगवान्का वचन है कि विषयोंका ध्यान करनेसे पुरुषका विषयोंसे संग होता है, संगसे काम उत्पन्न होता है, कामसे क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे संमोह होता है, संमोहसे स्मृति भ्रष्ट होती है, स्मृति भ्रष्ट होनेसे बुद्धिका नाश होता है और बुद्धिका नाश होनेसे पुरुष नष्ट हो जाता है यानी अन्धकाररूप संसारको प्राप्त होता है। यह भगवान्का वचन नित्यप्रति पढ़ता हुआ भी यदि तू विषयोंका ही ध्यान करता रहा, तो तेरे समान मूर्ख कौन है ? भगवान्का यह भी वचन है कि जब योगाभ्याससे चित्त निरुद्ध हो जाता है और आत्मासे आत्माको देखकर आत्मा-में ही सन्तुष्ट हो जाता है, तब योगी उस अत्यन्त सुखको प्राप्त होता है, जो इन्द्रियोंका अविषय है और बुद्धिसे ही ग्राह्य है, उस सुखको पाकर योगी तत्त्वसे चलायमान नहीं होता, इससे अन्य सुखको सुख नहीं मानता और भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता। यदि भगवान्के इस वचनपर तूने विश्वास न करके शिवका ध्यान न किया तो जन्म-जन्म पछताता ही रहेगा। इसलिये हे चित्त ! क्षणभंगुर उत्तम मनुष्य-शरीर पाकर प्रमाद मत कर और 'शिव-शिव-शिव' ऐसा निरन्तर चिन्तन करता हुआ उपाधिरूप तकारको छोड़कर चित्तसे चित् होकर चित्स्वरूप शिवमें ही विलय हो जा।

हे री बुद्धि ! क्या तू 'यहाँ भेद कुछ नहीं है' 'जो भेद देखता है, वह बारम्बार मरता रहता है' 'वासुदेव ही यह सब है' 'सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ' इत्यादि श्रुति-स्मृतियाँ पढ़कर भी अपना स्त्री-स्वभाव नहीं छोड़ेगी ? भेद देखती हुई राग-द्वेष ही करती रहेगी ? तू भिन्नता देखती है, इसीसे वेदवेत्ता वेदशास्त्रोंसे तेरी उपमा देते हैं, जबतक तू भिन्नता देखेगी तबतक क्षणिक होनेसे व्यभिचारिणी ही कहलायगी और जब तू भेद देखना छोड़ देगी, तब तू स्त्रीसे पुरुष-बन जायगी और तेरा नाम विज्ञान हो जायगा। शुद्ध बुद्धिको वृद्ध पुरुषोंने विज्ञान ही कहा है। अरी सुबुद्धे ! जैसे शिव-रूप बोधमें भेद नहीं है, इसी प्रकार शिवरूप तुझमें भी भेद नहीं है। जहाँ कहीं भेद दिखायी देता है, वहाँ श्रोत्रादि इन्द्रियोंका भेद है। जब तू इन्द्रियोंको अपनी सखी बना

लेती है, तब तुझे भेद न होते हुए भी भेद दिखायी देने लगता है। जब तू श्रोत्रेन्द्रियसे मिल जाती है, तब रोचक, भयानक शब्द सुनने लगती है। जब तू स्पर्शेन्द्रियसे मेल कर लेती है, तब कोमल-कठिन, शीतोष्ण स्पर्श करने लगती है। जब तू नेत्रेन्द्रियसे तादात्म्य कर लेती है, तब नीला-पीला, -धोला-काला, रूप-कुरूप देखने लगती है। जब तू रसनेन्द्रियसे सम्बन्ध कर लेती है, तब मीठा-खट्टा, कड़वा-खारी, कसैला-चरपरा चलने लगती है, जब तू नासिकासे संसर्ग कर लेती है, तब सुगन्ध, दुर्गन्ध सूँघने लगती है और जब तू सुषुप्तिमें शिवके साथ एकमेक हो जाती है तो श्रोत्रादि इन्द्रियोंका किया हुआ शब्दादि भेद बिला जाता है, तब भेद सच्चा कहाँ है, भ्रम ही है ! इसलिये हे बहिन ! अब तू सब कामनाएँ छोड़ दे, अपने आत्मा शिवमें सन्तुष्ट होकर स्थिर हो जा ! दुःखमें उद्विग्न मत हो, सुखकी स्पृहा मत कर और राग-द्वेषसे रहित हो जा। शुभाशुभ किसीमें स्नेह मत कर। स्नेह ही बन्धन है, मत हर्ष कर, मत शोक कर ! अपनी सहेली इन्द्रियोंको वशमें रख, उनकी चेरी—दासी मत बन ! इन्द्रियोंके वश हो जाना बन्धन है और इन्द्रियोंको वशमें रखना ही मोक्ष है, इसलिये हे बहिन ! अब तू अपनी सहेलियोंको साथ लेकर 'शिव-शिव-शिव' ऐसा अनुसन्धान करती हुई, बोधरूप शिवमें लीन होकर अपना परिच्छिन्न भाव छोड़ दे और अपरिच्छिन्न होकर सर्वत्र फैल जा।

हे भाई अहंकार ! तू शिवका प्रथम विकार है, तूने ही चित्त और बुद्धिको धारण कर रखा है, इसलिये उन दोनोंमें तू प्रधान है। तेरे देवता रुद्र हैं, चित्तके देवता वासुदेव हैं और बुद्धिके देवता ब्रह्मा हैं। यद्यपि तीनों देव स्वरूपसे एक ही हैं और विशेषरूपसे भी तीनों एक ही हैं, क्योंकि तीनोंके शरीर शुद्ध सत्त्वमय हैं, फिर भी अहंकारके देवता होनेसे तीनों देवोंमें रुद्रको ब्रह्मवेत्ताओंने श्रेष्ठ और ज्येष्ठ माना है। योगियोंका अनुभव है कि प्रथम ब्रह्मग्रन्थिका भेदन होता है, फिर विष्णुग्रन्थिका छेदन होता है और अन्तमें रुद्रग्रन्थि टूटती है। इससे सिद्ध होता है कि शिव तीनों देवोंमें प्रधान हैं फिर भी मुझे इसमें आग्रह नहीं है, मेरे लिये और मेरी दृष्टिमें तो सभी समान हैं, इस मेरे कहनेसे मेरा प्रयोजन इतना ही है कि तू अहंकार शिवका समीपवर्ती होकर शिवको क्यों भूलता है और मिथ्या संसारमें क्यों भटकता है ! देहका क्यों अभिमान करता है !

शिवका ही क्यों नहीं अभिमान करता ? जैसे मिट्टीके कार्य घटादि पदार्थ मिट्टीरूप ही हैं, लोहेके कार्य चाकू आदि लोहारूप ही हैं और सुवर्णके कार्य कटक-कुण्डलादि सुवर्णरूप ही हैं, इसी प्रकार शिवका कार्य तू शिवरूप ही है, शिवसे भिन्न नहीं है, फिर तू अपनेको शिवसे भिन्न देहरूप क्यों समझता है ? देहाभिमान करना छोड़ दे, देहाभिमान ही बन्धन है, देहाभिमान ही मोह है, देहाभिमान ही अध्यास है, देहाभिमान ही चिजडग्रन्थि है, देहाभिमान ही अविद्या है, सारांश यह कि देहाभिमान ही जन्म-मरण आदि समस्त अनर्थोंका कारण है। जो जिसको भजता है, उसीको प्राप्त होता है, यह सनातन मर्यादा है। यदि तू देहको भजता रहेगा, तो बारम्बार ऊँच-नीच देहोंको ही प्राप्त होता रहेगा और मरता रहेगा, और शिवको भजेगा तो शिवको ही प्राप्त होगा, तथा शिवको प्राप्त होकर सर्वदाके लिये अजर-अमर हो जायगा ! भाई ! अन्धेके समान अब ठोकरें मत खा, देहको मत प्यार कर, शिवको प्यार कर, शिवको ध्येय बना, शिवका भजन कर और 'शिव-शिव-शिव' भजता हुआ शिवमें अपनी आहुति दे दे !

हे प्यारे प्राण ! तुझे वेद सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बताता है और है भी ऐसा ही, क्योंकि तू ही अहंकारादिको संघट्ट करके इस संघातको चला रहा है। हिरण्यगर्भ भगवान्की तू एक कला है। जैसे सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ ब्रह्माण्डको धारण कर रहे हैं, इसी प्रकार तू इस शरीरको धारण कर रहा है अथवा यों कहना चाहिये कि तू एक ही अनेक होकर अनेक शरीरोंको धारण कर रहा है। जब सब इन्द्रियाँ थककर सो जाती हैं तब तू अकेला ही जागता रहता है, खाये-पियेको पचाकर सब इन्द्रियोंका पोषण करता है, बिना सोये सौ वर्षतक कालभगवान्से युद्ध किया करता है, इसलिये तू इस पिण्डमें और ब्रह्माण्डमें सबसे श्रेष्ठ है और यदि तू इस शरीरका राजा नहीं भी है, तो भी प्रधान या मन्त्री तो है ही, इसमें संशय नहीं है। कोई-कोई विद्वान् तुझे जड बताते हैं, परन्तु तू जड नहीं है, चेतन ही है। विद्वानोंने जो तुझे जड बताया है, वह उनका कथन शिवका स्वरूप बतानेकी अपेक्षासे है। जैसे सूर्यकी छाया धूप सूर्यके समान उष्ण ही है, इसी प्रकार शिवका श्वास तू शिवके समान चेतन ही है। महत्तत्त्व शिवकी ज्ञानशक्ति है और सूत्ररूप तू शिवकी क्रियाशक्ति है, परन्तु ये दोनों शक्तियाँ परस्पर भिन्न नहीं रहतीं, साथ-ही-साथ ही रहती हैं। वेद कहता है

कि 'ब्रह्मके लिये नमस्कार है। हे वायु ! तुझको नमस्कार है। तू प्रत्यक्ष ब्रह्म है। तुझे मैं प्रत्यक्षब्रह्म कहता हूँ, सत्य कहता हूँ, ऋत कहता हूँ।' इस श्रुतिसे भी तू चेतन है ऐसा सिद्ध होता है, इसलिये हे प्राण ! अब तू संसारकी तरफ वहन करना छोड़ दे और शिवकी ओरको वहन करता हुआ 'शिव-शिव-शिव' श्वास-प्रश्वासमें बोलता हुआ शिवमें जाकर ही स्थिर हो जा !

हे जीवाराम ! छोड़ दे सब काम, हो जा आत्माराम ! 'सब तज हर भज' यही वेदका सिद्धान्त है। जो देहको भजता है, वह देहको प्राप्त होता है और जो शिवको भजता है, वह शिवको प्राप्त होता है। देहको भजनेसे ही तू नौ मासतक कालकोठरीमें बन्द रह चुका है और अब सौ वर्षकी जेल भुगत रहा है। कालकोठरीमें तुझे शिवके अनुग्रहसे अपने जन्मोंकी स्मृति हो आयी थी और तूने प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं इस कालकोठरीमेंसे निकल जाऊँ तो शिवका भजन करूँगा कि जिससे फिर इस कालकोठरीमें न आऊँ। क्या तू उस प्रतिज्ञाको भूल गया ? भाई ! अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर, 'देहोऽहम्' 'देहोऽहम्' भजना छोड़कर 'शिवोऽहम्' 'शिवोऽहम्' भजना आरम्भ कर ! तुझमें और शिवमें भेद नहीं है, तुझमें और शिवमें भेद न हो, इतना ही नहीं, जगत्में भी भेद नहीं है। समस्त जगत् पञ्चमहाभूतोंका कार्य होनेसे एक ही है। जगत् दृश्य है और जगत्का द्रष्टा तू है। दृश्य और द्रष्टा दोनों मिथ्या हैं, क्योंकि परस्पर एक-दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं। दृश्य द्रष्टाकी अपेक्षा रखता है यानी द्रष्टा बिना सिद्ध नहीं होता और द्रष्टा दृश्यकी अपेक्षा रखता है यानी दृश्य बिना द्रष्टा असिद्ध है, इसलिये दृश्य और द्रष्टा दोनों ही कल्पित होनेसे मिथ्या हैं। जिनमें दृश्य और द्रष्टा दोनों भासते हैं, वही स्वयं-ज्योति-निरपेक्ष शिव सत्य हैं, उनके सिवा दृश्य और द्रष्टा असत्य हैं, इसलिये भेद सिद्ध नहीं होता। इसप्रकार युक्तिसे शिवमें भेद असिद्ध है और श्रुतिसे भी भेद सिद्ध नहीं होता। 'वह तू है' 'मैं ब्रह्म हूँ' 'यह आत्मा ब्रह्म है' 'प्रज्ञान ब्रह्म है' 'सत्य ज्ञान, अनन्त ब्रह्म है।' 'सृष्टिसे पूर्व एक अद्वितीय सत् ही था।' 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है' इत्यादि श्रुतियाँ भी भेदका निवारण करती हैं, फिर भेद कैसा ! फिर भी शिवकी मायासे मोहित बहिन-भाइयोंको भेद दिखायी देता है, यह उनका दुर्भाग्य ही है। भेद ही बन्धन है, भेद ही जन्म-मरणरूप संसार है,

भेदसे ही कर्तृत्व-भोक्तृत्व है, भेदसे ही जीवत्व है, भेदसे ही राग-द्वेष है; सारांश यह है कि भेद ही सब अनर्थोंका मूल है। हे जीवाराम ! भेद-दृष्टि त्याग दे, यदि भेद-दृष्टि नहीं त्याग सकता, तो भेदमें भी यानी अनेकमें भी एक अपने आत्मा शिवका ही दर्शन कर, ऐसा करनेसे मायाका रचा हुआ भेद विलय हो जायगा। जैसे सूर्यके सामने अँधेरा ठहर नहीं सकता, इसी प्रकार शिवके सामने माया और मायाका रचा हुआ भेद ठहर नहीं सकता ! शिव एक हैं, प्रेमस्वरूप हैं, सबके अपने-आप हैं। देह-गेहादि सबमेंसे प्रेम हटाकर केवल शिवमें ही प्रेम कर। जबतक तू अपना किञ्चित् भी अभिमान करेगा यानी अपनेको कुछ भी मानेगा, तबतक तुझे शिवकी प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि 'प्रेम-गली अति साँकरी तामें दो न समायँ।' ऐसा विद्वानोंका कथन और अनुभव है। इसलिये हे जीवाराम ! ब्रह्माण्डको, पिण्डको, सूक्ष्मको, कारणको भूल जा और अपने जीवत्वको भी शिवकी भेट करके 'शिव-शिव-शिव' ऐसा प्रेमपूर्वक अनुसन्धान करता हुआ प्रेमरूप शिवमें लीन होकर शान्त हो जा।

पाठको ! सुनते हैं कि पूर्वकालमें जीवाराम नामका कोई सच्चा शैव उपर्युक्त प्रकारसे शिवका अनुचिन्तन करता हुआ, जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलकर अपने नाम-रूपका त्याग करके समुद्ररूप ही हो जाती हैं, इसी प्रकार अपनी कलाओंसहित शिवमें मिलकर शिवरूप ही हो गया, फिर उसका उत्थान नहीं हुआ ! आजकल भी 'वसुन्धरा रत्नोंसे रक्ति नहीं है'—इस लोकोक्तिके अनुसार कोई-न-कोई शिवमें लीन होकर शिवरूप होता ही होगा, परन्तु ऐसी गति प्रत्येकके लिये प्राप्त होनी कठिन है, किसी बिरलेको ही अनेक जन्मोंके पुण्य-प्रभावसे और चिरकालतक आत्मानुसन्धान करनेसे ऐसा सौभाग्य प्राप्त होता है, फिर भी अपनी योग्यताके अनुसार सभी ईश्वर-भजन कर सकते हैं और सबको करना उचित भी है, क्योंकि संसार निस्सार है, यहाँकी सब वस्तुएँ नाशवान् हैं, नाशवान् वस्तुसे किसी प्रकार भी सुखकी प्राप्ति होना असम्भव है। सुख तो अविनाशी वस्तुसे ही हो सकता है। शिव ही केवल सत्य-स्वरूप और अविनाशी हैं, सबके हृदयमें विराजमान हैं और सबके आत्मा हैं। श्रुति कहती है कि यह जो कुछ देखने, सुनने और जाननेमें आता है और जो कुछ देखने, सुनने और जाननेमें नहीं आता—सब ओंकार ही है। जैसे

ओंकारकी चार मात्राएँ हैं, इसी प्रकार शिवकी शकार, इकार, वकार और अकार—चार मात्राएँ हैं, इसलिये यह सब शिव ही हैं। शकार विराटरूप है, इकार हिरण्यगर्भरूप है, वकार ईश्वररूप है और अकार परब्रह्मरूप है अथवा शकार विश्व है, इकार तैजस् है, वकार प्राज्ञ है और अकार आत्मा है अथवा शकार उत्पत्तिरूप है, इकार स्थितिरूप है, वकार प्रलयरूप है और अकार मायातीत है अथवा शकार जाग्रत है, इकार स्वप्न है, वकार सुषुप्ति है और अकार तुर्य है अथवा शकार सत्त्व है, इकार रज है, वकार तम है और अकार गुणातीत है अथवा शकार ज्ञाता है, इकार ज्ञान है, वकार ज्ञेय है और अकार शुद्ध संवित् है अथवा शकार आधिभौतिक है, इकार अध्यात्म है, वकार अधिदैव है और अकार निरुपाधिक तत्त्व है। इसप्रकार शिव ही सर्व और

सर्वातीत, सब विश्वके आधार और अधिष्ठान हैं, सबके पूजनीय और सबके आत्मा हैं, इसलिये जैसे बने वैसे, चाहे जिस नाम और रूपसे, सगुण अथवा निर्गुणस्वरूपसे अपनी योग्यतानुसार सबको शिवका भजन करना चाहिये। शिवका भजन करनेवाला जहाँ जन्मता है, वहीं सुखी रहता है और अन्तमें अभेददर्शी यानी समदर्शी होकर शिव-सायुज्यको प्राप्त होता है। सबका सारांश यह है—

कुं०—हर-हर जपिये मन्त्रवर, पढ़िये शिव-सद्ग्रन्थ।

कीजै शंकर चिन्तवन, यह ही सच्चा पन्थ ॥

यह ही सच्चा पन्थ, सर्वमें शम्भु निहारे।

अधिष्ठान शिव सत्य, विश्व अध्यस्त विचारे ॥

भोला ! भूला शम्भु, तभीसे फिरता दर-दर।

दर-दर अब मत धूम, प्रेमसे भज रे हर-हर ॥

भगवान् शंकर

(लेखक—वेददर्शनाचार्य मण्डलेश्वर स्वामी श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज)



भगवान् शंकर चाँदीके पर्वतके समान गौर हैं। मस्तकमें शशिकला शोभायमान है। हस्तीके शृण्डके समान चार भुजाएँ हैं। उनमें परशु, मृग, वर और अभयको धारण किये हुए हैं। कटिमें व्याघ्रचर्म धारण किये हैं। उन मुक्तिके दाता भक्तहितकारी शिवजीके तीन नेत्र और पाँच मुख हैं। भगवान् शिवजीका यह स्वरूप सृष्टि, स्थिति और प्रलयभावका सूचक और जीवकी आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मुक्तिका भी द्योतक है। इतना ही नहीं, भगवान् शिवजीके इसी मङ्गलमय स्वरूपसे तमोमय संहारभावको धारण करनेसे रुद्रमूर्ति भी प्रकट होती है। इससे स्पष्ट प्रकट है कि भगवान् शंकरमें एक शान्तिमय शिवभाव और दूसरा प्रलयकारी रुद्रभाव विराजमान है। वैसे तो शास्त्रोंमें भगवान् शंकरके अनेक प्रकारके रूप निरूपण किये गये हैं परन्तु वे सब इन्हीं दो भावोंके अन्तर्भूत हैं। भगवान् शंकरकी कृपासे उन्हींके शरीरपर ही समस्त प्रकृतिका विलास प्रकाशित होता है इसलिये उनका शरीर गौर है, पञ्चमुख तथा त्रिनेत्र हैं। उनका शरीर गौर होनेका कारण यह भी है कि जिस केन्द्रपर समस्त प्राकृतिक वर्णोंका विकास होता है वहाँ श्वेत ही वर्ण होता है। जैसे सूर्यसे

सब रङ्गोंका विकास होता है तो सूर्य भगवान् श्वेत हैं। शंकरजीके पञ्चमुख प्राकृतिक पञ्चतत्त्वोंको सूचित कर रहे हैं। भगवान्के दोनों नेत्र पृथिवी और आकाशके सूचक हैं, तृतीय नेत्र बुद्धिके अधिदैव सूर्य वा ज्ञानाग्निका सूचक है। इसी ज्ञानाग्निरूप तृतीय नेत्रके खुलनेसे काम भस्म हो गया था। मनका अधिदैवरूप चन्द्र भगवान्के मस्तकपर विराज रहा है। इसप्रकार उनके ईश्वरभावके द्वारा संसारका प्रकाश हो रहा है। इसी ईश्वरभावको लिये हुए भगवान् शंकर हाथमें तीनों गुणोंके सूचक त्रिशूलको धारण किये हुए हैं। इस त्रिगुणरूप त्रिशूलपर जगत् रूप काशीपुरी विराजमान है। जबतक त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके अन्दर शिवजीकी सत्ता रहेगी तबतक जगत् रूप काशीपुरीका नाश न होगा। भगवान् शिव एक हाथमें कामका सूचक मृग धारण किये हुए हैं, दूसरेमें धर्मका सूचक वर, तीसरेमें अर्थका सूचक परशु और चौथे हाथमें मोक्ष-सूचक अभय धारण किये हुए हैं। इसप्रकार शिवजीके इस स्वरूपसे उनका ईश्वरभाव प्रकट किया गया है। भगवान् शंकरके प्राकृतिक प्रलयकारी दोनों भाव निम्नलिखित रूपसे प्रकट होते हैं।

शिवभावका रहस्य

जिस समय परमात्मा तामसिक शक्तिको धारणकर समस्त ब्रह्माण्डका नाश कर देते हैं उसे प्राकृतिक प्रलय कहा जाता

है। सृष्टिप्रलयकर्त्ता शिवजीका यह प्रथम भाव है। जिस समय जीव अपने आपको ब्रह्ममें मिला देता है और अपनी भेदात्मिका सत्ताको आत्यन्तिक रूपसे दूर कर देता है तब उस जीवके जीवभावका सर्वथा ही नाश हो जाता है, केवल ईश्वरभाव अर्थात् ब्रह्मभाव अवशिष्ट रह जाता है। उस देशका नाम आत्यन्तिक प्रलय है। इस प्रलयके साथ परमात्माका खासतौरसे सम्बन्ध रहता है, इसलिये शिवजीका यह द्वितीय भाव है। प्राकृतिक प्रलय-भावके सूचक रुद्रस्वरूपमें शिवजी भूत, भविष्यत् और वर्तमान-कालके भेदसे युक्त प्रलयकारी कालका सूचक त्रिशूल हाथमें धारण किये हुए हैं; दूसरे आत्यन्तिक प्रलयकारी भाव-दशामें वही त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंका सूचक है। क्योंकि त्रिविध दुःखोंसे दुखी हुआ पुरुष ही इस संसारसे मुक्त होनेके लिये भगवान्की शरण लेता है। प्राकृतिक प्रलयकारी रुद्रभावमें शिवजी मुण्डमाली, भस्मावलिप्त, श्मशानवासी, भुजङ्गधारी, कभी व्याघ्रचर्मधारी तो कभी कपर्दी, विषपायी और डमरूधारी हैं। जिसप्रकार स्थूल, सूक्ष्म शरीर कार्य संस्कारोंके सहित अविद्यात्मक कारण-शरीरमें अवस्थान करते हैं, उस कारण-शरीरमें स्थूल और लिङ्ग-शरीरोंका केवल वीजरूपसे संस्कारमात्र अवशेष रहता है। यही कारण-शरीर-विशिष्ट चेतनकी समष्टि ही रुद्र हैं। कारण-शरीर-विशिष्ट चेतन, जो शरीरद्वयके नष्ट हो जानेपर अवशिष्ट रह जाता है, उन्हीं सब प्रलयकालीन जीवोंकी स्थिति-की सूचक भगवान् शंकरके गलेमें मुण्डमाल पड़ी हुई है। स्थूलका अन्तिम परिणाम भस्म है। इस स्थूल ब्रह्माण्डको भस्मरूपमें ले आनेवाले शंकर हैं। इस भावको सूचन करनेके लिये उनके शरीरमें भस्म लगी रहती है। सुषुप्ति-अवस्थारूप महाप्रलय ही श्मशानभूमि है। वही रुद्रजीके निवासका स्थान है। काल भगवान्के अधीन है, इस भावको वतानेके लिये आप महाविषधर सर्पको धारण किये हुए हैं। अति शौर्यशाली तथा बली जीवोंपर शासन करनेमें समर्थ हैं, इस भावको प्रकट करनेके लिये आपने व्याघ्र-चर्म और हस्ति-चर्मको धारण कर रखा है। संसारके अनिष्ट-से-अनिष्टकारी पदार्थोंको भी अनुकूल बनानेमें समर्थ हैं, इस भावको प्रकट करनेके लिये विषपान किया करते हैं, इस जगत्को विनाशकी ओर अग्रसर करनेवाले रात्रि-दिवसरूप डमरूको धारण किये हुए हैं। जिस समय जीव अपनी सत्ताको शिवभावमें लीन कर देता है उस समय उस जीवसे द्वन्द्वात्मक कर्मोंसे

युक्त प्रकृतिके नाना प्रकारके धर्म अपने आप ही निवृत्त हो जाते हैं। सब प्रकारके विरुद्ध धर्म उसके अनुकूल हो जाते हैं, इस बातको प्रकट करनेके लिये शंकरजी सर्पको अपना अलंकार बनाये हुए हैं।

जिनकी श्रीपार्वतीजी गृहिणी हों, कुवेर जिनके भण्डारी हों, ऐसा होनेपर भी आपका श्मशानका निवास, शरीरमें भस्मका धारण करना, हाथमें भिक्षापात्र लेकर भिक्षा माँगना—यह सब आत्यन्तिक प्रलयके साधनभूत त्याग-वैराग्यादिको प्रकट करते हैं। भगवान् शंकर अपने इस-प्रकारके आचारसे जीवोंको बतला रहे हैं कि जो संसारकी सब प्रकारकी विभूतियोंको छोड़कर हाथमें भिक्षापात्र ग्रहण कर साधु हो जाता है और वैराग्यके उद्दीपनके लिये श्मशानोंमें निवास करता है वही मोक्षको प्राप्त कर सकता है। मुमुक्षुके प्राप्य लक्ष्यभावको सूचन करनेके लिये आप दिग्भ्रमर हैं, क्योंकि ब्रह्मभाव सब प्रकारके परिच्छेदोंसे शून्य है, यही मुमुक्षुका प्राप्य लक्ष्य है। प्रथम रूपमें ब्रह्माण्डके साथ कालका सम्बन्ध है। ब्रह्माण्डकी आयुके अनुसार महाकाल रुद्र भी परिच्छिन्न हैं, इसलिये रुद्रको व्याघ्राभ्रमर-धारी कहा गया है। अपरिच्छिन्न ब्रह्मभाव—शिवभाव किसी-प्रकारके आवरणमें नहीं आ सकता, इसलिये भगवान् शंकर दिग्भ्रमर हैं। शास्त्रोंमें सत्त्वगुण और तमोगुणको परस्पर मिथुनवृत्तिक बतलाया गया है, जगत्में अर्थात् प्रकृतिमें जिन दो वस्तुओंका स्वाभाविक सम्बन्ध हो वे वस्तुएँ मिथुन-वृत्तिक कही जाती हैं। जैसे धर्म और अधर्म, दिन और रात्रि, मृत्यु और जन्म इत्यादि—ये सब मिथुनवृत्तिक भाव कहे जाते हैं। इसी प्रकार सत्त्वगुण और तमोगुण—ये दोनों भी मिथुनवृत्तिक हैं। दोनोंमें शक्ति भी तुल्य है। सत्त्वगुण यदि जीवको उन्नत करता है तो तमोगुण उसी प्रकार दैसी-शक्तिसे ही अधोगतिकी ओर ले जाता है। इसलिये सत्त्वगुण और तमोगुणमें अन्योन्य मिथुन-सम्बन्ध है। सत्त्वके अभिमानी विष्णु और तमोगुणके अभिमानी भगवान् शंकर हैं। इसलिये इन दोनों देवोंमें परस्पर तन्मयासक्तिका भाव विद्यमान है। तन्मयासक्तिका भाव होनेसे ही तमोभिमानी शंकरजी गोरे हैं और सत्त्वाभिमानी विष्णुजी काले हैं। यदि ऐसा न होता तो भगवान् विष्णु गौर होते और भगवान् शंकर कृष्ण होते। पृथिवीमें तमोगुणकी प्रधानता है, इसलिये शास्त्रोंमें पृथिवीके अभिमानी देव भगवान् शंकरको लिखा गया है। पृथिवीका सबसे उच्च

प्रदेश हिमालयपर्वत ही उनका शिर है। हिमालयसे जगत्पावनी पुण्यसलिला श्रीगङ्गाजीका आविर्भाव होता है। इस भावको प्रकट करनेके लिये शंकरजी गङ्गाजीको अपने मस्तकपर धारण किये हैं। सत्त्वगुणका पूर्ण विकास होनेपर ही धर्मका विकास होता है। पशु-जातिमें सबसे अधिक सत्त्वगुणका विकास गो-जातिमें है, इसलिये धर्मका सूचक बैल ही शिवजीका वाहन वृषभ है। यही सब प्रकृति-लीला-निबन्धन-भावोंके अनुसार श्रीशिवजीके स्वरूपका संक्षिप्त रहस्य है।

अथर्ववेदके ग्यारहवें काण्डके द्वितीय सूक्तमें भी शंकर-जीके स्वरूपसे उनके स्वरूपका वर्णन किया गया है। पाठकोंके निश्चयके लिये उस सूक्तके आदि तथा अन्तिम मन्त्रका उल्लेख यहाँपर किया जाता है—

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपतीपशुपती नमो वाम् । प्रतिहितामायतां मा विक्षाष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।

भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१६॥

हे भव ! हे शर्व ! मुझे सुखी करो । हे भूतोंके पतियो ! मेरे पास रक्षाके लिये सब ओरसे आओ । हे पशुओंके पतियो ! आप दोनोंको नमस्कार है । आप दोनों धनुषोंमें धरे हुए विस्तृत बाणको मुखपर मत छोड़ो, आप हमारे द्विपद मनुष्योंको और चतुष्पद पशुओंको मत मारो ॥१॥ हे रुद्र ! आपको सायंकाल, प्रातःकाल रात्रि और दिनमें भी नमस्कार है । मैं भवदेव तथा रुद्रदेव दोनोंको नमस्कार करता हूँ । यहाँपर वेदमें वर्णित भगवान् शंकरके वही दोनों स्वरूप हैं जिनका वर्णन ऊपर शिव और रुद्ररूपसे किया जा चुका है । इसप्रकारसे सिद्ध हो गया कि शिवमूर्ति-पूजा कोई अशास्त्रीय विधि नहीं किन्तु वेदशास्त्रविहित सिद्धान्त है ।

शिवलिङ्गपूजा

शिवमूर्तिके अतिरिक्त शास्त्रोंमें शिव-लिङ्ग-पूजाका भी वर्णन पाया जाता है । उसका भी कुछ थोड़ा-सा वर्णन नीचे दिया जाता है ।

प्रत्येक पुरुषको अपने अनुभवमें आनेवाली उसकी अपनी जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीन अवस्थाएँ हैं । इन तीन अवस्थाओंमें जागरित अवस्थामें स्थूल शरीर, स्वप्नमें

लिङ्ग-शरीर और सुषुप्तिमें कारणका स्पष्टरूपसे अनुभव होता है । स्थूल शरीरोंकी समष्टि विराट् है, लिङ्ग-शरीरोंकी समष्टि हिरण्यगर्भ है और कारण-शरीरोंकी समष्टि ईश्वर है, ऐसा बहुत शास्त्रोंका सिद्धान्त है । जिसप्रकार व्यष्टिभावमें स्थूल और लिङ्ग-शरीर अङ्गसंयुक्त है और कारण-शरीर अङ्गोंसे रहित है अर्थात् निरवयव-भावमें है, उसी प्रकार विराट् और हिरण्यगर्भ भी अवयवोंसे युक्त और ईश्वरभाव अवयवोंसे विहीन है । तमोगुणके अभिमानी भगवान् रुद्र हैं । अविद्यामें तमोगुण प्रधान है इसलिये अविद्याविशिष्ट चेतन ही ईश्वरभाव है ।

कारण ब्रह्म है, शिवभाव है । जिसप्रकार व्यष्टिभावमें कारण-शरीररूप अविद्यासे शिवस्वरूप चैतन्य आवृत प्रतीत होता है इसी प्रकारसे कारण-ब्रह्मरूप ईश्वर, अविद्यासे आवृत है । जीवको उसका अपना निरावृत तुरीयावस्थाका स्वरूप अनभूत है, इसलिये उसमें परिच्छिन्नताका भाव आ गया है और इसीलिये वह संसारी है । परन्तु ईश्वरभावमें अविद्या-रूप उपाधि होनेपर भी 'अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्' अर्थात् अविद्या-को अतिक्रमणकर स्थित रहनेवाले अपने स्वरूपका परमात्माको ज्ञान है, इसलिये परमात्मा असंसारी हैं । व्यष्टिभावमें सोपाधिक चेतनसे अभिन्न तुरीयभाव शुद्ध है । उसी प्रकार सोपाधिक ईश्वरभावसे शिवभाव—ब्रह्मभाव अभिन्न रहता हुआ भी मोक्षका आश्रय है । इससे यह सिद्ध हुआ कि शिवभाव—ब्रह्मभाव निरावृत है और ईश्वरभाव अविद्यारूप उपाधिसे आवृत है । माया—प्रकृति अविद्यासूचक जलहरी है । उस जलहरीके मध्यमें आवृत अंश ईश्वर है । जलहरीसे बाहर निकला हुआ निरावृतभाव शिवका सूचक है । जिस वस्तुके अंग व्यक्त न हों वह वस्तु पिण्डीभावमें ही होती है । सुषुप्ति-अवस्थामें प्रतीयमान विशिष्ट आत्मभाव और ईश्वरभावमें अंग व्यक्त नहीं, इसलिये ईश्वरभावकी प्रतीक होगी तो पिण्डीरूपमें ही होगी । उस अव्यक्त ईश्वरकी प्रतीकको पिण्डीभावमें दिखलाना ही युक्तियुक्त है । केवल शंकरजीकी ही ईश्वरभावकी प्रतिमा पिण्डीरूप नहीं है किन्तु भगवान् विष्णुकी भी ईश्वरभाव अर्थात् अव्यक्त-अवस्थाकी प्रतिमा पिण्डीभावमें होती है । भगवान्के अव्यक्तभावकी प्रतिमा शालिग्राम हैं । शिवरूप सत्ताको पाकर प्रकृति स्वयं ही विकाररूपमें प्रवाहित हो जगत्को पैदा करती है । इस भावको सूचन करनेके लिये पिण्डीका आश्रय जलहरी—अर्थात् गोल न होकर एक ओर दीर्घ रहा करती है । लिङ्गपुराणमें लिखा है—

मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ।

रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः ॥

लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः ।

तयोः सम्पूजनाक्षिर्यं देवी देवश्चरुजितौ ॥

लिङ्गके मूलमें ब्रह्माजी, मध्यमें त्रिलोकीनाथ विष्णुजी और ऊपरी भागमें प्रणव नामवाले भगवान् शंकरजी स्थित हैं। लिङ्गवेदी अर्थात् जलहरी अर्था महादेवी हैं। लिङ्ग साक्षात् महेश्वर हैं। लिङ्गवेदी और लिङ्ग-पूजनसे सर्व देव और सर्व देवियोंका पूजन हो जाता है। लिङ्गपुराणकी इस उक्तिसे कल्पित अन्तःकरणवालोंकी इस धारणाका निराकरण हो जाता है, जो यह समझते हैं कि लिङ्गपूजा अश्लीलभावको लेकर चलायी गयी है। यदि शिवलिङ्ग-पूजनका भाव अश्लील होता तो वेदसे लेकर सर्व सन्त्राज्ञोंमें इसका विधान न होता। श्रीमद्वाल्मीकिरामायणके समान प्राचीन ग्रन्थोंमें भी लिङ्गपूजाका विधान मिलता है। उपासना-प्रधान पुराणोंमें तो सबसे अधिक लिङ्गपूजाके ही लेख मिलते हैं। विस्तार-भयसे उन सब प्रमाणोंको यहाँपर नहीं लिखा गया। वाल्मीकि-रामायणके उत्तरकाण्डमें लिखा है कि—

यत्र यत्र च याति स रावणो राक्षसेश्वरः ।

जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स नीयते ॥

बालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।

अर्चयामास गन्धाढ्यैः पुष्पैश्चागरुगन्धिभिः ॥

राक्षसोंका राजा रावण जहाँ-जहाँ जाता था वहीं-वहीं सुवर्ण-की मूर्ति साथ ले जाया करता था। बालूकी वेदी बनाकर उस मूर्तिको स्थापित करता, फिर उत्तम गन्धवाले पुष्पादिसे उस मूर्तिका पूजन किया करता था। श्रीवाल्मीकिजीके लेखसे यही सिद्ध होता है कि लिङ्गपूजन-प्रथा अति प्राचीन है।

इस लिङ्गपूजामें विशेष भाव क्या है? यह बताकर इस प्रकरणका उपसंहार करेंगे। शास्त्रका यह सिद्धान्त है, जिसे पहले भी अनेक बार लिखा जा चुका है कि जिससे सृष्टि उत्पन्न होती है, उसीका अवलम्बन लेकर जीव लयकी ओर अग्रसर हुआ करता है। चैतन्यरूप लिङ्गसत्ता और जगत्-प्रसविनी प्रकृतिसत्तासे ही इस ब्रह्माण्डका विकास हुआ है। उन्हीं दो सत्ताओंकी प्रतीक लिङ्ग और वेदीके रूपमें अधिकारीके लिये स्थापित की गयी है। जब उपासक इसी व्यापकभावको अपने मनमें स्थापित करके शिव-पूजन करता है तब उसका चित्त स्थूलकी सहायतासे सर्वव्यापक परमात्माकी सत्तामें लीन होनेमें समर्थ हो जाता है। अन्तमें इस भाव-प्रधान उपासनाकी दृढ़तासे वह अनन्त विस्तार-मयी मायाकी लीलासे मुक्त होकर अर्थात् कार्य-ब्रह्मकी सहायतासे ही कार्य-ब्रह्मसे मुक्त होकर कारण-ब्रह्ममें स्थिति लाभकर मोक्षलाभ कर लेता है। यही लिङ्ग-पूजनका प्रधान उद्देश्य है। इसीलिये शास्त्रोंमें लिङ्ग-पूजनका महत्त्व अधिक वर्णन किया गया है।

श्रीशिव-तत्त्व

(लेखक—पण्डितवर श्रीपञ्चाननजी तर्करले)

‘कल्याण’ के विशेषाङ्क ‘शिवाङ्क’ के विज्ञापन-पत्रके साथ लेख-सूचीमें मैंने सबसे पहले ‘शिव-तत्त्व’ का नाम देखा। लोभ-संवरण न कर सका। इसप्रकारके अमृतमय तत्त्वके आस्वादनकी स्पृहाका परिहार न कर सका। मैं समझता हूँ कि यह स्पृहा, यह लोभ पङ्क्तिके गिरिलङ्घनकी कामनासे भी अधिक असम्भव है।

‘यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।’

वेद भी जिसके तत्त्वका निरूपण करनेमें चकित है, मैं विषयासक्त मूढ मनुष्य उसीके तत्त्वके निरूपण करनेके लिये लेखनी हाथमें लेता हूँ। यह सत्य ही मेरी धृष्टता है, जानता हूँ यह अमार्जनीय (अक्षन्तव्य) अपराध है। लेखनी आगे चलती नहीं है, हृदय थर-थर काँप रहा है। भय और उद्वेगसे, नहीं-नहीं उल्लास, और आनन्दसे भी।

हे देवाधिदेव करुणानिधान ! तुम अपने इस दीन दासके ऊपर एक बार प्रसन्न हो।

भवदुपगमश्च न्ये मन्मनोदुर्गमध्ये
निधसति भयहीनः कामवैरिप्रिपुस्ते ।

स यदि तव विजेयस्तूर्णमागच्छ शम्भो

नृपतिरधिभृगव्यं किं न कान्तारमेति ॥

शङ्कर आमार मनो दुर्गमाहो तोमार प्रवेश नाई।

तव रिपु काम हये निर्भय एखने रयेछे ताई ॥

ताहाके जिनिते यदि थाके साध एस हेया शीघ्रगति ।

श्रापदसंकुल वने जाय ना कि भृगयाय नरपति ॥

‘हे शंकर ! मेरे मनके किलेमें तुम्हारा प्रवेश नहीं है, इसीसे तुम्हारा शत्रु काम निर्भय होकर वहाँ बस रहा है।

यदि उसे जीतनेकी इच्छा हो तो यहाँ तुरन्त चले आओ । क्या शिकारके लिये राजा पशुओंसे भरे जंगलमें नहीं जाता ?

हे शिव ! तुम्हारे प्रसादसे पवित्र स्पर्शमणिकी प्रभासे मेरी हृदय-गुहा आलोकित हो, जिससे मैं उस आलोकमें तुम्हारे दुर्ज्ञेय तत्त्वको क्षणमात्रके लिये भी अणुमात्र अवलोकनकर कृतार्थ हो जाऊँ । हे महेश्वर ! महाकवि कहते हैं—‘महेश्वरस्यैव तत्त्वं एव नापरः’ । महान् ईश्वर परमेश्वर तुम्हीं हो; परमेश्वरका तत्त्व ही तुम्हारा तत्त्व है ।

इतने बड़े विशाल भूमण्डलका मानचित्र कितना छोटा होता है । घर-घरमें भूमण्डलके करोड़वें भागके एक-एक अंशमें वही मानचित्र, लाखोंकी संख्यामें रहते हैं । एक-एक क्षुद्र मानचित्रमें समस्त भूमण्डल होता है । तुम सर्वव्यापी हो, तुम्हारी साकार लीला भी तुम्हारे ही सुगम्भीर असीम परमतत्त्वका मानचित्र है । लाखों भक्तोंके हृदयमें वही मानचित्र अवस्थित रहता है । तुम्हारी स्वच्छ शुभ्र कान्ति निर्गुण परमेश्वरके स्वाभाविक निर्मलत्वकी प्रतिच्छाया है । निराकार परमेश्वर-स्वरूपमें तुम्हीं निरावरण हो, इसीसे साकार-लीलामें तुम दिगम्बर हो । परमेश्वररूपमें तुम्हीं पञ्च-ब्रह्मके प्रवर्तक हो, इसीसे साकार-लीलामें तुम पञ्चानन हो । परमेश्वर त्रिकालदर्शी है, इसीसे साकार-लीलामें तुम त्रिनयन हो । परमेश्वररूपमें तुम भय और अभय दोनोंके हेतु हो, इसीसे साकारलीलामें विषधर और सुधाकर तुम्हारे भूषण हैं । परमेश्वररूपमें सर्वातिशायिनी शक्ति तुमसे अलग नहीं रहती, इसीसे साकार-लीलामें सर्वातिशायिनी भवानी तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी है । जो ‘शान्तं शिवमद्वैतम्’ दुरवगाह तत्त्व है, उसीको अपने लीलाविग्रहमें चित्रित करके तुम जगत्का कल्याण करते हो । इस विषयके प्रमाण हैं—

‘यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।’ (तैत्ति० व० ३)

‘सर्वव्यापी स भगवान् शिवः’ (श्वेता०)

‘सर्वं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म’

‘आनन्दं ब्रह्म’ (तैत्ति०)

‘ईशावास्यमिदं सर्वम्’ (ईश०)

‘यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।’

‘शान्तं शिवमद्वैतम्’ (तैत्ति०)

—इत्यादि श्रुतियाँ तथा इनकी व्याख्यास्वरूप पुराणवचन नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

यतः सर्वं समुत्पन्नं येनैव पाल्यते हि तत् ।
यस्मिंश्च लीयते सर्वं येन सर्वमिदं ततम् ॥
तदेव शिवरूपं हि प्रोच्यते हि मुनीश्वराः ॥
सर्वं ज्ञानमनन्तं चिदानन्द उदाहृतः ।
निर्गुणो निरुपाधिश्च निरञ्जनोऽव्ययस्तथा ॥
न रक्तो न च पीतश्च न श्वेतो नील एव च ।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
तदेव प्रथमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञितम् ॥

(शिवपु० ज्ञान० अ० ७६)

अर्थात् जिससे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार होता है, जो इस समस्त विश्वरूपमें व्याप्त हैं, हे मुनिवर ! वह (वेदमें) शिवस्वरूपसे कथित हुए हैं । वही सत्य हैं, ज्ञानस्वरूप हैं; वही अनन्त हैं, असीम चिदानन्द हैं । वह निर्गुण, निरुपाधि, निरञ्जन और अव्यय हैं । वह रक्त, पीत, नील, श्वेतवर्ण नहीं हैं । वह तो मन और वाणीकी पहुँचके परे हैं । वही ब्रह्म पहले शिव-नामसे कहे गये हैं ।

उभयोर्वादनाशायं यद्रूपं दर्शितं पुरा ।
महादेवेति विख्यातं शिवाच्च निर्गुणादिह ॥
तेन चोक्तं ह्यहं रुद्रो भविष्यामि कपोलतः ।
रुद्रो नाम स विख्यातो लोकानुग्रहकारकः ॥
ध्यानार्थञ्चैव सर्वेषामरूपो रूपवानभूत् ।
स एव च शिवः साक्षात् भक्तवात्सल्यकारकः ॥

(शिवपु० ज्ञान० अ० ७७)

निर्गुण निराकार शिवसे एक अद्भुत रूप उत्पन्न होता है । ब्रह्मा और विष्णुके विवादको नष्ट करनेके लिये ही उस रूपका प्रदर्शन होता है । वह महादेव नामसे विख्यात है । उनकी स्वमुख-विनिःसृत वाणी है—‘मैं रुद्र हूँगा ।’ संसारके प्रति अनुग्रहशील शिवने रूपहीन होते हुए भी सबके ध्येय होनेके लिये रूप धारण किया । भक्तवत्सल वह रूपधारी रुद्र भी साक्षात् शिव हैं । उन रूपहीन और रूपवान्में कोई भेद नहीं है । यजुर्वेद-माध्यन्दिनीय शाखाके सोलहवें अध्यायमें सर्वस्वरूप एक जगत्पति रुद्रका तत्त्व उपदिष्ट हुआ है । उसका नाम प्रथम मन्त्रमें रुद्र; द्वितीय और तृतीय मन्त्रमें गिरिशन्त, गिरित्र; चालीसवें मन्त्रमें पशुपति, उग्र, भीम; ४१ वें मन्त्रमें शङ्कर, शिव; ४७ वें मन्त्रमें नील, लोहित; ४८ वें मन्त्रमें कपर्दी; ४९ वें मन्त्रमें मृड वर्णित हुआ है । यह सब नाम पुराण-तन्त्रादिमें भी प्रसिद्ध हैं । ५१ वें मन्त्रमें यह प्रार्थना है—

‘कृत्तिं वसानः पिनाकं विभ्रदा गहि ।’

अर्थात् व्याघ्रचर्म पहनकर और पिनाक धारण करके आओ ।

इन एक साकार शिवकी ही जगत्की नाना वस्तुओं, प्राणियों तथा जातियोंके रूपमें वन्दना की गयी है। यही जगत्पतिके नामसे पुकारे जाते हैं। निराकार शिव तथा साकार शिव एक ही हैं, यह बात इस अध्यायमें विशद-रूपसे वर्णित है ।

ऋग्वेदके ७ वें मण्डलके ५१ वें सूक्तमें इनका त्र्यम्बक नाम आया है। विदित होता है कि मृत्युके मोचनार्थ तथा अमृतमें स्थितिके लिये इनका यजन ऋषियोंने किया है ।

यह ऋग्वेदका सुप्रसिद्ध मन्त्र है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारहमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

रुद्ररचित बहुतेरे मन्त्र ऋग्वेदादि संहिताओंमें भरे पड़े हैं। श्वेताश्वतर-उपनिषद्के तृतीय अध्यायमें इसी एक शिव-तत्त्वका उपदेश किया गया है—

‘एको हि रुद्रो न द्वितीयस्य तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः ।’

पुनश्च—

‘यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।

हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् ।’

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।

सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥

एक अद्वितीय रुद्र अपने शक्तिसमूहके द्वारा सब लोकोंके ईश्वर हैं। सर्वज्ञ रुद्र देवताओंके स्रष्टा और पालक हैं, उन्होंने पहले ब्रह्माकी सृष्टि की थी। उनके मुख, मस्तक और ग्रीवा असंख्य हैं, वह सब प्राणियोंकी हृदयगुहामें अवस्थित हैं, वही सर्वव्यापी भगवान् शिव हैं। इसी प्रसङ्गमें उपनिषद्ने कहा है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता

पश्यत्यक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।

—इत्यादि ।

उनके हाथ नहीं, परन्तु वह ग्रहण करनेमें समर्थ हैं। चरण नहीं हैं किन्तु द्रुतगामी हैं; चक्षु नहीं परन्तु सर्वद्रष्टा हैं। कर्ण नहीं हैं तथापि वह श्रवणशक्तियुक्त हैं। इन

समस्त श्रुतिवाक्योंमें शिवके निर्गुण, सगुण एवं विश्वरूपके भाव प्रदर्शित हुए हैं। लीलाविग्रहके अप्राकृत कर, चरण, नयन, कर्णादिको भी भक्तगण देखते हैं। कैवल्योपनिषद्में लिखा है—

तस्मादिमध्यान्तविहीनमेकं

विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ।

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं

त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ॥

वह आदि, मध्य और अन्तहीन हैं; वह रूपहीन हैं, वह एक हैं—अद्वितीय हैं, चिदानन्द हैं, वह अद्भुत हैं, देवेश हैं, वही उमासहचर त्रिलोचन नीलकण्ठ परमेश्वर हैं—अर्थात् जो निराकार हैं, वही साकार हैं। वह साकार रूपवान् होकर भुवनमोहन हैं, इसी कारण वह अद्भुत हैं। इसी भुवनमोहन रूपकी कथा शिवपुराणके अनेकों प्रसङ्गोंमें वर्णित हुई है। वही एक अद्वितीय शिव विभूतिरूपमें असंख्य हैं। शुक्ल यजुर्वेद-संहिताके सोऽहर्वे अध्यायमें इसका प्रमाण है—

असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ।

(मन्त्र ५४)

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः ।

(मन्त्र ५५)

शर्वाः—(मन्त्र ५७)

ये भूतानामधिपतयः ‘कपर्दिनः’—(मन्त्र ५९)

रुद्रोंकी गिनती नहीं की जा सकती, यह सभी नीलकण्ठ, भूतोंके अधिपति, कपर्दी, संहार-शक्तिमान्, शर्व, भूतल, आकाश सर्वत्र ही रहते हैं। एकादश रुद्रकी कथा बृहदारण्यक, महाभारत तथा पुराणादिमें वर्णित है। रुद्र-गणोंका उल्लेख ऋग्वेदादिमें भी है।

संख्याभेदसे जो विरोध या असामञ्जस्य जान पड़ता है, इसकी मीमांसा बृहदारण्यक उपनिषद्में देवता-संख्या-विचारके प्रसङ्गमें हुई है। जनककी सभामें शाकल्य और याज्ञवल्क्यके प्रश्न और उत्तरमें निश्चित हुआ है कि देवता त्रयस्त्रिंशत् सहस्र त्रयस्त्रिंशत् शत (३३३३००) हैं, तत्पश्चात् पुनः प्रश्नोत्तरमें कहा गया है कि देवताओंकी संख्या तैत्तीस ही है। इस संख्याविरोधका परिहार इसप्रकार हुआ है—‘महिमानमेवैषामेते त्रयस्त्रिंशस्वेव देवाः’

अर्थात् प्रथमोक्त ३३३३०० देवता इन्हीं ३३ देवताओं की विभूतिमात्र हैं; मूलतः ३३ ही देवता हैं। इन्हींमें ११ रुद्र हैं। इन एकादश रुद्रोंकी विभूति ११११०० देवताओंमें है। सबके अन्तमें यह ३३ देवता एक ही प्राणदेवताकी विभूति हैं। वह एक प्राणदेवता ही ब्रह्म हैं। श्वेताश्वतर प्रभृति उपनिषदोंमें वही शिव आदि नामोंसे कहे गये हैं।

महाभारत, रामायण, पुराण, उपपुराण सबमें भगवान् शिवका तत्त्व वर्णित है। उन सबमें उनके निराकार और साकार दोनों ही भावोंका निर्देश पाया जाता है। उदाहरणार्थ महाभारत और श्रीमद्भागवतसे यहाँ किञ्चित् प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। महाभारतके अनुशासनपर्वके १४ वें अध्यायमें युधिष्ठिरके प्रश्नका उत्तर देते हुए भीष्म-पितामह कहते हैं—

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः ।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ॥
ब्रह्मविष्णुसुरेशानां द्रष्टा च प्रभुरेव च ।
ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यं हि देवा उपासते ॥
प्रकृतीनां परत्वेन पुरुषस्य च यः परः ।
चिन्त्यते यो योगविद्भिर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
अक्षरं ब्रह्म परमं असच्च सदसच्च यः ।
को हि शक्तो भवं ज्ञातुं मद्विधः परमेश्वरम् ॥
ऋते नारायणास्पुत्र शङ्खचक्रगदाधरात् ।
रुद्रभक्त्या तु कृष्णेन जगद्व्याप्तं महात्मना ॥
तं प्रसाद्य महादेवं वदयामि किल भारत ।
आपत् प्रियतरस्वच्छ सुवर्णाक्षान्महेश्वरात् ॥
पूर्णं वर्षसहस्रान्तु तप्तवानेष माधवः ।
प्रसाद्य धरदं देवं चराचरगुरुं शिवम् ॥
युगे युगे तु कृष्णेन तोषितो वै महेश्वरः ॥

‘उन सर्व बुद्धिके अधिपति श्रीमहादेवके गुण-वर्णनमें मैं असमर्थ हूँ। वह सर्वव्यापी होते हुए भी सर्वत्र अदृश्य हैं—वही ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि देवताओंके स्रष्टा और प्रभु हैं। ब्रह्मादि देवोंसे पिशाचपर्यन्त प्राणी जिनकी उपासना करते हैं, प्रकृति और पुरुषके अतीतरूप योगमें स्थित योग-तत्त्वदर्शी ऋषिगण जिनका ध्यान करते हैं, जो अक्षर परब्रह्म हैं, जो असत् और सदसत् हैं, उन परमेश्वर भवको मेरे समान मनुष्य क्या जान सकता है? केवल एक शंख-

चक्रगदाके धारण करनेवाले नारायण श्रीकृष्ण उनको जानते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण रुद्रभक्तिके प्रभावसे ही जगत्-व्यापक हो रहे हैं। उन्होंने बदरिकाश्रममें महादेवको प्रसन्नकर उनसे प्रियवरत्वरूप वर प्राप्त किया है। पूर्ण सहस्र वर्ष अर्थात् सहस्र दिन उन्होंने तपस्या की थी। उद्देश्य केवल चराचर-गुरु शिवकी प्रसन्नताकी प्राप्ति थी। श्रीकृष्णने नाना अवतारोंमें युग-युगमें महेश्वरको तपस्याद्वारा तुष्ट किया है।’ इसके पश्चात् भीष्मकी प्रार्थनासे श्रीकृष्ण महेश्वरके गुण-कीर्तनमें सम्मत हो पहले ही कहते हैं—

न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्त्वतः ।
हिरण्यगर्भप्रमुखाः देवाः सेन्द्रा महर्षयः ॥
न विदुर्यस्य भवनमादिद्याः सूक्ष्मदर्शिनः ।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण भगवान् ने महादेवजीकी जो आराधना की थी उसका पूरा वर्णन किया। भगवान् महादेव प्रसन्न होकर श्रीकृष्णके सम्मुख आ प्रकट हुए थे, उस अवस्थाका वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—

‘ईक्षितुञ्च महादेवं न मे शक्तिरभूत्तदा ।
ततो मामब्रवीद्देवः पश्य कृष्ण वदस्व च ॥
त्वया ह्याराधितश्चाहं शतशोऽथ सहस्रशः ।
त्वत्समो नास्ति मे कश्चित्त्रिषु लोकेषु वै प्रियः ॥
ततोऽहमब्रवाम् स्थाणुं स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः ।
समोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति ।
तपश्च सत्त्वञ्च रजस्तमश्च
त्वामेव सत्यञ्च वदन्ति सन्तः ॥
त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

इत्यादि ।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि ‘तेजःपुञ्जकलेवर महादेव मेरे सम्मुख प्रकट हुए। मैं उनको देखनेमें समर्थ न हुआ, उनके तेजसे मेरी दृष्टि-शक्ति प्रतिहत हो गयी। मेरी उस अवस्थाको देखकर देवदेव श्रीमहादेव मुझसे बोले—‘हे कृष्ण! मेरी ओर देखो, और अपनी मनोकामना प्रकट करो। तुमने मेरी सैकड़ों-सहस्रों बार आराधना की है। तीनों लोकमें तुम्हारे समान प्रिय मेरा कोई नहीं है।’ इसके पश्चात् ब्रह्मादि देवताओंके वन्द्य श्रीमहादेवसे मैंने कहा—‘हे शाश्वत पुरुष! सर्वकारण! आपको मेरा प्रणाम हो। ऋषिगण आपको ब्रह्माधिपति (ब्रह्माके भी प्रभु या वेदके अधिस्वामी)

कहते हैं। और भी आपको तपःस्वरूप, सत्त्व, रज एवं तमोगुणस्वरूप कहते हैं। आप ही सत्य हैं। (यहाँ सत्य शब्दका परब्रह्म अर्थ श्रुतिसम्मत है)। आप ही इस चराचर समस्त जगत्के सृष्टिकर्ता हैं।’

इसप्रकार महाभारतमें अनेक स्थानोंमें शिव-तत्त्वकी आलोचना की गयी है। श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धके सप्तम अध्यायमें है—

स्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनम् ।

नानाशक्तिभिराभातरत्त्वमायमा जगदीश्वरः ॥

इसी प्रकार इसका पूर्व श्लोक भी है—

गुणमय्या स्वशक्त्यास्या सर्गस्थित्यप्ययान् विभो ।

धत्से यथा स्वदग् भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥

‘तुम निगूढ़ परब्रह्म हो, सदसत् समस्त वस्तुएँ तुम्हींसे उत्पन्न होती हैं। तुम ईश्वर हो, नाना प्रकारकी शक्तियोंके द्वारा तुम जगत्स्वरूपमें प्रकाशित हो रहे हो। तुम अपनी गुणमयी शक्तिकी सहायतासे ब्रह्मा, विष्णु और शिव-नाम धारणकर सृष्टि, स्थिति और संहार करते हो। तुम स्वप्रकाश भूमास्वरूप हो।’

इसप्रकार साकार, निराकार एवं विश्वरूपकी आलोचना करनेके बाद स्तुतिकर्ता प्रजापतिगण कहते हैं—

यत्तच्छिवाख्यं परमात्मतत्त्वं

देव स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते ।

‘हे देव ! शिव-नामसे अभिहित स्वयंज्योति परमात्म-तत्त्व ही तुम्हारी नैसर्गिक अवस्था है।’

इसके पश्चात् कहते हैं—

न ते गिरित्राखिललोकपाल-

विरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ।

ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च

सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥

‘हे गिरित्र ! तुम्हारी परम ज्योति ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि निखिल लोकपालोंको अप्राप्य है। उसमें रज, तम, और सत्त्वगुणका सम्बन्ध नहीं है एवं वही द्वैतहीन ब्रह्म है।’

अब और अधिक अवतरण देनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं रह गयी है। सभी शास्त्रोंमें शिव-तत्त्व उपदिष्ट हुआ है। न्यायशास्त्रकार महर्षि गौतमने वादयुद्धमें शिवको सन्तुष्ट करके उनकी कृपासे सिद्धि प्राप्त की थी। महर्षि कणाद

शिवकी कृपासे ही वैशेषिक दर्शनके प्रणेता बने हैं। तण्डि, उपमन्यु, दधीचि, मार्कण्डेय, ऋभु, दुर्वासा प्रभृति ऋषिगण शिव-तत्त्व-सुधाके आनन्द-सिन्धुमें सदा निमग्न रहते थे। एक ऐसा समय था जब समस्त पृथिवी, यही क्यों समस्त जगत् (अखिल विश्व), ब्रह्मासे लेकर पिशाच-पर्यन्त सभी शिवकी आराधनामें रत थे। आज जगत्में उनकी आराधना हासको प्राप्त हो रही है !

अब जगद्व्यापी शिवाराधनाके भेदोंका उल्लेख किया जाता है। शिवकी आराधना प्रधानतः दो प्रकारकी होती है—वैदिक और अवैदिक। देवता, ऋषि तथा वर्णाश्रम-धर्मानुयायी मानवगण शिवकी वैदिक आराधना करते हैं। इस आराधनाकी तीन पद्धतियाँ हैं—कर्ममार्ग, योगमार्ग और ज्ञानमार्ग। रुद्र-याग प्रभृति यज्ञ, स्मार्त, पौराणिक एवं वेदानुमत तन्त्र-सम्मत शिव-पूजा कर्ममार्गके अन्तर्गत है। श्वेताश्वतर-उपनिषद्में कथित—

त्रिरुद्धतं स्थाप्य समं शरीरं

हृदिन्द्रियाणि मनसा सन्निरुध्य ।

ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत् विद्वान्

स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥

—योग-साधना योग-मार्गकी है। तथा—

तमेव विदिस्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयमाय ।

—इत्यादि उपनिषदोंमें प्रदर्शित पद्धति ज्ञानमार्गकी है।

पद्धति-भेदसे शिव-तत्त्वका स्मरण पहले विभिन्न हो सकता है, परन्तु चरमावस्थामें सभी एक तत्त्व हैं। अवैदिक उपासनाकी दृष्टिसे भी तीन प्रकारकी पद्धति शिवाराधनाकी है, परन्तु उससे वर्णाश्रम-धर्मका सम्बन्ध नहीं है। ब्राह्मणादि संज्ञा उस सम्प्रदायमें प्रचलित न होनेके कारण वह शैव-नामसे ही प्रसिद्ध हैं। यह शैव लोग नाथ-सम्प्रदाय, जङ्गम-सम्प्रदाय प्रभृति कतिपय सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। वर्णाश्रम-धर्मवर्जित वैष्णव भी होते हैं। इसप्रकारके शैव और वैष्णव प्रायः परस्पर विवाद किया करते हैं। स्मृति-शास्त्र वर्णाश्रम-धर्म-हीन लोगोंका पृथक् स्थान निर्देश करते हैं। मैंने इस निबन्धमें वैदिक उपासनाके अनुकूल ही शिव-तत्त्वकी आलोचना की है। श्रीमद्भागवत प्रभृति कतिपय पुराणोंमें आया है कि रुद्र ब्रह्माके ललाटे उत्पन्न हुए हैं। कल्पभेदसे परमेश्वरकी लीला विविध प्रकारकी है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें श्रीकृष्णको परब्रह्म कहा गया है। उनके

ही दक्षिणपार्श्वसे यैकुण्ठनाथ नारायणका तथा वामपार्श्वसे कैलासपति शिवका उद्भव होता है। दोनों मतसे परब्रह्मका संज्ञाभेद होनेपर भी साकार शिव-तत्त्व मूलतः एक ही है। वैष्णवपुराणोंमें अनेक स्थानोंमें शिव विष्णुके उपासकके रूपमें कथित हुए हैं तथा शैवपुराणोंमें विष्णु शिवके उपासकरूपमें वर्णित हुए हैं। इसप्रकारके वर्णनका मूल हरिहर-की भेद-लीला है। जान पड़ता है, यही शिव-तत्त्वका चरम सिद्धान्त है।

हरिहरयोः प्रकृतिरेका प्रत्ययभेदेन रूपभेदोऽयम्।

एकस्त्वं नटस्यानेकविधा भूमिकाभेदात् ॥ॐ॥

‘हरि और हरमें मूलतः भेद नहीं है। प्रत्ययमें ही भेद होता है। नाटकमें अभिनेता नाना रूप धारण करता है, परन्तु वस्तुतः वह जो है सो ही रहता है।

हे जगद्गुरु महेश्वर! एकमात्र तुम्हीं सब जीवोंके ज्ञानदाता हो, मैंने उसी ज्ञानके कणमात्रका अनुसरण कर इस दुरुह, दुर्ज्ञेय तत्त्वकी स्वल्पातिस्वल्प आलोचना की

है। इसीलिये गन्धर्वराज पुष्पदन्तके पदोंका अनुसरण करता हुआ उन्हींकी भाषामें कहता हूँ—

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी

स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तद्वसन्नास्त्वयि गिरः।

अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्

ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥

तोमार महिमा सीमा ना जानिया से विषये

आलोचने यदि हय दोष।

ब्रह्मा आदि देवता ओ ताहा हते अव्याहति

नाहि लभे प्रभु आशुतोष।

तव दत्त ज्ञानमते ये याहा बलिबे ताहे

यदि नाहि हय अपराध।

हइले ओ क्षुद्र आमि बलिते तोमार कथा

बल केन ना करिब साध ॥

नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे।

निवेद्यामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर ॥

शिवलिङ्ग और काशी

(लेखक—पण्डित श्रीभवानीशङ्करजी)

श्रीगणेश



अ उपास्य देवोंमें एक देव श्रीआदिगणेशको महेश्वरने सृष्टिके प्रारम्भमें सृष्टि-कार्यमें विघ्न-बाधाके प्रशमनार्थ अपने साक्षात् अंशसे प्रकट किया, इसी कारण प्रत्येक यज्ञादि शुभ कार्यमें प्रथम श्रीगणेशकी पूजा होती है।

जब उस महेश्वर परात्पर तत्त्वने व्यक्तरूपमें शिवमूर्ति धारण की तो उसी अनादि शैलीके अनुसार श्रीगणेश भी उनके यहाँ पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए और गणोंके (देवताओंके) अधिपति अर्थात् सञ्चालक बने। इस श्रीशिवांकके निमित्त लेख लिखनेके पूर्व श्रीगणेश-की वन्दना और गुणगान करना आवश्यक है—

ॐ देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकरुणाराजाः।

विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः ॥

यह गणाधिप गणेश ज्ञानके दाता हैं, इसी कारण बुद्धिद्वारा कार्य करते हैं। इनका विशाल मस्तक इनकी महती बुद्धिका सूचक है। इसी बुद्धिके बलसे इनका क्षुद्र अधोभाग इनके विशाल ऊर्ध्वभागको सहारा देता है और परम लघु जन्तु मूषकसे वाहनका कार्य चलता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि आभ्यन्तरिक ज्ञान और बुद्धि प्रचुर रूपमें प्राप्त हो तो उसके बलसे बहुत स्वल्प बाह्य सामग्रीसे कार्य उत्तमतासे चल सकता है। समाजमें कोई-कोई जो नेता होनेकी योग्यताके साथ जन्म लेते हैं वह इन्हीं श्री-गणेशके कृपापात्र होते हैं। श्रीगणेश अर्थात् बुद्धिमान् थोड़े परिश्रमसे बड़ा कार्य करते हैं।

एक बार श्रीमहादेवको अपने एक यज्ञमें बुलानेके लिये देवताओंको निमन्त्रण भेजना था। कार्तिकेयजीसे यह कार्य अवधिके भीतर न हो सका। तब श्रीगणेशजीपर यह

* हरि और हर दोनों (शब्दों) की प्रकृति (वास्तविक तत्त्व; ‘ह’ धातु) एक ही है। परन्तु प्रत्यय (विधास; ‘र’ एवं ‘अ’ प्रत्यय) के भेदसे रूपभेद हो जाता है।

भार दिया गया, किन्तु उनका वाहन क्षुद्र मूषक था जो बहुत मन्दगतिसे चलनेवाला था। अतः श्रीगणेशजीने बुद्धिसे कार्य किया। श्रीमहादेवजीमें सब देवताओंका वास है, ऐसा समझकर उन्हींको तीन बार परिक्रमा करके सब देवताओंको वहीं निमन्त्रण दे दिया। परिणाम यह हुआ कि सब देवताओंको यज्ञ और निमन्त्रणकी जानकारी हो गयी और सब-के-सब यज्ञमें सम्मिलित हुए।

परात्पर शिव और आद्या शक्ति

सृष्टिमें जो परम परात्पर हैं वही शिव हैं। माण्डूक्योपनिषद्में शिवका यों वर्णन मिलता है—

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विज्ञेयः।

जिनकी प्रज्ञा बहिर्मुख नहीं है, अन्तर्मुख नहीं है और उभयमुख भी नहीं है, जो प्रज्ञानघन नहीं हैं, प्रज्ञ नहीं हैं, और अप्रज्ञ भी नहीं हैं, जो वर्णनसे अतीत हैं, दर्शनसे अतीत, व्यवहारसे अतीत, ग्रहणसे अतीत, लक्षणसे अतीत, चिन्तासे अतीत, निर्देशसे अतीत, आत्मप्रत्ययमात्र-सिद्ध, प्रपञ्चातीत, शान्त, शिव, अद्वैत और तुरीयपदस्थित हैं वे ही निरुपाधिक जाननेयोग्य हैं। इनका ही नाम 'महेश्वर', 'स्वयम्भू' और 'ईशान' है। श्रुति भी कहती है—

‘तमीश्वराणां परमं महेश्वरं

तं देवतानां परमं च दैवतम्।

पतिं पतीनां परमं परस्ताद्

विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥’

‘यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।

योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्॥’

‘तमीशानं वरदं देवमीड्यं

निचाप्येमां शान्तिमत्यन्तमेति॥’

वे ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता, पतियोंके भी परम पति, परात्पर, परम पूज्य और भुवनेश हैं। जिनमें यह विश्व है, जिनसे यह विश्व है, जिनके द्वारा यह विश्व है, जो स्वयं यह विश्व हैं, जो इस विश्वके परसे भी परे हैं, उन स्वयम्भू भगवान्की मैं शरण लेता हूँ। उन्हीं ईशान और वरदाता पूज्यदेवको जाननेसे जीव आत्यन्तिकी शान्तिका अधिकारी हो जाता है।

यह सदाशिव अपनी शक्तिसे युक्त होकर सृष्टि रचते हैं। श्वेताश्वतर-उपनिषद्में लिखा है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।

तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

माया प्रकृति है और महेश्वर प्रकृति—माया—के अधिष्ठाता, मायी हैं। मायाके द्वारा उन्हींके अवयवभूत जीवोंसे समस्त संसार-परिव्याप्त हो रहा है।

इसप्रकार यह अवयव सदाशिव सृष्टिकी रचनाके निमित्त दो हो जाते हैं। क्योंकि सृष्टि बिना द्वैत (आधार-आधेय) के हो नहीं सकती। आधेय (चैतन्य पुरुष) बिना आधार (प्रकृति, उपाधि) के व्यक्त नहीं हो सकता। इसी कारण इस सृष्टिमें जितने पदार्थ हैं उनमें अभ्यन्तर-चेतन और बाह्य प्राकृतिक आधार अर्थात् उपाधि (शरीर) देखे जाते हैं। दृश्यादृश्य सब लोकोंमें इन दोनोंकी प्राप्ति होती है। इसी कारण इस अनादि-चैतन्य परम-पुरुष परमात्माकी शिवसंज्ञा सृष्ट्युत्पत्त्युत्पन्न होनेपर अनादि लिङ्ग है और उस परम आधेयको आधार देनेवाली अनादि प्रकृतिका नाम योनि है; क्योंकि ये दोनों इस अखिल चराचर विश्वके परम कारण हैं। शिव लिङ्गरूपमें पिता, और प्रकृति योनिरूपमें माता हैं। गीतामें इसी भावको इस-प्रकार प्रकट किया गया है—

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।

सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥

(गीता १४।३)

‘महद्ब्रह्म (महान् प्रकृति) मेरी योनि है, जिसमें मैं बीज देकर गर्भका सञ्चार करता हूँ और इसीसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है।’

इसी अनादि सदाशिव-लिङ्ग और अनादि प्रकृति-योनिसे समस्त सृष्टि उत्पन्न होती है। इसमें आधेय बीज-प्रदाता (लिङ्ग) और आधार बीजको धारण करनेवाली (योनि) का संयोग आवश्यक है। इन दोनोंके संयोगके बिना कुछ नहीं उत्पन्न हो सकता। इसी परम भावका मनुजीने इस-प्रकार वर्णन किया है—

द्विधाकृतात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।

अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः॥

सृष्टिके समय परम पुरुष अपने ही अर्द्धाङ्गसे प्रकृतिको

निकालकर उसमें समस्त सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं। इसप्रकार शिवका लिङ्ग-योनिभाव और अर्द्धनारीश्वरभाव एक ही वस्तु है। सृष्टिके बीजको देनेवाले परमलिङ्गरूप श्रीशिव जब अपनी प्रकृतिरूपा नारी (योनि) से आधार-आधेयकी भाँति संयुक्त होते हैं तभी सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, अन्यथा नहीं। इसप्रकार श्रीशिव अपनी तेजोमयी प्रकृतिको धारण-कर उससे आच्छादित होकर व्यक्त होते हैं, अन्यथा उनका व्यक्त होना असम्भव है। इसी कारण कहा है—

स्वया हृतं वामवपुः शरीरं त्वं शम्भोः ।

अर्थात् 'हे देवि ! आपने श्रीशिवके आधे शरीर-वाम भागको हरण कर लिया है, अतएव आप उनके शरीर हैं।'।

यह लिङ्ग-योनि जिसका व्यवहार श्रीशिव-पूजामें होता है, प्रकृति और पुरुषके संयोगसे होनेवाली सृष्टिकी उत्पत्तिकी सूचक है। इसप्रकार यह परम परात्पर जगत्पिता और दयामयी जगन्माताके आदिसम्बन्धके भावकी द्योतक है। अतः यह परम पवित्र और मधुर भाव है। इसमें अदलीलताका आशेष करना ठीक नहीं। यह अनादि प्रकृति-पुरुषका सम्बन्ध परम सृष्टि-यज्ञ है जिसका परिणाम यह सुन्दर सृष्टि है। अतएव शुद्ध मैथुन, जिसका उद्देश्य कामोपभोग नहीं बल्कि पितृऋणसे उद्धार पानेके लिये उत्पत्ति-धर्मका पालन करना है, कामाचार नहीं, परम यज्ञ है और इसप्रकार विचार करनेसे परम कर्तव्य सिद्ध होता है। इस दृष्टिसे प्रत्येक जन्तुका परम पवित्र कर्तव्य है कि वह लिङ्ग-योनिका उत्पत्ति-धर्मके पालनके लिये ही उचित व्यवहार करे। और इनका यज्ञार्थ—धर्मार्थ व्यवहार न करके कामोपभोगके निमित्त व्यवहार करना दुरुपयोग है और अवश्य ही पापजनक है।

इसप्रकार शिवलिङ्गका अर्थ ज्ञापक अर्थात् प्रकट करने-वाला है। क्योंकि इसीके व्यक्त होनेसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। दूसरा अर्थ आलय है अर्थात् यह प्राणियोंका परम कारण और निवास-स्थान है। तीसरा अर्थ है 'लीयते यस्मिन्निति लिङ्गम्', अर्थात् सब दृश्य जिसमें लय हो जाय वह परम कारण लिङ्ग है। लिखा भी है—

लीयमानमिदं सर्वं ब्रह्मण्येव हि लीयते ।

लिङ्ग परमानन्दका कारण है जिससे क्रमशः ज्योति और प्रणवकी उत्पत्ति हुई है। लिङ्गपुराण अ० १७ में कहा है कि सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मा और विष्णुके बीच यह विवाद चल रहा था कि दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है। इतनेमें उन्हें एक बृहत् ज्योतिर्लिङ्ग दिखलायी दिया। उसके मूल और परिमाणका

पता लगानेके लिये ब्रह्मा ऊपर गये और विष्णु नीचे, परन्तु दोनोंमेंसे किसीको उसका पता न चला। विष्णुके स्मरण करनेपर वेद-नामके ऋषि वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने समझाया कि प्रणवमें 'अ'कार ब्रह्मा हैं, 'उ'कार विष्णु हैं और 'म'कार श्रीशिव हैं।

'म'कार ही बीज है और वही बीज लिङ्गरूपसे सबका परम कारण है। ऊपरकी कथामें विष्णुसे ब्रह्माण्डके विष्णुसे तात्पर्य है न कि महाविष्णुसे, जो अनेक ब्रह्माण्डोंके नायक हैं तथा जिनमें और सदाशिवमें कोई भेद नहीं है।

शिव और मन्त्र

परमपुरुष शिव और उनकी शक्तिके सम्मेलनसे जो स्पन्दन उत्पन्न हुआ, वही सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण बना। इसीको शिवका ताण्डव-नृत्य कहते हैं। रसायन-विज्ञानका सिद्धान्त है कि इलेक्ट्रॉन (electrons) जो पुरुषके समान आधेय (position) हैं उनका प्रोटॉन (protons), जो प्रकृतिके समान आधेय (negation) हैं, के साथ संघर्ष होनेसे जो स्पन्दन (encircling motion) उत्पन्न होता है उसीके द्वारा अणुओंकी उत्पत्ति होती है और उन अणुओंसे आकार बनते हैं।

जब सदाशिव आनन्दोन्मत्त होकर अर्थात् माँ आनन्द-मयीसे युक्त होकर नृत्य करते हैं तो उस महानृत्यके परिणामसे इस सृष्टिके पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है। इसप्रकार यह विश्व सदाशिवके नृत्य और नादका परिणाम है क्योंकि नृत्यमें वह डमरू बजाते हैं। जहाँ स्पन्दन (Motion) होता है वहाँ शब्द भी होता है। इसप्रकार श्रीशिवके डमरूके शब्दसे (जो प्रकृति और पुरुषके सम्मेलनके द्वारा नादरूपमें प्रकट होता है) व्याकरणके मुख्य शब्द-सूत्रकी उत्पत्ति हुई। यह शब्द चार प्रकारके शब्दोंमें अन्तिम 'वैखरी' वाक्का व्यक्त रूप है। अतएव वर्णमालाके प्रत्येक अक्षरमें शक्ति सन्निहित है। इस शक्तिके कारण आभ्यन्तरिक षट्चक्रोंमें इन अक्षरोंका निवासस्थान है। इस शिवशक्तिके नादका स्थान स्वर्गके ऊपरी भागमें है जिसकी 'परा' संज्ञा है। उस पराको स्वर्गलोकमें ऋषिगण मन्त्ररूपमें देखते हैं, इसीसे उसे 'पश्यन्ती' कहते हैं। परन्तु ये मन्त्र उस 'परा'के आध्यात्मिक रूप हैं जो स्वर्गमें देखे और सुने जाते हैं। पश्चात् वे मन्त्रमें वैखरीरूपसे प्रकट होते हैं; क्योंकि श्रीशिव उस परावाक्के कारण हैं जिसके द्वारा मन्त्र आदि समस्त वाक्योंकी उत्पत्ति हुई है। अतएव श्रीशिव मन्त्रशास्त्रके प्रवर्तक कहे जाते हैं। शिवपूजाके

अन्तमें जो 'बम्, बम्' शब्दका उच्चारण किया जाता है वह प्रणवका ही सुलभरूप है जो अत्यन्त प्रभावशाली है।

ऊपर सदाशिवका वर्णन हुआ। परन्तु उनका व्यक्तभाव श्रीमहादेव मनुष्यरूप पिण्डाण्डके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। तात्पर्य यह कि मनुष्य आध्यात्मिक जीवनमें ऊँची-से-ऊँची जितनी उन्नति कर सकता है, श्रीमहादेव उसके आदर्शस्वरूप हैं। उन्हींको लक्ष्यमें रखकर साधकको उन्नतिके पथमें अग्रसर होना चाहिये। इसी कारण श्रीशिव जगद्गुरु हैं। तात्पर्य यह कि उनमें यज्ञ, तपस्या, योग, भक्ति, ज्ञान आदिकी पराकाष्ठा पायी जाती है। यह इनके आदर्श और उपदेष्टा हैं। शिवका तीसरा नेत्र दिव्य ज्ञानचक्षु है जो प्रत्येक मनुष्यके भीतर है, परन्तु यह बिना श्री-जगद्गुरु शिवकी सहायताके खुल नहीं सकता। गायत्रीशक्ति शिवके इसी आदर्शको लेती है और अपने सृष्टि-कार्यमें इसको लक्ष्य बनाकर उसी ओर साधकोंको प्रवृत्त करती है।

आध्यात्मिक काशी

जब साधककी चित्तवृत्ति शुद्ध, शान्त और निःस्वार्थ होकर अपने अभ्यन्तरके आध्यात्मिक हृदयमें वहाँ स्थित होती है जहाँ प्रज्ञाका बीज होता है तो उसी अवस्थाको काशीप्राप्ति कहते हैं। यह अवस्था परम सुपुतिके समान है। इसमें आनन्दका अनुभव होता है, इसी कारण काशी-को आनन्द-वन कहते हैं। इस काशीमें महाश्मशानकी स्थिति (जहाँ शिवका वास होता है) का कारण यह है कि यहाँ शिवके तेजसे विकारोंके दग्ध होनेपर अनात्मरूप उपाधियोंसे छुटकारा मिलता है और अहंकार भी दग्ध हो जाता है। गौरीमुखका तात्पर्य यह है कि इस काशी-प्राप्तिकी अवस्थामें साधक दैवी ज्योति और बोधशक्तिके सम्मुख पहुँच जाता है और ज्यों ही उसका आध्यात्मिक दिव्य चक्षु श्रीशिवके द्वारा खुलता है त्यों ही वह त्रिलोकीके पार पहुँच गौरी अर्थात् विद्यादेवीको बिना आवरणके देखनेमें समर्थ हो जाता है। मणिकर्णिका प्रणवकर्णिका है और इनकी तीन कर्णिकाएँ चित्तकी तीन अवस्थाओंकी द्योतक हैं, जैसे—

- (१) साधारण, जाग्रत्-अवस्था।
- (२) दूर-दर्शन और दूर-श्रवणकी अवस्था।
- (३) स्वर्गलोककी अवस्था।

काशी इन तीनोंके परे है जिसके लाभसे मुक्ति होती है। श्रीशिवजी तारक-मन्त्र तभी प्रदान करते हैं जब साधक हृदयरूप काशीमें (कारण-शरीरमें) स्थित होता है और तब वह तारक-मन्त्रके प्रभावसे सदाके लिये तुरीयावस्थामें चला जाता है।

त्रिशूलका भाव है त्रितापका नाश करना अर्थात् त्रितापसे मुक्ति पाकर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे भी परे तुरीयामें पहुँचना। ऐसा साधक ही यथार्थ त्रिशूलधारी है।

अन्य भाव

शिवके मस्तकमें चन्द्रमाका संकेत प्रणवकी अर्द्धमात्रा-से है और इसी निमित्त उनके मस्तकको अर्द्धचन्द्र भूषित करता है। योगिगण अपने अभ्यन्तरके चित्-अग्निके द्वारा अहंकारको दग्ध करते हैं और उसके साथ उसके कार्य पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत आदि सबको दग्धकर परम शुद्ध आध्यात्मिक भावमें परिवर्तित कर देते हैं तब वह निर्विकार, शुद्ध और शान्त हो जाता है। उसे ही भस्म कहते हैं। उस शुद्ध भावरूप भस्मको धारण करनेसे शान्ति मिलती है। आध्यात्मिक गङ्गा एक बड़ा तेजपुञ्ज है जो महाविष्णुके चरणसे निकलकर ब्रह्माण्डके नायक श्रीमहादेवके मस्तकपर गिरता है और वहाँसे संसारके कल्याणके निमित्त फैलता है। इस तेजपुञ्जको केवल महादेव धारण कर सकते हैं, क्योंकि शिव और विष्णु एक हैं। श्रीशिवकी कृपासे इस आध्यात्मिक गङ्गाका लाभ अभ्यन्तरमें—अन्तरस्थ काशी-क्षेत्रमें—होता है।

शिवके पाँच मुख हैं—ईशान, अघोर, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात। ईशानका अर्थ है स्वामी, अघोरका अर्थ है कि निन्दित कर्म करनेवाले भी श्रीशिवकी कृपासे निन्दित कर्मको शुद्ध बना लेते हैं। तत्पुरुषका अर्थ है अपने आत्मामें स्थिति लाभ करना। वामदेव विकारोंके नाश करनेवाले हैं। सद्योजात बालकके समान परम स्वच्छ, शुद्ध और निर्विकार हैं। त्र्यम्बकका अर्थ है ब्रह्माण्डके त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनोंके अम्ब अर्थात् कारण। जीवात्माकी तीव्रभक्ति (सेवा) और मिलनके प्रगाढ़ और अनन्य अनुराग तथा विशुद्ध निहँतुक प्रेमसे शिवप्राप्ति होती है। और वह अनुराग मिलन होनेपर श्री-शिवके चरण-कमलके स्पर्शकी परम शान्तिमें पूर्णताको प्राप्त होता है।

महायोगीश्वर भगवान् शङ्कर

(लेखक—स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी)



गत्पति, जगद्गुरु, त्रिपुरारि (अर्थात् काम, क्रोध एवं अहङ्काररूपी तीन नगरोंका ध्वंस करनेवाले), उमाशङ्कर (उमापति), ज्योतिर्मय, चिदानन्दमय, योगेश्वर, ज्ञान-निधान भगवान् शिवको जो महादेव, शङ्कर, हर, शम्भु, सदाशिव, रुद्र, शूलपाणि, भैरव, उमा-महेश्वर, नीलकण्ठ, त्रिलोचन (त्रिनेत्र), त्र्यम्बक, विश्वनाथ, चन्द्रशेखर, अर्दनारीश्वर, महेश्वर, नीललोहित, परमशिव, दिगम्बर, दक्षिणामूर्ति इत्यादि नामोंसे पुकारे जाते हैं, मैं साञ्जलि प्रणाम करता हूँ ।

अहा ! वे कैसे दयामय हैं ! कैसे प्रेमी एवं कृपासागर हैं !! वे अपने भक्तोंके मुण्डोंकी मालाको गलेमें धारण करते हैं । वे वैराग्य, करुणा, प्रेम एवं ज्ञानकी मूर्ति हैं । उन्हें संहाररूप कहना मूर्खता है । वे तो वास्तवमें नवजीवनके दाता हैं । जब-जब हमारा यह पाञ्चभौतिक देह जरा, व्याधि अथवा अन्य कारणोंसे इसी जन्ममें अधिक विकासके अयोग्य हो जाता है तब वे इस निकम्मे अस्थिपञ्जरको छीनकर हमें दूसरा नया, निरामय एवं बलवान् शरीर देते हैं जिसके द्वारा हम अधिक शीघ्र अपना रास्ता तै कर सकते हैं । वे अपनी सारी सन्ततिको अपने चरणपङ्कजकी ओर शीघ्र ले जाना चाहते हैं । वे उन्हें शीघ्र ही अपना तेजोमय धाम—शिवपद—देना चाहते हैं ।

भगवान् हरिकी अपेक्षा शङ्करको सन्तुष्ट करना सहज है । थोड़ा-सा प्रेम एवं भक्ति, उनके पञ्चाक्षर-मन्त्रका थोड़ा-सा जप ही शिवको प्रसन्न करनेके लिये पर्याप्त है । वे अपने भक्तोंको बहुत शीघ्र वरदान देते हैं । अहा ! उनका हृदय कितना विशाल है ! उन्होंने अर्जुनको उसकी थोड़ी-सी तपस्याके बदले सहजहीमें अपना पाशुपतास्त्र दे दिया । उन्होंने भस्मासुरको एक दुर्लभ वर दे डाला । तिरुपतिके समीप कलहस्ती नामक नगरमें उन्होंने अपनी मूर्तिके रोते हुए नेत्रोंके स्थानमें अपनी निजकी आँखें निकालकर रखनेवाले कण्णप्प-नयनार नामक व्याधको दर्शन दिये । चिदम्बरम्में उन्होंने अस्पृश्य अन्त्यज-जातिके नन्दन नामक सन्तको दर्शन दिये । वे यमराजके अधिकारमें आये हुए बालक

मार्कण्डेयको चिरजीवी बनानेके लिये बड़े वेगसे दौड़े । लङ्काधिपति रावणने उन्हें अपने सामगानसे सन्तुष्ट कर लिया । उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार इन चार कुमारोंको गुरु दक्षिणामूर्तिके रूपमें ज्ञानका रहस्य सिखाया । दक्षिण भारतके मदुरा नामक नगरमें एक बार जिस समय वैगाई (Vaigai) नदीको रोकनेके लिये बाँध बनाया जा रहा था उस समय सुन्दरेश्वर (भगवान् शङ्कर) एक बालकका वेष बनाकर एक भक्त महिलाके बदलेमें अपने सिरपर मिट्टी उठाकर ले गये और इस परिश्रमके लिये उन्होंने थोड़ी-सी पुट्टू नामक मिठाई प्राप्त की । धन्य भक्त-वत्सलता ! जब ब्रह्मा और विष्णुभगवान् शिवके मस्तक और चरणोंकी खोज करनेको निकले उस समय उन्होंने अनन्त, विस्तृत ज्योतिर्मय स्तम्भका स्वरूप धारण किया । परिणाम यह हुआ कि ब्रह्मा और विष्णु दोनों ही हार गये । अहा ! वे कैसे महानुभाव एवं स्वयंप्रकाश हैं !! वे दक्षिण-भारतमें पत्तिनत्तु (Pattinattu) स्वामीके घरमें कई वर्षोंतक उनके दत्तक होकर रहे और अन्तमें एक पुर्जेमें यह लिखकर कि 'तुम्हारे मरनेके बाद टूटी सुई भी तुम्हारे पीछे नहीं चलेगी' अन्तर्धान हो गये । इस पर्चेको पढ़कर पत्तिनत्तुस्वामीके चित्तमें ज्ञानका बीज अङ्कुरित हो गया । इसलिये हे मन ! तू भगवान् शिवका साक्षात्कार करनेके लिये इसी क्षण सच्चे मनसे चेष्टा क्यों नहीं करता ?

हठयोगी आसन, प्राणायाम, कुम्भक, मुद्रा एवं बन्धके द्वारा मूलाधार चक्रमें सुप्त रहनेवाली कुण्डलिनी शक्तिको जाग्रत करते हैं और स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा—इन भिन्न-भिन्न चक्रोंके मार्गसे उसे ऊपरकी ओर ले जाकर मूर्द्धदेशमें स्थित सहस्रार कमलपर आसीन भगवान् सदाशिवके साथ उसका योग करा देते हैं और फिर शिव-ज्ञानामृतका पान करते हैं—जिसे अमृतस्वाव कहते हैं । जब इसप्रकार शक्तिका शिवके साथ संयोग हो जाता है तब योगीको पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति होती है ।

भगवान् शङ्कर ब्रह्मकी संहारमयी मूर्ति हैं । ब्रह्मका वह अंश जो तमोगुणप्रधान मायासे आवृत है, शिवपदका वाच्य है । वही सर्वव्यापी ईश्वर हैं और कैलासशिखरपर नियास करते हैं । वह ज्ञानके भण्डार हैं । पार्वती अथवा काल

अथवा दुर्गासे वियुक्त शंकर शुद्ध निर्गुण ब्रह्म हैं। वह अपने भक्तोंको विशुद्ध भक्तिका सुख देनेके लिये माया-पार्वतीके संयोगसे सगुण ब्रह्म हो जाते हैं। श्रीराम-भक्तोंको भगवान् शिवकी भी उपासना करनी चाहिये। स्वयं श्रीरामने प्रसिद्ध श्रीरामेश्वरधाममें भगवान् शंकरकी उपासना की थी। भगवान् शंकर श्रीरामके गुरु हैं। भगवान् शिव यतियोंके स्वामी हैं, योगियोंके ईश्वर हैं, दिगम्बर हैं। उनका त्रिशूल जिसे वे अपने दाहिने हाथमें धारण करते हैं सरस्व, रज और तम इन तीन गुणोंका चिह्न है। वह उनके ऐश्वर्यका द्योतक है। वे इन तीन गुणोंके द्वारा विश्वका शासन करते हैं। उनके बायें हाथमें डमरू रहता है जो शब्द-ब्रह्मका मूर्तरूप है। वही 'ओम्' का व्यञ्जक है जिससे सारा वाङ्मय निकला है। उन्होंने ही अपने डमरूके शब्दसे संस्कृत-भाषाकी रचना की।

उनके मस्तकपर रहनेवाली शशिलेखा इस बातकी द्योतक है कि उन्होंने अपने मनको पूर्णतया वशमें कर रखा है। भागीरथीकी धारा मुक्तिरूपी सुधाधाराकी द्योतक है। हाथीको अभिमानकी मूर्ति माना गया है। अतः उनका हस्तिचर्मको धारण करना इस बातको सूचित करता है कि उन्होंने अभिमानका दमन कर लिया है। इसी प्रकार व्याघ्रको कामका स्वरूप माना है। अतएव उनका व्याघ्रचर्म-पर बैठना इस बातको बतलाता है कि उन्होंने कामपर विजय प्राप्त कर ली है। उनका एक हाथमें मृगको धारण करना इस बातको व्यक्त करता है कि उन्होंने चित्तकी चञ्चलताको दूर कर दिया है। जिसप्रकार मृग द्रुतगतिसे एक स्थानसे दूसरे स्थानको उछलकर जाता है उसी प्रकार मन भी एक विषयसे दूसरे विषयकी ओर उछल-कूद मचाता रहता है। उनका सर्पोंको धारण करना उनके ज्ञान एवं नित्यताका बोधक है क्योंकि सर्प दीर्घजीवी होते हैं। वे त्रिलोचन हैं, उनके ललाटके मध्यमें उनका तीसरा नेत्र है जो ज्ञानचक्षु कहलाता है। शिवलिङ्गके सामने बैठा हुआ नन्दी प्रणव (ओंकार) का स्वरूप है और लिङ्ग अद्वैतका बोधक है। वह इस बातको सूचित करता है कि 'मैं एक हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है' जिसप्रकार कोई मनुष्य अपने दाहिने हाथको अपने मस्तकके ऊपर उठाकर अपनी तर्जनी अङ्गुलीसे निर्देश करता है।

तिव्यतमें कैलास-नामकी एक विशाल पर्वतश्रेणी है जिसके मध्यमें एक सुन्दर, प्रकृतिके कुशल करोंसे गढ़ा हुआ एवं सुसजित देदीप्यमान शिवर है जो बारहों मास रजत-

सदृश हिमराशिसे आवृत रहता है। यह शिवर समुद्रतलसे २२९८०, और कुछ लोगोंके मतमें २२०२८ फीट ऊँचा है। यह शिवर एक प्राकृतिक एवं विशाल शिवलिङ्ग (विराट् रूप) के आकारका है। इसकी दूरसे ही शिवके रूपमें पूजा होती है। वहाँ न तो कोई मन्दिर है, न पुजारी और न दैनिक पूजा ही होती है। २२ जुलाई सन् १९३१ ई० को भगवान् शंकरकी कृपासे मुझे श्रीकैलासके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैं बड़ी कठिनता एवं परिश्रमसे कैलासकी उपत्यकातक चढ़कर गया जहाँ सिन्धु-नदीका उद्गम है। वह स्थान बड़ा ही रमणीक एवं मनको लुभानेवाला है। कैलासकी प्रदक्षिणामें पहला मुकाम दिदिफू गुहा (Didiphu) है। वहाँसे चढ़ाई प्रारम्भ होती है। कैलासशृङ्गके पृष्ठ-भागके पीछेसे हिमकी चट्टानोंके बीचमेंसे होकर सिन्धुनदी एक छोटे-से नालेके रूपमें निकलती है। यद्यपि भगवान् शिवके चित्रोंमें उनके मस्तकपरसे गङ्गाकी धारा बहती हुई दिखायी जाती है, किन्तु वास्तवमें स्थूल जगत्में तो उनके मस्तक (कैलास) से सिन्धुनदी निकलती है। कैलासकी प्रदक्षिणा ३० मीलकी है और तीन दिनमें पूरी होती है। मार्गमें प्रसिद्ध एवं पवित्र गौरीकुण्ड मिलता है जो बारहों मास हिमाच्छन्न रहता है। स्नान करते समय वर्षको तोड़कर हटाना पड़ता है।

भगवान् शिवके द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं जिनका प्रतिदिन प्रातःकाल एवं सायंकाल स्मरण करनेसे ही सात जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं।

दक्षिण-भारतके मद्रास-प्रान्तमें पञ्चमहाभूतोंके नामसे पाँच प्रसिद्ध शिवलिङ्ग हैं। तञ्जौर जिलेके इयाली नामक स्थानमें पृथ्वीलिङ्ग है। त्रिचिनापल्ली जिलेके तिरुवनकोइल (Tiruvankoil) नामक स्थानमें अप्पुलिङ्ग है जो सदा जलके भीतर रहता है। इसे कुछ लोग जम्बुकेश्वर भी कहते हैं। उत्तरीय आर्कट जिलेके अन्तर्गत कलहस्ती (Kalahasti) नामक स्थानमें वायुलिङ्ग है। उसी जिलेके तिरुवन्नमलाई (Tiruvannamalai) नामक स्थानमें जहाँ विल्लुपुरम् (Villupuram) जंक्शनसे होकर जाना पड़ता है तेजोलिङ्ग (अरुणाचल) है। चिदम्बरम्-में आकाशलिङ्ग (नटराज) है।

अभी हालमें जब मैं संयुक्त प्रान्त तथा आन्ध्रदेशकी यात्रा कर रहा था तो वहाँ मुं गेरके अखिल भारतीय कीर्तन-सम्मेलनमें तथा सीतापुर, लखीमपुर, अयोध्या, लखनऊ,

कलकत्ता, कोकोनडा इत्यादि स्थानोंमें मैं उच्च स्वरसे कीर्तन किया करता था। मेरी तीन छोटी सुन्दर शिवनामावलीपर लोग अत्यन्त मुग्ध हुए। उन्हें मैं नीचे उद्धृत करता हूँ—

पञ्चाक्षरनामावली

(१) शिवाय नमः ओं शिवाय नमः। शिवाय नमः ओं नमः शिवाय ॥

(२) शिव साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव
साम्ब सदाशिव बम् बम् बम्।

(३) हर हर शिव शिव शम्भो
हर हर शिव शिव
हर हर शम्भो
शिव शिव शम्भो
हर हर शिव शिव शम्भो।

जो लोग भगवान् शिवका दर्शन करना चाहते हैं उन्हें पवित्रता, भाव, एकाग्र-चित्त एवं अनन्य भक्तिके साथ निम्नलिखित मन्त्रोंका पाँच लाख जप करना चाहिये—

पञ्चाक्षर

(१) ओं नमः शिवाय। ओं नमः शिवाय। ओं नमः शिवाय। ओं नमः शिवाय। ओं नमः शिवाय।

रुद्र-गायत्री

(२) तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

अर्थात् हमलोग उन (परात्पर) पुरुषको जानें, महादेवका ध्यान करें। वह रुद्र हमें ज्ञानका आलोक प्रदान करे।

रुद्र शिवकी संहारमयी मूर्ति है। इस विश्वका शासन करनेवालोंमें एकादश रुद्र भी हैं। आध्यात्मिक दृष्टिसे दस प्राण और एक मन यही एकादश रुद्र हैं। श्रीहनुमान् शिवके ही रूप हैं।

संसारकी उत्पत्ति मुझीसे है; मेरे अन्दर ही सबका निवास है; मेरे ही अन्दर सब कुछ लय होता है; कालातीत शिव मैं ही हूँ। शिवोऽहम् ! शिवोऽहम् !! शिवोऽहम् !!!

देवदेव श्रीमहादेवका योगिराज-विग्रह और मदन-दहन-लीला

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण)



न्दुओंके उपास्य देवोंके नाम; रूप और विग्रह अपार और असंख्य हैं। इस बातको सभी जानते हैं तथा हिन्दुओंके उपासना-मार्गकी विशेषता भी यही है। हिन्दुओंके ईश्वरोपासनकी 'एकमेवाद्वितीयम्' श्रुतिके द्वारा निर्दिष्ट सच्चिदानन्दरसधन-विग्रह एक सर्वेश्वरकी गम्भीर उपासनाके रहस्यको जो

नहीं समझते हैं उनके लिये यह विशेषता उपेक्षा तथा अश्रद्धाके योग्य तथा हास्यजनक हो सकती है, परन्तु इससे हिन्दुओंको लज्जा या अपमान माननेका कोई कारण नहीं दीख पड़ता। इसप्रकारके अनभिज्ञ लोगोंकी उपेक्षा, अश्रद्धा तथा उपहासको देखकर एक सच्चे हिन्दूको हँसी आये बिना नहीं रहती, वह मन-ही-मन कहता है—

शैत्यमाधुर्यगाम्भीर्यवैधुर्यमवधार्यताम् ।

नावगाह्य न चास्वाद्य तरङ्गिण्यास्तु तेन किम् ॥

‘यदि तुमने बिना अवगाहन किये तथा बिना आस्वादन किये ही यह निश्चय कर लिया है कि इसमें न शीतलता है,

न मधुरता है और न गहराई है, तो इससे नदीकी क्या हानि होगी ?’

‘ईश्वर केवल एक आकारविशिष्ट है और वही उपासना करनेयोग्य है’ इस प्रकार माननेवाले एक व्यक्ति हिन्दुओंके बहुदेवता-विग्रह-वादका खण्डन करनेके लिये दम्भपूर्वक एक बार मेरे ज्येष्ठ तात महामहोपाध्याय श्रीराखालदास न्याय-रत्नके समीप आये। उन्होंने उनकी समस्त युक्तियों और प्रमाणोंको धैर्यपूर्वक सुनकर हँसते-हँसते उपर्युक्त श्लोक सुनाया था। सौभाग्यवश मैं भी उस समय उनके चरणोंके समीप ही बैठा था। उनके उस श्लोकको सुनकर तथा और कोई भी बात कहनेके लिये उन्हें तैयार न देखकर वह विचारार्थी महाशय नाराज होकर वहाँसे चल दिये। उनके जानेके बाद मेरे पूज्यपाद ज्येष्ठ तातने जो उपदेश हिन्दुओंके उपासना-रहस्यके सम्बन्धमें दया करके हमलोगोंको दिया था, उसीका संक्षिप्त मर्म आज ‘कल्याण’ के विशेषाङ्कके प्रिय पाठकोंको सुनाकर देवदेव श्रीमहादेवके स्वरूपके विषयमें किञ्चित् आलोचना करूँगा। आशा है, यह उन्हें अरुचिकर नहीं होगा।

शास्त्रमें लिखा है—

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्याशरीरिणः ।

उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥

इसका भावार्थ यही है कि जो चिन्तनमें नहीं आ सकते, किसी प्रकारके लौकिक प्रमाणके द्वारा जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता, जो स्वरूपतः निर्गुण और अशरीरी हैं वही परब्रह्म उपासकोंकी मनचाही कार्य-सिद्धिके लिये रूप-कल्पना किया करते हैं। अशरीरी और निर्गुण परब्रह्मकी रूप-कल्पना अथवा अनन्त रूपके अभिव्यञ्जनके द्वारा आत्माराम और आतकाम श्रीभगवान् अथवा अद्वय-तत्त्व परब्रह्मका कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं। बल्कि इसके द्वारा यथार्थ उपासकोंका ही मनोरथ सिद्ध होता है अर्थात् प्रेमरूपा ऐकान्तिक भक्तिकी परिपूर्णता सिद्ध होती है, यही उपर्युक्त शास्त्रीय वचनका गूढ़ तात्पर्य है।

पूर्व-जन्मोंके संस्कार, देश, काल और परिस्थितिके अनुसार अवश्यम्भायी विपमताके कारण मनुष्योंमें परस्पर विचारकी विभिन्नताका होना स्वाभाविक है। इसी कारण श्रीभगवान्के एक होनेपर भी उनकी ध्येय-मूर्ति सब उपासकोंके लिये एक-सी नहीं हो सकती। इसी ध्रुव सत्यकी दृढ़ आधार-शिलापर हिन्दुओंका उपासनावाद सुप्रतिष्ठित है। इस विचार-वैषम्यकृत अधिकारकी उपेक्षा कर उपासना-प्रणालीके परिवर्तन करने अथवा उसे एकरूपता प्रदान करनेकी चेष्टा भारतवर्षमें अनादिकालसे होती आ रही है। किन्तु इसप्रकारकी चेष्टा सनातन-हिन्दू-समाजमें कभी भी पूर्णरूपसे फलवती नहीं हुई तथा आगे कभी होगी यह भी सम्भव नहीं। अनन्त प्रकारके वैषम्यके रहते हुए ही सब भूतोंमें सम उस परब्रह्मको जानने अथवा जानकर प्राप्त करनेके लिये उपासकोंकी सिद्धिके निमित्त अनन्त विग्रह धारण करनेवाले श्रीभगवान्के प्रत्येक विग्रहका जो उपासक-भेदसे उपास्यत्व है, यही हिन्दुओंके उपासना-तत्त्वका मूल रहस्य है। हिन्दू एकेश्वरवादी हैं, पर उस एकेश्वरके अनन्त-विग्रह माननेवाले भी हैं, यही अन्यान्य उपासनाप्रधान मतोंसे हिन्दू-धर्ममें विलक्षणता है। इसे न जानकर जो हिन्दुओंके उपासना-तत्त्वके प्रति अश्रद्धा रखते हैं अथवा उसकी अवज्ञा निन्दा करते हैं, उनके प्रति क्रोध करनेका कोई कारण ही नहीं है। उनकी तो प्रत्येक हिन्दू सर्वथा उपेक्षा ही करेगा। यही मेरे स्वर्गीय पूज्यपाद ज्येष्ठ तातरचित उपर्युक्त श्लोकका तात्पर्य है।

नदीके समान प्रत्येक देवता-विग्रहकी उपासना शीतलता, मधुरता और गम्भीरतासे पूर्ण है। जिन्होंने हिन्दुओंकी उपासनारूपी इस तरङ्गिणीमें कभी अवगाहन नहीं किया वही इसमें भ्रान्ति, अन्धविश्वास और नीरसता-का दोष आरोपण किया करते हैं। देवदेव श्रीमहादेवकी उपासनामें भी यही तीनों गुण (शीतलता, मधुरता, गम्भीरता) भरे हैं। उनकी जितनी विश्वविस्मयकारिणी लीलाओंका शास्त्रोंमें वर्णन है, उनमेंसे आज मदन-दहन-लीलापर विचार करना है, क्योंकि इस मदन-दहन-लीलाके अनुशीलनसे अनन्यदेव-साधारण ज्ञान, कर्म और भक्तिके एकमात्र आलम्बनस्वरूप देवदेव श्रीमहादेवकी योगीश्वर-मूर्तिका गूढ़ तत्त्व हृदयङ्गम हो सकता है।

हिन्दूके लिये निष्काम—अहैतुकी भक्तिके साथ-साथ शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान करना भी नितान्त आवश्यक है, उनमें भगवदुपासनारूप सर्वश्रेष्ठ कर्मके आलम्बनस्वरूप श्रीभगवद्विग्रहका ध्यान करनेपर भी यदि वह उपासकके हृदयमें निष्काम-अहैतुकी भक्तिका बीज अङ्कुरित करनेमें समर्थ नहीं है तो उस विग्रहकी उपासना त्रिवर्ग अर्थात् अर्थ, धर्म, कामरूप त्रिवर्गको प्रदान करती हुई भी परिपूर्ण आनन्दकी अनुभूतिस्वरूप मोक्षको नहीं प्रदान कर सकती है, यही हिन्दुओंके समस्त भक्ति-शास्त्रका रहस्य है। भगवान्की मूर्तियाँ अनन्त हैं, उनकी शक्ति भी अचिन्त्य है, अपने भक्तोंकी सब प्रकारकी मनोकामनाकी सिद्धिके लिये वह उन्हींकी मनचाही मूर्तिमें प्रकट हो जाते हैं, इस विषयमें विश्वासी हिन्दूके मनमें किसी प्रकार भी सन्देहका कोई भी कारण नहीं रहता। इसीसे श्रीमद्भागवतमें महामुनि श्रीवेदव्यासजी कह रहे हैं—

त्वं भक्तियोगपरिभावितहृत्सरोजं

आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।

यद्यद्विधा न उरुगाय विभावयन्ति

तत्तद्वपुः प्रणयसे मदनुग्रहाय ॥

हे नाथ ! प्रेम-भक्तिके साधनस्वरूप श्रवण, कीर्तन, नाम-स्मरणादि उपायोंद्वारा उपासकोंके हृदयकमल जब प्रफुल्लित होते हैं तब तुम उन भक्तोंके उस प्रफुल्लित हृदयसरोजमें आविर्भूत होते हो। तुम्हें प्राप्त करनेका मार्ग पहले गुरु और शास्त्रके द्वारा प्रकाशित होता है, पश्चात् साधनाके द्वारा वह प्रत्यक्ष हो जाता है। भक्तोंकी ऐसी अवस्था उपस्थित होनेपर उनकी बुद्धिवृत्तिमें जो आरुढ़ होती है उसी भक्ता-

भीष्टप्रद मूर्तिको हे उरुगाय ! तुम्हीं उनके प्रति कृपा करके इस संसारमें व्यक्त करते हो ।

भक्ति-शास्त्रके इस ध्रुव सिद्धान्तके अनुसार देवदेव श्रीमहादेवने अपने प्रति असाधारण भक्तिमती अपनी ही अर्द्धाङ्गिनी भगवती श्रीपार्वतीदेवीके सम्मुख कामविध्वंसकारी जिस अपूर्व योगिराज-विग्रहको प्रकट किया था, उसका माहात्म्य महाशिवपुराणादिमें तथा महाकवि कालिदासके कुमारसम्भव महाकाव्यमें अति सुन्दर और विशदभावसे वर्णन किया गया है । उसीके अनुसार आज इस लेखमें किञ्चित् आलोचना की जाती है । आशा है, देवदेव श्रीमहादेवके योगिराज-श्रीविग्रहके उपासक भक्तोंके लिये यह उपेक्षाका विषय न होगा ।

देवदेव श्रीमहादेवके प्रति प्रेम-भक्तिकी प्रत्यक्ष प्रतिमा-रूपमें जगज्जननी आद्या शक्ति पहले दक्षप्रजापतिके गृहमें दाक्षायणीके रूपमें आविर्भूत हुई थीं । जिस दिन दक्ष-प्रजापतिने दाक्षायणीका विवाह सर्वेश्वर श्रीमहादेवके साथ किया था उस दिन उन्होंने अपनेको धन्य माना था । किन्तु एक दिन दक्षप्रजापति सत्यलोकमें ब्रह्माके सम्मुख सब देवताओंके सभामें अचानक जा पहुँचे, उनके वहाँ उपस्थित होते ही इन्द्रादि समस्त देवता उनके सम्मानार्थ उठ खड़े हुए । परन्तु उसी सभामें बैठे हुए जामाता देवदेव श्रीमहादेव न तो उनकी अभ्यर्थनाके लिये खड़े हुए और न उन्होंने किसी प्रकारका उचित अभिवादन ही किया । अपने जामातासे उन्हें इसप्रकारके व्यवहारकी आशा न थी, इसलिये इस नूतन व्यवहारसे उनके आत्माभिमानको गहरी चोट लगी । मोहवश उन्हें अपने जामाताके सर्वेश्वर होनेकी बात याद न रही और वह उनके इस व्यवहारसे अत्यन्त क्रुद्ध हो गये तथा उन्हीं पैरों वापस घर लौटकर श्रीमहादेवको उपयुक्त शिक्षा देनेका सङ्कल्पकर शिवहीन यज्ञके अनुष्ठानमें लग गये । उसी समय देवर्षि नारदको समस्त देव और देवाङ्गनाओंको निमन्त्रित करनेका भार दिया गया । परन्तु उन्होंने जामाता श्रीमहादेवको निमन्त्रण देनेका निषेध कर दिया, यहाँतककी अपनी परम स्नेहमयी कन्या दाक्षायणीको भी निमन्त्रण न देनेके लिये विशेषरूपसे समझा दिया । धनपति यक्षराज कुबेरको निमन्त्रण देनेके लिये महर्षि नारदको कैलासपर्वतपर जाना पड़ा । कैलास जाकर देवदेव श्रीमहादेवका दर्शन किये बिना ही लौट आना भक्तश्रेष्ठ देवर्षि नारदके लिये असम्भव था । उन्होंने

देवाधिदेव श्रीमहादेवको भक्तिपूर्वक प्रणामकर लौटते समय जगज्जननी दाक्षायणीसे प्रणाम करनेके बहाने अकेलेमें भेंट करके उनके पिताके इस शिवहीन विराट् यज्ञका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी सूचित कर दिया कि स्वयं आपको भी निमन्त्रण न देनेके लिये प्रजापतिने विशेष-रूपसे मना कर दिया है । देवर्षि नारदके मुखसे त्रिलोकनाथ अपने प्राणनाथके प्रति अपने ही पिताके द्वारा इसप्रकार दुःसह अपमानकी बात सुनकर दाक्षायणी अत्यन्त व्यथित और मर्माहत हो उठी ।

‘निमन्त्रित न हुई तो क्या हुआ ? अपमान सहूँगी, परन्तु पिताके घर जाकर समझाकर इस सर्वनाशकारी दुर्व्यसनसे उन्हें निवृत्त करूँगी ।’—इसप्रकार सङ्कल्प करके देवदेव श्रीमहादेवके मना करनेपर भी दाक्षायणी स्वयं पिताके गृहमें जा पहुँची । वहाँ उसके पिताके आत्माभिमानका विराट् अभिनय हो रहा था; दाक्षायणीके पहुँचते ही उसके प्रति अवज्ञाके साथ-साथ शिवनिन्दाका तीव्र हालाहल प्रलय-पयोधिके समान उद्देलित हो उठा और उसे सह न सकनेके कारण, दाक्षायणीने योगबलसे अपने शरीरका त्याग कर दिया, यह पुराणोक्त घटना ही मदन-दहन-लीलाकी प्रस्तावना है ।

भक्तिकी प्रत्यक्ष प्रतिमास्वरूपा दाक्षायणीने प्रेमभक्तिका आदर्श दिखलाकर अपने प्रियतम उपास्यदेवकी सेवाके अनुकूल विशुद्ध देह प्राप्त करनेके लिये गिरिराज हिमालयकी महिषी मेनकादेवीकी कुक्षिमें प्रवेश किया । उपास्यदेवतासे विद्वेषबुद्धि रखनेवाले दक्षप्रजापतिके साथ सब प्रकारका मायिक सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो गया और देवदेव श्रीमहादेवके निष्काम सेवारूप साधन-भक्तिके अनुकूल देह स्वीकारकर जगन्माता कात्यायनी यथासमय गिरिराजके घर कन्यारूपमें अवतीर्ण हुई । क्रमशः शुक्लपक्षके शशिकलाके समान पार्वती उत्तरोत्तर बढ़ते-बढ़ते तारुण्यके आधिर्भावसे लावण्य और सौन्दर्यकी जीवन्त प्रतिमाके समान हिमालयके निसर्ग सुन्दर प्रदेशोंके भूषणरूपमें सुशोभित होने लगीं । ठीक इसी समय भगवान् महादेव भी उसी प्रान्तमें आकर तपस्यामें लग गये । विश्व-ब्रह्माण्डके समस्त जीवोंकी सब प्रकारकी तपस्याका फल जिसकी इच्छामात्रसे पूर्ण होता है वही देवदेव श्रीमहादेव यह तपस्या क्यों करते हैं ? इसका उत्तर देनेकी इच्छा करते हुए महाकवि कालिदास कहते हैं—

तन्नाग्निमाधाय समिस्समिद्धं
स्वमेव सूर्यन्तरमष्टमूर्तिः ।
स्वयं धिधाता तपसः फलानां
केनापि कामेन तपश्चचार ॥

उसी स्थानमें यथाविधि प्रज्वलित अग्निका आधान कर— जो अग्नि उनकी भूमि प्रभृति अष्टमूर्तियोंमें एक प्रधान मूर्ति है उसी अग्निका आधान कर—भगवान् महादेवने स्वयमेव समस्त तपस्याके फलदाता होनेपर भी न जाने किस कामनासिद्धिके लिये स्वयं तपस्या प्रारम्भ की । भक्तवाञ्छाकल्पतरु शंकरने आतकाम होते हुए भी भक्ति-रूपा प्रेममूर्ति पार्वतीकी ही मनोकामना पूर्ण करनेके लिये इस मनोहारिणी तपोलीलाको प्रारम्भ किया था, इसमें सन्देह नहीं । उस समय गिरिराजने क्या किया—

अनर्घ्यमर्घेण तमद्रिनाथः
स्वर्गौकसामर्चितमर्चयित्वा ।
आराधनार्थञ्च सखीसमेतां
समादिदेश प्रथतां तनूजाम् ॥

जो सचके पूज्य हैं तथा जिनसे पूजाके योग्य अर्घ्य पाने का किसीको अधिकार नहीं, देवतालोग भी जिनकी पूजा सर्वदा किया करते हैं वह स्वयं आकर हिमालयपर तपस्या कर रहे हैं, यह देखकर गिरिराजने उनकी इस तपस्याके ही अनुकूल सेवा करनेके लिये अपनी संयतेन्द्रिया कन्याको सखियोंके साथ जानेकी आज्ञा दी । उस समय पार्वतीने क्या किया ?—

अवचित्तबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा
नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री ।
गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः ॥

वह सुकेशी पार्वती पिताकी इच्छानुसार देवदेव श्रीमहादेवकी पूजाके लिये स्वयमेव पुष्प-चयन करती, उनके आसन और वेदिकाको साफ-सुथरा रखती, पूजा और अभिषेकादिके लिये जल और कुशादि संग्रह करके लाती । इसप्रकार वह प्रतिदिन श्रीमहादेवकी सेवामें निरत रहने लगी । जब इसप्रकार सेवा करते-करते वह भ्रान्त हो उठती तब भगवान् शंकरके ललाटमें स्थित चन्द्रकलाकी स्निग्ध किरणें उसपर पड़तीं, जिससे उसका श्रमजनित खेद सर्वथा दूर हो जाता ।

इसप्रकार कुछ काल बीत गया । पार्वती अपनी सखीं जया और विजयाके साथ पुष्प, समिधा, कुशा तथा जल प्रभृति पूजाकी सामग्री लेकर उसे पुण्य-तपोवनमें आतीं, देवदेव श्रीमहादेवके बैठनेकी वेदीको यथाविधि परिमार्जित करतीं, समिधा-कुश प्रभृतिको यथास्थान जुटा रखतीं, अपने हाथसे चुने हुए अञ्जलिपरिपूर्ण मनोहर सुरभियुक्त कुसुमोंको उनके चरणोंके उपान्तमें बिलेर देतीं, और लौटते समय पृथिवीपर मस्तक टेक वृषभध्वजको साष्टाङ्ग प्रणाम करतीं तथा उनके विशाल ललाटके ऊर्ध्व-भागमें विराजमान चन्द्रकलाकी सुधास्रवित शीत किरणोंके प्रवाहमें स्नानकर समस्त परिश्रमजनित क्लान्तिको दूर करके प्रसन्नचित्तसे यथासमय पिताके भवनमें लौट आया करतीं । पार्वतीकी यह प्रेमभक्तिपूर्ण सेवा थी । इस सेवामें आत्मभोगाभिलाषाकी गन्धमात्र न थी, उसमें थी केवल प्रियतम प्राणपति विश्वेश्वरकी तृप्तिमात्रकी अविश्रान्त कामना । उसमें न आत्माभिमान था, न विषयभोगाभिलाषा थी । इस कपटहीन आत्मसमर्पणका किसी प्रकारका बदला अथवा पुरस्कार प्राप्त करनेकी लेशमात्र भी अभिलाषा उनके मनमें न थी । यदि थी तो केवल यही आशा, यही आकांक्षा तथा यही वासना कि मेरी इस निष्कपट सेवासे सर्वभूतान्तरात्मा सच्चिदानन्दधन-विग्रह देवदेव श्रीमहादेव सुखी हों । यदि क्षणमात्रके लिये भी मेरे-देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्माके द्वारा उनकी तनिक भी तृप्ति हुई तो मेरा जन्म सफल हो जायगा । मैं सुख नहीं चाहती, बल्कि उसके बदले अपार क्लेशसमुद्र उमड़कर मुझे अपनेमें डुबा ले तो इससे मेरी कोई क्षति न होगी, किन्तु उससे यदि त्रिलोकीनाथ मेरे प्राणेश्वरको अणुमात्र भी तृप्ति हुई, तो वही मेरे लिये पर्याप्त सुख होगा और उसीमें मेरे जन्मकी अनन्य-साधारण सफलता है । इसप्रकारकी मनोवृत्तिके साथ गिरिराजकुमारी उमा देवदेव श्रीमहादेवकी सेवा करतीं तथा सेवोपरान्त उनके शिरस्थित चन्द्रमाकी रश्मियोंसे अपनीतश्रम होकर शान्त और प्रसन्नचित्तसे अपने पिताके भवनमें लौट आतीं । महाकवि कालिदासकी अमृत-निःस्पन्दिनी लेखनीसे प्रसूत उनके अमरकाव्य कुमार-सम्भवके प्रथम सर्गके इस अन्तिम श्लोकमें अति संक्षेपसे बड़ी ही निपुणताके साथ देवदेव श्रीमहादेवकी सेवामें लगी हुई पार्वतीका जो भक्तिमय चित्र अङ्कित किया गया है उसपर विचारपूर्वक दृष्टिपात न करनेसे तृतीय सर्गमें वर्णित

मदन-दहन-लीलाका रहस्य हृदयङ्गम नहीं हो सकता, इसी कारण 'अवचितवलिपुष्पाः' इस श्लोककी आवश्यक व्याख्या यहाँ की गयी है; आशा है, सहृदय पाठक इस व्याख्याके विस्तारके लिये क्षमा करेंगे।

हिमालयके गौरीशङ्कर-शृङ्गके ऊपर एकान्त तथा पुण्यतम काननमें प्रेमभक्तिप्रसूत यह अपार्थिव (अलौकिक) सेवा-धर्म इसप्रकार आडम्बरशून्य शान्तभावसे जिस समय अनुष्ठित हो रहा था, उस समय एक दिन उसी पुण्य तपोवनमें अकस्मात् नव-वसन्तका आविर्भाव हुआ, वनश्री मानो समुलसित हो उठी, प्रत्येक सहकार-पादपमें नव-मञ्जरी प्रस्फुटित हो उठी, नवोद्भूत पलाशकलिकाकी आरक्त आभामें दिङ्मण्डल मानो सन्ध्याकी लालिमासे सुशोभित हो उठा, सब प्रकारके सुगन्धित सुमनोंके विकाससे और मधु-लोहपुष्प भ्रमरावलिके झङ्कारसे समस्त कानन-भूमि सुरभित और सुखरित हो उठी, स्वार्थसिद्धिके निमित्त अत्यन्त उतावले देवताओंके गूढ़ रहस्यमय षड्यन्त्रके परिणाम-स्वरूप, काम भी ठीक इसी समय, रतिके साथ इस अहैतुक प्रेमभक्तिकी प्रसादमय लीलाभूमिमें आविर्भूत हो गया, शुद्ध प्रेमलक्षणाभक्तिके स्वच्छ प्रवाहने मानो क्षणमात्रके लिये अशुद्ध भाव धारण कर लिया। पार्वतीके दैनिक सेवार्थ उस तपोवनमें प्रवेश करनेके कुछ ही पूर्व प्रमथगणनायक नन्दीकी दृष्टि बचाकर सम्मोहनादि पञ्चकुसुमवाणसे युक्त कुसुमधनुसे कुसुममयी ज्याको आरोपित कर कामदेवने वहाँ प्रवेश किया। सामने देखा कि देवदारु-वृक्षके नीचे वेदिकाके ऊपर देवदेव श्रीमहादेव प्रसन्नयान-समाधिमें मग्न हो रहे हैं। अहा! कैसी सुन्दरता है! उनका मुखमण्डल असाधारण तेजसे पूर्ण है। अपूर्व महिमामूर्ति है! महाकवि कालिदासकी भाषामें उसका कैसा सुन्दर भाव स्फुटित हुआ है—

पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकाय-

मृज्वायतं सन्नमितोभयांसम् ।

उत्तानपाणिद्वयसन्निवेशात्

प्रफुल्लराजीवमिवाङ्गमञ्जे ॥

भुजङ्गमोक्षद्वजटाकलाप-

कर्णावसक्तद्विगुणाक्षसूत्रम् ।

कण्ठप्रभासङ्गविशेषनीलां

कृष्णत्वचं ग्रन्थिमतीं दधानम् ॥

किञ्चित्प्रकाशस्तिमितोप्रभागे-

भूषिक्रियायां विरतप्रसङ्गैः ।

नेत्रैरविस्पन्दितपद्ममालै-

र्लक्ष्यीकृतघ्राणमधोमयूखैः ॥

अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहं

अपामिवाधारमनुत्तरङ्गम् ।

अन्तश्चराणां मरुताञ्छिरोधा-

ञ्जिर्वातनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ॥

कपालनेत्रान्तरलब्धमार्गै-

ज्योतिःप्रवाहैरुदितैः शिरस्तः ।

मृणालसूत्राधिकसौकुमार्यां

बालस्य लक्ष्मीं क्षपयन्तमिन्दोः ॥

मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति-

हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम् ।

यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्त-

सारमानमारामन्यवलोकयन्तम् ॥

कामदेवने देखा कि वह वीरासनसे बैठे हैं, उनके शरीरका ऊर्ध्वभाग निश्चल, सरल और समुन्नत है तथा दोनों स्कन्ध समानरूपसे अवस्थित हैं, दोनों हाथोंको अपने क्रीडमें रक्खे हुए हैं। जान पड़ता है कि वहाँ एक कमल विकसित हो रहा है। उनके जटाजूट सर्पके द्वारा चूड़ाके समान समुन्नतभावसे बँधे हुए हैं, द्विगुणित रुद्राक्षमाला उनके दोनों कानोंको सुशोभित कर रही है, संलग्न-ग्रन्थियुक्त कृष्णवर्ण मृगचर्मकी श्यामता नीलकण्ठको प्रभासे और भी घनीभूत हो रही है। उनके तीनों नेत्र नासिकाके अग्रभागको लक्ष्यकर स्थिर हो रहे हैं। उस निस्पन्द और स्थिर नेत्र रोम-राजिसे विभूषित त्रिनेत्रके नासिकाग्रपर स्थिर सन्निवेशित होनेके कारण उनसे नीचेकी ओर एक समुज्ज्वल ज्योति निकलकर इतस्ततः छिटक रही है। उन्होंने उस समाधि-अवस्थामें देहान्तर्चारी वायुसमूहको निरुद्ध कर रक्खा है, जिससे उन्हें देखकर जान पड़ता है कि मानो वे आडम्बर-शून्य तथा जलपूर्ण बरसनेवाले एक गम्भीर आकृतिके बादल हैं अथवा तरंगहीन प्रशान्त महासागर हैं किंवा निर्वात प्रदेशमें निष्कम्प शिखाधारी समुज्ज्वल प्रदीप हैं।

उसने और भी देखा कि उस समाधिमग्न त्रिलोचनके ललाटस्थित नेत्रसे एक प्रकारकी ज्योतिशिखा आलोकधाराके समान बाहर निकल रही है, योगमग्न चन्द्रशेखरके शिरो-देशसे निकलकर यह ज्योतिशिखा नेत्रपथके द्वारा बाहर निकल रही है एवं उनके शिरस्थित मृणालसूत्रके समान फोमल चन्द्रकलाको मानो झुलस रही है।

योगनिष्ठ त्रिपुरारिने समाधिके बलसे शरीरके नवद्वारोंमें अन्तःकरणको निरुद्धकर उसे हृदय-कमलरूप अधिष्ठानमें अवस्थित कर रक्खा है एवं क्षेत्रज्ञ जिसे अविनाशी ब्रह्म कहा करते हैं उसी आत्मस्वरूप परमात्माका वे आत्मामें ही साक्षात् कर रहे हैं ।

इस ध्यानगम्य योगीश्वर-मूर्तिको देखकर क्षणमात्रके लिये मदन किर्कटव्यविमूढ हो गया, उसके शिथिल हाथोंसे कुमुमशर और शरासन गिर पड़ा, अतर्कित भयसे उसकी अन्तरात्मा काँप उठी, ठीक इसी समय गिरिराजकुमारी भी अपनी सखियोंके साथ उस स्थानमें उपस्थित हुई । मदनके भयभीत आत्मामें नूतन बलका सञ्चार हुआ । हृदयमें नवीन बलके प्राप्त होते ही असाध्य साधन करनेकी नवीन आशासे कामदेवने हाथसे गिरे हुए पुष्पवाण और पुष्प-धनुषको उठा लिया । देवदेव श्रीमहादेवके साथ पार्वतीके मिलनके लिये, श्रीभगवान् के साथ प्रेमभक्तिकी मूर्त प्रतिमा श्रीपार्वतीके चिरकाङ्क्षित समागमके लिये बीचमें मध्यस्थ बननेके लिये कामदेव आकर वासना-राज्यकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हो गया । पर यह कामका राज्य था, यह प्रेमका

अर्थात् निष्काम अनुरागका राज्य नहीं था । इस राज्यमें क्या कभी भक्तके साथ भगवान् का मिलन हो सकता है ? श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतकार ठीक ही कहते हैं—

आत्मेन्द्रिय-प्रीति वाञ्छा तारे बले काम ।

कृष्णेन्द्रिय-प्रीति वाञ्छा तार प्रेम नाम ॥

कामके सम्पर्कसे प्रेम कलुषित हो जाता है, हृदय भोगमें आसक्त होता है, प्रेम सूख जाता है, भक्त कामुक हो उठता है । ऐसी अवस्थामें भक्तके साथ भगवान् का मिलन कभी भी नहीं हो सकता । इसी कारण श्रीमहादेवका तृतीय-नेत्र प्रज्वलित हो उठा और उससे विवेक और वैराग्यरूप ज्योतिःपुञ्ज निकला और उसने कामको भस्मात् कर दिया । रतिका कामसम्पर्कजनित कलुषभाव दूर हो गया । प्रेमरूपा भक्ति पूर्णताको प्राप्त हुई । इसीका नाम देवाधि-देव श्रीमहादेवकी मदन-दहन-लीला है । इसके बाद ही पार्वतीके साथ शिवका विवाह, प्रेमभक्तिके साथ सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीभगवान् सदाशिवकी अपूर्व मिलन-लीला होती है । उस लीलाके रहस्यका वर्णन लेख बढ़ जानेके भयसे आज नहीं हो सकता । पाठकगण तथा सम्पादक महाशय क्षमा करेंगे ।

भगवान् विष्णुका स्वप्न



एक बार भगवान् नारायण अपने वैकुण्ठलोकमें सोये हुए थे । स्वप्नमें वे क्या देखते हैं कि करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्तिवाले, त्रिशूल-डमरू-धारी, स्वर्णभरण-भूषित, सुरेन्द्रवन्दित, अणिमादिसिद्धिमेवित त्रिलोचन भगवान् शिव प्रेम और आनन्दातिरेकसे उन्मत्त होकर उनके सामने नृत्य कर रहे हैं । उन्हें देखकर भगवान् विष्णु हर्ष-गद्गद् हो सहमा शय्यापर उठकर बैठ गये और कुछ देरतक ध्यानस्थ बैठे रहे । उन्हें इसप्रकार बैठे देखकर श्रीलक्ष्मीजी उनसे पूछने लगीं कि भगवन् ! आपके इस-प्रकार उठ बैठनेका क्या कारण है ? भगवान् ने कुछ देरतक उनके इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया और आनन्दमें निमग्न हुए चुपचाप बैठे रहे । अन्तमें कुछ स्वस्थ होनेपर वे गद्गद् कण्ठसे इसप्रकार बोले—हे देवि, मैंने अभी स्वप्नमें भगवान् श्रीमहेश्वरका दर्शन किया है । उनकी छवि ऐसी अपूर्व आनन्दमय एवं मनोहर थी कि देखते ही बनती थी ।

मादूम होता है, शङ्करने मुझे स्मरण किया है । अहोभाग्य ! चलो, कैलासमें चलकर हमलोग महादेवके दर्शन करें ।

यह कहकर दोनों कैलासकी ओर चल दिये । मुद्रिकल-से आधी दूर गये होंगे कि देखते हैं भगवान् शङ्कर स्वयं गिरिजाके साथ उनकी ओर चले आ रहे हैं । अब भगवान् के आनन्दका क्या ठिकाना ? मानो घर बैठे निधि मिल गयी । पास आते ही दोनों परस्पर बड़े प्रेमसे मिले । मानो प्रेम और आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा । एक-दूसरेको देखकर दोनोंके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु वहने लगे और शरीर पुलकायमान हो गया । दोनों ही एक-दूसरेसे लिपटे हुए कुछ देर मूकवत् खड़े रहे । प्रश्नोत्तर होनेपर मादूम हुआ कि शङ्करजीको भी रात्रिमें इसी प्रकारका स्वप्न हुआ कि मानो विष्णुभगवान् को वे उसी रूपमें देख रहे हैं जिस रूपमें वे अब उनके सामने खड़े थे । दोनोंके स्वप्नका वृत्तान्त अवगत होनेपर दोनों ही लगे एक-दूसरेसे अपने यहाँ लिवा ले जानेका आग्रह करने । नारायण कहें दैकुण्ठ चलो और शम्भु कहें कैलासकी ओर प्रस्थान कीजिये । दोनोंके आग्रहमें

इतना अलौकिक प्रेम था कि यह निर्णय करना कठिन हो गया कि कहाँ चला जाय ? इतनेहीमें क्या देखते हैं कि वीणा बजाते हरिगुण गाते नारदजी कहींसे आ निकले। वस, फिर क्या था ? लगे दोनों ही उनसे निर्णय कराने कि कहाँ चला जाय ? बेचारे नारदजी तो स्वयं परेशान थे। उस अलौकिक मिलनको देखकर वे तो स्वयं अपनी सुध-बुध भूल गये और लगे मस्त होकर दोनोंका गुणगान करने। अब निर्णय कौन करे ? अन्तमें यह तै हुआ कि भगवती उमा जो कह दें वही ठीक है। भगवती उमा पहले तो कुछ देर चुप रहीं। अन्तमें वे दोनोंको लक्ष्य करके बोलीं—हे नाथ ! हे नारायण ! आपलोगोंके निश्चल, अनन्य एवं अलौकिक प्रेमको देखकर तो यही समझमें आता है कि आपके निवासस्थान अलग-अलग नहीं हैं, जो कैलास है वही वैकुण्ठ है और जो वैकुण्ठ है वही कैलास है; केवल नाममें ही भेद है। यही नहीं, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी आत्मा भी एक ही है, केवल शरीर देखनेमें दो हैं। और तो और, मुझे तो अब यह स्पष्ट दीखने लगा कि आपकी भार्याएँ भी एक ही हैं, दो नहीं। जो मैं हूँ वही श्रीलक्ष्मी हैं और जो श्रीलक्ष्मी हैं वही मैं हूँ। केवल इतना ही नहीं, मेरी तो अब यह दृढ़ धारणा हो गयी है कि आपलोगोंमेंसे एकके प्रति जो द्वेष करता है वह मानो दूसरेके प्रति ही करता है, एककी जो पूजा करता है वह स्वाभाविक ही दूसरेकी भी करता है और जो एकको अपूज्य मानता है वह दूसरेकी भी पूजा नहीं करता। मैं तो यह समझती हूँ कि आप दोनोंमें जो भेद मानता है उसका चिरकालतक घोर पतन होता है। मैं देखती हूँ कि आप मुझे इस प्रसङ्गमें अपना मध्यस्थ बनाकर मानो मेरी प्रवञ्चना कर रहे हैं, मुझे

चक्रमें डाल रहे हैं, मुझे भुला रहे हैं। अब मेरी यह प्रार्थना है कि आपलोग दोनों ही अपने-अपने लोकको पधारिये। श्रीविष्णु यह समझें कि हम शिवरूपसे वैकुण्ठ जा रहे हैं और महेश्वर यह मानें कि हम विष्णुरूपसे कैलास-गमन कर रहे हैं।

इस उत्तरको सुनकर दोनों परम प्रसन्न हुए और भगवती उमाकी प्रशंसा करते हुए दोनों प्रणामालिङ्गनके अनन्तर हर्षित हो अपने-अपने लोकको चले गये।

लौटकर जब श्रीविष्णु वैकुण्ठ पहुँचे तो श्रीलक्ष्मीजी उनसे पूछने लगीं कि—प्रभो ! सबसे अधिक प्रिय आपको कौन हैं ? इसपर भगवान् बोले—‘प्रिये ! मेरे प्रियतम केवल श्रीशङ्कर हैं। देहधारियोंको अपने देहकी भाँति वे मुझे अकारण ही प्रिय हैं। एक बार मैं और शङ्कर दोनों ही पृथिवीपर घूमने निकले। मैं अपने प्रियतमकी खोजमें इस आशयसे निकला कि मेरी ही तरह जो अपने प्रियतमकी खोजमें देश-देशान्तरोंमें भटक रहा होगा, वही मुझे अकारण प्रिय होगा। थोड़ी देरके बाद मेरी श्रीशङ्करजीसे भेंट हो गयी। ज्यों ही हमलोगोंकी चार आँखें हुईं कि हमलोग पूर्वजन्मार्जित विद्याकी भाँति एक दूसरेके प्रति आकृष्ट हो गये। वास्तवमें मैं ही जनार्दन हूँ और मैं ही महादेव हूँ। अलग-अलग दो घड़ोंमें रखे हुए जलकी भाँति मुझमें और उनमें कोई अन्तर नहीं है। शङ्करजीके अतिरिक्त शिवकी अर्चा करनेवाला शिवभक्त भी मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसके विपरीत जो शिवकी पूजा नहीं करते वे मुझे कदापि प्रिय नहीं हो सकते।’

शिव-द्रोही वैष्णवोंको और विष्णु-द्रोही शैवोंको इस प्रसङ्गपर ध्यान देना चाहिये।

* यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ ! केशव ! मन्ये तया प्रमाणेन न भिन्नवसती युवाम् ॥

यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ ! केशव ! मन्ये तया प्रमाणेन आत्मैकोऽन्यतनुमिथः ॥

या प्रीतिर्दर्शिता देव युवाभ्यां नाथ ! केशव ! मन्ये तया प्रमाणेन भाव्ये आवां पृथङ् न वाम् ॥

यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ ! केशव ! मन्ये तया प्रमाणेन द्वेष एकस्य स द्वयोः ॥

यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ ! केशव ! मन्ये तया प्रमाणेन अपूजैकस्य च द्वयोः ॥

† न मे प्रियतमाः सन्ति शिव एकः प्रियो मम । अहेतुकः प्रियोऽसौ मे स्वकायः प्राणिनामिव ॥

‡ स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः । उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिव ॥

शिवाद्वयः प्रियो मेऽस्ति भक्तो यः शिवपूजकः । शिवस्यापूजको लक्ष्मि न कदापि प्रियो मम ॥

(बृहद्धर्मपुराण, पूर्वखण्ड, अध्याय ९।१०)

शैवागम

(लेखक—श्रीश्रीशम्भुलिंगजी शिवाचार्य महाराज, बृहन्मठ)



नुष्यकी ऐहिक और पारमार्थिक उन्नतिका साधन उसका सद्धर्म है और सद्धर्मके विशेष स्वरूपको जानना ही प्रत्येक व्यक्तिका प्रथम कर्त्तव्य है। और इसे भलीभाँति जाननेके लिये एक परम आप्त पुरुषकी सहायता आवश्यक है। इस विश्वप्रपञ्चमें अनिमित्त बन्धु परमेश्वर ही परम आप्त पुरुष हैं। क्योंकि सबका हित करने-

वाला उनके बिना दूसरा नहीं है। उस परमेश्वरका हितोपदेश ही 'वेद', 'आगम', 'श्रुति', 'सामान्या' इत्यादि नामोंसे सर्वत्र प्रसिद्ध है। वेद ही सत्यधर्मका मूल होनेके कारण सद्धर्मके स्वरूपके जाननेमें मुख्य साधन है। इसी अभिप्रायको प्रकट करनेके लिये भगवान् गौतम मुनिने 'वेदो धर्ममूलम्' इस सूत्रकी रचना की थी। इससे यह सिद्ध होता है कि सनातन-धर्मके यथार्थ ज्ञानका कारणभूत (साधन) वेद (श्रुति) ही समस्त आस्तिकोंका मुख्य प्रमाण है।

वेद और श्रुति इन दोनों शब्दोंके एकार्थवाचक होनेके कारण श्रुति ही वेद है—ऐसा अर्थ ग्रहण किया जाता है। पर हारीत मुनिने—

‘अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः । श्रुतिप्रमाणको धर्मः । श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी च ।’

—इन सूत्रोंमें श्रुतिके वैदिक और तान्त्रिक दो भेद प्रतिपादन किये हैं। इस प्रमाणसे द्विदल धान्यके समान रहनेवाली श्रुतिके वैदिक और तान्त्रिक दो प्रकारके वाक्यमें श्रौतभावका व्यत्यय कभी सम्भव नहीं। इसप्रकारसे श्रुति वैदिकी और तान्त्रिकी दो नामोंसे प्रसिद्ध हुई। श्रुतिकी उत्पत्ति जगत्की उत्पत्तिके साथ ही हुई, यह बात उपर्युक्त श्रुतियाव्योंसे ही सिद्ध होती है। इससे जिसप्रकार वैदिकी श्रुतिकी उत्पत्ति परमेश्वरसे मानी जाती है वैसे ही तान्त्रिकी श्रुतिकी उत्पत्ति भी परमेश्वरसे ही माननी चाहिये।

परमेश्वर कैसा है ? यह सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्वादि शक्तिविशिष्ट है। यह परमेश्वर ही इन उभय श्रुतियोंमें परब्रह्म, परशिवलिङ्ग, स्थूल प्रभृति भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा गया है।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्य-

न्देवारमशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

—इत्यादि उपनिषद्वाक्योंसे परब्रह्मरूप परशिवस्वरूपमें चन्द्रचन्द्रिकाके समान अभिन्नभावसे रहनेवाली चिच्छक्ति ही परशिवकी स्वात्मीयशक्ति जान पड़ती है। सृष्टिके आरम्भमें परशिवकी स्वात्मीय शक्तिके स्फुरणसे जो ईषत् चलन होता है वही 'नाद' कहलाता है। इस नादको ही शब्दतत्त्वका मूलभूत कहते हैं। इसी अर्थको श्रीरामकण्ठाचार्यने इसप्रकार स्पष्ट किया है—

स महामायाजन्यो नादः परमार्थवाचको भवति ।

येन स्थूलं शब्दं मन्त्रं तन्त्रात्मकं भवेद्वापि ॥

परन्तु शिवतत्त्वमें तत्स्वरूपभूत जो अवबोधात्मक विमल ज्ञान है वह सबसे पूर्व नादरूपसे सूक्ष्मतः आविर्भूत होकर पीछे स्थूल शब्दसे मन्त्र-तन्त्रात्मकरूपसे प्रसरित हुआ। सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोधान और अनुग्रहस्वरूप पञ्च-कृत्योपयोगी तथा पञ्चमन्त्रात्मक परशिव-स्वात्मीय शक्तियाँ ही परशिवके पञ्चवक्त्र हैं। इन सद्योजातादि पञ्चवक्त्रोंसे तान्त्रिकी श्रुतिकी उत्पत्ति किसप्रकार हुई, इसे तान्त्रिकी श्रुति इसप्रकार प्रतिपादन करती है—

कामिकाद्यचितान्ताश्च सद्योजातमुखोद्भवाः ।

दीप्तादिसुप्रभेदाख्या वामदेवमुखोद्भवाः ॥

विजयाद्यास्तु वीरान्ताः पञ्चैतेऽधोरवक्त्रजाः ।

कारवाद्यास्तु बिम्बान्ताः पुरुषाख्याननोद्भवाः ॥

प्रोद्गीताद्यष्टतन्त्रास्तु चेशानाननसम्भवाः ।

अर्थात् सद्योजात मुखसे कामिक, योगज, चिन्त्य, कारण, अचित—यह पाँच आगम उत्पन्न हुए। वामदेवमुखसे दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, अंशुमत्, सुप्रभेद—यह पाँच आगम उत्पन्न हुए। अधोरमुखसे विजय, निःश्वास, स्वायम्भुव, अनल, वीर—यह पाँच आगम उत्पन्न हुए। तत्पुरुष-मुखसे कारव, मधुप, विमल, चन्द्र, ज्ञान बिम्ब—यह पाँच आगम उत्पन्न हुए। ईशानमुखसे प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, सर्वोत्तर, परमेश्वर, किरण, वातुल—यह आठ आगम उत्पन्न

हुए। यह कामिकादि २८ आगम ही तान्त्रिकी श्रुतिकी विभिन्न शाखाएँ हैं, इन्हें संहिता भी कहते हैं। इनके सबसे प्रथम द्रष्टा विद्येश्वर, प्रणवादि दस शिव तथा अनादि रुद्र आदि अष्टादश रुद्र हैं। इनके पश्चात् इन शैवागमोंके प्रवर्तक महर्षि लोग हो गये। इन २८ शैवागमोंके पूर्व तथा उत्तर दो भाग हैं। पूर्वभागमें कर्मकाण्ड और उत्तरभागमें ज्ञानकाण्डका प्रतिपादन हुआ है। पूर्वकाण्डमें सामान्य शैव, मिश्र शैवादि धर्मोंका प्रतिपादन तथा उत्तरकाण्डमें शिवज्ञान, शिवध्यान, शिवव्रत, शिवार्चन, शिवभक्ति इत्यादि ब्रह्मविद्योपयोगी वीर-शैव-मताचारोंका ही मुख्यरूपसे प्रतिपादन हुआ है। उपर्युक्त प्रत्येक आगमके पूर्व और उत्तर दो काण्डोंमें क्रिया, चर्या, योग और ज्ञानरूप चार पाद अन्तर्हित हैं।

‘आगम’ तन्त्रको कहते हैं और तन्त्र-ग्रन्थोंमें वेदविरुद्ध आचारबोधक वाक्य रहनेके कारण यह ग्रन्थ वैदिक लोगोंको मान्य नहीं है। इस मान्यताके कारण बहुत-से विद्वान् दिव्यागम (श्रौतागम) को भी स्वीकार नहीं करते। परन्तु उनके ऐसा माननेका कारण एकमात्र वस्तुस्थितिके यथार्थ ज्ञानका अभाव है। दूसरा एक और कारण यह भी है कि वेदविरुद्ध आचारोंके प्रतिपादन करनेवाले अनेक वेदवाद्या तन्त्र-ग्रन्थ भी ‘आगम’ के नामसे खूब प्रसरित हो रहे हैं। इसलिये श्रौतागमोंके यथार्थ स्वरूपका जिन्हें ज्ञान नहीं है उनके मनमें ‘आगम’ शब्दके श्रवणमात्रसे तिरस्कारका भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। मैं समझता हूँ, इसप्रकारका भ्रम इस लेखके पढ़नेसे दूर हो जायगा।

मीमांसादि विभिन्न शास्त्र भी तन्त्र-नामसे प्रसिद्ध हैं। इससे श्रौतागमरूप शैव-संहिताओंको भी ‘शिव-दर्शन’ ‘शैवशास्त्र’ ‘शैवागम’ ‘शैवतन्त्र’ ‘सिद्धान्तशास्त्र’ आदि नामोंसे पुकारते हैं। इन श्रौतागमोंमें ब्राह्मणादि चातुर्वर्ण्य तथा ब्रह्मचर्यादि चतुराश्रमोंके विहित धर्माचार विस्तृतरूपसे प्रतिपादित हुए हैं। जो वेदविरुद्ध धर्माचरणबोधक कुतन्त्र हैं उन अश्रौतागमोंको ही प्रमाण माननेवाले वेद-विहीन पुरुष चातुर्वर्ण्य तथा चतुराश्रमोंको अङ्गीकार नहीं करते तथा षोडश संस्कारोंको भी वे नहीं मानते। इसी कारणसे वैदिक लोग उनके संसर्गसे दूर रहते हैं। चातुर्वर्ण्य तथा चतुराश्रमोंके माननेवाले एवं षोडश संस्कारोंका अनुष्ठान करनेवाले जो शुद्ध सम्प्रदायी हैं वे वेद, स्मृति, सूत्रादिकोंको जैसे परम प्रमाण मानते हैं वैसे ही दिव्यागमोंको भी अङ्गीकार करते हैं। दिव्यागमोंकी आज्ञा भी ऐसी ही है—

इति वर्णाश्रमाचारान्मनसापि न लङ्घयेत् ।
यो यस्मिन्नाश्रमे तिष्ठन्प्राप्तो दीक्षां शिवात्मिकाम् ॥
तस्मिन्नेव स संतिष्ठेत् शिवधर्मं च पालयेत् ॥

इस वचनके अनुसार सनातन-आर्य-धर्मानुयायी लोगोंको अपने-अपने वर्णाश्रमोंका उल्लङ्घन किये बिना ही शैवागमोक्त-दीक्षा लेकर शिवज्ञान, शिवध्यान, शिवव्रत, शिवार्चन, शिवभक्तिरूप शैव धर्माचरणके अनुष्ठान तथा आन्तरङ्गिक अभेदानुसन्धानके बलसे कीटभ्रमरन्यायके अनुसार शिवस्वरूप हो जाना परम कर्तव्य है। प्राचीन कालमें द्विज लोगोंने तत्कालीन शैवागम-प्रवर्तक श्रीरेवण-सिद्ध, श्रीउपमन्यु आदि सिद्धगण तथा महर्षियों और महात्माओंसे शिवदीक्षा प्राप्तकर शैवमतका अनुसरण किया था। इस विषयमें सिद्धागम, पद्मपुराण और महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थ प्रमाण हैं। श्रीरेवणसिद्धसे अगस्त्यादि महर्षियोंने शिवज्ञानोपदेशको कैसे प्राप्त किया—यह बात सिद्धागममें है तथा अगस्त्य महर्षिने श्रीरामचन्द्रजीको शिवदीक्षा, शिवव्रतादि शैव धर्माचरणोंका उपदेश कैसे दिया, यह बात पद्मपुराणान्तर्गत शिवगीतामें है एवं श्रीउपमन्यु मुनिसे श्रीकृष्णने शिवदीक्षा, शिवव्रताचरणको कैसे प्राप्त किया—यह बात महाभारतके अनुशासन-पर्यमें स्पष्ट लिखी हुई है। इससे शैवागम तथा उनमें प्रतिपाद्य शैव धर्माचरण सर्व-शिष्ट जनसमाहत है यह निर्विवाद सिद्ध है। इसी कारण शिष्टजन वैदिकी श्रुतिके समान शैवागमरूप तान्त्रिकी श्रुतिको भी परम प्रमाणरूपमें अङ्गीकार करते हैं।

आद्य श्रीशंकराचार्यने ‘गायत्रीपुरश्चरण-पद्धति’ नामक अपने ग्रन्थमें पुरस्त्रिक्यके मुख्य पञ्चाङ्गका निरूपण करते हुए लिखा है—

जपाचार्यपूर्वको होमस्तर्पणं चाभिषेचनम् ।
भूदेवभोजनं चैवंप्रकारेणा पुरस्त्रिक्या ॥
इति पञ्चाङ्गतः सिद्धि मन्त्री शीघ्रमवाप्नुयात् ।
तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्वी निग्रहानुग्रहक्षमः ॥
भवेद्दक्षिणकालेन सत्यं जानीहि पार्वति ।
इति स्वयंवाक्यम् ।

इन शैवागम-वाक्योंका उल्लेख करके तथा ग्रन्थके उपसंहारमें ‘वत्सरादवाक् सिद्धिर्जायते, तदुक्तं शिवशामने’ ऐसा कहकर शैवागम-वाक्योंको ही प्रदर्शित किया है। सारांश यह है कि सन्ध्या, गायत्री, जप, शिवदिङ्ग-

प्रतिष्ठापन, शिवलिङ्गपूजाविधि इत्यादि अनुष्ठानोंका क्रम-
पूर्वक शैवागममें विस्तारसे प्रतिपादन होनेके कारण यह सब
क्रियाएँ शैवागमवाक्योंके ग्रहणसे साङ्गपूर्ण होती हैं, इससे
इस दिव्यागमको सर्व शिष्टजनोंके लिये परिग्राह्य होनेमें कुछ
भी सन्देह नहीं रह जाता। श्रीहरदत्त आचार्यने—

वेदः प्रमाणमिति सङ्गिरमाण एव

दिव्यं तवागममुपैति जनः प्रमाणम्।

—इस वाक्यसे वेदके समान आगमको भी प्रमाण
माना है।

सूर्य भट्ट कहते हैं—

नहि वेदागमयोरन्यन्तविरोधः, परकतृक्त्वाविशेषात्।

वेद और आगम—इन दोनोंके कर्त्ता एक ही परमेश्वरके
होनेसे दोनोंकी समानरूपसे प्रमाणता है। सुप्रसिद्ध विद्वान्
अण्णय्य दीक्षितने 'शिवतत्त्वविवेक' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि—

वेदार्थसारसंग्रहात्मकानां कचिदपि दोषशङ्का-
कलुपरहितानां शैवागमानामेव सर्वागमेभ्यो बलवत्त्व-
व्यवस्थितेः।

वेदके ही सारभूत अर्थको क्रमपूर्वक और सुस्पष्ट
रीतिसे प्रतिपादन करनेवाले किञ्चिन्मात्र भी दोषसे
रहित संशयहीन पवित्र शैवागमोंका अन्य आगमोंकी अपेक्षा
अधिक प्रामाण्य निर्धिवाद सिद्ध है।

पुराणोंमें भी शैवागमोंका प्राशस्त्य खूब वर्णन किया
गया है। स्कन्दपुराणकी सूतसंहिताके प्रथमाध्यायमें
लिखा है—

अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः।

कामिकादिप्रभेदानां यथा देवो महेश्वरः॥

इस श्लोककी मध्याचार्य इसप्रकार व्याख्या करते हैं—

कामिकादीनामागमसंहितानां शिवेनैव प्रणयनात्
प्रामाण्ये यथा विश्रम्भः, एवं नारायणावतारेण व्यासेन
प्रणयनात् पुराणेऽप्यविशेषः।

कामिकादि आगम महेश्वरप्रोक्त हैं, इस कारणसे जैसे
इनका प्रमाण अबाधित है वैसे ही नारायणावतार महर्षि
व्यासप्रणीत पुराण भी प्रमाण हैं।

इन २८ आगमोंके वाक्य अनन्तरूप हैं—

'वेदा वा एते अनन्ता वै वेदाः'

—इस प्रमाणके अनुसार आगम भी संख्यातीत हैं।
उनमेंसे आज जो आगम उपलब्ध हैं उनपर प्राचीन आचार्योंके
भाष्य, वृत्ति, व्याख्यानादि भी बहुत हैं। इनके पठन-
पाठनका प्रचार कर्णाटक, आन्ध्र आदि प्रान्तोंमें अधिक है
तथा मध्य-प्रान्त और बङ्गाल-प्रान्तमें भी आगम-शास्त्रको
भलीभाँति जाननेवाले विद्वान् अभी मिलते हैं एवं इङ्ग्लैण्ड,
जर्मन आदि विदेशोंके बड़े-बड़े विश्वविद्यालयोंकी
लाइब्रेरियोंमें भी कुछ आगमके ग्रन्थ विद्यमान हैं जिनके
अध्ययनसे यहाँके संस्कृतज्ञ कृतार्थ हो रहे हैं। परन्तु
हिन्दुस्तानके विद्वान् इन आगम-ग्रन्थोंके जाननेका कुछ
भी प्रयत्न नहीं करते, यह देखकर खेद और साथ ही
आश्चर्य भी होता है। अब भी भारतवासी विद्वान् पक्षपात-
हीन दृष्टिसे तथा निरभिमान-वृत्तिसे शैवागम-वाङ्मयके
रहस्यको जाननेके लिये यत्नशील होंगे, ऐसी मेरी आशा है।

भगवान् शिव

(१)

सित गंगा-जल-राशि, शीशपर, जटा विरति-आकृति निर्मल,
दिव्य बाल-शशि-रुल्लि भाल, शुचि तेजराशिमय मुखमण्डल।
जगत-दग्धकारी प्रचण्ड विष द्वाराकृत सुकण्ठ श्यामल,
पुञ्जीकृत जग-सुन्दर ता-सम अति सुडौल तन गौर सबल।
वश्य काल सम केलि-निरत फणि-शोभित विस्तृत वक्षस्थल,
चरम दयामय दो लोचन हैं, चरम क्रोधमय एक अमल।

(२)

सदन गर्वहर, गिरिजा-सुखकर, योगेश्वर, धृतबाल-स्वभाव,
तब उपासकोंके हित रहता जगमें कोई नहीं अभाव।
स्वयं ब्रह्मके तुम स्वरूप हो याकि ब्रह्मके अंश प्रधान,
अथवा हो आनन्द-सिन्धुकी गुरुतम लहरोंके उत्थान।
हो-जाता जिस समय असंभव जगतीमें दुर्भाव-दमन,
करते तब तुम उसमें हितकर नाश-रूप गुरु परिवर्तन।

—आनन्दप्रसाद श्रीवास्तव

शिव-तत्त्व

(लेखक—भारत-धर्म-महामण्डलके एक महात्मा)



ब्रह्मादि पिपीलिकान्त अणु-परमाणु-तक चित्सत्ता सर्वत्र परिव्याप्त होनेके कारण जड एक कल्पनामात्र ही रह जाती है। वास्तवमें जड कोई वस्तु नहीं, चैतन्यका ही सब ओर अस्तित्व है। यही पराभक्तियुक्त सर्वव्यापक ईश्वर-ज्ञानका मौलिक-विज्ञान है। हम सनातनी आस्तिक हैं और सब ओर ईश्वरकी सत्ताको देखा करते हैं, समस्त जगत्को वासुदेव-मय देखते हैं, इसका यही रहस्य है। अब ईश्वर-तत्त्वके सम्बन्धमें विचार करना योग्य होगा।

सनातन वैदिक दर्शनोंके विज्ञानानुसार और नाना उपनिषदोंके ईश्वर-तत्त्व-सम्बन्धी रहस्यके अनुसार ईश्वर-तत्त्व-के विज्ञानके अनुशीलनकी पहले आवश्यकता है। वैदिक विज्ञानके अनुसार ईश्वर-तत्त्व त्रिभावोंके आधारपर तीन प्रकार-से अनुभूत होता है। त्रिभावोंमें पहला ब्रह्मभाव है। जब सृष्टि नहीं रहती अथवा सृष्टिकी गति जहाँ नहीं है, उस सृष्टिसे अतीत अद्वैत-सत्तारूपी निर्गुणभावको ब्रह्मभाव कहते हैं। दूसरा ईश्वरभाव है—जब ब्रह्मप्रकृति ब्रह्मसे पृथक् होकर सृष्टिविलास प्रकट करती है और ब्रह्म अर्थात् परमात्मा स्वतन्त्र रहकर उसका ईक्षण करते हैं उस समय ब्रह्म केवल द्रष्टा होते हैं और ब्रह्मप्रकृति दृश्यकी सृष्टि-स्थिति-लय करनेवाली रहती है। यही सगुणभाव ईश्वरभाव कहलाता है। तीसरा विराट्भाव है—जब ब्रह्मप्रकृतिके विलासरूपी अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डमय सृष्टि-प्रपञ्चके साथ ईश्वरभावका सम्बन्ध बना रहता हो, तब जो स्थूल मूर्तिमान् भाव दृग्गोचर होता है, वही विराट्भाव है। ज्ञानी भक्त अपनी ज्ञानदृष्टिसे इन्हीं तीनों भावोंमें श्रीभगवान्के दर्शन किया करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान्ने भगवदवताररूपसे भक्त अर्जुनको इन्हीं तीनों भावोंका उपदेश किया है। आत्माकी निर्लिप्तताके वर्णनके द्वारा ब्रह्मभावका, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-वर्णनके द्वारा ईश्वरभावका और विराट्मूर्तिका दर्शन कराकर विराट्-भावका अनुभव श्रीहरिने पार्थको कराया था। इन्हीं तीनों भावोंमेंसे ईश्वरभावको मुख्य मानकर द्वैत-प्रपञ्चकी ओर अनुभवको अग्रसर करनेसे यही प्रतीति होगी कि ब्रह्मप्रकृति

जब स्वतन्त्र होकर दृश्य-प्रपञ्चरूपी कार्य करने लगती है, जिसको परमात्मा देखते हैं, उस समय त्रिगुणमयी ब्रह्म-प्रकृतिका त्रिगुणमय स्वरूप स्वतन्त्ररूपसे ज्ञानी भक्तके अनुभवमें आने लगता है।

इसी अवस्थामें सगुण ब्रह्मके इस मधुर विलासको चाहे युगलरूप, चाहे जगत्पिता, चाहे जगन्माता कह सकते हैं। सगुणब्रह्मकी मन, वाणी और बुद्धिसे अगोचर यही अवस्था किसी शास्त्रमें महाविष्णु, किसी शास्त्रमें सदाशिव, किसी शास्त्रमें गणपति, किसी शास्त्रमें सूर्यदेव और किसी शास्त्रमें महादेवीके रूपसे वर्णित है। पञ्च सगुण-उपासनाका यही रहस्य है। त्रिभावमयी विश्वजननी महामायारूपिणी महादेवी ब्रह्माण्डकी सृष्टि, स्थिति और लयके लिये भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिवको प्रसव करती है, जो त्रिमूर्ति कहलाते हैं और प्रत्येक ब्रह्माण्डमें यथाक्रम त्रिगुणके अधिदैव बनकर सृष्टि, स्थिति और लयकार्य अपनी शक्तियोंके साथ सम्मिलित होकर किया करते हैं। ब्रह्माजीकी शक्ति सावित्री, विष्णुकी शक्ति लक्ष्मी और शिवजीकी शक्ति पार्वती कहाती है। ये ही तीनों सशक्तिक देवता प्रत्येक ब्रह्माण्डके ईश्वर कहलाते हैं। इन तीनोंमेंसे ब्रह्माण्डके स्थिति-कर्ता भगवान् विष्णुके सृष्टिरक्षाके लिये और सुक्तिदाता भगवान् शिवके जीवको ब्रह्मभावमें लीन करनेके लिये अवतार हुआ करते हैं। उनकी शक्तियोंके भी ऐसे ही अवतार होते हैं। अवतारोंका प्राकश्य मनुष्यपिण्ड, सहजपिण्ड और अलौकिक पिण्ड धारण करके होता है। इन त्रिमूर्तियोंके अधीन पुनः अनेक बड़े-बड़े पदधारी देवता अपने पद-गौरवके अनुसार ईश्वरीय शक्तियोंको धारणकर ईश्वर कहलाया करते हैं। इसी नियमके अनुसार भगवान् यम धर्मराजको ही पृथिवीके अनेक धर्मावलम्बी ईश्वर करके मानते हैं और उनकी बुद्धि ईश्वर-तत्त्वमें वहाँतक पहुँचती है। सनातन-धर्मके विज्ञानानुसार मन, वाणी और बुद्धिसे अगोचर ईश्वरतत्त्वका यही संक्षिप्त रहस्य है।

त्रिभावमयी विश्वजननी जो सृष्टि करती है उसमें दैवी सृष्टि प्रधान है। ऋषि, देवता और पितर ये सभी देवयोनि हैं। उन सबमें रुद्रकी उत्पत्ति बहुत ही गम्भीर विज्ञानमूलक है। सृष्टिके आरम्भमें यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन

शिव-भक्ति-रहस्य

(लेखक—श्रीयुत तपोवनस्वामीजी महाराज)



वलागिरिके समान उज्ज्वल वर्ण श्री-शिवकी सत्तामें अथवा उनके त्रिनेत्र, नीलकमल, भुजगभूषण आदि विशेषणोंसे विशिष्ट होनेमें तथा उनके स्वरूप-विशेषमें क्या प्रमाण है, यदि ऐसा कोई पूछे तो मैं तुरन्त ही उत्तर दूँगा कि इसमें भावपूर्ण हृदय ही मुख्य प्रमाण है। मधुर भाव तथा श्रद्धापूर्ण हृदयसे संस्कार-सम्पन्न भक्तगण लोकशंकर भगवान् शंकरको सम्यक् रूपसे जानकर उनमें सदा रत देखे जाते हैं तथापि उसकी प्रामाणिकताका यह कहनेसे निषेध नहीं हो सकता कि श्रुति और तर्कप्रमाणसे उसकी सत्ता नहीं सिद्ध होती है। क्योंकि शास्त्रादि प्रमाण भी उसकी सत्ताको सिद्ध करते हैं। यजुर्वेदके आठ अध्यायोंमें इनका श्रीरुद्रदेवके रूपमें गुणानुवाद किया गया है—

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं

त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।

—इत्यादि वाक्योंके द्वारा उपनिषदोंमें भी श्रीगौरी-पतिका स्तवन प्राप्त होता है। शिवपुराणादि पुराण-ग्रन्थ तो पूर्णरूपेण शिव-तत्त्वके वर्णनमें कृतकार्य हो रहे हैं। समुद्रके पार जानेकी इच्छासे श्रीरामने शिवकी पूजा की थी, पुत्रोंकी इच्छासे श्रीकृष्णने तथा श्रीकृष्ण-सखा अर्जुनने महासूक्तकी कामनासे भगवान् शंकरकी आराधना की थी। पुराणोंमें इसप्रकारके शिव-माहात्म्य जहाँ-तहाँ बहुत करके पाये जाते हैं, यह बात पौराणिकोंसे अज्ञात नहीं है। यदि कोई ऐसा मानता है कि अद्वितीय सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी सच्चित्स्वरूप परमात्मा हैं तो उसे यह भी अवश्य मानना पड़ेगा कि गौरीपति श्रीशंकर भी हैं। क्योंकि करुणावरुणा-लय परमात्मा भक्तोंके ऊपर अनुकम्पा कर उनकी भावनाके अनुसार मनोहर रूप धारण कर उन्हें अनुग्रहीत करते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। उसी प्रकार 'एकमेवाद्वितीयम्' करके श्रुतिमें प्रसिद्ध निराकार परमब्रह्मके भी शिव, विष्णु आदि समस्त आकार-भेद हैं, यह निर्विवाद है। निराकार सत्यज्ञान-धन परमात्मा ही साकार शिव हैं। निराकार और साकारके नामभेदसे उनमें वस्तुतः भेद नहीं आता। वस्तुतः

निराकार ही साकार है और साकार ही निराकार है। कहा भी है—

यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः ।

इस वाक्यके प्रमाणसे तथा युक्तिसे इसप्रकारके विभिन्न आकारवाले श्रीशिव, विष्णु आदिमें कोई पारस्परिक भेद नहीं। क्योंकि शिवस्वरूप ही विष्णु हैं, विष्णुस्वरूप ही शिव हैं। इसप्रकार कैलासके रजतके समान शुभ्र शिखरपर वास करते हुए एक ही परम शिव सुसंस्कृत भक्त-जनोंके द्वारा विश्वनाथ, केदारनाथ, रामनाथ इत्यादि नामोंसे पुकारे जाते हैं तथा उपासित होते हैं। इसप्रकारके नाम-भेदसे भगवान् शङ्करमें भेद नहीं उत्पन्न होता। जिसप्रकार सहस्र नामोंसे संकीर्तित विष्णुकी सहस्र संख्या नहीं हो जाती है उसी प्रकार विभिन्न नामोंसे अर्चित शम्भु भी अनेक नहीं हो सकते। परमात्माके सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेद-शून्य तथा सत्तामात्र शरीर होनेपर भी मुमुक्षु यदि अपनी इच्छाके अनुसार उनकी साकार या निराकाररूपमें उपासना करते हैं तथा अनुभव करते हैं तो इससे यह निश्चय हो जाता है कि उनमें कोई भेद-भाव नहीं है। वस्तु-तत्त्वके ऐसा होनेपर भी खेदकी बात है कि सुपवित्र सनातन वैदिक धर्ममें ईश्वरके बहुत्वका आरोपण कर उसमें नाना दोष दिखलाते हुए पाश्चात्य और पौराणिक शिक्षित लोग हिन्दू-धर्मके तत्त्वके विषयमें अपने अज्ञानको ही प्रकट करते हैं, इससे हमारे धर्मकी वस्तुतः कोई क्षति नहीं हो सकती।

उक्त रीतिसे शिव, विष्णु तथा ब्रह्मादि समस्त देवता अद्वितीय निराकार परमात्माके ही रूप होनेपर भी अन्य देवोंकी अपेक्षा जटा-जूट-धारी परम शिवमें अनेक विशेषताएँ हैं। निष्काम भावसे उपासना करनेवाले भक्तोंके ऊपर शीघ्र ही प्रसन्न होकर वह भक्ति, वैराग्य और ज्ञान प्रदान करते हैं; केवल यही नहीं, परम शिव स्वयं ही तपस्वियों, ज्ञानियों और विरक्तोंके लिये परम आदर्शरूप हैं यह बात विद्वानोंको अज्ञात नहीं। अहा ! इमंशानमें वास करनेवाले, मस्तकपर जटा-जूट धारण करनेवाले, समस्त शरीरमें भस्म धारण किये सर्पोंको आभूषण बनाये, हाथमें कपाल लिये हुए, मदनका नाश करनेवाले वह भगवान् शङ्कर तपस्वियोंके भी तपस्वी, विरक्तोंके भी विरक्त,

भिक्षुकोंके भी भिक्षुक, योगियोंके भी योगी हैं; फिर उनकी परमादर्शताका क्या कहना ? यदि मुमुक्षुगण इसप्रकारके गुणोंसे विशिष्ट भगवान् शङ्करको आदर्श बनाकर आत्मसाधनमें लगें तो इसमें सन्देह नहीं कि वे उत्कृष्ट तपोनिष्ठा और अत्युग्र वैराग्यको शीघ्र ही प्राप्त कर लें ।

निरतिशय त्यागमूर्ति पशुपतिको आदर्श बनाकर सतत चिन्तन करनेवाले मनुष्यके हृदयमें अपार वैराग्यादिको उत्पन्न करनेवाली एक विशिष्ट शक्ति आविर्भूत होती है । अतएव तप, योग और वैराग्यपथमें जीवन व्यतीत करनेवाले संन्यासियोंके उपास्यरूपसे हस्तिचर्म परिधान किये शम्भुकी महिमाका विशद वर्णन स्वामी श्रीशंकराचार्यने किया है । भगवान् शिवके आदर्शकी महिमा अपरम्पार है !

यह लेखक कुमारावस्थासे ही पतितपावन सब अनर्थोंके नाशक पञ्चश्रमन्त्रके जप तथा उसके अभिधेयभूत भूतनाथ भगवान् शङ्करके स्मरणमें निरन्तर लगा रहता था । तत्पश्चात् कर्कश तर्कप्रधान पाश्चात्य और 'प्राच्य दर्शन' तथा जीव-ईश्वर-जगत्में मरुमरीचिकाके समान मिथ्यात्वका समर्थन करनेवाले वेदान्त-दर्शनका भी विशेष अनुशीलनकर एवं सब कामोंको छोड़कर संन्यासनिष्ठामें विचरते हुए मुझे आजतक कभी यह भान न हुआ कि इसप्रकारके तत्त्वविचार और शिवभक्तिमें परस्पर विरोध है इसलिये शिवभक्तिका त्याग करना चाहिये । वस्तुतः भक्ति और ज्ञाननिष्ठामें कोई पारस्परिक भेद नहीं है ।

शिवप्रेमकी प्रेरणासे ही हिमराशिको लॉघते हुए नङ्गे पैरोंसे मैं उनकी पुरी कैलासमें गया । यद्यपि वहाँ उनके निवासस्थानको इन चर्मचक्षुओंसे न देख सका तथापि ज्ञानचक्षुसे भगवान् श्रीगिरीशको एवं समीपहीमें उनके महान् देवदुर्लभ ताण्डवनृत्यको देखकर मेरा आनन्द परकाष्ठाको पहुँच गया और मैं कृतकार्य हो गया । तत्पश्चात् मेरी शिवभक्ति तनिक भी हासको प्राप्त न हुई, बल्कि पूर्वापेक्षा बढ़ती ही गयी । अहा ! भक्ति और श्रद्धाकी एकताका महत्त्व महान् है !

शिवभक्ति अज्ञानात्मिका साधनावस्थामें उपास्य और उपासक-भेदके होते हुए गौणरूपमें रहती है । वही ज्ञानात्मिका सिद्धावस्थामें तन्मयी होकर अभेदभाव तथा स्वयं अद्वैतरूपिणी हुई सुप्रसिद्ध 'पराभक्ति' के रूपमें मुख्य भक्ति कहलाती है । वस्तुतः यह मुख्यभक्ति अद्वैतज्ञान ही

है, इसमें सन्देह नहीं । तथापि शुष्क हृदयवाले वेदान्ती न जाने क्यों भक्तिके नाम-श्रवणमात्रसे भयभीत हो उठते हैं । भयकी तो कोई बात नहीं है, उन्हें सावधान चित्तसे विचार करना चाहिये और यह जानना चाहिये कि पराभक्ति ही एक मोक्षका साधन है । यद्यपि 'ऋते ज्ञानाच्च मुक्तिः' इस उपनिषद्वाक्यके अनुसार ज्ञानसे ही कैवल्यकी प्राप्ति होती है तथापि अद्वितीया पराभक्तिके ही औपनिषद ज्ञान होनेके कारण ज्ञान और भक्तिमें भेद नहीं है । भेदके भ्रममें पड़कर लोग अद्वैतज्ञानसे भक्तिको अलग बतलाते हैं । भेद-भ्रमके दूर होनेपर पुनः ज्ञानसे भक्ति पृथक् नहीं रह जाती ।

यदि प्रसन्नो भवदङ्घ्रिसेवा-

रतिं प्रयच्छान्यदहं न याचे ।

निरस्त भेदभ्रममृत्युपाशां

परां परानन्दकरीं परात्मन् ॥

अपने रचे हुए श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्र नामक ग्रन्थमें मैंने विश्वनाथसे यही पराभक्ति माँगी है । जिसमें मृत्युपाशात्मक भेद-भ्रमका लेश भी नहीं है, ऐसी पराभक्ति ही मोक्षका एकमात्र साधन है । यही सिद्धान्त मैंने उपर्युक्त श्लोकमें निर्धारित किया है । 'भक्ति भेदवाधिका (भेदको मिटानेवाली) नहीं है, बल्कि भेद उत्पन्न करनेवाली है,' इसप्रकारके भ्रममें पड़कर ही शुष्क दार्शनिक व्यर्थ ही उसका तिरस्कार करते हैं । ऐसे लोगोंसे मेरी प्रार्थना है कि इस भ्रान्तिका त्यागकर नारद-सूत्रोंमें कथित महत्सेवा ईश्वर-कारुण्य आदिके द्वारा हृदयमें भावकी मधुरता प्राप्तकर शुद्ध अद्वैतधन पराभक्ति-पदको प्राप्त करनेकी चेष्टा करें ।

प्रसङ्गवश स्मरणमें आये धन्यवादके योग्य श्रीसौम्य-काशीक्षेत्रकी धन्यवादके द्वारा ही सम्यक् आराधनाकर इस लेखको समाप्त करूँगा ।

जगत्पुत्तरकाशीति सौम्यकाशीति च श्रुतम् ।

क्षेत्रं गोत्रकुलोत्तंसहिमवन्मध्यसंस्थितम् ॥

पञ्चक्रोशविशंकटं वरुणया चास्या च संवेष्टितं

भूभृद्भूषणवारणावतनितंबालम्बि यद्भ्राजते ।

गङ्गा यत्र च गायत्रीव मधुरं सामोर्मितुङ्गस्वनै-

स्तप्यन्ते च तपो वितृष्णमतयो यत्रोल्लङ्घनं साधवः ॥

(श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्र)

श्रीविश्वनाथका साक्षात् विहारस्थल गिरिकुलभूषण हिमालयका हृदयदेशवर्ती, शिवभक्तोंके द्वारा अवश्य सेवनीय सुप्रसिद्ध उत्तरकाशी नामक सौम्यकाशीक्षेत्र जयको प्राप्त हो। अत्यन्त पवित्र इस शिवक्षेत्रका माहात्म्य स्कन्दपुराणमें सम्यक् रीतिसे वर्णित है। शिवभजनरसिकोंको इस क्षेत्रकी विशेषता सामान्यतः ज्ञात होती ही है। यरुणा और असी-इन दो नदियोंसे आवेष्टित, पञ्चक्रोशविस्तृत,

हिमालयकी शाखा वारणावत-पर्वतके नितम्ब-देशमें स्थित, भागीरथीके जलप्रवाहकी दीर्घध्वनिसे महा सामगानके समान ध्वनित, शिवभजनमें तत्पर रहनेवाले महात्माओंकी शिवविषयक तपस्याकी भूमि तथा द्वितीय कैलासके समान महिमान्वित यह स्थान शिवभक्तों तथा कल्याणपाठकोंके लिये सुश्लाघनीय है।

ॐ शिवम् !

सदाशिव और उनका अमोघ कवच

(लेखक-लाला श्रीकन्नोमलजी एम० ए०)



गवान् शङ्कर नित्यानन्द सुख-सम्पत्ति, ऋद्धि-सिद्धि, बल-वैभव, स्वास्थ्य-नीरोगता एवं लौकिक-पारलौकिक शुभ फलोंके उदार दाता हैं। आप देवोंमें महादेव हैं। अव्यय, अनन्त, अटल, अमर, नित्य आनन्दरूप होनेसे सदाशिव हैं। आप भयङ्कर रुद्ररूप हैं, तो आप भोलानाथ भी हैं। दुष्ट दैत्योंके संहार करनेमें कालरूप हैं, तो आप दीन-दुखियों, अनाथ-दरिद्रियों, भयभीत-सङ्कट-ग्रस्त प्राणियोंकी रक्षा करनेमें भी वैसे ही उत्साहसे प्रयुक्त हैं। निष्पक्ष और दयालु ऐसे हैं कि जिसने आपको प्रसन्न किया उसीको मनमाना वरदान मिला। वहाँ इस बातकी परवा कभी नहीं हुई कि ऐसा वरदान देनेसे अपनी और संसारकी हानि होगी और दुष्ट दुराचारियोंकी विजय होगी। रावणको अटूट बल दे दिया। भस्मासुरको सुर, नर सभीको भस्म करनेकी सामर्थ्य दे दी। यदि भगवान् विष्णु मोहिनीरूप धर सहायता न करते तो स्वयं शङ्कर सङ्कटग्रस्त हो जाते। आपकी दयाका आर-पार नहीं है। मार्कण्डेयको अपनाकर यमराजके दूतोंको भगा दिया। आपकी उदारता असीम है, आपका त्याग अनुपम है, सदाके भोलानाथ हैं। क्या अन्य सब देवता लक्ष्मी, कामधेनु, कल्पवृक्ष, अमृत ले जायें और आप अपने भागका हालाहल स्वीकृतकर संसारकी रक्षाके लिये पानकर नीलकण्ठ बन जायें ? जिस मनुष्यने आपकी मूर्तिके सिरपर पैर रखकर वृक्षमें अपनी जलभरी मशक लटका दी जिसमेंसे आपके ऊपर जलबिन्दु टपकते रहे, उसे अपना पूर्ण भक्त जानकर आपने अटल

शुभगति दे दी। आप भोलानाथ नहीं तो कौन हैं ! भगवान् शङ्कर एकपत्नीव्रतके अद्वितीय, अनुपम, अद्भुत भव्य एवं देदीप्यमान आदर्श हैं। माता सती ही पार्वतीरूपसे आपकी अनन्या पत्नी हैं। इस पदको प्राप्त करनेके लिये इस देवीने जन्म-जन्मान्तरोंमें घोर तप किया है। भूमण्डलके किसी साहित्यमें पति-पत्नी-सम्बन्धका ऐसा उज्ज्वल उदाहरण नहीं है। सतीके भस्म हो जानेपर आपने अटल, अचल, अटूट समाधि लगा दी। सतीने भी दूसरा जन्म लेकर कठोर प्रतिज्ञा कर ली कि यदि विवाह करूंगी तो महादेवसे ही करूंगी, नहीं तो जन्म-जन्मान्तरोंतक तपस्या करती रहूंगी जबतक कि यह मनोरथ सिद्ध न हो जावे। क्या किसी सुर-असुर, नर-नारीकी सामर्थ्य थी कि महादेवकी अटूट समाधिको तोड़े ? कामदेव और उसकी सेना तो अनेक प्रयत्न कर हारे, अन्तमें बेचारा कामदेव भस्म हुआ, महायोगी शङ्करकी विजय हुई।

भगवान् शिवका ब्रह्मचर्य अटल है, आपका चरित्र गङ्गाजलसे कहीं बढ़कर पवित्र है। हिमालयकी हिमसे कहीं बढ़कर स्वच्छ है। चन्द्रमाकी पूर्ण ज्योत्स्नासे कहीं बढ़कर शीतल है। सूर्यके प्रकाशसे कहीं बढ़कर देदीप्यमान है। भगवान् शङ्करके आचरणमें कहीं भी अश्लीलताका लवलेश नहीं है। आप सनातन आर्यजातिके एकमात्र चरित्रशाली देवता हैं।

आर्यजातिकी सभ्यता और संस्कृतिमें योगसाधन एक अमूल्य, अतुलनीय, अद्भुत, अद्वितीय सम्पत्ति है। इसके सामने साम्प्रतिक सायन्स बच्चोंका खेल है। आध्यात्मिक जगत्में तो इसके द्वारा ईश्वरप्राप्ति, निर्वाण, मोक्षादि लभ्य

हैं और भौतिक संसारमें कोई ऐसी चमत्कारी वस्तु नहीं है—कोई ऐसी घटना नहीं है जो इसके द्वारा प्राप्त या सम्भव न हो सके। दूरदृष्टि, दूरश्रवणशक्ति, परविचारबोध, भविष्यका ज्ञान, आकाश-भ्रमण, भारी-से-भारी हो जाना, हलके-से-हलका हो जाना आदि आदि इस योग-विद्याके आह्वानोंकी ऋद्धि-सिद्धियाँ हैं। इस योग-विद्या और ज्ञानके आविष्कर्ता कौन हैं ? यही भगवान् शिव !

आप योगियोंके योगी महायोगी हैं। सब योगशास्त्रका चमत्कार आपकी ही कीर्ति है। योगियोंकी आयु बढ़ानेके लिये आपने पारद-शास्त्रका आविष्कार किया है। इस शास्त्रके साधनोंद्वारा योगी जय चाहे तब कायाकल्पकर सहस्रों वर्षोंतक अपनी आयु बढ़ा सकता है। शिवका अर्थ सुख, शान्ति, ऐश्वर्य, सम्पत्ति एवं सौभाग्य है। भगवान् शंकर इन सबके अद्भुत, अव्यय, अनन्त भाण्डार हैं। इसलिये सदाशिव कहलाते हैं। कैसा भी शोकग्रस्त, दुःख-पीड़ित, विपत्तिविपन्न, दारिद्र्यपूर्ण मनुष्य क्यों न हो, यदि इनके समीप श्रद्धा, शुद्धचित्तता और सरल भक्तिसे पहुँच गया तो उसकी मनस्कामना पूरी हो गयी। यह कहना न होगा कि भगवान् शङ्कर ही संगीत और नृत्यकलाओंके आविष्कर्ता और आद्याचार्य हैं। ताण्डवनृत्य करते समय आपने डमरू बजाया उसीमेंसे सात स्वरोंका प्रादुर्भाव हुआ। आपके ताण्डवनृत्यसे ही नृत्यकलाका प्रारम्भ है। इतना ही नहीं व्याकरणाचार्योंका कथन है कि व्याकरणके मूलतत्त्वोंका विकास भी आपकी डमरूध्वनिसे है। कामशास्त्रकी उत्पत्तिके विषयमें भी कहा जाता है कि इसका आद्याचार्य नन्दी आपका अनुचर और सेवक था। इसप्रकार कितनी विद्याओं और कलाओंके जन्मदाता और प्रवर्तक भगवान् शङ्कर ही हैं।

यह भी अप्रकट न रहे कि संस्कृत-साहित्यमें जितनी गुप्त आध्यात्मिक विद्याएँ—जितना दिव्य ज्ञान और विज्ञान है—उन सबके उपदेश और गुरु महादेवजी ही हैं। मन्त्र, तन्त्र, आगमादि इन्हींके उपदेश हैं। रसायन-शास्त्रके आद्याचार्य भी यही हैं। अस्त्रशास्त्रविद्या भी आपसे ही प्राप्त हुई है। पाशुपत-शास्त्र जिसका प्राचीन भारतमें अनन्त गौरव था, भगवान् शङ्करका ही है। जिस धनुषको श्रीरामचन्द्रजीने तोड़ा था वह भी इन्हींका था। अर्जुनने अपने अमोघ अस्त्र-शास्त्र महादेवजीसे ही प्राप्त किये थे।

संस्कृत-साहित्यमें कोई प्रामाणिक ग्रन्थ ऐसा नहीं

जिसमें भगवान् शङ्करके चरित्रका उल्लेख न हो। इनकी कीर्ति, विचित्र लीला और ज्ञानइयत्ताका वर्णन सभी पुराणों, इतिहासों और शास्त्रोंमें मिलता है। यह देवोंके देव महादेव आर्य-जातिके आद्य देवता हैं और जहाँ-जहाँ आर्य-संस्कृतिकी पहुँच हुई है वहाँ-वहाँ आपकी स्थापना हुई है। भगवान् शङ्करका निज स्थान तो कैलास-पर्यंत है जहाँ आजतक किसी प्राच्य या पाश्चात्य यात्रीकी पहुँच नहीं हुई है; पर इनकी मूर्तिकी स्थापना समस्त भारतवर्षमें ही नहीं—अन्य देशोंमें भी हो गयी है। नैपालमें आप पशुपति महादेव हैं, दक्षिणमें आप श्रीरामेश्वर हैं, उत्तरमें केदारनाथ हैं, काशीमें विश्वनाथ हैं, उज्जैनमें महाकालेश्वर हैं, इत्यादि-इत्यादि। शिवालय सभी देशों और स्थानोंमें हैं—पर्वतों, पहाड़ियों, गुफाओं, नदीतटों, नगरों, ग्रामों, वनों आदि-आदिमें। अधिकांश स्थानोंमें आपका लिङ्गस्वरूप स्थापित है जिसका गूढाशय है कि शिव, पुरुष लिङ्गरूपसे इस प्रकृतिरूपी संसारमें स्थित हैं। यही सृष्टिकी उत्पत्तिका रूप है। शिव-लिङ्ग और जलहरी गूढाशयसे पुरुष और प्रकृति हैं। भगवान् शङ्करकी पूजा नितान्त प्राचीन है। ऋग्वेदमें भी महादेवका उल्लेख है। 'त्र्यम्बकं यजामहे' वेद-मन्त्र है। इतिहास-पुराणोंमें शिव-पूजाकी बड़ी महिमा गायी गयी है, ऐतिहासिक दृष्टिसे सबसे पहले महादेवके मन्दिरोंका उल्लेख है। जब भगवान् रामचन्द्रजीने लङ्कापर चढ़ाई की थी तो पहले शिवकी स्थापनाकर पूजा की थी। यह स्थान अब श्रीरामेश्वरम् कहलाता है। काशीमें विश्वनाथजीकी पूजा अत्यन्त प्राचीन है। जो कहते हैं कि, मूर्तिपूजन नवीन पद्धति है उनको शिव-मन्दिरोंकी प्राचीनतापर ध्यान देना चाहिये। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि यह महादेव ही हैं जो प्राचीन आर्य-जातिकी सभ्यता और संस्कृतिके पूरे उदाहरणस्वरूप हैं। आर्यदेश, आर्यजाति और आर्यजातिकी सभ्यता—इन तीनों-हीके मुख्य-मुख्य लक्षण महादेवकी मूर्तिमें मिलते हैं। हिमालय-पर्वतपर निवास, जटाओंसे गङ्गाका निकास भारतके भौगोलिक संकेत हैं। गौर वर्ण होना आर्यजातिका मुख्य लक्षण है। तप, योग करना आर्य-संस्कृतिका प्रधान सिद्धान्त और आध्यात्मिक ज्ञान-उपदेश आर्य-सभ्यताका मुख्य तत्त्व है। एक-पत्नी-व्रत, ब्रह्मचर्य, उदारचित्तता, संन्यास, त्याग, दयालुता, वीरता, सङ्गीत-नृत्यादि कला-सम्पन्नता—ये सभी आर्य-सभ्यताकी बातें हैं और ये सब महादेवजीमें विद्यमान हैं। इनके विषयमें कहा जाता है कि, यह सभी प्रकारकी

मादक वस्तुओंका सेवन करते हैं। आर्यदेशमें ये सब चीजें उत्पन्न होती हैं। जो इस देशका पूरा प्रतिनिधिस्वरूप देवता होगा (जैसे कि महादेवजी हैं तो) उसमें इनका भी किसी-न-किसी रूपमें वर्णन होना चाहिये; अतः महादेवजीके सम्बन्धमें भी उल्लेख किया गया है; परन्तु पूर्ण गवेषणासे ज्ञात हुआ है कि महादेवजीने मदिराका ग्रहण कभी नहीं किया। भङ्ग, धतूरा, गाँजादि नशीली वस्तुओंका उल्लेख तो मिलता है, पर इस निन्द्य वस्तुका कहीं नहीं। (परन्तु भोग-धतूरे आदिका सेवन सर्वसमर्थ भगवान्की देखा-देखी भक्तोंको नहीं करना चाहिये। श्रीशिवने तो लोकरक्षणार्थ विष भी पी लिया था।) इनकी पूजामें निर्मल पवित्र गङ्गाजल, वेलपत्र और पुष्पादिका ही प्रयोग है।

भगवान् शिवकी महिमा अनेक स्तोत्रों और स्तवनोंमें वर्णित है। इनमें महिम्नस्तोत्र बड़ा महत्त्वशाली है और दार्शनिक विचारोंसे परिपूर्ण है, पर सबसे उत्कृष्ट, तत्कालप्रद और भाषा-गौरव-सम्पन्न स्तुति शिव-कवच है। कवच क्या है? इसको जानना आवश्यक है। संस्कृत-साहित्यमें कवच-रचना एक अद्भुत बात है। इष्टदेवको प्रसन्न करना और उसे अपनी रक्षाके लिये उद्यत करना कवच-स्तोत्रोंका मुख्य उद्देश्य है। मुख्य-मुख्य देवताओंके कवच-स्तोत्र मिलते हैं। जैसे, नारायण-कवच, देवी-कवच, शिव-कवचादि। कवचका अर्थ जिरावखतर है जिसे अङ्गरेजीमें Armour कहते हैं। जैसे युद्धमें योद्धा जिरावखतर पहनकर शत्रुके सब प्रकारके प्रहारोंसे सुरक्षित रहता है, वैसे ही मनुष्य इन कवच-स्तोत्रोंके पढ़ने और उनके मन्त्रोंके जप करनेसे अपने लिये सब सङ्कट-प्रहारोंसे इष्टदेवकी कृपाद्वारा सुरक्षित हो जाता है और जिस विपत्तिमें पड़ा हो उससे मुक्त हो जाता है। कवच-स्तोत्रोंकी रचनामें मुख्य बातें ये होती हैं—

- १-कवच-स्तोत्र मन्त्रका ऋषि
- २-उसका छन्द
- ३-देवता
- ४-बीज-शब्द या मन्त्र
- ५-शक्ति
- ६-कीलक
- ७-प्रयोजन अर्थात् जिस देवताकी प्रसन्नताके लिये जप किया जाता है उस देवताका नाम।
- ८-अङ्गन्यास जो दो प्रकारके हैं—

(१) करन्यास—अङ्गुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका, करतलकरपृष्ठ।

(२) हृदयादिन्यास—हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र।

९-दिग्बन्ध

१०-मन्त्रजप

११-ध्यान जिसमें नियमपूर्वक आसनादिकी विधि और इष्ट देवताके रूपका वर्णन होता है।

१२-प्रधान स्तुतिका मन्त्र।

१३-कवच-महिमा।

१४-सिद्धि अर्थात् जिस उद्देश्यसे कवच-स्तोत्रकी रचना हुई है उसकी प्राप्ति।

कवच-रचनामें ये सब अङ्ग होने चाहिये। इनके द्वारा मनुष्य इष्टदेवके मन्त्रके प्रभावसे भीतर-बाहर पूर्णतया भावित हो जाता है यानी वह मन्त्रमय हो जाता है। ऐसी अवस्थामें वह ऐसा सुरक्षित हो जाता है कि उसपर कोई विपत्ति प्रहार नहीं कर सकती। यही कवच है। शिव-कवचमें ये सब अङ्ग हैं और सर्वथा पूर्ण हैं। कवच-साहित्यमें शिव-कवचका उच्चतम स्थान है, वह सब कवचोंका शिरोमणि है। भाषा ऐसी ओजस्वी, गौरवशाली, भावपूर्ण, उत्कृष्ट एवं चमत्कारी है कि आप पढ़ते-पढ़ते तल्लीन हो जायँगे, उसके प्रवाहमें आप बहे चले जायँगे। उसका जादूका-सा असर होता है।

यह कवच श्रीस्कन्दपुराणमें ब्रह्मोत्तरखण्डका शिव-वर्मनाम द्वादश अध्याय है, इसके उपर्युक्त कवच-अङ्गोंका विवेचन देखिये—

१-ऋषि—इसके ऋषि योगीश्वर ऋषभ हैं।

२-छन्द—अनुष्टुप् है।

३-देवता—सदाशिव रुद्र हैं।

४-बीज—हां बीज है। बीज वह है जिससे स्तोत्रका उदय हो।

५-शक्ति—हीं है। शक्ति वह है जो निर्दिष्ट ध्येयतक पहुँचनेके लिये बल-सञ्चार करे।

६-कीलक—हूँ कीलक है। कीलक वह है जो इस शक्तिको निर्दिष्ट ध्येयतक पहुँचनेमें सुदृढ़ रखे।

७-प्रयोजन—साम्ब सदाशिवको प्रसन्न करना।

८-अङ्गन्यास-(१) करन्यास—

- १-अंगुष्ठाभ्यां नमः ।
- २-तर्जनीभ्यां नमः ।
- ३-मध्यमाभ्यां नमः ।
- ४-अनामिकाभ्यां नमः ।
- ५-कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
- ६-करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

(२) हृदयादिन्यास—

- १-हृदयाय नमः ।
- २-शिरसे स्वाहा ।
- ३-शिखायै वषट्
- ४-कवचाय हुम् ।
- ५-नेत्रत्रयाय वौषट् ।
- ६-अस्त्राय फट्

९-दिग्बन्ध-‘ॐ भूर्भुवः स्वः’ है । इन अक्षरोंके उच्चारणसे चारों दिशाओंको बाँधा जाता

नोट—इन न्यासोंके पहले इष्टदेवके रूपका मन्त्र बोलते जाते हैं और तब इनकी यथोचित मुद्राएँ करते जाते हैं, जैसे अंगुष्ठाभ्यां नमः कहते समय दोनों हाथोंके अंगूठोंको सिरकी ओरसे मिलते हैं, इसी प्रकार अंगूठोंकी ओरसे बाकीकी चारों अंगुलियोंको । करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः न्यासमें दोनों हथेलियोंको ऊपर-नीचे धरते हैं । हृदयादिन्यासोंमें हृदयको छूते हैं, शिरपर अंगूठेसहित चारों उँगलियाँ उलटी खड़ी करते हैं, शिखा यानी चुटियापर मुट्ठी बाँधकर पर अंगूठोंको सीधाकर अंगूठेके बल रखते हैं । सब शरीरपर ऊपरसे नीचेतक दोनों हाथोंको दूरसे फेरनेकी चेष्टा करते हैं, दोनों नेत्रोंपर और तीसरे माथेके शान-नेत्रपर अंगूठा और उसके समीपकी दो अंगुलियोंको खड़ी कर उलटी रखते हैं । अस्त्राय फट्में धीमी ताली बजा शरीरके चारों ओर चुटकी बजाते हैं । इन सब मुद्रा-चेष्टाओंका गूढ़ रहस्य और प्रयोजन है शरीरको सब ओरसे मन्त्रमयकर सुरक्षित करना । यह गुप्त विज्ञानका विषय है—कोई निरर्थक कल्पना नहीं है । इस सम्बन्धमें यह स्मरण रहे कि करन्यासोंके अन्तमें तो नमः शब्द आता है और नमः शब्द ही हृदयन्यासके अन्तमें है । पर शिरके सम्बन्धमें स्वाहा आता है, शिखाके सम्बन्धमें वषट्, कवचके सम्बन्धमें हुम्, नेत्रके सम्बन्धमें वौषट् और अस्त्रके सम्बन्धमें फट्—ये सब गुप्त रहस्यपूर्ण शब्द हैं जो इन सम्बन्धोंमें विशेषरूपेण नियुक्त हैं ।

है । अभिप्राय यह है कि सब मुद्रा-चेष्टाओं-द्वारा तो शरीरको सुरक्षित किया जाता है और इन अक्षरोंके उच्चारणसे सब दिशाओं-में भी अनिष्ट होनेकी रोक कर दी जाती है ।

१०-मन्त्रजप-‘ॐ नमः शिवाय’ मन्त्रका जप है ।

११-ध्यान—इसके २७ श्लोक अलौकिक चमत्कारी हैं, जिनमेंसे एक श्लोकमें कहा गया है कि ध्यान करनेवाला शुद्ध स्थानमें नियमपूर्वक आसन लगाकर जितेन्द्रिय और प्राणायाम-अभ्यस्त होकर बैठे । ध्यानके श्लोकोंमें महादेवजीके अनेक रूपों और कीर्तियोंका वर्णन है । बड़े मनोहर, दिव्य और प्रभाव-शाली श्लोक हैं ।

१२-प्रधान स्तुतिका मन्त्र—यह सहस्राक्षर मन्त्र है जो संसारभरके मन्त्र-साहित्यमें अपनी तुलना नहीं रखता । इस पूरे मन्त्रको हम नीचे उद्धृतकर इसका गौरव दिखावेंगे ।

१३-कवच-महिमा—यह महिमा २, २८, २९, ३०, ३१ और ३२ श्लोकोंमें वर्णित है जिसका सारांश यह है—

यह कवच सब पुराणोंमें परम गुह्य है; सब पापोंको दूर करता है, अत्यन्त पवित्र है, जयप्रद है, सब विपत्तियोंको छुड़ानेवाला है; सब बाधाओंको शान्त करनेवाला है । परम हितकारी है । सब भय दूर करता है । इसके प्रभावसे क्षीणायु मृत्युसमीपस्थ, महारोगग्रस्त मनुष्य शीघ्र ही नीरोगता और सुख प्राप्त करता है । उसकी दीर्घायु हो जाती है, उसका सब दारिद्र्य दूर हो जाता है उसके सौमाङ्गल्यकी वृद्धि होती है, वह महापातकसे छूट जाता है और देहान्तमें मुक्ति प्राप्त करता है ।

१४-सिद्धि-कथा है कि इस कवचका उपदेश ऋषभ-योगीने एक संकटग्रस्त राजाको किया था । इस कवचके प्रभावसे उसके सब मनोरथ सिद्ध हो गये और वह अपने राज्यका सुख फिर भोगने लगा । यह उदाहरणके रूपसे प्रयोजनसिद्धि बतायी है, जो सभी कवचोंमें उत्साहित करनेके लिये वर्णित होती है ।

अब सहस्राक्षर मन्त्रकी छटा और महत्ता देखिये—

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सर्व-

मन्त्रस्वरूपाय सर्वयन्त्राधिष्ठिताय सर्वतन्त्रस्वरूपाय सर्व-
तत्त्वविद्वराय ब्रह्मरुद्रावतारिणे नीलकण्ठाय पार्वतीमनोहर-
प्रियाय सोमसूर्याभिलोचनाय भस्मोद्धूतविग्रहाय महा-
मणिमुकुटधारणाय माणिक्यभूषणाय सृष्टिस्थितिप्रलय-
कालरौद्रावताराय दक्षाध्वरध्वंसकाय महाकालभेदनाय
मूलाधारैकनिलयाय तत्त्वातीताय गङ्गाधराय सर्वदेवाधि-
देवाय षडाश्रयाय वेदान्तसाराय त्रिवर्गसाधनायानेककोटि-
ब्रह्माण्डनायकायानन्तवासुकितक्षककर्कोटकशङ्खकुलिकपद्म-
महापद्मेत्यष्टनागकुलभूषणाय प्रणवस्वरूपाय चिदाकाशा-
याकाशादिवस्वरूपाय ग्रहनक्षत्रमालिने सकलाय कलङ्क-
रहिताय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकसंहर्त्रे सकललोकैक-
गुरवे सकललोकैकभर्त्रे सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगम-
गुहाय सकलवेदान्तपारगाय सकललोकैकवरप्रदाय सकल-
लोकैकशङ्कराय शशाङ्कशेखराय शाश्वतनिजावासाय निरा-
भासाय निरामयाय निर्मलाय निर्लोभाय निर्मोहाय निर्-
मदाय निश्चिन्ताय निरहङ्काराय निराकुलाय निष्कलङ्काय
निर्गुणाय निष्कामाय निरुपपन्नाय निरवधाय निरन्तराय
निष्कारणाय निरातङ्काय निष्प्रपञ्चाय निःसङ्गाय निर्द्वन्द्वाय
निराधाराय नीरोगाय निष्क्रोधाय निर्गमाय निष्पापाय
निर्भयाय निर्विकल्पाय निर्भेदाय निष्क्रियाय निस्तुलाय
निःसंशयाय निरञ्जनाय निरुपमविभवाय नित्यशुद्धबुद्ध-
परिपूर्णसच्चिदानन्दद्वयाय परमशान्तस्वरूपाय तेजोरूपाय
तेजोमयाय जय जय रुद्र महारौद्र भद्रावतार महाभैरव
कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर खट्वाङ्गखड्ग-

चर्मपाशाङ्कुशडमरुकर त्रिशूलचापबाणगदाशक्तिभिन्द-
पालतोमरमुसलमुद्गरप्रासपरिघभुशुण्डीशतव्रीचकाद्यायुध
भीषणकरसहस्रमुख दंष्ट्राकरालचदन विकटाट्टहासविस्फा-
रितब्रह्माण्डमण्डल नागेन्द्रकुण्डल नागेन्द्रहार नागेन्द्रचलथ
नागेन्द्रचर्मधर मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विश्व-
रूप विरूपाक्ष विश्वेश्वर वृषभवाहन विश्वतोमुख
सर्वतो रक्ष रक्ष मां ज्वल ज्वल महामृत्युमपमृत्यु-
भयं नाशय नाशय चोरभयमुत्सादयोत्सादय विषसर्प-
भयं शमय शमय चौरान्मारय मारय मम शत्रून्-
घाट्योघाटय त्रिशूलेन विदारय विदारय कुठारेण भिन्धि
भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय
मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय बाणैः सन्ताडय सन्ताडय
रक्षांसि भीषय भीषयाशेषभूतानि विद्रावय विद्रावय
कूष्माण्डवेतालमारीचब्रह्मराक्षसगणान् सन्त्रासय सन्त्रासय
मामभयं कुरु कुरु विप्रस्तं मामाश्वसयाश्वासय नरकभया-
न्मामुद्धरोद्धर सञ्जीवय सञ्जीवय क्षुत्तृड्भ्यां मामाप्यायया-
प्यायय दुःखातुरं मामानन्दयानन्दय शिवकवचेन मामाच्छा-
दयाच्छादय मृत्युञ्जय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते ।

इस कवचकी प्रशंसा जितनी की जाय थोड़ी है ।
सङ्कटग्रस्त मनुष्योंके लिये यह अनुभूत योग है । मैंने स्वयं
इसके प्रभावका अनुभव किया है और इसी कारण परोपकारके
उद्देश्यसे इस लेखमें इसका विवेचन किया है । आशा है
इससे सर्वसाधारणजन लाभ उठावेंगे । इसका प्रयोग
अमोघ है, इससे कभी निराशा न होगी । 'किमधिकम् !'

फल

दरस किएतें दुख-दारिद्र दलत, पाँय
परस किएतें पाप-पुंज हरि लेत है ।
जलके चढ़ाएँ जम-जातना न पाएँ कहूँ,
चंदन चढ़ाएँ चित चौगुनो सचेत है ॥
कहत 'कुमार' कुंद कुसुम कनीर कंज,
कनक चढ़ाएँ देत कनक-निकेत है ।
त्रिदल चढ़ाएँतें त्रिलोचन त्रितापनकों,
त्रिगुनी त्रिवेनीकी तरंगें करि देत है ॥

—शिवकुमार केडिया 'कुमार'

लिंग-रहस्य

(लेखक—श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०)

यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च एवं चापि सह दैवतैः । अर्चयेथाः सदा लिङ्गं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः ॥

(महाभारत, अनु० पर्व अ० १४)

१-लिंगार्चनकी व्यापकता



हेश्वरलिंगकी अर्चा अनादिकालसे जगद्व्यापक है। ख्रीष्टीय धर्मके प्रचारके पूर्व पाश्चात्य देशोंकी प्रायः सभी जातियोंमें किसी-न-किसी रूपमें लिंगपूजा सर्वत्र प्रचलित रही है। रोमक और यूनान दोनों देशोंमें क्रमशः प्रियेपस और फल्लुसके नामसे

लिंगकी ही अर्चा होती थी। इन दोनों राष्ट्रोंके प्राचीन धर्मका लिंगपूजा प्रधान अंग था। बृषकी मूर्ति लिंगके साथ ही पूज्य थी। पूजाकी विधिमें धूप, दीप, पुष्पादि हिन्दुओंकी ही तरह काममें आते थे। मिस्रदेशमें तो हर और ईशिकी उपासना उनके धर्मका प्रधान अंग था। इन तीनों देशोंमें प्रायः फाल्गुनमासमें ही यसन्तोत्सवके रूपमें लिंगपूजा वार्षिक समारोहसे हुआ करती थी। मिस्रमें ओसिरिः नामके देवता एथिओपियाके चन्द्रशैलसे निकली हुई नीलनदीके अधिष्ठाता माने जाते हैं। यहाँ कैलासके चन्द्रगिरिसे निकली गंगा और पश्चिमगामी सिन्धुनद जिसका दूसरा नाम नील भी है, दोनोंके ही स्वामी भगवान् शंकर हैं। 'फल्लुस' शब्दकी व्युत्पत्ति कर्नल टाडके मतसे अद्भुत है। वह कहते हैं कि यह शब्द संस्कृतके 'फलेश'से निकला है* क्योंकि भगवान् शंकर यजनका तुरन्त ही फल देते हैं और उन्हें वसन्तारम्भके ऋतुफल निवेदन भी किये जाते हैं। प्लुतार्कके लेखोंसे पता चलता है कि उस समय मिस्रमें प्रचलित लिंगपूजा सारे पश्चिममें प्रचलित थी।

प्राचीन चीन और जापानके साहित्यमें भी लिंगपूजाकी गवाही मिलती है और पुरानी मूर्तियोंसे यह भी अनुमान होता है कि अमेरिकाके महाद्वीपोंके प्राचीन निवासी भी लिंगपूजा किया करते थे।

ईसाइयोंके वेदके दो विभाग हैं। पुराने सुसमाचार नामक विभागमें राजाओंकी पुस्तकके पन्द्रहवें अध्यायमें यह कथा है

* Tod's Rajasthan, Vol I, p. 603.

कि रैहोबोयमके पुत्र आशाने अपनी माता मामाकाको लिंगके सामने बलि देनेसे रोका था। पीछे उन्होंने क्रोधमें आकर उस लिंगमूर्तिको तोड़-फोड़ डाला। यहूदियोंके देवता बेलफेगोकी पूजा लिंगमूर्तिकी होती थी। उनका एक गुप्त मन्त्र था जिसकी दीक्षा यहूदी लिया करते थे। मोयाबी और मरिनावासी यहूदियोंके उपास्य लिंगकी स्थापना फेगोशैलपर हुई थी। इनकी उपासनाविधि मिस्रवासियोंसे मिलती-जुलती थी। पहाड़के ऊपर जंगलमें और बड़े वृक्षके नीचे यहूदियोंने लिंग और बछड़ेकी मूर्ति स्थापित की, इसपर यहूदियोंके परम पिता उनसे रुष्ट हो गये थे। यह बालेश्वर-शिवलिंग पत्थरका बनाते और स्थापित करते थे और 'बाल' नामसे ही पूजते भी थे। बालेश्वरकी वेदीके सामने यह धूप जलाते थे और लिंगके सामनेवाले वृष (नन्दी) को हर अमावास्याको पूजा चढ़ाते थे। मिस्रके ओसिरिस्के लिंगके सामने भी बैल रहता था।

कर्नल टाडका कहना है कि मुहम्मद साहबके पहले 'लात' नामक अरबके देवताकी उपासना 'लिंग' के रूपमें हुआ करती थी और सोमनाथके शिवलिंगको भी पश्चिमी लोग 'लात' ही कहते थे। 'लात' की मूर्तियाँ दोनों जगह बहुत विशाल और रत्नोंसे सुसज्जित थीं। यह एक ही पत्थरका लिंग था जो पचास पुरुष या पोरसा ऊँचा था। जिस मन्दिरमें यह स्थापित था उसमें इस लिंगको सँभालनेके लिये ठोस सोनेके छप्पन खम्भे थे।† महमूद गज़नवी इसे ध्वंस करके सोना ढो ले गया। दोनों देशोंमें नाम एक ही था 'लात' या 'लाट', यह विचित्रता थी। आकार और लम्बाईके हिसाबसे 'लाट' कहना तो ठीक ही था। परन्तु कोपकार रिचर्डसन लिखता है कि 'लात' अल्लाहकी सबसे बड़ी पुत्रीका नाम था और उसका चिह्न वा मूर्ति लिंगकी तरह थी। जो हो, मुसलमानोंने 'लात' का ध्वंसावशेष भी न रखा, परन्तु मक्केश्वर तो अबतक लिंगरूपमें काबेमें

† Richardson's Dictionary (1829) में देखो

'लात' शब्द।

पधराये हुए हैं। इस मक्केश्वर लिंगकी चर्चा भविष्यपुराण-के ब्राह्मपर्वमें आयी है।

मक्केश्वरलिंग काले पत्थरका है। इसे मुसलमान 'असबद' कहते हैं। पहले इसराएली और यहूदी इसकी पूजा करते थे। मुहम्मद साहबके समयमें इसकी चार कुलोंके पण्डे पूजा-अर्चा किया करते थे। जब काबेमें इसके लिये एक स्थान बनाया गया और इसके प्राचीन स्थानसे वहाँ ले जाकर जब पधरानेका प्रश्न आया तब चारों पण्डोंमें यह झगड़ा उठा कि मूर्तिको उठाकर निश्चित स्थानतक पहुँचानेका गौरव किसे प्राप्त हो? हजरत मुहम्मद साहबका फैसला सर्वमान्य हुआ और एक चादरपर चारोंने उसे थामकर रखवा और चादरके चारों कोनोंको थामकर उस स्थानपर ले जाकर मूर्तिको पधराया। काबेमें इस मूर्तिकी पूजा नहीं होती, परन्तु जो मुसलमान हज करने जाता है, इस मूर्त्तिका चरणचुम्बन करके आता है।

यद्यपि अब पहलेकी तरह पूजा नहीं होती तथापि फ्रांसके अनेक प्रसिद्ध स्थानोंमें अबतक लिंग देखनेमें आते हैं। गिरजाघरोंमें, धर्म-मन्दिरोंमें, अजायबखानोंमें, फ्रांस ही नहीं और देशोंमें भी लिंगरूपके पत्थर स्मारकरूपसे रखे देखे जाते हैं। लिंगपूजाका पाश्चात्य देशोंमें इतना प्रचार था कि 'लिंगार्चा' अथवा Phallicism एक सम्प्रदाय ही समझा जाता था जिसका अस्तित्व सभी देशोंमें पाया जाता था। इसी तरहका 'लिंगायत' सम्प्रदाय हमारे देशमें भी है। दक्षिणमें इस सम्प्रदायके शैव मिलते हैं जो 'जङ्गम'* कहलति हैं और सोने या चाँदीके सम्पुटमें शिवलिंग रखकर बाहु या गलेमें पहनते हैं। ऐंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिकामें Phallicism शब्दमें इस सम्प्रदायका वर्णन अधिक विस्तारसे मिलेगा।

पणिःजातिके लोगोंकी चर्चा हमारे वैदिक साहित्यमें आयी है। यह पाश्चात्य पणिक्-समाज था, जिसका आना-जाना भारतसे लेकर भूमध्यसागरतक हुआ करता था। पच्छाहँमें यही लोग पणिश् कहलाते थे और इवराणी-जाति इन्हींके विकासका फल हुई जिनके यहाँ भारतीय बालेश्वर-लिंगकी उपासना विधिवत् होती थी। मन्दिरोंकी बनावट भी भारतीय ढंगकी थी, जैसा कि उनके ध्वंसावशेषोंसे

* काशीमें इन्हीं जङ्गमोंके बसनेसे एक पुराना महल्ला 'जङ्गमवाड़ी' के नामसे प्रसिद्ध है।

अवगत होता है। इस बालेश्वरलिंगको बैबिलमें 'शिउन' कहा है। इस घने साहस्यको देखकर अनेक प्राच्यविद्या-विशारद कहलानेवालोंने यहाँतक अटकलका घोड़ा दौड़ानेका साहस किया है कि उनकी दृष्टिमें भारतके लोगोंने लिंगोपासना पच्छाहीं देशोंके लिंगायत-सम्प्रदायवालोंमें सीखी है।

अमेरिका-महाद्वीपमें पेरुविया नामक स्थानमें वहाँके प्राचीन निवासी रहते हैं। उनका पुराना राजवंश सूर्यवंशी कहा जाता है और वह 'रामसीतोया' नामका एक महोत्सव भी करते हैं। वहाँकी मध्यवर्त्ती कुछ जातियोंमें ईश्वरको 'सिब्रु' कहते हैं। फ्रीजिया-देशमें जो आसुरिया-देश या छोटी एशियाका एक भूखण्ड है वहाँके निवासी 'सेवा' वा 'सेवाजियः' नामके देवताकी उपासना करते हैं। जिस समय मन्त्र लेते हैं कुछ ऐसा अनुष्ठान भी करते हैं जिसमें साँपोंका भी काम लगता है। मिस्रमें भी 'सेवा' देवताके साथ सर्पका सम्बन्ध है। यह व्यालमालधारी भगवान् शिवके सिवा और कोई नहीं।

इन प्रमाणोंपर विचार करनेसे इस बातमें तो तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि लिंगपूजा बहुत प्राचीन है और संसारमें साधारणतया किसी कालमें अवश्य फैली हुई थी और सर्वत्र लिंगोपासनाका प्रचार था।

अब अपने देशकी ओर आइये। हमारे देशमें तो हिमालयमें मानसरोवर और कैलाससे लेकर कन्याकुमारी और रामेश्वरजीतक और अटकसे लेकर कटकतक लिंगों और शिवालियोंकी कोई गणना नहीं है। असंख्य लिंग हैं, असंख्य शिवालय हैं। यह देश शिवमय ही है। यह तो वर्त्तमानकालकी बात हुई जब कि एक सुदीर्घकालसे हमारा देश आसुरी माया और संस्कारसे आवृत है। परन्तु शिव-लिंग और शिवालय भारतीय संस्कारोंमें रग-रगमें बिना चला आया है इस बातकी साक्षी भूमर्ममें गड़ी पड़ी है। छोटी-छोटी खुदाइयोंमें, नेवों और कुओंके भीतर तो शिवलिंग अकसर मिलते ही रहते हैं। काशीमें अभी हालमें कपड़ेके चौक बाजारके बीचमें दो-तीन पोरसा नीचे शिवलिंग और मन्दिरका मिलना कोई मूल्य नहीं रखता जब कि मोहं-जो-दारो और हरप्पाकी खुदाईमें ऐसी तहानोंमें शिवलिंग मिलते हैं जो समयको निकट-से-निकट खींच लानेवाले कट्टर आनुमानिकोंकी अटकलसे आजसे कम-से-कम छः

हजार और भारतीय महायुद्धसे कम-से-कम एक हजार वर्ष पहलेके ठहरते हैं। सर जान मार्शल अनेक लिंगोंके प्रादुर्भावसे चकराकर कहते हैं कि शैवधर्म कलकालिथिक (Chalcolithic age) युग या इससे भी पहलेका है और इस सम्बन्धके अपने ग्रन्थमें उस समयके इन शैवोंकी आर्यजातिके पूर्वगामी कोई अधिक सभ्य राष्ट्रके मनुष्य ठहराते हैं क्योंकि उनके मतसे भारतमें तबतक आर्यलोग आकर बसे ही न थे। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि पुरातत्त्व एवं भूगर्भके खोजी सत्यकी खोजकी उत्सुकतामें समयको सदा सङ्कुचित करके ही देखते रहे हैं। अतः मेरी समझमें तो मोहं-जोदारोंके रावसे नीचेके स्तर महाभारतकी लड़ाईके कई हजार वरस पहलेके होंगे। इस तरह शिवलिंगकी उपासनाकी साक्षी महाभारतकी ऐतिहासिक घटनासे कई हजार वर्ष पूर्वकी पत्थरकी लीक है। मार्शल महोदय यह कहकर मोहं-जोदारोंकी उस लिङ्गप्राप्तिको अनार्थ ठहराते हैं कि 'शिव' जीका वैदिक विश्व-देवतामें कोई स्थान नहीं है, परन्तु यह मार्शलकी भारी भूल है। रुद्राध्याय तो शिव भगवान् के नामोंसे भरा पड़ा है। रुद्रकी स्तुतियाँ चारों संहिताओंमें हैं। 'शिव' नामपर अनेक मन्त्र हैं। कपर्दिन, पशुपति, सहस्राक्ष, सद्योजातादि अनेक नाम अनेक स्थलोंमें आये हैं और जहाँ इन्द्रद्वारा शिवलिङ्गोपासकोंके प्रति घृणा प्रकट की गयी है वहाँ तो स्पष्टतया लिङ्गपूजा प्रमाणित होती है।* अतः लिङ्गपूजाकी प्राचीनतम परम्परा प्रमाणित है।

२-लिङ्गार्चन-सम्बन्धी साहित्य

ऋग्वेदमें लिङ्गोपासनाकी चर्चा जब मौजूद है तब रामायणकालमें उसकी चर्चाका होना कोई विशेष महत्त्वकी बात नहीं समझी जा सकती। तो भी कालक्रमसे वैदिक साहित्यके बाद इतिहास, पुराण तथा तन्त्रोंकी गणना की जाती है। वैदिक साहित्यमें, संहिताओंमें, ब्राह्मणोंमें, आरण्यकोंमें और उपनिषदोंमें रुद्रादि अनेक नामोंसे और उमा, विद्या आदि अनेक नामोंसे उमामहेश्वरके प्रसङ्ग आते हैं। पुराणोंमें उन्हीं वैदिक विषयोंकी ही तो व्याख्या है। इतिहासोंमें तो घटना-प्रसङ्गमें चर्चा आती है। वाल्मीकीय रामायण उत्तर-काण्डमें रावणके कथाप्रसङ्गमें आया है—

यत्र यत्र च याति स रावणो राक्षसेश्वरः ।

जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स नीयते ॥

* ऋग्वेद १०।१९२।९, १।११४।१-४, १०।

१३६। मन्पूर्व। २। ३४। १ तथा २। ११। २

बालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।

अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चासृत्तगन्धिभिः ॥

(३१।४२-४३)

शिवभक्त रावण जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ स्वर्णलिङ्ग भी जाता है और बालूकी वेदीपर पधराकर वह विधिवत् पूजा करता है और लिङ्गके सामने नृत्य करता है।

महाभारत अनुशासनपर्वमें चौदहवें अध्यायसे भगवान् महेश्वरका प्रसङ्ग चलता है, जिसके अन्तर्गत शिवसहस्रनाम कहा गया है और सौतिकपर्वमें तो अश्वत्थामाकी स्तुतिपर रीझकर भगवान् शङ्करने उनके शरीरमें ही प्रवेश किया है। भगवान् श्रीकृष्णका उपमन्युसे दीक्षा पाना और भगवान् शङ्करके प्रीत्यर्थ तपस्या करना न केवल अनुशासनपर्वमें ही वर्णित है बल्कि प्रायः सभी वैष्णव और शैवपुराणोंमें यह कथा आयी है। फिर लिङ्गपूजाकी चर्चा प्रायः सभी पुराणोंमें है। पद्मपुराण वैष्णवपुराण है तो भी लिङ्गपूजाका कारण उसमें बड़े विस्तारसे वर्णित है*। शिवपुराण, लिङ्गपुराण, स्कन्दपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण और ब्रह्माण्डपुराण—यह छः तो शैवपुराण ही ठहरे। इनमें तो भगवान् श्रीशङ्करकी कथाका विस्तार है ही, परन्तु हिन्दू-साहित्यमात्रमें जहाँ कहीं शिवोपासनाकी चर्चा है, वहाँ बहुधा लिङ्गकी चर्चा अवश्य ही आयी है।

इतिहासों और पुराणोंके सिवा तन्त्र-ग्रन्थ और स्मृतियाँ भी हैं। तन्त्रोंकी तो रचना ही उमा-महेश्वर-संवाद-पर है। तन्त्रोंके द्वारा भगवान् शङ्करने अनेक विद्याओं और रहस्योंका वर्णन किया है। स्मृतियोंमें भी कर्मकाण्ड-सम्बन्धी विषयोंमें शिवोपासनाका विषय जहाँ-तहाँ आया है। वीर-मित्रोदयमें शिवोपासना और लिङ्गार्चाका विस्तारसे वर्णन है। तन्त्रोंमें लिङ्गार्चनतन्त्र तो वस्तुतः अर्चाकी विधिका

* पद्मपुराणके अनुसार कल्पके आरम्भमें भगवान् शङ्करको दो बार यह शाप मिला है कि आपकी भूमिके बदले योनि और लिङ्गकी पूजा लोकमें प्रचलित होगी। एक बार जब त्रिमूर्तिमें कौन सबसे अधिक पूज्य और श्रेष्ठ है, इस बातकी परीक्षाके लिये भृगु ऋषि कैलास गये परन्तु द्वारपर नन्दागणने रोका कि पार्वती-महेश्वर विहारमें हैं। दूसरी बार जब ब्रह्माकी सभामें भगवान् शङ्कर दक्षके सम्मानमें न उठ खड़े हुए, न प्रणाम किया तब भी भृगुजी रुष्ट हुए और ब्राह्मणोंकी ओरसे भृगु और गणोंकी ओरसे नन्दी दोनोंमें शापाशापी हुई।

प्रामाणिक ग्रन्थ है। इन सभी धर्म-शास्त्रोंमें शिव-पूजाको नित्यकर्ममें रक्खा है और सन्ध्याकी तरह जल ग्रहणके पूर्वका इसे आवश्यक कर्म बतलाया है।

संहिताओंमें तो रुद्रकी स्तुतिमात्र है, परन्तु शतपथ ब्राह्मणमें (६।१।३।७-१९) और शांखायन ब्राह्मणमें (६।१।१-९) भगवान् रुद्रकी उत्पत्तिका वर्णन प्रायः उसी ढङ्गपर है जिस ढङ्गपर कि मार्कण्डेयपुराण और विष्णुपुराणमें दिया हुआ है। साथ ही सारे शैवसाहित्यमें भगवान् महेश्वरके साथ-ही-साथ भगवती उमाका भी वर्णन है। वाजसनेयिसंहितामें 'अम्बिका' (३।५७) और 'शिवा' (१६।१), तलवकार उपनिषद्में (३।११-१२ तथा ४।१-२) 'ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी उमा हैमवती' और तैत्तिरीय आरण्यकके दसवें प्रपाठकमें 'कन्याकुमारी' 'कात्यायनी' 'दुर्गा' इत्यादिकी चर्चा है।

इस तरह प्रायः सारा हिन्दू-साहित्य भवानीशङ्करके यशोकीर्तनसे भरा पड़ा है।

प्र०—'इसी तरह क्या सारा हिन्दू-साहित्य भगवान् विष्णुके उत्कर्षसे नहीं भरा पड़ा है? कट्टर शैव पुराणोंमें भी तो भगवान् विष्णुका प्रतिपादन है! यह क्या बात है?'

उ०—'प्रस्तुत प्रसङ्गमें इस प्रश्नपर विस्तारपूर्वक विचार नहीं हो सकता। हम इतना ही कह देना यहाँ पर्याप्त समझते हैं कि सृष्टिसे परे परमात्म-सत्ता एक ही है, जिसे परमब्रह्म, परमेश्वर या परमविष्णु अथवा चाहे जिस नामसे कहें, उसका निराकारत्व एक ही है, परन्तु उसकी सगुण सत्ता त्रिगुणारमिका होनेसे तीन रूपोंमें तीनों शक्तियोंके साथ व्यक्त होती है। भक्त जिस भावका उपासक होता है वही उसके लिये उत्कृष्ट दीखता है। दूसरे दो रूप उसके अधीन भासते हैं। वस्तुतः सत्ता एक ही है। एकपर दूसरेका उत्कर्ष भक्तोंके हितार्थ भक्तभावकी लीलामात्र है। यह बात प्रसङ्ग-प्रसङ्गपर अच्छी तरह स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दी गयी है कि त्रिमूर्ति एक ही सत्ता है। इनमें भेद मानने-वालोंकी अधोगति होती है। इसप्रकार सारे हिन्दू-साहित्यमें भिन्न-भिन्न नामोंसे एक ही परमात्म-सत्ताका प्रतिपादन है।' 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' इति श्रुतिः।

३-लिङ्गका प्रथम प्रादुर्भाव

लिङ्गके प्रथम प्रादुर्भावका प्रकरण शिवपुराण और लिङ्गपुराण दोनोंमें दिया हुआ है। लिङ्गपुराणमें अधिक

विस्तारसे है। दोनोंमें पितामह ब्रह्माने स्वयं देवताओंको अपनी बीती सुनायी है। लिङ्गपुराणमें पूर्वार्धके सत्रहवें अध्यायमें यह कथा दी हुई है। शिवपुराणमें द्वितीया रुद्र-संहिताके पहले सृष्टिखण्डमें यही कथा दी हुई है। परन्तु स्कन्दपुराणमें इसी कथाको अत्यधिक विस्तारसे नन्दिकेश्वरने मार्कण्डेय ऋषिको सुनाया है।

वर्तमान श्वेतवाराहकल्पके पहले इस ब्रह्माण्डकी सृष्टिके समय जब वैमानिकसर्ग अर्थात् देवताओंकी सृष्टि समाप्त हो गयी और चार हजार युगके अन्तमें वृष्टि न होनेसे स्थावर-जङ्गम सब सूख गये और पशु, पक्षी, मनुष्य, वृक्ष, राक्षस, गन्धर्वादि सब सूर्यके तापसे जल गये, सारी सृष्टि जलमग्न हो गयी और सब दिशाओंमें अन्धकार फैल गया तब भगवान् विराट्को ब्रह्माजीने नारायणरूपसे क्षीर-सागरमें शयन किये देखा, तो उनकी मायासे मोहित हो ब्रह्माने उन्हें जगाया और क्रुद्ध होकर कहा 'तू कौन है?' वह भी उठे और हँसकर बोले 'पुत्र, स्वागत!' इसपर ब्रह्माजी और चिढ़े कि मैं जो सृष्टिका पितामह हूँ मुझे पुत्र कहता है। विष्णु भगवान्ने समझाया कि सृष्टिके कर्त्ता-हर्त्ता हमी हैं और हमने तुम्हें सृष्टिके लिये ही पैदा किया है। निदान दोनोंमें घोर वाद-विवाद हुआ और उस प्रलयसमुद्रमें बहुत कालतक घोर युद्ध होता रहा। अन्तमें दोनोंका झगड़ा मिटानेके लिये उनके सामने प्रचण्ड अग्निका एक महास्तम्भ प्रकट हुआ जो ऊपर-नीचेसे अनादि और अनन्त था। विष्णुने उसे देखकर कहा कि हमारा तुम्हारा झगड़ा चुकानेको यह लिङ्ग प्रकट हुआ है। तुम इस ज्योतिर्लिङ्गके ऊपरका और हम नीचेका पता लगावें। विष्णुने वाराहका और ब्रह्माने हंसका रूप धरकर महा भयानक वेगसे दौड़ना और उड़ना आरम्भ किया। दोनोंने एक हजार वर्षतक परिश्रम किया और थक गये। फिर वही लौट आये। स्कन्दपुराणमें कथा है कि लौटती बार ब्रह्माजीने ऊपरसे केतकीका एक दल गिरते हुए देखा। उस पत्तेने भगवान् शङ्करकी शक्तिसे पितामहको बतलाया कि हम इस ज्योतिर्लिङ्गके मस्तकपरसे इसके मूल भूतलकी ओर दस कल्प पहलेके चले हुए हैं और अभी इस लिङ्गकी आधी लम्बाईतक भी नहीं पहुँचे। ब्रह्माके कहनेसे केतकीने झूठी गवाही दी कि ब्रह्मा लिङ्गके अग्रभागका पता लगा आये। भगवान् विष्णुने इस मिथ्याको जान लिया और उन्होंने सत्यके प्रतिपादनार्थ शिवस्तुति की। भगवान्

शङ्कर प्रकट हुए। उन्होंने लिङ्गके विषयमें मिथ्या साक्ष्यके अपराधमें केतकीको शाप दिया कि अबसे लिङ्गार्चनमें केतकीका फूल न बरता जायगा। भगवान् शङ्करने ब्रह्मा और विष्णुके विवादको सृष्टिका यह परम रहस्य बतलाकर निपटाया कि त्रिमूर्तिकी उत्पत्ति प्रत्येक ब्रह्माण्डके लिये महेश्वरके अंशसे ही होती है। उसीकी शक्तिसे पितामह स्रष्टा, विष्णु पाता और रुद्र संहर्त्ता हैं। तीनोंका अधिकार बराबर है, कभी कोई किसीका पिता होता है और कभी पुत्र। तीनोंमें अभेद है, एकता है, परन्तु तीनों महेश्वरकी ही मायाके वशवर्त्ती होकर सृष्टि, स्थिति, संहारका काम विधिवत् करते रहते हैं।

तभीसे भगवान् ब्रह्माका एक नाम हंस हुआ और भगवान् विष्णुके श्वेतवाराह-रूप धरनेसे वर्तमान कल्पका श्वेतवाराह नाम पड़ा। उसी समय भगवान् महेश्वरकी आज्ञासे कल्पकी नयी सृष्टिका ब्रह्माने आरम्भ किया।

लिङ्गपुराणके तीसरे ही अध्यायमें कहा है कि भगवान् महेश्वर अलिङ्ग हैं। प्रकृति प्रधान ही लिङ्ग है, महेश्वर निर्गुण हैं। प्रकृति सगुण है। प्रकृति या लिङ्गके ही विकास और विस्तारसे विश्वकी सृष्टि होती है। सारा ब्रह्माण्ड लिङ्गके ही अनुरूप बनता है। ब्रह्माण्डरूपी ज्योतिर्लिङ्ग अनन्त-कोटि हैं। सारी सृष्टि लिङ्गके ही अन्तर्गत है, लिङ्गमय है और अन्तमें लिङ्गमें ही सारी सृष्टिका लय भी होता है। इसी तरहका भाव इस स्कन्दपुराणके श्लोकसे व्यक्त होता है—

आकाशं लिङ्गमिथाहुः पृथिवी तस्य पीठिका।

आलयः सर्वदेवानां लयनालिङ्गमुच्यते ॥

आकाश लिङ्ग है, पृथिवी उसकी पीठिका है, सब देवताओंका आलय है। इसमें सबका लय होता है, इसीलिये इसे लिङ्ग कहते हैं।

आकाशको लिङ्ग कहा है, यह आधुनिक विज्ञानकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी उक्ति है। सम्प्रति शर्मण्य-देशके प्रसिद्ध विश्वविख्यात गणिताचार्य अलबर्त्त ऐंस्टेनने यह सिद्ध किया है कि अनन्त आकाश वक्र है, पर वलयके-से वक्रके अनुरूप है। देशमात्र वक्र है, जो कि लिङ्गका रूप है। देश, काल और वस्तु—इन्हीं तीन पदार्थोंसे यह सारा विश्व बना है। यह तीनों ही लिङ्गवत् वक्र हैं। उपादान जब वक्र हैं तो जितनी वस्तुएँ इन उपादानोंसे बनी हैं, विद्युत्-त्कणों, परमाणुओं और अणुओंसे लेकर ब्रह्माण्डतक

सम्पूर्ण सृष्टि वक्र है, लिङ्गरूप है। वस्तुतः जिसे सीधी रेखा कहते हैं वह कोई अस्तित्व नहीं रखती, वह केवल अंश-मात्र है वक्रका।

ऐंस्टेनका सापेक्षवाद आज पाश्चात्य विज्ञानपर शासन कर रहा है, उसके अनुसार धरतीकी आकर्षण-शक्ति कोई वस्तु नहीं है। देशकी वक्रताके कारण ही वस्तुएँ गिरती हैं या छुटकती हैं। वस्तुकी मात्रा जिस पिण्डमें जितनी ही अधिक है उतनी ही वक्रता उस पिण्डमें बढ़ी हुई है इसीलिये उसमें उतना ही अधिक खिंचाव देखनेमें आता है। वराह भगवान्का जोरोंसे दौड़ना लिखा है, गिरना नहीं। केतकीका पत्ता गिरता है परन्तु अभी उस पिण्डके आधे-तक भी नहीं पहुँचा है जिसका विस्तार अनन्त है, जिसकी आधीसे भी कम दूरीतक गिरनेमें केतकच्छदको दस कल्प बीत गये हैं। आकाशकी अनन्तता तो इस लिङ्ग या पिण्डकी अपेक्षा अत्यधिक होगी और वह भी 'लिङ्ग' है। यह महान् ज्योतिर्लिङ्ग तो प्रकृतिका, आग्नेय वस्तुमात्राका एक विशाल समूह है जिसका आकाशकी अपेक्षा आवृन्त होनेपर भी जो ब्रह्मा और विष्णुसमान ईश्वरोंको भी अनादि-अनन्त है। निदान अनन्तकोटि विश्व लिङ्गमय है और विश्वोंसे परे सगुण परात्पर ब्रह्मका आकार भी लिङ्ग है। अतः सर्वशर्ष-मय है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सिद्ध है।

लिङ्गका यह प्रथम प्रादुर्भाव है। तात्पर्य यह कि लिङ्गका प्रादुर्भाव तो अनेक बार अनेक रूपों और बड़ा-इयों-छुटाइयोंमें हुआ है। यह प्रथम प्रादुर्भाव अद्भुत है। पहले तो यह सृष्टिके आरम्भमें उसके कर्त्ता और पाताके सम्मुख हुआ है। उन लोगोंको इस घटनाद्वारा सृष्टिके विषयमें कई बातोंका इशारा मिला है। एक तो यह कि सर्ग और उसकी रक्षामें अभिमान व्यर्थ है क्योंकि ये दोनों काम उस परमात्म-सत्ताकी इच्छापर हो रहे हैं और उसी इच्छाके आधारपर कोटि ज्योतिर्लिङ्गरूप कोटि ब्रह्माण्डोंकी रचना हो रही है जिसमें कोटिशः त्रिमूर्ति उसी तरह काम कर रहे हैं। दूसरे यह कि माहेश्वरी मायासे मोहित होकर सृष्टिके कामको छोड़कर पारस्परिक व्यर्थके झगड़ोंमें न लगना चाहिये। तीसरे यह कि समस्त सृष्टिका लिङ्ग ही रूप है। इसी रूपमें सम्पूर्ण रचनाका संविधान करना होगा। चौथे यह कि परमात्म-सत्ता जो निर्गुण, निराकार, निर्विकार है विवृत्त होकर इसी वक्राकारमें विकसित होती है जिसे चिह्न-मात्र कह सकते हैं और इसी चिह्नके मूलरूपसे अनादि और

अनन्त विविधताका बिकास होता है। उस अमूर्त्त और अरूप परमात्माकी मूर्त्ति और रूपका आविर्भाव इसी लिङ्गरूपमें हो सकता है।

यह लिङ्ग त्रिदेववाले रुद्रका नहीं है। यह परात्पर परतम ब्रह्मका लिङ्ग है। देखिये स्वयं भगवान् विष्णु अपने श्रीमुखसे क्या कहते हैं—

स्रष्टा त्वं सर्वजगतां रक्षिता सर्वदेहिनाम् ।
हर्ता च सर्वभूतानां त्वां विनैवास्ति कोऽपरः ॥११॥
अणूनामप्यणीयांस्त्वं महांस्त्वं महतामपि ।
अन्तर्बहिस्त्वमेवैतजगदाक्रम्य वर्तसे ॥१२॥
निगमास्तव निःश्वासा विश्वं ते शिल्पवैभवम् ।
सत्त्वं त्वदीय एवासि ज्ञानमात्मा तव प्रभो ॥१३॥
अमरा दानवा दैत्याः सिद्धा विद्याधरा नराः ।
नगाः प्राणिनः पक्षिणः शैलाः शिखिनोऽपि त्वमेव हि ॥१४॥
स्वर्गस्त्वमपवर्गस्त्वं त्वमोङ्कारस्त्वमध्वरः ।
त्वं योगस्त्वं परा संवित्किं त्वं न भवसीश्वर ॥१५॥
त्वमादिर्मध्यमन्तश्च तस्थुषां जग्मुषामपि ।
कालस्वरूपतां प्राप्य कलयस्यसिलं जगत् ॥१६॥
परेशः परतः शास्ता सर्वानुग्राहकः शिवः ।
स एष मे कथंकारं साक्षाद्भवति धूर्जटिः ॥१७॥
(स्क० पु० १।३।२।१४)

शिवपुराणमें भी वायवीयसंहिताके पूर्व-खण्डके छठे अध्यायमें भगवान् वायु मुनियोंसे कहते हैं—

एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ।
संसृज्य विश्वभुवनं गोप्तान्ते सन्नुकोच यः ॥१४॥
विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः ।
तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वतःपादसंयुतः ॥१५॥
द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः ।
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा ॥१६॥
हिरण्यगर्भं देवानां प्रथमं जनयेदयम् ।
विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्विरिति हि श्रुतिः ॥१७॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तममृतं ध्रुवम् ।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्संस्थितं प्रभुम् ॥१८॥

अस्माज्जास्ति परं किञ्चिदपरं परमात्मनः ।
नाणीयोऽस्ति न च ज्यायस्तेन पूर्णमिदं जगत् ॥१९॥
सर्वाननशिरोप्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥२०॥
सर्वतःपाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
सर्वतःश्रुतिर्माँह्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२१॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासस्सर्वेन्द्रियविवर्जितः ।
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥२२॥
अचक्षुरपि यः पश्येदकणोऽपि शृणोति यः ।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम् ॥२३॥
अणोरणीयान् महतो महीयानयमव्ययः ।
गुहायां निहितश्चापि जन्तोरस्य महेश्वरः ॥२४॥
तमक्रतुं क्रतुप्रायं महिमातिशयान्वितम् ।
धातुः प्रसादादीशानं वीतशोकः प्रपश्यति ॥२५॥
वेदाहमेनमजरं पुराणं सर्वगं विभुम् ।
निरोधं जन्मनो यस्य वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥२६॥

X X X X

मायी विश्वं सृजत्यस्मिन् निविष्टो मायया परः ।
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ॥२७॥
तस्यास्त्ववयवैरेव व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्ममीशानं कललस्यापि मध्यतः ॥२८॥
स्रष्टारमपि विश्वस्य वेष्टितारं च तस्य तु ।
शिवमेवेश्वरं ज्ञात्वा शान्तिमत्यस्तमृच्छति ॥२९॥
यहाँ इस अंशमें अधिकांश वेदमन्त्रोंको श्लोकबद्ध कर दिया है। इसी अध्यायमें—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च देवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्
विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम् ॥३०॥

—इसे महाभारतके विष्णुसहस्रनामके—

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥
पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
देवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥

—और गीताके पौंचवें अध्यायके 'सर्वलोकमहेश्वरम्' से मिलान कर लीजिये। और—

न तत्समोऽधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते ।

—से गीताके—

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो

लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥

—सादृश्यको देखिये । दोनोंमें महेश्वर क्या भिन्न हैं ?

यहाँ एक-एक अक्षर परतम ब्रह्मके लिये है । हरि-हरमें ही अभेद नहीं है, हरि-हर और परतम ब्रह्ममें भी अभेद है । शिवसहस्रनाम और विष्णुसहस्रनाममें तो इतनी एकता है कि उसकी तुलना स्वतन्त्र ही लेखका विषय हो सकती है । परन्तु सहस्रनामोंसे भी हरि-हरका परतम ब्रह्मसे अभेद ही प्रतिपादित होता है । बात यह है कि यह सम्पूर्ण विश्व तो लीलाकी रङ्गभूमि है जिसमें त्रिदेवका वह विशिष्ट अभिनय है जो परतम ब्रह्म अपनी त्रिगुणात्मिका मायाके परदेमें विविध रूपोंमें करता रहता है । ब्रह्मा और विष्णुकी लड़ाई भी इसी कोटिकी लीला है । भगवान् शङ्करका व्रीचमें पड़कर मेल करा देना भी अभिनय है, लीला है । पुराणोंमें कहीं हरका उत्कर्ष है कहीं हरिका और कहीं महाशक्तियोंका ही उत्कर्ष है और कहीं शक्तिमानोंका ही उत्कर्ष प्रतिपादित है । वस्तुतः शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य और विष्णु एक ही परमात्माके पाँच सगुण रूपोंके नाम हैं । एक ही अन्तर है और वह यही है कि चारोंके रूप, चारोंकी मूर्तिका शृङ्गार उनके-उनके ध्यानके अनुरूप है परन्तु भगवान् शिवका ध्यान तो और है और मूर्तिका रूप लिङ्ग ही है, फिर चाहे वह भगवान् शङ्करके किसी अवतार या लीलाका क्यों न हो । यह क्या बात है, इसमें क्या रहस्य है ?

४—मैथुनी सृष्टिका आरम्भ

जगत्की सृष्टिमें मैथुनी सृष्टिका विकास पीछेका है । पुराणोंके अनुसार ब्रह्माजीने पहले मानसिक सृष्टिसे ही काम लिया । उन्होंने अपने मानसपुत्र इसीलिये उत्पन्न किये कि वे मानसी सृष्टिको ही बढ़ावें । परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली । उनके मानसिक पुत्रोंमें प्रजाकी वृद्धिकी ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती थी । भला, प्रजाकी वृद्धि वह क्यों करें ? इससे उन्हें क्या लाभ ? हानि अवश्य थी कि कर्मका बन्धन बढ़ता था, शंखट बढ़ता था, परमात्मासे वा अध्यात्मसे दूरीकरण होता था । सनकादिको पसन्द न आया । नारदको एक आँख न भाया । उन्होंने देखा कि

संसार जितना ही बढ़ता है उतना ही भगवान्से दूर होता है, परन्तु ब्रह्माका उद्देश्य तो संसारको बढ़ाना ही था । वह कैसे रुक सकते थे ? उन्होंने सृष्टि-रचनाकी परीक्षा-पर-परीक्षा की और पग-पगपर असफल हुए और प्रत्येक असफलतापर उन्होंने तपस्या की । तपस्या एकमात्र उपाय थी । जब जिस किसीको कोई मनोरथ होता उसकी पूर्तिके लिये वह तपस्या करता । तपस्याकी निर्दिष्ट विधियाँ थीं और अधिकार-निर्धारण भी था । अविहित तपस्या फलवती नहीं होती थी । यह सब सही है, परन्तु विहित तपस्या ही उस समय उपाय था । इस प्रसङ्गमें शिवपुराणकी वायवीय संहिताके पूर्व-खण्डमें पन्द्रहवें अध्यायमें वायु भगवान् कहते हैं—

यदा पुनः प्रजाः सृष्ट्वा न व्यवर्धन्त वेधसः ।

तदा मैथुनजां सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥ १ ॥

न निर्गतं पुरा यस्मान्कारीणां कुलमीश्वरात् ।

तेन मैथुनजां सृष्टिं न शशाक पितामहः ॥ २ ॥

ततस्स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ।

प्रजानामेव वृद्धयर्थं प्रष्टव्यः परमेश्वरः ॥ ३ ॥

प्रसादेन विना तस्य न वर्धेरक्षिमाः प्रजाः ।

एवं सञ्चिन्त्य विश्वात्मा तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥ ४ ॥

तदाद्या परमा शक्तिरनन्ता लोकभाविनी ।

आद्या सूक्ष्मतरा शुद्धा भावगम्या मनोहरा ॥ ५ ॥

× × ×

तया परमया शक्त्या भगवन्तं त्रियम्बकम् ।

सञ्चिन्त्य हृदये ब्रह्मा तताप परमं तपः ॥ ७ ॥

तीव्रेण तपसा तस्य युक्तस्य परमेष्ठिनः ।

अचिरेणैव कालेन पिता सम्प्रतुतोष ह ॥ ८ ॥

ततः केनचिदंशेन मूर्त्तिमाविश्य कामपि ।

अर्धनारीश्वरो भूत्वा ययौ देवस्त्वयं हरः ॥ ९ ॥

तं दृष्ट्वा परमं देवं तमसः परमव्ययम् ।

अद्वितीयमनिर्देश्यमदृश्यमकृतात्मभिः ॥ १० ॥

सर्वलोकविधातारं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् ।

सर्वलोकविधायिन्या शक्त्या परमया युतम् ॥ ११ ॥

अप्रतर्क्यमनाभासममेयमजरं भुवम् ।

अचलं निर्गुणं शान्तमनन्तमहिमास्पदम् ॥ १२ ॥

सर्वगं सर्वदं सर्वं सदसद्व्यक्तिवर्जितम् ।
सर्वोपमाननिर्मुक्तं शरण्यं शाश्वतं शिवम् ॥१३॥

प्रणम्य दण्डवद् ब्रह्मा समुत्थाय कृताञ्जलिः ।

× × ×
तुष्टाव देवं देवीं च सूक्तैः सूक्ष्मार्थगोचरैः ॥१५॥

× × ×
सकलभुवनभूतभावनाभ्यां
जननविनाशविहीनविग्रहाभ्याम् ।
नरवरयुवतीवपुर्धराभ्यां
सततमहं प्रणतोऽस्मि शङ्कराभ्याम् ॥३५॥

जब फिर भी प्रजा न बढ़ी तब ब्रह्माको मैथुनी सृष्टिका ध्यान आया । पहले ईश्वरने स्त्रीकुल नहीं पैदा किया था । यह बात साधारण जीवोंकी समझमें आ ही नहीं सकती कि आरम्भमें सृष्टिके लिये कैसी असाधारण बुद्धिकी आवश्यकता थी। ब्रह्मामें भी वह असाधारण बुद्धि न थी । पूर्वकल्पकी स्मृतिसे उन्होंने पुरुष और स्त्रीकी रचना भी की तो भी उन्हें ठीक विधि न सूझी । इसलिये उन्होंने भगवान् शंकरके साथ-ही-साथ उनकी परमा शक्तिका भी ध्यान किया और महा धोर तप किया । भगवान् सन्तुष्ट हुए और अर्धनारीश्वररूपमें ब्रह्माके सामने प्रकट हुए । ब्रह्माजीने विनीत हो स्तुति की और नर-नारीरूप भगवान्को साष्टांग प्रणाम किया । भगवान्-ने उन्हें वर दिया और साथ ही अपने शरीरसे देवी-देवकी रचना करने लगे ।

ससर्ज वपुषो भागादेवीं देववरो हरः ॥ ६ ॥

यामाहुर्ब्रह्म विद्वांसो देवीं दिव्यगुणान्विताम् ।

परस्य परमां शक्तिं भवस्य परमात्मनः ॥ ७ ॥

यस्यां न खलु विद्यन्ते जन्ममृत्युजरादयः ।

या भवानी भवस्याङ्गात्समाभिरभवत्किल ॥ ८ ॥

यस्या वाचो निवर्तन्ते मनसा चेन्द्रियैः सह ।

सा भर्तुर्वपुषो भागाजातेव समदृश्यत ॥ ९ ॥

× × × ×

तां दृष्ट्वा परमेशानीं सर्वलोकमहेश्वरीम् ।

× × × ×

प्रणिपत्य महादेवीं प्रार्थयामास वै विराट् ॥१४॥

× × × ×

न निर्गतं पुरा स्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् ।
तेन नारीकुलं स्रष्टुं शक्तिर्मम न विद्यते ॥१८॥

× × × ×
त्वामेव वरदां मायां प्रार्थयामि सुरेश्वरीम् ।
चराचरविवृद्धयर्थमंशेनैकेन सर्वगे ॥२०॥

दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवार्तिनि ।
एवं सा याचिता देवी ब्रह्मणा ब्रह्मयोनिना ॥२१॥

शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम् ।
तामाह प्रहसन्प्रेक्ष्य देवदेववरो हरः ॥२२॥

ब्रह्माणं तपसाराध्य कुरु तस्य यथेष्टितम् ।
× × × ×

ब्रह्मणो वचनादेवी दक्षस्य दुहिताभवत् ।
दत्तवैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणीम् ॥२४॥

विवेश देहं देवस्य देवश्चान्तरधीयत ।
तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् स्त्रियां भोगः प्रतिष्ठितः ॥२५॥

प्रजासृष्टिश्च विप्रेन्द्रा मैथुनेन प्रवर्तते ।
ब्रह्मापि प्राप सानन्दं सन्तोषं मुनिपुङ्गवाः ॥२६॥

उस देवीको विद्वान् 'ब्रह्म' कहते हैं । (यहाँ 'ब्रह्म' नामसे पुरुष और प्रकृतिकी एकता स्पष्ट है ।) वह परमात्माकी शक्ति है । परमात्माके सभी विशेषण उसके लिये उपयुक्त हैं । वह अर्धाङ्गिनी देवी जब प्रकट हुई तब ब्रह्माजीने स्तुति की और कहा कि इस सृष्टिको बारम्बार बनाता हूँ पर इनकी बढ़न्ती नहीं होती, इसीलिये अब मैं मैथुनी सृष्टि करना चाहता हूँ । आपने पहले नारीकुल नहीं सिरजा इसलिये मुझमें नारीकुल सिरजनेकी शक्ति नहीं है । आप सारी शक्तियोंकी खानि हैं इसलिये मेरी प्रार्थना है कि अपने एक अंशसे चराचरकी वृद्धि करो और मेरे अंशसे उत्पन्न पुत्र दक्षकी कन्या होओ । इसपर उस 'ब्रह्म' ने अपनी भौंहके बीचसे एक शक्ति प्रकट की और आप ईश्वरमें लीन हो गयी । जो शक्ति ब्रह्माके लिये इस तरह प्रकटी, उसे भगवान् शङ्करने आज्ञा दी कि तू तपस्याद्वारा ब्रह्माका आराधन करके उनके मनोरथोंको पूरा कर । यह कह भगवान् अन्तर्धान हो गये । ब्रह्माको मैथुनी सृष्टिकी शक्ति मिली और तभीसे स्त्री-सम्भोगका लोकमें आरम्भ हुआ । तभीसे मैथुनधर्मद्वारा प्रजाकी सृष्टि प्रवृत्त हुई । भगवती दक्षकी कन्या सती हुई और मैथुनधर्मकी प्रवृत्तिके लिये

पहले-पहल ब्रह्माजी अपने शरीरको ही विभक्त करके दहने आधेसे स्वायम्भुव मनु और बायें आधेसे शतरूपारूपसे स्वयं प्रकट हुए और मानव-सृष्टिका प्रारम्भ किया। मनु और शतरूपाने भी तपस्या की और तब सृष्टि-कर्ममें प्रवृत्त हुए।

सृष्टिकी कथा बहुत बड़ी है। सभी पुराण सर्ग और प्रतिसर्गकी कथा कहते हैं। यहाँ वह सब प्रयोजनीय नहीं है। हमने ऊपर अत्यावश्यक श्लोक उद्धृत किये हैं। ऊपर उसके भाव भी संक्षेपसे दिये हैं। सभी प्रसङ्गोंपर अवतरण देनेसे लेखका कलेवर बहुत बढ़ जायगा। अर्धनारीश्वररूपका लिङ्ग और पीठिकासे धनिष्ठ सम्बन्ध है जैसा आगे चलकर स्पष्ट हो जायगा।

सृष्टिके इस प्रसङ्गका महाभारत अनुशासनपर्वके चौदहवें अध्यायमें इन्द्र और उपमन्युके संवादमें उपमन्युके इन वचनोंसे मिलान करनेपर मैथुनी सृष्टिसे अर्धनारीश्वरका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

सुरासुरगुरोर्वक्त्रे कस्य रेतः पुरा हुतम् ।
कस्य वान्यस्य रेतस्तद्येन हैमो गिरिः कृतः ॥२१६॥
दिग्वासाः कीर्त्यते कोऽन्यो लोके कश्चोर्ध्वरेतसः ।
कस्य चार्धे स्थिता कान्ता अनङ्गः केन निर्जितः ॥२१७॥

× × × ×
प्रत्यक्षमिह देवेन्द्र पश्य लिङ्गभगाङ्कितम् ।
देवदेवेन रुद्रेण सृष्टिसंहारहेतुना ॥२२७॥

× × × ×
प्रत्यक्षं ननु ते सुरेश विदितं संयोगलिङ्गोद्भवं
त्रैलोक्यं सविकारनिर्गुणगणं ब्रह्मादिरेतोद्भवम् ।

यद्ब्रह्मन्द्रहुताशविष्णुसहिता देवाश्च दैत्यासुरा
नान्यत्कामसहस्रकल्पितधियः शंसन्ति यस्मात्परम् ॥२२९॥

× × × ×
हेतुभिर्वा किमन्यैस्तैरीशः कारणकारणम् ।
न शुश्रुम यदन्यस्य लिङ्गमभ्यर्चितं सुरैः ॥२३०॥

× × × ×
यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः ।
अर्चयेथाः सदा लिङ्गं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः ॥२३२॥

न पद्माङ्का न चक्राङ्का न वज्राङ्का यतः प्रजाः ।
लिङ्गाङ्का च भगाङ्का च तस्मान्माहेश्वरी प्रजा ॥२३३॥

देव्याः कारणरूपभावजनिताः सर्वा भगाङ्काः स्त्रियो
लिङ्गेनापि हरस्य सर्वपुरुषाः प्रत्यक्षचिह्नीकृताः ।
योऽन्यत्कारणमीश्वरात् प्रवदते देव्या च यस्माङ्कितं
त्रैलोक्ये सचराचरे स तु पुमान्मूढो भ्रमेत् दुर्मतिः ॥२३४॥
पुंलिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं विद्धि चाप्युमान् ।
द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत् ॥२३५॥

‘देवों और असुरोंके गुरु अग्निके मुखमें आदिकालमें किसके वीर्यकी आहुति दी गयी ? वह क्या किसी औरका वीर्य है जिससे स्वर्ण-सुमेरु बना है ? लोकमें दिगम्बर और ऊर्ध्वरेता और कौन है, किसने अपनी स्त्रीको अर्धाङ्गिनी बनाया है और किसने कामको जीता है ? देवोंके देव भगवान् रुद्र सृष्टि और संहारके कारण हैं, इसीलिये हे इन्द्र ! प्रत्यक्ष देख लो कि जगत् लिंग और योनिसे चिह्नित है। यह भी तुम्हें मान्य है कि सविकार निर्गुण गुणयुक्त तीनों लोक, जो कि ब्रह्मादिके रेतसे उपजा कहा जाता है, वह संयोगद्वारा लिंगसे ही उपजा है, क्योंकि ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि और विष्णुके सहित सब देवता, दैत्य और राक्षस सहस्रों कामनाओंसे छन्दितबुद्धि होकर यह स्वीकार करते हैं कि भगवान् शंकरसे परे कुछ नहीं है। बहुत-सी युक्तियोंसे क्या प्रयोजन है ? ईश ही सब कारणोंका कारण है। देवताओंके द्वारा और किसीके लिंगका पूजा जाना हमने नहीं सुना। ब्रह्मा, विष्णु और सभी देवताओंसमेत तुम भी सदा जिसके लिंगकी पूजा किया करते हो उससे बढ़कर इष्ट दूसरा कौन है ? पद्म, चक्र, वज्र आदि कोई और चिह्न तो प्रजामें पाये नहीं जाते। प्रजा-मात्रमें दो ही चिह्न पाये जाते हैं; या तो लिंग चिह्न है या योनि चिह्न है। इसलिये सारी प्रजा माहेश्वरी प्रजा है। देवीके कारणरूप भावजनित समस्त स्त्रियाँ योनि-चिह्नसे युक्त हैं और सब पुरुष महादेवजीके लिंगके चिह्नसे चिह्नित हैं। जो पुरुष शिव-शिवा छोड़ और किसीको जगत्का कारण बताता है और उनकी उपासनाके चिह्नसे चिह्नित नहीं है वह दुर्मति चेतन और जडमय इस त्रिलोकीसे पतित होता है। चराचरमें पुरुषमात्र हरको और स्त्रीमात्र गौरीको जानो, यह चराचर जगत् इन दोनों शरीरोंसे व्याप रहा है।’

शैवपुराण तो साम्प्रदायिक ग्रन्थ समझे जाते हैं, परन्तु महाभारत इतिहास है, उसे किसी साम्प्रदायिक पक्षपातसे कोई प्रयोजन नहीं है। उपमन्युका उपाख्यान जिससे कि ऊपरके अंश अवतरित हैं महाभारतकी विशेषता नहीं है।

प्रायः सभी पुराणोंमें श्रीकृष्ण भगवान् के चरितमें उपमन्युकी कथा है जिसमें भगवान् श्रीकृष्णने उपमन्युसे दीक्षा ली है, भगवान् शङ्करके प्रीत्यर्थ बड़ी उग्र तपस्या की है और मनोवाञ्छित वर पाया है। इसी अध्यायके ये उद्धृत श्लोक पता देते हैं कि अर्धनारीश्वरने ब्रह्माजीको मैथुनी सृष्टिमें किस तरहकी सहायता दी? ब्रह्माजीने सारी सृष्टि कर डाली परन्तु सृष्टिकी वृद्धिका कोई उपाय न किया। जिनको सिरजा वे बने रहे, परन्तु फिर? उनकी रक्षा भी होती रही। परन्तु अपने आप वह सृष्टि बढ़े ऐसा कोई उपाय न था। ब्रह्माजी अपनी असफलतापर हँसलाये तो पिशाच, प्रेतादि उत्पन्न हो गये। क्रोध हुआ तो रुद्रोंकी उत्पत्ति हुई। इस तरह विविध भावोंसे विविध प्रकारकी सृष्टि होती गयी। नियमन कैसे हो? जब उन्होंने देखा कि हमारे मानसी पुत्र वैरागी हुए जाते हैं तब काम, लोभ, मोह आदि विकार उपजाये। जिनकी सृष्टि की उनमें मिलनेकी कामना हुई, कलाकी प्रवृत्ति हुई, सुन्दर रचनाओंकी ओर मन लगा, प्रकृतिमें, संसारमें सौन्दर्य देखनेकी इच्छा हुई, सुन्दर मणि हों, सुन्दर पौधे हों, सुन्दर पशु-पक्षी हों, सुन्दर मनुष्य, ऋषि, देवता हों। सौन्दर्यपर मोह हुआ, उन सुन्दर वस्तुओंके संग्रहपर लोभ हुआ, इसी प्रकार मद-मात्सर्य आदि भी उत्पन्न हुए। परन्तु इनसे भी वृद्धि न हुई। तब लाचार हो अर्धनारीश्वर भगवान् शङ्करकी शरण गये। उन्होंने शक्तिमान् और शक्तिमें मेलका मार्ग दिखाया और जननेन्द्रियों उत्पन्न कीं। देश, काल, वस्तुका मूल रूप वक्राकार है इसीलिये इन इन्द्रियोंके चिह्न भी वक्राकार हुए। अब ब्रह्माजीने जिस काम देवताकी रचना की थी उससे काम लिया गया। काम अब मैथुनी सृष्टिके लिये प्रवर्तक हुआ। शक्तिने नारीको सुन्दर बनाया और कामने दोनोंको मिलनेके लिये प्रवृत्त किया। गर्भाधानका कारण काम बना। यों किसी प्राणीको दूसरे प्राणीसे मिलकर सृष्टिकी वृद्धि करनेके लिये मनमें इच्छा ही क्यों होती? आज भी तो बहुतेरे सन्तान होना बुरा समझते हैं और सन्ताननिरोधपूर्वक विषय-सुख लूटना चाहते हैं, परन्तु पुराण स्पष्ट कहते हैं कि नर-नारीकी उत्पत्ति वृद्धिके लिये हुई, विषयोपभोगके लिये नहीं हुई। परन्तु भोगमें यदि किसी तरहका सुख न होता तो भोगमें प्राणियोंकी प्रवृत्ति क्यों होती और ब्रह्माजीका वृद्धियाला उद्देश्य कैसे सिद्ध होता? अतः काम-देवताने इसमें ब्रह्माकी सहायता की और कामेच्छासे विषयकी ओर प्राणियोंकी प्रवृत्ति हुई। नर-

नारी मिलते हैं सुखके लिये परन्तु फल होता है प्रजावृद्धि। जिन प्राणियोंमें मैथुन नहीं है, उनमें विषय-सुख भी नहीं रक्खा गया है। लिंग और योनिका मेल और वीर्यका आधान प्रकृति भगवती बाहरी साधनोंसे कराती हैं। परन्तु ऐसी दशामें बाहरी साधनोंका भी विषयोपभोग ही प्रवर्तक है। पौधोंमें एक ही प्रकारके फूलमें बहुधा लिंगच्छत्र और योनिच्छत्र दोनों ही होते हैं, परन्तु प्रकृतिने पुष्पोंमें मैथुनका साधन उसके भीतर नहीं रक्खा है और न वह स्वयं सेचन या स्वाधानको प्रोत्साहित करती है। एक फूलका पराग दूसरे फूलके योनिच्छत्रमें पहुँचानेके बाहरी साधन हैं पक्षी, तितली, कीड़े-मकोड़े, मक्खी-भौरा, हवा-पानी इत्यादि। इन पहुँचाने वा मिलानेवालोंको या तो विषयसुख मिलता है और नहीं तो संयोगसे यह मेल करा देते हैं। वृद्धिके प्रयोजनके लिये साधक काम-वासनाको बनाकर ब्रह्माने छुट्टी पायी। परन्तु जो ज्ञानवान् योगी यह जानता है कि मैथुनका प्रयोजन सुख नहीं है वृद्धि है और साथ ही जो कामपर धियय भी पा सके वह केवल वृद्धिके लिये मैथुन करेगा, परन्तु बड़े-बड़े तपस्वी ऐसा नहीं कर सके। भगवान् शङ्करने अपनी लीलासे इस सम्बन्धमें स्पष्टीकरण कर दिया। तारकासुरने देवताओंको तंग किया। शङ्करपुत्रद्वारा ही उसका बध होना था। वह समाधिस्थ थे। उमासे विवाह करें तब तो पुत्र हो। परन्तु देवताओंकी वेदना उनतक पहुँचे कैसे? कामदेवसे विनती की कि उनके मनमें क्षोभ उपजावे। कामने यह ढिठाई की और जला दिया गया। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि वृद्धिके लिये वस्तुतः कामकी आवश्यकता नहीं है, यदि कर्तव्यपरायण बुद्धि ही मैथुनकी प्रवर्तिका हो। ब्रह्माने जिन पुत्रोंको कर्तव्यपरायणता सिखाकर वृद्धि कराना चाहा वह तो बागी निकल गये, उन्होंने अपना कर्तव्य सृष्टिसे विराम ही समझा। गीताके उपदेशोंका उन्होंने आजकलका-सा ही उलटा अर्थ लगाया। भगवान् शङ्करने कामको जलाकर उमासे विवाह किया और पुत्र उत्पन्न करके देवताओंका काम किया। यह सब कर्तव्य-बुद्धिसे किया, कामेच्छाकी प्रवृत्तिसे नहीं। उसके जलाये जानेमें संसारको यही शिक्षा देनी थी। यही मैथुनी सृष्टिका रहस्य है।

नर-नारीको हर-गौरीके चिह्न विषयोपभोगके लिये नहीं मिले हैं। इनका प्रयोजन ब्रह्माका इष्ट प्रजावृद्धिमात्र है। इस पवित्र प्रयोजनको स्मरण दिलानेके लिये ही हम

पीठिकापर भगवानके ज्योतिर्लिङ्गकी स्थापना करके उपासना करते हैं और इसीलिये भगवान् कामारि हैं। इसीलिये विवाह-संस्कार अत्यन्त पवित्र और प्रयोजनीय है और विषयभोगके लिये नहीं; बल्कि 'वृद्धि' के लिये होता है। और इसीलिये माङ्गलिक संस्कारोंमें नान्दीमुख श्राद्ध होता है और 'वृद्धि' मनायी जाती है। हिन्दुओंके किसी संस्कारमें विषयभोग किसी ध्येयमें सम्मिलित नहीं है। यदि सनकादिक नारदादिने ब्रह्माको शिक्षाया न होता तो वह शायद कामको उत्पन्न न करते और जितने पुत्र उत्पन्न करते वह सब कर्तव्य-वृद्धिसे प्रजा-वृद्धि करते। परन्तु विकासका अत्यन्त सुन्दर क्रम पैदा ही न होता और संसार जैसा है उससे नितान्त भिन्न होता, जिस अवस्थाकी हम कोई कल्पना नहीं कर सकते।

५-वृद्धिकी समस्यापर वैज्ञानिक विचार

जीवित प्राणीका सबसे आवश्यक लक्षण यह है कि अपनी परिस्थितिमें जितने रासायनिक उपादान पावे सबको अपने जटिल सादृश्यमें परिणत करनेको पचा डाले। पचाना और विसर्जन करना यह दोनों क्रियाएँ बराबर चलती रहती हैं, परन्तु विसर्जन या हास जरा देरमें होता है, पाचन या वृद्धि कुछ जल्दी। इसीलिये वृद्धि प्रबल होती है। परन्तु आयतन जिस तरह बढ़ता है उसी तरह ऊपरी तल जो आहार पहुँचानेका साधन है नहीं बढ़ता जाता। एक हृदय तक बढ़कर रुक जाता है। इसीलिये व्यक्तिकी वृद्धि अपरिमित नहीं हो सकती। चींटीसे हाथीतक पहुँचकर व्यक्तित्वका बढ़ना रुक जाता है। बाहरी तल और आयतनमें, शरीरके अन्दर, एक ऐसा अनिवार्य अनुपात है जिसके भङ्ग होनेसे वृद्धि रुक जाती है और व्यक्तिगत हास और वृद्धिका अनुपात समान हो जाता है। बड़े शरीरोंमें सब तरहके जीवोंको ऐसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म देहधारियोंके सामने, जिन्हें सेल कहते हैं, यह कठिनाई कभी नहीं आयी। जहाँ उनकी इस तरहकी बढ़ा रुकी, वहाँ वह लम्बोत्तरे हुए और बीचसे कटकर दो हो गये। इस तरह आयतन बढ़नेके बदले सेलोंकी संख्या बढ़ जाती है, व्यक्तियाँ बढ़ जाती हैं। पहले एक व्यक्ति थी, बढ़कर दो हुई, दोसे चार, चारसे आठ इस तरह अनन्त कोटि संख्या हो जाती है। इस वृद्धिमें हासका नाम नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण है और निरन्तर बढ़ने-बढ़ानेवाली। अनेक सेलोंवाले अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी इसी तरह

बढ़ते रहते हैं और परमात्माके 'एकोऽहं बहु स्याम्' वाले महावाक्यको चरितार्थ करते रहते हैं। इसी तरह 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' इत्यादिका दृश्य भी देखनेमें आता है। परन्तु शरीरमें ज्यों-ज्यों स्थूलता आती जाती है इस तरहकी 'भेदज' उत्पत्ति कठिन होते-होते समाप्त हो जाती है। षट्पद या अष्टभुज प्राणी इस तरह कट-कटकर बढ़ नहीं सकते। 'भेदज' सृष्टि इस तरह रुक गयी।

अब 'अङ्कुरण' से प्रकृति काम लेती है। इसमें सारा शरीर ज्यों-का-त्यों रहता है परन्तु उसका एक छोटा-सा अंश कटा-सा रहता है और धीरे-धीरे पूरे शरीरका जब छोटा रूप तैयार हो जाता है तब अपने पैदा करनेवाले बड़े शरीरसे बिल्कुल अलग हो जाता है और उसका व्यक्तित्व अलगसे बढ़ने लगता है। मूँगोंमें, कुछ विशेष प्रकारके कीड़ोंमें और कुछ रीढ़वाले अत्यन्त छोटे जन्तुओंमें भी अङ्कुरण होता है। परन्तु अस्थिपञ्जर या कङ्कालकी जटिलता बढ़ते-बढ़ते 'अङ्कुरज' प्राणियोंकी बढ़ भी रुक जाती है। यह वृद्धिविधि छोटे पौधोंतक पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो जाती है।

बड़े जन्तुओं और पौधोंकी सन्तान बढ़ानेके लिये भेदन और अङ्कुरण जब काम नहीं देते तब वृद्धि रुक जाती है। सृष्टि पौधोंतक आकर जब रुकती है तब बड़े पौधों और जन्तुओंमें मैथुनका आरम्भ देखा जाता है। मिथुनका अर्थ है 'जोड़ा' अर्थात् दो अकेली सेलें जुड़कर एक सेल बन जाती है। इनमेंसे एक सेल 'लिङ्ग' वा शुक्र होती है और दूसरी 'योनि' अथवा 'डिम्ब'। इस क्रियाके लिये दो व्यक्तियोंके शरीरसे एक-एक जनक और जननी सेलें निकलकर मिल जाती हैं और एक सेल बनाती हैं, यह नयी व्यक्तिका मूलरूप है। अब नयी सेल 'भेदन'की रीतिसे संख्या-वृद्धि करते-करते असंख्य सजातीय सेलें बनाकर नये स्थूल शरीरका ढाँचा तैयार करती है।

भेदन और अङ्कुरणवाली विधिमें नर-नारीका कोई भेद न था और न इस भेदकी कोई आवश्यकता थी। परन्तु बड़े शरीरोंमें, फिर वह चाहे चर हों चाहे अचर, यह भेद नितान्त आवश्यक हो गया कि नरका वीर्याणु हो और नारीका डिम्बाणु हो। वीर्याणुका रूप भी 'लिङ्ग'की ही तरह होता है और डिम्बकी अनुरूपता—'योनि' पीठिकासे मिलती-जुलती रहती है। चराचर प्राणियोंमें वृद्धिकी विधिमें इस तरह लिङ्ग और योनि व्यापक हो रहे हैं।

बहुत-सी अल्पायु सेलोंवाले छोटे-छोटे शरीरोंमें मैथुनी वृद्धिमें कुछ कठिनाई होती है, क्योंकि एक नन्ही-सी जननी एक बारमें थोड़े-से ही डिम्ब उपजाती है। यदि जनकोंकी आवश्यकता न पड़े तो दूनी व्यक्तियाँ वृद्धिमें लग सकती हैं। इसलिये जहाँ विभाजन या अङ्कुरणके लिये शरीर अधिक जटिल हैं और मैथुनी विधिके सुभीते नहीं हैं वहाँ प्रकृति माता 'पृथा-जनन'की एक चौथी विधिसे काम लेती है। इसमें शुक्र या लिङ्गवाले जीवाणुके बिना ही डिम्बका विकास और वृद्धि होती है। इसमें शुक्राणुद्वारा गर्भाधान हुए बिना ही काम चल जाता है। यह डिम्बज्यों ही प्रौढ़ताको पहुँचते हैं त्यों ही इनमें शरीरकी रचना होने लग जाती है। मधु-मक्खीका नर इसी पृथा-जनन-विधिसे उत्पन्न होता है। उसकी माता है पिता नहीं है। परन्तु रानी और काम करनेवाली मक्खियाँ वीर्याहित अण्डोंसे ही पैदा होती हैं। जनन-क्रियाके हिसाबसे इसप्रकार चार तरहके प्राणी हुए—भेदज, अङ्कुरज, मैथुनज और अनाहिताण्डज।

भेदज और अङ्कुरज अयोनिज विधियाँ हैं। इनमें लिङ्ग-भेद अनावश्यक है, परन्तु इन विधियोंसे एक कोयल-से दो कोयलें बन नहीं सकती थीं। फिर यही अयोनिज विधि रहती तो जनकके सारे दोष जनितमें पाये जाते। मैथुनज और अनाहिताण्डज दोनों योनिज विधियाँ हैं। इनमेंसे अनाहिताण्डज विधि अकेली नहीं चलती। दोनों विधियाँ मिली-जुली चलती हैं, परन्तु बिना आधानके भी योनिज-सृष्टि हो सकती है। इस तरह आहित और अनाहित उभय प्रकारकी योनिज सृष्टि सम्भव हो गयी।

प्रकृतिमें मैथुनी सृष्टिके चल जानेसे जीवनका विकास सुलभ हो गया, सतत वृद्धि सम्भव हो गयी और कम-से-कम चार मुख्य लाभ हुए—

(१) प्रजाकी उत्पत्तिमें खर्च कम पड़ने लगा, सन्तान-वृद्धि सुभीतेसे होने लगी। भेदन और अङ्कुरणमें शरीरका बहुत बड़ा अंश व्यय होता था। मैथुनमें तो अत्यन्त सूक्ष्म कण ही खर्च होने लगे जो शरीरके भीतर अपरिमित संख्यामें उपस्थित थे।

(२) मैथुनसे एकवारंगी बहुत-से नये देहधारियोंकी वृद्धि सम्भव हो गयी। यह जीवनके रगड़े और रक्षाके अभावमें बड़े महत्त्वकी बात थी।

(३) मैथुनसे जननी और जनकके शरीरोंके दोषोंके

फैलनेमें बहुत कमी हो गयी और विकास और उन्नतिका मार्ग बाधाहीन हो गया।

(४) मैथुनकी विधिमें जनन-कण भी दो प्रकारके हो गये। प्रकृति या डिम्बाणु अचर हुआ और पुरुष या शुक्राणु चर हुआ। अचर 'अन्नपूर्णा' है, भोजन और वादकी सामग्रीसे पूर्ण है। चर 'चिद्रूप' है, रसोंमें शुक्राणु चल-फिर-कर डिम्बाणुका दूरसे ही पता लगा लेता है और आधानकी क्रिया कर लेता है।

हमने यहाँ शुद्ध वैज्ञानिक खोजकी बातें कही हैं। विज्ञान यह नहीं कह सकता कि इस विश्व-सृष्टिके नियमनमें मैथुनी क्रिया प्रकृतिमें अपने आप उपजी या किसी चेतना शक्तिवालेने इसका आरम्भ किया। विज्ञानका अनुमान है कि पचासों करोड़ वर्षोंमें धीरे-धीरे विकास पाकर अ-योनिजसे योनिज सृष्टि होने लग गयी है। विज्ञान तो ईश्वरको जानता नहीं। ईश्वरवादी वैज्ञानिकके शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि ईश्वरने जीवकी सृष्टिके पचासों करोड़ बरस पीछे मैथुनी सृष्टिकी विधि विकसित की। और यह पचासों करोड़ वर्ष क्यों लगे? क्योंकि ईश्वर प्रयोग-पर-प्रयोग करता था, बनाता और बिगाड़ता था, बराबर सीखता था, यहाँतक कि उसे आते-आते मैथुनी सृष्टि आ गयी और उसने इस विधिमें सुखानुभव इसलिये रक्खा कि जीवमात्र वृद्धिमें प्रवृत्त हों।

अब वैज्ञानिक और पौराणिक ईश्वरमें बहुत बड़ा अन्तर नहीं रहा। पौराणिक ईश्वर ब्रह्माने पचासों करोड़ वर्ष सृष्टिपर हाथ मँजनेमें लगा दिये। बारम्बार तपस्याएँ कीं। अन्तमें अर्धनारीश्वरकी कृपासे मैथुनी सृष्टिकी उद्भावना हुई। कामदेवकी उन्होंने उत्पत्ति की थी। वह लाभकी बात हुई। ब्रह्माने किसप्रकारकी रचना मैथुनी सृष्टिके लिये की, इसका विस्तार पुराणोंमें नहीं है। विस्तारकी कमी विज्ञानने पूरी की।

नास्तिक यह कह सकता है कि यह मनुष्यकी बुद्धिकी कल्पना है कि उसने जगत्की प्रवृत्ति काम-वासनाकी ओर देखकर, समस्त प्राणियोंको काममोहित पाकर लिङ्ग और योनि की उपासनाकी नेव डाली, परन्तु इस शङ्काका यह उत्तर है कि लिङ्गकी उपासनाके साथ वैराग्यका तत्त्व और कामपर विजय भी यदि उन्हीं मनुष्योंकी कल्पना है तो भी उन मनुष्योंने उपासनाकी कोई अनुचित विधि नहीं निकाली। फिर यह भी विचार करना चाहिये कि पुराण उस कालके लिखे हुए ग्रन्थ हैं जब कि आधुनिक वैज्ञानिक

कल्पनाएँ स्वप्नमें भी किसीको सूझी न थीं। फिर भी मैथुन-सृष्टिमें अर्धनारीश्वर और लिङ्ग और योनिका अंश जो महाभारत और पुराणोंमें देखनेमें आता है आधुनिक वैज्ञानिक निष्कर्षोंसे इतना मेल क्यों खाता है? पृथा-जननकी विधिमें केवल योनिसे ही उत्पत्ति बतायी है जिसको दूसरे पौराणिक शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि केवल भगवती गौरीकी शक्तिसे जनन-क्रियाका सम्भव होना 'पृथा-जनन' है।

लिङ्गोपासना सृष्टिके परम रहस्यका साक्षी है, प्रवृत्ति-मार्ग-का ठीक पता देता है और धीरे-धीरे जब इस उपासनाका रहस्य उपासकके अनुभवमें आता है तब वह लिङ्गोपासनासे ही निवृत्ति-मार्गपर आरुढ़ हो जाता है।

६-पशुपति और लिंग-शब्द और लिंगार्चन

भगवान् शङ्करके अनेक नामोंमेंसे पशुपति और लिंग—यह दो समझमें कम आते हैं। पशुपति शब्दपर शिवपुराणकी वायवीय संहिताके पूर्वखण्डमें यों लिखा है—

स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तन्न पश्यति ।
तौ पश्यति परः कश्चित्तावुभौ तं न पश्यतः ॥६०॥

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्तिताः ।
पशूनामेव सर्वेषां प्रोक्तमेतन्निर्दर्शनम् ॥६१॥

स एष बध्यते पाशैः सुखदुःखाशनः पशुः ।
लीलासाधनभूतो य ईश्वरस्येति सूरयः ॥६२॥

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनस्सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥६३॥

(अध्याय ५)

‘यह जीव शरीरको देखता है, शरीर जीवको नहीं देखता। दोनोंको कोई उनसे भी परे देखता है परन्तु ये दोनों उसे नहीं देखते। ब्रह्मासे लेकर स्थावरतक सभी पशु कहलाते हैं। सब पशुओंके लिये ही यह निर्दर्शन कहा है। यह मायापाशोंमें बँधा रहता है और सुख-दुःखरूपी चारा खाता है और भगवान् (मदारी) की लीलाओंका साधन है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। यह प्राणी अज्ञानी है, ईश नहीं है, सुखात्मक और दुःखात्मक है और ईशकी प्रेरणासे स्वर्ग और नरकमें जाता है।’ इसलिये जीव ‘पशु’ है और उसका ‘पति’ ईश है, ब्रह्म है, इसलिये ‘पशुपति’ महेश्वरका एक नाम है।

लिंग-शब्दका साधारण अर्थ निह्न वा लक्षण है। सांख्यदर्शनमें प्रकृतिको, प्रकृतिसे विकृतिको भी लिंग कहते

हैं। देव-चिह्नके अर्थमें लिंग-शब्द शिवजीके ही। लिंगके लिये आता है और प्रतिमाओंको मूर्त्ति कहते हैं, कारण यह है कि औरोंका आकार मूर्त्तिमान्के ध्यानके अनुसार होता है, परन्तु लिंगमें आकार या रूपका उल्लेखन नहीं है। यह चिह्नमात्र है और चिह्न भी पुरुषकी जननेन्द्रियका-सा है जिसे लिंग कहते हैं, परन्तु स्कन्दपुराणमें ‘लयनालिङ्गमुच्यते’ कहा है अर्थात् लय या प्रलय होता है इसीसे उसे लिंग कहते हैं। प्रलयसे लिंगका क्या सम्बन्ध है?

प्रलयकी अग्रिममें सभी कुछ भस्म होकर शिवलिंगमें समा जाता है। वेद-शास्त्रादि भी लिंगमें ही लीन हो जाते हैं। फिर सृष्टिके आदिमें लिंगसे ही सब-के-सब प्रकट होते हैं। अतः ‘लय’ से ही लिंग-शब्दका उद्भव ठीक ही है, उससे लय या प्रलय होता है और उसीमें सम्पूर्ण विश्वका लय होता है। यह एक संयोगकी बात है कि लिंग-शब्दके अनेक अर्थोंमें लोकप्रसिद्ध अर्थ अश्लील है। वैदिक शब्दोंका यौगिक अर्थ लेना ही समीचीन माना जाता है। यौगिक अर्थमें कोई अश्लीलता नहीं रह जाती। इसके सिवा अश्लीलता तो प्रसंगसे आती है। विषयात्मक वर्णनमें जो अश्लील और अनुचित दीखता है वही वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक वर्णनोंमें श्लील और समुचित हो जा सकता है। पशुपति और लिंग-शब्दका भी यही हाल है।

लिंगार्चनमें अश्लीलताके भावकी कल्पना परम मूर्खता, परम नास्तिकता और घोर अनभिज्ञता है।

हमारे देशमें प्रायः सभी जगहोंमें पार्थिव-पूजा प्रचलित है। परन्तु विशेष-विशेष स्थानोंमें पाषाणमय शिवलिंगकी भी स्थापना है। यह स्थावर मूर्त्तियाँ होती हैं। बाणलिंग वा सोने-चाँदीके छोटे लिंग जङ्गम कहलाते हैं। इन्हें प्राचीन-पाशुपत सम्प्रदायवाले एवं आजकलके लिंगायत सम्प्रदायवाले पूजाके व्यवहारमें लानेके लिये अपने साथ लिये फिरते हैं अथवा बाँह या गलेमें बाँधे रहते हैं।

लिंग विविध द्रव्योंके बनाये जाते हैं। गरुडपुराणमें इसका अच्छा विस्तार है। उसमेंसे हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं।

(१) गन्धलिंग दो भाग कस्तूरी चार भाग चन्दन और तीन भाग कुंकुमसे बनाते हैं। शिवसायुज्यार्थ इसकी अर्चा की जाती है।

(२) पुष्पलिंग विविध सौरभमय फूलोंसे बनाकर पृथ्वीके आधिपत्य-लाभके लिये पूजते हैं।

(३) गोशकृलिंग स्वच्छ कपिलवर्णके गोबरसे बनाकर पूजनेसे ऐश्वर्य मिलता है, परन्तु जिसके लिये बनाया जाता है वह मर जाता है। मिट्टीपर गिरे गोबरका व्यवहार वर्जित है।

(४) रजोमयलिंग रजसे बनाकर पूजनेवाला विशाधरत्व और फिर शिवसायुज्य पाता है।

(५) यवगोधूमशालिलिंग जौ, गेहूँ, चावलके आटेका बनाकर श्रीपुष्टि और पुत्रलाभके लिये पूजते हैं।

(६) सिताखण्डमय लिंगसे आरोग्यलाभ होता है।

(७) लवणजलिंग हरताल, त्रिकटुको लवणमें मिलाकर बनता है। इससे उत्तम प्रकारका वशीकरण होता है।

(८) तिलपिण्डौत्थलिंग अभिलाषा सिद्ध करता है। इसी तरह—

(९-१२) तुषोत्थलिंग मारणशील है, भस्ममयलिंग सर्वफलप्रद है, गुडोत्थलिंग प्रीति बढ़ानेवाला है और शर्करामयलिंग सुखप्रद है।

(१३-१४) वंशाङ्कुरमय लिंग वंशकर है, केशास्थिलिंग सर्वशत्रुनाशक है।

(१५-१७) द्रुमोद्भूतलिंग दारिद्र्यकर, पिष्टमय, विद्याप्रद और दधिदुग्धोद्भवलिंग कीर्ति, लक्ष्मी और सुख देता है।

(१८-२१) धान्यज धान्यप्रद, फलोत्थ फलप्रद, धात्रीफलजात मुक्तिप्रद, नवनीतज कीर्ति और सौभाग्य देता है।

(२२-२७) दूर्वाकाण्डज अपमृत्युनाशक, कर्पूरज मुक्तिप्रद, अयस्कान्तमणिज सिद्धिप्रद, मौक्तिक सौभाग्यकर, स्वर्णनिर्मित महामुक्तिप्रद, राजत भूतिवर्धक है।

(२८-३६) पित्तलज तथा कांस्यज मुक्तिद, त्रपुज, आयस और सीसकज शत्रुनाशक होते हैं। अष्टधातुज सर्वसिद्धिप्रद, अष्टलौहजात कुष्ठनाशक, वैदूर्यज शत्रुदर्पनाशक और स्फटिकलिंग सर्वकामप्रद है।

परन्तु ताम्र, सीसक, रक्तचन्दन, शङ्ख, काँसा, लोहा इन द्रव्योंके लिंगोंकी पूजा कलियुगमें वर्जित है। पारेका शिवलिंग विहित है और महाऐश्वर्य देता है।

लिंग बनाकर उसका संस्कार करना पार्थिव लिंगोंको छोड़ और सब लिंगोंके लिये करना पड़ता है। स्वर्णपात्रमें दूधके अन्दर तीन दिनोंतक रखकर फिर 'व्यम्बकं यजामहे' इत्यादि मन्त्रोंसे स्नान कराकर वेदीपर पार्वतीजीकी षोडशोपचारसे पूजा करनी उचित है। फिर पात्रसे उठाकर लिंगको तीन दिन गङ्गाजलमें रखना होता है। फिर प्राणप्रतिष्ठा करके स्थापना की जाती है।

पार्थिवलिंग एक या दो तोला मिट्टी लेकर बनाते हैं। ब्राह्मण सफेद, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीली और शूद्र काली मिट्टी लेता है। परन्तु यह जहाँ अव्यवहार्य हो, वहाँ कोई हर्ज नहीं, मिट्टी चाहे जैसी मिले।

लिंग साधारणतया अंगुष्ठप्रमाणका बनाते हैं। पाषाणादिके लिंग मोटे और बड़े बनते हैं। लिंगसे दूनी वेदी और उसका आधा योनिपीठ करना होता है। लिंगकी लम्बाई कम होनेसे शत्रुकी वृद्धि होती है। योनिपीठ विना या मस्तकादि अंग विना लिंग बनाना अशुभ है। पार्थिव लिंग अपने अंगूठेके एक पोरवेभर बनाना होता है। लिंग सुलक्षण होना चाहिये। अलक्षण अमङ्गलकारी होता है।

लिंगमात्रकी पूजामें पार्वती-परमेश्वर दोनोंकी पूजा हो जाती है। लिंगके मूलमें ब्रह्मा, मध्यदेशमें त्रिलोकीनाथ विष्णु और ऊपर प्रणवाख्य महादेव स्थित हैं। वेदी महादेवी हैं और लिंग महादेव हैं। अतः एक लिंगकी पूजामें सबकी पूजा हो जाती है—(लिंगपुराण)। पारदके लिंगका सबसे अधिक माहात्म्य है। पारद-शब्दमें प विष्णु, आ कालिका, र शिव, द ब्रह्मा—इस तरह सभी मौजूद हैं। उसके बने लिंगकी पूजासे, जो जीवनमें एक बार भी की जाय, तो धन, ज्ञान, सिद्धि और ऐश्वर्य मिलते हैं।

यहाँतक तो लिंग-निर्माणकी बात हुई। परन्तु नर्मदादि नदियोंमें भी पाषाणलिंग मिलते हैं। नर्मदाका वाणलिंग भुक्ति-मुक्ति दोनों देता है। वाणलिंगकी पूजा इन्द्रादि देवोंने की थी। इसकी वेदिका बनाकर उसपर स्थापना करके पूजा करते हैं। वेदी ताँबा, स्फटिक, सोना, पत्थर, चाँदी या रूपेकी भी बनाते हैं।

परन्तु नदीसे वाणलिंग निकालकर पहले परीक्षा होती है फिर संस्कार । पहले एक बार लिंगके बराबर चावल लेकर तौले । फिर दूसरी बार उसी चावलसे तौलनेपर लिंग हलका ठहरे तो गृहस्थोंके लिये वह लिंग पूजनीय है । तीन, पाँच या सात बार तौलनेपर भी तौल बराबर निकले तो उस लिंगको जलमें फेंक दे । यदि तौलमें भारी निकले तो वह लिंग उदासीनोंके लिये पूजनीय है—(सूतसंहिता) । तौलमें कभी-बेशी ही वाणलिंगकी पहचान है । जब वाणलिंग होना निश्चित हो जाय तब संस्कार करना उचित है । संस्कारके बाद पूजा आरम्भ होती है । पहले सामान्य विधिसे गणेशादिकी पूजा होती है । फिर वाणलिंगको स्नान कराते हैं स्नान कराकर, यह ध्यान-मन्त्र—

ॐ प्रमत्तं शक्तिसंयुक्तं वाणाख्यं च महाप्रभम् ।
कामवाणान्वितं देवं संसारदहनक्षमम् ।
शृङ्गारादिरसोल्लासं वाणाख्यं परमेश्वरम् ॥

—पढ़कर मानसोपचारसे तथा फिरसे ध्यानकर पूजा करनी होती है । भरसक षोडशोपचार पूजा होती है । फिर जप करके स्तवपाठ करनेका दस्तूर है । वाणलिङ्गकी पूजामें आवाहन और विसर्जन नहीं होता ।

वाणलिङ्गके प्रकार बहुत हैं । विस्तारभयसे यहाँ हम उनका उल्लेख नहीं करते । हाँ, यह जानना आवश्यक है कि वाणलिङ्ग निन्द्य न हो । कर्कश होनेसे पुत्रदारादि-क्षय, चिपटा होनेसे गृहभंग, एकपार्श्वस्थित होनेसे पुत्रदारादि-धनक्षय, शिरोदेश स्फुटित होनेसे व्याधि, छिद्र होनेसे प्रवास और लिङ्गमें कर्णिका रहनेसे व्याधि होती है । यह निन्द्य लिङ्ग हैं, इनकी पूजा वर्जित है । तीक्ष्णाग्र, वक्रदीर्घ तथा त्रिकोण लिङ्ग भी वर्जित हैं । अति स्थूल, अति कुश, स्वल्प, भूषणयुक्त मोक्षार्थियोंके लिये हैं, गृहस्थोंके लिये वर्जित हैं ।

मेघाम और कपिल वर्णका लिङ्ग शुभ है, परन्तु गृहस्थ लघु वा स्थूल कपिल वर्णवालेकी पूजा न करे । भौरेकी तरह काला लिङ्ग सपीठ हो या अपीठ, संस्कृत हो या मन्त्रसंस्काररहित भी हो तो गृहस्थ उसकी पूजा कर सकता है । वाणलिङ्ग प्रायः कँयलगट्टेकी शकलका होता है । पकी जामुन या मुरगीके अण्डेके अनुरूप भी होता है । श्वेत, नीला और शहदके रङ्गका भी होता है । यही लिङ्ग प्रशस्त हैं । इन्हें वाणलिङ्ग इसलिये कहते हैं कि वाणामुरने

तपस्या करके महादेवजीसे वर पाया था कि वे पर्वतपर सर्वदा लिंगरूपमें प्रकट रहें । एक वाणलिंगकी पूजासे अनेक और लिंगोंकी पूजाका फल मिलता है ।

पार्थिव-पूजा

‘ॐ हराय नमः’ मन्त्रसे मिट्टी लेकर ‘ॐ महेश्वराय नमः’ मन्त्रसे अंगूठेके पोरभरका लिङ्ग बनावे । तीन भागमें बाँटे । ऊपरीको लिङ्ग, मध्यको गौरीपीठ और नीचेके अंशको वेदी कहते हैं । दहने या बायें किसी एक ही हाथसे लिंग बनावे । असमर्थ दोनों लगा सकता है । लिंग बन जाय तो उसके सिरपर नन्ही-सी मिट्टीकी गोली बनाकर रखी जाती है । यह वज्र है । पूजनेवाला कोई दूसरा हो तो शिवके गान्धर्व हाथ रखकर ‘ॐ हराय नमः’ और ‘ॐ महेश्वराय नमः’ कहे । पूजाके समय षोडशोपचारकी सामग्रीमें विल्वपत्र जरूरी है । माथेपर भस्म वा मिट्टीका त्रिपुण्ड्र और गलेमें रुद्राक्षकी माला जरूर होनी चाहिये । आसनशुद्धि, जलशुद्धि, गणेशादि देवताओंकी पूजा करके इसप्रकार भगवान् शङ्करका ध्यान करे—

ॐ ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैः व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विद्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

यह ध्यान पढ़कर मानसोपचारसे पूजन करे, फिर वही ध्यान-पाठ करके लिङ्गके मस्तकपर फूल रखे । तब ‘ॐ पिनाकधृक्, इहागच्छ, इहागच्छ, इह तिष्ठ, इह तिष्ठ, इह सन्निधेहि, इह सन्निधेहि, इह सन्निरुद्धयस्व, इह सन्निरुद्धयस्व, अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजां गृहाण ।’ इसी प्रकार आवाहनादि करे । आवाहनादि पाँच मुद्रा दिखाकर करते हैं । पीछे ‘ॐ शूलपाणे, इह सुप्रतिष्ठितो भव’ मन्त्रसे लिंग-प्रतिष्ठा करे । फिर ‘ॐ पशुपतये नमः’ मन्त्रसे तीन बार शिवके मस्तकपर जल चढ़ावे । फिर मस्तकपरका यज्ञ फेंककर चार अरवा चावल चढ़ावे । फिर पाचादि दशोपचार ‘ॐ एतत् पादम् ॐ नमः शिवाय नमः ।’ ‘इदमर्घ्यम् ॐ नमः शिवाय नमः’ इत्यादि क्रमसे मन्त्रके साथ करे । शिवके अर्घ्यमें केला और बेलपत्र देना होता है और स्नानके पहले मधुपर्क । इसके बाद शिवकी अष्टमूर्तिकी पूजा करनी होती है । गन्ध-पुष्प लेकर पूर्वसे लेकर उत्तरावर्त्ती मार्गसे आठवीं दिशा अभिकोणपर आकर

समाप्त करना होगा। 'एते गन्धपुष्पे ॐ सर्वाय क्षिति-मूर्त्तये नमः' (पूर्व)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः' (ईशान)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः' (उत्तर)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः' (वायव्य)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः' (पश्चिम)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ पशुपतये यजमान-मूर्त्तये नमः' (नैऋत्य)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः' (दक्षिण)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नमः' (अग्निकोण)। इस तरह अष्टमूर्त्तिपूजाके अनन्तर यथाशक्ति जप करे, फिर जप और पूजाका भी विसर्जन 'गुह्यातिगुह्य' इत्यादि मन्त्रोंसे करे। फिर दहने हाथका अंगूठा और तर्जनी मिलाकर उसके द्वारा वम वम शब्द करते हुए दहना गाल बजावे। अब अन्तमें महिम्न-स्तोत्र या और कोई शिव-स्तुति पढ़ना आवश्यक है। अब प्रणाम करके दहने हाथसे अर्घ्यजलसे आत्मसमर्पण करके लिंगके मस्तकपर थोड़ा जल चढ़ावे और कृताञ्जलि हो क्षमा-प्रार्थना करे।

आवाहनं न जानामि नैव जानामि पूजनम्।

विसर्जनं न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर॥

इसप्रकार क्षमा-प्रार्थना करके विसर्जन करना होता है। ईशानकोणमें जलसे एक त्रिकोणमण्डल बनाकर पीछे संहारमुद्राद्वारा एक निर्माल्यपुष्प सूँघते हुए उस त्रिकोणमण्डलके ऊपर डाल देना होता है। इस घड़ी ऐसा सोचना चाहिये कि भगवान् शङ्करने मेरे हृत्-कमलमें प्रवेश किया है। इसके बाद 'एते गन्धपुष्पे ॐ चण्डेश्वराय नमः' 'ॐ महादेव क्षमस्व' कहकर शिवको ले मण्डलके ऊपर रख देना होता है।

७-ज्योतिर्लिङ्गानि

शैवपुराणोंमें बारह ज्योतिर्लिङ्गोंका उल्लेख है। काशी-धामके विदेवेश्वरलिंग इन सबमें प्रधान हैं। इनका नाम सबसे पहले लिया जाता है। औरङ्गजेवके समयमें

मुसलमानोंके उपद्रवसे वह ज्योतिर्लिङ्ग ज्ञानवापीके भीतर सुरक्षित रहा। बदरिकाश्रममें केशरेश्वर दूसरे हैं। कृष्णाके तट श्रीशैलपर महिष्कार्जुन तीसरे हैं। वहीं भीमशङ्कर चौथे हैं। काश्मीर-प्रदेशके ओंकारमें अमरेश्वर या अमरनाथ पाँचवें हैं। उज्जयिनीमें महाकालेश्वर छठे हैं। महाकालेश्वरकी मूर्त्तिको अलतमश बादशाहने शक ११५८ में तोड़ डाला था। सूरत या सौराष्ट्रदेशमें सोमनाथके मन्दिरको संवत् १०८१ में महमूद गजनवीने नष्ट किया और लूट ले गया। यह सातवें हैं। चित्तभूम झारखण्डमें वैद्यनाथजी आठवें हैं। औड़देशमें नागनाथ नवें हैं। शिवालयमें घूश्मेश (या शैवालमें सुषमेश) दसवें हैं। ब्रह्मगिरिमें त्र्यम्बकनाथ ग्यारहवें हैं। सेतुबन्धमें रामेश्वर बारहवें हैं। शिवपुराण उत्तरखण्डके तीसरे अध्यायमें उपर्युक्त नाम दिये हुए हैं। परन्तु 'द्वादश ज्योतिर्लिङ्गस्तोत्र' प्रसिद्ध है। उसमें काबेरी और नर्मदासङ्गमपर मान्धातापुरमें ओंकारेश्वर नाम लिङ्गको चौथा बताया है। सहाद्रिकी चोटीपर गोदावरीके किनारे त्र्यम्बकनाथका पता बताया है। भीमशङ्करका ठीक पता वहाँ भी नहीं लिखते। इलापुरीमें बुद्धेश्वरकी जगह धृष्णेश्वरको बारहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग बताया है। इन स्थानोंका ठीक पता लगाना स्वतन्त्र विषय है।

लिंगसम्बन्धी साहित्य इतना विशाल है कि उसका सार भी यहाँ इस लेखमें सम्भव नहीं है, परन्तु जिन बातोंके जाननेका शिव-भक्तोंको साधारणतया कुतूहल रहता है संक्षेपमें उन विषयोंकी थोड़ी-सी जानकारी पिछले पृष्ठोंसे यदि पाठकोंको हो जाय तो इन पंक्तियोंका लेखक अपनेको कृतकृत्य समझेगा। यदि यह कृतकृत्यता उसे न भी प्राप्त हुई तो इसमें तो सन्देह नहीं कि जगद्गुरु जगदीश्वर मदीयगुरु महेश्वर भगवान् शङ्करके गुण-कीर्तनका उसे अलभ्य लाभ और कल्याणके साथ-ही-साथ सहृदय पाठकोंका और लेखकका परम कल्याण हुआ। एवमस्तु।

शङ्कर

'शङ्कर' नाम सुधासम है भव-भूति भरें भव-भावन शङ्कर।

शङ्कर-हेतु तजैं यति धामहु शङ्कर पावतु मार अशङ्कर॥

शङ्कर ही जन-शङ्कर हैं पुनि काल भयंकर लोकवशङ्कर।

शङ्करको सब देव भजैं 'सरयू' कवि-किङ्करके शिवशङ्कर॥

—सरयूप्रसाद पाण्डेय 'दिजेन्द्र'

शिव-तत्त्व

(लेखक—प्रो० पं० श्रीसकलनारायणजी शर्मा)



गत्-लघा परमात्माका नाम शिव है, इसका अर्थ कल्याण करनेवाला है। जब कल्याण करनेवाले दो पदार्थोंका विचार करते हैं तब वही शिवतर हो जाता है। सारे ब्रह्माण्डमें वही सबसे अधिक सुख-शान्तिदेनेवाला है। इस कारणसे ऋषिलोग उसे शिवतम कहते हैं—

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।

‘ॐ मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव’

(य० वे०)

ईश्वरका एक नाम रुद्र है क्योंकि दीन-दुखियोंके दुःख-पर आँसू बहाता है तथा पापियोंको रुलाता है। उक्त शब्द-में ‘रुद्’ धातु है जिसका अर्थ रोना है। वह मुक्तिका स्वामी है।

‘अमृतस्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।’

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः

क्षीणे क्लेशे जन्ममृत्युप्रहानिः ।

(तै० उ०)

कोई उसकी इच्छामें विघ्न नहीं उपस्थित कर सकता। वही उत्पन्न करता है, पालन करता है तथा संहारमें प्रवृत्त होता है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-

र्य इमाँल्लोकानीशत ईशानीभिः ।

प्रश्यद्भूजनाँस्तिष्ठति सञ्जुकोचान्तकाले

संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥

(तै० उ०)

कर्म-फल देनेके लिये सृष्टि होती है। उसमें जीव नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं। उससे सबका छुटकारा केवल प्रलयमें होता है। वह माता-पिताके समान सबको सुला देता है। यह परमात्माकी बड़ी कृपा है। कोई-कोई इस भावसे भी उसे शिव—सुलानेवाला कहते हैं। उस समय किसीको तनिक कष्ट नहीं होता। वह सबके दुःखोंको हर लेता है अतएव हर है, दुःखोंका हरण करनेवाला है। जिनको इस करुणाका ज्ञान नहीं है वे इस दुःख-मोचन कार्यको

तमोगुण कहते हैं। उनकी बुद्धिके लिये एक कविकी उक्ति है—

‘विदन्ति मूढा न सुरूपमव्ययम् ।’

वह कर्पूर-गौर है, सभी सत्त्वगुण उसीसे प्रकट होते हैं, सत्त्वगुण स्वच्छ प्रकाशमय है। उसमें जो दोषराहित्य है, वही गौरवर्णता है। कुछ लोग कहते हैं कि दयालु परमात्माके रूप-रङ्ग हिन्दू-धर्म-ग्रन्थोंमें विचित्र क्यों लिखे हुए हैं। विद्वान् लोग उनका यह तात्पर्य बताते हैं।

वह पापियोंको आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि-भौतिक शूल—पीडा देता है इसीसे वह त्रिशूलधारी है। लोहेके त्रिशूलसे कोई प्रयोजन नहीं—

‘शूलत्रयं संवितरन् दुरात्मने

त्रिशूलधारिन् नियमेन शोभसे ॥’

(शैवासिद्धान्तसार)

प्रलयकालमें उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं रहता। ब्रह्माण्ड इमशान हो जाता है, उसकी भस्म और रुण्ड-मुण्डमें वही व्यापक होता है, अतएव ‘चिताभस्मालेपी’ और ‘रुण्ड-मुण्डधारी’ कहलाता है न कि वह अघोरियोंके समान चिता-निवासी है।

कल्पान्तकाले प्रलुटकपाले

समग्रलोके विपुलश्मशाने ।

त्वमेकदेवोऽसि तदावशिष्ट-

श्रित्ताश्रयो भूतिधरः कपाली ॥

(शै० सि० सा०)

वह भूत, भविष्यत्, वर्तमान—तीनों कालोंकी बातोंको जानता है इसीसे त्रिनयन कहलाता है। जो लोग समझते हैं कि उसके तीन आँखें हैं वे भूलते हैं।

वृष-शब्दका अर्थ धर्म है। वह धर्मारूढ है तथा धर्मात्माओंके हृदयमें निवास करता है इसीसे वृषपर चढ़नेवाला प्रसिद्ध है, बैलसे कोई तात्पर्य नहीं—

वृषप्रहाणां वृषरक्षको विभो

वृषं समास्थाय जगन्ति रक्षसि ॥

(रघुट)

जगत्में जो लूले-लँगाड़े, काने-अन्धे अथवा ऊँची नाक-वाले हैं वे भी उसकी भक्ति करते हैं तो वह उन्हें अपना लेता है क्योंकि सब भूतोंका—प्राणियोंका स्वामी है। जो उसे प्रेतपति मानते हैं वे इस तत्त्वको नहीं जानते—

अन्धाश्च काणा अथवाऽवदीटा

भवन्तु खञ्जा उत वा सुरूपाः ।

ये प्राणिनः पादपरागलुब्धा

भूतेश्वरस्वाच्छरणं स्वमेव ॥

साँपको दो जीमें होती हैं। चुगलखोर भी दिजिह हैं। उन्हें भी वह गर्दनका हार बना लेता है। पिता अपने बुरे लड़कोंको भी अपनेमें लिपटाये रखता है। सर्प-मालाका यही भाव शास्त्रसम्मत है। पाप और विषमें भेद नहीं। वह सबके दोषोंको—विषोंको पी जाता है—क्षमा कर देता है। इसीसे गरल-पान करनेवाला समझा जाता है।

परमात्मा अपनेको पुरुष और स्त्री दो रूपोंमें प्रकट करता है जिससे कि सांसारिक जीवोंको माता-पिता दोनोंके सुख प्राप्त हों। उन दोनोंका आपसमें कोई लौकिक सम्बन्ध नहीं होता। वे भाई-बहिनके समान परस्पर पवित्र रहते हैं। जगत्के कल्याणके लिये दो रूपोंमें ध्यात होते हैं—

‘स्वस्ति नो रुद्रः पार्वंहसः’

‘गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती’

(ऋग्वेद)

शिवजीके लिये वेदोंमें ‘त्र्यम्बक’ शब्द व्यवहृत होता है। पङ्क्तिशब्राह्मणमें ‘त्र्यम्बकं यजामहे’ की व्याख्याके अवसरपर कहा है—‘स्त्री अम्वा स्वसा यस्य’ अर्थात् ईश्वर—शिवजी स्त्री-पुरुष दो रूपोंमें हैं, जैसे बहिन-भाई होते हैं। सायणाचार्यने ‘पृषोदरादि’के सहारे ‘स्त्री’ शब्दके सकारका लोप किया है। वेदमें ‘त्र्यम्बक’ का अर्थ त्रिलोचन नहीं बल्कि उमासहाय शिव है।

लोग कहते हैं कि पार्वतीजीकी उत्पत्ति पर्वत और मेनकासे हुई है। वैदिक कोषका नाम निघण्टु है। उसमें ‘पर्वत’का अर्थ आकाश और ‘मेनका’का अर्थ बुद्धि लिखा हुआ है। पार्वतीजी आकाशमें सब स्थलोंमें व्याप्त हैं और बुद्धिसे जानी जाती हैं। यही उनकी उत्पत्तिका मतलब है। श्रीशङ्कराचार्यजीने तलवकार-उपनिषद्की व्याख्यामें ‘उमा’ शब्दका अर्थ ब्रह्मविद्या किया है। उनके मनमें शिव-पार्वती दोनों ज्ञान-स्वरूप सिद्ध होते हैं। हमारी समझमें वे माता-पिता हैं। लड़कोंके लिये माता-पिताकी गोदसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। हम उसीके प्रार्थी हैं, वही परमपद है—

‘तद्धाम परमं मम’

जो ‘शिव’ ये अक्षर उच्चारण करते हैं उनके घरमें सब मंगल होते हैं—

सुमङ्गलं तस्य गृहे विराजते

शिवेति वर्णैर्भुवि यो हि भाषते ।

श्रीशिव

(लेखक—पं० श्रीहनूमान् शर्मा)



(१)

ल्याणकारी कल्याणके कल्याणेच्छु सम्पादकोंने कल्याणजीवी पाठकोंकी कल्याणी कामनासे प्रेरित होकर कल्याणके प्रस्तुत विशेषाङ्कको ‘कल्याणाङ्क’ न कहकर ‘श्रीशिवाङ्क’ कहनेमें ही कल्याणकी कल्पना की है। किन्तु स्थूल दृष्टिवालोंको शिवके लोकप्रसिद्ध वेश-भूषादिमें कल्याण नहीं दीखता। ठीक भी है—

नंगा शरीर, सिरपर जटा, गलेमें मुण्डमाल, श्मशानमें वास, राखसे रंगे हुए और संहारमें तत्पर कैसा कल्याण करते हैं ! चरित-चर्चामें भी रुई घटनाएँ ऐसी हैं जिनमें

अमंगल हुआ है। उदाहरणमें दक्षका यज्ञ विध्वंसकर उसका अमंगल किया। इन्द्रादिको हर्षित करनेवाले सृष्टि-बीज कामदेवको भस्मकर रतिको रुलाया और सृष्टिका कई बार संहार करके ब्रह्माको निराश किया।

ऐसी अवस्थामें शिवको ‘कल्याण’ कहना विलक्षण कल्पना है। किन्तु तत्त्वज्ञ शिव-भक्त शिवको शिव ही नहीं, सदाशिव कहते हैं। और इसीलिये ‘शिवाङ्क’में शिव-सायुज्य मिलनेका सफल प्रयत्न किया गया है।

(२)

पुराणादिके पढ़नेसे प्रतीत होता है कि सृष्टिके बनाने, बढ़ाने और विनाश करनेवाले त्रिदेव हैं। उनमें ब्रह्मा उसको बनाते, विष्णु उसको बढ़ाते और शिव उसका

संहार करते हैं। ऐसा कई बार हुआ है और आगे भी होगा। विशेषता यह है कि ब्रह्मा कई बार प्रकट होते, सृष्टि रचते और शान्त बनाते हैं और विष्णु यथावकाश सोते हैं। किन्तु शिव और शक्ति सोते नहीं, सदा उपस्थित रहते हैं। उनको कब विश्राम मिलता है, यह उनके प्रणेता (परमेश्वर) की इच्छापर है।

शान्तोंमें शिवके अनेकों नाम लिखे हैं। वे सब गुण-कर्मादिके अनुसार निर्दिष्ट किये गये हैं। अत्यन्त प्राचीन कालमें शिवका 'रुद्र' नाम था। प्रलयकारी, भयकारी, महाक्रोधी अथवा संहारक आदि गुणोंको देखकर ही इस नामकी कल्पना की गयी थी। वैदिककालके देव, दानव, महर्षि या मनुष्य मानते थे कि 'प्रलयकालके अवसरमें जो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्निदाह, प्रज्वलन, तड़ित्प्रवाह अथवा वज्रपातादि हाते हैं वे सब रुद्रके ही प्रतिरूप या प्रभाव हैं। अथवा स्वयं रुद्र ही वायु, वह्नि या इन्द्रादिके द्वारा प्रलय करते हैं।

ऋग्, यजु और अथर्ववेदमें शिवके ईश, ईश्वर, ईशान, रुद्र, कपर्दी, शितकण्ठ, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वभूतेश आदि नाम निर्दिष्ट किये गये हैं। साथ ही उनको भयकारी, भयहारी, शान्तिवर्द्धक, महौषधिज्ञ, ज्ञानप्रद, स्वर्णसन्निभ और चमकती हुई चोँदीके पहाड़-जैसा माना है। और उनसे सुख-सम्पदा, मन्तान तथा सौभाग्यादि प्राप्त होनेकी प्रार्थना की है।

अंकेले ऋग्वेदकी ६०-७० ऋचाओंमें शिवके नाम, काम, प्रभाव और स्वरूपादिका वर्णन है। यजुर्वेदमें क्रोधित शिवको शान्त करनेके लिये शतरुद्रका स्वतन्त्र विधान किया है। अथर्ववेदमें इनको 'सहस्रचक्षु' 'तिग्मायुध' 'वज्रायुध' और 'विद्युच्छक्ति' आदि वतलाया है और सामवेदमें इनका 'अग्नि' स्वरूप स्वीकार किया है।

कैवल्य, अथर्व, नैत्तिरीय, श्वेताश्वतर और नारायण आदि उपनिषदोंमें एवं आश्वलायनादि गृह्यसूत्रोंमें शिवको त्र्यम्बक, त्रिलोचन, त्रिपुरहन्ता, ताण्डवनर्तक, पञ्चवक्त्र, कृत्तियास, अष्टमूर्ति, व्याघ्रकृत्ति, वृषभध्वज, वज्रहस्त, भिष-कृतम, संगीतज्ञ, पशुपति, औषधविधिज्ञ, आरोग्यकारक, वंशवर्धक और नीलकण्ठ कहा है और इन सबकी सार्थकता तथा तथ्य आदि भी वतलाये हैं।

शिव, वामन और स्कन्द आदि पुराणोंमें तथा वाल्मीकीय रामायण, महाभारत और कुमारसम्भव आदि

अनेकों ग्रन्थोंमें शिवके लोकोत्तर गुणोंका विस्तारके साथ वर्णन है। उनमें उनके अनेकों चरित्र, अनेकों आख्यान या अनेकों कथाएँ लिखी हैं। और उनको परमेश्वर, सर्वेश्वर या अजन्मा माना है। प्रसंग-वश यहाँ शिवके कुछ नाम, काम और चरित्रोंका दिग्दर्शन कराया जाता है।

(३)

विद्युत् (विजली) शिवका प्रहरण (प्रहार करनेका साधन) है। त्रिपुर और मदनका दहन इसीसे किया था। शिवके तीसरे नेत्रसे विद्युत्प्रवाह निर्गत होता है। अजेय शत्रुओंका संहार करना ही तभी उस नेत्रको खोलते हैं। मानोवर्तमान समयके विज्ञानकी विद्युत्-बैटरी तीसरा नेत्र है। संहारकारी अवसरोंमें उक्त विजलीकी शूलाग्रमें नियुक्त करके भी कई बार प्रहार किया है। शिवान्न और रुद्रान्न उसीके रूपान्तर हैं।

शिव अपने सेवकोंपर न तो कभी क्रोध करते हैं और न उनकी हिंसा। वह सदैव मङ्गलकर और कृपालु रहते हैं। इसीसे 'शिव' नाम सार्थक हो सकता है। शत्रुनाशके लिये सदैव धनुष चढ़ाये रहनेसे 'पिनाकी' और ब्रह्माके मस्तकको करमें धारण करनेसे आप 'कपाली' कहलाते हैं। ब्रह्माके अनुचित व्यवहारको देखकर तत्काल सिर काट लिया और कई दिनोंतक उसे करमें लिये रहे।

आवालवृद्धको आरोग्य रखने, पशुओंतकको तन्दुरुस्त करने और प्रत्येक प्रकारकी महौषधियोंका ज्ञान होनेसे आप 'वैद्यनाथ' कहाते हैं। धन-पुत्र और सुख-सौभाग्यादि देनेसे ही इनका 'सदाशिव' नाम विख्यात हुआ है। सदैव अचल अटल या स्थिर रहनेसे 'स्थानु' और शीघ्र प्रसन्न होनेसे 'आशुतोष' कहलाते हैं। और अम्बिका अथवा पार्वतीके पति होनेसे आपने 'अम्बिकेश्वर' नाम पाया है।

एक बार परब्रह्मने स्वयं अलक्षित रहकर देवताओंको विजयी किया था। इससे देवता गर्हित हुए कि हम सबको जीत सकते हैं। परब्रह्मने उनका धमण्ड दूर करनेके लिये हाथमें एक तृण लेकर अग्निसे कहा कि इसे जलाओ, वह न जला सके। वरुण (जठ) से कहा इसे बहाओ, वह न बहा सके और वायुसे कहा इसे उड़ाओ, किन्तु वह न उड़ा सके। अन्तमें इन्द्र आये तब परब्रह्म अन्तर्धान हो गये और सुशोभना स्वर्णवर्णा 'अम्बिका'ने इनको दर्शन दिये।

अम्बिका ब्रह्मविद्या हैं। वे ही कात्यायनी, गौरी, पार्वती और भवानी आदि भी कहलाती हैं। भगवान् रुद्र अग्निस्वरूप

हैं, यह पहले कहा जा चुका है। शास्त्रमें अग्निकी सात जिह्वाएँ बतलाई हैं। वे सब शिवाके नामोंमें भी परिणत होती हैं। 'काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी, विश्वरुची'—ये सब नाम अग्निवर्णा दुर्गाके भी हैं। जिस भाँति शिव अग्निवर्ण माने गये हैं उसी भाँति शिवा भी स्वयं अग्निस्वरूपा हैं। अतएव—

अग्निवर्ण रुद्रके अग्निवर्णा अम्बिका, कल्याणकारी शिवके कल्याणिनी पार्वती और देवाधिदेव महादेवके देव्यादि-पूज्या महादेवी दुर्गा पत्नीरूपमें प्रतिष्ठित हैं। इससे विदित होता है कि शिवने जैसा स्वरूप धारण किया है—शक्ति भी तद्रूपमें ही अवतरित हुई हैं। उमा, कात्यायनी, गौरी, काली, हैमवती, ईश्वरी, शिवा, भवानी, रुद्राणी, शर्वाणी, सर्वमङ्गला—ये सब शक्तिके ही रूपान्तर हैं।

(४)

वास्तवमें जिसप्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक हैं उसी प्रकार ब्राह्मी, वैष्णवी और माहेश्वरी भी एक हैं। अपने-अपने प्रसङ्ग या प्रयोजनवश इनको भिन्न-भिन्न मानते हैं अथवा कार्य और अवसरके अनुसार ये सब यथासमय भिन्न-भिन्न रूप धारणकर प्रयोग सिद्ध करती हैं।

इस विषयमें एक बार शिवने विष्णुसे पूछा था कि हम सब एक होते हुए भी अलग-अलग क्यों हैं ? इसपर विष्णुने उत्तर दिया कि—'संसारमें जिस समय कुछ भी नहीं रहता उस समय केवल परब्रह्म या उनका काल-नामक नित्यस्वरूप रहता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये उसी परब्रह्मके रूप हैं और ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेश्वरी उस नित्य-स्वरूपा (प्रकृति) अथवा शक्तिके रूपान्तर हैं।

जब सृष्टाको सृष्टि रचनेकी इच्छा होती है तब प्रकृतिको विशोभित करके अपने त्रिगुणात्म अखण्ड शरीरको तीन भागोंमें बाँटकर ऊपरके भागको चतुर्मुख, चतुर्भुज, रक्तवर्ण और कमलसन्निभ रूपमें परिणत करते हैं। वही 'ब्रह्मा' हैं। मध्य-भागको एकमुख, चतुर्भुज, श्यामवर्ण और शंख, चक्र, गदाधारीके रूपमें परिणत करते हैं। वही 'विष्णु' हैं। और अधोभागको पञ्चमुख-चतुर्भुज और स्फटिकसन्निभ शुक्लरूपमें परिणत करते हैं। वही 'शिव' हैं। इन तीनोंमें उत्पत्ति, प्रवृत्ति और निवृत्तिकी शक्ति भी युक्त कर देते हैं जिससे ये अपने-अपने कर्तव्य-पालनमें परायण हो जाते हैं और उससे विकास, वृद्धि, विनाश सदैव होते रहते हैं।

शिवके उपर्युक्त नामोंमें एक नाम 'सर्वभूतेश' भी आया है। और सर्वेश, सर्वशक्तिमान् या सृष्टिसंहारक हैं

ही। इन नामोंके तथ्यपर दृष्टि दी जाय तो सर्वभूतेशका अर्थ पञ्चमहाभूत (पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश) के अधिपति या उनसे यथारुचि काम करानेवाला भी हो सकता है। यह स्पष्ट है कि संसारके प्रत्येक प्राणी और पदार्थ पञ्च-महाभूतोंसे ही प्रकट होते हैं और उनका यथायोग्य योग होता रहनेसे ही वे बढ़ते और जीवित रह सकते हैं। कदाचित् कुपित भूत बिगड़ जायँ तो संसारके प्रत्येक प्राणी और पदार्थका सर्वनाश हो सकता है। किन्तु बिगड़ना भूतेशकी इच्छापर है। यही कारण है कि शिव 'सर्वभूतेश' होनेसे ही परमात्मा माने गये हैं, इसी प्रकार शिवाके नामोंमें भी एक नाम 'स्फुलिङ्गिनी' है।

'स्फुलिङ्ग' का असली स्वरूप प्रज्वलित अग्निकी ज्वालामय शिखाओंके साथ चमक-दमकसे उठती या उड़ती हुई चिनगारियोंके देखनेसे प्रतीत होता है अथवा वेगवान् बिजलीके महाप्रवाहमें किसी प्रकारका अवरोध आनेपर जब वह क्रोधित शक्तिकी तरह तड़कती-भड़कती और घोर नाद करती है, उस समय भी स्फुलिङ्गके स्वरूप-का आभास होता है। इसीलिये शिवके सम्बन्धमें कहा गया है कि—'वह चाहें तो चराचर सृष्टिका क्षणभरमें नाश कर सकते हैं।' अस्तु।

उपर्युक्त विवरणसे विज्ञ पाठकोंको विदित हो सकता है कि—'शिव क्या हैं, उनकी शक्ति कैसी है, संसारका सर्वनाश या अमिट कल्याण करनेमें ये कहाँतक समर्थ हैं, और प्राचीनकालमें इनका किस रूपमें और किस सीमातक प्रभाव फैला हुआ था।'।

(५)

यहाँ इस बातके विचारकी विशेष आवश्यकता है कि 'शिव जब अग्निमय, वायुमय या हिममय आदि हैं तो फिर पुराणोक्त कथाओंमें इनके मानवशरीरधारी-जैसे चरित्रोंका वर्णन किसप्रकार किया है ? इसके लिये यह ध्यान रहना चाहिये कि प्रथम तो सर्वसमर्थ सभी कुछ कर सकते हैं। जिनमें संसारके बनाने या बिगाड़नेकी सामर्थ्य है वे स्वयं संसारी होकर भी सांसारिक व्यवहार बना सकते हैं और दूसरे किसी अप्रकट रूपवाले देव, देवी या उपास्यकी उपासना की जाय तो सर्वसाधारण उसको किस रूपमें मानकर या उसके किस आधारको लेकर उसकी पूजा, उपासना या भक्ति कर सकते हैं ?'

यह स्पष्ट ही है कि 'विश्वास ही फल देता है' और प्रत्येक देवभक्त अपने इष्टदेवसे अभीष्ट-सिद्धिके विश्वासपर

ही उसकी आराधना करते हैं। ऐसी अवस्थामें शिव-भक्तोंके लिये पुराणोंमें उनके मानवशरीरधारियों-जैसे नानाविध स्वरूपोंका वर्णन होना अत्यावश्यक ही है और उनके चारु चरित्रोंको पढ़ने, देखने या सुननेसे ही उसकी सेवा, पूजा या उपासनामें प्रवृत्ति हो सकती है।

पुराणोंमें शिवके अनेक चरित्र वर्णन किये गये हैं और उनके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ हैं, जिनसे शिवतत्त्वका ज्ञान होता है और उनमें भक्ति, प्रीति या अनुराग बढ़ता है। यह उसीका प्रभाव है कि भारतमें छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े असंख्य शिव-मन्दिर हैं और उनमें अगणित मनुष्य पूजा, उपासना या स्तोत्रपाठादि करते हैं। यदि शिव-मन्दिरोंकी गणना की जाय तो उनकी संख्या लाखोंपर और उनके उपासकोंकी संख्या करोड़ोंपर पहुँच सकती है।

अति क्षुद्र बस्ती या छोटी-सी ढानीमें भी गजभरके चबूतरपर शिव-मूर्ति स्थापित देखी जाती है और उनकी उसी भक्ति-भाव या कामनासे पूजा होती है जिससे रामेश्वर, विश्वेश्वर, सोमेश्वर या तारकेश्वर आदिकी होती है। अन्तर यही है कि वहाँ विशाल मन्दिरोंके भव्य आयोजनोंसे हजारों-लाखों उपासक उपस्थित होते हैं और यहाँ संकीर्ण मन्दिरकी मध्यगत मूर्तिको एक, दो, दस या सौ-पचास स्त्री-पुरुष पूजते हैं। जो फल सोमेश्वर या विश्वेश्वर देते हैं वही फल हमारे मालेश्वर, जागेश्वर या कामपूर्णेश्वर देते हैं। प्रधानता है भाव, भक्ति और विश्वासकी और आवश्यकता है एकान्त-वास या चित्त-संलग्नताकी। अस्तु।

(६)

पुराणोंके गूढ़ाशयगर्भित स्थलोंको साधारण मनुष्य सहज ही नहीं समझते। साथ ही विज्ञानभित्तिपर आरुढ़ किये हुए वर्णन भी वे नहीं समझ सकते। अधिकांश बातोंको सुनकर वे आश्चर्यचकित हो जाते हैं। यथा—‘हिन्दू शिवलिङ्गका पूजन करते हैं और योनिमें उसकी स्थापना की जाती है।’ यह विषय गहन है, वे जान नहीं सकते। लिङ्गोपासकोंके लिये यहाँ इसका किञ्चित् दिग्दर्शन हो जाना अच्छा है।

(१) किसी प्रकारके चिह्न या स्वरूपका नाम भी ‘लिङ्ग’ होता है। पञ्चभूतात्मक, स्थावरजंगमात्मक या सृष्टिरूपात्मक शिवका क्या स्वरूप होना चाहिये? इसके समाधानार्थ शिवस्वरूपको ‘लिङ्ग’ रूपमें परिणत किया

है। लिङ्ग कैसा होना चाहिये यह लिङ्गपुराण और लिङ्गार्चन-तन्त्र आदिमें लिखा है। (२) सृष्टिसंहारके बाद सम्पूर्ण जगत्-पिण्ड अण्डाकृतिमें हो जाता है। और उसी अण्डसे सृष्टि विकसित होती है। विनाश और विकासमें शिवका प्राधान्य या रूपयोग है ही। अतः अण्डाकृति ‘शिवलिङ्ग’ (शिवचिह्न) सबके लिये हितकर एवं पूजनीय है।

(३) शैवलोग सृष्ट्युत्पादनमें लिङ्गको प्रधान मानते हैं। उनका कथन है कि प्रकृति और पुरुषके सहयोगसे ही सृष्टि आरम्भ होती है। ठीक ही है—मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और कीट-पतंगदिमें भी सहवासजनक सृष्टिका विधान देखा जाता है। प्रकृति और पुरुष शिव और शक्ति हैं। (४) स्कन्दपुराणमें आकाशको लिङ्ग और पृथिवीको पीठ माना है। यही सब देवताओंका आलय है और इसीमें सबका लय होता है। इसीलिये इसे लिङ्ग कहते हैं। (५) लिङ्गपुराणमें दो प्रकारका लिङ्ग बतलाया है। अलिङ्ग (विना चिह्नवाले) शिवसे लिङ्ग (चिह्नवान्) शिवकी उत्पत्ति हुई है। उसमें शिव लिङ्गी और शिवा लिङ्ग माने गये हैं।

(६) पद्मपुराणमें शिव-शक्तिको सहवासमें अवकाश न मिलनेसे शुक्राचार्यने शाप दिया है कि तुम योनिस्थ लिंगके रूपमें पूजित हो सकोगे। (७) शिवपुराणमें लिखा है कि एक बार शिव दिगम्बर होकर मुनि-पत्नियोंके समीप उपस्थित हो गये। ऋषियोंने शाप दिया कि ‘तुम्हारा लिङ्ग कट जाय’। ऐसा ही हुआ, किन्तु वह पड़ते ही प्रज्वलित हो गया जिसके आतपसे संसार भयभीत हो गया। अन्तमें शिवाने उसे योनिमें स्थापित कर लिया, तबसे उसी रूपमें पूजित होता है।

(८) अन्यत्र उसी पुराणमें यह भी लिखा है कि एक बार ब्रह्मा और विष्णु दोनों आपसमें अपनेको बड़ा बताने लगे। उनके बड़ेपनको प्रत्यक्ष करनेके लिये वहाँ शिवलिङ्ग उपस्थित हुआ। वे दोनों उसको नीचे-ऊपरसे नापने लगे किन्तु किसीको भी उसका थाह नहीं आया, तब वे स्वतः शान्त हो गये। जो कुछ भी हो, लिङ्गार्चन सबके लिये हितकर और आवश्यक बतलाया गया है और सर्वा-पेक्षा लिङ्गार्चनका महाफल लिखा है। यही कारण है कि भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य देशोंमें भी येन केन प्रकारेण शिव-लिङ्ग-पूजनका प्रचार पाया जाता है।

चीनमें ‘हुवेङ्-हिफुह’, ग्रीकमें ‘फालास’, रोमकमें ‘प्रिया-सस’ और मक्केमें ‘मक्केश्वर’ के नामसे शिवलिङ्गका पूजन

होता है। इनके सिवा विसमिसके सर्किसमें, इटालीके मन्दिरोंमें, टैलोसके गिरजामें तथा बुरजोके धर्म-मन्दिरोंमें अब भी शिवलिङ्ग मौजूद हैं। विड़ला बन्धुओंने विलायतमें लण्डनेश्वरकी स्थापना की ही है। अनेक जगह अति विशाल या प्रलम्ब शिवलिङ्ग भी देखे गये हैं। चीनी परिव्राजक हेनसांगने काशीमें १०० हाथ लम्बा 'तौबेका शिवलिङ्ग' देखा था। अब वह नहीं मादूम होता। ग्रीकलोग विकसदेवके साथमें १२० हाथ लम्बा शिवलिङ्ग ले जाते थे और सीरिया-प्रदेश तथा बाबिलन-राज्योंमें ३०० हाथ लम्बा शिवलिङ्ग था। अस्तु।

भारतवर्षीय शिवलिङ्गोंमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग सबसे विशेष विख्यात और सुपूजित हैं। शिवपुराणमें लिखा है कि यों तो मैं (शिव) सर्वव्यापी हूँ किन्तु द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें मेरा विशेषांश विद्यमान है।

(७)

शिव-मन्दिरोंमें पाषाण-निर्मित शिवलिङ्गोंकी अपेक्षा वाण-लिङ्गोंकी विशेषता है। अधिकांश उपासक मृण्मय शिवलिङ्ग अथवा वाणलिङ्गकी स्वतन्त्र सेवा भी करते हैं। शास्त्रोंमें अनेक प्रकारके शिवलिङ्ग-निर्माणका विधान, उनकी पूजा-विधि और तल्लब्ध विविध फल भी लिखे हैं।

(१) 'कस्तूरी' आदिसे निर्माण किये हुए शिवलिङ्गका यथाविधि पूजन करनेसे शिव-सायुज्यका लाभ होता है।
(२) 'पुष्पमय' लिङ्गका पूजन करनेसे भूम्याधिपत्य प्राप्त होता है। (३) 'गो-शकृत्' (गोवर) का लिङ्ग पूजनेसे ऐश्वर्यलाभ और जिसके लिये किया जाय उसकी मृत्यु होती है। गोवर अघर लिया जाय, पृथिवीपर न गिरे। (४) 'रजोमय' लिङ्ग पूजनेसे विद्या धारण होती है। (५) 'धान्य'—जौ, गेहूँ और चावल आदिके चूनसे बने हुए लिङ्गको पूजनेसे स्त्री, पुत्र और धन मिलता है। और (६) 'सिता' (मिश्री) के लिङ्गका पूजन करनेसे आरोग्य-लाभ होता है। इसी प्रकार (७) 'लवण' लिङ्गसे सौभाग्य, (८) 'पार्थिव' से कार्यसिद्धि, (९) 'भस्ममय' से सर्वफल, (१०) 'गुड़लिङ्ग' से प्रीतिवृद्धि, (११) 'वंशांकुरनिर्मित' लिङ्गसे वंशवृद्धि, (१२) 'केशास्थि' निर्मित लिङ्गसे शत्रुनाश, (१३) 'द्रुमोद्भूत' से दारिद्र्य, (१४) 'दुग्धोद्भव' से कीर्ति, लक्ष्मी, और सुख, (१५) 'फलोत्थ' से फललाभ, (१६) 'धात्रीफल' से मुक्ति-लाभ, (१७) 'नवनीत' निर्मितसे कीर्ति तथा सौभाग्य, (१८) 'कर्पूर' जनितसे मुक्तिलाभ, (१९) 'स्वर्णमय' से महामुक्ति, (२०) 'रजत' से विभूति, (२१)

'कांस्य' तथा पित्तलमयसे सामान्य मोक्ष, (२२) 'सीसकादि' से शत्रुनाश, (२३) 'अष्टधातुज' से सर्वसिद्धि, (२४) 'मणिजात' से अभिमाननाश और (२५) 'पारद' निर्मितसे महाऐश्वर्य प्राप्त होता है। स्मरण रहे कि लिङ्ग-निर्माण-विधि और उसकी पूजाविधि सम्यक्प्रकारसे जानकर फिर सकाम शिव-पूजन करना चाहिये। उसका संक्षिप्त विधान यह है—

ब्राह्मण सफेद मिट्टीको, क्षत्रिय लाल मिट्टीको, वैश्य पीली मिट्टीको और शूद्र काली मिट्टीको भिगोकर एक या दो तोला लेकर उसका अंगुष्ठप्रमाण शिवलिङ्ग और उससे दूनी बेदी तथा उससे आधी योनिपीठ (जलहरी) बनावे। पाषाणादिका शिवलिङ्ग मोटा और रत्न अथवा धातुओंका यथाशक्ति इच्छानुसार मोटा या छोटा भी हो सकता है। लिङ्ग सुडौल, अव्रण और सुलक्षण होना चाहिये। अलक्षण लिङ्ग अच्छा नहीं। पीठहीन और अंगुष्ठपर्व-प्रमाणसे छोटा-बड़ा भी शुभ नहीं। ऐसे लिङ्ग त्याग देने चाहिये।

लिङ्गार्चनमें 'वाणलिङ्ग'का विशेष महत्त्व माना गया है। वह सब प्रकारसे शुभ, सौम्य, सुलक्षण और श्रेयस्कर होता है। प्रतिष्ठामें भी 'पाषाणलिङ्गकी अपेक्षा वाणलिङ्गका स्थापन सुगम है। 'नर्मदाके सभी कंकर शङ्कर' माने गये हैं। उनमें मनोरम मूर्त्तिको लेकर चावलसे तौलना चाहिये। तीन बार तौलनेपर भी चावल बढ़ते ही रहें तो वह मूर्त्ति वृद्धिकारक होती है। नर्मदानदीमें आध तोला वजनसे लेकर ८० मन वजनतककी मूर्त्तियाँ मिलती हैं। वे सब असंख्य संख्यामें स्वतः प्रातः और स्वतः संधटित होती हैं। उनमें कई लिङ्ग बड़े ही अद्भुत, मनोहर, विलक्षण और सुन्दर होते हैं। उनके पूजनेसे महाफल मिलता है।

मिट्टीकी, पाषाणकी या नर्मदाकी जिस किसी मूर्त्तिका पूजन करना हो, पूजा करनेसे पहले पवित्र होकर शुद्धासनपर पूर्वाभिमुख बैठे। जल, फल, फूल और गन्धाक्षत आदि यथायोग्य रख ले। पार्थिव-पूजन करना हो तो भीगी हुई मिट्टीका करांगुष्ठके ऊर्ध्व-पर्व-तुल्य शिवलिङ्ग बनावे। उसको जलहरीमें स्थापनकर प्राणप्रतिष्ठा करे और फिर षोडश, दश या पञ्च यथोपलब्ध उपचारोंसे पूजन करे। यदि वाणलिङ्ग मन्दिरोंकी चिरप्रतिष्ठित मूर्त्तिका पूजन करना हो तो उसमें प्राणप्रतिष्ठा न करे। अस्तु, सब प्रकारको शिव-पूजन-विधि अनेक ग्रन्थोंमें लिखी है। उसे देख लेना चाहिये।

(८)

शिवलिङ्गके दर्शनोंसे उनके आध्यात्मिक स्वरूपका

आभास होता है और तत्त्वज्ञ उसमें भूमण्डलके प्रत्येक पदार्थका अनुभव करते हैं। किन्तु सर्वसाधारणके जाननेके लिये शिव-पार्वतीकी मानुषी मूर्ति ही उनके प्रत्येक चरित्र-को प्रकट करनेवाली होती है। अतः चित्रादिमें उनका वही स्वरूप अंकित देखा जाता है जो उनके चरित्रोंमें वर्णित हुआ है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अत्यन्त प्राचीन कालमें शिव-भक्त सृष्टिके प्रत्येक पदार्थको शिवस्वरूपमें परिणत मानते थे और इस कारण उनको चित्र-प्रतिमा या लिंग-स्थापनकी आवश्यकता नहीं होती थी। उनकी दृष्टिमें सृष्टिका प्रत्येक पदार्थ ही शिव था। उनको यदि उपासना या पूजा करनी होती तो उसीकी करते थे। संसारमें उस प्रकारके 'रुद्र-वन,' 'शङ्कर-दावानल,' 'शिव-समुद्र' और 'गौरीशङ्कर' आदि दृश्य पदार्थ या प्रतिमाएँ अब भी ऐसी विद्यमान हैं जिनसे शिवस्वरूप नाम-तुल्य आभासित होता है और वे हजारों-लाखों वर्षोंसे शिवस्वरूप धारण किये हुए हैं।

धन्य है उन यूरोपीय सज्जनोंको जिन्होंने भारतीय हिन्दू-शास्त्रोंके वर्णनोंको प्रत्यक्ष देखनेका सफल प्रयत्न या प्रयास किया है और धन, जन तथा समयकी अपरिमित हानि सहकर 'गौरीशङ्कर' जैसे अगम्य और दुर्बोध्य दृश्योंको देखा है। इस लेखका अंगीभूत होनेसे उसका संक्षिप्त विवरण विदित कर लेना आवश्यक प्रतीत हुआ है। हिमालयके दो अति उच्च शिखर ही 'गौरीशङ्कर' नामसे प्रसिद्ध हैं और वास्तवमें उनका स्वरूप भी शास्त्र-लिखितके तुल्य है। पुराणोंमें हिमालयकी विस्तृति चालीस हजार कोस और महोन्नति आठ हजार कोस मानी गयी है। किन्तु आधुनिक अन्वेषक अभी तक इसका आपाद-मस्तक अन्वेषण कर नहीं सके हैं। अभी उनकी नाप-जोखमें चालीस शिखर आये हैं, जिनकी ऊँचाई सत्रहसे उन्तीस हजार फीट तक है। यह समुद्र-तलसे मानी गयी है।

भारतीय यात्रियोंको जिन शिखरों तक जानेका प्रयोजन पड़ता है या वे जाते हैं उनके नाम और ऊँचाई इस भाँति हैं—(१) कृष्णशैल १७५७२ फीट, (२) यमुनोत्तरी २००३८, (३) श्रीकण्ठ २०१४९, (४) नीलकण्ठ २१६६१, (५) केदारनाथ २२७९०, (६) बदरीनाथ (नर-नारायण) २३२१०, (७) त्रिशूल २३३००, (८) धवलगिरि २६८२६, (९) काञ्चनजङ्घा २८१५३ और (१०)

गौरीशङ्कर (एवरेस्ट) २९००२ फीट हैं। भारतके ब्रह्मपुत्र, सतलज, व्यासा, रावी, कोशी, घाघरा, चनाब, झेलम और गंगादि नद-नदी शैलराजसे ही निर्गत हुए हैं।

आकाशके अन्वेषकोंका अनुमान है कि विष्णुपादाब्ज-सम्भूत, सप्तर्षिमण्डलसे गिरी हुई गंगा गौरीशङ्कर (शिखरों) पर पड़ती है और उसके पार्श्ववर्ती अपर पर्वत-शृङ्गोंके विस्तृत और गहनतम गतोंमें घूमती हुई गंगोत्रीमें पहुँचती है और वहाँसे निर्गत होकर भारतके भूभागोंको वृत्त और पवित्र करती हुई सागरमें सम्मिलित हो जाती है। अनुमानतः गौरीशङ्कर और उनके जटाजूट तथा गंगा आदिका अमिट स्वरूप इसी प्रकारका प्रतीत होता है।

(९)

उपासकोंके लिये इस बातकी नितान्त आवश्यकता होती है कि वह अपने अभीष्ट देवके स्वरूपको हृदयङ्गम करके उसका ध्यान करें। शिव-भक्तोंने उनके चरित्रगत अनेकों स्वरूपोंकी कल्पना की है और उन्हींका ध्यान करते हैं। उनमेंसे कुछ ध्यान यहाँ भी प्रकाशित किये जाते हैं—

१-सदाशिव

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावणैर्मुखैः पञ्चभि-
रस्यक्षैरजितमीशविन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम् ।
शूलं टङ्ककृपाणवप्रदहनाभागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकलोऽज्ज्वलं चिन्तयेत् ॥ १ ॥

२-शिव-पार्वती

वन्दे सिन्दूरवर्णं मणिमुकुटलसञ्चारुचन्द्रावतंसं
भालोद्यन्नेत्रमीशं स्मितमुखकमलं दिव्यभूषाङ्गरागम् ।
वप्रोरुन्यस्तपाणेररुणकुवलयं सन्दधयाः प्रियाया
शृत्तोत्तुङ्गस्तनाग्रे निहितकरतलं वेदटङ्केष्टहस्तम् ॥ २ ॥

३-मृत्युञ्जय

चन्द्रार्कभिविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमाञ्जुप्रभम् ।
कोटीरेन्दुगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत् ॥ ३ ॥

४-महामृत्युञ्जय

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम् ।
अङ्गन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाग्भोजगतं नवेन्दुमुकुटाभातं त्रिनेत्रं भजे ॥ ४ ॥

५-महेश

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तास्तुतममरगणैर्ग्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥५॥

६-पशुपति

मध्याह्नार्कसमप्रभं शशिधरं भीमादृहासोज्ज्वलं
व्यक्षं पद्मगभूषणं शिखिशिखाश्मश्रुस्फुरन्मूर्द्धजम् ।
हस्ताब्जैश्चिशिखं सुसुन्दरमसिं शक्तिं दधानं विभुं
दंष्ट्राभीमचतुर्मुखं पशुपतिं दिव्यस्वरूपं भजे ॥६॥

७-चण्डेश्वर

चण्डेश्वरं रक्ततनुं त्रिनेत्रं रक्तांशुकाक्षं हृदि भावयामि ।
टङ्कं त्रिशूलं स्फटिकाक्षमालां कमण्डलुं बिभ्रतमिन्दुचूडम् ॥७॥

८-अर्द्धनारीश्वर

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं
पाशाखण्डोत्पलकपालकशूलहस्तम् ।
अर्द्धाश्विनेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम् ॥८॥

९-पञ्चवक्त्र

घण्टाकपालशृणिमुण्डकृपाणखेट-
खट्वाङ्गशूलडमरूमभयं दधानम् ।
रक्ताम्बुमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्रं

पञ्चाननाब्जमरुणांशुकभीशमीडे ॥९॥

१०-सद्योजात

कपूरैन्दुनिभं देवं सद्योजातं त्रिलोचनम् ।
हरिणाक्षगुणाभीतिवरहस्तं चतुर्मुखम् ।
बालेन्दुशेखरोल्लासिमुकुटं पश्चिमे यजेत् ॥१०॥

११-विश्वरूप

हविस्थः सर्वभूतानां विश्वरूपो महेश्वरः ।
भक्तानामनुकूपार्थं दर्शनञ्च यथाश्रुतम् ॥११॥

१२-दिग्वाह

कैलासाचलसन्निभं त्रिनयनं पञ्चास्यमम्बायुतं
नीलप्रीवमहीशभूषणधरं व्याघ्रस्वचा प्रावृतम् ।
अक्षस्रग्वरकुण्डिकाभयकरं चान्द्रीं कलां बिभ्रतं
गंगाभोविलसजटं दशभुजं वन्दे महेशं परम् ॥१२॥

सब भूतों (पृथिवी-अप-तेजादि) के हृदयमें स्थित रहने-
वाले विश्वरूप महेश्वर भक्तोंपर कृपा करके यथाश्रुत दर्शन
देते हैं। इसीलिये कल्पनागत स्वरूपका ध्यान किया जाता है।

(१०)

आरम्भमें विचार था कि लेखकी समाप्ति शिवचरित्रके
संकलनसे की जाय। किन्तु इसके समाप्त होनेसे पहले यह
विचार ही समाप्त हो गया। वेदों, पुराणों, इतिहासों, स्तोत्र-
पाठ, पूजा और उपासना आदिके विधानोंमें और अगणित
ग्रन्थोंके मंगलाचरणोंमें शिव-चरित्रका संकलन है।

(१) शिव गँजेड़ी, भँगेड़ी, सुलफावाज, अमलदार,
पोली और आक-धतूरे खानेवाले हैं। (२) वह कामी, क्रोधी,
त्यागी, वैरागी, योगी, भोगी, दयालु, कृपालु, उदार और
भोले भण्डारी हैं। (३) समुद्र-मन्थनके चौदह रत्नोंमें
हालाहल इन्हींको मिला था। (४) भस्मासुरको वर देनेमें
इनसे बड़ी भूल हुई थी। (५) जालन्धरके न मरनेसे
उसकी पतिव्रता स्त्रीको विगाड़नेका जाल इन्हींने ही रचा था।
(६) त्रिपुर और मदन-दहनका दावानलरूप नेत्र इन्हींका है।

(७) सतीके स्वतः चले जानेसे श्वसुरका यज्ञनाश
इन्हींने ही करवाया था। (८) सतीको सीतारूपमें देखकर
इन्हींने उसे त्याग दिया था। (९) उसके मृतदेहको कन्धेपर
रखकर यह पागलकी तरह फिरते रहे थे। (१०) पार्वती-
परिणयनमें इनके अद्भुत रूपको देखकर खास सासू भी
सहम गयी थी। (११) पार्वतीके साथ रहकर इन्हींने
मन्त्र-तन्त्र-यामल और औषधशास्त्रोंकी अपूर्व रचना की थी।
(१२) शुकदेवने इनसे ही अमर कथा पढ़ी थी।

(१३) हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, रावण, कुम्भकर्ण, यज्ञक
और वाणासुरादि इन्हींकी दयासे दिग्विजयी बने थे। (१४)
अपना अमोघ अस्त्र अर्जुनको इन्हींने ही दिया था। (१५)
सीतास्वयंवरका किसीसे भी न हटनेवाला धनुष इन्हींका
पिनाक था। (१६) वृत्रासुरादि अजेय असुरोंका इन्हींने ही
संहार किया था। (१७) पार्वतीके पास जानेसे रोकनेवाले
गणेशका सिर इन्हींने ही उड़ाया था और पत्नीकी प्रसन्नता-
के लिये पुत्रको गजयदन बना दिया था।

(१८) अस्पृश्य भीलके जूँटे जलविन्दु और वासी
विल्वपत्रोंको प्राप्तकर इन्हींने ही उसे शिवसायुज्य दिया था।
(१९) मेघनाद-जैसे दुधमुँहे बच्चोंको इन्हींने ही इन्द्रजीत
बनाया था और (२०) लङ्कासे रामेश्वर आकर प्रतिदिन
दर्शन करनेवाला विभीषण इन्हींका भक्त था। कहाँतक लिखें—

शिव-चरित्रका इसप्रकार प्राबल्य और बाहुल्य
देखकर ही उसकी सूचीमात्र देनेमें भी संकोच हो गया
है और इस लेखको यहीं समाप्त कर दिया है।

लिङ्गपुराण और भगवान् शिव

(लेखक—श्रीचन्द्रावनदासजी बी० ए०, एल-एल० बी०)



लिङ्गपुराणके शिव-अविनाशी, परब्रह्म, निर्दोष, सर्व सृष्टिके स्वामी, निर्गुण, अलख, ईश्वरोंके ईश्वर, सर्वश्रेष्ठ, विश्वम्भर और संहारकर्त्ता हैं। वे परब्रह्म, परतत्त्व, परमात्मा और परज्योति हैं। विष्णु और ब्रह्मा उनसे उत्पन्न हुए हैं। समस्त सृष्टिके आदि-कारण सदाशिव ही हैं।

शिवजीकी सर्वज्ञता, व्यापकता अथवा ईश्वरत्वको सिद्ध करनेके लिये लिङ्गपुराणके अन्तर्गत बीसियों मनोहर कथाएँ हैं। विष्णु और ब्रह्मापर शिवका आधिपत्य कितनी ही मनोरञ्जक कथाओंमें सिद्ध किया गया है। शिव-महस्वका विशद वर्णन करनेके लिये उनमेंसे कुछ ललित कथाओंके आवश्यक अंशोंका सूक्ष्मोल्लेख अनिवार्यतः आवश्यक एवं वाञ्छनीय है।

एक बार ब्रह्माजीका समाधान करते हुए विष्णुने कहा—‘हे ब्रह्माजी! आप ऐसा न कहें। महादेवजी जगत्के हेतु हैं और सब बीज इनके हैं। ये बीजवान् हैं। पुराण-पुरुष परमेश्वर इन्हींको कहते हैं। यह जगत् इनका खिलौना है। बीजवान् ये हैं, आप बीज हैं और हम योनि हैं।’ विष्णुके उपर्युक्त कथनसे यह स्पष्ट है कि शिव ही पूर्ण-पुरुष हैं।

लिङ्गकी उत्पत्ति

एक बार विष्णु और ब्रह्मामें इस विषयपर कि परमेश्वर कौन है, विवाद चल पड़ा। दोनों ही अलग-अलग अपनेको ईश्वर सिद्ध कर रहे थे। ब्रह्मा और विष्णुमें परस्पर कलह हो ही रहा था कि एक अति प्रकाशमान ज्योतिर्लिङ्ग उत्पन्न हुआ। उस लिङ्गके प्रादुर्भावको देखकर दोनोंने उसे अपनी कलह-निवृत्तिका साधन समझ यह निश्चय किया कि जो कोई इस लिङ्गके अन्तिम भागको स्पर्श करे वही परमेश्वर है। वह लिङ्ग नीचे और ऊपर दोनों ओर था। ब्रह्माजी तो हंस बनकर लिङ्गका अग्रभाग ढूँढ़नेको ऊपर उड़े और विष्णुजीने अति विशाल एवं सुदृढ़ वराह बनकर

लिङ्गके नीचेकी ओर प्रवेश किया। इसी भाँति दोनों हजारों वर्षतक चलते रहे, परन्तु लिङ्गका अन्त न पाया। तब दोनों अति व्याकुल हो लौट आये और बार-बार उस परमेश्वरको प्रणामकर उसकी मायासे मोहित हो विचार करने लगे कि यह क्या है कि जिसका कहीं अन्त न आदि! विचार करते-करते एक ओर प्लुतस्वरसे ‘ओ३म्, ओ३म्’ यह शब्द सुन पड़ा। शब्दका अनुसन्धान करके लिङ्गकी दक्षिण ओर देखा तो ॐकारस्वरूप स्वयं शिव दीख पड़े। भगवान् विष्णुने शिवकी स्तुति की। स्तुतिको सुनकर महादेवजी प्रसन्न हो कहने लगे, ‘हम तुमसे प्रसन्न हैं, तुम भय छोड़कर हमारा दर्शन करो। तुम दोनों ही हमारी देहसे उत्पन्न हुए हो। सब सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा हमारे दक्षिण अङ्गसे और विष्णु वाम अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं। हम तुमसे प्रसन्न हैं, वर माँगो।’

विष्णु और ब्रह्माने शिवजीके चरणोंमें दृढ़ भक्ति माँगी।

पार्वती-स्वयंवर

जिस समय हिमालयने पार्वतीका स्वयंवर किया था उस समय उनके निमन्त्रणसे अनेकों देव, नाग, किन्नर आदि इकट्ठे हुए। शिव भी एक बालकके रूपमें आये और पार्वतीके उत्सङ्गमें जाकर बैठ गये। बालकके इस उद्धत व्यवहारको देख सब देवगण बहुत क्रुद्ध हुए और एक-एक करके उस बालकपर प्रहार करनेको अग्रसर हुए। परन्तु वह बालक कोई साधारण बालक न था। वह तो स्वयं सदाशिव थे। सदाशिवने अपने ओजद्वारा देवताओंके अङ्गोंको स्तम्भित एवं अस्त्रोंको कुण्ठित कर दिया। देवताओंके इस पराभवको देखकर ब्रह्माने ध्यानपूर्वक विचार किया तो ज्ञात हुआ कि यह बालक स्वयं शिव है। तब तो वे महादेवजीके चरणोंमें लोट गये और इसप्रकार स्तुति की—

स्रष्टा एवं सर्वलोकानां प्रकृतेश्च प्रवर्तकः।

बुद्धिस्त्वं सर्वलोकानामहङ्कारस्त्वमीश्वरः॥ १॥

भूतानामिन्द्रियाणाञ्च त्वमेवेश प्रवर्तकः।

तवाहं दक्षिणाद्धस्तास्सृष्टः पूर्वं पुरातनः॥ २॥

वामहस्तान्महाबाहो देवो नारायणः प्रभुः।

इयं च प्रकृतिर्वैवी सदा ते सृष्टिकारण॥ ३॥

पक्षीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता ।
 नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्यै नमो नमः ॥ ४ ॥
 प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च भया प्रजाः ।
 देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वयोगमोहिताः ॥ ५ ॥
 कुरु प्रसादमेतेषां यथापूर्वं भवन्त्विमे ।

ब्रह्माजीकी इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर शिवजीने कृपा करके देवताओंको पूर्ववत् पुष्ट कर दिया ।

उपर्युक्त स्तुतिसे ज्ञात होता है कि भगवान् शिवकी ब्रह्माजीने पूर्ण ब्रह्म परमेश्वरके रूपमें ही आराधना की है । उपर्युक्त श्लोकोंमें जिस पुरुषकी बन्दना की गयी है उससे श्रेष्ठतर एवं उच्चतर कोई हो ही नहीं सकता । सर्व लोकोंका स्रष्टा एवं प्रकृतिका प्रवर्तक एकमात्र परब्रह्म परमेश्वर ही हो सकता है ।

शिव-विवाहके समय विष्णुके प्रति ब्रह्माजीके निम्न-लिखित वाक्य उल्लेखनीय हैं ।

‘हे विष्णु ! आप और भगवती पार्वती शिवजीके वाम अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं । शिवजीकी मायाहीसे भगवती हिमालयकी कन्या हुई । सब जगत्की, आपकी और हमारी यह पार्वती माता हैं और शिवजी पिता हैं । शिवजीकी मूर्तियोंसे ही जगत् उत्पन्न हुआ है । भूमि, जल, अग्नि, आकाश, पवन, सूर्य, चन्द्र—ये सब शिवजीकी मूर्तियाँ हैं । यह पार्वती शुक्ल, कृष्ण, लोहित वर्णोंसे युक्त अजा अर्थात् माया हैं और आप भी प्रकृतिरूप हैं । अब हमारे और हिमालयके वचनसे शिवजीके प्रति पार्वतीजीको देना उचित है ।’

इसपर परम शिव-भक्त विष्णुभगवान्ने उठकर शिवजीको प्रणाम किया और उनके चरणोंको धोकर उस चरणोदकको अपने, ब्रह्माजीके और हिमालयके मस्तकपर छिड़का और पार्वतीको शिवजीके अर्पण किया ।

शरभावतार

लिङ्गपुराणके ९६ वें अध्यायमें शरभरूप शिवका नृसिंहरूप विष्णुको परास्त करनेकी कथा बड़ी विचित्र है ।

हिरण्यकशिपुका वध करके विष्णुरूप नृसिंह भयङ्कर गर्जना करने लगे । उनकी भयङ्कर गर्जनाके घोर शब्दसे ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक काँप उठे । सब सिद्ध, साध्य,

ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता भी अपने-अपने प्राण बचानेके लिये भयभीत हो भागे । वे लोकालोक पर्वतके शिखरपरसे अति विनम्र भावसे नृसिंहजीकी स्तुति करने लगे । परन्तु नृसिंहजी इसपर भी शान्त न हुए । तब तो सब देवता अपनी रक्षाके लिये मन्दराचलमें शिवजीके समीप गये । देवताओंकी दीन दशा देखकर शिवजीने प्रसन्नवदन होकर कहा कि हम शीघ्र ही नृसिंहरूप अग्निको शान्त करेंगे ।

देवताओंकी स्तुति सुनकर नृसिंहरूप तेजको शान्त करनेके लिये महादेवजीने भैरवरूप अपने अंश वीरभद्रका स्मरण किया । वीरभद्र उसी क्षण उपस्थित हुए । महादेवजीने वीरभद्रसे कहा—‘वत्स ! इस समय देवताओंको बड़ा भय हो रहा है । इस कारण नृसिंहरूप अग्निको शीघ्र जाकर शान्त करो । पहले तो मीठे वचनोंसे समझाओ, यदि न समझे तो भैरवरूप दिखलाओ ।’

शिवजीकी यह आज्ञा पाकर शान्तरूपसे वीरभद्र नृसिंहके समीप जा उनको समझाने लगे । इस समयका वीरभद्र-विष्णु-संवाद बड़ा मार्मिक है । इसमें भगवान् विष्णुके ऊपर शिवका महत्त्व भलीभाँति प्रदर्शित होता है ।

वीरभद्रने कहा, ‘हे नृसिंहजी ! आपने जगत्के कल्याणके लिये अवतार लिया है और परमेश्वरने भी जगत्की रक्षाका अधिकार आपको दे रखा है । मत्स्यरूप धर आपने इस जगत्की रक्षा की । कूर्म और वराहरूपसे पृथिवीको धारण किया । इस नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुका संहार किया, वामनरूप धर राजा बलिको बाँधा । इसप्रकार जब-जब लोकोंमें दुःख उत्पन्न होता है तब-तब आप अवतार लेकर सब दुःख दूर करते हैं । आप सब जीवोंके उत्पन्न करनेवाले और प्रभु हैं । आपसे अधिक कोई शिवभक्त नहीं ।’

वीरभद्रजीके शान्तिमय वचनोंसे नृसिंहजीकी क्रोधाग्नि शान्त न हुई । उन्होंने उत्तर दिया, ‘वीरभद्र ! तू जहाँसे आया है वहीं चला जा ।’ इसपर नृसिंहजीसे वीरभद्रका बहुत विवाद हुआ । अन्तमें शिवकृपासे वीरभद्रका अति दुर्धर्ष, आकाशतक व्याप्त, बड़ा विस्तृत एवं भयङ्कर रूप हो गया । उस समय शिवजीके उस भयङ्कर तेजस्वी स्वरूपमें सब तेज विलीन हो गये । इस रूपका आधा शरीर मृगका और आधा शरभ पक्षीका था । शरभरूप शिव अपनी पुच्छमें नृसिंहको लपेटकर छातीमें चोंचका प्रहार करते हुए जैसे सर्पको गरुड़ ले उड़े, ऐसे ले उड़े । फिर तो नृसिंहजीने शिवजीसे क्षमा-याचना की और अति विनम्रभावसे स्तुति की ।

सुदर्शन-चक्रकी कथा

एक बार शिवजीको प्रसन्न करनेके हेतु विष्णुने बड़ा उग्र तप किया। उस समय उन्होंने 'शिवसहस्रनाम-स्तोत्र' के लिये शिवजीको अर्पित करनेके अर्थ एक सहस्र कमल एकत्रित किये। शिवजीने कौतुकवश एक कमल उन कमलों-मेंसे लुप्त कर दिया। जब सहस्रनामका उच्चारण समाप्त करनेको हुए तो विष्णुको ज्ञात हुआ कि एक कमल कम है। वस उन्होंने उसके स्थानपर अपना नेत्र निकालकर शिवजीको समर्पित कर दिया। फिर तो देवादिदेवने प्रसन्न हो विष्णुजीको दर्शन दिया और उनको उनके उन नेत्रोंकी जगह कमल-सरीखे नेत्र प्रदान किये। तभीसे विष्णुका नाम पुण्डरीकाक्ष पड़ा। सुदर्शन-चक्र भी उसी समय शिवजीने विष्णुको दिया।

इसी प्रकार और भी कई कथाएँ लिङ्गपुराणमें ऐसी हैं

जिनमें देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णु और ब्रह्मासे शिवका उत्कर्ष दिखाया गया है।

वस्तुतः एकेश्वरवादपर हिन्दू-सिद्धान्त बहुत ही स्पष्ट है। लिङ्गपुराणमें जिसप्रकार शिवको परब्रह्म परमात्मास्वरूप माना है उसी प्रकार अन्य पुराणोंने विष्णु, देवी आदिको सर्वशक्तिमान् माना है। परन्तु सर्वशक्तिमान्, परब्रह्म, परमेश्वरस्वरूप है एक ही व्यक्ति। किसी भी पुराणमें परमेश्वरकी शक्तिका भागीदार नहीं मिलता। पूर्ण पुरुषकी ही भिन्न-भिन्न नामोंसे उपासना की गयी है। कहीं उसको विष्णु कहते हैं कहीं ब्रह्मा, कहीं शिव और कहीं गणेश। जैसी जिसकी रुचि हुई उपास्यदेवका नाम रख लिया और लगा उसका गुणगान करके अपना जन्म सफल करने।

हिन्दू-विचारोंका अद्भुत ऐक्य ही हिन्दू-धर्मकी महान् विशेषता है।

नटराज-उपाधिके रहस्य*

(लेखक—श्री 'प्रसन्न')

किसी समय प्रदोषकालमें जब देवगण रजतगिरि कैलासपर 'नटराज' शिवके ताण्डवमें सम्मिलित हुए और जगज्जननी आद्या श्रीगौरीजी रत्नसिंहासनपर बैठकर अपनी अध्यक्षतामें ताण्डव करानेको तैयार हुईं। ठीक उसी समय वहाँ श्रीनारदजी महाराज भी पहुँच गये और अपनी वीणाके साथ ताण्डवमें सम्मिलित हुए। तदनन्तर श्रीशिवजी ताण्डव-नृत्य करने लगे, श्रीसरस्वतीजी वीणा बजाने लगीं, इन्द्र महाराज वंशी बजाने लगे, ब्रह्माजी हाथसे ताल देने लगे और लक्ष्मीजी आगे-आगे गाने लगीं, विष्णुभगवान् मृदङ्ग बजाने लगे और बचे हुए देवगण तथा गन्धर्व, यक्ष, पन्नग, उरग, सिद्ध, विद्याधर, अप्सराएँ सभी चारों ओर स्तुतिमें लीन हो गये। बड़े ही आनन्दके साथ ताण्डव सम्पन्न हुआ। उस समय श्रीआद्या भगवती (महाकाली) पार्वतीजी परम प्रसन्न हुईं और उन्होंने श्रीशिवजी (महाकाल) से पूछा कि आप क्या चाहते हैं? आज बड़ा ही आनन्द हुआ। फिर सब

देवोंसे, विशेषकर नारदजीसे प्रेरित होकर उन्होंने यह वर माँगा कि 'हे देवि ! इस आनन्दको केवल हमीं लोग लेते हैं, किन्तु पृथिवीतलमें एक ही नहीं, हजारों भक्त इस आनन्दसे तथा नृत्य-दर्शनसे वञ्चित रहते हैं, अतएव मृत्युलोकमें भी जिस प्रकार मनुष्य इस आनन्दको प्राप्त करें ऐसा कीजिये, किन्तु मैं अपने ताण्डवको समाप्त करूँगा और 'लास्य' करूँगा।' इस बातको सुनकर श्रीआद्या भुवनेश्वरी महाकालीने 'एवमस्तु' कहा और देवगणोंसे मनुष्य-अवतार लेनेको कहा और स्वयं श्यामा (आद्या महाकाली) श्यामसुन्दरका अवतार लेकर श्रीवृन्दावनधाममें आयीं और श्रीशिवजी (महाकाल) ने राधाजीका अवतार लेकर व्रजमें जन्म लिया और 'देवदुर्लभ रासमण्डल' की आयोजना की और वही 'नटराज' की उपाधि यहाँ श्यामसुन्दरको दी गयी। बोलो नटराज भगवान्की जय !

* यह कथा श्रीरामकृष्ण परमहंसजी महाराजको शिष्य-परम्परासे किसी वयोवृद्ध परम भक्त वैष्णवने सुनी थी और मुझे काशीमें 'श्रीशिव-पार्वती' तथा 'कृष्ण-राधा' में ऐक्यभाव है, इसलिये उन्होंने समझायी थी और किसी उपपुराणका नाम भी बताया था, वह मुझे स्मरण नहीं है। भक्तजन लाभ उठावें, इसीलिये इसे लिख दिया।

—लेखक

श्रीश्रीमृत्युञ्जय-शिव-तत्त्व

(पूज्यपाद ब्रह्मीभूत भार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योगप्रयानन्द-स्वामीजीके उपदेशसे)

मृत्यु तथा अमृतत्वका स्वरूप

जिज्ञासु-मृत्युञ्जय शिवका स्वरूप क्या है और उनकी उपासना कैसे की जाती है, इस सम्बन्धमें कुछ उपदेश देकर मुझे कृतार्थ कीजिये ।

वक्ता-जिन्होंने मृत्युपर जय प्राप्त की है, जिन्होंने अमृतत्वका लाभ किया है, वे मृत्युञ्जय हैं । अतः मृत्युञ्जयका स्वरूप जाननेके लिये पहले मृत्यु क्या है और अमृतत्व किसे कहते हैं यह जानना होगा । शास्त्रोंमें श्रीमृत्युञ्जय महादेवके ध्यानके जो श्लोक मिलते हैं उनसे तथा वेदोक्त त्र्यम्बक-मन्त्रसे मृत्युञ्जय शिवका स्वरूप जाना जा सकता है । उनके स्वरूपको पूर्णतया जाननेके लिये श्रीत्र्यम्बकदेवके व्यापक रूपका पता लगाना होगा; त्र्यम्बकके साथ प्रणवका, व्यादृतिका तथा गायत्रीका क्या सम्बन्ध है, यह जानना होगा और विशिष्ट साधनाके द्वारा उसकी उपलब्धि करनी होगी ।

जिज्ञासु-तो पहले मृत्यु तथा अमृतत्वके सम्बन्धमें ही कुछ उपदेश दीजिये ।

वक्ता-यदि मैं तुमसे पूछूँ कि मृत्यु क्या चीज है, मृत्युसे तुम क्या समझते हो, तो इसका उत्तर तुम क्या दोगे ?

जिज्ञासु-मनुष्यकी आयु समाप्त हो जानेपर इस शरीरसे उसके प्राण निकल जाते हैं, तब यह शरीर निश्चेष्ट हो जाता है, इसके अन्दर चेतना (Consciousness) का कोई लक्षण नहीं दिखायी देता । उस समय हम कहते हैं कि उसकी मृत्यु हो गयी । स्थूल देहसे लिङ्ग-शरीरका अलग हो जाना ही मृत्यु है । सुना है, मृत्युके उपरान्त जीव नया शरीर धारण करता है ।

वक्ता-तुमने जो कुछ कहा वह बिल्कुल यथार्थ है । किन्तु मृत्युके तत्त्वको तुमने अबतक भलीभाँति नहीं समझा । इसके लिये पहले यह जान लेना होगा कि प्राण किसे कहते हैं और शरीरके साथ उसका संयोग और वियोग किस-प्रकार होता है तथा लिङ्ग-शरीरका स्वरूप क्या है ? इस सम्बन्धमें अभी कुछ न कहकर मृत्यु क्या है, इस विषयमें संक्षेपसे कुछ कहूँगा । पहले हमें यह देखना चाहिये कि मृत्युके समान कौन-सी वस्तु है जिससे हम भलीभाँति

परिचित हैं ? क्या निद्रा मृत्युके समान नहीं है ? इन दोनोंकी समानतापर विचार करो । जीवात्मा अपने कर्मानुसार ही एक स्थूल शरीरसे संयुक्त होकर फिर उसीसे वियुक्त होता है । मृत्युके बाद जब जीवात्मा दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है तब साधारणतया उसे अपने पूर्व-जन्मका स्मरण नहीं रहता । हम दिनमें कितने लोगोंसे मिलते हैं, कितने प्रकारके काम करते हैं; किन्तु रात्रिमें सो जानेके बाद हम सब कुछ भूल जाते हैं । सबेरा होनेपर जब हम जागते हैं तब मानों हमारा नया जन्म होता है । तो फिर हमलोग निद्राको मृत्यु क्यों नहीं कहते ? बात यह है कि प्रातःकाल शय्यासे उठनेपर हमें याद आती है कि रात्रिमें हम ही इस शय्यापर सोये थे और हमीं पिछले दिन अमुक-अमुक कार्य किये थे और हमीं अमुक-अमुक लोगोंसे मिले थे । अतः निद्रा और मृत्युमें यह अन्तर है कि निद्राके अन्तमें जागने-पर निद्रासे पहलेकी बातें याद आ जाती हैं, किन्तु मृत्युके बाद दूसरा जन्म होनेपर मृत्युसे पहलेके वृत्तान्त साधारणतः याद नहीं रहते ।

वर्तमान शरीरको त्यागकर शरीरान्तर ग्रहण करनेपर भी जिन्हें पूर्व जन्मकी स्मृति बनी रहती है उनकी मृत्यु मृत्यु नहीं कही जा सकती, क्योंकि उनके ज्ञान (Consciousness) की सन्तति (Continuity) विच्छिन्न नहीं होती । मुक्त योगियोंकी यह अवस्था होती है । इसीलिये उन्हें 'इच्छामृत्यु', 'अमर' इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं । उन्होंने अमृतत्व लाभ कर लिया है । नये-नये शरीरोंमें प्रवेश करनेपर भी उनका ज्ञान तथा पूर्व जन्मकी स्मृति लुप्त नहीं होती । वे 'जातिस्मर' कहलाते हैं । ऐसे पुरुष संसारके बन्धनसे मुक्त हो जानेपर भी जीवोंके कल्याणके हेतु एक या अधिक बार शरीर धारण करते हैं, जगत्में आगमन करते हैं । ये लोग मृत्यु तथा प्राणतत्त्वपर विजय प्राप्त किये रहते हैं, मृत्यु इनकी वंशवर्तिनी होकर रहती है । *

* इन्हीं लोगोंको लक्ष्य करके वेदने कहा है—

यस्तद्देद यत आबभूव सन्धाञ्च यां सन्दधे ब्रह्मणेषः ।

रमते तस्मिन्नुत जीर्णं शयाने नैनं जहात्यहस्स पूर्वेषु ॥

—तैत्तिरीय आरण्यक

एक प्रकारका अमृतत्व और भी है। इसमें योगी सदा एक ही भावमें रहते हैं (इस भावका कभी परिवर्तन नहीं होता), शरीरसे शरीरान्तरमें सञ्चरण नहीं करते। यह नित्य, सर्वगत, ज्ञानमय, आनन्दमय भाव है। जिनकी जगत्का कल्याण करनेकी वासना भी नष्ट हो जाती है वे सदाके लिये इस आनन्दमय अवस्थामें रहते हैं।

मृत्युञ्जय शिवके ध्यान-वाक्यका अर्थ; अमृतत्व-का स्वरूप

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृततरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधत्तं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्गन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाग्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे ॥

त्र्यम्बकदेव अष्टभुज हैं। उनके एक हाथमें अक्षमाला और दूसरेमें मृगमुद्रा है; दो हाथोंसे दो कलशोंमें अमृतरस लेकर उससे अपने मस्तकको प्लावित कर रहे हैं और दो हाथोंसे उन्हीं कलशोंको धामे हुए हैं। शेष दो हाथ उन्होंने अपने अङ्कपर रख छोड़े हैं और उनमें दो अमृतपूर्ण घट हैं। वे श्वेत पद्मपर विराजमान हैं, मुकुटपर बालचन्द्र सुशोभित है, ललाटपर तीन नेत्र शोभायमान हैं। ऐसे देवाधिदेव कैलासपति श्रीशङ्करकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

अब इस ध्यानके भावको हृदयङ्गम करनेकी चेष्टा करो। शिवजीके अङ्कपर दो हाथ रखे हुए हैं जिनपर दो अमृतपूर्ण कलश हैं। इसका भाव यह है कि ऊपर जो दो प्रकारके अमृतत्वकी बात कही गयी है उन दोनोंके ही श्री-शङ्कर परम अधिकारी हैं (इस प्रसंगमें पुरुषसूक्तके 'अमृत-त्वस्थेशानो' इन पदोंकी ओर लक्ष्य करो)। उक्त दोनों प्रकारके अमृतत्व इनके करतलगत हैं, उपासककी उपासना-से प्रसन्न होकर ये उसे दोनों ही दे सकते हैं। दो हाथोंमें दो अमृतपूर्ण (अमृतसे सदा भरे हुए) कलश धारण किये हुए हैं, जिसका अर्थ यह है कि उन्हें अमृतका कभी टोटा नहीं रहता, और दो कलशोंसे अपने ऊपर अमृत ढाऊ रहे हैं जिसका अर्थ यह है कि वे सदा अमृतमें सराबोर रहते हैं, स्वयं अमृतरूप ही हैं।

मध्यमें विशुद्ध सत्त्व और दोनों पार्श्वमें रज और तम ('मध्ये विशुद्धसत्त्वमुभयतो रजस्तमसी') यही ब्रह्म अथवा परमात्माका व्यावहारिक या जागतिक रूप है। जो लोग रज

और तमसे निवृत्त होकर मध्यस्थित विशुद्ध सत्त्वको पूर्णरूप-से आश्रय कर सकते हैं वे ही जगत्के परिवर्तन अथवा मृत्युके राज्यसे त्राण पा सकते हैं। अज्ञानयुक्त (देहादि प्रकृतिके परिवर्तनके साथ मैं भी परिवर्तित हो रहा हूँ इस-प्रकारका ज्ञान ही अज्ञान है) परिवर्तनका नाम ही मृत्यु है और इससे विपरीत ज्ञान (प्रकृतिके परिवर्तनके साथ मेरा परिवर्तन नहीं होता) ही अमृतत्व है। परिवर्तनशील 'मैं' के अन्दर एक नित्य स्थिर 'मैं' है जिसका परिवर्तन नहीं होता और जो इन सारे परिवर्तनोंका साक्षी है, उन्हें परिवर्तनरूपसे जानता है (स्थिर पदार्थ ही परिवर्तनको जान सकता है, जो स्वयं परिवर्तनशील है वह परिवर्तनको नहीं जान सकता)।

जिज्ञासु-जलकी धाराके द्वारा इस भाषको अभिव्यक्त करनेका क्या प्रयोजन है ?

वक्ता-जलके प्रवाहके तत्त्वको अच्छी तरह समझनेकी चेष्टा करो। 'प्रवाह' 'नदी' 'नाड़ी' आदि शब्द स्पन्दन अथवा गति किंवा क्रियाके वाचक हैं। जिन दो धाराओंके द्वारा शिवजी अपने मस्तकको सदा आप्लावित करते रहते हैं वे गङ्गा और यमुनाके प्रवाहकी, इडा और पिङ्गला-नाड़ियोंकी अथवा तम और रज-शक्तियोंकी वाचक हैं। ये दो शक्तियाँ ही जगत्का, जागतिक क्रियामात्रका कारण हैं। ये शक्तियाँ जब साम्यावस्थामें रहती हैं, जब इनके क्रियाफलका पृथक्-रूपसे अनुभव नहीं होता तभी प्रकृतिज्ञानरूप सरस्वतीका प्रवाह दृष्टिगोचर होता है; यही सुषुम्णा अथवा विशुद्ध सत्त्व है। त्र्यम्बकदेव इन दो धाराओंको शुद्धसत्त्वरूप अपने मस्तकपर साम्यावस्थापन कर रहे हैं। इसप्रकार वे जागतिक मृत्युके राज्यका अतिक्रमकर एक भावसे अमर होकर विराजमान हैं।*

* श्रुति कहती है-सित (शुभ्र अर्थात् गङ्गा) और असित (कृष्ण अर्थात् यमुना) ये दो नदियाँ जहाँपर मिली हैं वहाँपर स्नान करनेवाले लोग स्वर्गलोकमें जाते हैं; और जो भाग्यवान् शानीजन वहाँपर शरीर छोड़ने हैं वे अमृतत्वको प्राप्त होते हैं। यही आध्यात्मिक त्रिवेणी अथवा प्रयागतीर्थ है, इसीका आधि-भौतिक रूप बाह्य त्रिवेणी अथवा प्रयाग है—

'सितासिते सरिते यत्र सङ्गते तत्र प्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तत्त्वं विसृजन्ति धारास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते ॥'



शैव-सम्प्रदाय

(लेखक—श्रीयुत चिन्ताहरण चक्रवर्ती एम० ए०)

शैव-मतके जितने अनुयायी हैं—जो भगवान् शङ्करके विविध स्वरूपों एवं आकारोंकी उपासना करते हैं—उतने अन्य किसी देवताके उपासक नहीं हैं। सुदूर अतीत कालमें ब्राह्मणों अथवा अन्य किसी आदिम जातिके लोगोंमें इसकी उत्पत्ति होकर इसके दीर्घ जीवनकालमें इसके अन्दर कई परिवर्तन हो चुके हैं। इसके फलस्वरूप बहुत समय पहले ही इसके अन्दर कई सम्प्रदायोंकी सृष्टि हो गयी। इनमेंसे बहुत-से सम्प्रदाय तो लुप्त हो गये और जो कुछ बचे हैं उनके आचारों तथा सिद्धान्तोंका निःशेष एवं सविस्तर वर्णन करनेवाले ग्रन्थ बहुत थोड़े हैं। सच पूछिये तो इनमेंसे अधिकांश सम्प्रदायोंका शृङ्खलाबद्ध परिचय तो कहीं मिलता ही नहीं। अवश्य ही सभी पुराणों, तन्त्रों, 'भरतकद्वित्रिंशिका', 'क्षेमेन्द्रकृत 'नर्ममाला', 'माधवाचार्यरचित 'सर्वदर्शनसंग्रह', हरिमदसूरिप्रणीत 'षड्दर्शनसमुच्चय' की गुणरत्नविरचित टीका तथा विविध देशी भाषाओंके कई ग्रन्थोंमें भी इनके सम्बन्धमें बहुत कुछ उपयोगी वृत्तान्त इतस्ततः बिखरा हुआ मिलता है।

हमारा काम यह है कि इन सारे वृत्तान्तोंको एकत्रकर उनकी छान-बीन करें और उन-उन सम्प्रदायोंका सुसम्बद्ध इतिहास उनके आचारों तथा साधनोंके विशद वर्णनके सहित 'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंके सामने रखें। इससे भारतवर्षके धार्मिक इतिहासके अनुसन्धानमें पूरी सहायता मिलेगी।

इस समय इन सम्प्रदायोंकी यह दशा है कि इनके आचारों तथा सिद्धान्तोंकी तो बात ही अलग रही इनकी निश्चित संख्या, नामों, मूलस्थानों तथा आदि प्रवर्तकोंतकका पता नहीं है। इसीलिये विद्वानोंमें इनके सम्बन्धमें बहुत कुछ मतभेद हो गया है। मैं कतिपय विशिष्ट उदाहरण देकर अपने वक्तव्यका स्पष्टीकरण करूँगा।

महर्षि वादरायणप्रणीत ब्रह्मसूत्रके शाङ्करभाष्यपर वाचस्पति मिश्रने जो 'भामती' नामक टीका लिखी है उसके अन्तर्गत दूसरे अध्यायके दूसरे पादके सैतीसवें सूत्रकी व्याख्यामें शैव, पाशुपत, कारुणिक-सिद्धान्ती एवं कापालिक—इन चार शैव-सम्प्रदायोंका उल्लेख किया गया है। उसी

सूत्रकी टीकामें टीकाकार भास्कराचार्यने कारुणिक-सिद्धान्तियोंके स्थानमें 'काठक-सिद्धान्ती' यह नाम दिया है। निम्बार्क-सम्प्रदायके अनुयायी श्रीनिवासने अपनी 'वेदान्तकौस्तुभ' नामक टीकामें तथा वेदोत्तमने अपनी 'पाञ्चरात्रप्रामाण्य' नामक टीकामें उसी सूत्रकी व्याख्यामें 'काठक' अथवा 'कारुणिक' के स्थानमें एक तीसरे ही नाम—'कालामुख' का निर्देश किया है।

इसी प्रकार 'नकुलीश', 'लङ्कुलीश' इत्यादि कई नामोंसे पुकारे जानेवाले सम्प्रदायका असली नाम क्या है, इसका पता लगाना भी कठिन है। क्योंकि अनुमानतः शैवोंके अन्दर ही एक विरोधी सम्प्रदाय था जिसका 'नाकुल' 'लागुड' अथवा 'लाङ्गल' इस नामसे निर्देश किया गया है। पता नहीं, इस सम्प्रदायके साथ पूर्वोक्त सम्प्रदायका कोई सम्बन्ध था या नहीं।

इसका भी कुछ पता नहीं कि ऊपर लिखे अनुसार इन सम्प्रदायोंकी संख्या चार यह कयने निर्धारित हुई। कम-से-कम गुणरत्नविरचित षड्दर्शन-समुच्चयकी टीका तथा अन्यान्य अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थोंमें इन चारके अतिरिक्त अनेकों दूसरे सम्प्रदायोंका उल्लेख मिलता है। इस बातका भी निर्णय करनेका हमारे पास कोई साधन नहीं है कि ये सारे-के-सारे सम्प्रदाय उपर्युक्त चार प्रधान सम्प्रदायोंके ही अवान्तर-भेद अथवा उनसे सम्बद्ध सम्प्रदाय थे अथवा स्वतन्त्र सम्प्रदाय थे। सम्भवतः 'लङ्कुलीश' सम्प्रदाय तो, जिसे मध्वाचार्यने 'पाशुपत' नामसे निर्दिष्ट किया है, पाशुपत-सम्प्रदायका ही एक अवान्तर सम्प्रदाय था।

अम्पट्टय दीक्षितने अपनी 'शिवार्कमणिदीपिका' नामक ब्रह्मसूत्रकी टीकामें दूसरे अध्यायके दूसरे पादके अड़तीसवें सूत्रकी व्याख्यामें वायुसंहितानामक एक ग्रन्थका उल्लेख किया है। उसमें तथा वैसे ही कतिपय दूसरे ग्रन्थोंमें शैवों तथा शैव-ग्रन्थोंके वैदिक तथा अवैदिक इसप्रकार दो विभाग

१ इस सम्बन्धमें 'Indian Historical Quarterly, Vol. VIII, p. 221, पर दिया हुआ लेखकका निबन्ध देखना चाहिये।

२ शैवागमोऽपि द्विविधः श्रौतोऽथैतत्त्व स स्मृतः।

किये हैं। सारे शैव-सम्प्रदायोंको इसप्रकारके दो विभागोंमें विभक्त करना सहज कार्य नहीं है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि धर्मके नामपर (नरमुण्डों, चिताभस्म तथा सुरा इत्यादिके उपयोगकी भाँति) विविध प्रकारके बीभत्स आचारोंका उपदेश देनेवाले सम्प्रदाय अवैदिक माने जाने लगे। लक्ष्मी-धरने श्रीशङ्कराचार्य-प्रणीत 'सौन्दर्य-लहरी' की स्वरचित टीकामें इसी बातको लेकर कापालिकोंकी गर्हणा की है।

इन्हीं सम्प्रदायोंमेंसे एक सम्प्रदाय बौद्धोंमें मिल गया अथवा बौद्धोंसे प्रभावित हुआ और उसीसे नाथों तथा जोगियोंका सम्प्रदाय बन गया जिसके अनुयायी सारे भारतवर्षमें पाये जाते हैं। भारतके पूर्वीय प्रांतोंमें चैतके महीनेमें 'गाजन' अथवा 'चरक' नामसे प्रसिद्ध एक शिवजीका त्यौहार होता है जिसे नीच जातिके लोग बड़ी धूम-धामसे

मनाते हैं। उसके अन्दर शैव एवं बौद्ध भावोंका सम्मिश्रण मालूम होता है।

शैवोंका एक सम्प्रदाय वैष्णवोंके भावोंसे भी प्रभावित हुआ, ऐसा प्रतीत होता है। प्राचीन बङ्गभाषाके साहित्यमें भगवान् श्रीकृष्णकी शृङ्गार-लीलाओंकी भाँति शिवके शृङ्गारका भी खूब वर्णन होने लगा। यहाँतक कि कई ग्रन्थोंके प्रारम्भमें मङ्गलाचरणके रूपमें भी इसका वर्णन मिलता है। संस्कृतमें भी जयदेवरचित गीतगोविन्दका अनुकरणकर लोगोंने शिवजीके शृङ्गार-सम्बन्धी काव्योंकी रचना की।

परन्तु आपाततः बौद्ध तथा वैष्णव-भावोंसे प्रभावित दीखनेवाले इन सम्प्रदायोंके मूल तथा इतिहासके सम्बन्धमें कोई निश्चित मत स्थिर करनेके पूर्व इन सारी बातोंकी पूरे तौरसे तथा सूक्ष्म रीतिसे जाँच करनी होगी।

शैव-मतकी प्राचीनता

(लेखक—श्रीधुत वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार एम० ए०, लेखवर, मद्रास-विश्वविद्यालय)



रतवर्षके विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंके मूल तथा इतिहासके सम्बन्धकी खोजसे बढ़कर दूसरा रोचक अथवा चित्ताकर्षक विषय नहीं है। 'हिन्दू-धर्म' शब्द बहुत अधिक व्यापक है, इसके अन्दर इतने अधिक सम्प्रदायोंके धार्मिक सिद्धान्तों तथा आदर्शोंका समावेश है कि उनका ठीक-ठीक उल्लेख भी नहीं हो सकता। साधारणतया सब लोग इस धर्मके शैव-मत तथा वैष्णव-मत इसप्रकार दो विभाग किया करते हैं। कुछ लोग इनमें शाक्त-मत और जोड़कर तीन विभाग करते हैं, किन्तु जिन लोगोंने भारतवर्षके धार्मिक इतिहासका परिशीलन किया है वे इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि शाक्तोंका मत शैव-मतके अन्तर्गत ही है। जगद्गुरु श्रीआद्य शंकराचार्यने अपनी 'सौन्दर्य-लहरी' नामक अमर कृतिके निम्नलिखित पद्यांशमें इस भावको भलीभाँति व्यञ्जित किया है—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्'

इसका अभिप्राय यह है कि शिव और शक्ति बल एवं पराक्रमके स्रोत हैं। शिव-शक्तिके इस युगल स्वरूपको 'सदा-शिव' भी कह सकते हैं।

'शिव' शब्द व्यापक, सुख एवं शान्तिका वाचक है। वेदोंमें उन्हें 'रुद्र' कहा गया है। रुद्र और शिव भिन्न हैं अथवा अभिन्न, इस विषयमें विद्वानोंका परस्पर मतभेद है। किन्तु इस समय हम पाठकोंका उसकी ओर लक्ष्य नहीं करायेंगे। प्रारम्भमें ही यह समझ लेनेकी बात है कि आद्य शंकराचार्यसे लेकर (जिनकी गोविन्दभक्तिके सम्बन्धमें किसीको कोई शंका न तो है और न होनी ही चाहिये) आधुनिक आचार्यों एवं गुरुओंतक एक प्रसिद्ध आचार्य-परम्पराके द्वारा वैष्णव-मतका पृष्ठ-पोषण हुआ, किन्तु शैव-मतके सम्बन्धमें यह बात नहीं कही जा सकती। सच पूछिये तो प्राचीन शैव-मत मध्यकालीन कतिपय तामिल सन्तोंको छोड़कर बिना किसी आचार्यकी सहायताके ही जगत्में प्रचलित हो गया। शिवोपासनाका सबसे प्राचीन रूप लिङ्गपूजा ही मालूम होती है। इसका प्रमाण यह है कि हमारे सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदसंहिता (७।२९।५ एवं १०।९९।३ तथा निरुक्त ४।१९)में 'शिश्रदेवाः' इस पदका प्रयोग मिलता है। कुछ विद्वान् इस बातको स्वीकार नहीं करते कि इस पदका यही अर्थ है जो हमने समझा है। खेदका विषय है कि सायणाचार्यने अपने भाष्यमें इस विषयपर यथेष्ट प्रकाश नहीं डाला। किन्तु फिर भी सर्वसाधारणकी मान्यताके अनुसार इस पदसे यही ध्वनि निकलती है कि जिस रूपमें

आज भारतवर्षके सारे प्रान्तोंमें लिङ्गपूजा होती है उसी रूपमें उस समय भी प्रचलित थी। (देखिये पी० टी० श्रीनिवास आयङ्गारकी 'Stone Age in India' नामक पुस्तक पृष्ठ ४९)।

प्राचीन घटनाओं तथा वस्तुओंका, विशेषकर प्राचीन भारतके लेखों तथा स्मृति-चिह्नोंका कालनिर्णय करना आसान नहीं है। पुरातत्त्ववेत्ताओंने अपनी खोजद्वारा एक ऐसी प्रौढ़ सभ्यताका पता लगाया है जो भारतीय इतिहासके ताम्र-युग (Chalcolithic Period) में सिन्धु-नदीके तट-प्रदेशमें प्रचलित थी। लोगोंकी धारणा है कि वह सभ्यता आर्य-सभ्यतासे पुरानी थी और वैदिक युगसे भी बहुत पहले विद्यमान थी। हमारी समझमें सिन्धुनदके तटप्रान्तकी सभ्यता, जिसके चिह्न मोहजोडाड़ो (Mohenjodaro) तथा हरप्पा (Harappa) इन स्थानोंमें मिले हैं, ऋग्वेदके पीछेकी है। क्योंकि ऋग्वेदके परवर्ती कालकी बहुत-सी बातें उसके अन्दर मिलती हैं। हमारी यह मान्यता किन कारणों-से हुई, इस विषयकी आलोचना हम यहाँ नहीं करेंगे। लिङ्गपूजा ऋग्वेदके समयमें भी प्रचलित थी और पञ्जाबमें जो प्राचीन स्मृति-चिह्न मिले हैं उनसे भी यही बात सूचित होती है। (देखिये Plate XIII in Vol. I of Mohenjodaro and the Indus Civilization, edited by Sir John Marshall)। इनके अन्दर शिव और शक्तिके प्रतीकरूपमें लिङ्ग और योनिके चिह्न मिलते हैं जो शैव-मतके प्रधान अंग हैं। ये जीवनके उत्पादक तत्त्वोंके परिचायक हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओंने जो ये चिह्न खोज निकाले हैं उनसे भी लिङ्गपूजाकी प्राचीनता सिद्ध होती है जो शैव-मतका विशिष्ट स्वरूप है। लिङ्गपूजाकी प्राचीनताके अतिरिक्त सिन्धु-नदके तटप्रान्तमें मिले हुए चिह्न प्राचीन शैव-मतकी एक और विशेषताको बतलाते हैं। वह है एक प्रकारका योग जो प्राचीन शैव-मतका दूसरा प्रधान अंग है। वैदिक साहित्यमें शिवका एक नाम 'पशुपति' भी पाया जाता है। योगका आदिम स्वरूप प्राणायाम मालूम होता है जिसे द्विजातिमात्रको सन्ध्योपासन-के समय करनेकी आज्ञा दी गयी है। वायुपुराणमें, जो पुराणोंमें सबसे प्राचीन माना जाता है, इस बातका प्रमाण मिलता है कि प्राणायामकी यह सरल विधि 'पाशुपत योग'के नामसे प्रसिद्ध थी। वायुपुराणमें पाशुपत योगका जो वर्णन दिया हुआ है वह योगासनमें स्थित देवताओंकी पाषाण-मूर्तिसे मिलता है (देखिये R. P. Chanda in the

Memoir of Ar. Sur. India Vol. 42)। इसप्रकार ताम्रयुगके समयमें शैव-मतके दो प्रधान अंगों—लिङ्गपूजा एवं योगसाधनाका ईसासे ३००० वर्ष पूर्व सारे भारतवर्षमें नहीं तो कम-से-कम पञ्जाबमें अवश्य प्रचार था। इसके परवर्ती साहित्यमें शिव 'योगेश्वर' कहलाने लगे (देखिये नैषध काव्य १२।३८, जिसकी व्याख्या टीकाकार मल्लिनाथ इसप्रकार करते हैं—'स्फाटिकलिङ्गे योगेश्वर इति प्रसिद्धिः')। भारतके दोनों प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थों (रामायण एवं महा-भारत) में लिङ्गपूजाका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। महाभारत (७।२००, २०१) में एक ऐसी कथा आती है कि जब द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने देखा कि श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्धमें बेदाग निकले जा रहे हैं तब उसने दुखी एवं खिन्न होकर व्यासदेवसे पूछा कि इनका यध कैसे नहीं हुआ? व्यासजीने उत्तर दिया कि श्रीकृष्ण शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं और शिवजीके अनन्य भक्त होनेके कारण महादेव उनकी रक्षा करते हैं। महाभारतके इन अध्यायोंकी कुछ लोगोंने दूसरे ही ढंगसे व्याख्या की है। कुछ लोग तो उन्हें प्रक्षिप्त मान बैठे हैं और कुछ लोगोंका मत यह है कि उनपर किसी साम्प्रदायिक मनुष्यका हाथ जरूर लगा है (देखिये J. R. A. S. 1907 PP, 337-339)। इन श्लोकोंमें इसप्रकारकी कोई-सी बात भी नहीं है। प्रस्तुत विषयके साथ उनकी संगति खूब बैठती है। अश्वत्थामा सचमुच हैरान हो जाता है और यह जाननेके लिये आतुर हो उठता है कि श्रीकृष्ण और अर्जुनके इतने बलवान् होनेका क्या कारण है! उसे जो उत्तर मिलता है वह उस युगकी मनोवृत्तिके बिल्कुल अनुकूल था। उसमें साम्प्रदायिकताकी कहीं गन्ध भी मालूम नहीं होती। उलटी उससे शैव-मतकी प्राचीनता तथा एक प्रकारकी अमेदबुद्धिका परिचय मिलता है जो साम्प्रदायिकताके बिल्कुल विपरीत है।

महाभारतके एक दूसरे स्थल (१२।१४, १७) में मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए पितामह भीष्म युधिष्ठिरको उच्चतम सिद्धान्तों एवं आदर्शोंका उपदेश देते हुए यह समझाते हैं कि तुम उदास न हो किन्तु प्रसन्नचित्त रहो। अपने महान् उपदेशमें वे शिवजीकी महिमाका बखान करते हैं तथा उनके विविध स्वरूपोंके वाचक नामोंके चिन्तनका माहात्म्य बतलाते हैं। महाभारतमें साम्प्रदायिकताके न होनेका यह दूसरा प्रमाण है। रामायणके अन्दर भी धार्मिक बातोंमें इसी प्रकारका निष्पक्षभाव दृष्टिगोचर होता है। श्रीराम

राक्षसराज रावणसे युद्ध करनेके लिये लड़ा जाते समय उस स्थानपर पहुँचते हैं जो आजकल रामेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है और वहाँ लिङ्गकी स्थापना करके उसकी पूजा करते हैं और इस बातको प्रमाणित करते हैं कि सारे देवता एक हैं। पुराणोंमें भी यह भाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है और उन्हें साम्प्रदायिक ग्रन्थ कहना सरासर भूल है।

शैवमतकी प्राचीनता एक स्वतन्त्र प्रमाणके द्वारा भी सिद्ध होती है। तामिल-भाषामें कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिन्हें 'शङ्गम्' कहते हैं। उनके अन्दर शिव, सुब्रह्मण्य एवं कृष्ण इन तीन देवताओंका वर्णन मिलता है। तामिल-साहित्यमें

शिव तथा उनके पुत्र 'मुरुगन्' का प्रचुर रूपमें वर्णन मिलता है जिसके आधारपर विद्वानोंने यह सिद्धान्तित किया है कि शिव द्रविड़-जातिके देवता हैं अथवा कम-से-कम आर्यजातिके देवता नहीं हैं, तथा आगे चलकर उन्हें आर्योंके देवता रुद्रके साथ एक कर दिया गया। यहाँ हम इस मतकी समालोचना नहीं करेंगे, यहाँ तो केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि प्राचीन ग्रन्थोंसे तथा पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोजसे यह सिद्ध होता है कि शैवमतकी उत्पत्ति सुदूर अतीतकालमें हुई थी और प्राचीन भारतके इतिहासनिर्माता-के लिये इसके प्रारम्भका पता लगाना अत्यन्त कठिन है।

शिव-सूत्रोंसे व्याकरणकी उत्पत्ति

(लेखक—श्रीयुत डा० प्रभातचन्द्र चक्रवर्ती, काव्यतीर्थ, एम० ए०, पी० आर० एस०, पी-एच० डी०)

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ॥

अर्थात् वेद जिनके निःश्वास हैं, जिन्होंने वेदोंसे सारी सृष्टिकी रचना की और जो विद्याओंके तीर्थ हैं ऐसे शिवकी मैं वन्दना करता हूँ।

पुराणोंमें भगवान् शिवको विद्याका प्रधान देवता कहा गया है। उन्हें 'विद्यातीर्थ' नामसे पुकारा गया है और सर्वज्ञ माना गया है। उन्हें ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया—इन

तीन शक्तियोंका समन्वय एवं समस्त ज्ञानका स्रोत माना गया है। ज्ञानपिपासुओंको उन्हींकी पूजा एवं आराधना करनेका विशेषरूपसे आदेश किया गया है और भारतके व्याकरण-रचयिताओंके कुलगुरु महर्षि पाणिनिके—जिनके व्याकरण-सूत्रोंकी हम प्रस्तुत निबन्धमें आलोचना करेंगे—जीवनके महाव्रतकी सिद्धि भी उन्हीं देवाधिदेव महादेवके कृपाकटाक्षसे हुई। यही नहीं, पाणिनीय व्याकरणकी उत्पत्ति भी इन्हीं विद्यानिधान भगवान् महेशानसे मानी जाती है जिन्होंने प्रथम सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माको आविर्भूत किया और तदनन्तर सर्गके आदिमें उन्हें वेद-विद्याका उपदेश दिया।

१ सर्वज्ञताकी महेश्वरके छः प्रधान गुणोंमें गणना की गयी है। यथा—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः

स्वतन्त्रता निलमलुप्तशक्तिः ।

अनित्यशक्तिश्च विभोर्विधिषाः

षडादुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥

दुर्गासिंहेने भी स्वर्चित 'कातन्त्रवृत्ति' के मङ्गलाचरणमें उन्हें सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी कहा है। यथा—

देवदेवं प्रणम्यादौ सर्वज्ञं सर्वदर्शिनम् ।

कातन्त्रस्य प्रवक्ष्यामि व्याख्यानं मार्गवर्णिकम् ॥

२ तन्त्रोंमें इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। यथा—

ते ज्ञानेच्छाक्रियात्मानो बह्वीन्द्रकैस्वरूपिणः ।

(शारदातिलक)

ज्ञानक्रियास्वभावं शिवतत्त्वं जगदुराचार्याः ।

(तत्त्वप्रकाश)

वेदोंके छः प्रधान अङ्गोंमें व्याकरण भी एक अङ्ग है; यही नहीं, वेदोंके अध्ययनमें सबसे अधिक उपयोगी होनेके कारण वह सबमें प्रधान है। पाणिनीय व्याकरणको 'वेदाङ्गव्याकरण' इस नामसे निर्दिष्ट किया गया है जो सर्वथा उचित ही है। क्योंकि इस व्याकरणमें लौकिक

३ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं

यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।

त २ ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं

मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

(श्वेता० ६।१८)

४ मुखे व्याकरणं स्मृतम्—(पाणिनीय शिक्षा)। प्रधानञ्च षडङ्गेषु

व्याकरणम् (महाभाष्य) ।

(साधारण बोल-चालके) तथा वैदिक दोनों प्रकारके शब्दों-का विवेचन किया गया है।

पाणिनीय अष्टाध्यायीकी रचना १४ छोटे-छोटे सूत्रों-के आधारपर हुई है जिन्हें माहेश्वर अथवा शिव-सूत्र कहते हैं। इन मूल-सूत्रोंके आधारपर व्याकरण-शास्त्रकी रचना इस बातको सिद्ध करती है कि मनुष्यकी सारी करामातोंकी कुञ्जी किसी अदृष्ट शक्तिके हाथमें रहती है। इन्हीं सूत्रोंकी भाँति दूसरे शिव-सूत्र भी हैं जिनका सम्बन्ध काश्मीरीय शैवागमसे है और जिनकी शैवोंके महान् आचार्य वसुगुप्तने भगवान् शङ्करकी प्रेरणासे रचना की थी।

महर्षि पाणिनिने किसप्रकारकी विचित्र परिस्थितिमें इन माहेश्वर सूत्रोंको प्राप्त किया, इस सम्बन्धका इतिहास 'कथासरित्सागर,' 'हरचरितचिन्तामणि,' 'बृहत्कथामञ्जरी' तथा नन्दिकेश्वरकी 'काशिकावृत्ति' में उपलब्ध होता है। इन ग्रन्थोंमें जो कुछ वृत्तान्त मिलता है वह प्रायः परस्पर मिलता-जुलता-सा ही है। मुख्य घटना अर्थात् शिवसे पाणिनिके रचनाशक्ति प्राप्त करनेके सम्बन्धमें तो बिल्कुल मतभेद नहीं है। पाणिनिकी माताका नाम दाक्षी तथा पिताका नाम पणिन् था। इन्होंने बचपनमें ही आचार्य उपवर्षके यहाँ विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। व्याडि तथा वररुचि (कात्यायन ?) इनके सहाध्यायी थे। एक दिन पाणिनि व्याकरण-सम्बन्धी शास्त्रार्थमें अपने सहाध्यायियोंसे हार गये जिससे उनके हृदयको गहरी चोट पहुँची। भगवान्का विधान सदा मङ्गलपूर्ण होता है। उनका शाप भी अनुग्रहरूप हुआ करता है। बादमें अपनी बराबरी-वालोंसे हारनेके कारण पाणिनिको जो असह्य यन्त्रणा हुई उसने उनके जीवनको पलट दिया। व्याकरण-शास्त्रमें पारदर्शी होनेके उद्देश्यसे तथा वैयाकरणोंमें सर्वश्रेष्ठ बननेकी प्रवृत्ति आकाङ्क्षासे उन्होंने आशुतोष शङ्करकी आराधनाके

५ 'सूत्रमाह माहेश्वरः'। 'शिवसूत्रमरीचत्'।

(भास्करानन्द)

६ सर्वविद्यामुखं तेन प्राप्तं व्याकरणं नवम्।

(कथासरित्सागर)

आराध्य तपसा तत्र विद्याकामः स शङ्करम्।

प्राप्य व्याकरणं दिव्यं स च विद्यामुखं शुभम्॥

(हरचरितचिन्तामणि)

७ पाणिनिके सम्बन्धमें यह प्रसिद्धि है कि वे बाल्यकालमें मन्दबुद्धि थे।

हेतु कठोर तप आरम्भ किया। भगवान्के अनुग्रहसे उनकी अभिलाषा पूर्ण हुई। पाणिनिने अद्भुत सफलताके साथ एक ऐसे शृङ्खलाबद्ध व्याकरणकी रचना की जिसकी जोड़का दूसरा व्याकरण भारतीय वाङ्मयमें अभीतक कदाचित् बना ही नहीं। इस सम्बन्धमें एक दूसरी आख्यायिका भी प्रचलित है जो इसप्रकार है—

प्रयागमें अश्वयुवकके नीचे पाणिनि कठोर तपस्या कर रहे थे। उस समय भगवान् शूलपाणि सिद्धोंका सङ्घ साथ लिये हुए उनके सामने प्रकट हुए और लगे ताण्डव-नृत्य करने। नृत्यके समय भगवान्ने आनन्दातिरेकसे चौदह बार डमरू-ध्वनि की।

इस अपूर्व एवं अलौकिक घटनासे पाणिनिको पहली बार व्याकरण-सूत्र रचनेकी शक्ति प्राप्त हुई। और इसी शक्ति-के द्वारा उन्होंने आगे चलकर 'अष्टाध्यायी' का वैज्ञानिक ढंगसे निर्माण किया जिसका आज संस्कृत-व्याकरणमें इतना मान है। डमरूके चौदह नादोंसे ही चौदह मूल-सूत्रोंकी रचना हुई जिनके आधारपर सारी अष्टाध्यायी प्रणीत हुई। इसीलिये इनको शिव-सूत्र अर्थात् शिवके द्वारा आविर्भूत व्याकरण-सूत्र कहते हैं, जो सर्वथा उचित ही है। शिव-सूत्रोंमें वर्णोंका विन्यास—जिसे 'वर्णसमाम्नाय' कहते हैं—इस अद्भुत एवं अपूर्व कौशलसे किया गया है कि उनके जोड़नेसे 'अण्,' 'इण्' इत्यादि प्रत्याहार बन जाते हैं जो सारे व्याकरण-शास्त्रकी मूलभित्ति हैं। इन्हींके कारण शिव-सूत्रोंका इतना अधिक माहात्म्य है। यह बात बिल्कुल सत्य है कि इन संज्ञाओं अथवा प्रत्याहारोंका ज्ञान प्राप्त किये बिना अष्टाध्यायीके तत्त्वको समझना असम्भव है। और ये संज्ञाएँ शिव-सूत्रोंके अन्तर्गत वर्णसमूहोंसे ही बनी हैं।

पाणिनीय व्याकरणकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें यह पिछला इतिहास अधिक मान्य है। पाणिनीय शिक्षामें भी यह आख्यान इसी प्रकार वर्णित है।

८ नृत्तावसाने नटराजराजो

ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।

उद्धतुकामः सनकादिसिद्धा-

नेतद्विशिष्टं शिवसूत्रजालम्॥

(नन्दिकेश्वरकाशिका)

९ येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।

कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥

नन्दिकेश्वरने अपनी 'काशिकावृत्ति' में इन शिव-सूत्रोंकी इसप्रकारसे व्याख्या की है मानो इनकी रचना शैवागम तथा शाक्तागमके दिव्य रहस्यका उद्घाटन करनेके उद्देश्यसे ही हुई थी। उदाहरणतः उन्होंने प्रथम सूत्र 'अइउण्' की निम्नलिखित प्रकारसे व्याख्या की है—

'अ' निर्गुण ब्रह्मका वाचक है और 'उ' सगुण ब्रह्मका। जब 'अ' अर्थात् निर्गुण ब्रह्म 'इ' अर्थात् माया (चिच्छक्ति) के साथ सम्पर्कमें आता है तब वह 'उ' अर्थात् सगुण ब्रह्म हो जाता है। तन्त्रोंमें भी इसी प्रकारका सिद्धान्त वर्णित है। तान्त्रिक सिद्धान्तके अनुसार सृष्टिका विकास शिव-शक्तिके संयोगका परिणाम है। वर्णोंकी दिव्य शक्ति (मात्रिका वर्ण) को पहले-पहल तान्त्रिकोंने ही स्वीकार किया हो, यह बात नहीं है। वैदिक कालमें भी यह बात सिद्धान्तरूपसे स्वीकार कर ली गयी थी। यही कारण है कि प्रणव (ओंकार) को वेदोंने साक्षात् ब्रह्मका स्वरूप माना है और उपनिषदोंमें भी परब्रह्मके लिङ्गरूपमें शब्दब्रह्मकी उपासनाका उपदेश दिया गया है।

इस सम्बन्धमें एक इतिहास और है। वह इसप्रकार है कि स्वयं भगवान् शिवने एक व्याकरण-शास्त्रकी रचना की। जो उदधिके समान विस्तीर्ण और जो 'माहेश व्याकरण' के नामसे जगतमें प्रसिद्ध हुआ। कहा जाता है कि महर्षि व्यासदेवको

१० अइउण्—

अकारो ब्रह्मरूपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु।

चित्कलामि समाश्रित्य जगद्रूप उणीश्वरः ॥

(काशिका २)

११ शिवशक्त्यात्मकं विश्वम्।

१२ श्रीमच्छङ्कराचार्यने भगवती त्रिपुरासुन्दरीकी स्तुतिमें पुरुष और प्रकृतिके इस अनादि युग्मका (जिसे विशान तथा दर्शनकी भाषामें जड़ तथा चैतनका संयोग कह सकते हैं) बड़े हृदय-ग्राही शब्दोंमें वर्णन किया है। वे कहते हैं—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं

न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥

(सौन्दर्यलहरी)

१३ महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलिने भी वर्णोंको ब्रह्मका जाज्वल्यमान स्फुलिङ्ग माना है। यथा—

सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायः पुष्पितः

फलिप्रश्वन्दसारवत् प्रतिर्भाष्यते वेदिसंयो ब्रह्मगाशिः ॥

इस व्याकरणका ज्ञान था और उन्होंने उसमेंसे बहुत-से प्रयोग अपने ग्रन्थोंमें व्यवहृत किये हैं। लोगोंका कहना है कि माहेश व्याकरणके सामने पाणिनीय व्याकरण समुद्रके सामने एक जल-सीकरके समान होगा। कातन्त्र-व्याकरणके सम्बन्धमें भी जिसका बङ्गालमें अधिक प्रचार है, इसी प्रकारका एक आख्यान प्रसिद्ध है। इसे 'कलाप' अथवा 'कौमार व्याकरण' इसीलिये कहते हैं कि इसका पहला सूत्र 'सिद्धो वर्ण-समाम्नायः' भगवान् शङ्करके मुखारविन्दसे आविर्भूत बताया जाता है और साथ ही यह भी कहा जाता है कि इसे शङ्कर-सूनु श्रीकार्तिकेयने अपने वाहन मयूरके पंखोंमें लिखा था। कौमार व्याकरणके कार्तिकेयद्वारा प्रचार होनेका सविस्तर वर्णन गरुडपुराण एवं अग्निपुराणमें मिलता है।

शिव-समाज

'केसौदास' मृगज बछेरू चौखें बाधिनीन,

चाटत सुरभि बाघ-नालक-बदन है।

सिंहनकी सटा ऐंचै कलम-करनि करि,

सिंहनको आसन गयंदको रदन है ॥

फनीके फननपर नाचत मुदित मोर,

क्रोध न बिरोध जहाँ मद न मदन है।

बानर फिरत डेरे-डेरे अंध तापसनि,

सिवको समाज कैधौ ऋषिको सदन है ॥

—महाकवि केशवदास

१४ यान्युज्जहार माहेशादयासो व्याकरणार्णवात्।

तानि किं पदरत्नानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे ॥

इस श्लोकको गोपाल चक्रवर्तीने अपनी 'दुर्गा सप्तशती' की टीकामें उद्धृत किया है।

१५ शङ्करस्य मुखाद्वाणीं श्रुत्वा चैव षडाननः।

लिलेख शिखिनः पुच्छे कलाप इति कथ्यते ॥

१६ अथ व्याकरणं वक्ष्ये कुमारोक्तञ्च शौनक।

(गरुडपुराण २०८)

शैव और वैष्णवोंका प्रेम

(लेखक—रावबहादुर राजा श्रीदुर्जनसिंहजी)

सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।
सम्भवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥
अपां निधिरधिष्ठानं दुर्जयो जयकालवित् ।
प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः ॥
अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः किरीटी त्रिदशाधिपः ।
विश्वगोप्ता विश्वकर्ता सुवीरो रुचिराङ्गदः ॥
तत्त्वं तत्त्वविदेकःस्मा विभुर्विष्णुर्विभूषणः ।
ऋषिर्ब्राह्मण ऐश्वर्यं जन्ममृत्युजरतिगः ॥

उन ग्रन्थोंसे अपरिचित पुरुष, जहाँकी ये नामावलियाँ हैं, इन श्लोकोंपर दृष्टि डालते ही तत्काल इसके अतिरिक्त दूसरे परिणामपर कदापि नहीं पहुँच सकता कि प्रथम श्लोक श्रीशिवजी महाराजकी नामावलिका है और आगेके तीन श्लोकोंमें श्रीविष्णुभगवान्के नाम ग्रहण हुए हैं ।

वस्तुतः पहला वचन श्रीविष्णुसहस्रनामका है और पिछले तीन श्लोक श्रीशिवपुराणान्तर्गत श्रीशिवसहस्रनामके हैं (देखो अध्याय ३५) । अपरिचित पुरुषका वैसे निर्णयपर पहुँचना आश्चर्यकारक नहीं है क्योंकि क्रिया-गुणादि अथवा व्यवहारमें प्रचलित नामोंसे जगत्में ऐसी विभिन्नता समझी जा रही है, किन्तु ऐसा भेद पूर्ण भ्रमात्मक है । इन दोनों ही ग्रन्थोंके कर्ता, जहाँके ये वचन हैं, एक ही श्रीव्यासभगवान् हैं और ये साक्षात् भगवदवतार, त्रिकालज्ञ महर्षि, पूर्ण तत्त्व-वेत्ता हैं । उन्होंने जिस सिद्धान्तके आश्रयपर समस्त पुराणोंकी रचना की है उसका तात्पर्य बुद्धिमें भेदोत्पादनका कदापि नहीं था । उन्होंने उस एक ही भगवत्-तत्त्वको अनेक रूपोंमें वर्णन किया है और ऐसी दशामें किसी विशेष रूपके नाम किसी विशेष रूपमें और किसीके किसीमें आ जायँ तो उसका मुख्य प्रयोजन यही है कि उन रूपोंमें कोई भेद नहीं है और मूल-तत्त्व एक ही है । इस मूल-तत्त्वको ही श्रीभगवान्, परमात्मा, परब्रह्म, पूर्णब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, पुराण पुरुषोत्तम आदि शुभ नामोंसे प्रकट किया जाता है—यही जब 'एकोऽहं बहु स्याम्' इस श्रुतिके अनुसार इच्छा करता है तो अनेक नाम-रूप धारण कर लेता है और यही सृष्टिकी उत्पत्ति है । इस दशामें ये असंख्य नाम और रूप सब इस एक ही तत्त्वके हैं और इनमें वास्तविक भेद-कल्पना करना

केवल भ्रान्तिमूलक है । किन्तु श्रीभगवान्की यह मन और इन्द्रियागोचर चेष्टा परम रहस्यपूर्ण है । इस इच्छाके द्वारा सृष्टि-रचनाकी क्रिया सामान्यतया तो माया अथवा प्रकृतिके द्वारा ही होती है, किन्तु उस अपरिमेय शक्तिसम्पन्न विभुकी अद्भुतताका यह चमत्कार है कि वह जिसको अमायिक कहा जाता है माया बिना भी जो चाहे रचना रच सकता है । इसके प्रत्यक्ष उदाहरणका दर्शन देवदुर्लभ ब्रजरजकी उस बुद्धिविमोहनशीला लीलामें होता है जिसमें ब्रह्माजीके ग्वालबाल और बछड़े चुरानेपर श्रीभगवान्ने अमायिक ग्वालबाल तथा बछड़े प्रकट ही नहीं कर दिये किन्तु उन सबको चतुर्भुज-मूर्ति बना दिया ।

इससे सिद्ध है कि भगवान्के असंख्य नाम-रूप मायिक और अमायिक दोनों प्रकारसे ही हो सकते हैं । जो अमायिक नाम-रूप हैं वे सब गुणातीत, देश-काल और वस्तुपरिच्छेद-रहित तथा अभिन्न हैं किन्तु मायिक नाम-रूप त्रिगुणमय प्रकृतिके कार्य होनेसे भेदयुक्त हैं और देश-काल-वस्तु-परिच्छिन्न हैं । नामावलियोंकी जो अनेक रचनाएँ हुई हैं उनमें ऐसे भी अनेक नाम आये हैं जो एक मूल-तत्त्वके द्योतक हैं । शेष विशेषता-परिचायक हैं । यही भारी रहस्य है और इसीमें बुद्धिके चकरानेसे संसारमें भ्रान्तिको पूर्ण अवकाश मिल जाता है ।

श्रीभगवान्के अनेक नाम-रूपोंमेंसे उपासना-निमित्त किसी एकका ही ग्रहण हो सकता है, क्योंकि जब एकसे अधिक दोमें भी मनकी स्थिरता असम्भव है तो फिर जहाँ अपरिमित नाम-रूपोंका विस्तार है वहाँका तो कहना ही क्या है ! यह तो उपासनाके लिये सर्वथा असम्भव दशा है । अतः जो भगवत्-तत्त्वको एक समझकर उसके अनेक नाम-रूपोंमेंसे एकको उपास्य मानकर उसकी उपासना करता है उसके हृदयमें तो अन्य नाम-रूपोंके लिये विपरीत भाव आ ही नहीं सकता । किन्तु यह अभिन्न भावमय उपासना सत्त्वगुणके भी परे समझनी चाहिये और इसका अधिकारी वही हो सकता है जो त्रिगुणातीत हो, जिसके लक्षण श्रीगीताजीके चतुर्दश अध्यायके अन्तमें इसप्रकार बताया गये हैं—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीर्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥

यह उपासना सर्वोच्च कक्षाकी है। किन्तु सामान्यरूपसे जगत्में गुणमय सृष्टि विभिन्न होनेके कारण जिसकी रुचि जिस गुणप्रधान हो उसे उसी गुणप्रधान नाम-रूपकी उपासना अनुकूल हो सकती है। इसी विशेष हेतुको लेकर जिस गुणप्रधान प्रयोजनके लिये श्रीभगवान्के जिस विशेष नाम-रूपके आविर्भूत होनेकी आवश्यकता हुई, उस नाम-रूपको उसी गुणप्रधान मानकर उसीके महत्त्व-वर्णनके लिये पुराणोंकी रचनाका सिद्धान्त स्थिर हुआ है और ऐसी दशामें भेद-भाव होना भी अनिवार्य था। जिस विशेष पुराणमें श्रीभगवान्के जिस नाम-रूपकी विशेषता वर्णन की गयी वहाँ अन्य नाम-रूप स्वतः अप्रधानता या सामान्यताको प्राप्त हो गया क्योंकि ऐसा हुए बिना गुणप्रधान उपासकके चित्तस्थिरतानिमित्त कोई सामग्री ही नहीं रहती। यही कारण है कि एक ही तत्त्वके नाम-रूपोंमें भेद भासने लगा। और भेद भी सीमाके इतना बाहर हो गया कि कहीं वैष्णव श्रीशिवजी महाराजकी लघुता सिद्ध करनेमें अपने सम्प्रदायकी विजयका डंका बजते हैं तो कहीं शैव श्रीविष्णु-भगवान्की निन्दाको अपने सम्प्रदायका मुख्य कर्तव्य समझते हैं। इसप्रकारके उत्कट विरोधपूर्ण भेद-भावका कारण केवल अनुचित पक्षपात है जिसको तमोगुणसे भी निकृष्टतर कहा जाय तो अनुपयुक्त नहीं होगा। वैष्णव-ग्रन्थ 'तत्त्वत्रयम्' के निम्नलिखित वचनपर विवरणका आशय इसी पक्षपातका द्योतक है—

‘चेतनोऽपि न कारणम्—कर्मपरतन्त्रत्वाद् दुःखित्वाच्च।’
विवरण —आगमसिद्ध जो रुद्र है वही जगत्के प्रति निमित्त-कारण है ऐसा पाशुपत-मतवाले मानते हैं, एवं कोई ‘हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे’ इस वचनको लेकर प्रजापति ब्रह्माको कारण मानते हैं; परन्तु इनका ऐसा मानना ठीक नहीं, क्योंकि ब्रह्मा, रुद्र आदि कर्म-परतन्त्र एवं दुखी हैं, इसलिये जीवकोटिमें हैं। केवल मायाप्रधान गुणमयी सृष्टिमें ऐसी लघुता या महत्ता हो सकती है; परन्तु वहाँ भी ऐसा कदापि नहीं कि जिसको एक बार महत्ता प्राप्त हो गयी वह नित्य ऐसा ही रहे, क्योंकि ऐसी महत्ता या लघुता प्रयोजन या कारणवश होती है। जो एक बार महत् है वह

अन्यके महत् होनेपर अनिवार्यरूपसे स्वतः लघु हो जायगा। यही तो कारण है कि कभी श्रीरघुनाथजी महाराज या श्रीकृष्णभगवान्ने श्रीशिवजी महाराजको उपास्य मानकर उनकी उपासना की है और कभी श्रीशंकरभगवान्ने यथावसर श्रीभगवान्के उक्त दोनों ही स्वरूपोंको स्वामी मानकर उपासना की है।

गुरुता अथवा लघुताको नित्य माननेवालोंको चाहिये कि वे श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धान्तर्गत उस प्रसंगको ध्यानसे देखें जहाँ दक्षप्रजापतिके यज्ञ-विध्वंस होनेपर दक्षने श्रीरुद्रदेवकी प्रार्थना की है और पुनः यज्ञकी रचनाके अवसर-पर श्रीविष्णुभगवान्ने पधारकर इन स्पष्ट वचनोंका उच्चारण किया है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मे श्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥
आत्मभायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्ने संज्ञां क्रियोचित्ताम् ॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥
यथा पुमान् स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित् ।
पारक्यबुद्धिं कुरुत एवं भूतेषु मत्परः ॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् सं शान्तिमधिगच्छति ॥

(श्रीमद्भा० ४ । ७ । ५०-५४)

मैं ही जगत्का परमकारणरूप ब्रह्मा और शिव हूँ और मैं ही सबका साक्षी, स्वयंप्रकाश तथा निर्विशेष आत्मा तथा ईश्वर हूँ। हे द्विज ! यही मैं अपनी गुणमयी मायाका आश्रय लेकर संसारकी सृष्टि, रक्षा और संहार करता हुआ कर्मके अनुसार (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) नाम धारण करता हूँ। उस अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप केवल परमात्मामें ब्रह्मा, रुद्र तथा सभी जीव निवास करते हैं। मूर्ख मनुष्य ही भेद-दृष्टि रखता है। जिसप्रकार पुरुष अपने सिर, हाथ, पाँव आदि अंगोंमें कहीं भी परकीय-भावना नहीं करता उसी प्रकार मेरे परायण प्राणी भूतोंमें पृथग्बुद्धि नहीं करता। हे ब्रह्मन् ! सब जीवोंके आत्मारूप इन ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप तीन एकरूप भावोंमें जो भेद-दृष्टि नहीं करता वही शान्ति प्राप्त कर सकता है।

इस गहरे तत्त्वको श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने

जिसप्रकार स्पष्ट किया है वह उनके हृदयकी अगाधताका पूर्ण प्रमाण है।

किसी अवसरपर किसी नाम-रूपमें गुरुता और किसीमें लघुताका उदाहरण इससे बढ़कर और क्या हो सकता है—
सेवक स्वामि सखा सिय पीके। हित निरुपधि सबविधि तुलसीके ॥

इसीके साथ मूल-तत्त्वके अनेक नाम-रूपोंमें कोई भेद नहीं, इस सिद्धान्तको निम्नाङ्कित दोहेके द्वारा सिद्ध किया गया है—

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।

ते नर करहिं करुणमरि घोर नरकमहँ वास ॥

औरौ एक गुप्त मत सबहिं कहौं करजोरि।

संकर भजन बिना नर भगति न पावहिं मोरि ॥

यदि इस सिद्धान्तको समझकर भगवान्‌के प्रत्येक नाम और रूपकी उपासनामें प्रवृत्त हुआ जाय तो शैव और वैष्णवोंमें पूर्ण प्रेम बढ़कर ऐहिक और पारलौकिक श्रेय-सम्पादनके साथ-साथ देश और धर्मकी पूर्ण उन्नति हो।



वैष्णव-सिद्धान्त और शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रीकृष्णजनकिंकर श्रीबालकृष्णजी)



छ वैष्णव-सिद्धान्तसे अनभिज्ञ व्यक्ति प्रायः यह आश्लेष किया करते हैं कि वैष्णव लोग शिव-द्वेषी होते हैं, परन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि इसप्रकारका विद्वेष प्रायः संसारके सभी धार्मिक सम्प्रदायोंके मनुष्योंमें पाया जाता है। शैवादिमें भी विष्णुविरोधी अनेक मनुष्य देखे जाते हैं। इसका एक विशेष कारण है। वह यह कि संसारका मानव-समुदाय प्रकृतिकी विचित्रताके कारण भिन्न-भिन्न रुचिका अवलम्बनकर विविध दलोंमें विभक्त हो गया है। देश, भाषा, वस्त्र, आहार और व्यवहारके भेदके साथ-साथ मनुष्योंके मानसिक विचारके अन्तर्गत उपास्य तत्त्व एवं उपासना-प्रणालीमें भी अनेक अयान्तर-भेद हो गये हैं। इन दलोंमें दो प्रकारके लोगोंका समावेश है—एक सारग्राही, दूसरे भारवाही। सारग्राहियोंकी संख्या स्वल्प होती है, भारवाही ही अधिक होते हैं। सारग्राही पुरुष उदार होते हैं, वे सम्प्रदायभुक्त होकर भी साम्प्रदायिकताके कलङ्कसे मुक्त होते हैं। भारवाही मनुष्य अनुदार एवं साम्प्रदायिक विद्वेषसे युक्त होते हैं। चिह्न-निष्ठा ही साम्प्रदायिकताका मूल है परन्तु सारग्राही अपने साम्प्रदायिक चिह्न-उपस्करोंमें दृढ़ निष्ठावान् होते हुए भी अन्य सम्प्रदायोंके चिह्न-उपस्करोंका उतना ही सम्मान करते हैं जितना अपनोंका किया करते हैं। भारवाहियोंकी चिह्न-निष्ठा अन्धविश्वासमयी होती है, जिसके कारण इनका अन्य सम्प्रदायियोंके प्रति सर्वदा विद्वेषभाव रहता है। सारार्थ यह है कि धर्मजगत्‌में जो कुछ अनर्थ दिखायी देता है वह सब भारवाहियोंके

कारण ही है, सिद्धान्ततः नहीं। इन भारवाहियोंकी प्रीति अपने इष्टमें उतनी नहीं होती जितनी कि व्यर्थके विवादमें होती है। सारग्राही पुरुष तत्त्वज्ञानपरायण होते हैं। तत्त्व-ज्ञान ही नरजीवनकी विशेषता है। श्रीश्रीवैष्णवाचार्यचरण सभी सारग्राही एवं तत्त्ववेत्ता थे, अतएव इनके पारमार्थिक विचार पूर्णतया पवित्र थे। वैष्णव-सिद्धान्तमें शिव-तत्त्व किसप्रकारसे प्रतिपादित हुआ है, यही प्रदर्शन कराना इस प्रबन्धके लिखनेका उद्देश्य है। आशा है, इसके पाठसे सभी सज्जनोंको यह ज्ञात हो जायगा कि शिव वैष्णवोंके विद्वेषकी वस्तु नहीं हैं, वरं परमप्रिय हैं।

तत्त्व-विचारकी दृष्टिसे तत्त्व दो प्रकारके हैं—एक स्वतन्त्र तत्त्व, दूसरे परतन्त्र तत्त्व। स्वतन्त्र तत्त्व एक है, परतन्त्र तत्त्व अनेक हैं। स्वतन्त्र तत्त्व अद्वयज्ञान-वस्तु है। न इसके कोई समान है और न इससे कोई अधिक है। अन्य सब तत्त्व इसके अधीन हैं। अतएव यही एकमात्र परमतत्त्व है। यह परमतत्त्व आनन्ददायक आकर्षण-सत्तायुक्त अपने स्वरूपसे निजधाममें सर्वदा वर्तमान रहता है। यह बात यजुर्वेदके इस मन्त्रसे पायी जाती है—

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्थं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ।

अर्थात् जो सवितादेव आनन्ददायक आकर्षणसे युक्त है, वह जीव और जड़ दोनोंको सुव्यवस्थित रखता हुआ, प्रकाशवती लीलाद्वारा समस्त लोकोंको अवलोकनकर उन्हें स्थिर रखता है।

इस मन्त्रके अर्थको महर्षि कृष्णद्वैपायनने अपने एक श्लोकमें इसप्रकार व्यक्त किया है—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निवृत्तिवाचकः ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

अर्थात् 'कृष्' धातुका अर्थ है आकर्षण, इसमें 'भू' धातुका सत्ता अर्थ योग करनेसे यह आकर्षण सत्तावाची हो जाता है; और 'ण' शब्दका अर्थ है निवृत्ति अर्थात् आनन्द, इन दोनोंके योगसे परब्रह्मका वाचक 'कृष्ण' शब्द निष्पन्न होता है ।

इस कृष्ण-संज्ञक परमतत्त्वको चिद्विज्ञानवेत्ता विद्वान् तीन रूपसे जानते हैं—ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान् । सर्व-व्यापक, सर्वप्रकाशक ब्रह्म इस परमतत्त्वकी कान्ति है जो व्यतिरेक चिन्ताशील ज्ञानियोंके चित्तमें प्रतिभासित होती है । सर्वान्तर्यामी प्रादेशमात्र परमात्मा इसका एक अंश है जो योगिपुरुषोंके ध्यानका आधार है और भक्तोंके साक्षात् दर्शनका विषय, सर्वेश्वर, सर्वैश्वर्यसम्पन्न भगवान् ये स्वयं हैं । श्रीकृष्णमें ही भगवत्ताकी चरम सीमा है ।

यह परमतत्त्व अनन्त शक्तियोंका आकर है । इन शक्तियोंके निदर्शन-स्वरूप एकहीके अनेक रूप होते हैं । जगत्में एक-एक शक्तिका प्रकाशक रूप ही एक-एक अवतार होता है । इन अनन्त शक्तियोंमें तीन शक्तियाँ प्रधान हैं—इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति । इस शक्तित्रयके बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता । कर्तामें इनका होना अनिवार्य है । परमतत्त्व स्वतन्त्र कर्ता होनेके कारण स्वयं इच्छामय है । अन्य रूप इच्छा-सम्पन्न होते हुए भी इनकी इच्छाके परतन्त्र हैं । ज्ञानशक्तिका प्रकाश वासुदेवरूप एवं क्रियाशक्तिका प्रकाश संकर्षणरूप है । इच्छामयकी इच्छासे ही ज्ञानशक्तिके सहारे क्रियाशक्ति चित्-अचित् उभय जगत्-का कार्य सम्पादन करती है । जगत्-कार्यके लिये शक्ति-प्रकाशक जो अवतार होते हैं वे छः प्रकारके होते हैं—पुरुषावतार, लीलावतार, युगावतार, मन्वन्तरावतार, शक्त्या-वेशावतार और गुणावतार । इनमें शिव गुणावतार हैं । ये सत्त्वगुणको अङ्गीकारकर सदाशिवरूपसे शिवलोकमें अवस्थान-पूर्वक ज्ञानियोंको ज्ञानदान, योगियोंको योग-शिक्षा एवं भक्तोंको निजाचरणद्वारा भक्ति-उपदेश करते हैं, एवं तमोगुणका आश्रयकर रुद्ररूपसे सृष्टिका संहार-कार्य करते हैं ।

[635] शिवाङ्क ७—

परमतत्त्व श्रीकृष्णके साथ शिवका भेदाभेद-सम्बन्ध है । निर्गुण-अवस्थामें ये और श्रीकृष्ण एक ही हैं, अर्थात् निजानन्द-प्रदान द्वारा समस्त चराचरका सर्वदा कल्याण करनेके कारण तत्त्वतः श्रीकृष्ण ही सदाशिवस्वरूप हैं; और सगुण-दशामें भक्तावतार होनेके कारण श्रीकृष्णसे इनकी भिन्न प्रतीति होती है । श्रीश्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीको शिक्षा देते समय यही उपदेश किया था—

निजांश कलासे कृष्ण कर तम स्वीकार ।
संहारार्थ मायासह रुद्र रूप धार ॥
माया सह विकारी रुद्र भिन्नाभिन्न रूप ।
जीवतत्त्व नहीं है सो कृष्णांशस्वरूप ॥

महाप्रभुके इन वाक्योंका फलितार्थ यह है कि प्रधानतः अवतार-धारणकी दो रीतियाँ हैं—एक स्वांशरूपसे होते हैं, दूसरे विभिन्नांशरूपसे । भगवान् जब कला या अंश-रूपसे स्वयं अवतीर्ण होते हैं, तब स्वांश-अवतार कहे जाते हैं; और जब किसी अधिकारी जीवको शक्ति-सञ्चारकर भेजते हैं, तब वह विभिन्नांश-अवतार कहाता है । श्रीशिव स्वांश-अवतार हैं अर्थात् इनकी गणना ईश्वर-कोटिमें है; जीव-कोटिमें नहीं है ।

अब यहाँ एक यह प्रश्न उठता है कि शिव यदि ईश्वर हैं तो वैष्णव-ग्रन्थोंमें जो इसप्रकारके वचन पाये जाते हैं कि—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिवैभूतैः ।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेत्सदा ॥

अर्थात् नारायणदेवको जो ब्रह्मा, रुद्रादि देवताओंके समान देखता है वह मनुष्य पाषण्डी होता है—इनका क्या तात्पर्य है ? इसका उत्तर यह है कि यहाँ समान शब्दसे पृथक् ईश्वर-बुद्धिसे अभिप्राय है, अर्थात् नारायणको एक पृथक् ईश्वर मानना एवं शिवादिको एक-एक पृथक् ईश्वर मानना; यह बहु-ईश्वरवादरूप पाषण्ड-मत है । इसीलिये वैष्णव-स्मृति श्रीहरिभक्तिविलासके नामापराध-प्रकरणमें लिखा है—

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं
धिया भिन्नं पश्येत्स खलु हरिनामादितकरः ॥

अर्थात् जो मनुष्य शिव एवं विष्णुके गुण-नाम आदि-में भेद-बुद्धि रखता है वह हरिनामका अपराधी है ।

इसके अतिरिक्त उक्त श्रीग्रन्थके शिवरात्रिव्रतके प्रसङ्ग-में शिव-महिमापरक और भी कुछ वचन श्रीभगवदुक्तिके रूपमें उद्धृत किये गये हैं। यथा—

परास्परतरं याति नारायणपराधनाः ।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम् ॥
यो मां समर्चयेन्निर्यमेकान्तं भावमाश्रितः ।
विनिन्दन् देवमीशानं स याति नरकायुतम् ॥

मन्त्रकः ॥ शङ्करद्वेषी मद्वेषी शङ्करप्रियः ।

उभौ तौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

अर्थ स्पष्ट है। सबका सारार्थ यह है कि, वैष्णव-सिद्धान्तानुसार, जिसप्रकार मत्स्य-कूर्मादिको परमतत्त्व श्रीकृष्णका लीलावतार मानकर उनका सम्मान किया जाता है, उसी प्रकार श्रीशिवको भी गुणावतार जानकर उनके प्रति सम्मान-भाव रखना चाहिये।

श्रीरामचरितमानसमें शिव-चरित

(लेखक—पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी)

रामं त्रिनेत्रं सोमार्धधारिणं शूलिनं परम् । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं कपर्दिनमुपासहे ॥



रामचरितमानसमें प्रधानतः भगवत्-चरित तो है ही, परन्तु उसीके अन्तर्गत पाँच भागवतोंके भी चरित हैं। यथा—(१) उमा-चरित, (२) शम्भु-चरित, (३) भरत-चरित, (४) हनुमत्-चरित और (५) भुशुण्डि-चरित। इनमेंसे उमा-शम्भु-चरितके वक्ता योगी याज्ञवल्क्य और श्रोता भरद्वाज, भरत-चरितके वक्ता स्वयं गोस्वामीजी और श्रोता सुसजनवृन्द, हनुमत्-चरितके वक्ता जाम्बवान् और श्रोता श्रीरामचन्द्र और भुशुण्डि-चरितके वक्ता स्वयं भुशुण्डिजी और श्रोता गरुडजी हैं।

उमा-शम्भु-चरित ५६ दोहोंमें कहा गया है। जिस भाँति उमा-शम्भु अभिन्न हैं, उसी भाँति उनके चरित भी अभिन्न हैं; परन्तु ग्रन्थकारने लोकदृष्टिका अनुसरण करते हुए उसे ठीक दो समान भागोंमें विभक्त किया है। अर्द्धाईस दोहोंमें उमा-चरित और अर्द्धाईस ही दोहोंमें शम्भु-चरित कहा गया है। भेद इतना ही है कि उमा-चरित में केवल एक छन्द है और शिव-चरितमें पन्द्रह छन्द आये हैं; दोनों मिलाकर सोलह छन्द हैं। ऐसा क्यों हुआ, इस बातको तो छन्दके रहस्य जाननेवाले ही कह सकते हैं; और यहाँ उसके लिये उपयुक्त अवसर भी नहीं है। यहाँ तो इतना ही कहना है कि—
उमाचरित सुन्दर मैं गावा । सुनहु सम्भुकर चरित सुहावा ॥

कहकर ग्रन्थकारने दोनों चरितोंको पृथक्-पृथक् कर दिया है।

शिवचरित कहते हुए गोस्वामीजीने सतर्पिके मुखसे निन्दाव्याजसे शिवतत्त्वनिरूपण ऐसी सुन्दरतासे कराया है कि जिसका रसास्वादन सरसचेता पाठक ही कर सकते हैं। सतर्पि कहते हैं—

निर्गुन निलज कुवेष कपाली । अकुल अंगह दिगम्बर व्याली ॥

कहहु कवन सुख अस वर पाए । भलि भूलिहु ठगके बौराए ॥

कहिये, इससे उत्तम शिवतत्त्वनिरूपण और क्या हो सकता है? जो वरका दूषण है, वही शिवतत्त्वनिरूपण है। शिव निर्गुण हैं, क्योंकि निष्कल और निर्विशेष हैं। शिव निलज हैं, क्योंकि 'एकमेवाद्वितीयम्' हैं। शिव अकुल हैं, क्योंकि अनादि और अजन्मा हैं। शिव अंगह हैं, क्योंकि अपरिच्छिन्न हैं। शिव दिगम्बर हैं, क्योंकि निरावरण हैं। शिव कुवेष हैं, क्योंकि वैराग्यकी मूर्ति हैं। शिव कपाली* हैं, क्योंकि सनातन हैं। शिव व्याली हैं, क्योंकि सर्वा-भिभावक हैं।

ऐसा होनेपर भी शिव महाभागवत हैं, यही उनकी अपार लीला है। एक रूपसे शिव निर्गुण, निराकार, निष्कल, निरञ्जन हैं; दूसरे रूपसे वही शिव भगवान्, सगुण, साकार, मृत्युञ्जय, जगद्गुरु, योगीश्वर, विश्वेश्वर, विश्वमूर्ति, आशुतोष महादेव हैं और तीसरी मूर्तिसे वही शिव महाभागवत, तारकोपदेशक, परमत्यागी, मदनमर्दन और दयाके समुद्र हैं। यथा—

* ब्रह्मदेवका कपाल हाथमें होनेसे शिव कपाली हैं। भाव यह कि जो ब्रह्माकी सृष्टि और संहार कर सकता है वह सनातन-देव है।

जरत सकल सुरवृन्द, विषम-गरल जेहि पान किय ।

तेहि न भजसि मनमंद, को कृपाल शंकर सरिस ॥

जिन शिवका रामसे तादात्म्य है या यों कहिये कि शिव राम हैं और राम शिव हैं, (यदि यह न होता तो 'सेवक स्वामि सखा सियपीके' ऐसा गोस्वामीजी न लिख सकते, तादात्म्य बिना सेवक-स्वामी-सखा—इन तीन अत्यन्त भिन्न सम्बन्धोंका एकत्र सन्निवेश हो नहीं सकता था) वही शिव लोकशिक्षाके लिये श्रीरामचरितमानसमें भागवत हैं । वही शिव आज सतीके विरहसे दुखी हैं, कैलास उन्हें सूना मान्द्र होता है, वहाँ रहनेसे सतीकी स्मृति मनसे हटती नहीं, अतः—

जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ-तहँ सुनिहिं रामगुनग्रामा ॥

कतहुं मुनिन्ह उपदेशहिं ज्ञाना । कतहुं रामगुन करहिं बखाना ॥

चिदानन्द सर्वज्ञ शिव विगत मोह-मद-काम ।

विचरहिं महि धरि हृदय हरि सकल लोक अभिराम ॥

फिर क्या होता है ? भागवतके नेम, प्रेम और भक्तिये भगवान् प्रकट होते हैं, सतीके हिमालयके घर जन्म लेनेका संदेशा देते हैं, उनकी अति पुनीत करनीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं और उनके पाणिग्रहणके लिये अनुरोध करते हैं—

अब विनती मम सुनुहु शिव जौ मोपर निज नेह ।

जाई विवाहहु सैलजहिं यह मोहि मँगे देहु ॥

भगवान्की यह दशा है कि प्रार्थना करते हैं, अपने स्नेहकी याद दिलाते हैं, याचना करते हैं । भागवत दूसरे संकटमें पड़े हैं, उन्हें विरह-दुःख स्वीकार है, परन्तु सीताका रूप जिस सतीने धारण किया था, उसका पाणिग्रहण करके भक्तिपथसे विचलित होना स्वीकार नहीं है । पर भागवत भगवत्के वचनका भी उलङ्घन नहीं कर सकता । चाहे कुछ भी हो, भगवत्के चाहनेपर भागवतको उसकी चाह रखनी पड़ती है । क्या करें, क्या न करें ? खैर, 'जानि गरुड गुरु गिरा बहोरी' विवाह स्वीकार करना ही पड़ा ।

कह शिव जदपि उचित अस नाहीं । नाथ वचन पुनि भेटि न जाहीं ॥
शिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धरम यह नाथ हमारा ॥

अपना काम कर चुकनेपर भगवत् अन्तर्धान होने लगे, पर भागवत ऐसा अवसर हाथसे क्यों जाने देने लगे ? शङ्करने उस मधुमयी मूर्त्तिको हृदयमें रख लिया, उसीके ध्यानमें मग्न हुए समाधि लग गयी ।

इधर तारकासुरने देवताओंके नाकों दम कर रक्खा था । उसके लिये 'शम्भुशुक्रसंभूत सुत एहि जीतै रन सोइ' यह व्यवस्था थी । संयोग भी अनुकूल आ पड़ा था । पर शङ्करकी समाधिकी अवधिका ठिकाना क्या ? इसके पहलेवाली समाधि ८७००० वर्ष ठहर गयी थी, इस बार कितने सहस्र वर्ष रहेगी, कौन कह सकता है ? यहाँ मास, पक्ष बीतना कठिन हो पड़ा था । अब समाधिसे इन्हें जगावे कौन ? ब्रह्मदेवकी सम्मतिसे इस कार्यके लिये कामदेव भेजे गये और भगवदिच्छासे जगानेमें कृतकार्य भी हुए, पर शिवजीके क्रोधानलमें पतङ्ग हो गये । जगत्-विजयी कामको भस्म करनेके लिये महाभागवतकी कोपदृष्टि ही यथेष्ट थी । चलिये, सब बना-बनाया काम बिगाड़ गया । जब काम ही नहीं तो शुक्रसंभूत सुत कहाँसे होने लगे ? पर आशुतोष रतिकी विनतीपर प्रसन्न हो गये । कामदेव अतन होकर फिर जी गये, देवताओंकी जान-में-जान आयी, अब क्या था ?

सब सुर विष्णु विरांचि समेता । गये जहाँ शिव कृपानिकेता ॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा । भये प्रसन्न चन्द्रावतंसा ॥
बोले कृपा-सिन्धु वृषकेतू । कहहु अमर आयि केहि हेतू ॥
कह बिधि प्रभु तुम अंतरजामी । तदपि भगतिबस विनवहुँ स्वामी ॥

सकल सुरन्हके हृदय अस संकर परम उछाह ।

निज नयनन देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाह ॥

स्वामीकी आज्ञा पहलेसे ही हो चुकी थी, स्वीकार करनेमें उज्र ही क्या था ? फिर तो देवताओंने बड़ी शीघ्रतासे काम लिया । कहीं फिर समाधिमें न बैठ जायँ । तुरन्त सप्तर्षि हिमाचलके यहाँ भेजे गये, लग्न ठीक हुई, गणोंने वरका शृङ्गार आरम्भ कर दिया, देवतालोग बराती बने, विष्णुके चुटकी लेनेपर गणलोग भी बारातमें शामिल हुए ।

जस दूलह तस बनी बराता । कौतुक बिबिध होहिं मग जाता ॥

बारात चल पड़ी ।

उधर हिमाचलके यहाँ गहरी तैयारी थी, बारातकी आहट मिलते ही लोग अगवानीके लिये निकल पड़े, देवताओंका दर्शन करके बड़े सुखी हुए, तबतक बारातका मूल-भाग सामने आ पड़ा । फिर क्या था ?

बिडरि चले बाहन सब भागे ।

बालक सब लै जीव पराने । धरि धीरज तहँ रहे सयाने ॥

ईश्वर-ईश्वर करके बारात दरवाजे लगी । सास परिछन-
के लिये आर्षी, पर—

निकट वेष जब रुद्रहिं देखा । अबलन ठर भय भयउ विशेषा ॥
भागि भवन पैठी अति वासा । गये महेस जहाँ जनवासा ॥

घरमें प्रलय मच्च गया, मैना पहाड़परसे कूदकर प्राण
देनेपर तैयार हुई । भला, ऐसे वरसे ऐसी रूप-गुणवती
कन्याका विवाह कैसे हो ?

अब तो वरपक्षके भी छक्के छूट गये । नारदजीको
महलमें जाकर शक्ति-तत्त्वका निरूपण करना पड़ा—

मयना संत्य सुनहु मम बानी । जगदम्बा * तव सुता भवानी ॥
अजा अनादि शक्ति अविनासिनि । सदा संमु अरधंग निवासिनि ॥
जग संभव पालिनि लयकारिनि । निज इच्छा लीला वपुधारिनि ॥
जनमी प्रथम दक्षगृह जाई । नाम सती सुंदर तनु पाई ॥
—इत्यादि ।

और सरकारको भी समाजके सहित अपना सहज वेष
बदलना पड़ा । ब्याह तो ब्याह ही है । चाहे ईश्वरका ही
क्यों न हो ।

लखि लौकिक गति शम्भु जानि बड़ सोहर ।
भये सुन्दर सत कोटि मनोज मनोहर ॥
नील निचोल छाल भइ फनिमनि भूषन ।
रोम रोमपर उदित रूपमय भूषन ॥
गन भये मंगल वेष मदन-मन-मोहन ।
सुनत चले हिय हरखि नारि-नर जोहन ॥

(पा० मं०)

बात सब ठीक हो गयी, सहज एकाकीका विवाह हुआ,
सहज निःसङ्गका नित्यसङ्गिनीसे संयोग हुआ, अब—

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा । गणन समेत बसैं कैलासा ॥
हर-गिरिजा बिहार नित नयऊ । पहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ ॥
तब जनमेउ षट बदन कुमारा । तारक असुर समर जेहि मारा ॥

भाव यह कि भागवतका भोग-विलास भी जगत्के
कल्याणके लिये ही होता है, नहीं तो जिन्होंने कामको भस्म
किया उनका भोग-विलास कैसा ? इस भोग-विलासका
तत्त्व ग्रन्थकर्त्ताने स्वयं भगवतीके मुखसे सत्पत्तिके प्रति
कहलाया है—

तुम जो कहेउ हर जारेउ मारा । सो अति बड़ अबिवेक तुम्हारा ॥
तात अनलकर सहज सुमाऊ । जिमि तेहि निकट जाहि नहि काऊ ॥
गये समीप सो अवसि नसाई । अस मन्मथ मदेश कै नाई ॥
तुम्हरे जान काम अब जारा । अबलनि सम्भु रहे सविकारा ॥
हमरे जान सदा शिव जोगी । अज अनवद्य अकाम अमोगी ॥

संक्षेपतः यही शिव-चरित रामचरितमानसमें वर्णित
है; और उसके पाठसे पता चलता है कि शिव ही निराकार,
निर्गुण, निष्कल ब्रह्म हैं और उमा ही उनकी माया हैं ।
मायी होनेसे वही शिव सगुण, साकार और सविशेष हो जाते
हैं । यथा—

तुम माया भगवान शिव सकल जगत-पितु-मातु ।

और वही शिव अपनी माया उमाके साथ कभी संयोगी
होते हैं, कभी वियोगी होते हैं । कभी भगवत् होते हैं, कभी
भागवत् होते हैं । कभी राम होते हैं, कभी श्याम होते हैं ।
लोकानुग्रहके लिये अनेक प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैं,
जिसे देखकर गोस्वामीजी-ऐसे महाकविको भी कहना पड़ता
है कि—

चरित-सिन्धु गिरिजा-रवन वेद न पावइ पार ।

बरने तुलसीदास किमि अति मतिमंद गँवार ॥



श्रीहरिहरसाम्यवर्णन

उनते कड़ी है गंग, इनते बड़ी है गंग, वे हैं जो मुरारी तो पुरारी ए कहावैं हैं ,
उनके रमा हैं संग, इनके उमा हैं संग, उतै साँप-सेज, इतै साँप लपटावैं हैं ।
नंद-गोद राजैं यह, नंदि-पीठ राजैं यह, सीस चंद छावैं, चंद सीसयैं चढ़ावैं हैं ,
पापके हरैया हरि, तापके हरैया हर, एक हैं, कहावैं दोय भक्तनको भावैं हैं ॥

—श्रीनन्दलालजी माथुर

* जगत्की प्रसवित्री होते हुए भी तुमसे प्रसूत, भवानी सदाशम्भुअर्धङ्गनिवासिनि होनेपर भी कुमारी, अजा, अनादि
शक्ति होते हुए भी तब सुता । भाव यह कि अघटितषट्नापटीयसी माया है ।

श्रीशिवनिर्माल्यादिनिर्णय

(लेखक—श्रीहाराणचन्द्रजी मट्टाचार्य, प्रधानाध्यापक, मारवाड़ी-संस्कृत-कालेज, काशी)

अवतरणिका



नैवेद्यके विषयमें शिवपुराणादि शास्त्र-ग्रन्थोंमें विस्तारसे निरूपण है; इसके पूर्व अनेक विशिष्ट पण्डित भी विचारकर इस विषयमें शास्त्रीय सिद्धान्त प्रकाशित कर चुके हैं, तथापि इस समय कुछ लोग शास्त्रीय सिद्धान्तकी अनभिज्ञताके कारण इस विषयमें भ्रममें पड़े हैं; इसलिये शिवाङ्कमें दो-चार अक्षर लिख देना कर्तव्य समझता हूँ।

शिवनैवेद्य-ग्रहणकी प्रशंसा

शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिताके २२वें अध्यायमें शिव-नैवेद्यकी प्रशंसा स्पष्टरूपसे लिखी है—

दृष्ट्वापि शिवनैवेद्यं यान्ति पापानि दूरतः ।
भुक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्यान्यायान्ति कोटिदाः ॥ ४ ॥
अलं यागसहस्रेण ह्यलं यागार्बुदैरपि ।
भक्षिते शिवनैवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५ ॥
आगतं शिवनैवेद्यं गृहीत्वा शिरसा मुदा ।
भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम् ॥ ७ ॥
न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते ।
स पापिष्ठो गरिष्ठः स्यात्तरकं यात्यपि ध्रुवम् ॥ ९ ॥
शिवदीक्षाऽन्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम् ।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम् ॥ ११ ॥

श्लोकार्थ सहज हैं। इनमें शिवनैवेद्य-भक्षणकी प्रशंसा तथा उसके त्यागकी निन्दा है। शिवनैवेद्य-भक्षण करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं, पुण्यकी प्राप्ति होती है। जिसकी शिवनैवेद्यके ग्रहणमें इच्छा नहीं होती, वह महापापी नरक-को प्राप्त होता है—यह इन वाक्योंका संक्षिप्त तात्पर्य है।

जिन पुरुषोंकी शिव-मन्त्रमें दीक्षा हुई है, उन सबके लिये लिङ्गका नैवेद्य भक्षण करनेकी विधि है। जिनकी अन्य देवताकी दीक्षा है, उनके लिये निषेध कहा है। (शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता अध्याय २२)

अन्यदीक्षायुतनृणां शिवभक्तिरताऽऽश्मनाम् ।
शृणुध्वं निर्णयं प्रीत्या शिवनैवेद्यभक्षणे ॥

शालग्रामोद्भवे लिङ्गे रसलिङ्गे तथा द्विजाः ।
पाषाणे राजते स्वर्णे सुरसिद्धप्रतिष्ठिते ॥
काश्मीरे स्फटिके रात्रौ ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वशः ।
चान्द्रायणसमं प्रोक्तं शम्भोनैवेद्यभक्षणम् ॥
ब्रह्महाऽपि शुचिर्भूत्वा निर्माद्वयं यस्तु धारयेत् ।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति ॥

(१२-१५)

जिनकी अन्य देवताकी दीक्षा है और श्रीशिवमें भक्ति है—उनके लिये शिवनैवेद्य-भक्षणका यह निर्णय है—

जिस स्थानमें शालग्रामशिलाकी उत्पत्ति होती है, वहाँके उत्पन्न लिङ्गमें, पारद (पारा) के लिङ्गमें, पाषाण, रजत तथा स्वर्णसे निर्मित लिङ्गमें, देवता तथा सिद्धोंके प्रतिष्ठित लिङ्गमें, केशरसे निर्मित लिङ्गमें, स्फटिक-लिङ्गमें, रत्ननिर्मित लिङ्गमें, समस्त ज्योतिर्लिङ्गोंमें श्रीशिवका नैवेद्य-भक्षण चान्द्रायण-व्रतके समान पुण्यजनक है। ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष भी यदि पवित्र होकर शिवनिर्माल्य भक्षणकर उसे धारण करे तो उसका सारा पाप नष्ट हो जाता है।

इन वाक्योंसे यह स्पष्ट है कि जिनकी शैवी दीक्षा नहीं है वे भी उपर्युक्त लिङ्गोंके नैवेद्यका भक्षण कर सकते हैं, परन्तु पार्थिवलिङ्ग प्रभृतिके, अर्थात् जिनके नाम श्लोकोंमें नहीं आये हैं, नैवेद्यका भक्षण न करें। शैवी-दीक्षावाले तो सभी लिङ्गोंके नैवेद्यका भक्षण करें—यह पहले उद्धृत किये हुए—

शिवदीक्षाऽन्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम् ।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम् ॥

(शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२।११)

—इस वचनमें स्पष्ट कहा है।

ज्योतिर्लिङ्गोंके नाम तथा नैवेद्यकी ग्राह्यता

उपर उद्धृत किये हुए श्लोकमें ज्योतिर्लिङ्गोंका नैवेद्य सभीको ग्रहण करना चाहिये यह बताया है। ज्योतिर्लिङ्गोंका निरूपण शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहितामें इसप्रकार किया है और उनके नैवेद्यको ग्राह्य तथा भक्ष्य कहा है—

सौराष्ट्र-देशमें सोमनाथ, श्रीशैलमें महिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ओङ्कारमें परमेश्वर, हिमालयमें केदार, डाकिनीमें भीमशङ्कर, वाराणसीमें विश्वनाथ, गोमतीतटमें त्र्यम्बक, चिताभूमि (अन्य लिङ्गोंके स्थानकी तरह यह भी देशविशेष है—मृतककी चिता नहीं है) में वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर, शिवालयमें घुश्मेश—ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं; इनके नैवेद्य-का ग्रहण तथा भोजन करना चाहिये। जो इनके नैवेद्यका ग्रहण तथा भोजन करते हैं, उनके सारे पाप क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं।

श्रीविश्वेश्वर प्रभृति लिङ्गोंके नैवेद्यकी ग्राह्यता

काशीमें श्रीविश्वेश्वर-लिङ्गका नैवेद्य-भक्षण उसके ज्योतिर्लिङ्ग होनेके कारण सभीके लिये पुण्यजनक है, यह शास्त्रप्रमाण-से सिद्ध है। पहले शिवपुराण-विश्वेश्वरसंहिताका जो वचन उद्धृत किया गया है, उसमें देवता तथा सिद्धोंके द्वारा प्रतिष्ठित सभी लिङ्गोंके नैवेद्यको भक्ष्य बताया है। काशीमें शुक्रेश्वर, वृद्धकालेश्वर, सोमेश्वर प्रभृति जितने पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग हैं, वे सभी किसी-न-किसी देवता या सिद्धके द्वारा प्रतिष्ठित किये हुए हैं; इसलिये काशीके पुराण-प्रसिद्ध लिङ्गोंका नैवेद्य शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य—सभीको भक्ष्य है।

श्रीविश्वेश्वर प्रभृति लिङ्गोंके स्नानजलकी महिमा

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् ।

त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति ॥

(शिवपुराण-विश्वेश्वरसंहिता २२ । १८)

जो मनुष्य शिवलिङ्गको विधिपूर्वक स्नान कराकर उस स्नानके जलका तीन बार आचमन करते हैं उनके शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकारके पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। श्रीविश्वेश्वरके स्नानके जलका विशेष माहात्म्य है—

जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः ।

पृथु जालन्धरो बन्धः समस्तसुरदुर्लभः ॥

(स्कन्दपुराण—काशीखण्ड ४१ । १८०)

श्रीविश्वेश्वरके स्नान-जलको मस्तकमें धारण करना,

यह योगशास्त्रमें प्रतिपादित जालन्धर-बन्धके समान पुण्य-जनक है और समस्त देवताओंको दुर्लभ है।

मीमांसक पद्धतिसे वचनोंकी एकवाक्यता

ऊपर उद्धृत किये हुए शास्त्र-वाक्योंसे शिव-नैवेद्यकी भक्ष्यता तथा शिवचरणोदककी ग्राह्यता सिद्ध होती है। इस विषयमें कुछ शास्त्रवाक्य अन्य प्रकारके भी मिलते हैं; पूर्व पण्डितोंकी परम्पराके अनुसार उन वचनोंकी मीमांसा की जाती है। श्रुति-वाक्योंमें परस्पर विरोध प्रतीत होनेपर पूर्व-मीमांसा तथा उत्तर-मीमांसाकी युक्तियोंसे उसका निर्णय किया जाता है। धर्मशास्त्रके निबन्धकार कमलाकर भट्ट, वाचस्पति मिश्र, शूलपाणि, रघुनन्दन भट्टाचार्य प्रभृति महानुभावोंने मीमांसाकी पद्धतिसे परस्पर विरुद्ध-से प्रतीत होनेवाले शास्त्रवाक्योंका अर्थ निर्णय किया है और उसी निर्णयको सभी शिष्टजन आजतक मानते आये हैं। मीमांसाकी पद्धतिको न जाननेसे विरुद्ध वचन देखकर लोगोंको भ्रम हो जाता है। इसलिये मीमांसाकी पद्धतिसे यहाँ निर्णय दिखाया जाता है—

पूर्व-मीमांसा, प्रथम अध्याय, प्रथम पाद, चतुर्थ सूत्रमें मीमांसकधुरन्धर श्रीकुमारिल भट्ट लिखते हैं—

सम्भवस्यैकवाक्यत्वे वाक्यभेदश्च नेष्यते ।

(श्लोकवार्तिक १ । १ । ४ । ९)

जिन स्थलोंमें एकवाक्यता सम्भव है वहाँ वाक्यभेद इष्ट नहीं है; (क्योंकि, वाक्यभेद करनेसे अर्थात् भिन्न वाक्य माननेसे वहाँ गौरव होता है।) यही युक्ति प्रकृतमें सारी मीमांसाका मूल है। सामान्य वचनका विशेष वाक्यमें उपसंहार किया जाता है अर्थात् विशेष वाक्यके साथ सामान्य वाक्यकी एकवाक्यतासे विशेष वाक्यके विषयमें सामान्य वचनका सङ्कोच किया जाता है—सामान्य वाक्यको विशेष विषयमें नियमित किया जाता है—यह मीमांसकोंकी युक्ति-युक्त सिद्धान्तपद्धति है। कुमारिल भट्टने यही बात तन्त्र-वार्तिकमें कही है—

सामान्यविधिरस्पष्टः संहिवेत विशेषतः ।

विधि तथा निषेधोंका उपसंहार

यह उपसंहार विधिवाक्य तथा निषेधवाक्य दोनोंका माना गया है। 'पुरोडाशं चतुर्धा करोति' इस सामान्य

विधिका 'आग्नेयं चतुर्धा करोति' इस विशेष वाक्यमें उप-संहार माना गया है। इसी पद्धतिके अनुसार—

सहानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात् ।
या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् ।
सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत् ॥
न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्षिता ।
न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी ॥

ब्राह्मणीके लिये सहमरणके निषेधक इन सामान्य निषेध-वाक्योंका—

पृथक् चित्तिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति ॥

अर्थात् पृथक् चित्तामें आरुढ़ होकर ब्राह्मणीको सती न होना चाहिये, इस विशेष निषेध-वाक्यके साथ उपसंहार होता है। यह सिद्धान्त प्राचीन प्रामाणिक मीमांसक शङ्कर भट्टने 'मीमांसाबालप्रकाश' में प्रतिपादित किया है। वेद-भाष्यकार माधवाचार्यने 'पराशर-भाष्य' में तथा कमलाकर भट्टने 'निर्णय-सिन्धु' में इन निषेध-वाक्योंकी इसी प्रकार एकवाक्यता मानी है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि सामान्य निषेध-वचनोंका विशेष वचनोंमें उपसंहार प्रामाणिक ग्रन्थकारोंको सम्मत है। इसी पद्धतिसे शिवनिर्माल्यके निषेधक सामान्य वचनोंके साथ विशेष वचनोंकी एकवाक्यता करनेसे इस विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता।

शिवनिर्माल्यकी अग्राह्यताकी व्यवस्था

शिवनिर्माल्यकी अग्राह्यताके प्रतिपादक वचन ये हैं—

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
शालग्रामशिलासङ्गात् (स्पर्शात्) सर्वं याति पवित्रताम् ॥
(शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२।१९)

अनहं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
मह्यं निवेद्य सकलं कूप एवं विनिःक्षिपेत् ॥
(पाश्च शिवोक्तिः)

विसर्जितस्य देवस्य गन्धपुष्पनिवेदनम् ।
निर्माल्यं तद्विजानीयाद् वज्रं वस्त्रविभूषणम् ॥
अर्पयित्वा तु ते भूयश्चण्डेशाय निवेदयेत् ।
(स्कान्दे सूतोक्तिः)

धराहिरण्यगोरक्षताम्ररौप्यांशुकादिकान् ।
विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥
(निर्णयसिन्धुमें उद्धृत)

इन वाक्योंसे यह सिद्ध होता है कि भूमि, वस्त्र, भूषण, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र आदि छोड़कर श्रीशिवके चढ़े हुए पत्र, पुष्प, फल, जल—ये सब निर्माल्य अग्राह्य हैं, इन निर्माल्योंको चण्डेश्वरके निवेदन करना चाहिये। यद्यपि ये निर्माल्य स्वयं अग्राह्य हैं तथापि शालग्राम-शिला-स्पर्शसे पवित्र—ग्रहणके योग्य—हो जाते हैं।

इन वचनोंसे यह स्पष्ट हो गया कि श्रीशिवके जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग हैं, उनका ग्रहण निषिद्ध है; जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग नहीं हैं, उनके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है—उनको ग्रहण करना चाहिये। इसलिये शिवपुराण-विद्येश्वरसंहितामें स्पष्ट कहा है—जिनमें चण्डका अधिकार है, मनुष्य उन निर्माल्यों या नैवेद्योंका भक्षण न करें—

चण्डाधिकारो यत्रास्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः ।

(२२।१६)

यह भी उसीमें कहा है कि जिनमें चण्डका अधिकार नहीं है, उनका भक्तिपूर्वक भक्षण करना चाहिये—

चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तच्च भक्तितः ।

(शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२।१६)

शिवनिर्माल्य-निषेधका परिहार

निम्नप्रकारके लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है, इस-लिये इन लिङ्गोंके निर्माल्य ग्राह्य तथा भक्ष्य हैं—

बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि ।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥

(शि० पु० वि० सं० २२।१७)

बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर), लौह (स्वर्णादिधातुमय) लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग (जिन लिङ्गोंकी उपासनासे किसीने सिद्धि प्राप्त की है, या जो सिद्धोंद्वारा प्रतिष्ठित हैं), स्वयंभूलिङ्ग (केदारेश्वर प्रभृति)—इन लिङ्गोंमें तथा शिवकी प्रतिमाओं- (मूर्तियों) में चण्डका अधिकार नहीं है।

लिङ्गे स्वायम्भुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते ।
सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत् ॥

(निर्णयसिन्धुमें उद्धृत)

इस वाक्यमें 'रत्ननिर्मित तथा पारदनिर्मित लिङ्गमें भी चण्डका अधिकार नहीं है'—इतना अधिक कहा गया है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि इन शिवलिङ्गोंके निर्माल्य या नैवेद्यका ग्रहण करनेमें दोष नहीं है।

नर्मदेश्वरके निर्माल्यकी ग्राह्यता

वर्तमान श्रीविश्वेश्वर-लिङ्ग बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) हैं। इसलिये उनके स्नानोदक, निर्माल्य तथा नैवेद्यदिमें अग्रहणकी शङ्का भी ठीक नहीं है। बाणलिङ्गके सम्बन्धमें उपर्युक्त वचनके अतिरिक्त मेरुतन्त्र (चतुर्दश पटल) में भी विशेष वचन है—

बाणलिङ्गे न चाशौचं न च निर्माल्यकल्पना ।
सर्वं बाणापिर्तं ग्राह्यं भक्त्या भक्तेश्च नान्यथा ॥
ग्राह्याग्राह्यविचारोऽयं बाणलिङ्गे न विद्यते ।
तदपिर्तं जलं पत्रं ग्राह्यं प्रसादसंज्ञया ॥

बाणलिङ्गके विषयमें ग्राह्य तथा अग्राह्यका विचार नहीं है। बाणलिङ्गपर चढ़ाया हुआ सभी कुछ (जल, पत्र आदि) भक्तिपूर्वक प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये—यह इस वाक्यमें स्पष्ट बताया गया है।

सिद्धलिङ्ग तथा स्वयम्भूलिङ्ग

शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहिता तथा काशीखण्ड प्रभृति ग्रन्थोंके अवलोकनसे प्रतीत होता है कि काशी प्रभृति तीर्थोंमें पुराणप्रसिद्ध जितने भी लिङ्ग हैं, उनमें कोई स्वयम्भूलिङ्ग हैं, कोई सिद्धलिङ्ग हैं। जो लिङ्ग भक्तोंके अनुग्रहके लिये स्वयं प्रकट हुए हैं वे स्वयम्भूलिङ्ग हैं, जो लिङ्ग सिद्ध महात्मा जनोंद्वारा प्रतिष्ठित या उपासित हैं वे सिद्धलिङ्ग हैं—वे सभी पुराणप्रसिद्ध हैं। ऊपर उद्धृत किये हुए शिवपुराणके वचनके अनुसार पुराणप्रसिद्ध इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है और उनके निर्माल्य या नैवेद्यके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है; अपितु पूर्वप्रदर्शित शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिताके वाक्योंके अनुसार उन लिङ्गोंके नैवेद्यका ग्रहण पुण्यजनक है।

शिवनिर्माल्य-निषेधकी विशेष व्यवस्था

पूर्वप्रदर्शित जिन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार है उनके विषयमें भी विशेष व्यवस्था है और वह इसप्रकार है—

लिङ्गोपरि च यद् द्रव्यं तद्ग्राह्यं मुनीश्वरः ।
सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिङ्गस्पर्शबाह्यतः ॥

(शि०पु०वि०सं० २२।२०)

जो वस्तु लिङ्गके ऊपर रखी जाती है, वह अग्राह्य

है। जो वस्तु लिङ्गस्पर्शसे रहित है अर्थात् जिस वस्तुको अलग रखकर श्रीशिवजीको निवेदित किया जाता है—लिङ्गके ऊपर नहीं चढ़ाया जाता—वह अत्यन्त पवित्र है।

लिङ्गार्चनतन्त्र—द्वादशपटलमें भी शिवलिङ्गके ऊपर चढ़ाया हुई वस्तुओंको अग्राह्य बताया है—

यस्मिन्निहोपचारं हि लिङ्गोपरि निवेदयेत् ।
तस्मिन्माल्यं महेशानि अग्राह्यं परमेश्वरि ॥

इन वाक्योंके साथ एकवाक्यता करनेसे पता लगता है कि जितने शिवनिर्माल्यके निषेधक वाक्य हैं, सभी लिङ्गके ऊपर चढ़ाया हुई वस्तुओंका निषेध करते हैं।

शिवनिर्माल्यकी व्यवस्थाका सारांश

समस्त सामान्य वचनोंके साथ विशेष वचनोंकी एक-वाक्यता करनेसे यह सिद्ध होता है कि—

नर्मदेश्वर लिङ्ग, धातुमय लिङ्ग, रत्न-लिङ्ग, पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग—इन लिङ्गोंके ऊपर चढ़ाये हुए निर्माल्यका ग्रहण तथा भक्षण करना शास्त्रविधिसम्मत है। अन्य लिङ्गोंके ऊपर चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्माल्योंका ग्रहण करना शास्त्रसम्मत नहीं है। शिवनिर्माल्य-ग्रहण तथा शिव-नैवेद्य-भक्षणके निमित्त जो प्रायश्चित्त शास्त्रमें कहे गये हैं, वे भी इन निषिद्ध नैवेद्य तथा निर्माल्योंके विषयमें ही हैं। जिन शिव-नैवेद्य तथा शिव-निर्माल्यका ग्रहण और भक्षण शास्त्रविधिसम्मत है, उनके ग्रहण तथा भक्षणके निमित्त प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। निषिद्ध कर्मोंके लिये शास्त्रोंमें प्रायश्चित्त कहे गये हैं, विहित कर्म करनेसे प्रायश्चित्तकी प्राप्ति ही नहीं है। पापोंके हटानेके लिये प्रायश्चित्त किया जाता है। विहित कर्मके अनुष्ठानसे पाप नहीं होता, अपितु विहित कर्मके अननुष्ठान, निषिद्ध कर्मके आचरण और हृन्दित्रियोंका निग्रह न करनेसे पापोंकी उत्पत्ति होती है; उन्हीं पापोंकी शुद्धिके लिये शास्त्रोंमें प्रायश्चित्तका उपदेश किया गया है—

विहितस्याननुष्ठानाच्चिन्दित्रस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥
तस्मात्तेनेह कर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति ॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३।२१९-२२०)

निर्णयसिन्धु तृतीय परिच्छेद पूर्वभागमें भी श्रीशिव-

निर्मात्यके विषयमें इसी प्रकार व्यवस्था की है। नर्मदेश्वर-लिङ्ग, धातुमयलिङ्ग, रत्नलिङ्ग तथा स्वयम्भू और सिद्धलिङ्ग (जो पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग हैं) इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार न होनेसे इनके ऊपर चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्मात्य सभीके भक्ष्य तथा ग्राह्य हैं, यह पहले कहा जा चुका है। जो वस्तुएँ शिवलिङ्गपर चढ़ायी नहीं गयी हों, किन्तु किसी भी लिङ्गको निवेदित की गयी हों, वे वस्तुएँ शैवी दीक्षा-यात्रे मनुष्योंके लिये ग्राह्य हैं। जिन्हें शैवी दीक्षा नहीं है उनके लिये पार्थिवलिङ्गके निवेदितको छोड़कर और सभी लिङ्गोंको निवेदित की हुई वस्तुएँ तथा शिवप्रतिमाको निवेदित किये हुए प्रसाद ग्राह्य हैं। जिन शिवनिर्मात्योंके लिये निषेध है, वे भी शालग्राम-शिलाके संसर्गसे ग्राह्य हो जाते हैं, यह शास्त्रमर्यादा है।

शिवनिर्मात्य-धारणके प्रायश्चित्तका निर्णय

‘प्रायश्चित्तविवेक’, ‘तिथितत्त्व’ तथा ‘निर्णयसिन्धु’ आदि ग्रन्थोंमें यह वचन उद्धृत है—

रुद्रस्य रुद्रस्य निर्मात्यं सवासा (वाससा) आभुतः शुचिः।

अर्थात् रुद्रके निर्मात्यको स्पर्श करनेवाला पुरुष सचैल स्नानसे शुद्ध होता है।

रघुनन्दन भट्टाचार्यने तिथितत्त्व-शिवरात्रिप्रकरणमें इस सामान्य वचनकी अन्य विशेष वचनके साथ एकवाक्यता की है—

निर्मात्यं यो हि मद्रक्त्या शिरसा धारयिष्यति।

अशुचिर्भिन्नमर्यादो नरः पापसमन्वितः॥

नरके पच्यते घोरे तिर्यग्योनौ च जायते॥

(स्कन्दपुराण)

इस वचनमें जो अशुचि अवस्थामें शिवनिर्मात्यको धारण करते हैं, उनके लिये पाप कहा है। इस वाक्यके अनुरोधसे पूर्वप्रदर्शित सामान्य वाक्य भी अशुचिविषयक समझना चाहिये। इन दोनों वाक्योंको मिलाकर यह अभिप्राय निकलता है—

अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्मात्यको नहीं धारण करना चाहिये। जो अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्मात्यको धारण करता है वह पापी होता है; इस पापकी शुद्धिके लिये सचैलस्नान प्रायश्चित्त है।

ज्ञानादिसे शुद्ध होकर शिवनिर्मात्यको धारण करनेसे

ब्रह्महत्या-जैसे पापतक नष्ट हो जाते हैं—यह शिवपुराण तथा स्कन्दपुराणके वाक्योंमें कहा है—

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्मात्यं यस्तु धारयेत्।

भक्षयित्वा धृतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति॥

(विद्येश्वरसंहिता २२।१५)

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्मात्यं यस्तु धारयेत्।

तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते॥

(तिथितत्त्वमें उद्धृत स्कन्दपुराण)

शिवनिर्मात्य-धारणकी इस विधिके साथ अविरोध सम्पादन करनेके लिये—इस विधिके अनुरोधसे भी—पूर्वोक्त शिवनिर्मात्य-धारणका प्रायश्चित्त अशुचिके विषयमें ही समझना उचित है।

शिवनिर्मात्य-विषयक अन्य वाक्योंकी व्यवस्था

ऊपर शिव-निर्मात्य-ग्रहणके अनुकूल तथा प्रतिकूल शास्त्र-वाक्योंका तात्पर्य मीमांसक-पद्धतिसे निर्णय करके दिखाया गया है। इस विषयमें इसप्रकारके जितने भी अन्य शास्त्र-वाक्य हैं, उन सभीके तात्पर्यका पूर्वप्रदर्शित मीमांसक-पद्धतिसे निर्णय करना शास्त्रमर्मज्ञ पुरुषोंका कर्तव्य है। युक्तियुक्त मीमांसा-पद्धतिका परित्याग कर शास्त्र-वचनोंके अनर्थको अर्थकर जनतामें उपदेश देना अपने पाण्डित्यपर विश्वजनोंका संशय उत्पन्न कराना ही है।

भस्मरुद्राक्षधारणकी विधि

इस अवसरपर प्रसङ्गवश और दो बातें कह देना अनुचित न होगा।

कुछ महाशय साम्प्रदायिक आग्रहवश भस्म-त्रिपुण्ड्र तथा रुद्राक्षधारणकी अनर्गल निन्दा करते हैं। उनसे मुझे कुछ कहना नहीं है। जो आग्रही हैं, वे अपना हठ छोड़नेके लिये कभी प्रस्तुत नहीं होंगे—इस बातको मैं निश्चितरूपसे जानता हूँ। इसलिये उन आग्रही महाशयोंके लिये व्यर्थ परिश्रम न उठाकर मैं जिज्ञासु जनताके लिये इस तत्त्वका उद्घाटन करना उचित समझता हूँ।

बृहज्जालोपनिषद्—पञ्चम ब्राह्मणमें भस्म-धारणकी विशेष प्रशंसा है—

तेनाधीतं धृतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।

येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना धृतम्॥

त्यक्तवर्णाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि यः ।
सकृत्तिर्यक्त्रिपुण्ड्राङ्गधारणात् सोऽपि पूज्यते ॥
ये भस्मधारणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः ।
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराजन्मकोटिभिः ॥

(७-९)

‘जिस ब्राह्मणने भस्मकमें भस्म-त्रिपुण्ड्र धारण किया है, उसने समस्त शास्त्रोंका अध्ययन तथा श्रवण किया है—समस्त कर्त्तव्यका अनुष्ठान किया है। जिसने वर्णाश्रमके आचारका परित्याग कर दिया है, जिसकी समस्त क्रिया लुप्त हो गयी है—एक बार त्रिपुण्ड्र धारण कर लेनेपर वह भी पूजित होता है। जो मनुष्य भस्मधारण न कर कर्म करते हैं, कोटि जन्मोंसे भी उनकी संसारसे मुक्ति नहीं होती।’

बृहज्जाबालोपनिषद्में और भी बहुत वाक्य हैं जिनसे चारों वर्णोंके लिये भस्म-धारण कर्त्तव्य सिद्ध होता है। कालाग्निरुद्र तथा भस्मजाबाल-उपनिषदोंमें भी भस्मधारणकी विधि विस्तारपूर्वक लिखी है।

रुद्राक्षजाबालोपनिषद्में रुद्राक्ष-धारणकी विधि है—एक मुखसे लेकर चतुर्दशमुखपर्यन्त रुद्राक्षके धारणका फल विस्ताररूपसे वर्णन किया गया है। शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता तथा स्कन्दपुराण-काशीखण्डमें भी भस्म-रुद्राक्ष-धारणकी विधि है।

उपनिषद् श्रुति हैं; पूर्वोक्त सब उपनिषद् अथर्ववेदके अन्तर्गत हैं। धर्म तथा अधर्मके निर्णयमें श्रुति सबसे प्रबल प्रमाण है। महर्षि जैमिनि पूर्व-मीमांसामें लिखते हैं—

‘विरोधे स्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्।’

(१।३।३)

इस सूत्रका अर्थ ‘कुतूहलवृत्ति’में इसप्रकार लिखा है—
प्रत्यक्षश्रुतिविरोधे सति अनपेक्षं मूलप्रमाणानपेक्षं
श्रुतिवाक्यमेव प्रमाणं स्यात्तु स्मृतिवाक्यम्।

जिस स्थलमें प्रत्यक्ष श्रुतिसे विरोध हो, उस स्थलमें श्रुतिवाक्य ही प्रमाण है, स्मृतिवाक्य (मन्वादि धर्मशास्त्र तथा पुराण) प्रमाण नहीं हैं।

‘व्यासस्मृति’में इस बातको स्पष्ट किया है—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।

तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात्तयोर्द्वे स्मृतिर्वरा ॥

(१।४)

‘जिस विषयमें श्रुति, स्मृति तथा पुराणका परस्पर विरोध हो, उस स्थलमें श्रुतिवाक्य प्रमाण है; स्मृति तथा पुराणके विरोधस्थलमें स्मृति प्रमाण है।’

उपरिलिखित प्रमाणोंसे धर्मधर्मके निर्णयमें श्रुतिकी प्रबलता सिद्ध होती है। रुद्राक्ष-भस्म-धारणकी विधि पूर्वोक्त उपनिषदोंमें होनेसे पुराण-वाक्योंसे उसका निषेध नहीं हो सकता; किन्तु उन पुराण-वाक्योंको सत्यता अप्रमाण न मानकर उनके विषयमें कुछ व्यवस्था करना उचित है। भस्म-धारणकी पौराणिक निन्दा श्रुतिसे विहित यज्ञादिकके भस्मके लिये नहीं है; यह निन्दा इमशानभस्म—चिताभस्म—के विषयमें है। शास्त्रमें रुद्राक्षधारणकी पद्धति कही गयी है—उस शास्त्रोक्त पद्धतिका परित्यागकर कोई अपनी मनमानी पद्धतिसे यदि रुद्राक्ष धारण करे तो पुराणवाक्य उसकी निन्दा करता है। शास्त्र-मर्मज्ञ प्राचीन आचार्योंने इसी रीतिसे शास्त्र-वाक्योंके परस्पर विरोधके स्थलोंमें व्यवस्था की है। प्रकृत विषयमें भी प्राचीन आचार्योंकी रीतिका अनुसरण करना युक्तियुक्त तथा आवश्यक है। शास्त्रोंकी मीमांसा-पद्धतिपर ध्यान न देकर सारी बातोंकी उत्तम आलोचना न करते हुए केवल आपातदृष्टिसे शास्त्र-वाक्योंका अर्थ निर्णय करनेका प्रयत्न भ्रमोत्पादनकी ही चेष्टा है।

श्रीशिवजीकी उपास्यता

यजुर्वेदसंहिता-रुद्राध्याय तथा श्वेताश्वतर, अथर्वशिरः, रुद्रहृदय आदि उपनिषदोंमें उपक्रम तथा उपसंहारकी एकवाक्यतासे श्रीशिवके सर्वोत्तमत्व, परमेश्वरत्व, मोक्षदातृत्व, सर्वमयत्व प्रभृतिका निरूपण किया गया है। शिवकी उपासना श्रुतिप्रतिपादित है—यह श्रीअप्पय्य दीक्षितने ‘शिवार्कमणिदीपिका’ (२।२।३८) में सिद्ध किया है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उपमन्यु नामक ब्राह्मणसे शैवी दीक्षा प्राप्तकर श्रीशिवजीके आराधनसे वरदान तथा साम्ब नामक पुत्रको प्राप्त किया था। महाभारत अनुशासनपर्व १४ तथा १५ वें अध्यायमें इसका वर्णन है। स्वयं श्रीकृष्णभगवान्ने अपने श्रीमुखसे उस स्थलमें शिवके माहात्म्य तथा अपने शिवाराधनके वृत्तान्तका वर्णन किया है। लिङ्गपुराण—पूर्वभाग—१०८ वें अध्यायमें भी श्रीकृष्णचन्द्रके शिवाराधन तथा शिवकी कृपासे साम्ब नामक पुत्रके लाभका वृत्तान्त लिखा है।

‘शिवार्कमणिदीपिका’में—‘फलमत उपपत्तेः’(३।२।३४)

इस अधिकरणमें श्रीशिवजीको समस्त पुरुषार्थका दाता प्रतिपादित किया गया है। 'तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्' (१।१।७) 'नेतरोऽनुपपत्तेः' इन दो सूत्रोंकी टीकामें श्रीशिवजीके मोक्षदातृत्वका निरूपण किया गया है। इसप्रकार श्रीशिवजीकी परम श्रेष्ठता तथा उपास्यता श्रुति तथा महाभारतादि सभी शास्त्रोंसे सिद्ध है।

श्रीशिवजीकी श्रेष्ठतासूचक महाभारतका एक वाक्य पाठक

महाशयोंको भेंटकर लेख समाप्त किया जाता है—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः ।

नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे ॥

(अनुशासनपर्व १५।११) *

‘शिवके समान देव नहीं है, शिवके समान गति नहीं है, शिवके समान दाता नहीं है, शिवके समान योद्धा (वीर) नहीं है।’

श्रीकृष्णकी शिव-भक्ति

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीहाथीभाई शास्त्री)

कुछ लोग ‘श्रीकृष्ण शिव-भक्त थे’ इस बातको सुनकर बड़े चकित होते हैं। उन लोगोंकी कदाचित् यह धारणा होगी कि संसारमें श्रीकृष्णावतारसे पहले देवाराधन-जैसी कोई चीज ही न रही हो।

वेदादि अनादि शास्त्रोंमें परमेश्वरके ध्यान, पूजन, आराधन, स्तवन आदिका जो विधान उपलब्ध होता है वह सब जगत्के अन्तर्यामी, शिव-विष्णु आदि अनेक नामोंसे निर्दिष्ट, एक ही ईश्वरस्वरूपका स्पष्ट उल्लेख कर रहा है।

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ॥

यह ऋग्वेदका मन्त्र समस्त विद्याओंके ईशान (स्वामी) और सर्वभूत अर्थात् प्राणिमात्रके नियन्ता, ईश्वरशब्दवाच्य महादेवका निरूपण करता है। इसी मन्त्रका प्रतीक लेकर श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनको परम हितका उपदेश देते हुए कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।

इस श्लोकमें ‘ईश्वर’ शब्द—

ईश्वरः शर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः ।

—इत्यादि अमरकोश-वाक्यके अनुसार साक्षात् महादेवका वाचक है। उन्हींकी शरण जानेका स्वयं श्रीकृष्ण अर्जुनको उपदेश करते हैं। यही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी

शिव-भक्तिका प्रकृष्ट प्रमाण है, क्योंकि शरण-प्रपन्न अपने प्रिय सखा अर्जुनको परम श्रेयस्कर उपाय पूछनेपर वे शिव-शरणागतिका उपदेश देते हैं जो उनका स्वयं अनुभूत किया हुआ उपाय है। रही युद्धमात्रमें हिंसाजन्य पापकी आशंका, उसका परिहार अर्जुनके हृदयमें ठीक जैचानेके लिये—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

इस श्लोकका अवतरण किया गया है। कुछ महाशय ‘सर्वधर्म’ पदका दुनियाँभरके सब धर्म ऐसा अर्थ करते हैं, किन्तु यह भगवदाशय नहीं है। भगवान् यावत् धर्मका त्याग करके अपनी शरण लेनेको कहते हैं तो क्या भगवान् की शरण लेना धर्मसे भिन्न (अधर्म) है? सर्वथा नहीं; किन्तु यहाँ ‘सर्वधर्म’ पदसे सारे धर्मसम्बन्धी ऊहापोह-विचारका लक्ष्य कराया गया है; अर्थात् ‘धर्माधर्मसम्बन्धी सारी शङ्काओंको छोड़कर तू मेरी शरण आ जा, मैं जो कुछ कहूँ उसे करनेको तैयार हो जा, मैं तेरा परम हितैषी हूँ, तेरे हृदयमें पापादिके सम्बन्धमें जो शङ्काएँ होती हैं उन सबको छोड़ दे, मैं सब बापोंसे तुझे छुड़ाऊँगा अर्थात् तुझे सर्व पापसे बचानेकी जिम्मेदारी मैं लेता हूँ’—ऐसा कहकर भगवान्ने अर्जुनको अपनी शरण लेनेकी प्रेरणा की है।

इस वाक्यमें ‘माम् एकम्’ कहनेका तात्पर्य यह है कि पाप-निवारणके लिये मुझ अकेलेकी शरण लेनेहीसे काम हो जायगा, किन्तु परम श्रेयःप्राप्तिके लिये शिवभक्ति ही

* इस लेखमें ‘वङ्गवासी’ कार्यालयसे प्रकाशित वङ्गाक्षरमें मुद्रित महाभारतके अनुसार अध्याय तथा श्लोकाङ्का निर्देश किया गया है।

परम उपाय है। यद्यपि 'मोक्षयिष्यामि' (छुड़ाऊँगा) यह कहनेसे छोड़नेवाला कोई अन्य है, मैं छुड़ानेवाला हूँ, ऐसा तात्पर्य प्रतीत होता है; तथापि 'नैवं पापमवाप्स्यसि' इत्यादि पापनिर्मुक्तिके प्रकार पहले ही कई बार बताये जा चुके हैं—उन्हींका फिर यहाँ लक्ष्य कराकर 'मा शुचः' इन दो पदोंसे शोकनिवृत्ति कराते हैं।

प्रासंगिक वचनोंका अर्थ प्रसंगानुसार करनेसे ही यथार्थ तात्पर्यका ग्रहण हो सकता है; आगे-पीछेका प्रसंग छोड़कर बीचमेंसे किसी वाक्यखण्डके आपाततः प्रतीत होनेवाले अर्थकी कल्पना करनेसे केवल मूल अर्थकी हानि ही नहीं होती, अपितु कभी-कभी अनर्थ होनेकी भी सम्भावना रहती है।

किसी आलिमने शिक्षाके तौरसे अपनी किताबमें लिखा—'नमाज मत पढ़ो'। इसके आगेके 'जब कि नापाक हो' इस वाक्य-शेषकी ओर लक्ष्य न देते हुए किसी महाशयने समझ लिया कि फलानी किताबमें नमाज पढ़नेकी सुमानियत (निषेध) की गयी है। ऐसे ही 'अणोरणीयान्' इस उपनिषद्-वचनके आगेके 'महतो महीयान्' इस वाक्य-शेषके प्रति लक्ष्य न देते हुए कई महात्माओंने आत्माको परमाणु मान लिया। इसप्रकार किसी वाक्यकी एक टाँग पकड़कर अर्थ करना बड़े साहसका काम है। इसीलिये किसी वाक्यके तात्पर्यका निर्णय करनेके लिये उपक्रम, उपसंहार आदि मीमांसा-शास्त्रमें माने गये हैं।

अर्जुनको हर एक संकटके समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र-ने शिव-भक्तिका ही उपदेश दिया है और इसीसे उसके संकटकी निवृत्ति हुई है। 'जयद्रथको यदि सूर्यास्तके पहले न मार सकूँ तो मैं चिता-प्रवेश करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा जब अर्जुनने की तब सारी रात भगवान्ने अर्जुनको शिव-पूजनमें लगाकर उसे पाशुपतास्त्र पुनः प्राप्त कराया और 'मेरे रथके आगे वह त्रिशूलधर कौन है?' इसप्रकार अर्जुनके प्रश्न करनेपर 'जिसका तू आराधन करता है वही तेरी रक्षाके लिये यहाँ उपस्थित है और उसीके अनुग्रहसे सर्वत्र तेरी विजय होती है' ऐसा उत्तर श्रीकृष्णभगवान् देते हैं। महा-भारत द्रोणपर्व अध्याय २०१ में लिखा है कि द्रोणाचार्यकी मृत्युके बाद जब अश्वत्थामाने क्रोधाक्रान्त होकर नारायणास्त्रका प्रयोग किया तब सारी पाण्डवसेना जलने लगी, चारों ओरसे

अग्निकी ज्वालाएँ भभकने लगीं और श्रीकृष्णने अर्जुन आदि पाण्डवोंको तथा सात्यकि प्रभृति अपने इष्टजनोंको बचानेके लिये अपने-अपने वाहनोंसे उतारकर उनसे शस्त्रास्त्र छुड़ा दिया। क्योंकि नारायणास्त्रसे बचनेका एकमात्र उपाय अशस्त्र होकर भूमिपर खड़ा हो जाना ही है इस रहस्यको श्रीकृष्ण जानते थे; इस उपायका अनुष्ठान कराकर पाण्डवादि इष्टजनोंको भगवान्ने बचा लिया।

जब नारायणास्त्र बहुत-सी सेनाको दग्ध करके अदृश्य हो गया तब अश्वत्थामा पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण आदिको अक्षत देखकर हृदयमें सोचने लगा कि ये लोग कैसे बेदाग निकल गये। इतनेमें उसने व्यासभगवान्को रणभूमिमेंसे होकर गंगाजीकी ओर जाते देखा।

देखते ही अश्वत्थामा रथसे कूदकर व्यासजीके पास पहुँचा और प्रणाम करके बोला—भगवन्! कृपया मेरे मनोगत इस संशयका आप निवारण कीजिये। मेरे पिताजीने मुझे अस्त्र-विद्या सिखानेमें कुछ भेद रख लिया अथवा कलिकालके आ जानेसे मन्त्रोंका सामर्थ्य ही नष्ट हो गया या मेरे अन्दर कोई आचारवैगुण्य हो गया जिसके कारण मेरेद्वारा नारायणास्त्रका प्रयोग किये जानेपर भी कृष्ण एवं पाण्डव आदि बच गये ?

तब व्यासभगवान् मुसकरते हुए अश्वत्थामासे बोले—तेरे पिताने तुझे विद्या देनेमें किसी प्रकारका भेद नहीं रक्खा। यदि कहो कि कलिकालसे क्या मन्त्रोंका सामर्थ्य नष्ट हो गया तो श्रीकृष्ण और पाण्डवोंके सिवा और सब क्यों जल गये ? और तेरे अन्दर आचारवैगुण्यकी भी कोई सम्भावना नहीं है। किन्तु बात यह है कि श्रीकृष्ण और अर्जुनके स्वरूपका ज्ञान तुझे नहीं है, इसीसे तेरे मनमें अनेक प्रकारकी शंकाएँ हो रही हैं। इतना कहकर व्यासमुनि श्रीकृष्ण और अर्जुनका परिचय देते हुए कहने लगे—

योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः ।
अजायत च कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्वकृत् ॥२७॥
स तपस्वीव्रमातस्थे शिशिरं गिरिमाश्रितः ।
षष्टिं वर्षसहस्राणि वायुभक्षोऽम्बुजेक्षणः ॥२८॥
ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम् ।
रुद्रमीशानमृषभं हरं शम्भुं कपर्दिनम् ।
पञ्चाक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमान् ॥२९॥

तस्मै वरानचिन्त्यात्मा नीलकण्ठः पिनाकधृक् ।
अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदयिसंस्तुतः ॥७९॥

भगवान् श्रीशिव उवाच

मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु ।
अप्रमेयबलात्मा एवं नारायण भविष्यसि ॥८०॥
स एष देवश्चरति मायया मोहयन् जगत् ।
तस्यैव तपसा जातं नरं नाम महामुनिम् ।
तुल्यमेतेन देवेन तं जानीह्यर्जुनं सदा ॥८१॥
जन्मकर्मतपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कलाः ।
ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयार्चायां द्विजोत्तम ॥८२॥

‘ये पूर्यजोके भी पूर्वज, कमललोचन नारायण भगवान् विश्वका कार्य करनेके लिये धर्मपुत्रके रूपमें प्रकट हुए थे। इन्होंने हिमालय-पर्वतपर केवल वायु भक्षणकर साठ हजार वर्षपर्यन्त तीव्र तप करते हुए भक्तिपूर्वक विरूपाक्ष (त्रिलोचन), कपर्दी (जटाधर), रुद्र, ईशान, ऋषभ एवं हर इत्यादि संज्ञाओंवाले, विश्वेश्वर एवं विश्वके कारण, जगत्पति भगवान् शम्भुकी स्तुति की। उन देवताओंमें मुख्य ऋषिप्रवर नारायणकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर पिनाकधारी, अचिन्त्यस्वरूप भगवान् नीलकण्ठने उन्हें कई वर दिये। श्रीशिवने कहा—हे नारायण ! मेरे प्रसादसे देव, गन्धर्व एवं मनुष्यादिकोंमें तुम अप्रमेय बलवाले होगे।’

‘ये वही नारायणदेव अपनी मायासे जगत्को मोहित करते हुए विचरते हैं। इन्हींके तपःप्रभावसे इनकी समानता-को प्राप्त हुए महामुनि नरको तू अर्जुनरूपमें जान। जन्म, कर्म और तपोयोग इन दोनोंका और तेरा भी पुष्कल है तथापि तुम शिव-मूर्तिका पूजन करते हो और ये दोनों शिवलिङ्गमें हरार्चन करते हैं, इतनी बात इनके अन्दर विशेष है।’

इसप्रकार यद्यपि अश्वत्थामा भी शिव-भक्त है तथापि लिङ्गमें शिवार्चन करनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन उसके द्वारा अजेय हैं, यह दिखलाकर भगवान् व्यासमुनिने श्रीकृष्णका परम शिवभक्तत्व स्पष्टरूपसे प्रतिपादन किया है।

लिङ्गपुराण (पूर्वार्द्ध) के अध्याय १०८ में लिखा है—

पुत्रार्थं भगवांस्तत्र तपस्तप्तुं जगाम ह ।
आश्रमं चोपमन्योर्वै दृष्ट्वास्तत्र तं मुनिम् ॥ ४ ॥

नमश्चकार तं दृष्ट्वा धौम्याग्रजमहो द्विजाः ।
बहुमानेन वै कृष्णस्यः कृत्वैव प्रदक्षिणम् ॥ ५ ॥
तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः ।
नष्टमेव मलं सर्वं कायजं कर्मजं तथा ॥ ६ ॥
भस्मनोद्धूलनं दत्त्वा उपमन्युर्महामुनिः ।
तमग्निरिति विप्रेन्द्रा वायुरित्यादिभिः क्रमात् ॥ ७ ॥
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं प्रददौ प्रीतमानसः ।
मुनेः प्रसादान्मान्योऽसौ कृष्णः पाशुपतेद्विजाः ॥ ८ ॥
तपसा त्वेकवर्षेण दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ।
साम्बं सगणमव्यग्रं लब्धवान् पुत्रमात्मनः ॥ ९ ॥
तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयः शंसितव्रताः ।
दिव्याः पाशुपताः सर्वे तस्थुः संबृह्य सर्वतः ॥ १० ॥

‘भगवान् श्रीकृष्ण पुत्रप्राप्तिके लिये तप करनेको तपोवनमें जाते हैं। वहाँ महामुनि उपमन्युके आश्रममें जब आते हैं तो धौम्यके ज्येष्ठ बन्धु उपमन्युका दर्शन होता है। तब मुनिको प्रणाम करके श्रीकृष्ण तीन प्रदक्षिणा करते हैं। उन मुनियुक्तके दर्शनसे ही श्रीकृष्णके कायज और कर्मज मल नष्ट हो जानेपर मुनि उन्हें भस्मोद्धूलन करते हैं, फिर उपमन्यु मुनिसे श्रीकृष्ण शिवमन्त्रोपदेश ग्रहणकर एक वर्ष तपश्चर्या करते हैं। इस तपोऽनुष्ठानसे प्रसन्न होकर महेश्वर श्रीकृष्णको वर प्रदान करते हैं—इत्यादि।’

इसी लिङ्गपुराणके उत्तरार्द्धके पञ्चमाध्यायमें भगवान् विष्णु जब अम्बरीषको वर प्रदान करते हैं तब अम्बरीष श्रीविष्णुभगवान्से कहता है—

लोकनाथ परानन्द निश्चयं मे वर्तते मतिः ।
वासुदेवपरा देव वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥
यथा एवं देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः ।
तथा भवाम्यहं विष्णो तव देव जनार्दन ॥

‘हे लोकनाथ परमानन्दस्वरूप ! मेरी वृत्ति वाणी, मन और शरीरके कर्मोंसहित वासुदेवपरायण है। जैसे आप देवाधिदेव परमात्मा शिवके भक्त हैं वैसे ही हे जनार्दन ! विष्णो !! मैं आपका भक्त होऊँ, ऐसा अनुग्रह करिये।’

लिङ्गपुराणके उक्त दोनों प्रसङ्ग श्रीविष्णुके शिवभक्त होनेका स्पष्ट समर्थन करते हैं।

श्रीमहाभारत आनुशासनिक पर्वके चतुर्दशाध्यायमें

२२ वें श्लोकसे प्रारम्भकर भीष्मपितामहकी प्रेरणासे स्वयं वासुदेव कहते हैं—

न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्त्वतः ।
हिरण्यगर्भप्रमुखाः सेन्द्रा देवा महर्षयः ॥२२॥
न विदुर्यस्य भवनमादित्याः सूक्ष्मदर्शिनः ।
स कथं नरमात्रेण शक्यो ज्ञातुं सतां गतिः ॥२३॥
तस्याहमसुरघ्नस्य कांश्चिद् भगवतो गुणान् ।
भवतां कीर्त्तयिष्यामि व्रतेशाय यथातथम् ॥२४॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान् गुणास्तस्य महारमनः ।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा कथयामास धीमतः ॥२५॥

वासुदेव उवाच

यद्वाप्तं च मे सर्वं साम्बहेतोः सुदुष्करम् ।
इत्याद्युपक्रम्य—
पुत्रार्थिनी मामुपेत्य जाम्बवत्याह दुःखिता ॥२६॥
त्वया द्वादशवर्षाणि व्रतीभूतेन श्रुयता ।
आराध्य पशुभक्तारं रुक्मिण्यां जनिताः सुताः ॥२७॥
तथा समापि तनयं प्रयच्छ मधुसूदन ॥२८॥
ततः कृतस्वस्थयनोऽहमगच्छं हिमालयम् ।
क्षेत्रं च तपसां तत्र पश्याम्यद्भुतमुत्तमम् ॥२९॥
दिव्यं वैयाघ्रपथस्य उपमन्योर्महारमनः ।
शिरसा बन्दमानं मामुपमन्युरभाषत ॥३०॥
लप्स्यसे तनयं कृष्ण आरमतुह्यं न संशयः ।
तपः सुमहदास्थाय तोषयेजानमव्ययम् ॥३१॥
ब्रह्मसे पुण्डरीकाक्ष महादेवं न संशयः ।
अचिरेणैव कालेन यथा दृष्टो मयाऽनघ ॥३२॥
षोडशाष्टौ वरांश्चापि प्राप्स्यसि त्वं महेश्वरात् ।
सपत्नीकाद्यदुश्रेष्ठ सत्यमेतद् प्रवीमि ते ॥३३॥

‘जिन ईशके कर्मोंकी गतिको तत्त्वसे हिरण्यगर्भादि देव और महर्षि भी नहीं जान सकते और जिनके स्थानको सूक्ष्मदर्शी आदित्यादि भी नहीं पा सकते वह सत्पुरुषों-द्वारा प्राप्य भगवान् शिव नरमात्रसे कैसे जाने जा सकते हैं ? उन असुरहन्ता भगवान् महेशके कुछ गुणोंको मैं व्रत-निष्ठावाले आपको यथार्थरूपसे कहकर सुनाऊँगा ।’ इतना कहकर श्रीकृष्ण स्वयं आचमन-प्राणायामादिद्वारा पवित्र

होकर महात्मा शिवके गुणोंका वर्णन करने लगे । स्वयं वासुदेव कहते हैं—

‘पहले मैंने अपने पुत्र साम्बके लिये जो तप किया था’ इसप्रकार प्रारम्भ करके आगे कहने लगे—‘पुत्रार्थिनी जाम्बवती मेरे पास आकर दुःखित होकर कहने लगी कि आपने द्वादशवर्षोंकी तपश्चर्यासे शरीर-शोषणके द्वारा पशुपतिका आराधन करके देवी रुक्मिणीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न किये, वैसे ही हे मधुसूदन ! मुझे भी पुत्र प्रदान कीजिये ।’

फिर मैं ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर तपश्चरणार्थ हिमालयपर गया । वहाँ मैंने एक अद्भुत तपःक्षेत्र देखा और व्याघ्रपादमुनिके पुत्र उपमन्युके दिव्य आश्रममें जाकर मस्तक नवाकर मुनिका वन्दन किया । तब मुनिने कहा—‘हे कृष्ण ! अपने ही समान पुत्रकी प्राप्ति आपको जरूर होगी’ महान् तपोऽनुष्ठानसे महादेवको प्रसन्न करो । हे पुण्डरीकाक्ष ! थोड़े ही समयमें जैसे मैंने शिवको प्राप्त किया वैसे ही तुमको भी शिवका साक्षात्कार होगा । अन्तमें महादेवसे १६ और पार्वतीसे ८ ऐसे २४ (पुत्ररूपी) वरदान, हे यदुश्रेष्ठ ! आपको मिलेंगे, मैं सत्य कहता हूँ । यह मुनि-वचन सुनते ही मेरे हृदयमें दृढ़ विश्वास हो गया कि मुझे दैत्योंका मर्दन करनेवाले, देवोंके ईश्वर महादेवका अवश्य साक्षात्कार होगा । महादेव-सम्बन्धिनी कथाएँ सुनते हुए मुझे आठ दिन एक मुहूर्त-जैसे बीत गये । आठवें दिन उपमन्यु मुनिने मुझे शिव-दीक्षा देकर तपोऽनुष्ठानका आरम्भ कराया; जिसका साम्बादि पुत्रकी प्राप्तिरूप फल हुआ ।

नारायणावतार श्रीकृष्ण-जैसे पतिका योग होनेमें रुक्मिणीको भी शिवाराधन ही निमित्त हुआ—यह श्री-मद्भागवत (स्क० १० उत्तरार्द्ध अ० ५२ श्लोक ४०) में लिखा है—

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र-

गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान् परेशः ।

आराधितो यदि गदाग्रज एव पाणि

गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥

‘वापी (बावली), कूप (कुआँ), तड़ाग (तालाब), आराम (बगीचा) आदि निर्माणरूप पूर्त्त, यज्ञ, देवार्चनादि इष्ट, अहिंसादि नियम, शिवरात्रि आदि व्रत और देव, ब्राह्मण, गुरु प्रभृतिका पूजन-सत्कार—इन सब सत्कर्मानुष्ठान-द्वारा यदि मैंने भगवान् परेश महादेवका कुछ भी आराधन

किया हो तो गदाग्रज श्रीकृष्ण आकर मेरा पाणिग्रहण करें,
शिशुपालादि अन्य कोई न करें। आगे भी—

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ।
देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥
(अ० ५३ श्लोक २५)

तां वै प्रवयसो वालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ।
भवानीं वन्दयाच्चक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥
(अ० ५३ श्लोक ४५)

‘मैं दुर्भगा (अभागी) हूँ। न तो धाता (ब्रह्मा) और
न महेश्वर ही मेरे अनुकूल होकर मुझपर कृपा करते हैं,
और देवी रुद्राणी गिरिजा सती भी मुझसे विमुख हैं।’
इसप्रकार जब रुक्मिणी उद्विग्न होती है (तब) विधि जानने-
वाली वृद्ध ब्राह्मण-स्त्रियाँ उस वाला (रुक्मिणी) से शिव-
युक्त भवानीका वन्दन कराती हैं और रुक्मिणी स्वयं
प्रार्थना करती है—

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम् ।
भूयात्पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥४६॥

‘हे अम्बिके ! तुम्हारी सन्तान गणपति, कार्तिकेयादि-
युक्त तुमको नमस्कार करती हूँ। मेरे पति श्रीकृष्ण ही हों।
इस मेरी अभिलाषाको आप पूर्ण करें।’

इन सब निरूपणोंसे श्रीकृष्णचन्द्रके शिवभक्तत्वके साथ
श्रीकृष्णमहिषी रुक्मिणीकी भी शिवभक्ति स्पष्ट प्रतीत होती है।

भगवान् श्रीकृष्ण परम शिवभक्त और शिव-महिमाके
जाननेवाले हैं—यह कूर्मपुराणमें भी लिखा है—

कृष्णद्वैपायनः साक्षाद्विष्णुरेव न संशयः ॥
को ह्यन्यस्तत्त्वतो रुद्रं वेत्ति तं परमेश्वरम् ।
नार्जुनेन समः शम्भोर्भक्तो भूतो भविष्यति ।
मुक्त्वा सत्यवतीसूनुं कृष्णं वा देवकीसुतम् ॥

‘कृष्णद्वैपायन (व्यासमुनि) साक्षात् विष्णुरूप ही हैं,
इसमें संशय नहीं। व्यासमुनिको छोड़कर परमेश्वर रुद्रको
और कौन तत्त्वसे जान सकता है ? सत्यवतीसुत व्यास
और देवकीसुत श्रीकृष्ण—इन दोनोंके सिवा अर्जुनके
समान कोई शिवभक्त भूतकालमें हुआ नहीं और भविष्यमें
होगा भी नहीं।’

इन वाक्योंसे श्रीकृष्णका परम शिवभक्तत्व स्पष्ट सिद्ध
होता है।

श्रीमहाभारतके खिलपर्व हरिवंशमें भविष्यान्तर्गत
कैलासयात्राके अध्याय ७३ में श्रीरुक्मिणीकी प्रार्थनापर
श्रीकृष्ण कहते हैं—

एष गच्छामि पुत्रार्थं कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥३१॥
तत्रोपास्य महादेवं शङ्करं नीललोहितम् ।
ततो लब्ध्वास्मि पुत्रं ते भवाद् भूतहिते रतात् ॥३६॥
तपसा ब्रह्मचर्येण भवं शङ्करमव्ययम् ।
तोषयित्वा विरूपाक्षमादिदेवमजं विभुम् ॥३७॥
गमिष्याम्यहमद्यैव द्रष्टुं शङ्करमव्ययम् ।
स च मे दास्यते पुत्रं तोषितस्तपसा मया ॥३८॥

‘यह लो, मैं पुत्र-प्राप्तिके लिये पर्वतोत्तम कैलासकी तरफ
जाता हूँ और वहाँ महादेवकी उपासना करके (उनको प्रसन्न
करूँगा), नीललोहित अव्यय भगवान् शङ्करसे, जो प्राणिमात्रके
हितपरायण हैं, तुझे पुत्रलाभ होगा। ब्रह्मचर्यव्रतपालनपूर्वक
तपश्चर्यासे मैं उन विरूपाक्ष, आदिदेव, अज, विभु परमात्माको
सन्तुष्ट करूँगा ! मैं आज ही अव्यय शङ्करका दर्शन करने जाऊँगा
और मुझे दृढ़ विश्वास है कि मेरे तपसे प्रसन्न होकर वे
मुझे पुत्र अवश्य देंगे’ इत्यादि श्रीकृष्णकृत शिवोपासनाका
वहाँ बहुत विस्तारसे वर्णन किया गया है।

महाभारत-सौप्तिकपर्वमें स्वयं शिवने भी कहा है—

अहं यथावदाराध्यः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो मम न विद्यते ॥

‘अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्ण मेरा यथावत् आराधन करते
हैं इसलिये कृष्णसे बढ़कर मुझे और कोई प्रिय नहीं है।’
यह शिवजीका वचन श्रीकृष्णकी शिव-भक्तिके
परमोत्कर्षको दिखलाता है।

महाशिवपुराण-ज्ञानसंहिता (अध्याय ६१ से ७१) में
इस बातका वर्णन मिलता है कि बटुकाचल (सुदामापुरीके
पास बरडा पर्वत) पर सात मासतक श्रीकृष्णने तप किया
और वे महादेवको नित्य सहस्रनामसे विल्वपत्र चढ़ाते थे।
उनके तपसे तुष्ट होकर महादेवने उन्हें कई वर दिये जिनमें
पुत्र-प्राप्तिका वर मुख्य था। श्रीकृष्ण जिस शिवलिङ्गमें
शिवार्चन करते थे वह लिङ्ग विल्वेश्वर नामसे अद्यापि
प्रसिद्ध है और जिस नदीके तीरपर उनका मन्दिर है
उस नदीका नाम ‘विल्वगङ्गा’ है। वराभ्यर्थनाके समय श्रीकृष्ण
महाभारतके आनुशासनिकपर्वमें कहते हैं—

धर्मे दृढरवं युधि शत्रुघातं

यशस्तथाभ्यं परमं बलम् ।

योगप्रियत्वं तव सन्निकर्षं
 वृणे सुतानां च शतं शतानि ॥
 द्विजेष्वकोपं पितृतः प्रसादं
 शतं शुभानां परमञ्च भोगम् ।
 कुले प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं
 शमप्राप्तिं प्रवृणे चापि दाक्ष्यम् ॥

‘धर्ममें मेरी दृढ़ता रहे, युद्धमें शत्रुघात, जगत्में उत्तम यश, परम बल, योगप्रियता, आपका (शिवका) सान्निध्य, दस हजार पुत्र, ब्राह्मणोंमें कोपाभाव, पिताकी प्रसन्नता, सैकड़ों शुभकार्य, उत्कृष्ट वैभव-भोग, कुलमें प्रीति, माताका प्रसाद (अनुग्रह), शम-प्राप्ति (शान्ति-लाभ) और दक्षता (कार्यकुशलता)—ये पन्द्रह वर श्रीकृष्णने माँगे और महादेवने प्रसन्न होकर दिये ।’

श्रीकृष्णसे सुदामा कैवल्यमुक्तिकी प्रार्थना करता है तब श्रीकृष्ण स्कन्दपुराणान्तर्गत सूतसंहिता यज्ञवैभवखण्डके २५ वें अध्यायमें सत्यसन्धके प्रति स्वयं विष्णुभगवान्ने जो वचन कहे हैं, वही कहते हैं—

नाहं संसारमग्नानां साक्षात् संसारमोचकः ।
 ब्रह्मादिदेवाश्चान्येऽपि नैव संसारमोचकाः ॥३९॥
 अहं ब्रह्मादिदेवाश्च प्रसादात् तस्य शूलिनः ।
 प्रणाड्यैव हि संसारमोचका नात्र संशयः ॥४४॥
 नामतश्चार्थतश्चापि महादेवो महेश्वरः ।
 तदन्ये केवलं देवा महादेवा न तेऽनघ ॥५१॥
 महादेवं विना यो मां भजते श्रद्धया सह ।
 नास्ति तस्य विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥५२॥

‘संसारमग्न जनोंको मैं संसारसे साक्षात् मुक्ति नहीं दे सकता । इसी प्रकार अन्य ब्रह्मादि देव भी साक्षात् संसारमोचक नहीं हैं । मैं और ब्रह्मादि अन्य देव त्रिशूल-धारी महादेवके प्रसादसे प्रणाडी (शिवाज्ञा-सम्पादन) के द्वारा संसारमोचक हो सकते हैं, इसमें संशय नहीं । हे अनघ—निष्पाप ! नामसे और अर्थसे महेश्वर ही महादेव हैं, और सब देव कहाते हैं, महादेव नहीं । जो पुरुष महादेवको

छोड़कर मेरा भजन श्रद्धासे करता है उसका कोटि जन्म होनेपर भी संसारसे कदापि मोक्ष नहीं होगा; क्योंकि कैवल्य-मुक्ति देनेवाले केवल महादेव ही हैं ।’

इसप्रकार श्रीमुखसे स्पष्ट निर्देश करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने सुदामाको कैवल्यमुक्तिकी प्राप्तिके लिये शिवभक्तिरूप उपायका उपदेश दिया और सुदामाने श्रीकेशदेवश्वरके आराधनके द्वारा स्वात्मसाक्षात्काररूप कैवल्यमुक्ति प्राप्त की और श्रीकृष्णने शिवमहिमाका स्वमुखसे वर्णन किया । इस विस्तृत निरूपणसे श्रीकृष्णचन्द्र परम शिवभक्त थे—यह सिद्ध होता है । अब सूक्ष्म विचारसे देखा जाय तो ‘यो यद्भक्तः स एव सः’ इस वाक्यसमन्वयसे श्रीकृष्ण स्वयं भी शिवरूप ठहरते हैं, वस्तुतः दोनोंका अभेदभाव परिणत होता है । श्रीमद्भागवत-में भी स्कं० ४ अ० ७ में कहा है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
 आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥५०॥
 आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
 सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्ने संज्ञां क्रियोचिताम् ॥५१॥
 तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।
 ब्रह्मरुद्री च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥५२॥
 त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
 सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥५३॥

‘मैं (विष्णु), ब्रह्मा और शर्व, तीनों जगत्के (अभिन्न) कारण हैं; स्वरूपमें सर्वविशेषवर्जित दृग्रूप होकर भी हम आत्मा, ईश्वर और उपद्रष्टा सभी कुछ हैं । मैं अपनी गुणमयी (त्रिगुणात्मिका) मायामें समाविष्ट (उपहित) होकर सृजन, रक्षण और संहार करता हुआ कर्मानुसार संज्ञा (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इत्यादि) धारण करता हूँ; उस अद्वितीय केवल परमात्मब्रह्ममें ब्रह्मा, रुद्र और भूतग्रामको अज्ञजन भेदसे देखते हैं । ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीनों एकभावापन्न एवं सर्व भूतोंके आत्मभूत हैं । इनके अन्दर जो पुरुष भेदभाव नहीं देखता वही शान्तिसम्पादन कर सकता है । इस वाक्यमें अभेद-भावका परम रहस्य बताया गया है । परममाहेश्वर भट्ट माहेश्वरने कहा है—

ये ये भक्तजना निजेष्टशरणाः श्रेष्ठं सद्गोपासते
ते जल्पन्ति मृषान्यदैवतमिदं मन्यामहे नो वयम् ।
अस्माकं तु शशाङ्कशेखरपदद्वन्द्वैकनिष्ठारमनां
सर्वं खल्विदमम्बिकेश्वरमयं चित्ते जगद्भासते ॥

‘जो-जो भक्तजन अपने-अपने इष्टको श्रेष्ठ मानकर
उपासना करते हैं इसमें तो कोई बुराई नहीं है किन्तु अपने
इष्टसे अन्य देवको जो मृषा कहते हैं यह हमें मान्य नहीं है ।

क्योंकि हमें तो सर्वदा श्रीचन्द्रशेखरपादयुग्ममें निष्ठा जम
जानेसे सारा जगत् अम्बिकेश्वरमय ही भासता है, सर्वत्र
साम्बशिवका ही दर्शन होनेसे इनसे भिन्न कोई पदार्थ ही
प्रतीत नहीं होता । शिवसे अन्य वस्तु ही प्रतीत न हो, तब
हम मृषा किसको कहें ?’

इसप्रकार सर्वत्र स्वेष्ट-भावना हो जानेपर ही शान्ति-
लाभ हो सकता है ।

शिव-परिवार

(लेखक—श्रीलालताप्रसादजी टण्डन एम० ए०, एल-एल० बी०)

‘लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः’—सूत्रानुसार उस मन-
वाणीसे अगम परम तत्त्वकी वस्तुसिद्धिमें केवलमात्र वेद-
भगवान् ही एक पर्याप्त प्रमाण हैं और ‘शास्त्रयोनित्वात्’
आदि सूत्र इस कथनकी पुष्टिमें उल्लेखनीय हैं । परम तत्त्वकी
सिद्धि शब्द (वेद या आतपुरुष) प्रमाणके अतिरिक्त प्रत्यक्ष-
अनुमानादि प्रमाणोंद्वारा आजतक कभी हुई नहीं । कारण
कि ‘विज्ञातारमरे केन विजानीयात्’ । शब्द (वेद)
प्रमाणद्वारा सिद्ध उस परम तत्त्वके स्वरूप-लक्षण तो
‘सच्चिदानन्द’ ‘अस्ति, भाति, प्रिय’, ‘सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्’
आदि कहे गये हैं और तटस्थ लक्षण ‘जन्माद्यस्य यतः’
आदि ब्रह्मसूत्रमें और वेदान्तशास्त्रवेद्य ‘नेति, नेति’ प्रक्रिया-
द्वारा प्रकट हैं । इस भाँति लक्षणों और प्रमाणोंद्वारा
वस्तुसिद्ध परन्तु मन-वाणीके लिये अगम उस आदि सनातन
तत्त्वको दार्शनिक भाषामें ‘ब्रह्म’ और पौराणिक भाषामें
‘सदाशिव’ कहते हैं । इस सदाशिव-तत्त्वको ही अपने-अपने
साम्प्रदायिक तथा इष्टदेवगत आग्रह तथा प्रेमवश कोई
आदिनारायण, कोई महाविष्णु, कोई आदिशक्ति, कोई
आदिगणेश और सूर्यादि संज्ञाएँ भी देते हैं । ‘भिन्नरुचिर्हि
लोकः’ के सिद्धान्तानुकूल सदाशिव-तत्त्वके नाम-रूप अनादि-
अनन्त होनेपर भी वह तत्त्व सदा सर्वत्र एकरस है और
रहेगा, इसमें किञ्चित् भी विचिकित्साको कदापि अवकाश नहीं ।

जो त्रिकालमें निर्लेप और निरञ्जन हैं और जिनमें
सृष्टिगत प्रपञ्च, दर्पणमें प्रतिबिम्बवत् भासता हुआ भी
कदापि होता नहीं, ऐसे भगवान् सदाशिव अपनी अधटित-
घटनापटीयसी मायाद्वारा इस त्रिगुणात्मक जगत्का
निर्माण कर इसके त्रिकाण्ड-भारको अपनी तीन सगुण
मूर्तियोंमें बाँट देते हैं जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश

कहा जाता है । भगवान् महेश्वर सदाशिव वस्तुतः सदा
त्रिगुणातीत होते हुए भी सगुणावस्थामें तमोगुणको ही धारण
तथा अधिष्ठित करते हैं क्योंकि तमोगुण आदिगुण है और
निर्गुण, अव्यक्त अथवा महत् या प्रधानका एक प्रकारसे
पर्यायवाची ही है । पूर्व-कल्पकी शेष भावना कालवश
परिपक्व हो प्रधान अथवा अव्यक्तमें जब गुणविक्षोभ अथवा
गुणवैषम्य उत्पन्न करती है तो उस विक्षोभको रजोगुण
कहते हैं और रजोगुणात्मक विक्षोभका किसी परिमाण-
विशेषमें किसी कालविशेषतक बँधे रहनेका नाम सत्त्वगुण
है । इस भाँति विचार करते हुए गुणशेष ही तमोगुण सिद्ध
होता है और शायद इसी कारणवश सृष्टिकी पूर्वावस्था
‘आसीत्तमः तमसा गूळमग्रे’ आदि श्रुति-वाक्योंसे वर्णित है ।
ऐसे निर्गुण तमोगुणको धारण करना भी अतीव दुष्कर है,
अतएव तमोगुणको त्रिमूर्तिश्रेष्ठ भगवान् शंकर ही धारण
करते और कर सकते हैं ।

भगवान् सदाशिवकी जगन्निर्माणकर्त्री इच्छा-शक्तिका
दार्शनिक नाम ‘महामाया’ और ‘योगमाया’ आदि है और
पौराणिक नाम ‘श्रीदुर्गा’ और ‘श्रीपार्वती’ आदि है । भगवान्
शिव और उनकी शक्ति भगवती पार्वतीमें वागर्थकी भाँति
भेद-प्रतीतिकी कल्पना होनेपर भी सम्भावना कदापि नहीं
है । ऐसे भगवान् शिव और भगवती शिवा इस सम्पूर्ण
चराचर विश्वके आदि माता-पिता हैं और यह सम्पूर्ण सृष्टि
उनका सनातन परिवार है । इसीसे कहा है—

माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः ।

बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥

परन्तु जैसे पृथिवीका स्वरूप दरसानेके लिये नारंगीकी
उपमा देते हैं वैसे ही इस अपूर्व शिव-परिवारका नक़्शा

शिव-पार्वती और श्रीगणेश तथा भगवान् पडाननके स्वरूपमें स्थित है।

भगवान् शिवका स्वरूप विराट् पुरुषका चित्र है। भगवान् शिव सूर्यरूप होनेके कारण अनलात्मक हैं और उनके मस्तकपर विराजमान चन्द्रमा सोमात्मक है अतएव शशिशेखर शिव अग्निसोमात्मक सृष्टि-तत्त्व हैं। भगवान् शिव सूर्य, और उनके मस्तकका चन्द्र सूर्यमण्डलान्तर्गत चन्द्रमा (Solar Moon) है और इसप्रकार भगवान् शिव सम्पूर्ण सूर्यमण्डलके अधिष्ठाता आदि-पुरुष हैं। भगवान् शिवकी जटाएँ सूर्यमण्डलकी वे अग्निज्वालाएँ हैं जो करोड़ों कोसोंतक लपकें मारती हैं, अतएव उनकी जटाएँ तड़ित्प्रभासे उपमित होती हैं। भगवान् शिवकी जटासे बहनेवाली त्रिपथगा गंगा वह प्राणधारा है जिससे चौरासी लक्ष योनियाँ प्राणित होती हैं। भगवान् शिवके अंगोंमें लिपटे हुए नाग वे कर्मबन्ध हैं जिनमें जगत्के जीव अहर्निश फँसा करते हैं या यों कहिये कि जगज्जीवकृत कर्मप्रताडित शक्तिवीचियाँ समुद्रकल्प शिवविग्रहमें सर्पवत् क्रीड़ा कर रही हैं। ये कर्म-बन्धरूपी नाग शिवजीके आभूषण हैं, वे उन्हें कभी डस नहीं सकते। कारण कि ज्ञानामृत पिये हुए भगवान् शंकर कर्मबन्ध या भवचक्रसे सदा परे ही हैं। कर्मबन्धका दूसरा नाम कालचक्र भी है और इस तरह वे नाग युग-मन्वन्तर, कल्प-कल्पान्तर आदि काल-चक्रोंके भी सूचक हैं। पूर्वकल्पकृत कर्मशेष ही शेषनाग हैं जो भगवान् शंकरके सहज यज्ञोपवीत हैं, क्योंकि-

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।

भगवान् शिव अनेक कल्पोंमें सृष्टिको बारम्बार सुदग्ध कर चुके हैं, अतएव वे सम्पूर्ण सृष्टिको शवभस्ममात्र मानते हैं और अपनेमें जगत्का आभास यों अध्यारोपित करते हैं जैसे कोई अंगमें विभूति धारण करे। आत्मतत्त्व ही एकमात्र चेतन सत्ता है और सम्पूर्ण अनात्म जगत् जड़ तथा शववत् है। अतएव भगवान् शिवकी दृष्टिमें जगद्विहरण श्मशानविहार-तुल्य है और इसीलिये भगवान् शिव 'श्मशान-चारी' कहे जाते हैं। अपनी तुच्छ दैहिक राग-द्वेषात्मक इच्छाओंकी पूर्तिके लिये बारम्बार जन्म-मृत्यु-चक्रमें फँसने-वाले अगणित जीवात्मा ही पिशाच आदि हैं, जो 'शिव-सहचर' कहे जाते हैं। ये जीवात्मा अपने ऐश्वर्यके तारतम्यवश

अनेक ऊँच-नीच पदोंको प्राप्तकर गण, गणपति, प्रमथ, प्रमथनाथ आदि अनेक ऐश्वर्य-पदोंको धारे अनेक नामोंसे विख्यात हैं।

भगवान् शिवका चरितामृत प्रत्येक राज्य-शासक, जाति-शासक और कुटुम्ब-नेताके लिये आदर्श और अनुकरणीय है। वास्तवमें जगत्-शिक्षाके हेतु ही भगवान् शिव सगुण व्यवहार करते हैं। भगवान् शिव विषपानद्वारा अपने अनुचरों, भक्तों और जगज्जीवोंको यह शिक्षा देते हैं कि सच्चे नायक वा नेताके बड़प्पनका चिह्न अथवा पहचान उसकी वह भोग-लिप्सा नहीं है जिसकी पूर्तिके लिये प्रायः ऐसे लोग कर्मफलका सिंह-भाग अपने लिये सुरक्षित रख लेते हैं वरं ऐसे लोग अपने महान् त्यागके कारण बड़े समझे जाते हैं। वे अपने भागधेयमें विष-पान पड़नेपर भी न विचलित होते हैं, न कर्तव्य-विमुख होते हैं। अमृत अर्थात् प्रयत्न या कर्मसे उत्पन्न सुख तो भगवान् शिव-ऐसे सद्दय नेता अपनेसे छोटीका अर्थात् अन्यान्य देवताओंका भागधेय निर्णित कर देते हैं। बड़ेमें त्याग, छोटेमें राग, बड़ा विषभक्ती, छोटा अमृतपायी—जहाँ ऐसी विभाग-व्यवस्था है वही कुल, जाति, देश या राष्ट्र परम कल्याणका भाजन होता है। जहाँ बड़े अमृत पीनेकी इच्छाकर विषका घूँट छोटीके गलेके नीचे उतारनेका प्रयत्न करते हैं वहाँ वह विष छलककर था वमन होकर समुद्र-मथन-रूपी सम्पूर्ण कर्म-सफलताको अन्तमें विनष्ट कर डालता है। पीनेको तो बहुत-से लोग विविध कारणोंसे विष ग्रहण ही लेते हैं, परन्तु वे उसके द्वारा केवल अपना विनाश ही करते हैं। क्योंकि विष पीनेकी सच्ची महिमा तो तब है जब न तो वह कण्ठसे नीचे जाय न बाहर आवे; क्योंकि यदि कण्ठसे नीचे गया तो, 'हृदये तु हलाहलम्' वाले विपैले पुरुष और सर्पमें भेद ही क्या रहा और यदि वाणीद्वारा विष-वमन हुआ तो कोई कैसा भी साधु पुरुष क्यों न हो उसके पास ही कोई न जायगा, उससे लाभ उठानेकी कौन कहे? भगवान् शिवके विष-पानका यही रहस्य है कि वे इस जगत्के सम्पूर्ण भोगरूपी अमृतका पान तो अपनेसे छोटे देवताओंको समर्पित कर देते हैं और आप स्वयं समुद्र-मन्थन-तुल्य सृष्टिसञ्चालनोत्पन्न कर्मकष्टरूपी विषको न तो अपने हृदयतक ले जाते हैं न वाणीतक लाते हैं, केवल कण्ठके एक कोनेमें दबाये सोनी नीलमणिकी एक कण्ठी-सी पहने रहते हैं। इस जीवन-संपर्पोत्पन्न विष-पानका

नाम ही जगत्-परिपालना है। जैसे रोग नष्ट होते ही रोगी स्वस्थ हो खेलने-कूदने लगता है वैसे ही विष खिंचते ही यह सृष्टि आनन्दपूर्वक कल्लोल करती बढ़ने और फलने-फूलने लगती है। जगदुत्पन्न अमृतकुम्भके लिये—सांसारिक सुख-भोगोंके लिये—तो छोटे-बड़े देवासुरोंकी टोलियाँ सदा ही लड़ी हैं, लड़ती हैं और लड़ेंगी। परन्तु इन अमृतलिप्सुओंमेंसे कभी कोई जगदीश्वर-पदवी प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि जगदीश्वर प्रेमरूप, प्रेम त्यागरूप और त्याग विषपानरूप सिद्ध होगा और ठीक इसके विपरीत अमृतपान रागरूप और राग उस द्वेषका बीज सिद्ध होगा जिसके फलरूप आज भी चन्द्र-सूर्य प्रसे जाते हैं और देवासुर-संग्रामकी लहरें कभी विश्राम नहीं लेतीं।

भगवान् शिव सम्पूर्ण विद्याओं और कलाओंके प्रभव हैं। विद्यावृद्ध जगन्मान्य होता है न कि वयोवृद्ध। भारतमें कोई ऐसा शास्त्र नहीं, कोई ऐसी कला नहीं, कोई ऐसी विद्या नहीं जिसके आदि-प्रभव भगवान् शङ्कर स्वयं न हों। 'शास्त्रयोनित्वात्' का दूसरा अर्थ यह भी है कि भगवान् शिव ही सूर्यशास्त्रोंकी योनि अर्थात् कारण हैं। यही कारण है कि भारतीय शास्त्रों, विद्याओं और कलाओंमें यह सिद्धान्त-समन्वय है जिसकी ओर सङ्केत कर 'तत्तु समन्वयात्' सूत्र रचा गया है। अन्य देशोंमें जहाँ वेदवत् कोई ऐसा नाभिग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसके मूल-सिद्धान्तोंको पीट-पीटकर अरबवत् अन्य शास्त्र और कला तथा विद्याएँ निकाली जा सकें, वहाँ भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके मूल-सिद्धान्तोंमें समन्वयके ठीक विपरीत ऐसा घोर अन्योन्यघाती युद्ध वर्तमान है और गुरु-परम्परा और शास्त्र-परम्पराके न होनेके कारण एक ही शास्त्रके भिन्न-भिन्न आचार्योंमें इतना मतविरोध है कि विद्यार्थी आजन्म परिश्रम करनेके उपरान्त भी केवलमात्र भिन्न-भिन्न आचार्योंके मतसंग्रहका एक सजीव कोशमात्र हो पाता है परन्तु अधिगत-सिद्धान्त कदापि नहीं होता, क्योंकि सिद्धान्त वहाँ कोई है ही नहीं।

त्यागमें भगवान् शिवकी ठीक प्रतिकृति भगवती शिवा हैं। जैसे भगवान् शिवने जगत्का ऐश्वर्य-भोग भगवान् विष्णुको समर्पित कर दिया है वैसे ही माई अन्नपूर्णा ने भी सम्पूर्ण सृष्टि-वैभव भगवती लक्ष्मीपर निष्ठावर कर दिया है। इसी महान् त्याग और प्रेमके कारण भगवान् विष्णु

और भगवती लक्ष्मी दस-दस बार इस भवसागरमें कूदते हैं परन्तु भगवान् शिवको या माई अन्नपूर्णाको जगद्रक्षाहेतु कभी अपना अटल क्षेत्र त्यागने नहीं देते। भगवान् शिव और विष्णुका अपूर्व प्रेम ध्यानयोग्य है न कि वर्णनयोग्य। ठीक वैसा ही भक्ति और प्रेमका सम्बन्ध भगवती अन्नपूर्णा और श्रीलक्ष्मीजीके बीच है। माई अन्नपूर्णा अपने भोले भण्डारी पतिके आगे जो भिक्षा रख देती हैं त्यागमूर्ति शिव उसीको प्रसाद मान तृप्त हो जाते हैं। अन्नपूर्णाके द्वार भिक्षा माँग भगवान् अन्य पुरुषोंको यह शिक्षा देते हैं कि वे अपने बल-वीर्यद्वारा उपार्जित गृहस्थीकी सम्पत्ति भी अपनी न समझ गृहस्वामिनियोंकी ही समझा करें और गृहस्वामिनी उनके भोजनादिका जैसा प्रबन्ध करें उससे सन्तुष्ट रहा करें। ऐसा भाव रखते हुए त्यागरूप पुरुष कभी रागी नहीं हो सकता। अन्नपूर्णाके द्वार भिक्षा माँगकर शिवजी स्त्री-सम्मानका अपूर्व आदर्श अपने भक्तोंके सामने रखते हैं।

भगवती शिवा नगाधिप हिमालयकी पुत्री हैं। पृथिवीमें सबसे बृहत्, सबसे उच्च, पार्थिव पदार्थ हिमालय है; अतएव हिमालय सम्पूर्ण पार्थिव वैभवका एक अत्युत्तम रूपक है। उसकी पुत्री पार्वती सम्पूर्ण पार्थिव वैभव, शक्ति और ऐश्वर्यका स्वरूप हैं। ऐसी भगवती पार्वती अपने-आपको बिना शिवकी अर्धाङ्गिनी बनाये सफल-जीवन न हो सकीं। शिव धर्मरूप हैं और पार्वती शक्तिरूप हैं। शिव सत्य (Right) और शिवा शक्ति (Might) हैं। शिवसे शक्ति या शक्तिसे शिव—Whether right makes might or might makes right—यह प्रश्न गम्भीर विवेचनापूर्ण होनेपर भी वास्तवमें ठीक नहीं है, क्योंकि शिव-शक्तिमें अभेद सम्बन्ध होनेके कारण उपर्युक्त प्रश्न बन नहीं पड़ता। यह बात और है कि अपनी-अपनी साम्प्रदायिक रुचिवश और इष्टगत रूप और प्रेमके कारण कोई शक्तिरहित शिवको शव कहे और कोई शक्तिको जड़ और जगज्जाल कहे और इस भौति दोनोंका निरादरकर अपनी तामसी भक्तिका प्रत्यक्ष प्रमाण दे, परन्तु वास्तवमें तो वे दोनों सदा अभिन्न ही हैं। इन दोनोंको भिन्न देखना या कल्पनामें भिन्न-भिन्न कल्पित कर उस भिन्नतापर सिद्धान्तकी भित्ति उठाना तो मानो अपने फँसानेके लिये स्वयं जाल तैयार करना है। हमारे प्राचीन ऋषियोंने अपने मनमें न उपर्युक्त प्रश्न

उठाया, न उसका उत्तर दूँ दा; वरं शिवशक्तिस्वरूपका गम्भीर अध्ययनकर वे इस सिद्धान्तको पहुँचे कि शिव-शक्ति एक अद्वैतके दो अभिन्न फल होनेके कारण तत्त्वमें सदा अभिन्न ही हैं, अतएव उनमें पति-पत्नी-सम्बन्ध घटित होता है। इसीलिये भारतवर्षके ऋषियोंने शक्तिका पाणि शिवके और शिवका पाणि शक्तिके हाथमें देकर उन दोनों अभिन्न हृदयोंको सदाके लिये धर्मसूत्रमें कस दिया। इस तरह भारतीय विचारानुकूल धर्म कभी निर्भयतापूर्वक ठुकराया नहीं जा सकता और दैवी शक्ति धर्मका सहारा लिये बिना कभी प्राप्त नहीं हो सकती।

शिव-शक्ति-सम्बन्धका भयङ्कर व्यावहारिक परिणाम आज यूरोपकी वर्तमान सामाजिक और नैतिक हलचलसे स्पष्टतया हृदयङ्गम हो जाता है। यूरोपीय राष्ट्र संसारको जीत और उसे अपने व्यापार-जालमें फँसा और विषय-सुखदायी आधिभौतिक सिद्धियों (Scientific inventions) को हस्तगतकर इस समय आधिभौतिक सुख-समृद्धिके साक्षात् हिमालय बने बैठे हैं। उनकी सर्व समृद्धियोंका श्रेष्ठ मूल उनकी वह क्षात्र-शक्ति है जो विविध प्रकारके मानवी और दैवी अस्त्र-शस्त्रोंसे परिवृंहित है। उनके अपूर्व बलशाली अस्त्र-शस्त्र इस समय जगत्-संहारमें सर्वथा समर्थ हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी आज उनके सिरपर मृत्यु नाच रही है। वे देख रहे हैं कि या तो इस युवती शक्तिका विवाह धर्मरूपी शिवसे किया जाय, जिसे वे अपनी आधिभौतिक भाषामें 'निःशस्त्रीकरण', 'अन्तर्जातीय-संघ', 'सार्वभौम-भ्रातृत्व' और 'सार्वभौम-अर्थसंघ' आदि नामोंसे पुकारते हैं और नहीं तो यह संहारकाली रणचण्डी बहुत शीघ्र उनकी आधिभौतिक सम्यताका एक ही ग्रास करनेको मुँह बाये तैयार बैठी है। इधर चार वर्षोंके सतत प्रयत्नपर भी उनके यहाँ शिव-शक्ति-विवाहोत्सवका शुभ प्रभात उदय होता नहीं दीखता और साम्यवादिता आदि कृत्या राक्षसियाँ निरन्तर अपना निशीथनृत्य किये ही चली जा रही हैं। वर्तमान घटनाचक्र और कालगतिके सुदूर परिणामदर्शी यूरोपीय विद्वज्जन दिन-प्रतिदिन अनियन्त्रित शक्ति-भँवरमें अपनी जातीय सम्यताका बेड़ा सदाके लिये डूबता अनुभव कर रहे हैं परन्तु प्रयत्न करनेपर भी उन्हें कोई वह सुन्दर मार्ग नहीं मिलता जिसका अनुसरणकर वे अपनी सञ्चित शक्तिके चिर प्रेमपात्र बन सकें। उनकी इस बढ़ती हुई निराशाका एक प्रधान कारण यह भी है कि उनकी शक्ति

धर्ममूलक न होकर अर्थमूलक है और इसीलिये उनकी सम्पत्ति दैवी न होकर आसुरी है। आसुरी सम्पत्ति तप करना नहीं चाहती, फिर उसे शिव मिलें तो कैसे? भारतीयोंकी दैवी सम्पत्तिने गौरीरूप धर ऐसा घोर तप और त्याग किया कि जगज्जननी गौरीका नाम 'अपर्णा' पड़ गया। इस महान् त्याग और महान् तपद्वारा भारतीय शक्ति, भारत-माता सदाके लिये शिवकी धर्मपत्नी हो चुकी हैं। इसका व्यावहारिक रूप और तात्पर्य यह है कि भारतवर्षकी सम्यता जो इन शिव-शिवाकी धर्मपरिणय-प्रसूता एक सनातन लता है सदा-सर्वदा हरी-भरी ही बनी रहेगी और शाखा-प्रशाखाओंमें फलती-फूलती ही रहेगी, चाहे जैसी लू-लपट, अग्निवर्षा कालधर्म क्यों न चलाये। यही भारतीय संस्कृतिका, पूर्वीय सम्यताका, सनातन-धर्मका गूढ़ रहस्य है। यही हमारी अमरता है। शिव-शक्ति-विवाह ही हमारे अमर जीवनका गूढ़ भेद है।

प्रत्येक मनुष्यको अपना व्यक्तिगत जीवन सफल करनेके लिये, प्रत्येक जातिको अपना जातीय जीवन सुखमय बनानेके लिये, शिव-शिवा-विवाह-रहस्यको खूब जानना, सोचना और निदिध्यासनद्वारा हृदयङ्गम करना चाहिये। यदि शक्ति हुई और वह शिवद्वारा पाणिग्रहीता न हुई तो उस अनियन्त्रित जगत्संहारिणी प्रलयकारिणी शक्तिका दृश्य वह चित्र है जिसमें भगवती काली अपने घोर रूपसे शिव-वधःस्वल्पपरनृत्यकर शिव-शरीर मर्दन कर रही हैं। यूरोपकी वर्तमान परिस्थितिका गम्भीर अध्ययन आधुनिक यूरोपीय शक्तिका चित्र खींचते समय शवरूप शिव-शरीरपर कालीके दुर्दम नृत्यका वारम्बार स्मरण कराता है।

भगवान् शिव और शिवाके धर्म-परिणयका प्रथम फल भगवान् षडानन हैं। भगवान् षडानन जीवात्मा या वेदान्त-शास्त्रके चिदाभासके सत्स्वरूप हैं। इनकी जन्म-गाथा जीवात्माके दार्शनिक रूपका शुद्ध रूपक है। भगवान् षडानन भगवती शिवाके गर्भमें कभी नहीं रहे और केवलमात्र शिवका वह शुद्ध वीर्य हैं कि जिसके स्खलनमात्रका कारण भगवती शिवाका संगम हुआ। तात्पर्य यह कि चाहे प्रकृति जीवात्मा या चिदाभासको अपने मल-विक्षेप-आवरणरूप सामर्थ्यद्वारा उसके सत्स्वरूपकी विस्मृत करा अपने भगवद्भावसे व्युत् कर दे परन्तु जीवात्मा या चिदाभासको अपने गर्भद्वारा अपने अंशसे गूहित कदापि नहीं कर

सकती अर्थात् जीवात्मा प्रकृति-अंशसे निर्लेप और ईश्वरका शुद्धांश सदा बना रहता है। भगवान् षडाननका अग्नि और गंगाके गर्भमें वास आदि उस सम्बन्धकी सूचना देता है जो जीवात्मा और पञ्चतत्त्वके बीच है। प्रकृतिसे सम्बन्धित होनेपर भी जीवात्मा किस भाँति अपने स्वरूपमें निर्लेप ईश्वरांश बना रहता है यही षडानन-जन्म-कथाका गूढ़ रहस्य है।

भगवान् गणपति षडाननसे ठीक विपरीत केवलमात्र प्रकृतिके ही अंशसे उपजे हैं। जिस भाँति षडाननमें पार्वती-रज-संसर्ग नहीं उसी भाँति गणपतिमें शिव-शुक्र-सम्बन्ध नहीं। भगवान् गणपति अन्तःकरणका रूपक है। अन्तःकरण प्रकृतिका शुद्धतम रूप होते हुए भी पार्थिव और जड़ है। बुद्धिके अधिष्ठाता देवता श्रीगणेश पैदा होकर प्रथम कार्य यही करते हैं कि शिवको पार्वतीके पास जानेसे रोकते हैं और जतलानेपर भी केवलमात्र माताकी ही आज्ञा शिरोधार्य मान पितासे युद्ध करते हैं। बुद्धि भी प्रारम्भमें केवलमात्र पार्थिव वैभवानुगता होती है और परमार्थसे विमुख हो उसका विरोध करती है। ऐसी स्थूल पार्थिव बुद्धिका भगवान् शिव शिरच्छेद करते हैं। तदुपरान्त जब वह मरकर पुनर्वाार ईश्वरानुग्रहवश जीवित होती है तो ऐसी

पारमार्थिक बुद्धि जिसे 'समाहित बुद्धि' भी कहते हैं जगत्पूज्य मानी जाती है। श्रीगणेशजीका शिरच्छेद और पुनर्वाार शिवानुग्रहसे जीवित होना शुष्क पार्थिव बुद्धिका विनाशोपरान्त पारमार्थिक बननेका एक सुन्दर रूपक है। स्वामी विवेकानन्दका प्रारम्भिक नास्तिक जीवन और बादको उनमें स्वामी रामकृष्ण परमहंसद्वारा उस पार्थिव बुद्धिका संहार हो परमार्थी बुद्धिका पुनर्जन्म और उसके फल-स्वरूप उनका जगत्पूज्यत्व प्राप्त करना उन अनेकों उदाहरणों-मेंसे एक है जो श्रीगणेश-जन्म-गाथाका रहस्योद्घाटन करते हैं।

प्रकृति, अन्तःकरण, चिदाभास और ब्रह्मकी प्रतिकृति भगवती पार्वती, भगवान् श्रीगणेश, भगवान् षडानन और भगवान् शिव हैं जिनकी अन्तर्बहिर्लीलाकी प्रवृद्ध लता यह सम्पूर्ण जड़-चेतन-जगत् है और यह एक अतीव सत्य शिव-परिवार है।

जिनकी गोद बाल गणेशसे भरपूर है ऐसी सुस्मिता भगवती शिवासे विभूषित अर्धाङ्गवाले श्रीसदाशिव अपने प्रेम-संकेतोंसे कैलासपर षडाननको शस्त्रास्त्र-शिक्षा देते हुए अपने परम प्रिय भारतपरिवारकी सदा रक्षा करें, यही बारम्बार प्रार्थनीय है।*

महेश-महिमा

जय महेश शिव शंकर ।
शूलपाणि गिरिजा-पति औढर,
नीलकण्ठ जग-गुरु शशिशेखर,
त्रिपुरारी कर कल डमरूधर—
महादेव अभयंकर ।
जय महेश शिव शंकर ॥
पञ्चानन मृत्युञ्जय हर हर,
भूतनाथ बाहन वसहा वर,
अग मज्ञान-विभूति दिग्गम्बर—
रुद्ररूप प्रलयंकर ।
जय महेश शिव शंकर ॥

तेजपुञ्ज अव्यक्त अगोचर,
प्रेत-पिशाच-भूत-दल सहचर,
कटिप्रदेश शोभित बाधाम्बर—
आशुतोष संकटहर ।
जय महेश शिव शंकर ॥
शोभित व्याल कराल वदनपर,
पावन जटाजूट गंगाधर,
तीन लोक ईश्वर विश्वम्बर—
दिव्यमूर्ति मंगलकर ।
जय महेश शिव शंकर ॥

जगदीश झा 'विमल'

* इसके लेखक महोदयने पुष्पदन्ताचार्यप्रणीत श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रपर संस्कृत और हिन्दीमें एक बहुत सुन्दर भाष्य लिखा है। ऊपर श्लोक, उसके नीचे अन्वय, संस्कृतार्थ, भाषार्थ और फिर विस्तृत भावार्थ है। विविध प्रमाण और टीका-टिप्पणियोंसे युक्त यह ग्रन्थ बहुत ही उपदेय है। शिव-भक्त और विद्वान् पुरुषोंके लिये बहुत कामकी चीज है। पुस्तकका दाम १।) है और लेखक महोदयको अथवा प्रकाशक श्रीयुत सिद्धगोपालजी रस्तोगी, ब० कॉम०, रोटी-गोदाम, कानपुरको पत्र लिखनेसे मिल सकती है।

—सम्पादक

शिव-परिवार

(लेखक—पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०, एल-एल० बी०)



गवान् भोलानाथका जैसा अद्भुत परिवार है वैसा शायद ही और किसीका हो। पिता यदि चतुर्मुख थे तो आप स्वयं पञ्चमुख हो गये और पुत्रको छः मुखका बना दिया। बनाते-बनाते दूसरा पुत्र बनाया तो उसका सिर हाथीका रख दिया। सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी स्वामिनी साक्षात् अन्नपूर्णा भवानी आपकी अर्द्धाङ्गिनी हैं और आप ? बस कुछ न पूछिये ! एकदम भस्माङ्गधारी श्मशानविहारी ! बहुत हुआ तो बाघ या हाथीकी छाल पहन ली, नहीं तो बर्फीले पहाड़ोंपर एकदम नङ्ग-धड़ङ्ग ही घूम रहे हैं। सवारीके लिये रक्खा सीधा-सादा बैल और वह भी शायद एकदम बूढ़ा, परन्तु शृङ्गारके लिये रक्खे सौंप, बिच्छू और आदमीकी खोपड़ी ! परिजन भी क्या बढ़िया हैं—

कोउ मुख-हीन बिपुल मुखकाहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद-बाहू ॥
बिपुल नयन कोउ नयन-बिहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तनु खीना ॥

—जिन्होंने बराती बनकर एकदम तहलका ही मचा दिया था ! भला और किसीका ऐसा अद्भुत परिवार हो सकता है ?

इतना होते हुए भी भोलानाथ कोरे भोलानाथ ही नहीं बने रहे। उन्होंने सम्पूर्ण देव-सेनाका आधिपत्य अपने एक पुत्रको दे डाला। सम्पूर्ण देवताओंमें प्रथम पूज्यका पद दूसरे पुत्रको बख्शा दिया। सम्पूर्ण ऐश्वर्य और समृद्धिकी अधिष्ठात्री देवीका पद अपनी अर्द्धाङ्गिनीके लिये रिजर्व कर दिया और स्वयं देवाधिदेव महादेव बन बैठे। अब रह ही क्या गया ? महादेव वे, महादेवी उनकी अर्द्धाङ्गिनी। विघ्नविनाशी प्रथमवन्द्य श्रीगणेशजी उनके एक पुत्र तथा सुरसेनानी उनके दूसरे पुत्र। ऋद्धि-सिद्धि उनकी पुत्रवधू और हिमालयके समान सर्वोच्च शिखर उनका निवासस्थान ! सभी मोर्चे तो सधे हुए हैं। ऐसी स्थितिमें यदि उनके लिये कविकुलगुरु कालिदासने—

कम्पेन मूर्धः शतपन्नयोर्नि

वाचा हरिं वृत्रहणं स्थितेन ।

अन्यांश्च देवानवलोकनेन

सम्भावयामास त्रिशूलपाणिः ॥

—कहा है तो क्या अनुचित कहा है ? उन्हींकी बरातमें सम्मिलित होनेके लिये आनेवाले देवताओंका उन्होंने देखिये कैसा बढ़िया सत्कार किया है ! ब्रह्माजी आये तो सिर्फ सिर हिला दिया। 'आइये तशरीफ रखिये' कहनेतककी ज़रूरत न हुई तो फिर उठकर स्वागत करना कैसा ! विष्णुभगवान् आये तो जरा मुँहसे कह दिया 'आइये बैठिये, कुशल तो है ?' लेकिन फिर भी तारीफ यह कि खड़े न हुए, चार कदम बढ़कर स्वागत करनेकी बात कौन कहे ! देवराज इन्द्र आये तो सिर्फ उन्हें देखकर मुस्कुरा दिया। बस, इतनेहीमें उनका स्वागत हो गया। न अभ्युत्थानकी आवश्यकता, न बोलनेकी ज़रूरत, न सिर हिलानेकी कोशिश। इन्द्रका अहोभाग्य कि उनकी तरफ देखकर थोड़ा मुस्कुरा तो दिया। यह क्या कोई सामान्य बात थी ! दूसरे देवतालोग आये तो उनकी तरफ सिर्फ नज़र फेर दी। बस, इतना ही स्वागतके लिये पर्याप्त हो गया। देवगण कृतार्थ हो गये। अपने घरपर आये हुए देवगणोंका—और सामान्य देवगण नहीं, इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णुके समान आमन्त्रित सजनोंका—इस शानके साथ स्वागत करनेवाला भला और भी कोई हो सकता है ? इन महामहिम महेश्वरको केवल भोलानाथके नामसे पुकारना कितना भोलापन है ?

विचित्र तो यह है कि इन महाराजका एक ओर तो ऐसा ऐश्वर्य व्यक्त होता है और दूसरी ओर एक ऐसा अद्भुत रूप प्रकट होता है कि जिससे हमें बरबस इन्हें 'भोलानाथ' कहना पड़ता है। देखिये—

कैसे महेश्वर हैं तनमें जब छार लोपेटिके बैल सवार हैं।
भक्तनके अमयंकर साथ मयंकर भूत-परेत अपार हैं ॥
संकटमें परि जात हैं आप यों औढ़रदानके हेतु तयार हैं।
भोले सदाशिव क्यों न बनै घर भूलि जिन्हें रुचे श्रेत पहार हैं ॥

जिन महाशयका ऐसा अद्भुत वेष हो और जिनकी गृह-सामग्री इतनी स्वल्प और तुच्छ हो उनका यह ऐश्वर्य आखिर आया तो कहाँसे आया। इसपर भी कवियोंने

अपनी बड़ी-बड़ी कल्पना चलायी है। पद्माकरजीका तो कहना है कि यह केवल गङ्गा महारानीकी कृपा है ! देखिये—

लोचन असम अंग भसम चिताको लाय
तीनों लोक-नायक सो कैसेकै ठहरतो ।
कहें पदमाकर बिलोकि इमि ढंग जके
बेदहू पुरान गान कैसे अनुसरतो ॥
बाँधे जटा-जूट बैठे परवतकूट माहिं
महाकालकूट कहे कैसे कै ठहरतो ।
पीवै नित भंगै रहै प्रेतनके संगे
ऐसे पूछतो को नंगे जो न गंगे सीस धरतो ॥

परन्तु अधिकांश सजनोंकी यह राय है कि यह सब अन्नपूर्णा भवानीकी कृपाका फल है—

स्वयं पद्ममुखः पुत्रौ गजाननघडाननौ ।
दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद् गृहे ॥

सरकारके तो स्वयं पाँच मुँह हैं, वच्चे गजानन और घडानन हैं और पास कपड़ेतक नहीं हैं तब फिर यदि भवानी अन्न-पूर्णा न होती तो गृहस्थी चलती कैसे ? शंकराचार्यजीने भी यही कहा है । देखिये—

शृपो शृद्धो यानं विपमशनमाशानिवसनं
इमशानं क्रीडाभूर्भुजगनिवहो भूषणनिधिः ।
समग्रा सामग्री जगति विदितैव स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि ! सौभाग्यमहिमा ॥

—सवारीके लिये बुड्ढा बैल । खानेके लिये जूहर । रहनेके लिये सूनी दिशाएँ । खेलनेके लिये इमशान और आभूषणों-के लिये साँप । भला इस सामग्रीवालेका यह प्रबल ऐश्वर्य क्या भगवती जगदम्बिकाके अतिरिक्त और किसी कारण-वश हो सकता है ? ऐसी स्थितिमें पार्वतीजीका यह कहना उचित ही है कि—

नहिं अंबर अंग न संग सखा बहु भूतनके डरसों डरतो ।
डरतो पुनि साँपनकी सुसकारन माँग बढोरत ही मरतो ॥
मरतो जिहि जानि न जन्म-कथा नर बाहनसों खर ना चरतो ।
हँसि पारबत्ती कहैं शंकरसों हम ना बरतीं तुम्हें को बरतो ॥

इतना होते हुए भी बेचारी पार्वतीजी मुश्किलसे ही इस विषम परिवारको सँभालती हैं । क्योंकि यह परिवार कोई सामान्य परिवार नहीं है । परिवारकी व्यक्तियोंकी तो बात छोड़ ही दीजिये । वहाँ तो यह शिकायत लगी ही

रहती है कि कभी गणेशजी स्वामिकार्तिकके खिलाफ फरियाद करते हुए कहते हैं कि इन्होंने अपने हाथसे मेरे कान उमेठ दिये, कभी स्वामिकार्तिकेयजी गणेशजीके खिलाफ यह दावा करते हैं कि इन्होंने अपनी सूँड़से मेरी आँखें गिन डालीं । परन्तु उनका अस्तबल भी, जहाँ उन व्यक्ति-योंके याहन पड़े रहा करते हैं, एक अद्भुत खटपटका क्रीड़ा-स्थल सदैव बना रहता है । सुनिये—

बार बार बैलको निपट ऊँचो नाद सुनि
हुंकरत बाघ विरुझानो रसरेलामें ।
भूधर भनत ताकी बास पाय शोर करि
कुत्ता कोतवालको बगानो बगमेलामें ॥
फुंकरत मूषकको दूषक भुजंग तासों
जंग करिबको झुकयो मोर हृदहेलामें ।
आपसमें पारषद कहत पुकारि कलु
रारि-सी मची है त्रिपुरारिके तबेलामें ॥

अर्धनारीश्वर महोदयने आधे अङ्गकी सवारी रखी है बैल और आधे अङ्गकी शेर । बैल और बाघ भी कहीं एक नाथसे नाथे जाते हैं ? इसी तरह गणेशजीको दिया चूहा, खुद रख लिया साँप और स्वामिकार्तिकेयजीको दे दिया मोर । अब ये तीनों एकके ऊपर एक क्यों न सवारी करें ? फिर मजा यह कि ज़रा-सी खलबलाहटमें भयङ्कर रूपसे भौंकनेवाला कुत्ता अपने कोतवाल साहब श्रीभैरवजीको इनायत कर दिया है और यह कुत्ता भी उसी तबेलेमें डाल दिया गया है जहाँ बैल, बाघ, चूहा, साँप, मोर आदि रहते हैं । अब पाठक स्वयं ही अनुमान कर सकते होंगे कि उस तबेलेमें शान्ति-स्थापनका कार्य कितना दुष्कर रहा करता होगा ।

भोलानाथजीको क्या है ! जबतक शान्ति रही तबतक रही, जहाँ अशान्ति होने लगी कि झट उन्होंने समाधि ले ली । ये योगी भी तो अपने घरकी इसी गतिको देखकर हुए हैं—
आपुको बाहन बैल बली बनिताहूको बाहन सिंघहि पेखिकै ।
मूसेको बाहन है सुत एकके दूजो मयूरके पच्छ बिसेखिकै ॥
भूषण है कवि चैन फनिन्दके बैर परे सबते सब लेखिकै ।
तीनहुँ लोकके ईस गिरीस सु जोगी भये घरकी गति देखिकै ॥

परवाह तो असल पार्वतीजीको है, जिनके भरोसे सारी गृहस्थी चलती है । जिस समय गजानन मोदकोंके लिये

* हे हेरम्ब किमम्ब रोदिषि कथं कर्णौ लुठत्यभिभूः

कि ते स्कन्द विचेष्टितं मम पुरा संख्या कृता चतुषाम् ॥

मचलते हैं, उस समय साक्षात् अन्नपूर्णाके सामने भी अर्थ-सङ्कट आ उपस्थित होता है—

आपु बिष चाखैं भैया षटमुख राखैं, देखि
आसनमें राखैं बस बास जाको अचलै ।
भूतनके छैया आस-पासके रखैया और
कालीके नथैयाहूके ध्यानहूँते न चलै ॥
बैल बाघ बाहन बसनको गयन्दखाल
भौंग औ धतूरेको पसार देत अचलै !
घरको हवाल यह संकरकी बाल कहै
लाज रहै कैसे पूत मोदकको मचलै ॥

परन्तु रत्नगर्भा वसुन्धराके सर्वोच्च आधारस्तम्भकी एक-मात्र कन्या होनेके कारण पार्वतीजी उन साधनोंको जानती हैं जिनके द्वारा वे इस विचित्र परिवारके प्रत्येक व्यक्तिका पूर्ण सन्तोष कर सकें। साथ ही उन्होंने सुयोग्य गृहस्वामिनीके समान यह चतुरता भी कर रखी है कि ऋद्धि और सिद्धिको अपनी पुत्रवधू बना छोड़ा है। बस, अब उनके सहारे इनकी अर्थसमस्या बहुत कुछ सुलझ गयी है। इतना होते हुए भी उन्होंने सबसे बड़े मार्केका काम यह किया है कि अपनी यह अद्भुत गृहस्थी हिमाच्छादित पर्वतमालाके सुदूरतम शिखर कैलास-पर्वतपर जमायी है, जहाँ आस-पास केवल बर्फ-ही-बर्फ दिखायी पड़ता है। भौंग तो वहाँ पैदा

होती है कि जहाँ माँगनेयोग्य वस्तुएँ दीख सकती हों अथवा जहाँ तवीयतमें किसी अभावकी गरमी हो। यहाँ तो शीतलतादायक हिमराशिके अतिरिक्त और कहीं कुछ है ही नहीं, इसलिये यह निश्चय है कि इतनी ठण्डकमें दबकर इस कुटुम्बके व्यक्ति तथा वाहनोंके झगड़ाहू होसले भी ठण्डे पड़ जायँगे और वित्तसे बाहर दान दे देनेवाले इन औदर-दानीजीके पासतक पहुँचनेका दुस्साहस करनेवाले भक्तोंका उत्साह भी ठण्डा पड़ जायगा। इस चातुर्यका भी कोई ठिकाना है !

क्यों न हो, आखिर महामाया ही तो ठहरीं। इसीलिये तो जगद्गुरु शङ्कराचार्यजीने कहा है—

सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादरभिह

श्रयन्त्यन्ये बह्विं मम तु मतिरेवं विलसति ।

अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः

पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम् ॥

अनेकगुणविस्तृत सपर्णा (पत्तोंसहित) लताओंका आश्रय भले ही कोई ले, परन्तु मेरे विचारसे तो केवल उसी एक अपर्णा (पार्वतीजी) की सेवा करनी चाहिये जिससे घिरकर पुराना ढूँठ भी (स्थाणु-शिव) मोक्षके फल देने लगता है।

श्रीउमा-महेश्वर-स्तुति

(लेखक—पं० श्रीलक्ष्मण नारायणजी गदें)



उमादेवी गुरुमाता हैं और श्रीमहेश्वर सद्गुरु-नाथ हैं। इनकी क्या स्तुति करूँ ? बिना इनकी कृपाके एक अक्षर भी तो नहीं लिख सकता। वेद, शास्त्र और पुराणोंमें सर्वत्र इन्हींकी महिमा गायी गयी है, पर मैं तो न उसकी भाषा ही ठीक तरहसे समझ सकता हूँ, न भाव ही। कभी इन अलौकिक ग्रन्थोंका अध्ययन भी नहीं किया, अनुभव करना तो बहुत दूरकी बात है। यह तो उनकी कृपा है जो उनका नाम प्यारा लगता है और इसीलिये कुछ न जानते हुए भी कल्याणके इस श्रीशिवाङ्कमें कुछ लिखनेकी इच्छा होती है। ज्ञान या विज्ञानकी कोई बात मैं नहीं बता सकता, क्योंकि ऐसी

कोई वस्तु भगवान्से मुझे नहीं मिली है और इसमें भगवान्का क्या द्रोष ? अपना अज्ञान तो अपने ही ज्ञानको कर्मान्वित करनेसे दूर होता है और अज्ञानका दूर होना ही तो ज्ञानका प्रकट होना है। भगवान्की तो असीम कृपा है जो योग्यता कुछ भी न होते हुए भी उसने अपना नाम दे दिया और वह नाम प्यारा हो गया, यह भी तो उसीकी कृपा है। यह सारा ब्रह्माण्ड-कर्म उसी दयामयकी आनन्दमय लीला है, जो कभी-कभी हम अज्ञानियोंको बड़ी ही निर्दय जान पड़ती है !

सुखपूर्वक सब प्राणी संसारमें बने रहना चाहते हैं, पर वह उन्हें मार डालता है; यह क्या है ? मरनेके बाद क्या होता है, हमें कुछ माझूम नहीं ! यहाँसे तो हमें सब छोड़कर ही जाना पड़ता है ! जो कुछ कमाया सब देकर जाना

पड़ता है। जो कुछ अपनाया—धन, सुत, दारा—सब कुछ—त्यागकर जाना पड़ता है ! यह शरीर जिसे अन्तिम क्षणतक पाला-पोसा, जिसीका भरोसा किया, जिसके बिना एक क्षण भी रह सकनेकी कल्पनातक नहीं की, स्वप्नमें यदि कभी वह छूटा-सा जान पड़ा तो मारे भयके घबरा गये और जागकर उसे टटोलने लगे, उस शरीरको भी छोड़कर जाना पड़ता है। आँखें लगी हुई हैं अपने शरीर और अपने ही जैसे अन्य शरीरोंकी ओर और वे ही छूटे जा रहे हैं ! आँखोंसे प्राणोंकी असहाय व्याकुलता अश्रुधारा बनकर बाहर निकल रही है, उसे देखकर सब रो रहे हैं और प्राणी रोता हुआ इस मोह-पिञ्जरको छोड़कर चला जाता है ! यह क्या है ? क्या यह निर्दयता नहीं है ? हाँ, हाँ, यह उस दयामयकी आनन्द-लीलाका रुद्ररूप है। संसारके सब महायुद्ध उन्हींके रुद्ररूप हैं। घर-घरमें लगी हुई कलहकी आग उन्हींका रुद्ररूप है। पद-पदपर प्राणियोंको जो भय होता है वह उन्हींका रूप है। जो कुछ भयानक है, जिसे देख, सुन या सोचकर मनुष्य या कोई भी प्राणी भयभीत होता है वह रुद्रभगवान्का ही रूप है। इमशान उनका अधिष्ठान है, शव उनका आसन है, माया-ममताकी राख उनके ललाटकी शोभा है, महासर्प उनका आभूषण है, व्याघ्राम्बर उनका परिच्छद है, कालरूप जो कुछ है उस समग्रका समावेश किये हुए यह महाकाल हैं ! समग्र संसारका विष उनके कण्ठमें है; पर उनका मस्तक शान्त है ! त्रिपथगामिनी भगवती जाह्नवी उन्हींके मस्तकपर आकर गिरती हैं, संसारके उत्तापको शान्त करनेवाले चन्द्रमा उन्हींके मस्तकपर शोभा पाते हैं, क्योंकि उनका हृदय शिव है, कल्याणमय—मङ्गलमय है, यही सुना है।

रुद्रभगवान्के शिव-हृदयका यह स्वभाव है कि वह स्नेहमय, प्रेममय, दयामय है। स्नेह, दया और प्रेमके विरुद्ध जो-जो कुछ है उसका वह घोर तिरस्कार करते हैं और उसपर ऐसा प्रहार करते हैं कि एक धावमें दो टुकड़े हो जायँ। लोभ, मद, मात्सर्य, मोह, अज्ञान आदि उन्हें एक क्षण भी सख्त नहीं। इनपर उनकी भ्रुकुटि सदा ही चढ़ी रहती है। तिरस्काररूप धनुकी क्रोधरूप प्रत्यङ्गाको जरा भी विश्रान्ति नहीं है—प्राणघातक सर्वदाहक बाणोंकी वर्षा त्रिगुणात्मक अखिल ब्रह्माण्डमें प्रतिक्षण हो रही है, इसलिये कि अज्ञान नष्ट हो, मोह दूर हो, गर्व चूर हो, लोभ निर्मूल हो, आसुरीभाव और रूप जलकर शुद्ध हों। मर्त्य मरकर अमर हो जाय, असत् जलकर सत् हो जाय। उनकी

भीषण निर्दयता उनके दयामय हृदयकी अखण्ड शिव-कर्मधारा है। उनका यह रुद्ररूप सहसा कोई देखना नहीं चाहता, पर कहते हैं कि जो अविचलित प्रेमसे देखता है, स्थिर होकर भक्तिपूर्वक शरण जाता है, उसके लिये यह आशुतोष हैं। क्रोध भी उन्हें जल्दी आता है, दया भी तुरन्त आती है। दयाका अवसर लानेके लिये ही तो सारा क्रोध है। शिव-हृदयके अनन्त आनन्द-समुद्रमें अवगाहन करानेके लिये ही तो यह रुद्ररूप है। यह रुद्ररूप मङ्गलमय शिवका रूप है।

श्रीउमा-महेश्वरके तीन रूप हैं—महेश, विष्णु और ब्रह्मा। ये तीनों अपनी शक्तियोंसहित सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीउमा-महेश्वर हैं। तीनोंमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है। तीनों उसी एककी महाशक्तियाँ हैं। इनमें महेश यदि महादेव हैं तो विष्णु देवाधिदेव हैं और ब्रह्मा सब देवताओंके पूज्य गणपति हैं। कारण, तीनों एक ही हैं।

प्रकृतिकी जो नित्य-साम्यावस्था है वही परात्परा महा-शक्ति उमादेवी हैं। यह महेश्वर—परात्पर पुरुषसे भिन्न नहीं। यह उमा-महेश्वर अर्द्धनारीनटेश्वर हैं। दोनों एक साथ हैं, एक हैं। परा-प्रकृतिकी इस नित्य-साम्यावस्थामें सृष्टि-निमित्त जो संकल्प उठता है, वह त्रिगुणका संघर्ष है; संघर्ष सृष्टिका आद्य रूप है और संघर्ष ही युद्धरूप है। उस युद्ध अर्थात् मूल रुद्ररूपकी कल्पना त्रिगुणमें बैठकर नहीं की जा सकती। इतना ही कहा जा सकता है कि इस त्रिगुणात्मक संसारमें ज्ञानमूलक या अज्ञानमूलक जो कुछ संघर्ष, कलह, युद्ध, समर और भयंकरता है वह उसी मूलके फैलावका विकृत रूप है। रुद्ररूप इसप्रकार मूलरूप होनेसे इस रूपमें भगवान्को महादेव कहा गया होगा, जैसे महाकाली आद्याशक्ति कही जाती हैं। हिन्दुओंका युद्धघोष भी 'हर हर महादेव' ही है। इस युद्धघोषमें जो भयंकरता है उसका हृदय शान्ति है, यह प्रत्येक हिन्दूको घोषके अनुभवसे ही ज्ञात है। 'हर हर महादेव' घोषकी शान्ति और किसी भी युद्धघोषमें नहीं है। 'हर हर महादेव' युद्धमें रक्ततर्पणकी सूचना है, उसी प्रकार सकल संसारताप-हारिणी गंगाके, भूतभावन भगवान्के मस्तकसे, भूतलपर गिरनेके कलरवकी भी शान्त, स्वच्छ, सुशीतल मधुर ध्वनि है। युद्धघोषमें जो रुद्ररूप है वही युद्धके फलरूपमें शिवरूप है। कारण, परात्परा प्रकृतिका सृष्टिसंकल्प संघर्षयुक्त होने-पर भी उसका मूल और उसका फल मङ्गलमय आनन्द

है। रुद्ररूप शिवस्वरूप महादेवका हृदय, इसीलिये कहते हैं कि विष्णु हैं और विष्णुका हृदय शिव हैं।

सृष्टि कर्म है, कर्म ज्ञानका रूपात्मक अंश है। नाम-रूपात्मक जगद्रूप जो कर्म हो रहा है उस कर्ममें आद्यन्त-व्याप्त ज्ञान ही गणेश हैं। हमारी-आपकी बुद्धिके द्वारा जो ज्ञान आता है वह उन्हीं गणेशके ज्ञान-समुद्रका अञ्जलिभर जल है इसीलिये गणेश बुद्धिविनायक कहाते हैं। सृष्टि-कर्मके मूलमें जैसे संघर्षरूप शिवहृदय रुद्र हैं, संकल्पधारक और कर्मपालक विष्णु हैं, वैसे ही कर्मसाधक श्रीगणेश हैं। ये त्रिदेव हैं—ये ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश हैं। तीनों ही एक साथ हैं, एक हैं; पर अज्ञानकी भेद-बुद्धिमें भिन्न-भिन्न हैं। अभेद-बुद्धिमें श्रीउमा-महेश्वर हैं।

श्रीउमा-महेश्वर ही तीनों रूप धारणकर तीनों लोक प्रकट करते हैं। ये त्रिदेव नाम-रूपात्मक जगत्के परे हैं। नाम-रूपात्मक जगत्में हम सत्त्व-रज-तमके चक्रमें घूमते रहते हैं। ये चक्र मायाचक्र हैं—त्रिगुणात्मक मायाके अधीन सब प्राणी हैं, उन्हें कोई भी स्वतन्त्रता नहीं है। प्रकृतिके गुण धक्का देकर जिधर ले जाते हैं उधर ही प्राणियोंको जाना पड़ता है। सुख, दुःख और सुखकी आशाके चक्करसे उनका छूटना बड़ा ही कठिन होता है। इस चक्करसे छूटनेकी इच्छा भी सबको नहीं होती। सुखमें मनुष्य अपने आपको भूल जाता है, दुःखमें घबरा जाता है और सुखकी आशामें फँसा रहता है। उसे यह ज्ञान नहीं रहता कि यह सुख क्या है, दुःख क्या है और सुखकी आशा क्या है! वह अज्ञानमें रहता है। अज्ञान तमोगुण है, पर यह तम सहसा दूर नहीं होता है। जब कोई भयंकर आघात होता है तब तमका नशा कुछ उतरता है। यह आघात रुद्रका प्रहार है और इसका हेतु नशा उतारना है। रुद्र महादेव इसलिये भी हैं कि यह वैरियोंका नाश करनेवाले हैं—अपने अन्दरके वैरी और बाहरके भी। आदिमें वही रुद्र हैं, अन्तमें भी वही रुद्र हैं और उनके साथ विष्णु भी हैं और ब्रह्मा भी। कारण, महेशके रुद्ररूपको देखनेके लिये हृद्देश-स्थित विष्णुका प्रेम और आशाचक्रस्थित नेत्रकी स्थिर दृष्टि चाहिये। नाम-रूपात्मक जगत्के परे ये तीन आत्मस्वरूपके नित्य भाव हैं।

ये भाव श्रीउमा-महेश्वरकी उमा-शक्तिमें हैं। उमाशक्ति ब्रह्मविद्या हैं और महेश्वर परब्रह्म हैं। परब्रह्मकी प्राप्ति ब्रह्म-

विद्याके बिना नहीं हो सकती। और ब्रह्मविद्या ब्रह्ममें ही रहती है (ब्रह्मणि विद्यते या सा ब्रह्मविद्या), वही माता हैं—परात्परा उमा-महाशक्ति। परात्पर परम धाम परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये मनुष्य जो कुछ मन्त्र-स्तुति करता है, जो कुछ तप करता है, जो कुछ ज्ञान प्राप्त करता है उस स्तुतिमें, उस तपमें, उस ज्ञानमें उन्हींकी सत्ता है। परम धामको प्राप्त करानेवाला ज्ञान-कर्म-भक्तिका जो सोपान है वह माताका ही स्तन-पान है। ब्रह्मविद्या या उमा-महाशक्तिके ही तीनों लोक हैं, तीनों वेद हैं, तीनों भाव हैं और तीनों रूप हैं। पर इन तीनोंके परे निरालम्बस्वरूप परब्रह्म परमेश जो महेश्वर हैं उन्हें प्राप्त करनेके लिये जो साधक साधना करते हैं अर्थात् जो भक्त भजन करते हैं, जो जिज्ञासु ज्ञानार्जन करते हैं, जो मुमुक्षु कर्माचरण करते हैं वे यह बतलाते हैं कि उनका भजन, उनका ज्ञान और उनका कर्माचरण उनका नहीं, उन्हींका है जिनके लिये यह सब किया जाता है। लौकिक जगत्में अलौकिककी यह सत्ता है—यह भी एक विलक्षण और अदृश्य जगत् है जिसे जो लोग देखते हैं उनके लिये फिर यह जगत् बहुत ही क्षुद्र हो जाता है। कहते हैं इस जगत्का वैभव उस हिरण्मयी पुष्करिणीके वैभवके सामने केवल पीतलपर सोनेका मुलम्मा मादूम होता है और इस जगत्के भयानक-से-भयानक दृश्य, प्रलय और महाप्रलय भी उस शिवहृदय महारुद्रके अखण्ड आनन्द-लीला-विलासके शृंगारद्वारप्रतीत होते हैं। लौकिक-में अलौकिककी प्राप्तिकी साधनारूप जो निरहंकार सत्ता है वही कहते हैं कि उमा-महेश्वरके पास ले जानेवाली माता, आद्यन्तव्यापिनी सत्ताका प्रथम परिचय है। हमलोग जिसे ब्रह्मविद्या कहते हैं, वह इसप्रकार अखिल, अनन्त, व्यापिनी, निराकार निर्गुण और साकार गुणमयी उमा-महेश्वरी हैं। वह माता हैं इसलिये रोते हुए बच्चेको तुरन्त उठा लेती हैं; वह स्वयं महेश्वरसे भिन्न नहीं, इसलिये उनका उठा लेना उमा-महेश्वरके चरणोंमें ही पहुँचना है। पर माताको जो माता नहीं मानता उसके कर्मोंका फल कालरूप होकर उसके सामने आता है; आता है जगानेके लिये, स्मरण दिलानेके लिये। साधारण मनुष्य उस भयंकर रूपको देखकर घबरा जाता है; पर धार्मिक और निष्ठावान् पुरुष शिवका ही चिन्तन करते हुए रुद्रभगवान्का पूजनकर उमा-महेश्वरी उमा माताकी गोदमें बैठकर उमा-महेश्वरकी अनन्त, अमर, आनन्दमय सत्ताको प्राप्त होते हैं। परन्तु—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

मैं या मेरे-जैसे लोग जिस दुनियामें रहते हैं वहाँ तो
अलौकिक शाश्वत जगत्की ये बातें स्वप्नके समान ही हैं,
फिर भी मैंने यह लिखा उन संयमी मुनियों-सिद्ध और
साधकोंके चरणोंमें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करनेके लिये जो

अलौकिक जगत्में ही रहते हैं और काम-क्रोधके इस जगत्को
स्वप्नतुल्य देखते हैं, क्योंकि उनके आशीर्वादसे इस अवोध-
को कुछ बोध कभी हो सकता है ।

लेखके अन्तमें उन नित्य, नवभाव, नवरूप, नवरस, परम
पुराण, अनाद्यनन्त, भगवती-भगवान् श्रीनारायणाद्यनन्त-
नाम श्रीउमा-महेश्वरके चरणोंमें प्रतिपद प्रतिक्षण प्रणाम है ।

शिवपुराणमें शिव-तत्त्व

(लेखक—चौधरी श्रीधुनन्दनप्रसादसिंहजी)

परात्पर शिव



लयका अवसान होनेपर पुनः सृष्टिके प्रारम्भके पूर्व
जब परब्रह्म सृष्ट्युन्मुख होते हैं, तब वे परात्पर
सदाशिव कहलाते हैं, वही सृष्टिके मूल-कारण हैं ।
मनुस्मृतिमें इन्हें 'स्वयम्भू' कहा गया है । यथा—
ततः स्वयम्भूभगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥

तब स्वयम्भू भगवान् अव्यक्त होनेपर भी प्रलयके तमको
दूर कर प्रकाशित हुए और महाभूत एवं अन्य सब बड़े
शक्तिशाली तत्त्व उनसे प्रकट हुए । शिवपुराणमें भी इसी
आशयका वचन है—

सिसृक्षया पुराऽव्यक्ताच्छिवः स्थाणुर्महेश्वरः ।
सत्कार्यकारणोपेतः स्वयमाविरभूत्प्रभुः ॥
(वा० सं० अ० ३०१।८)

इन्हींको श्रीमद्भगवद्गीतामें महेश्वर-संज्ञा दी गयी है ।

उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥
(१३।२२)

साक्षी, हितोपदेश, पोषक एवं भोक्तरूप जो महेश्वर
परमात्मा है वह इस शरीरमें परम पुरुषकी भाँति है । शिव-
पुराणका वचन है कि शिव प्रकृति और पुरुष दोनोंसे परे
हैं । यथा—

तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ।
तदधीनप्रवृत्तिस्त्वात् प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥
(वा० सं० पू० अ० २८।३३)

यह महेश्वर अपनी इच्छा-शक्तिद्वारा सृष्टिकी रचना
करते हैं । श्रुतिका वचन है—'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं
तु महेश्वरम् ।' शिवकी यह शक्ति दो रूपमें कार्य करती है—
(१) मूल-प्रकृति और (२) दैवी-प्रकृति । गीतामें मूल-प्रकृतिको
अपरा-प्रकृति कहा है जिससे पञ्चभूत और अन्तःकरण आदि
दृश्य पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई । परा-प्रकृति चैतन्य-शक्ति है
जो इस अपरा-प्रकृतिको नाम-रूपमें परिवर्तित करती है ।
अपरा-प्रकृतिको 'अविद्या' और पराको 'विद्या' कहते हैं । परा-
प्रकृतिको 'पुरुष' भी कहते हैं । इन दोनों प्रकृतियोंके नायक
और प्रेरक श्रीशिव—महेश्वर हैं ।

क्षरन्त्यविद्या ह्यमृतं विद्येति परिगीयते ।
ते उभे ईशते यस्तु सोऽन्यः खलु महेश्वरः ॥
माया प्रकृतिरुद्दिष्टा पुरुषो माययावृतः ।
सम्बन्धो मलकर्मभ्यां शिवः प्रेरक ईश्वरः ॥

शिव त्रिदेवसे पृथक् हैं

सगुण अर्थात् मायासंवलित ब्रह्म जिनकी पुरुष-संज्ञा
है, शिवकी इच्छाके अनुसार गुणोंके क्षोभसे रजोगुणसे ब्रह्मा,
सत्त्वसे विष्णु और तमसे रुद्ररूप हुए । ये तीनों ब्रह्माण्डके
त्रिदेव हैं और शिव अनेक कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हैं ।
शिवपुराण वा० सं० अ० २ का वचन है—

पुरुषाधिष्ठितात्पूर्वमव्यक्तादीश्वराज्ञया ।
बुद्ध्यादयो विशेषान्ता विकाराश्चाभवन् क्रमात् ॥
ततस्तेभ्यो विकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः ।
जगतः कारणत्वेन त्रयो देवा विजज्ञिरे ॥
सृष्टिस्थितिलयाख्येषु कर्मसु त्रिषु हेतुताम् ।
प्रभुत्वेन सहैतेषां प्रसीदति महेश्वरः ॥

प्रथम ईश्वरकी आज्ञासे पुरुषाधिष्ठित अव्यक्तसे क्रमशः बुद्धिसे लेकर विशेषपर्यन्त विकार उत्पन्न हुए। उनमें ब्रह्मा, विष्णु* और रुद्र—ये तीन देव जगत्के कारणरूप उत्पन्न हुए। ये तीनों क्रमशः सृष्टि, स्थिति और लयके कार्यमें महेश्वरद्वारा नियुक्त हैं। इन त्रिदेवोंमें परस्पर कोई भेद नहीं है। तीनों एक हैं और तीनोंका कार्य मिलकर होता है। अर्थात् तीनों ही एक दूसरेके कार्यमें सहायता देते हुए एकमत होकर कार्य करते हैं। जो इन तीनोंमें भेद समझता है, एकको बड़ा और दूसरेको छोटा कहता है वह शिवपुराणके निम्नलिखित वचनके अनुसार राक्षस अथवा पिशाचके समान है, इसमें सन्देह नहीं। शिवपुराणमें लिखा है—

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ।
परस्परेण वद्धन्ते परस्परमनुव्रताः ॥
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते ।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यञ्चातिरिच्यते ॥
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः ।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः ॥

चतुर्व्यूह

गुणत्रयसे अतीत भगवान् शिव चार व्यूहोंमें विभक्त हैं १-ब्रह्मा, २-काल, ३-रुद्र और ४-विष्णु। शिव सबके आधार हैं और शक्तिकी भी उत्पत्तिके स्थान हैं, जैसा कि शिवपुराणके उपर्युक्त प्रकरणमें लिखा है—

देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः ।
सकलः सकलाधारः शक्तेरुत्पत्तिकारणम् ॥
सोऽयमात्मत्रयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च ।
लीलाकृतजगत्सृष्टिरीश्वरत्वे व्यवस्थितः ॥
यः सर्वस्यात्परो निश्चो निष्कलः परमेश्वरः ।
स एव तत्तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठितः ॥
तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृतिः पुरुषस्तथा ।
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वं शिवात्मकम् ॥

त्रिदेवान्तर्गत रुद्र गुणातीत शिवसे स्वरूपतः पृथक् हैं

श्रीशिव ब्रह्माण्डके अभिष्ठाता त्रिदेवोंके अन्तर्गत रुद्रसे

* महाविष्णु श्रीशिवके समान त्रिदेवान्तर्गत विष्णुसे उच्च हैं और बड़ा वैष्णवोंके दृष्ट हैं। उन्हींके अवतार श्रीराम और श्रीकृष्ण हुए।

पृथक् हैं। इसके और भी प्रमाण श्रीशिवपुराणमें हैं। यथा—

दक्षिणाङ्गान्महेशस्य जातो ब्रह्मात्मसंज्ञकः ।
वामाङ्गादभवद्विष्णुस्ततो विद्येतिसंज्ञितः ।
हृदयाङ्गीरुद्रोऽभूच्छिवस्य शिवसंज्ञितः ॥

इससे यह भी सिद्ध होता है कि त्रिदेवोंमें भी एक देव रुद्र हैं, अतएव रुद्र एक ही हैं—यद्यपि ग्यारह गुण-कर्मके कारण उनके ग्यारह काम और ग्यारह नाम हैं।

शिव-लिङ्ग केवल चिन्मय है, स्थूल नहीं

सदाशिवसे जो चैतन्य-शक्ति उत्पन्न हुई और उससे जो चिन्मय आदि पुरुष हुए, वही यथार्थमें शिवके लिङ्ग हैं, क्योंकि उन्हींसे चराचर विश्वकी उत्पत्ति हुई, वे ही सबके लिङ्ग अथवा कारण हैं और उन्हींमें विश्वका लय होगा। शिवपुराणमें लिखा है कि समस्त लिङ्ग-पीठ (आधार) अर्थात् प्रकृति पार्वती और लिङ्गको चिन्मय पुरुष समझना चाहिये। इन दोनोंके संयोगसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। यथा—

पीठमम्बामयं सर्वं शिवलिङ्गञ्च चिन्मयम् ।

(विष्णु० सं० अ० ९)

शिवपुराणमें शिवके वाक्य हैं कि जो लिङ्ग (महाचैतन्य) को संसारका मूल-कारण और इस कारण-जगत्को लिङ्गमय (चैतन्यमय) समझकर इस आध्यात्मिक दृष्टिसे लिङ्गकी पूजा करता है वही मेरी यथार्थ पूजा करता है। यथा—

योऽर्चयाऽर्चयते देवि पुरुषो मां गिरेः सुते ।

लोकं लिङ्गात्मकं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयते हि माम् ॥

न मे तस्मात्प्रियतरः प्रियो वा विद्यते ततः ।

(सनत्कु० सं० अ० ३०)

शिवपुराणके अनेक स्थलोंमें (उदाहरणतः वा० सं० उ० अ० २७) और लिङ्गपुराणमें भी कथा आती है कि सृष्टिके आदिमें अर्थात् किसी ब्रह्माण्डके प्रारम्भमें ब्रह्मा और विष्णुको लिङ्गके दर्शन हुए, जिसका आदि-अन्त दोनोंने नहीं पाया। उसके बाद उस लिङ्गमें प्रणवके अक्षर प्रकट हुए। प्रणवके अक्षरोंके प्रकट होनेका तात्पर्य नाद अर्थात् शब्द-ब्रह्मका प्रकट होना है जो सृष्टिके समस्त पदार्थोंका

आदि-कारण है। ये विष्णु और ब्रह्मा उस ब्रह्माण्डके त्रिदेवा-न्तर्गत ब्रह्मा, विष्णु थे न कि महाविष्णु, जिनमें और सदाशिवमें भेद नहीं है। लिङ्गसे तात्पर्य यहाँ महाचैतन्यमय आदिपुरुषका है जिसके संकल्प अथवा इच्छा-शक्तिमें सम्पूर्ण विश्व निहित है और उसीसे इस विश्वकी उत्पत्ति हुई।

पञ्च और अष्टमूर्ति

शिवपुराणकी सनत्कुमारसंहिताके छठे अध्यायमें लिखा है कि शिवकी प्रथम मूर्ति क्रीड़ा करती है, दूसरी तपस्या करती है, तीसरी लोकसंहार करती है, चौथी प्रजाकी सृष्टि करती है और पाँचवीं ज्ञान-प्रधान होनेके कारण सद्बस्तुयुक्त सम्पूर्ण संसारको आच्छन्न कर रखती है। वही ईशानमूर्ति सबके प्रभु, सबमें वर्तमान, सृष्टि और प्रलयकर्ता और सबके रक्षक हैं। उनका नाम ईशान है।

उक्त पुराणकी वायवीय संहिताके चौथे अध्यायमें लिखा है कि श्रीशिवकी ईशान नामकी परमोत्तम प्रथम मूर्ति साक्षात् प्रकृति-भोक्ता, क्षेत्रज्ञ पुरुषमें अधिष्ठित रहती है। तत्पुरुष नामकी दूसरी मूर्ति सत्त्वादि गुणाश्रय, भोग्य प्रकृतिमें अधिष्ठित है। तीसरी घोराख्य मूर्ति धर्मादि अष्टाङ्ग-संयुक्त बुद्धिमें अवस्थित रहती है। चौथी मूर्ति जिसे वामदेव कहते हैं अहङ्कारकी अधिष्ठात्री है और पाँचवीं सञ्जो जात मूर्ति मनकी अधिष्ठात्री है। श्रीशिवकी अष्टमूर्तियाँ—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमें अधिष्ठित रहती हैं।

अर्द्धनारीश्वर

श्रीशिवपुराणकी वायवीय संहिता (पूर्वभाग) के १३ और १४ वें अध्यायमें कथा आती है कि जब ब्रह्माकी मानसिक सृष्टिसे प्रजाकी वृद्धि न हुई तब उन्होंने प्रजा-वृद्धिका ठीक उपाय जाननेके लिये तपस्या करना प्रारम्भ किया। तपस्याके कारण ब्रह्माके मनमें आद्याशक्ति उदित हुई। उक्त शक्तिके आश्रयसे ब्रह्मा त्र्यम्बकेश्वर शिवके ध्यान करनेमें प्रवृत्त हुए। श्रीशिव ध्यानके प्रभावसे सन्तुष्ट होकर अर्द्धनारीश्वर अर्थात् आधी स्त्री (शक्ति) और आधे पुरुष (शिव) के रूपमें ब्रह्माके समक्ष प्रकट हुए। ब्रह्माने शिव और उनकी शक्ति दोनोंकी स्तुति की। स्तुतिसे प्रसन्न होकर

श्रीशिवने अपने शरीरसे एक देवीकी उत्पत्ति की जिनकी संज्ञा परमा शक्ति थी। ब्रह्माने उक्त श्रीदेवीसे कहा कि 'मैंने अबतक मनद्वारा देवतादिकी उत्पत्ति की है किन्तु वे बार-बार उत्पन्न होकर भी वृद्धिगत नहीं हो रहे हैं। अतएव अब मैं मैथुन-जन्य सृष्टिद्वारा प्रजाकी वृद्धि करना चाहता हूँ। इसके पूर्व आपसे अक्षय नारी-कुलकी उत्पत्ति न हुई जिसके कारण मैं स्त्रीको नहीं बना सकता। अतएव आप कृपाकर मेरे पुत्र दक्षके यहाँ कन्यारूपमें जन्म लीजिये।' ऊपरकी कथासे तीन परमोत्तम सिद्धान्त प्रकट होते हैं। एक तो यह कि शिव-लिङ्गरूपमें संसारके समस्त चराचर प्राणियोंके साँचे हैं और जो साँचेकी भाँति संकल्प-रूपमें लिङ्गके अन्दर नहीं है उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। दूसरी बात यह है कि परात्पर शिवकी प्राप्ति उनकी शक्तिसे सम्बन्ध होनेपर ही होती है, जैसे ब्रह्माको हुई। तीसरी यह कि संसारकी मानवी प्रजाका कारण अर्द्धनारीश्वर होनेसे सभी पुरुष शिवरूप और सब त्रियाँ शक्तिरूपिणी हैं, जैसा कि शिवपुराणमें लिखा है—

शङ्करः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी।

(वा० सं० पू० अ० ४। ५५)

शिव जगद्गुरु

श्रीशिवका एक बृहत् परम कल्याणकारी कार्य इस विश्वमें जगद्गुरुके रूपमें नाना प्रकारकी विद्या, योग, ज्ञान, भक्ति आदिका प्रचार करना है, जो बिना उनकी कृपाके यथार्थ रूपमें प्राप्त नहीं हो सकते। श्रीशिव केवल जगद्गुरु ही नहीं हैं किन्तु अपने कार्य-कलाप, आहार-विहार और संयम-नियम आदिद्वारा जीवन्मुक्तके लिये आदर्श हैं। लिङ्गपुराणके अध्याय ७ और शिवपुराणकी वायवीय संहिता पूर्व-भागके अ० २२ में शिवके योगाचार्य होनेका और उनके शिष्य-प्रशिष्योंका विशद वर्णन है। शिवपुराणका कथन है—

युगावर्त्तेषु शिष्येषु योगाचार्यस्वरूपिणा।

तत्र तन्नावतीर्णेन शिवेनैव प्रवर्त्तते ॥

संक्षिप्यास्य प्रवक्तारश्चत्वारः परमर्षयः।

रुर्दधीचोऽगरयश्च उपमन्युर्महायशः ॥

ते च पाशुपता ज्ञेयाः संहितानां प्रवर्त्तकाः।

तस्सन्ततीनां गुरवः शतशोऽथ सहस्रशः ॥

प्रति युगके आरम्भमें श्रीशिव योगाचार्यके रूपमें अवतीर्ण होकर शिष्योंको शिक्षा प्रदान करते हैं। चार बड़े ऋषियोंने इस (योग-शास्त्र) को संक्षेपमें वर्णन किया। उनके नाम रुद्र, दधीच, अगस्त्य और महायश उपमन्यु हैं। ये पशुपतिके उपासक और पाशुपत-संहिताओंके प्रवर्तक हुए। इनके वंशमें सैकड़ों-हजारों गुरु उत्पन्न हुए। शिवपुराणकी वायवीय संहिताके उत्तर-भागके १० वें अध्यायमें इन योगाचार्यों और उनके शिष्य-प्रशिष्योंका सविस्तर वर्णन है और उनके नाम भी वहाँ दिये गये हैं। प्रथम २८ योगाचार्य हुए, $४ \times ७ = २८$ । इन अष्टाईसके चार-चार शिष्य हुए, जिनकी संख्या $२८ \times ४ = ११२$ हुई। इनमें सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, कुशुमि, मित्रक आदिके भी नाम हैं। लिखा है कि संसारकी मङ्गल-कामना ही इनका व्रत है। इस अध्यायके अन्तका निम्न-श्लोक बड़े महत्त्वका है, वह इसप्रकार है—

स्वदेशिकामिमान् मत्वा नित्यं यः शिवमर्चयेत् ।

स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा ॥२८॥

अर्थात् जो इनको अपना सद्गुरु मानकर शिवकी उपासना-ध्यान करता है, वह अनायास शिवकी साक्षात् प्राप्ति करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। ऊपरके वाक्योंसे यह सिद्ध है कि ये सद्गुरु इस समय भी वर्तमान रहकर योग्य साधकोंकी अदृश्य अथवा दृश्य-भावसे सहायता कर इष्टोन्मुख और शिष्योन्मुख करते हैं। और साधक इनमेंसे किसी एकको अपना सद्गुरु वरण करके साधना करनेसे अवश्य इष्टका लाभ करता है। इन सद्गुरुओंमेंसे किसी एकको सद्गुरु वरण किये बिना कोई अपने इष्टकी उपासनामें सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। भाव यह है कि जगद्गुरु श्रीशिवकी इच्छानुसार उनके पुत्रकी भाँति ये योगाचार्य और उनके शिष्य प्रशिष्यगण ज्ञान, योग, भक्ति आदिके प्रचारमें सदा प्रवृत्त रहते हैं और योग्य साधकोंकी अदृश्य-भावसे सहायता करते हैं। हमलोगोंमें जब कभी सद्बुद्धि, सद्बिचार, सत्-कामना, उत्तम साधनोंमें प्रवृत्ति, भक्ति-भाव, सत्य-ज्ञानका अनुसन्धान आदि सद्भाव और सद्गुण प्राप्त होते हैं अथवा भविष्यमें क्रमशः होंगे वे सब इन्हीं सद्गुरुओंकी कृपाका फल है। अतएव इनकी असीम कृपापर दृढ़ विश्वास रखकर तथा इनके प्रत्यक्ष न होनेपर भी इनको सद्गुरु मानकर इनमें भक्ति और श्रद्धा करनी चाहिये एवं इनका स्मरण भी करना चाहिये। ऐसा करनेपर ये विशेष सहायता कर सकेंगे और

यदि साधकपर शिवकी कृपा हुई तो प्रत्यक्ष भावसे अन्तरमें उपदेश भी करेंगे।

पाशुपत-योग

इसका विस्तारपूर्वक वर्णन शिवपुराणकी सनत्कुमार-संहिताके अ० ५६से ५८ तकमें है, जिसका साधना-सम्बन्धी सूक्ष्म सारांश इसप्रकार है। आत्माकी शिव-तत्त्वके साथ एकता करके इन्द्रियोंका निग्रह करना यथार्थ भस्म धारण करना है, क्योंकि श्रीशिवजीने ज्ञान-चक्षुद्वारा कामको भस्म किया था। ॐकारकी उपासना जपद्वारा करनी चाहिये; यथार्थ ज्ञान, योग, क्रियानुष्ठानकी प्राप्ति करनी चाहिये। हृदय-कर्णिकामें एक सूक्ष्म, सर्वतोमुख, दस नाड़ियोंसे वेष्टित कमल है—उसीमें जीवात्माका वास है। यही जीवात्मा सूक्ष्मरूपसे मनमें रहता है और वही चित्त और पुरुषरूप है। वैराग्य, धर्म, समता आदिके अभ्याससे तमोगुण, रजोगुणके विकारोंको पराभव करके और सद्गुरु-पदिष्ट योगाभ्याससे* सूक्ष्म नाड़ीरूपी दशाधिको भेद करके भूतोंके आधार सोमका पर्यटन करे। वह अभ्यन्तरस्थ सोम उस नाड़ीद्वारा तर्पित होकर वृद्धिको प्राप्त करता है और तब जीव मध्यगत शिराको आह्वान करता है। प्राप्त योगी जब-जब सोम-शिखाद्वारा तर्पित होते हैं, तभी जाग्रत् और सुप्त-अवस्थाको जीतकर अजाग्रत्-अवस्थामें ध्यान-योगद्वारा ध्येयमें लय होते हैं। ५८ वें अध्यायमें श्रीसनत्कुमारने व्याससे जो कुछ कहा उसका संक्षेप यों है—‘मुझको गुरुरूपमें जानकर, मेरेद्वारा कथित विद्याका अभ्यास करके, उपाधियोंपर अधिकार करके और पृथक् होकर तत्त्वज्ञानके २६ तत्त्वोंको लाभ करे। श्वास और नाड़ियोंको जीतकर जो सूक्ष्म आत्मा हृत्-पद्मकी कर्णिकामें है उसमें मनको एकाग्र कर स्थित होवे। योगी विद्या-शक्तिके आश्रयसे ही नाड़ियोंका दर्शन करके अभ्यन्तरमें परमात्माका दर्शन पाते हैं।

ऊपरके कथनमें एक बहुत विशेष रहस्य है। वह यह है कि श्रीसनत्कुमारने व्याससे कहा कि मुझको सद्गुरु वरणकर इस योगमें प्रवृत्त होना चाहिये। यह सद्गुरुवरण त्रिकालके लिये सत्य है। यथार्थ उच्च आध्यात्मिक योगके आचार्य श्रीसनत्कुमार आदि अदृश्य सद्गुरुगण हैं। और बिना इनकी कृपा-दृष्टिके साधक उन्नति नहीं कर सकता। ये प्रत्येक

* इस योगाभ्यासकी शैलीका किञ्चित् वर्णन ग्रन्थमें है किन्तु बिना गुरुके बतलाये उसे कोई समझ नहीं सकता।

यथार्थ साधककी ओर अपनी कृपा-दृष्टि रखते हैं जैसा पहले कहा जा चुका है। प्रत्येक साधकको इन्हें सद्गुरु मानकर और इनपर श्रद्धा-विश्वास-भक्ति रखकर अपनी साधना-में प्रवृत्त होना चाहिये। ऐसा करनेसे अदृश्य-भावसे किसी-न-किसी सद्गुरुसे साधकको सहायता मिलेगी और साधना-की विघ्न-बाधाएँ दूर हो जायँगी।

पूजा और ध्यान

शिवपुराणमें शिव और पार्वतीके संवादमें पूजाका क्रम विस्तारसे दिया हुआ है। संक्षेपमें मुख्य साधनाका प्रकार यह है कि स्नान करके शिव, शिवा और गुरुका चिन्तन करे। पश्चात् एकाग्रचित्त होकर पूर्ण अथवा उत्तर-मुख बैठकर दहन-प्रायनादिसे पञ्चतत्त्वोंको शुद्ध करना चाहिये। अङ्गन्यास, मन्त्रन्यासादि करके देवताङ्गमें पङ्कन्यास करना चाहिये। इसके बाद विद्या-स्थान, स्वकीय रूप, ऋषि, छन्द, अधिदैवत शक्ति और वाच्य आदिका स्मरण करके पञ्चाक्षर-मन्त्र जपना चाहिये। जपके साथ-साथ प्राणायाम करना चाहिये अथवा शिव और शिवा दोनोंकी मूर्तिका ध्यान करना चाहिये। प्राणायामयुक्त जप उत्तम है किन्तु प्राणायामके साथ चार सौ बार मन्त्र-जप करना चाहिये। इसप्रकारके पाँच प्राणायाम यथेष्ट हैं। प्राणायाम-युक्त जपकी अपेक्षा ध्यानयुक्त जप हजारगुना अधिक महत्त्वका है। सदाचारसम्पन्न होकर ध्यान-जपादि करनेसे मङ्गलकी प्राप्ति होती है। आचार परम धर्म, आचार ही परम धन, आचार परम विद्या और आचार परम गति है। आचार-विहीन पुरुष इस लोकमें निन्दित होकर परलोकमें बहुत दुःख भोगते हैं। अतएव अवश्य अवश्य अवश्य सदाचारवान् होना चाहिये।

स्मरण रहे कि साधनामें ध्यान मुख्य है और इसके द्वारा इष्टकी प्रत्यक्ष प्राप्ति होती है। शिवपुराणकी वायवीय संहिता, उत्तर भागके अ० ८ में लिखा है कि पञ्चयज्ञमें ध्यान और ज्ञान-यज्ञ मुख्य हैं। जिनको ध्यान और ज्ञानकी प्राप्ति हुई, वे ही भव-समुद्रसे उत्तीर्ण हुए हैं—ऐसा जानना चाहिये। हिंसादि दोषवर्जित, विशुद्ध, चित्तको प्रशान्त करनेवाला और अपवर्ग-फल-प्रद ध्यान-यज्ञ ही सबसे श्रेष्ठ है। कर्म-यज्ञ-कर्ता तो राजभवनके बाह्य कर्मचारीके समान हैं जिनको अल्प फल मिलता है। ध्यानीको ईश्वर-विग्रह प्रत्यक्ष भासता है और कर्मयोगीके लिये ईश्वर-देह स्थूल मिट्टी, काष्ठादिद्वारा कल्पित होता है। इस कारण ध्यान-परायण पुरुष शिवको यथार्थरूपसे जानते हैं। इसीलिये वे पाषाणमय अथवा मृण्मय मूर्तिपर निर्भर नहीं रहते। हृदयस्थ शिवको छोड़कर जो बाह्यरूपमें ही शिवकी पूजा करते हैं वे मानो हस्त-गत फलको त्यागकर अपनी कोहनीको चाटते हैं। ज्ञानसे ध्यान और ध्यानसे ज्ञान एवं दोनोंसे मुक्ति मिलती है, इसलिये ध्यान-यज्ञका कभी परित्याग नहीं करना चाहिये। शिवपुराणकी सनत्कुमारसंहिताके अ० ३८ में लिखा है—

पुरुषं शाश्वतं सूक्ष्मं द्रष्टव्यं ध्यानचक्षुषा ।
यतते ध्यानयोगेन यदि पश्येत पश्यति ॥

ध्यान हृदयमें ही होना चाहिये। शिवपुराणके अनेक स्थलोंमें उल्लेख है कि शिवका वास हृदयमें है और हृदय-हीमें ध्यान करना चाहिये। यथा—

परमात्मा हृदिस्थो हि स च सर्वं प्रकाशते ।
नाभिनाडीभिरत्यर्थं क्रीडामोहविसर्जनम् ॥
स नाडीतोऽथ मन्त्रव्यो येन विश्वं हृदि ब्रजेत् ।
पूर्वांस्ते हृदि तिष्ठन्ति तन्मनस्तत्परायणाः ॥
स्वदेहायतनस्यान्तर्बिचिन्त्य शिवमम्बया ।
हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयज्ञेन पूजयेत् ॥

आरती

हरि कर दीपक, बजावैं संख सुरपति, गनपति भाँक, भैरों झालर भरत हैं।

नारदके कर बीन, सारदा जपत जस, चारि मुख चारि वेद बिधि उचरत हैं ॥

पटमुख रटत सहस्रमुख सिव सिव, सनक सनंदनादि पाँयन परत हैं।

‘बालकृष्ण’ तीनि लोक तीस और तीनि कोटि पते सिव संकरकी आरती करत हैं ॥

—बालकृष्ण



संस्कृत-साहित्यमें शिव

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शाल्मी, मद्र, काविरल)

[१]



संस्कृतका साहित्य आध्यात्मिक तत्त्वोंसे पूर्ण और बड़ा विस्तृत है। इसी साहित्यसे अनेक भाषाओं-के साहित्योंका विकास और पोषण हुआ है यह कौन नहीं जानता ? इसमें अन्यान्य विषयोंपर तो गभीरतम गवेषणाएँ हुई ही हैं, परन्तु अध्यात्म-विषयोंपर तो इतना

विचार हुआ है जिसकी हद नहीं। इस अध्यात्ममयताके कारण ही बहुत-से पाश्चात्य विद्वान् इस भाषाको 'अध्यात्म-भाषा' तक कह गये हैं। आर्यदर्शन प्रत्येक पदार्थको आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीन रूपोंमें व्याख्या करके समझाया करते हैं।

भगवान् शिवका संस्कृत-साहित्यमें बड़े व्यापकरूपसे वर्णन है। वेदसे लेकर अर्वाचीन लेखकतक शिव-वर्णनपर नाना प्रकारसे लिख गये हैं और बहुत कुछ लिख गये हैं। यजुर्वेदकी रुद्राष्टाध्यायीसे दार्शनिक विद्वान् और भक्त दोनों ही अपना-अपना अभीष्ट अर्थ निकालते हैं। दार्शनिकगण शिवतत्त्वकी बड़ी गभीररूपसे व्याख्या करते हैं तो भक्त-समाज भगवान् शिवके मनोहर चरित्र वर्णन करके उनकी महिमा सर्व-साधारणतक प्रकट करना चाहता है। उपनिषत् 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' कहकर आध्यात्मिक पद्धतिसे हमें शिव-रहस्य समझाना चाहते हैं तो पुराण शिव-माहात्म्य-वर्णन दूसरे ही प्रकारसे आरम्भ करते हैं। पुराणोंमें भगवान् शिवका स्वरूप, उनकी क्रीडा, उनका निवास-स्थान, उनके गण, उनके सेवक, उनका शृङ्गार, उनके चरित्र, उनका स्वभाव—यों कहना चाहिये कि उनके सभी परिकर अद्भुत-अद्भुत बतलाये गये हैं। जबतक उनका असली तत्त्व समझमें नहीं आ जाता तबतक मनुष्य अपनी रुचिके अनुसार इनका अनेक तरहसे आलोचन-विवेचन किया करता है।

जटाओंमें गङ्गाधारण तथा कण्ठमें हलाहलस्थापना इन्हीं दो विषयोंको ले लीजिये। इन्हींपर लोगोंकी अनेक भावनाएँ हैं। कोई कहते हैं कि भगवान् शिव विष्णुके

अनन्य भक्त हैं अतएव अपनेको पवित्र करनेके लिये उनके चरणप्रक्षालनोदकस्वरूप भगवती गङ्गाको भक्तिभावसे मस्तकपर धारण करते हैं। इसी तरह कोई वादशील कहता है कि भगवान् शङ्कर तामसस्वरूप हैं—उन्हें विष, धनूरा, आक इत्यादि पदार्थ ही अच्छे लगते हैं; अतएव अपनी रुचिसे ही भगवान् शिवने विष-पान किया है इत्यादि। इन दोनों ही बातोंपर दूसरे पक्षका दूसरा उत्तर है। अप्पय्य दीक्षित कहते हैं—

गङ्गा धृता न भवता शिव पावनीति

नास्वादितो मधुर इत्यपि कालकूटः।

त्रैलोक्यरक्षणकृता भवता दयालो

कर्मद्वयं कलितमेतदनन्यसाध्यम् ॥

'हे भगवन् ! 'पवित्र करनेवाली है' इस बुद्धिसे आपने गङ्गाको नहीं धारण किया है तथा आपको मधुर लगता है इसलिये विषका भी पान नहीं किया है। किन्तु आप त्रिलोकीका रक्षण करनेवाले हैं, अतएव दयालुतासे लोककी रक्षाके लिये यह दोनों बड़े भारी कार्य जो और बड़े-बड़े देवताओंसे नहीं बन सकते थे आपने किये हैं।'

अस्तु, भगवान् शिवसे सम्बन्ध रखनेवाले ऐसे-ऐसे पौराणिक विषयोंका वर्णन भी यद्यपि उपर्युक्त शीर्षककी छत्रछायामें अच्छी तरह समा रहा है, क्योंकि 'संस्कृत-साहित्य' शब्द व्यापक है; परन्तु वेद, दर्शन, पुराणादिप्रोक्त शिव-वर्णनके निबन्ध 'निबन्ध-सूची' में अलग-अलग गिनाये गये हैं, इसलिये पुराण आदिकी चहारदीवारीको दूर छोड़कर मुझे यहाँ केवल संस्कृत-कवियोंके वर्णनको ही लेना चाहिये। क्योंकि 'संस्कृत-साहित्य' शब्दसे यहाँ केवल अलङ्कारशास्त्र, काव्य इत्यादिसे ही वक्ताका प्रयोजन मालूम पड़ता है, जैसा कि 'साहित्य-दर्पण', 'साहित्यकी परीक्षा' आदिमें साहित्य-शब्दका अर्थ लिया जाता है।

[२]

भगवान् शिव संस्कृत-कवियोंके प्रधानरूपसे वर्णनीय हैं। यों तो संस्कृत-कवियोंके समाजमें भला कौन-से देवता सूक्ति-कुसुमोंसे अभ्यर्चित नहीं हुए हैं ? सभी देवताओंके एक-से-एक बढ़कर स्तुति या वर्णन मिलते हैं परन्तु भूतभावन

भगवान् शङ्करके विषयमें तो कवियोंका भक्तिभाव कुछ बढ़ा-चढ़ा-सा प्रतीत होता है। 'विद्याकामस्तु गिरिशम्' पर कवियोंकी अटल आस्था मालूम होती है। दक्षिण-भारतके वेदान्ताचार्य वेङ्कटाध्वरि, जगन्नाथ प्रभृति तथा पूर्वभारतके कर्णपूरगोस्वामी, जीवगोस्वामी, जयदेव प्रभृति वैष्णव-कवियोंको छोड़कर और-और देशोंके प्रायः सभी संस्कृत कवि अपने-अपने ग्रन्थोंके आदिमें शिव-विषयक मङ्गलाचरण करते हैं, भगवान् शिवके चरित्रोंसे अपनी सूक्ति-सरिताको पावन करते हैं।

काश्मीरकोंका दावा है कि हमारे देशको छोड़कर कविता और केसर हो ही नहीं सकती। बिहण कहते हैं—

सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां

भवन्ति नूनं कविताविलासाः।

न शारदादेशमपास्य येषां

मयाऽद्य दृष्टः कचन प्ररोहः॥

'मुझे मालूम होता है, कि कविता-विलास और केसर ये दोनों सहोदर भाई-भाई हैं क्योंकि शारदा-देश अर्थात् सरस्वतीके देश—इस कश्मीरको छोड़कर और कहीं भी मैंने इन दोनोंका उत्पन्न होना नहीं देखा।' सोचिये तो सही, कितनी गर्वभरी उक्ति है? जैसे केसरकी खेती कश्मीरको छोड़कर और कहीं हो ही नहीं सकती वैसे ही 'कविता' जिसे कहते हैं वह कश्मीरको छोड़कर दूसरी जगह देखी ही नहीं जाती, यह तो कहा ही है; किन्तु साथमें कवि एक बड़ी भारी बात कह गया है। वह कहता है कि सरस्वतीका देश ही—अगर कोई है तो—यह है। अस्तु, 'टकसाली कविता कश्मीरकी ही होती है' यह काश्मीरदेशवासी बिहण कवि चाहे कह गया हो परन्तु इसमें वाद-विवादके लिये बहुत कुछ गुंजाइश है। कवितामें 'वैदर्भी रीति' सर्वप्रधान मानी जाती है। अब आप ही देख लीजिये 'विदर्भ' कश्मीरकी दिशामें है या उसके सामनेकीमें? खैर, इस वाद-विवादकी मीमांसा इस लेखमें नहीं करनी है। यहाँ तो कहनेका तात्पर्य यही है कि जो काश्मीरके कवि अपनेको कवितामें अद्वितीय समझते हैं वह भी सब-के-सब भगवान् शिवकी लीला ही गाते हैं। जगद्धरकी 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' से बढ़कर भला कौन-सा शिवविषयक काव्य होगा, जिसे कविता-दृष्टिसे परखिये चाहे भक्तिकी कसौटीपर जाँचिये, वह अद्वितीय उतरेगा। जगद्धरकी शिवविषयक सूक्तियाँ एक अलग लेखका विषय हैं जिसे यहाँ मैं नहीं छू रहा

हूँ, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि काश्मीरके कवि इसमें पूर्णतया सफल हुए हैं।

काश्मीरकोंको छोड़कर और आगे चलिये। महाकवि कालिदास जो कनिष्ठिका अँगुलीपर प्रथम-प्रथम गिने जाकर आगे अपने बराबरका कवि न मिलनेके कारण दूसरी अँगुलीको यथार्थ ही 'अनामिका' बना देते हैं, वह भी अपने प्रत्येक ग्रन्थमें भगवान् शिवका ही मङ्गलाचरण करते हैं। यही क्यों, भगवान् शिवके चरित्रोंका चित्रण जो उन्होंने 'कुमारसम्भव' में किया है उसका मुकाबला आप किसी भी अच्छे-से-अच्छे काव्यमें नहीं पायेंगे। पार्वती और बटुवेषधारी श्रीशिवका संवाद संस्कृत-साहित्यकी एक परिगणनीय चीज़ है। पार्वतीका मनोभाव जाँचनेके लिये श्रीशिवकी निन्दा करता हुआ बटु कहता है—

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता

दिगम्बरस्त्वेन निवेदितं वसु।

वरेषु यद्वालमृगाक्षि ! मृग्यते

किमस्ति तद्वयस्तमपि त्रिलोचने॥

शरीरमें सबसे पहले नेत्रोंपर ही नेत्र पहुँचते हैं। रहिमन कहते हैं 'बड़ी बड़ी अँखियाँ निरखि अँखियनको सुख होत।' सो उन्हींकी तरफ देखो कि विकृत रूपवाली तीन उनके आँखें हैं। यह तो सौन्दर्यकी बानगी हुई। अब लीजिये कुल—सो यही किसीको पता नहीं कि किस कुलमें कब जन्म हुआ है? धनकी बात सुनो तो यह हाल है कि पहननेको लँगोटीतक नहीं जुटती, नङ्गा फिरता है। वरमें रूप, कुल, धनादि जो कुछ देखे जाते हैं वे सब तो न सही उस महादेवमें क्या उनमेंसे एक भी है? लोकमें प्रसिद्ध है कि—

कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम्।

बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः॥

'वरके अन्दर कन्या रूप, माता धन, पिता विद्या तथा बन्धु-बान्धव अच्छा कुल वरमें देखना चाहते हैं किन्तु अन्य आदमी मिठाइयोंपर नजर रखते हैं।' अब तुम ही देखो, उस विरूपाक्षमें इनमेंसे कौन-सी बात है?

श्रीपार्वती उत्तर देती हैं—

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां

त्रिलोकनाथः पितृसन्मगोचरः।

स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते

न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥

‘वह स्वयं अकिञ्चन हैं किन्तु ब्रह्माण्डकी सब सम्पत्तियाँ उन्हींसे उत्पन्न हुई हैं। वह इमशानमें रहते हैं किन्तु तीनों लोकोंके स्वामी हैं। वह भयङ्कररूप हैं तो भी शिव अर्थात् कल्याणकारी सौम्यमूर्ति कहे जाते हैं। शिवके वास्तविक तत्त्वको समझनेवाला कोई है ही नहीं’ इत्यादि।

शिव-विवाह पुराणोंमें यद्यपि पूरा मिलता है परन्तु कालिदासकी कलमसे निकला हुआ वह एक अद्भुत वस्तु हो गया है। रत्नपरीक्षक महाकवि तुलसीदासजीने उसे स्थान-स्थानपर लिया है। जहाँ कहीं कालिदासकी सूक्तिका अविकल अनुवाद आ गया है, वहीं कविता चमक उठी है। वास्तवमें कालिदासका शिव-चरित्र-चित्रण उनके योग्य ही हुआ है, परन्तु कवियोंमें जो एक तरहकी लहर हुआ करती है उससे वह भी नहीं बच पाया है। कविका जिस समय सूक्तिप्रवाह चलने लगता है, उसके अन्दर जिस समय कल्पनाकी तरङ्गें उठने लगती हैं उस समय वह सब कुछ भूल जाता है। उसे एक अलौकिक भावावेश-सा हो जाता है जिसका उसे भी पता नहीं रहता। इसीलिये कवियोंने कहा है कि ‘प्रतिभा एक तरहका पागलपन है।’ बस यही कारण है कि जो कालिदास—

स हि देवः परं ज्योतिस्तमःपारे व्यवस्थितम् ।

परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिनं मया न च विष्णुना ॥

‘वह महादेव तमोगुणातीत परात्पर ज्योतिःस्वरूप हैं, परमात्मा हैं, उनके महिमातिशयको न विष्णु जानते हैं, न मैं जानता हूँ’ यों जगत्के विधाताके द्वारा भी जिन शिवका—

यतो वाचो निवर्तन्ते अग्राप्य मनसा सह

—के रूपमें वर्णन कराते हैं उन्हींका स्वयं इतना स्फुट शृङ्गार वर्णन कर डालते हैं कि जिसके कारण उनपर ‘पित्रोः सम्भोगवर्णनमिवात्यन्तमनुचितम्’ की दफा साहित्य-निबन्धकारोंको लगानी पड़ती है।

[३]

अकेले कालिदास ही नहीं, संस्कृत-साहित्यके अनेक अच्छे-अच्छे कवि भगवान् शिवका अनेक प्रकारोंसे वर्णन करते हुए कल्पना-तरङ्गोंमें इतना बह जाते हैं कि जिस विषयको लेकर वह कविता करने बैठते हैं उसतकको

भूल जाते हैं। शिव-विषयक भक्ति-भावको लेकर मङ्गलाचरण-की कविता आरम्भ करते हैं और आशा करते हैं कि श्रीशिव ‘सर्व’ अमङ्गल-निवृत्ति करेंगे, किन्तु रचनामें औचित्यकी सीमातक आ टकराते हैं। कोई बात नहीं, भगवान् किसी भी भावसे भजन करो भगवान् उसका मन्त्र ही करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। फिर भगवान् भवानीपति तो भोलेनाथ हैं। भला वह भक्तोंके अनमलकी भावना भी कर सकते हैं ? जो ‘वम् वम्’ कहने मात्रसे ही खुश हो जाते हैं, भला उनकी दयालुताकी कुछ सीमा है ? परन्तु कवि अपनी कल्पनासे बाज नहीं आते, उन्हें जो कुछ उपज जाती है उसे कहकर ही दम लेते हैं। एक कवि मङ्गलाचरण करते हैं—

भस्मान्धोरगफूत्कृतिस्फुटभवद्भालस्थवैश्वानर-

ज्वालास्त्रिजसुधांशुमण्डलगलत्पीयूषधारारसैः ।

सञ्जीवतृजचर्मगर्जितभयभ्राम्यदृष्टपाकर्षण-

व्यासक्तः सहसाद्रिजोपहसितो नम्रो हरः पातु वः ॥

‘शिवके शरीरसे झड़ी हुई भस्म आँखोंमें पड़ जानेके कारण गलेमें लिपटा हुआ सर्प, न दिखलायी देनेसे घबड़ाकर बड़े जोरसे फुट्टार करता है। उन फुट्टारोंसे ललाट-नेत्रका अग्नि प्रज्वलित हो उठता है। उसकी ज्वालासे पसीजकर मस्तकस्थित चन्द्रमण्डलसे अमृत टपकता है। अमृतकी बूँद पड़ते ही शरीरपर ओढ़ा हुआ गजचर्म इधर जीवित हो उठता है, उधर श्रीशिवका शरीर नम्र हो जाता है। जीवित हुए हाथीकी गर्जनासे सवारीका बैल दौड़ने लगता है। भगवान् शिव इस उपद्रवसे घबराकर बैलको बड़ी मुश्किलसे रोकते हैं, किन्तु नम्र हुए श्रीशिवका यह कौतुक देखकर श्रीपार्वतीकी हँसी नहीं रुकती। पार्वतीसे उपहास किये गये वही शिव आपकी रक्षा करें !’

भगवान् शिवके सर्प, वृषभ, गज-चर्म आदि उपकरण ही ऐसे विचित्र हैं जिनके परस्पर सम्बन्धपर कवि अनेक कल्पनाएँ बाँध लेते हैं। एक कवि कहता है—

विष्णोरागमनं निशम्य सहसा कृत्वा फणीन्द्रं गुणं

कौपीनं परिधाय चर्मकरिणस्तस्यागमस्समुखम् ।

दृष्ट्वा विष्णुरथं सकम्पहृदयः सपांस्पतद्भूतञ्जे

कृत्तिर्विस्खलिता हिधा नतमुखो नम्रो हरः पातु वः ॥

‘भगवान् शिवने जैसे ही अपने मित्र विष्णुका आगमन सुना कि शीघ्रतासे सर्पके कटिभूज (करधनी) पर गजचर्म-

की लँगोटी लगाकर वह प्रेमभावसे उनके सामने आ गये। किन्तु जैसे ही विष्णुकी सवारीके गरुडको देखा वैसे ही कमरमें लपेटा हुआ सर्प डरके मारे जमीनमें गिरा कि उसके सहारेपर टिकी हुई लँगोटी भी खिसक गयी, शिव नग्न हो पड़े। वही लज्जावनत-मुख भगवान् शिव आपकी रक्षा करें।'

संस्कृत-कवियोंने भक्तिप्रवण होकर भगवान् शिवका गुणस्तवन न किया हो सो बात नहीं। वह जिस समय शिव-विषयक रतिभावसे अनुप्राणित हो जाते हैं उस समय 'प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः' होनेवाले वही हैं अर्थात् उनको रोमाञ्च हो उठता है। आँखोंसे प्रेमका प्रवाह बह निकलता है, किन्तु जिस समय वह कविताकी तरङ्गोंमें वहने लगते हैं उस समय शिव-विषयक भावना पीछे रह जाती है और कल्पनाकी लहर उन्हें आगे ले जाती है।

संस्कृत-साहित्यमें शिव-विषयक वर्णनपर क्या-क्या नवीन कल्पनाएँ हुई हैं उसकी बहुत संक्षिप्त कुछ जानकारी नीचे देना चाहता हूँ, परन्तु फिर भी कहीं लेखमें विस्तार न हो जाय इस भयका भूत बेचारे उत्साहको क्षीण किये डालता है।

[४]

काव्यकी आत्मा 'रस' है। वह रस किसी अर्थगत चमत्कारके बिना नहीं रह सकता। इसीलिये चमत्कारक नवीनता लानेके लिये कविलोग अनेक कल्पनाएँ किया करते हैं। यदि वह 'औचित्य' की सीमाको न लँघे तो कल्पनामें कविको पूर्ण स्वातन्त्र्य है। 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।' अपार इस काव्य-सृष्टिमें कवि ही विधाता है। सामाजिकोंके अनुरञ्जनके लिये 'यथा देहे तथा देवे' के अनुसार कवि देव-चरित्रोंका भी मानुष-चरित्रकी भाँति चित्रण किया करते हैं। इसी आधारसूत्रको पकड़कर शिववर्णनपर भी कवियोंकी नाना कल्पनाएँ चलती हैं।

जगजननी भगवती पार्वतीसे स्वामिकार्तिकेयका जन्म जरूर हुआ है परन्तु उन्हें सामान्य गर्भिणीकी भाँति प्रसववेदनाका कष्ट नहीं भोगना पड़ा। न भगवान् शिवके घरमें प्रसवके समय सत्रपर एक संकट-सा ही रहा कि देखिये कैसे क्या होता है ? न बाहर बैठे घरके लोग और नौकर-

चाकर इस तालाबेलीहीमें रहे कि देखें देवीको पुत्र होता है कि कन्या। सामान्य-सी सिद्धि रखनेवालेतक जब यह बता देते हैं कि पुत्र होगा या कन्या, तब क्या शिव-परिवारको यह बात भी विदित न थी ? यहाँ तो तारकासुरके विजयके लिये देवताओंने भगवान् शिवकी पुत्रसन्तति पहलेसे ही निश्चित कर रखी थी, बल्कि उसीके लिये शिव-विवाहका आयोजन ही किया गया था। किन्तु चमत्कारके लिये कवि गृहस्थके घरका-सा चित्र यहाँ उपस्थित करता है। इसीलिये ऐसे कवि 'अर्थकवि' कहलाते हैं। इसका कुछ परिचय नीचे देखिये।

'कल्याण' के उद्देश्यसे लेखके सभी उदाहरण आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण ही चुने गये हैं।

[५]

श्रीपार्वतीके प्रसवका समय है। सम्पूर्ण शिव-परिवार 'सोहर'के बाहर ही उपस्थित है। किसीका किसी कार्यमें मन नहीं लगता। सबको यह प्रतीक्षा है कि देखें पुत्र होता है या कुमारी। बधाईकी आशा करनेवाले लोग पुत्रोत्सवकी उमंगमें वहीं आ जुटे हैं। जनानेकी ड्योढ़ीपर कड़ा पहरा है किन्तु उसके बाहर ही गणोंकी भीड़ लग रही है। सबकी टकटकी ड्योढ़ीके दरवाजेपर बँध रही है कि देखें कब और क्या खबर आती है ? इधर गण और उधर 'मातृगण' बड़ी उत्सुकतासे बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं कि बधाईका संवाद आते ही दुतरफा मंगलोत्सव शुरू कर दिया जाय, नृत्य-गान आरम्भ हो। ऐसे उत्सुक प्रतीक्षा-कालमें यकायक दरवाजेका परदा हटता है और हर्ष-सम्भ्रमके कारण धवराये हुए-से भृङ्गिरिटि (गणप्रधान) बाहर आकर हाथ ऊँचा करके कहते हैं कि 'देवीके पुत्र जन्म हुआ है। गणो ! अब बैठे क्या देखते हो ? नाच शुरू होना चाहिये।' वह यह कह ही रहे थे कि 'मातृ-मण्डल' की तरफसे चामुण्डा बाहर आती हैं। 'आहा ! देवीके पुत्र जन्म हुआ है' इसी वाक्यको हर्षसे दुहराती हुई प्रसन्नताके कारण भृङ्गिरिटिका आलिङ्गन करती हैं। यह भी बधाईकी खुशीमें उनका आलिङ्गन करते हैं। यों उन दोनोंके परस्पर बारम्बार आलिङ्गनके समय वक्षःस्थलमें धारण किये हुए पुराने बड़े-बड़े अस्थि (हड्डियाँ) जर्जर होते हुए आपसमें खड़खड़ाकर टकराते हैं जिसके घोर शब्दमें देवताओंकी तरफसे बजायी हुई दुन्दुभियोंका नाद भी दब जाता है। वही शब्द आपलोगोंकी रक्षा करे—

देवी पुत्रमसूत नृत्यत गणाः किं तिष्ठतेत्युद्धजे
हर्षाद्भृङ्गिरिटावुदाहृतगिरा चामुण्डयालिङ्गिते ।
पायाद्वो जितदेवदुन्दुभिघनध्वानप्रश्रुत्तिस्तयो-
रन्योन्याङ्गनिपातजर्जरस्थूलास्थिजन्मा रवः ॥

भगवान् शिव अकिञ्चन हैं, किन्तु साथ ही अत्यधिक उदार भी हैं। आपने जैसे ही पुत्रका जन्म सुना वैसे ही बधाई उपस्थित करनेवाले ब्रह्माजीको समुचित पुरस्कार देना चाहा। चारों तरफ नजर फैलाकर देखा। अपरिग्रह भगवान् के यहाँ हो ही क्या सकता था ? किन्तु बधाईमें दुशाला, कड़े, मङ्गलके लिये कुङ्कुम-विलेपनादि होना तो आवश्यक ही था। बस, आपने अपने नीचे बिछे हुए सिंहचर्मको दुशाला बना डाला, अपने हाथके कड़े (सर्प) उनके हाथमें डाल दिये। साथ ही सम्मानके लिये समीपमें रक्खा हुआ भस्म सर्वाङ्गमें विलेपन कर दिया। अपने घरकी बधाईकी इस उदारताको सुनकर गिरिराजनन्दिनी एकदम हँस पड़ी। वही गिरिजाका हास्य हमें पवित्र करे।

श्रुत्वा पञ्चाननजनुर्मुदितान्तरेण
पञ्चाननेन सहसा चतुराननाय ।
शार्दूलचर्म भुजगामरणं सभस्म
दत्तं निशम्य गिरिजाहसितं पुनान्तु ॥

जिस 'विधाता' ने आत्माराम भगवान् को इस गृहस्थाश्रम-के पचड़ेमें डालकर तपश्चर्यासे हटाया उसके लिये यही उचित भी था कि 'लो, हमें तुम गृहस्थ बनाते हो तो तुम राख रमाकर भजन किया करो।'।

यहाँ क्रमसे पञ्चानन, पञ्चानन, चतुराननकी घटना-चतुराई भी कविकी दर्शनीय है।

x x x

नटराजराज भगवान् शिव देवीको नाच्यकी शिक्षा दे रहे हैं। नाचते समय किस भावके अभिनयके लिये हाथ कहाँ और कैसे रहना चाहिये, अङ्ग किस तरह रहे, चरणको किस तरह टेढ़ा करके रखना चाहिये, यों एकिटङ्ग और उसकी पोजीशन सिखला रहे हैं। इस निभृत विनोदके समय किसी भी सेवकको पास नहीं रक्खा गया है। और तो क्या, साथ करनेके लिये मृदङ्गवाला भी पास नहीं रक्खा गया है। उसका काम भी आप ही कर रहे हैं। आप बताते हैं 'देखो इस भावपर हाथको यों ऊँचा उठाओ।' किन्तु जिस समय मनके माफिक काम होता

हुआ नहीं देखते हैं, आपसे नहीं रहा जाता। आप उठकर अपने हाथसे देवीके हाथको ऊँचा उठाकर दिखलाते हैं कि—

'देखो! बाहु-लताको यों उठाये रहो और इस तरह अपने अङ्गको रखो। हूँ, हूँ देखो बहुत ऊँची नहीं। 'नम', कुछ नीची हो जाओ। हूँ, हूँ, देखो, पैरके अग्रभाग-को कुञ्चित कर लो।' नयी सीखतर देवीसे जब यह ठीक-ठीक नहीं बैठता तब आप कहते हैं 'देखो, मेरी तरफ देखो, मैं कैसे खड़ा हूँ' यों स्वयं अभिनय करते हुए सिखा-सिखाकर आप श्रीपार्वतीको नचा रहे हैं और 'पकभम् पकभम्' करके अपने मेघगम्भीर-ध्वनियुक्त मुँहसे पलावज भी बजा रहे हैं। 'सम' पर ठीक-ठीक विश्राम होता जाय, इसके लिये अपने हाथोंसे आप 'ताल' भी देते जाते हैं। किन्तु नयशिक्षिता होनेके कारण देवी जब 'लय' में धीमी पड़ जाती है तब आप भी 'लय' को तोड़कर विलम्बित लयसे तालिका देने लगते हैं। वही भगवान् की तालिकाएँ आपकी रक्षा करें—

एवं धारय देवि बाहुलतिकामेवं कुरुवाङ्गकं
माऽस्युर्चनंभ कुञ्जयाग्रचरणं मां पश्य तावत्स्थितम् ।
देवीं नर्तयतः स्ववक्त्रमुरजेनाग्भोधरध्वानिना
शम्भोर्वः परिपान्तु लम्बितलयच्छेदाहतास्तालिकाः ॥

x x x

त्रिलोकवन्दनीय भगवान् शिव अकिञ्चन हैं, किन्तु लोकातिशायिनी सम्पत्तियाँ उनके पैरोंमें लोटती हैं। जिस समय वह त्रैलपर सवार होकर बाहर निकलते हैं उस समय जो इन्द्र 'इदि परमैश्वर्ये' अर्थात् पराकाष्ठाके ऐश्वर्यका स्वामी है, वही मद झरते हुए ऐरावतपर बैठा हुआ भी बड़े सम्भ्रमके साथ उसे छोड़कर भगवान् शिवके चरणोंपर अपना मस्तक टेकता है और अपने मुकुटके पारिजात-पुष्पोंके परागसे उनकी चरणाङ्गुलियोंको रञ्जित करता है—

असम्पदस्तस्य धृपेण गच्छतः
प्रभिक्षदिग्वारणवाहनो धृषा ।
करोति पादावुपगम्य मौलिना
विनिद्रमन्दाररजोऽहणाङ्गुली ॥

परन्तु कवि शिवकी इस अकिञ्चनतापर भी कई कल्पनाएँ जमाते हैं। कोई कहता है कि पार्वती शिवजीके घरमें आ तो गयीं परन्तु गृहस्थिति देखकर वे धवरा उठीं।

वे देखती हैं कि 'घरमें हजार मुँहवाला एक सौंप है जिसके एक-एक मुखके लिये छटाँक-छटाँक भर भी दूध देना पड़े तो भी डेढ़-पौने-दो मन होता है ! स्वामी भी ईश्वरकी कृपासे पाँच मुँहवाले हैं। पुत्र भी दो हैं, जो दोनों ही भोजनके समय पँसेरियाँसे बात करते हैं। एक छः मुँहवाला है, दूसरा हाथीके मुँहवाला ! घरमें आमदनीका यह हाल है कि रोज भीख माँगनेसे काम चलता है। अब किस तरहसे काम चलेगा।' यों पार्वती जिस समय फिक्रके कारण दीर्घ निःश्वास लेती हैं उस समय भगवान् शिव मन-ही-मन हँसते हैं, यद्यपि वह हास्य उनके मुखपर झलके बिना नहीं रहता, वही शिव हमारी रक्षा करें—

सहस्रास्यो नागः प्रभुरपि मतः पञ्चवदनः
पडास्यो हन्तैकस्तनय इतरो वारणमुखः ।
गृहे भैक्ष्यं शश्वत्प्रभवतु कथं वर्तनमिति
श्वसत्यां पार्वत्यामथ जयति शम्भुः स्मितमुखः ॥

एक कवि कहता है कि शिवने देखा कि अपने घरमें दो पेट पालना मुश्किल पड़ेगा, इसलिये पहलेसे अपने ही आधे अङ्गमें पत्नीको रख लिया जिससे एक पेट भरनेसे भी काम चल जाय। यदि यह बात नहीं है तो उनका बेटा अवतक क्यों कुँआरा डोलता है—

उदरद्वयभरणभयादर्द्धाङ्गाहितदारः ।
यदि नैवं तस्य सुतः कथमद्यापि कुमारः ॥

एक कवि कहता है कि पार्वती इस भिक्षा-व्यवसायसे तङ्ग आकर शिवजीको खेतीका धन्धा चलानेकी सलाह देती हैं। रातको निष्किञ्चन घरके काम-काजसे निवटकर अपने झोंपड़ेमें बैठी हुई शिवजीके साथ मनसूत्रा बाँध रही हैं—

'सुना है, परशुराम आजकल जमीन दे रहे हैं, उनसे थोड़ी जमीन माँग लो। यदि तुमसे इसके लिये भी मुँह न खोला जाय तो किसी दूसरेके साथ वहाँ चले जाओ और उसीके द्वारा माँग लो ('याचय' णिजन्त है, इसलिये)। 'धनपति' से बीज उधार ले लो। बलरामसे थोड़े दिनके लिये उनका हल माँग लो। अब रहे बैल, सो एक तो तुम्हारे पास है ही और दूसरेके लिये और न हो तो धर्मराज-से एक 'भैंसा' ही ले लो, किसी तरह दोनोंसे काम चल जायगा; और उस पुराने हलमें यदि 'फाल' की जरूरत पड़े तो यह तुम्हारा त्रिशूल काम दे देगा। दोपहरको खेतपर

तुम्हारी रोटी पहुँचाना मेरे जिम्मे रहा। अब जानवरोंको चरानेकी रही, सो यह इतना बड़ा लड़का (स्कन्द) यों ही मारा-मारा फिरता है; यह दोरोंकी रखवाली कर लेगा। मैं तो तुम्हारे इस भीख माँगनेसे तङ्ग आ गयी, अब तो खेती कर लो'। यह गौरीका वचन तुम्हारी रक्षा करे—

रामाद्याचय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाह्लाङ्गलं
प्रेतेशान्महिषं तवास्ति वृषभः फालं त्रिशूलं तव ।
शक्ताऽहं तव चाज्ञदानकरणे स्कन्दोऽस्ति गोरक्षणे
खिन्नाऽहं हर भिक्षया कुरु कृपिं गौरीवचः पातु वः ॥

पार्वती देखती हैं कि घरमें चारों तरफ खोटी-ही-खोटी सङ्गति है—

'गङ्गा है तो वह स्वभावसे टेढ़ी और 'सन्ध्यारागवती' है, साँझ होते ही उसपर रङ्गत ही दूसरी चढ़ जाती है। सौंप तो 'द्विजिह्व' प्रसिद्ध ही हैं। चन्द्रमा, वह मलिन (कलङ्की) और बड़ा टेढ़ा है। और नन्दी बन्दरमुँहा है। बैल सो बैल ही ठहरे। दुर्जनोंसे भरे इस घरमें अब निर्वाह कैसे होगा' यों चिन्ता करती हुई, नरकपाल हाथमें लिये वही श्रीगौरी आपकी रक्षा करें।'।

सन्ध्यारागवती स्वभावकुटिला गङ्गा द्विजिह्वः फणी
वक्रोऽङ्गैर्मलिनः शशी कपिमुखो नन्दी च मूर्खो वृषः ।
इत्थं दुर्जनसङ्कटे पतिगृहे वस्तव्यमेतत्कथं
गौरीत्थं नृकपालपाणिकमला चितान्विता पातु वः ॥

शिवके घरमें अहर्निश कलह-ही-कलह होता दीखता है—

'गणपतिके वाहनको क्षुधातुर भुजङ्ग लीलना चाहता है, और जैसे ही वह मूषकपर टूटता है वैसे ही स्वामिकार्तिक-का मोर सर्पपर झपटता है। इधर पार्वतीका सिंह गजानन-पर नज़र बाँधे रहता है। इनसे निवटते हैं तो इधर गौरी और गङ्गाका सौतियाडाह चला ही करता है। और तो क्या, कपालवाला मस्तक समीपके चन्द्रमापर ही दाँत पीसता है। यों रात-दिनके कुटुम्ब-कलहसे तङ्ग आकर भगवान् शिवने भी ज़हर पी लिया।'—

अक्षुं वाञ्छति वाहनं गणपतेराक्षुं क्षुधार्तः फणी
तं च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजासिंहोऽपि नागाननम् ।
गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपलजनो
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपि हलाहलम् ॥

'ज़हर पीकर भी वह क्या बच जाते, परन्तु—'पार्वती' पर्यंतमें उत्पन्न हुई, 'अपर्णा' जिसमें पत्तैतक नहीं, उसे हम

एक अद्भुत ओषधि समझते हैं, जिसके प्रभावसे जन्मसे 'शूली' शूलरोगी, शिव हलाहल पीकर भी मृत्युञ्जय हो गये !—

पार्वतीमौषधीमेकामपर्णा मृगयामहे ।

शूली हलाहलं पीत्वा यया मृत्युञ्जयोऽभवत् ॥

'अपर्णा', बिना ही पत्तेकी इस अद्भुत लताका समझदारों-को सदा सेवन करना चाहिये जिसके 'वरण' करते ही, (आवरण करते ही) पुराना 'स्थानु' (शिव, सूखा ढूँठ) भी अमृत-फल पैदा करता है—

अपर्णैव लता सेव्या विद्वद्भिरिति मे मतिः ।

ययावृतः पुराणोऽपि स्थानुः सूतेऽमृतं फलम् ॥

× × ×

बालक कार्तिकेय और गजानन दोनों ही भूखके मारे खानेकी तलाशमें इधर-उधर देख रहे हैं। 'पिताजीके जटाजूटके अन्दर गङ्गामें तैरता हुआ चन्द्रमा दिखायी पड़ता है। स्वामिकार्तिक तो मटेके अन्दर फड़कती हुई मछली समझकर लालच-भरे चञ्चल नेत्र डाल रहे हैं और गणेश

जलमेंसे निकला हुआ सफेद कमलकन्द समझकर सूँड बढ़ाना चाहते हैं। वही शिवका केशवन्ध आपके कल्मषकों दूर करे'—

उत्केशं केशवन्धः कुसुमशररिपोः कल्मषं वः स मुष्या-
द्यत्रेन्दुं वीक्ष्य गङ्गाजलभरलुलितं बालभावादभूताम् ।
क्रौञ्चारातिश्च फाण्टस्फुरितशफरिकाभोहलोलोक्षणश्रीः
सद्यः प्रोद्यन्मृणालीग्रहणरसलसस्पृष्करश्च द्विपात्यः ॥

× × ×

अस्तु—

पिनाकफणिबालेन्दुभस्ममन्दाकिनीयुता ।

पवर्गरचिता मूर्तिरपवर्गप्रदास्तु नः ॥

'पिनाक (धनुष), फणी, बालचन्द्रमा, भस्म और मन्दाकिनी (गङ्गा) इनसे संयुक्त अतएव क्रमसे 'प-फ-ब-भ-म' इस पवर्गसे संघटित भी श्रीशिवकी मूर्ति हम लोगोंके लिये अपवर्ग (मोक्ष) प्रद हो ।'

विद्या और सम्प्रदायके आचार्य श्रीसदाशिव

(लेखक—गोस्वामी श्रीलक्ष्मणाचार्यजी)

विद्याकामस्तु गिरिशम् । (श्रीमद्भागवत)

अर्थात् जिसको विद्या-प्राप्तिकी इच्छा हो वह श्रीशिवकी उपासना करे, क्योंकि श्रीशिवजी विद्याओंके आचार्य हैं, उत्पादक हैं। 'अइउण्' आदि चतुर्दश सूत्र जो पाणिनीय व्याकरणके मूल हैं वे भी श्रीशिवजीके डमरूसे प्रकट हुए हैं, यह बात सभी जानते हैं। इसके अतिरिक्त 'सङ्गीतरत्नाकर'में लिखा है—

सदाशिवः शिवो ब्रह्मा भरतः कश्यपो मुनिः ।

× × ×

भद्राभिनवगुप्तश्च श्रीमत्कीर्तिधरोऽपरः ।

अन्ये च बहवः पूर्वे ये सङ्गीतविशारदाः ॥

उपर्युक्त पद्योंमें संगीताचार्योंमें सर्वप्रथम श्रीसदाशिवकी गणना की गयी है। इसी प्रकार समस्त विद्या और कलाओंके भण्डार—तन्त्र-शास्त्रके आचार्य भी सदाशिव ही हैं। 'कद्रयामल'में लिखा है—

आगमं निगमञ्चैव तन्त्रशास्त्रं द्विधा मतम् ।

महेश्वरेण यत्प्रोक्तमागमं तक्षिगद्यते ॥

यही क्यों, साक्षात् श्रुति कहती है—

ईशानः सर्वविद्यानाम् ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधि-
पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम् ।

यहाँ स्पष्ट ही श्रीसदाशिवको सब विद्याओंका ईशान (स्वामी) बताया गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रीशिवजी सब विद्याओंके आचार्य हैं।

इसी प्रकार श्रीशिवजी सारे सम्प्रदायोंके भी आचार्य हैं। वैष्णवोंमें प्रधान सम्प्रदाय चार हैं। उनके प्रचारक माने जाते हैं श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिम्बार्क, श्रीरामानुज और श्रीमध्व। इन्हीं चार आचार्योंके नामसे चारों वैष्णव-सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं, परन्तु इन सम्प्रदायोंके प्रवर्तक यही आचार्यचरण हैं यह बात नहीं है। इन्होंने तो प्राचीन सम्प्रदायोंको जो काल-महिमासे लुप्त हो रहे थे, कलियुगमें पुनः प्रचलित किया है। इन सम्प्रदायोंके प्राचीन आचार्य

तो क्रमशः श्रीशिव, श्रीसनक, श्रीलक्ष्मी और श्रीब्रह्मा हैं।
जैसा पद्मपुराणमें लिखा है—

श्रीरुद्रब्रह्मसनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः ।

तथा—

रामानुजानां सरणी रमातो

गौरीपतेर्विष्णुमत्तानुगानाम् ।

निम्बार्कगानां सनकादितश्च

मध्वादिगानां परमेष्ठितः सा ॥

इससे यह स्पष्ट हो गया कि श्रीविष्णुस्वामीका सम्प्रदाय श्रीशिवजीके द्वारा ही प्रवर्तित हुआ है। 'भक्तमाल' में स्पष्ट लिखा है—

रमापद्धतौ भाति रामानुजाख्यः

शिवे विष्णुपूर्वः पुनः स्वामिनामा ।

स निम्बार्कनामा सनानां चतुष्के

स मध्वायनामा चतुर्वक्त्रमार्गे ॥

वेदमें भी लिखा है—

श्वम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

इस मन्त्रमें शिवजीको 'पुष्टिवर्धन' कहा है। इसका अर्थ है—'पोषणं पुष्टिः, पोषणं तदनुग्रहः', अर्थात् पुष्टिका अर्थ है पोषण और पोषण भगवान्के अनुग्रहको कहते हैं। जिस मार्गमें केवल भगवान्के अनुग्रहका ही अवलम्ब हो उसे पुष्टिमार्ग कहते हैं, उस पुष्टिके बढ़ानेवाले शिवजी हैं। अर्थात् श्रीशिवजीके द्वारा जीवोंपर भगवान्का अनुग्रह होता है। श्रीविष्णुस्वामिसम्प्रदायके अन्तर्गत श्रीबल्लभाचार्यका सम्प्रदाय पुष्टिमार्ग ही है। वेदके अनुसार उस पुष्टिमार्गके प्रधान आचार्य भगवान् शिवजी ही हैं।

शाण्डिल्यसंहितामें श्रीशिवजीके भगवान्से दीक्षित होनेसे लेकर श्रीविष्णुस्वामी, श्रीबल्लभाचार्यपर्यन्त गुरुपरम्पराको लिखते हुए अन्तमें लिखा है—'इत्येवं हि समाख्यातः सम्प्रदायः पुरद्विषः।' इत्यादि। इसी कारण परमवैष्णवतन्त्र 'गौतमतन्त्र'में प्रातःकाल गुरुभावनासे शिवजीके ध्यान करनेकी आज्ञा है।

शिवेनैक्यं समुच्चीय ध्यायेत्परगुरुं धिया ।

मानसैरुपचारैश्च सन्तर्प्य मनसा सुधीः ॥

इसी कारण श्रीविष्णुस्वामि-सम्प्रदायको 'श्रीरुद्रसम्प्रदाय' भी कहते हैं।

शिवके प्रति भक्तकी भावनाएँ

(लेखक—पं० भीजयदेवजी शर्मा विद्यालङ्कार)

पुराणोंमें स्पष्ट कहा है—

न ह्यस्मयानि तीर्थानि न देवो मृच्छिलामयः ॥

जलवाले 'तीर्थ' नहीं और शिलामय 'देव' नहीं होते। तब फिर देव कैसे होते हैं, यह प्रश्न स्वाभाविक है। निस्सन्देह कहना पड़ेगा—

भावे हि विद्यते देवः ।

भाव अर्थात् भक्ति—मानस-संकल्पमें ही 'देव' विद्यमान होता है। जब 'उपास्य' एक है और भक्तकी भावनाएँ, मनके संकल्प और क्रियाके साथ-साथ बदलती हैं तो आवश्यक परिणाम यही होगा कि उसी एक उपास्यके ही नाना देव बन जायेंगे, जिसको संक्षेपमें शिवमहिम्नकारने अपने शब्दोंमें कहा है—

रुचीनां वैचित्र्यादुत्कुटिलनानापथजुषां

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

हे देव ! सरल और कुटिल नाना मार्गोंका सेवन करनेवाले मनुष्योंकी रुचियाँ विभिन्न—नाना प्रकारकी होनेसे ये नाना पन्थ चले हैं; वस्तुतः समुद्रके समान तू ही सबका एकमात्र गम्य, ध्येय, उपास्य, अन्तिम लक्ष्य है।

इसी एकताके भावको दूरदर्शी विद्वानोंने अपने हृदयमें सृष्टिके आदिमें भी इसी प्रकार अनुभव किया था। वेदमें भी कहा है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-

रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वद-

न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

(ऋ० १।१६४।४६)

इन्द्रको ही मित्र, वरुण, अग्नि कहते हैं; वही दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान् है। एक सत् पदार्थको ही विद्वान् पुरुष

बहुत प्रकारोंसे कहते हैं,—उसीको अग्नि, यम और मातरिश्वा कहते हैं ।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्रायुस्तदु चन्द्रमाः ।

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

(यजुर्वेद ३२ । १)

‘वही अग्नि, वही आदित्य, वही वायु, वही चन्द्रमा, वही शुक्र, वही ब्रह्म, वही अप् और वही प्रजापति है ।’

तब उस प्रभु परमेश्वरकी उपासना करते हुए रुचियों-का वैचित्र्य किस ढङ्गसे हो सकता है, यह बात बड़े ही कौतुककी है । पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ हम यहाँ शिवको लक्ष्य करके एक कविकी नाना भावनाओंके कुछ नमूने दिखलानेकी चेष्टा करेंगे ।

महामहोपाध्याय श्रीगोकुलनाथ आजसे एक-दो सदी पूर्व मिथिलाके एक अच्छे विद्वान् हो गये हैं, उन्होंने शिवशतक नामकी एक लघु पुस्तिका बनायी है । उसमें अपने भक्ति-प्रवाहमें बहकर शिवके प्रति जिन मनोरञ्जक और हृदयग्राही भावनाओंको प्रस्तुत किया है वे बड़ी ही उपादेय हैं । आपने भक्तिकी अलौकिक भावनामयी चित्र-तूलिकासे शिवके अनेक प्रकारके चित्र खींचकर दिखाये हैं । यदि उनको वास्तविक स्थूल चित्रोंमें चित्रित करें तो उनका चित्रण करना भी कठिन हो । वाणीसे ही उनका चित्रण केवल मानसी भित्तिपर हो सकता है और उसका सम्यग् दर्शन भी मानसी दृष्टिसे ही हो सकता है । अब उन भावनामय चित्रोंके नमूने भी देखिये—

१-शिव कुलाल

अविरतपरिवृत्तदण्डकाष्ठा-

कुलमतुलव्यतिवर्त्तमानवेगम् ।

अमयसि जगदण्डगोलमाला-

कलशकलाप ! कुलाल ! कालचक्रम् ॥

‘ब्रह्माण्डोंके बहुत-से गोलोंकी मालारूप घड़ोंके बनाने-वाले हे कुम्हार ! तू निरन्तर घूमते दण्डकाष्ठसे घूमनेवाले और बड़े भारी वेगवाले कालचक्रको घुमा रहा है ।’

एक ही ब्रह्माण्डमें नाना सूर्य, पृथिवी आदि गोलोंको घटवत् मानकर शिवको कुलाल कहनेवाली दृष्टिसे भी कहीं अधिक व्यापक दृष्टि नाना ब्रह्माण्डरूप घटोंकी कल्पनामें है । उन सबके व्यवस्थापक एकमात्र दण्डसे महान् काल-

चक्रको चलानेवाला वह परमेश्वर है—यह भावना बड़ी ही सहृदयगम्य है ।

२-शिव जुलाहा

भुवनपटकुटीरहृदयन्त्र-

भ्रमणसहस्रवृत्तकुतः क्रमेण ।

सृजसि समयसूत्रमन्त्रमाया-

मयपटवानविधानतन्तुवायः ॥

‘यह विशाल जगत् एक बड़ा भारी तम्बू है, उसमें एक चर्ला भगवान् शिव चला रहे हैं । ध्रुव ही उसमें तकुआ लगा है, भगवान् शिव मायामय पटके बनानेके लिये सूत्र बनाने-में अति चतुर जुलाहेके समान हैं । वे उस महान् चर्खेसे इस लोकमें समयरूप सूत्र कात रहे हैं ।’

३-शिव वृक्ष

निगमवनवनस्पते ! प्रसूये

कति जगदण्डमयान्युदुम्बराणि ।

दधति बहलजन्तुजालमन्तः

पुनरपि तानिलयं स्वयि प्रयान्ति ॥

‘हे वेदशास्त्ररूप वनके महावृक्ष ! प्रभो ! तुम कितने ही ब्रह्माण्डरूप ऐसी गूलरियाँ पैदा करते हो, जिनमें सैकड़ों जन्तु भरे हैं और वे सब भी पैदा होकर फिर तुममें ही समा जाती हैं ।’

४-शिव बूढ़ा परबाबा

प्रविशति मम चित्तवेदम सर्वे-

न्द्रियविकलः श्रुतिशिष्यमाणवर्मा ।

विधिगृहतिलविन्दुजालवर्ही

गलितवपुः प्रपितामहः प्रजानाम् ॥

‘समस्त प्रजाओंके प्रपितामह—परबाबा मेरे चित्तरूप गृहमें प्रवेश करते हैं । वे सब इन्द्रियोंसे विकल हैं, श्रुतिरूप कन्या उनका रास्ता बतलानेवाली है, शरीर उनका ढल चुका है, ब्रह्माण्डरूप तिलविन्दु उनके शरीरपर व्याप रहे हैं ।’ बूढ़े आदमीकी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, उसे रास्ता नहीं सूझता, उसे कोई कन्या हाथ पकड़कर गृहमें ले जाती है । उसके शरीरपर नाना तिल और मस्से हो जाते हैं । ‘सर्वेन्द्रियविकल’ हैं अर्थात् उनके कोई इन्द्रिय नहीं है; और उनतक कोई इन्द्रिय नहीं पहुँच पाती इसलिये भी वे ‘सर्वेन्द्रियविकल’ हैं । श्रुति (वेदवाक्य) ही

उन भगवान्तक पहुँचनेका मार्ग बतलाती है, इसलिये वे 'श्रुतिशिष्यमाणवर्मा' हैं। भगवान्के देह नहीं है इसलिये 'गलितवपु' हैं। श्लेषवृत्तिसे ये सब विशेषण बूढ़े परब्राह्मण तथा शिव दोनोंका वर्णन करते हैं। प्रजाओंके पितामह तो 'ब्रह्मा' कहाते हैं; परन्तु 'शिव' उनके भी पिता हैं, इसलिये 'प्रपितामह' कहा।

५-शिव वानर

विषमनिगमकाननान्तशाखा-

तत्पिपु निलीय पराञ्जिरीक्षमाणः।

परिणतिचिदलज्जगत्कपिस्थ-

प्रसनकपे ! सुचिराञ्जिरूपितोऽसि ॥

'पक जानेपर फूटे हुए जगत् रूप कैथके फलोंको खाने-वाले हे वानर ! बड़े गहरे शास्त्रवनकी सिद्धान्त-शाखाओंकी छुर्मटोंमें छिपकर दूसरोंको देखते हुए तुझे मैंने बहुत देरमें भाँपा है।'

वानर प्रायः वृक्षकी डालियोंमें छिपकर दूसरोंको ताकता है, कैथके फल जो पक-पककर आप-से-आप चटक जाते हैं

उन्हें खाता है, पत्तोंमें छिपा हुआ वानर सहजमें नहीं दीखता। इसी प्रकार कालाग्निसे परिपक्व ब्रह्माण्डोंका संहार करता है, उनको खा जाता है। जैसे वेदान्तसूत्रमें लिखा है—

अन्ता चराचरग्रहणात् ।

परमेश्वर 'अन्ता' अर्थात् खानेवाला है, क्योंकि वह चराचर संसारको अपने भीतर ले लेता है। उस भगवान्का दर्शन भी सहजमें नहीं होता। उसका स्वरूप नाना शास्त्र-शाखाओंके सिद्धान्त-जालोंमें छिपा रहता है।

इसी प्रकार उक्त विद्वान्ने शिवका वर्णन शास्त्र-प्रतिपादित सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे नाना प्रकारसे किया है। उदाहरणके तौरपर शिव मूर्त्य किसान, शिव सूत्रधार, शिव स्वामी, शिव थानेदार, शिव बेटीका बाप, शिव अनाथ, शिव दरिद्र, शिव पहरेदार, शिव भिक्षु, शिव कवि, शिव अमृत, शिव भूतनाथ, शिव कलश, इत्यादि नाना प्रकारसे उपास्यदेवपर विचार प्रकट किये गये हैं, जिनको कभी अवसरानुसार 'कल्याण'के पाठकोंकी सेवामें रक्खा जा सकेगा।

महारुद्रोपासना

(लेखक—ज्योतिर्विद् पं० श्रीशिवलालजी शार्ली मेहता)

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं

तं देवतानां परमञ्च दैवतम् ।

पतिं पतीनां परमं परस्तात्

विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

(श्वेता० ६।७)

भगवान् शङ्कर निर्गुण, निर्विकार, गुणातीत और परब्रह्मस्वरूप मङ्गलमूर्ति हैं।

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्य-
मेकारमप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं
मन्यन्ते स आरमा, स विज्ञेयः ।

(माण्डूक्य० ७)

परमात्मा शिव अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अकथनीय, एकात्म, प्रपञ्चरहित, शान्त, अद्वितीय तुरीयावस्थारूप हैं। उन्हींकी उपासनासे चतुर्विध पुरुषार्थकी सिद्धि होती है। भगवान् शङ्करकी रुद्र-संज्ञा है अर्थात्

रुद्र, महादेव, शङ्कर ये सभी नाम शिवके वाचक हैं। यजुर्वेदसंहिताका सोलहवाँ अध्याय 'रुद्राध्याय' कहलाता है। इस अध्यायमें 'महारुद्ररूप' शिवकी उपासनाका प्रतिपादन किया गया है। रुद्राध्यायके प्रत्येक मन्त्रका अनुष्ठान श्रीशङ्कराचार्यने अपने 'रुद्रभाष्य' नामक ग्रन्थमें लिखा है। उसमें 'रुद्र' शब्दका महत्त्व तथा उसकी रहस्यात्मक व्याख्या विस्तृतरूपसे लिखी गयी है।

१-'रुद्र' शब्दका अर्थ महान् और प्रशस्य है।

२-इसका दूसरा अर्थ भयङ्कर है। जैसे—

नम उग्राय च भीमाय च ।

(रुद्राध्याय मन्त्र ४०)

यहाँ 'उग्र' का अर्थ श्रेष्ठ है, क्योंकि रुद्रभाष्यमें लिखा है—

उग्रः श्रेष्ठः, उत्पूर्वाद् गमेरुच्छतीत्यसिञ्जर्थे
'ऋज्जन्द्वाग्र०' इति उणादिसूत्रेण 'रन्' प्रत्ययः । अत एव

‘उग्रोऽस्युग्रोऽहं सजातेषु भूयासम्’ इति मन्त्रे ज्ञातिश्रेष्ठ्यप्रशंसाविषये स्वस्मिन् ‘उग्र’शब्दः प्रयुक्तः । सर्वश्रेष्ठस्वरूपं विश्वाधिकत्वं सिद्धयति ।

भीमो भयङ्करः ‘भीषाऽस्माद्वातः पवते’ इति श्रुतेः । तथा च महानुभावानिन्द्राग्न्यादीन् प्रत्यपि भयङ्करत्वेन तन्त्रियन्तुर्भगवतः सर्वोत्तमत्वमिति भाव इत्यादिः ।

रुद्र भयङ्कर हैं परन्तु अत्यन्त कृपालु और भोले हैं । नाभानेदिष्टके यज्ञमें रुद्र कृष्ण-वसन परिधान करके आये । उनके हाथमें खड्ग था, और यज्ञवेदीपर आकर घोर गर्जन किया । परन्तु रुद्रका वह रूप संहारक न था । उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक नाभानेदिष्टको अखिल ऐश्वर्य प्रदान कर दिया । यह रुद्रकी परम कृपालुता और भोलापन है । (ऋग्वेद मण्डल १० । १०)

३-पाश्चात्य पण्डित रुद्र-शब्दका निम्नलिखित अर्थ करते हैं—रुद्र=विद्युत्का देवता (मैकडॉनल)

नमो विद्युत्याय । (रुद्राध्याय मं० ३९)

नमस्ते अस्तु विद्युते । (यजु० ३६ । २१)

४-श्राडर (Shraeder) साहब ‘रुद्र’ शब्दका अर्थ प्रेतगणका नेता मानते हैं, परन्तु यह अर्थ समीचीन नहीं । इसमें निम्नलिखित प्रमाण है—

प्रेत प्रकर्षेण गच्छत । सेनानायक इन्द्ररूप रुद्रः ।

(यजु० १७ । ४६)

‘प्र’ उपसर्गपूर्वक गत्यर्थ ‘इण्’ धातुके भूतकृदन्तरूप ‘इत’ शब्दसे ‘प्रेत’ शब्द निष्पन्न होता है । इसप्रकार इहलोकसे गया हुआ प्राणी ‘प्रेत’ कहलाता है । इस प्राणीका नियमनकर्ता यम है और यमदेवका अधिपति रुद्र है ।

नमो याम्याय पापिनां नरकार्तिदाता रुद्रः ।

(यजु० १६ । ३३)

‘रुद्र’ शब्द ‘द्रापि’ अर्थमें भी आता है । (यजु० १६ । ४७)

‘द्रा’ शब्दः कुत्सितवाची, कुत्सितां गतिमापयतीति द्रापिः । ‘द्रा कुत्सायां गतौ च’, द्रापयतीति द्रापिः, पाप-कारिणः कुत्सितां गतिं नयतीत्यर्थः । (शां० भाष्य) ।

अर्थात् पापियोंकी दुर्गति करनेवाले और नरक देने-वाले रुद्र हैं ।

श्रीभगवान् गीतामें अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजकमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥

(१६ । १९)

‘संसारमें अशुभ आचरणवाले क्रूर एवं द्वेषी नराधमोंको मैं बार-बार आसुरी योनियोंमें डालता हूँ ।’

५-हिलब्रॉ साहब ‘रुद्र’ शब्दका अभिप्राय उष्ण कटिवन्धकी गर्मी बतलाते हैं । यथा—

आतप्याय च नमः । (यजु० १६ । ३८)

‘आतप, धूपस्वरूप रुद्रको नमस्कार ।’

सूर्याय नमः । (यजु० १६ । ४५)

‘महाप्रलयकी अग्निमें विराजमान रुद्रको नमस्कार ।’

नमस्ताम्राय चारुणाय च नमः । (यजु० १६ । ३९)

यह स्तुति सूर्यरूप रुद्रकी है । गीताके—

तपाम्यहम् (९ । १९)

अर्थात् आदित्यरूपसे मैं तपता हूँ, इस वाक्यके अनुसार भी यही अभिप्राय झलकता है ।

६-विण्टरनीज (Winternitz) साहब कहते हैं कि रुद्र डाकिनी शास्त्रके देवता हैं । परन्तु भूत-प्रेत-पिशाचादिके मलिन मन्त्रोंके देवता रुद्र नहीं हैं । ‘मूलाधार’ चक्रमें ‘कुण्डलिनी’ ‘सुषुम्णा’को वेष्टित किये हुए है और मूलाधारकी अधिष्ठात्री शक्तिका नाम ‘डाकिनी’ शक्ति है, इस शक्तिका स्वामी महेश्वर है । इस चक्रमें ध्यान करनेसे योगिजन संसारसे मुक्त हो जाते हैं, अतएव योगशास्त्रके अधिष्ठाता भगवान् शङ्कर हैं ।

७-पिशल और ग्रासमैन साहब ‘रुद्र’ शब्दका अर्थ प्रकाश बतलाते हैं । ‘असावादित्यो ब्रह्म’ अर्थात् यह आदित्य, सूर्य ब्रह्म है; सूर्यरूप रुद्रकी उपासनासे उपासकका कल्याण होता है तथा पुरुषार्थकी सिद्धि होती है ।

उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते । अतोऽनायासेनैवाखिलपुरुषार्थ-प्रदः परमेश्वर एव उपास्यः । (शां० भाष्य)

सर्वेभ्योऽन्तःस्थानेभ्यो ध्येयः प्रदीपवत्प्रकाशयतीति प्रकाशः । (अथर्वशिखोपनिषद्)

अर्थात् सबके हृदयमें ध्यान करनेयोग्य होनेसे रुद्र प्रकाश (ज्योतिः) स्वरूप हैं । यथा—

ज्योतिषां रविरंशुमान् ।

(गी० १०।२१)

८-निरुक्तकार यास्काचार्य 'रुद्र' शब्दसे वर्षा और पवनका देवता, यह अर्थ लेते हैं।

नमो वर्षाय (यजु० ११।३९)

वर्षारूप रुद्रको नमस्कार।

...अहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च (गीता ९।१९)
मैं ही वृष्टिको रोकता हूँ और मैं ही मेघरूपसे वृष्टि करता हूँ।

नमो वास्याय रेण्याय च ।

प्रलयकालके पवन और वर्षाके देवता रुद्र हैं।

मरीचिर्मरुतामस्मि, पवनः पवतामस्मि—

(गीता १०।२१, २१)

९-सायणाचार्य कहते हैं कि 'रुद्र' शङ्करका नाम है और इसका अर्थ है रुलानेवाला। यथा—

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि (गीता १०।२३)

१०-कतमे रुद्रा इति द्रोमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशान्ते यदस्माच्छरीरान्मर्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति । (बृ० उ० ३।९।४)

विदग्ध शाकल्यका उत्तर देते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि पुरुषमें रहनेवाले दस प्राण और ग्यारहवाँ आत्मा है, मृत्युके समय इस शरीरका त्याग करते हुए वे दूसरोंको रुलाते हैं इसीसे इन्हें 'रुद्र' देवता कहते हैं।

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ।

(बृ० उ० ४-४-६)

११-'रुदिर् अश्रुविमोचने' धातुसे 'णिच्' प्रत्यय करनेके बाद 'रोदणिर्लुक्च' इस उणादि सूत्रके अनुसार रुक् प्रत्ययका आगम और णिच्का लोप हो जानेसे 'रुद्र' शब्द सिद्ध होता है। 'यः रोदयति अन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः'। अर्थात् अन्याय (पापकर्म) करनेवालोंको रुलानेवाला रुद्र है। यथा—

आखिदते प्रखिदते च नमः (यजु० १६।४६)

आ समन्तात् खिद्यते दैन्यं करोति अभक्तानाम् ।
प्रकर्षेण खेदयति पापिनः ।

निन्दकों और नास्तिकोंको सदा दुःख देनेवाला (त्रिविध तापोंका प्रेरक) एवं पापियोंको अत्यन्त दुःख देनेवाला (ताड़ना करनेवाला) रुद्र है।

यथा—

दण्डो दमयतामस्मि (गीता १०।३८)

दमन करनेवालोंमें मैं दण्ड हूँ।

योऽभियातो निलयते स्वां रुद्र निचिकीर्षति ।

(अथर्ववेद ११।२।९३)

वेदकी आज्ञा भङ्ग करनेवालोंको रुद्र (भगवान् शङ्कर) दण्ड देते हैं।

१२-सायणाचार्य रुद्रके दो स्वरूपोंका वर्णन करते हैं—
एक शान्त और दूसरा घोर। यथा—

द्वे हि रुद्रस्य तनू तथा चोपरिष्ठादाम्नायते । रुद्रो वा
एष यदग्निस्तस्यैते तनुवौ घोराऽन्या शिवाऽन्येति ।

उनमें घोररूप अग्नि है और शान्तरूप शिवजी हैं।

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरभ्यः सर्वेभ्यः
सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

'सत्त्वगुणयुक्त होनेसे अघोर (शान्त), राजस होनेसे घोर और तामस होनेसे घोरतर स्वरूप धारण करनेवाले तथा प्रलयमें जगत्का संहार करनेवाले रुद्रको नमस्कार है।'

१३-भट्टभास्कर इस शान्तरूपके भी दो भेद बतलाते हैं—

शान्ता तनूर्द्विविधा-सायुधा निरायुधा च । तत्र
प्रथमानन्तरेण मन्त्रेण प्रतिपादिता, इतरा तनुरनेन
प्रतिपाद्यते ।

अर्थात् शान्तरूप दो प्रकारका है—सायुध और निरायुध।
रुद्राध्यायमें इन दोनों प्रकारके स्वरूपोंकी स्तुति की गयी है।
इन्हें 'निर्गुण' और 'सगुण' नामसे भी पुकारते हैं। यह स्वरूप
व्यम्बकरूप है। व्यम्बक-शब्दका विस्तृत विवेचन विस्तार-
भयसे यहाँ नहीं किया जाता।

१४-तापत्रयात्मकं संसारदुःखं हन्, दुःखहेतुर्वा
हन् । रुद्रं द्रावयतीति रुद्रः ।

'आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन
तीन प्रकारके सांसारिक दुःखोंका जो नाश करता है वह
रुद्र है।' तीनों दुःखोंके निवारणके लिये भगवान् शङ्करने
त्रिशूल धारण किया है—

त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिम्

'भगवान् शङ्कर तीनों शूलोंके निर्मूल करनेवाले हैं।'

१५-रुद्रं दुःखं दुःखहेतुर्वा द्रावयत्येष नः प्रभुः ।

रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम् ॥

‘दुःख अथवा दुःखके कारणको ‘रुद्र’ कहते हैं । उस रुद्रको भगवान् शिव दूर करते हैं इसीलिये (संसारके) आदिकारण भगवान् शङ्करको ‘रुद्र’ कहते हैं ।’

***अध्याय च प्रथमाय च नमः (यजु० १६।३०)

तेन पापापहानिः स्याज्ज्ञात्वा देवं सदाशिवम् ।

(जावाल्युपनिषद्)

सदाशिवको जाननेसे पापका नाश होता है तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है ।

१६-अशुभं द्रावयन् रुद्रो यज्जहार पुनर्भवम् ।

ततः स्मृताभिधो रुद्रशब्देनात्राभिधीयते ॥

‘(जीवन-कालमें प्राणीके) सब अशुभों (अनिष्टों) को दूर करते हैं और (शरीर-परित्याग करनेपर उसे) सुक्ति प्रदान करते हैं, इसी कारण भगवान् शिवका नाम ‘रुद्र’ है ।’

ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति । (श्वेता० ४।१४)

कल्याणरूप शङ्करको जाननेवाले अत्यन्त शान्ति अर्थात् मोक्षको प्राप्त करते हैं । गीतामें श्रीभगवान्ने कहा है—

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं

यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः ।

(१५।४)

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(१८।६६)

‘मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त करूँगा, सोच न करो ।’

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

(यजु० १६।४१)

कल्याणस्वरूप, संसारके लिये सुखस्वरूप, लौकिक सुख देनेवाले, मोक्ष प्रदान करनेवाले, परम कल्याणरूप और भक्तोंके अत्यन्त कल्याणकारक तथा उन्हें निष्पाप बनानेवाले रुद्रको नमस्कार हो, नमस्कार हो ! इस मन्त्रमें भगवान् शङ्करका परम कल्याणमय मङ्गलस्वरूप प्रतिपादन किया गया है, इस मन्त्रकी उपासनासे अविश्रुत प्रेमकी प्राप्ति होती है ।

१७-रुद्रा वेदरूपया धर्मादीन् बोधयति वा रुद्रः ।

‘वेदकी ध्वनिद्वारा धर्मादिकोंका बोध करानेवाले रुद्र हैं ।’

श्लोक्याय नमः (यजु० १६।३३)

इलोका वैदिकमन्त्रा यशो वा तत्र भवः ।

अर्थात् वैदिक मन्त्ररूपी यशमें होनेवाले (यशके विषय) रुद्र हैं ।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥

(गीता १५।१५)

सब वेदोंद्वारा जानने योग्य मैं ही हूँ । धर्मादिका बोध करानेके कारण रुद्र आचार्यस्वरूप हैं । यथा—

इंशानः सर्वविद्यानाम् (अथर्ववेद नारायणोपनिषद्)

वे वेद-शास्त्रादि सब विद्याओंके नियामक हैं ।

वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च । (गीता ९।१७)

१८-रुद्रा प्रणवरूपया स्वात्मानं प्रापयतीति वा रुद्रः ।

प्रणव अर्थात् ॐकारके कीर्तनके द्वारा जीवको अपने समीप पहुँचानेवाले रुद्र हैं ।

ओमिति ब्रह्म (तै० ९।८)

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

(गी० ८।१३)

ॐकारका उच्चारण करता हुआ तथा मुझ परमात्माका स्मरण करता हुआ जो पुरुष देहको त्यागकर जाता है वह परम गतिको प्राप्त होता है ।

श्रीरुद्रं प्रणवञ्चैव नित्यमावर्तयेत्यतिः ।

(विश्वेश्वरमृति)

तस्योङ्कारः स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदति ।

(याज्ञवल्क्यसंहिता)

ॐकार नामसे स्मरण करनेपर भगवान् प्रसन्न होते हैं । महर्षि पतञ्जलि भगवान् भी कहते हैं—

तस्य वाचकः प्रणवः (योगदर्शन १।२७)

प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः ।

शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवो हि परः स्मृतः ॥

(शिवपुराण वा० सं० अ० ३।७)

परमकल्याणरूप परमात्माका वाचक ॐकार है । यह ॐकार ‘शिव’, ‘रुद्र’ इत्यादि सारे नामोंसे श्रेष्ठ है । शिव-लिङ्ग

ॐकारस्वरूप है, और ॐकार-सदृश आकारमें ही लिङ्गा-
र्चन होता है ।

नमस्ताराय (यजु० १६ । ४०)

तारयति संसारमिति तारः । तारः प्रणवः तद्रूपाय
नमः । संसारसागरादुत्तारकं ब्रह्म । (शां० भाष्य)

‘संसारसे तारनेवाले ॐकाररूप रुद्रको नमस्कार हो ।’
यथा—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरान् ।

(गीता १२ । ७)

हे पार्थ ! मैं उनका शीघ्र ही मृत्युरूप संसारसागरसे
उद्धार करता हूँ ।

स ॐकारस्तार इति प्रस्तुत्य स एको रुद्रः स ईशानः ।

(अथर्वशिरउपनिषद्)

१९—रोधिका च बन्धिका शक्तीरुत् । तस्या द्वावयिता
भक्तेभ्य इति वा विग्रहः ।

‘रोधिका’ और ‘बन्धिका’ दो प्रकारकी शक्तियाँ हैं ।
रोधिका मोक्ष-मार्गमें आवरण डालती है जिसके कारण
मोक्ष-मार्ग नहीं दीर्घ पड़ता । दूसरी बन्धिका-शक्ति
मोक्षमें विक्षेप डालती है जिसके कारण मोक्ष-प्राप्ति दुष्कर
हो जाती है । भक्तोंसे इन दोनों प्रकारकी शक्तियोंको दूर
हटानेवाले शङ्कर ‘रुद्र’ हैं । इन शक्तियोंके निरोध करनेके
लिये ‘ईश्वरप्रणिधानाद्वा’ (योगदर्शन १ । २३) इस सूत्रका
मनन तथा ईश्वरकी शरण ग्रहण करनी चाहिये । ‘क्लेशोऽधि-
कतरः’ यह गीता (१२ । ५) का वाक्य है और अविद्यादि
क्लेश मोक्ष-प्राप्तिमें बाधक हैं । इन अविद्यादि क्लेशोंका नाश
ईश्वर करते हैं, क्योंकि वे क्लेश-कर्मादिसे रहित और जीवोंका
उद्धार करनेमें समर्थ हैं । (देखिये योगदर्शन १ । २४)
इसीलिये ईश्वर-प्रणिधान करना चाहिये ।

२०—रुत् (शब्दं वेदात्मानं) कल्पादौ ब्रह्मणे
ददातीति रुद्रः ।

सृष्टिके आदिमें ब्रह्माको वेदरूपी शब्द(का उपदेश) देने-
वाले भगवान् शङ्कर रुद्र हैं । यथा—

श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमः । (रुद्रा० मं० ३४)

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।

तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

(श्वे० उ० ६ । १८)

जो पहले (सृष्टिके प्रारम्भमें) ब्रह्माको उत्पन्न कर उन्हें
वेदोंको प्रदान करते हैं, उन रुद्रभगवान्की मैं मोक्ष-प्राप्तिके
लिये शरण ग्रहण करता हूँ ।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतं क्रवः सामानि जज्ञिरे ।

(यजु० ३१ । ७)

सर्वात्मस्वरूप पुरुषके मानसिक यज्ञसे वेद उत्पन्न हुए ।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।

(यजु० २६ । २)

संसारमें मुक्तिसुखको देनेवाली ऋग्वेदादि वाणीका
उपदेश करूँ ।

२१—रुत्या वाग्रूपया वाच्यं प्रापयतीति रुद्रः ।

वाग् (वाणी) के द्वारा (ॐकारके जपसे) प्राप्त होनेवाला
रुद्र है । यथा—‘शम्भोः प्रणवयाच्यस्य’ । ॐकार वाचक है
और शङ्कर वाच्य हैं । (लिङ्गपुराण)

तज्जपस्तदर्थभावनम् । (योगदर्शन १ । २८)

वह प्रणवके यथावत् उच्चारण और ध्यानसे प्राप्त होता
है । इसीलिये प्रणवके जपसे पुरुष-तत्त्वका साक्षात्कार
होता है और अन्तरायोंका नाश होता है । (योगदर्शन
१ । २९)

नमः शङ्गवे च (रुद्रा० मं० ४०)

शं सुखं गमयतीति शङ्गुः, सुखरूपा गावो वाचो
वेदरूपा यस्येति । (रुद्रभाष्य)

कल्याणरूप वेद ही जिनकी वाणी है ऐसे रुद्रदेवको
नमस्कार हो ।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशच्छावदामसि । (मन्त्र ४)

हे वेदयन्त्र अथवा कैलासमें शयन करनेवाले ! मंगलमय
स्तुतिरूप वाणीसे तुम्हें प्राप्त करनेकी हम प्रार्थना करते हैं ।

गिरिरूपा वेदा उच्यन्ते । गिरि प्रतिज्ञारूपायां
वाचि स्थित्वा लोकानां शं मोक्षसुखं तनोतीति । (रुद्रभाष्य)

वेदरूपी वाणीमें स्थित होकर भगवान् शङ्कर मोक्ष-सुख
प्रदान करते हैं ।

यज्ञेन वाचः पद्वीयमायन्तामन्वविन्दन्तृषिषु प्रविष्टाम् ।

(ऋग्वेद १० । ७१ । ३)

परमात्माकी वाणीरूप वेदको अधिकारी प्राज्ञ पुरुष सम्पादन करते हैं।

२२-रुद्रो रौतीति रोरुयमाणो द्रवति प्रविशति मर्यानिति रुद्रः।

‘जो घोर शब्द करता हुआ मनुष्योंमें प्रवेश करता है उसीका नाम ‘रुद्र’ है।’ यथा—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानः

(यजुः ३१।१९, प्रश्नोपनि० २।७)

सर्वात्मरूप प्रजापति अन्तर्हृदयमें स्थित हुआ प्रत्येक गर्भमें प्रविष्ट होता है।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।

(गीता १५।१४)

मैं वैश्वानर अग्नि होकर प्राणियोंके देहमें प्रविष्ट हूँ।

२३-रुक् तेजः वर्णव्यावृथा रुद्रस्तेजस्वीति। तेजस्वी रुद्रः।

रुद्र देदीप्यमान तेजस्वी हैं, यथा—

मार्तण्डकोटिप्रभमीश्वरं हरम्।

‘शङ्कर कोटि सूर्यके समान तेजस्वी हैं।’

सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः।

(श्वेता० ३।१२)

‘(वह परमात्मा) अतिशय निर्मल, आनन्दका निया-मक और ज्योतिःस्वरूप अविनाशी है।’

तेजस्तेजस्विनामहम् (गीता १०।३६)

‘मैं ही तेजस्वियोंमें तेज हूँ।’

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिर्ममसः परमुच्यते

(गीता १३।१७)

वह स्वयंप्रकाश और अज्ञानसे परे है।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।

यच्चन्द्रमसि यच्चाक्षौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(गीता १५।१२)

जो तेज आदित्यमें, चन्द्रमामें और अग्निसमें है उसे मेरा ही समझो।

असौ यस्तान्नो अरुण उत वभ्रुः सुमङ्गलः।

(रुद्रा० मं० ६)

इस मन्त्रमें प्रत्यक्ष सूर्यरूपमें रुद्रकी स्तुति की गयी है। सूर्यसदृश ज्योतिःस्वरूप होनेके कारण ही द्वादश आदित्यके समान द्वादश ज्योतिर्लिङ्गकी अर्चना प्रसिद्ध है।

२४-रुक् संसारदुःखं द्रावयतीति रुद्रः।

भगवान् रुद्र संसारके दुःखका नाश करनेवाले हैं।

ॐ इयम्बकं यजामहे०

यह मन्त्र संसार-बन्धनसे मुक्त होने तथा मोक्ष-प्राप्तिके लिये चिन्तामणिरूप है। यथा—

महादेवं विजानाति मुच्यते भवबन्धनात्।

(सुतसंहिता)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८।६२)

‘सब प्रकारसे उसीके शरणमें जाओ, उसीके अनुग्रहसे शाश्वत परम शान्तिके स्थानको प्राप्त होगे।’

ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।

‘शिवको जानकर परम शान्ति प्राप्त करता है।’

शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारमोचकः।

(शरभोपनिषद्)

‘संसारसे मुक्त करनेवाले भगवान् शंकर ही सदा ध्यान करनेयोग्य हैं।’

तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति।

(श्वे० ४।१५)

नमः प्रतारणाय चोत्तरणाय च नमः।

(रुद्रा० मं० ४२)

संसार-सागरके परम पार जीवनमुक्तिस्वरूपमें वर्तमान और अति मन्त्र जपादिके द्वारा पापसे तारनेवाले अथवा उत्कृष्ट तत्त्वज्ञानके द्वारा संसार-सागरसे पार करनेवाले भगवान् शंकरको नमस्कार हो।

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः (श्वेता० उ० ४।१६)

२५-रुतिं शब्दं राति ददातीति प्राणो रुद्रः।

प्राणदाता भगवान् शंकर रुद्र हैं। यथा—

प्राणो ब्रह्मं ति व्यजानात्। प्राणेन जातानि जीवन्ति।

(तै० उ० ३।३।१)

यो ह वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च
भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ (छा० ५।१।१)

‘रुद्ररूप प्राण ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है, उसको जाननेवाला
ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बनता है।’

इन्द्रस्त्वं प्राणतेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता ।

(प्रश्नो० २।९)

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम् ।

मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञाश्च विधेहि न हति ॥

(प्रश्नो० २।१३)

‘समस्त त्रिलोकी प्राणमें स्थित है और सब प्राणके वशमें
हैं। हे प्राण ! माताके समान पुत्ररूपमें हमारी रक्षा करो
और हमें सम्पत्ति तथा बुद्धि प्रदान करो।’

‘य एवं विद्वान् प्राणं वेद’ (प्रश्नो० ३।११) । इस-
प्रकारसे प्राणको जाननेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

प्राणा ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति । (बृह० ४।४।६)

२६-‘रुद्र द्रवति’—भक्तोंके दुःखका नाश करनेवाले
रुद्र हैं।

सत्त्वानां पतये नमः (रुद्रा० मं० २०)

शरणमें आये हुए प्राणियोंके पालक तथा भक्तवत्सल
भगवान् रुद्रको नमस्कार हो।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां निःस्थाभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गीता ९।२२)

हृद धारणासे उपासना करनेवाले भक्तजनका मैं योगक्षेम
वहन करता हूँ।

क्षेम्याय नमः । (रुद्रा० मं० ३३)

‘भक्तका क्षेम करनेवाले रुद्रको नमस्कार हो।’

२७-सृष्टिके प्रारम्भमें प्रजापति ब्रह्माजीने जन्म-मरण-
वाली प्रजा उत्पन्न की। इस प्रजाकी अवस्था देखकर भगवान्
रुद्र रुदन करने लगे और बोले कि हम ऐसी प्रजा नहीं
उत्पन्न करेंगे बल्कि सृष्टिसे लेकर प्रलयकालपर्यन्त जीने-
वाले गणोंको उत्पन्न कर तथा गुरुरूपसे स्थित रहकर हम
प्रजाका उद्धार करेंगे (सूतसंहिता)। इसलिये भगवान्
रुद्र सबके गुरु हैं।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्

(योगदर्शन १।२६)

कालसे परिच्छेद न होनेके कारण वह ब्रह्मादिक देवोंके

भी उपदेष्टा और गुरु हैं।

शिव एव ह्याचार्यरूपेणानुगृह्णाति (श्रुति)

‘परमात्मा शिवजी आचार्य और गुरुरूपेण अनुग्रहीत
करते हैं।’

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये ।

(निरालम्बोपनिषद्)

‘सच्चिदानन्दमूर्ति, सद्गुरु शिवजीको नमस्कार हो।’

जगदादिगुरुः शिवः ।

‘शंकर जगद्गुरु हैं।’

२८-आर्द्राके मेघको ‘रुद्र’ कहते हैं। यथा—

सोऽरोर्दात् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम् । तस्माद् बहिर्धि
रजतं न देयम् । (श्रुति)

निरुक्तकार यास्काचार्यका मत है कि आर्द्रा-नक्षत्रके मेघ-
का नाम ‘रुद्र’ है। यह मेघ चातुर्मासके प्रारम्भमें ‘रुदन् द्रवति’
गर्ज करके बरसता है। यही रुद्रके अश्रु हैं, जिनसे रजत
(चाँदी) उत्पन्न होता है। इसलिये यज्ञमें ऋत्विजोंको
दक्षिणामें रजत नहीं देना चाहिये बल्कि सुवर्ण दान करना
उचित है।

नमो वर्षाय । नमो मेध्याय । (रुद्रा० मं० ३८)

नमस्ते स्तनयिलवे । (यजु० ३६।२१)

गर्जनरूप रुद्रको नमस्कार हो।

२९-‘रुगतौ’—ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः । रवणं रुत्—
ज्ञानम्; भावे क्तिप्, तुगागमः । रुत् ज्ञानं राति ददातीति
रुद्रः । ज्ञानप्रदो मोहनिवारकः परमेश्वरः ।

भगवान् शङ्कर अधिकारी सुमुक्षुको ज्ञान प्रदान करके
अविद्यारूप अन्धकारसे मुक्त करते हैं। अर्थात् शिवकी विद्या-
शक्तिके प्रकाशसे अविद्यान्धकारका नाश होता है। भगवान्
गीतामें ज्ञानका वर्णन करते हुए अर्जुनसे कहते हैं कि तू
उस ज्ञानको प्राप्त कर, तुझे फिर इसप्रकार मोह न होगा और
उस ज्ञानके द्वारा तू सम्पूर्ण प्राणियोंका अपनी
अन्तरात्मामें और उसके पीछे मुझ सच्चिदानन्दधन परमात्मामें
साक्षात्कार करेगा । (गी० ४।३५)

पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः (गीता १५।१०)

ददामि बुद्धियोगम् (गीता १०।१०)

‘मैं उन्हें ज्ञान प्रदान करता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त करनेमें
समर्थ होते हैं। मैं उनके अज्ञानजन्य अन्धकारको ज्ञानरूपी
प्रकाशयुक्त दीपकसे नष्ट करता हूँ।’ (गीता १०।११)

मोहं मार्जय तामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूडामणौ
(वैराग्यशतक ५८)

मोहका त्याग करके चन्द्रचूड शङ्करकी उपासना करनी चाहिये जिससे मोह और शोकका नाश होता है ।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः (ईशावा० ७)

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् इष्टे परावरे ॥

(सु० २।२।८)

‘परमात्माका साक्षात्कार होनेसे देहादिक बन्धन, सर्व संशय तथा समस्त कर्मसमूह नष्ट हो जाते हैं ।’

३०-पापिनो जनान् दुःखभोगेन रोदयतीति रुद्रः ।
जगच्छासकः ।

‘रुद्रदेव पापीजनोंको उनके कर्मोंका फल देकर रुलाने-वाले हैं तथा जगत्के शासक हैं ।’ यथा—

अन्तःप्रविष्टः शास्ता जनानाम्

‘वे सबके हृदयमें स्थित होकर शासन करते हैं ।’

गोप्ता चैव जगच्छास्ता शक्तः सर्वो महेश्वरः ।

(कूर्मपुराण)

‘सर्वशक्तिमान् महेश्वर जगत्के पालन करनेवाले तथा शासन करनेवाले हैं ।’

३१-रोदनं रुद्र—दुःखं द्रावयतीति रुद्रः ।

‘भक्तके दुःखोंका नाश करनेवाले देव रुद्र हैं ।’ यथा—

कस्य ते रुद्र मृलयामकुर्वन्तो यो अस्ति भेषजो जलाघः

(ऋग्वेद २।७)

हे रुद्र ! आपका वरद सुखदायी हाथ कहाँ है, जो सबको सुखी करनेवाला है ! उससे मेरी रक्षा करो । हे पापोंके विनाशक ! मुझ अपराधीके अपराध क्षमा करो ।

‘विक्षिण्यः’—विविधं क्षिण्वन्ति हिंसन्ति पापम्

(रुद्रा० मन्त्र ४६)

‘रुद्र भक्तोंके विविध पापोंके दूर करनेवाले हैं ।’

३२-एको हि रुद्रो न द्वितीयस्य (अथर्वशि० उप० ५)

वह एक ही देव है जो रुद्र कहलाता है । ब्रह्मवेत्ताजन इस देवको मानते हैं । रुद्रदेव अपनी नियामक शक्तिसे इस

लोकको नियममें रखता है । वह देव सब लोकोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार करता है । (श्वेता० ३।२)

शिव एको ध्येयः शिवङ्करः । (अथर्वशिरउ०)

कल्याणकारी शिव सदा ध्यान करनेयोग्य हैं ।

एको देवः (श्वे० ६।११) एक एव महेश्वरः ।

एकमेवाद्वितीयम् (छान्दो० ६।२।१)

यो वै रुद्रः स भगवान्—(जैमिनीय ब्राह्मण)

जो रुद्र हैं वही भगवान् हैं । उपनिषदोंमें ऋषियोंने द्विविध ब्रह्मका परिचय दिया है । वह निर्गुण और सगुण, निरुपाधि और सोपाधि, निर्विशेष और सविशेष तथा निर्विकल्प और सविकल्प हैं । जो ईश्वरोंका ईश्वर है वह महेश्वर, महादेव, महारुद्र, ब्रह्मण्यदेव, एक और अद्वितीय है ।

यस्मान् महत ईशः शब्दध्वन्या चात्मशक्त्या च महत ईशते तस्मादुच्यते महेश्वरः । (शाण्डिल्योपनिषद्)

योगवाशिष्ठके निर्वाण-प्रकरणमें महर्षि वशिष्ठजीने श्री-रामचन्द्रजीके प्रति कहा है—

शिवं सर्वगतं शान्तं बोधात्मकमजं शुभम् ।

तदेकभावनं राम ।.....

‘हे राम ! सर्वगत, शान्त, अज, आनन्द और कल्याण-स्वरूप शिवको जानो । क्योंकि वही एक तत्त्व है जिसकी भावना करनी चाहिये ।’

३३-रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम्

(कौपीतकिब्राह्मण २५।१३)

सर्व देवोंमें अग्र, ज्येष्ठ, पुराणपुरुष और श्रेष्ठ एक रुद्र ही हैं । यथा—

अग्र्यं पुरुषं महान्तम् (श्वेता० ३।१९)

नमो वृद्धाय च वर्धयिसे च नमः (रुद्रा० मं० ३०)

नमोऽग्र्याय च (मन्त्र ३०)

नमो ज्येष्ठाय । (मं० ३२)

वयोविद्याश्रमादिभिरधिको ज्येष्ठः । वयसा वृद्धः । जगतामग्रं भवः । (शां० भाष्य)

वय और विद्या, आश्रम आदिमें बड़ा होनेसे ज्येष्ठ, प्रथम (आदिकारण) होनेसे वृद्ध है । यथा—

स एकः श्रेष्ठश्च सर्वशास्ता स एव वरिष्ठः ।

(शरभोपनिषद्)

रुद्र ही एक सर्वश्रेष्ठ और वरिष्ठ है ।

हिरण्यगर्भ जनयामास पूर्वम् (श्वे० ३।४)

३४-अग्निर्वै रुद्रः । (शतपथ ब्रा०)

अग्नि रुद्र है ।

योऽग्नौ रुद्रः (अथर्वशिरउपनिषद्)

सर्व एतान्यष्टौ अग्निरूपाणि (शतपथ १६-१-३-१८)

३५-भवशर्वाविमं ब्रूमो रुद्रः पशुपतिश्च यः ।

(अथर्ववेद ११।३।६।९)

पापका प्रणाश करनेके कारण शर्व 'रुद्र' कहलाता है ।

भवाय च शर्वाय च नमः । (यजु० १६।२८)

संसारपाशवद्धस्वेन प्राणिनां पशुत्वम् ।

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः ।

पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्तिनः ॥

तेषां पतित्वाद् देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः ।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् पशून् बद्ध्वा महेश्वरः ॥

पाशैरेतैः पतिर्देवः कार्यं कारयति स्वयम् ।

स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः ॥

(कूर्मपुराण)

संसारमोक्षस्थितिवन्धहेतुः । (श्वे० उ० ६।१६)

संसार-बन्धनमें बँधे होनेके कारण समस्त मनुष्यादि प्राणी पशु कहलाते हैं । ब्रह्मादि देवोंसे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त सृष्टि पाशसे बद्ध है, इसलिये पशुरूप है । उसका नियामक, स्वामी महेश्वर है । यह महेश्वर सब देवताओं तथा सब मनुष्योंको उपासनाके द्वारा उपासित होकर मुक्त करता है, कैवल्य (मोक्ष) देता है ।

यह (रुद्र) संसारके मोक्ष, स्थिति एवं बन्धका स्वरूप है, उसे जाननेसे समस्त बन्धनोंसे मुक्ति होती है—

ज्ञात्वा देवं मुख्यते सर्वपाशैः ।

(श्वे० उ० ५।१३, ६।१३)

और कैवल्यको प्राप्त होकर पुरुष ब्रह्मरूप हो जाता है । (श्वे० उ० ६।६)

३६-रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्ट इति श्रुतिः । तारयतीति तारः । संसारसागरात् उत्तारकम् । तारकं च तद्ब्रह्म इति तारकं ब्रह्म रुद्रः । (शां० भाष्य)

भगवान् रुद्र अपार संसारसागरसे तारनेवाले हैं ।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।

३७-रुद्रो ह्येवैतस्सर्वम् (बौधायनसूत्र)

'रुद्र सर्वस्वरूप हैं ।'

रुद्रो वै सर्वा देवताः (अथर्वशिखोपनिषद्)

'रुद्र सर्वदेवमय हैं ।'

शिव एव हरिः साक्षाद्धरिरेव शिवः स्मृतः ।

(बृ० ना० पु० १४।२)

शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः ।

सर्वदेवात्मको रुद्रः सर्वदेवाः शिवात्मकाः ।

(रुद्रहृदयोपनिषद्)

सर्वे देवाः संविशन्ति इति विष्णुः । सर्वाणि वृंहयतीति ब्रह्म । सर्वाल्लोकान् व्याप्नोति व्यापनाद् व्यापी महादेवः । (अथर्वशिखोपनिषद्)

सर्व देवोंका निवास-स्थान होनेसे अथवा सब देवोंमें स्थित होनेसे वह विष्णु है । सबसे बृहत् होनेसे वह ब्रह्म है और सब लोकोंमें व्यापक होनेसे महादेव कहा जाता है । भगवान् श्रीकृष्णने भी स्पष्ट कहा है—'रुद्राणां शङ्करश्चास्मि' । इस स्पष्टीकरणसे यह भी निश्चय हो जाता है कि शिव और विष्णु एक ही हैं ।

३८-यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च

विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।

हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं

स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

(श्वेता० ३।४)

विश्वके अधिपति महर्षि रुद्रने सब देवोंको उत्पन्न करके उन्हें धारण किया है, उन्होंने हिरण्यगर्भको पहले उत्पन्न किया है—वह हमें शुभ बुद्धिसे युक्त करें ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

(यजु० १३।४)

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।

(गीता ९।१७)

समग्रदेवानामसुरत्वमेकम् (ऋग्वेद म० ३)

समस्त देवोंका उद्भवस्थान वही एक है ।

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते । (श्वेता० ६।८)

न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः । (श्वेता० ६।९)

वे सबके कारण तथा कारणके भी कारण हैं, रुद्रदेवका

उत्पादक या पालक कोई दूसरा नहीं है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं

सं देवतानां परमं देवतम् ।

पति पतीनां परमं परस्तात्

विदाम देवं भुवनेशमीडयम् ॥

(श्वेता० ६।७)

इस श्रुतिमें एक बहुत ही उत्तम तत्त्व प्रतिपादित है। सब नियन्ताओंके महान् नियन्ता, सब देवताओंके परम दैवत, प्रजापति ब्रह्मा आदिके स्वामी, स्वयंप्रकाश-स्वरूप, सब लोकोंके नियन्ता एवं पूज्य, सबसे महान्,

महेश्वर, महारुद्र भगवान् शङ्करको मैं जानता हूँ।

इसप्रकार 'रुद्र' शब्दके अनेक अर्थ होते हैं। महारुद्रोपासना यजुर्वेदके रुद्राध्यायमें है। इसमें 'रुद्र' शब्दके सौ नामोंका उल्लेख है, इसीलिये इसे 'शतरुद्री' भी कहते हैं। इसमें समस्त वेदादि शास्त्रोंका निचोड़ आ जाता है। शतरुद्रीका माहात्म्य और इसकी उपासनाका उपदेश महर्षि याज्ञवल्क्यने राजा जनकको दिया है। इसकी उपासना सिद्धि प्रदान करनेवाली है। श्रीमहारुद्र शिवकी उपासना करते हुए पाठकगण आत्म-चिन्तनमें आनन्द लाभ करें—यह शुभ कामना करते हुए विश्राम किया जाता है। ॐ तत्सत् शिवोऽम् ।

शिव

(लेखक—श्रीटेकनारायणजी तर्कवागीश)



र्विकार, निराकार, सच्चिदानन्द, परब्रह्म परमात्माका वैदिक नाम शिव है। वेदमें शिवका वर्णन है, शिवकी उपासना वैदिक है, इसलिये अनादि है। वेद ईश्वरप्रोक्त है, इसलिये शिवकी उपासना साम्प्रदायिक नहीं है और न कोई मनुष्य इसका आचार्य है। वेद और विद्या दोनों शब्द 'विद्' धातुसे बने हैं जिसका अर्थ जानना या ज्ञान है। वेद सत् विद्याओंका भण्डार है, वेदके नहीं माननेवालेको महाराज मनु नास्तिक कहते हैं—'नास्तिको वेदनिन्दकः'। विद्या और वेद दोनों ईश्वरकी महिमा प्रकट करते हैं, वेदके बिना शिवका ज्ञान नहीं होता, शिव ज्ञान-स्वरूप या ज्ञानेश्वर हैं और ज्ञानियोंके एकमात्र उपास्य देव हैं। श्रुति कहती है—'ऋते ज्ञानाच्च मुक्तिः' अर्थात् बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती।

शुकदेवजी कहते हैं—

तीर्थे तीर्थे निर्मलं ब्रह्मवृन्दं

वृन्दे वृन्दे तत्त्वचिन्ताऽनुवादः ।

वादे वादे जायते तत्त्वबोधो

बोधे बोधे भासते चन्द्रचूडः ॥

अर्थात् तीर्थोंमें निर्मल ज्ञानियोंके झुण्ड रहते हैं, और झुण्डोंमें तत्त्व-विषयक वाद हुआ करता है; उन वादोंसे

तत्त्वज्ञान होता है और तत्त्वज्ञानसे 'चन्द्रचूड' अर्थात् चन्द्रशेखर शिव भासते हैं। इससे सिद्ध होता है कि मोक्षार्थियोंके उपास्य शिव हैं। श्रुति भी कहती है—'ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति' अर्थात् शिवके ज्ञानसे अत्यन्त शान्ति-मोक्षकी प्राप्ति होती है।

शिव प्रणवस्वरूप हैं, प्रणवके सिरपर चन्द्रविन्दु होनेके कारण प्रणव चन्द्रशेखर है, इसीसे शिवको 'चन्द्रशेखर' कहते हैं। प्रणव वेदका बीज-मन्त्र है। मनु कहते हैं कि ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदसे 'अ' 'उ' 'म' ये तीन अक्षर लेकर प्रणव बना है; इसीसे वैदिक धर्मावलम्बियोंके लिये प्रणवस्वरूप चन्द्रशेखर शिव महामान्य, परम पवित्र और परमाराध्य हैं। श्रुति-स्मृतिके अनुसार यह (प्रणव) परमात्माका अनुपम नाम है। मनु इसके विषयमें कहते हैं—'एकाक्षरं परं ब्रह्म', अर्थात् एक अक्षर यानी प्रणव (ॐ) परम ब्रह्म है।

वेद शैवोंका सर्वोपरि प्रधान ग्रन्थ है जिससे शिवकी उपासना चली है। यजुर्वेदसंहिताके सोलहवें अध्यायमें शिवकी उपासनाके ६६ मन्त्र हैं; छासठों मन्त्रोंके देवता रुद्र हैं, उन सब मन्त्रोंको पूरी व्याख्यासहित लिखनेसे लेख बहुत बड़ा हो जायगा, इसलिये उनमेंसे कुछ मन्त्र अन्वयसहित और कुछ संक्षिप्त व्याख्यासहित लिखे जाते हैं।

नमस्ते रुद्र मन्यव उत्तम इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥

अन्वयः—(हे) रुद्र ते मन्यवे नमः, ते इषवे नमः, ते बाहुभ्यां नमः ॥

अध्यवोचद्विचिता प्रथमो दैव्यो भिषक् । अहींश्च सर्वाङ्गभयन्सर्वाश्च यानुधान्योऽधराचीः परासुव ॥ ५ ॥

‘हे रुद्र ! धर्मोपदेश करनेवाले श्रेष्ठ वृक्ता ! (अर्थात् वेदवक्ता !) और आदि दिव्यचिकित्सक ! (वेदमें आयुर्वेद-के प्रकट करनेवाले वैद्यनाथ) समस्त रोगोंको नाश करके और नीच गति प्राप्त करानेवाले राक्षसों अर्थात् अधार्मिक वासनाओंको नष्टकर हमलोगोंकी रक्षा करो ।’

शरीर और आत्मा दोनोंके संयोगसे मनुष्यकी स्थिति है, इसलिये दोनोंके कल्याणार्थ अर्थात् आत्मिक उन्नतिके लिये ‘धर्मोपदेशक’ कहकर और शारीरिक उन्नतिके लिये ‘दिव्य चिकित्सक’ कहकर शिवसे प्रार्थना करते हैं ।

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।

अथो ये अस्य सत्त्वानोऽहन्तेभ्योऽकरञ्जमः ॥ ८ ॥

‘नीलकण्ठको नमस्कार, असंख्य आँखवालेको नमस्कार, बड़े पराक्रमीको नमस्कार, सद्गुण और बलके अधीश्वरको नमस्कार और कर-रहितको नमस्कार ।’

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशाञ्च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः । शष्पि-ज्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोप-वीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥ १७ ॥

अन्वयः—हिरण्यबाहवे नमः, सेनान्ये नमः, दिशां पतये नमः, वृक्षेभ्यो नमः हरिकेशेभ्यो नमः पशूनां पतये नमः, शष्पिज्जराय नमः, त्विषीमते नमः, पथीनां पतये नमः, हरिकेशाय नमः उपवीतिने (सूत्रधारीको) नमः, पुष्टानां पतये नमः ॥

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्व-पतिभ्यश्च वो नमो नमः आव्याधिनीभ्यो विविद्धयन्तीभ्यश्च वो नमो नमः उगणाभ्यस्तु तृहतीभ्यश्च वो नमः ॥ २४ ॥

अन्वयः—सभाभ्यो नमः सभापतिभ्यो नमः अश्वेभ्यो नमः अश्वपतिभ्यो नमः आव्याधिनीभ्यो नमः विविद्धयन्ती-भ्यो नमः उगणाभ्यो नमः तृहतीभ्यो नमः ॥

१—यह विश्व-जगत् (ब्रह्माण्ड) सभामण्डप है, जिसका शामियाना आकाश, विछावन धरती और नक्षत्र रोशनी है । इसमें विराट् सभा लगी है ।

२—इस विराट् सभाके सभापति परब्रह्म परमात्मा शिव हैं जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्व-हितकारी, अलख, अगोचर, अज, अविनाशी, अचिन्त्य, समस्त विद्याओंके भण्डार, सच्चिदानन्द और अनन्त विश्वोंके नियन्ता हैं । यह सारी विराट् सभा उनके अधीन है ।

३—वेद सभापतिका भाषण है (जिसमें समस्त विद्या-ओंका बीज है), जिसमें मानव-जीवनके लिये विद्यानुकूल परमोपकारक कर्तव्य-कार्योंका वर्णन है और जो पक्षपात-हीन तथा सारे जगत्के लिये परमोपयोगी है ।

४—वैदिक ऋषियोंने सभापतिके भाषणको नोट (हृदय-पटपर) किया था अर्थात् भाषणके पृथक्-पृथक् अंशों (वेदकी ऋचाओं) को समाधिस्थ होकर धारण किया था जिनका वेदव्यासने उन लोगोंसे संग्रह करके समस्त भाषणका संकलन किया ।

५—सभाका मन्त्रपद प्रकृतिको प्राप्त है; सभाका सारा कार्य उसके अधीन है, कोई काम उसकी आज्ञा बिना नहीं होता । मन्त्रीकी योग्यता और कार्य-दक्षता अनुपम है और उसकी कार्य-कारिणी-शक्ति वर्णनातीत है । सभापतिने सभाका पूर्ण अधिकार मन्त्रीको दे रखा है, इसीसे वह सर्व-गुणसम्पन्ना और अदम्य शक्तिशालिनी है । सूर्य और धूप-में जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध सभापति और मन्त्रीमें है ।

६—शास्त्रकार ऋषिलोग उपदेशक हैं और शास्त्र सत्य उनके उपदेश (व्याख्यान) हैं ।

७—पञ्चमहाभूत (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) विराट् सभाकी कार्य-कारिणी समितिके सदस्य हैं और प्रकृति सभापति है । प्रकृतिकी आज्ञासे ये पाँचों महा-भूत विराट् सभाका सारा कार्य सदा किया करते हैं ।

८—सभाकी नियमावलीका नाम मानव-धर्म-शास्त्र है, यह नियमावली मन्त्रीके अनुकूल और सभापतिके भाषणके आशयके अनुसार महाराज मनुने बनायी है । इसमें सब श्रेणी-के मनुष्योंको जन्मसे मरणपर्यन्त क्या-क्या कार्य कब और कैसे करने चाहिये इसका वर्णन है, जिससे सभाका सदा शान्तिमय अधिवेशन होता रहे ।

९—ऋतु सब (वसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद्, हिम और शिशिर) स्वयंसेवक हैं । समयानुकूल आवश्यक कार्योंको करना तथा खाद्य और पेय पदार्थोंका आयोजन करना इनके अधीन है । कार्य-कारिणी समितिकी

सम्मतिसे अपने अधिनायक (Captain) के आज्ञानुकूल सब स्वयंसेवक सदा सभाका काम किया करते हैं ।

१०-सूर्य स्वयंसेवकोंके अधिनायक (Captain of the volunteers) हैं । वह स्वयंसेवकोंके साथ सभाकी शान्तिरक्षा और स्वास्थ्यरक्षाका काम करते हैं और सब स्वयंसेवक सदा सूर्यके अधीन काम करते हैं ।

११-पृथिवी भण्डारी है, खाद्य द्रव्यादि सभाकी सारी आवश्यक सामग्री इसके अधिकारमें रहती है; यह समया-नुकूल सभामें समागत प्राणियोंके खान-पान आदि आवश्यक वस्तुओंका आयोजन किया करती है ।

१२-मेघ पनभरा है-समस्त जलपात्रोंको पानीसे भरना इसका काम है ।

१३-जलाशय सब जलपात्र हैं, जिनमें सभाके लिये जल रहता है ।

१४-अण्डज, पिण्डज, स्थावर और जङ्गम—ये सारे सभागत, विराट् सभाके सभासद हैं—इन्हींके कल्याणार्थ सभाकी सारी तैयारी है ।

१५-सद्विद्वान् लोग सभाके मुख्य सदस्य हैं—ये लोग समय-समयपर सभापति, मन्त्री, सभाके उद्देश्य और नियमके विषयमें लोगोंको ज्ञान कराया करते हैं ।

१६-नियमके विरुद्ध काम करनेसे सभासदोंको दण्ड होता है । सभापति त्रिशूलधारी हैं—आध्यात्मिक, आधि-भौतिक और आधिदैविक तीन प्रकारके शूल (दुःख) उनके हाथमें हैं अर्थात् उनके अधीन हैं; त्रिशूल (इन तीनों दुःखों) के द्वारा दण्ड होता है ।

१७-विराट् सभाके मुख्य कारण सभापति हैं और इस सभाका मुख्योद्देश्य भी केवल वही जानते हैं । इसका आभास उनके भाषणमें पाया जाता है, और यह आभास अध्यात्मविद्याद्वारा मनुष्य कुछ समझ सकता है ।

१८-सभाका अधिवेशन सदा ब्राह्मदिवसमें होता है और ब्राह्मरात्रिमें सभा विसर्जित रहती है ।

सभा-स्थापन करनेकी प्रथा पहले-पहल वेदसे चली; ऐसी अनुपम सभा और ऐसे अद्वितीय सभापतिको कौन नहीं प्रणाम करेगा ? सभाके सदस्योंकी सभ्य कहते हैं, और सभ्यके गुणको सभ्यता कहते हैं; संसारमें पहले-पहल वेदसे ही सभ्यताका प्रचार हुआ है ।

नमो गणेश्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विद्वरूपेभ्यश्च वो नमो नमः ॥२१॥

अन्वयः—गणेश्यो नमः, गणपतिभ्यो नमः, व्रातेभ्यो नमः; व्रातपतिभ्यो नमः, गृत्सेभ्यो नमः, गृत्सपतिभ्यो नमः, विरूपेभ्यो नमः, विद्वरूपेभ्यो नमः ॥

इस मन्त्रमें शिवका नाम 'गणपति' भी है, विश्वरूप शिवको कोई पुत्र-कलत्र नहीं ।

नमः इवभ्यः इवपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥२८॥

अन्वयः—श्वभ्यो नमः, श्वपतिभ्यो नमः, भवाय नमः, रुद्राय नमः, शर्वाय नमः, पशुपतये नमः, नीलग्रीवाय नमः, शितिकण्ठाय नमः ॥

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्रयाय च प्रथमाय च ॥३०॥

अन्वयः—ह्रस्वाय नमः, वामनाय नमः, बृहते नमः, वर्षीयसे नमः, वृद्धाय नमः, सवृधे नमः, अग्रयाय नमः, प्रथमाय नमः ॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥४१॥

अन्वयः—शम्भवाय नमः, मयोभवाय नमः, शङ्कराय नमः, मयस्कराय नमः, शिवाय नमः, शिवतराय नमः ॥

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विद्वाहा भेषजी । शिवा स्तस्य भेषजी तथा नो मृड जीवसे ॥४९॥

'हे रुद्र ! तुम्हारी शक्ति सदा कल्याणकारिणी, रोग-हारिणी और पीड़ा दूर करनेवाली है; अतएव हे कल्याण-कारिणी शक्तिसे युक्त रोगहर्ता ! हमलोगोंपर कृपा करो जिससे हमलोग सुखसे जियें । ('शिया' का अर्थ शिवकी शक्ति है ।)

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः । तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥२६॥

नोट—गीतामें लिखा है—'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन निष्ठति' अर्थात् सब भूतों (पदार्थों) के हृदयमें ईश्वर स्थित है । ब्रह्माण्डके सारे पदार्थ महाभूतोंसे उत्पन्न होनेके कारण 'भूत' कहते हैं । इसलिये समस्त भूतोंका स्वामी होनेके कारण, वेद शिवको 'भूतानामधिपति' अर्थात् भूतनाथ कहता है । इसके सिवा और कोई भूत-प्रेत नहीं हैं ।

‘हे रुद्र ! आप भूतनाथ अर्थात् ब्रह्माण्डके समस्त पदार्थ (भूत) यानी प्राणी और अप्राणी (अण्डज, पिण्डज, स्थावर और जंगम ये सब भूत हैं) सबके स्वामी हैं, शिखा-सूत्र-रहित संन्यासी (परम त्यागी) और जटाधारी ब्रह्मचारी (व्योमकेश अर्थात् आकाश ही जिसकी जटा है) हैं; इसलिये प्रार्थना है कि हमलोगोंसे सहस्र योजन दूरपर उन रुद्रोंके धनुष खुल जायँ अर्थात् दुःख देनेवाले रुद्रांशयुक्त पदार्थ सब हमलोगोंसे दूर रहें !’

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेपां जम्भे दध्मः ॥६४॥

‘उन रुद्रोंको, जिनका निवास आकाशमें है और मेघकी झड़ीके समान जिनका बाण है, कर जोड़कर पूर्वकी ओर दस बार, पश्चिमकी ओर दस बार, उत्तरकी ओर दस बार, दक्षिणकी ओर दस बार और ऊपरकी ओर दस बार प्रणाम ! वे हमलोगोंकी रक्षा करें और घृणित तथा दुःखदायी दुष्टोंका संहार करें ।’

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेपां जम्भे दध्मः ॥६५॥

‘उन रुद्रोंको प्रणाम, जिनका निवास अन्तरिक्ष अर्थात् वायुमण्डलमें है और वायुप्रवाहके समान जिनका बाण है, पूर्वोक्त रीतिसे उनको प्रणाम ! वे हमलोगोंकी रक्षा करें और घृणित तथा दुःखदायी दुष्टोंका संहार करें ।’

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेपां जम्भे दध्मः ॥६६॥

‘उन रुद्रोंको प्रणाम, जिनका निवास पृथिवीमें है और अन्न अर्थात् खाद्य द्रव्य जिनका बाण है—पूर्वोक्त रीतिसे उनको प्रणाम ! वे हमलोगोंकी रक्षा करें और घृणित तथा दुःखदायी दुष्टोंका संहार करें ।’

वेद शैवोंका परम मान्य ग्रन्थ है क्योंकि वेद शैव अर्थात् ज्ञान-ग्रन्थ है, और गायत्री शैवोंका परमोपास्य मन्त्र है

क्योंकि इसका पहला अक्षर चन्द्रशेखर (प्रणव) है, जो वेदका बीजमन्त्र है । त्रिकालसन्ध्याकी उपासना त्र्यम्बककी पूजा है ।

जगन्मान्य आर्योंका परम पूज्य पञ्चमन्दिरा

पञ्चदेवताके पाँच सम्मिलित मन्दिरोंको ‘पञ्चमन्दिरा’ कहते हैं । चार बाहरके मन्दिरोंमें चार देवता और पाँचवें भीतरके मन्दिरमें उन चारोंके अधीश्वर महादेव रहते हैं ।

प्रत्येक मनुष्यको पञ्चदेवताकी उपासनाके लिये परमात्माने जो पञ्चमन्दिरा दिया है, वह मनुष्यके सिरमें है । वह अकृत्रिम पञ्चमन्दिरा सदा मनुष्यके साथ रहता है । सिरमें पाँच देवताओंके पाँच मन्दिर या स्थान हैं—एक देवता (अग्नि) का मन्दिर आँख है, दूसरे देवता (वायु) का मन्दिर कान है, तीसरे देवता (वाग्देवता) का मन्दिर मुख है, चौथे देवता (पृथिवी) का मन्दिर नाक है और पाँचवें देवता जो इन चारोंके अधीश्वर होनेके कारण महान् देवता (महादेव) कहलाते हैं, उनका मन्दिर कपाल (Brain) है । कपालस्थ देवताको ‘कपाली’ कहते हैं और महादेव और कपाली शिवके नाम हैं । शिव ज्ञानेश्वर हैं और कपाल ज्ञानका स्थान है (Brain is the seat of wisdom) अर्थात् दिमागमें अकृ रहती है ।

परमात्माने समस्त प्राणियोंमें मनुष्यको श्रेष्ठ बनाया है और मनुष्यकी श्रेष्ठता केवल ज्ञानपर निर्भर है जो कपालका विशेष गुण है ।

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च

समानमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।

ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषो

ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥

‘आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये चार बातें मनुष्य और पशुमें बराबर होती हैं; मनुष्यमें ज्ञान विशेष है और ज्ञान न होनेसे मनुष्य और पशु दोनों समान हैं ।’

आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियाँ कपालके अधीन हैं, कपालमें किसी प्रकारका विकार होनेसे सारी ज्ञानेन्द्रियाँ शक्तिहीन और निष्फल हो जाती हैं; इसलिये कपालकी सेवा-पूजा परम कर्तव्य है ।

कपाल असली (प्राकृतिक) शिवालय है, जिसमें कपाली या कपालेश्वर शिवका आभास होता है जिससे

ज्ञानका विकास होता है। शिव ज्ञानस्वरूप हैं और कपाल ज्ञानका स्थान है, इसलिये शिव कपाली हैं। जैसे नेपालके रहनेवालेको नेपाली और बङ्गालके रहनेवालेको बङ्गाली कहते हैं वैसे ही कपाल अर्थात् जगत्-कपालमें रहनेवालेको कपाली कहते हैं, जो जगत्के समस्त कपालोंका कपालेश्वर है। इसप्रकार शिव कपाली हैं।

असली पञ्चमन्दिरा शिर है। लोग जो पञ्चमन्दिरा बनाते हैं वह शिरःस्थ पञ्चमन्दिराकी नकल है और कपाल असली शिवालय है। शिवकी असली पूजा (मानसिक पूजा) और शिवका ध्यान इसीमें होता है। सन्ध्या-पूजामें गायत्रीका सर्वोत्तम जप (मानसिक जप) इसी शिवालयमें होता है। कृत्रिम शिवालय सब इसीके अनुकरण हैं। इसका महत्त्व अकथनीय है।

प्राचीनकालमें आर्यलोग असली पञ्चमन्दिराकी सेवा-पूजाका महत्त्व और उसकी विधि पूर्णरूपसे जानते थे और इसी पञ्चमन्दिराकी सेवाकी बदौलत वे लोग जगत्-पूज्य थे और सर्वत्र राज करते थे। इसकी सेवा-पूजा उठ जानेसे सारा देश विपन्न हो गया और आज हिन्दुओंकी घोर दुर्दशा उपस्थित है। ज्ञानहीन होनेके कारण पिता-पुत्रमें, भाई-भाईमें, माँ-बेटेमें और पति-पत्नीमें सर्वनाशक विरोध फैल रहा है। वेद (विद्या) विरोधी नाना प्रकारके सम्प्रदाय चल रहे हैं, देश रसातलको जा रहा है और घोर अनर्थ हो रहा है।

जिस पञ्चमन्दिराके प्रसादसे भारत अनुपम विद्या-बुद्धि प्राप्तकर एक दिन सारे जगत्का परम पूज्य गुरु था, आज ज्ञान (वेद) विरोधी कार्योंके पचड़ेमें पड़कर दूसरोंका गुलाम हो रहा है। कपालकी यथार्थ सेवा नहीं होनेके कारण आँख, कान, मुख आदिका रोग फैल रहा है और मस्तिष्ककी निर्बलता और धारणशक्तिका हास हो रहा है; भारतके अष्टाकाशमें घोर अन्धकार छा रहा है।

कपालके विशेष गुणका नाम बुद्धि (ज्ञान) है। वैदिक उपामनाका मुख्य उद्देश्य निर्मल बुद्धि (ज्ञान) का प्राप्त करना है। आर्योंके महामन्त्र या त्रिजातियोंके परमोपास्य गायत्रीका निचोड़—‘धियो यो नः प्रचोदयात्’—प्रत्यक्षरूपसे सिद्ध करता है कि बुद्धिसे बढ़कर संसारमें कुछ नहीं है।

योगकी समाधि कपालके द्वारा होती है, कपालके बलसे सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है, कपालहीके बलसे वैदिक ऋषियोंको वेदका ज्ञान हुआ था, सारी विद्या

(परा और अपरा) कपालहीके प्रतापसे प्राप्त होती है। कपिल, कणाद, जैमिनि, पतञ्जलि, गौतम और व्यास ये सब कपालहीके प्रभावसे दर्शनाचार्य हुए। कपाल बड़े आदरकी वस्तु है। परमात्माने इसका स्थान सर्वोपरि बनाया है। मन कपालमें रहता है जिसके द्वारा मनुष्य गम्भीर विचार करता है। कपालमें मस्तिष्क रहता है और मस्तिष्कमें बुद्धि रहती है। जगतीतलपर जिस किसीने कठिन-से-कठिन विद्या या परमात्माकी अगाध महिमाका जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया वह सब कपालहीके प्रतापसे; इसलिये कपाल परम सेव्य है।

प्राचीन कालमें शैवोंका बड़ा प्रभुत्व था—केवल भारत-वर्षहीमें नहीं वरं भारतवर्षके बाहर भी, जिसके प्रमाण अभीतक वर्तमान हैं। आर्य ऋषि पूर्वकालमें प्रायः एशियामें घूमा करते थे, इसलिये इसका नाम आर्य-देश हुआ और कालक्रमसे आर्यसे ‘आर्यिया’ और ‘एशिया’ हो गया जो आजतक प्रसिद्ध है। पुराने इतिहासवेत्ताओंने एशियाको Country of the Prophets लिखा है, जो आर्यदेश (ऋषियोंका देश) का अर्थ है। एशियाके सबसे बड़े देशका जिसको आजकल ‘साइबेरिया’ (Siberia) कहते हैं, प्राचीन नाम ‘शिववेरिया’ है; शैव ऋषियोंके कारण उसका नाम शिववेरिया पड़ा। ‘वेरिया’ शब्द स्थानवाचक है, जैसे पटनेके पास फूल-वेरिया और कर्णवेरिया और बङ्गालमें ब्राह्मणवेरिया आदि; उसीके पास कश्यपीय समुद्र कश्यपऋषिके नामसे आजतक ‘कश्यपियन समुद्र’ (Caspian Sea) कहलाता है। कश्यपीय समुद्रके पास ‘वाक्’ एक स्थान है, ‘राजा शिवप्रसाद’ सी० आई० ई० अपने ग्रन्थ ‘भूगोल हस्तमालक’में लिखते हैं कि ‘वाक्’ महाज्वालामुखी, हिन्दुओंका तीर्थस्थान है। वहाँ सफेद पत्थरका बहुत बड़ा अहाता है जिसके भीतर छोटी-छोटी बहुत-सी कोठरियाँ बनी हैं जिनमें योगी-यती अभीतक रहते हैं और जब उनमेंसे कोई मरता है तो उसको घीसे नहलाकर अग्निकी लाटसे जो दिन-रात सदा निकलती रहती है, जला देते हैं। अग्निकी जो लाट निकलती है उसकी रोशनी एक मीलतक पहुँचती है।

मङ्गोलिया शैवोंका बसाया हुआ है जिसका प्राचीन नाम मङ्गल-देश है। (यजुर्वेदके १६ वें अध्यायके छठे मन्त्रमें शिवका नाम ‘सुमङ्गल’ है और ‘शिव’का अर्थ भी मङ्गल है।)

प्राचीनकालमें आर्यलोग नौकापर पारस और अरबके दक्षिण समुद्रके किनारे-किनारे लोहितसागर (Red Sea) होकर पश्चिमके देशोंमें व्यापार करनेजाते थे। उस समय एक शैव ब्राह्मणने उन लोगोंके साथ जाकर अरबमें शैव-उपासनाका प्रचार किया था। देश-कालके अनुसार उसने एक छोटा-सा शिवालय भी वहाँ स्थापन किया था, जिसको आजकल वहाँवाले 'काबाशरीफ़' कहते हैं। उसके भीतर एक अण्डाकार प्रतिमा है जिसकी लम्बाई नौ इञ्च है। जो लोग हज करने जाते हैं वे लोग उस मन्दिरकी सात प्रदक्षिणा करते हैं। अरबी भाषामें शब्दोंके पहले 'अलिफ लाम' लगाकर बोलनेका कायदा है, जिससे ब्राह्मण शब्दका अरबी रूप अलब्राह्मण हुआ और प्रायः 'लाम'का उच्चारण नहीं होता जिससे उसका रूप 'अब्राह्मण' हो गया; बाइबिलमें उसका नाम 'अब्राहम' (Abraham) लिखा है। कुरानमें लिखा है कि हज़रत अब्राहीमने काबाशरीफ़ बनाया था।

चन्द्रविन्दु चन्द्रशेखरकी निशानी है, काबाके मानने-वाले अभीतक सिरपर (टोपीमें) चन्द्रविन्दु धारण करते हैं। लोहितसागरमें दो द्वीप हैं, एकका नाम रुद्रके नामसे 'रुद्रस' था जो आजकल 'रोड्स' (Rhodes) और दूसरेका नाम शिवके नामसे शिवपर्श था जो आजकल 'साइप्रस' (Cyprus) कहलाता है। शैव-आर्योंने वीरभद्रकी एक बहुत बड़ी प्रतिमा अष्टधातुकी इन द्वीपोंपर स्थापन की थी जिसका एक पाँव रोड्सपर और दूसरा पाँव साइप्रसपर था और उसके हाथमें त्रिशूल था। उसके दोनों पाँवोंके बीचसे जहाज जाता-आता था। वह आँधीमें समुद्रमें गिर गया, अब उसका उठानेवाला कोई नहीं है। त्रिशूल और अष्टधातुका उत्पत्ति-स्थान विचार करनेसे शैवोंका भारत है। पूर्वोक्त विषयोंका पूर्णरूपसे प्रभुत्व और महत्त्व प्रकट होता है।

शिव और शैवका विषय ऐसा गम्भीर है कि हजारों पृष्ठोंमें दृढ़ प्रमाणोंके साथ लिखा जा सकता है।

श्रीकण्ठीय शिवदर्शन

(लेखक—श्रीयुत एस० एस० सूर्यनारायणजी शास्त्री, रोडर, मद्रास-विश्वविद्यालय)



कण्ठ कहाँके निवासी और किस कालमें विद्यमान थे एवं कहाँ और किस कालमें उन्होंने ग्रन्थ-रचना की, इस सम्बन्धमें कोई बात निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं है। तथापि इतनी बात तो प्रायः निश्चित-सी ही है कि उनके जीवन-कालमें दक्षिण भारत-

में शैवों और वैष्णवोंके बीच झगड़ेका सूत्रपात हो चुका था। एक ओर तो यह कहा जाता है कि हरदत्तने श्रीकण्ठके 'शैवभाष्य' पर टीका लिखी और दूसरी ओर अप्पय्य दीक्षितका यह कहना है कि श्रीकण्ठ हरदत्तके परवर्ती थे। हरदत्त एक ब्राह्मण-बालक थे। तंजोर जिलेके कंसपुर नामक ग्राममें एक वैष्णव-घरानेमें उनका जन्म हुआ था। किन्तु वे बचपनसे ही शिवजीके अनन्य भक्त हो गये और एक जलते हुए लोहेकी तिपाईपर बैठकर शिवकी अन्य सारे देवताओंमें प्रधानता सिद्ध करने लगे। उन्होंने 'पञ्चरत्नमालिका' नामक अपने एक पाँच पद्योंके ग्रन्थमें इसी बातको सिद्ध किया है। उन्होंने चोलराज कुलोत्तुङ्गकी सभामें इन्हीं

युक्तियोंका आश्रय लेकर अपने सारे प्रतिपक्षियोंको यह स्वीकार करनेके लिये बाध्य किया कि शिवसे परे कोई देवता नहीं है और जब श्रीरामानुजके शिष्य कूरेशने इस बातको स्वीकार करनेसे इन्कार किया और इस अपराधमें राजाने उनकी आँखें निकलवा लीं उस समय इन्होंने 'कूरेश-विजय' नामक अपने ग्रन्थमें उन्हीं युक्तियोंका स्वयं क्रमशः खण्डन किया। हरदत्त श्रीकण्ठसे पहले हुए अथवा पीछे, इस सम्बन्धमें जो कथाएँ प्रचलित हैं उनके अतिरिक्त इन दोनों विद्वानोंके सिद्धान्तोंमें भी पर्याप्त समानता है। लेखकने श्रीकण्ठके विषयमें जो स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा है उसके परिशिष्ट भागमें हरदत्तरचित 'श्रुतिसूक्तिमाला' तथा श्रीकण्ठीय शैव-भाष्यकी परस्पर विस्तृत तुलना की गयी है। वेदोंके टीकाकार भट्टभास्करके—जिनका काल दसवीं शताब्दी माना जाता है—सिद्धान्त भी श्रीकण्ठके सिद्धान्तोंसे मिलते हैं। इसलिये यह धारणा युक्तिसङ्गत प्रतीत होती है कि श्रीकण्ठ उसी वातावरणमें रहते थे। उनके लिये यह एक विशेष गौरवकी बात है कि उन्होंने औचित्यका ही पक्ष लेकर अपनी सारग्राहिताका परिचय दिया। साम्प्रदायिक दुराग्रहके प्रवाहमें उन्होंने अपनेको नहीं बहने दिया। श्रीकण्ठ सर्वोपरि समन्वयवादी

ये; उन्होंने वैदिक सिद्धान्तोंकी आगमिक सिद्धान्तोंके साथ, शैव सिद्धान्तोंकी वैष्णव सिद्धान्तोंके साथ, यहाँतक कि दार्शनिकोंके कट्टर एकेश्वरवादकी ब्रह्मवादके साथ एकवाक्यता की है।

आस्तिक हिन्दूमात्र विवादग्रस्त विषयोंमें शब्द अथवा श्रुतिको ही एकमात्र प्रमाण मानते हैं। शब्दके सहायकरूपमें अनुमान भले ही कुछ कामका हो, किन्तु स्वतन्त्ररूपसे वह हमारे किसी प्रयोजनका नहीं हो सकता। मानव-जगत्के कार्य-कारण-भावको दृष्टान्तरूपसे सामने रखकर हम भले ही विश्वके कारणका अनुमान कर लें, किन्तु उक्त दृष्टान्तके आधार-पर हमारे लिये किसी एक एवं सर्वज्ञ हेतुका अनुमान करना कदापि युक्तियुक्त नहीं हो सकता; केवल शब्द-प्रमाणकी सहायतासे हम इस निश्चयपर पहुँच सकते हैं। और शब्दके भी हम आगम और निगम ये दो स्थूल विभाग कर सकते हैं। हमारे लिये दोनों ही इसलिये प्रामाणिक हैं कि दोनोंके ही प्रवर्तक भगवान् शिव हैं जो सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् हैं, जो नित्य आसक्त हैं और जिनका संकल्प सर्वदा सत्य है। शब्द अथवा आसवचन तभी अप्रमाण हो सकता है जब वक्तामें किसी प्रकारका दोष हो। किन्तु शिवमें तो किसी प्रकारके दोषकी कल्पना ही नहीं सकती। वैदिक तथा आगमिक सिद्धान्तोंमें केवल इतना ही अन्तर है कि वेदोंके अध्ययनका अधिकार केवल द्विजाति-वर्णोंको है, किन्तु आगमका अध्ययन चारों ही वर्णोंके लोग कर सकते हैं। सारे ही शैवागम, जिनकी संख्या अठ्ठाईस है, स्पष्टरूपसे इस बातका प्रतिपादन करते हैं कि शिव ही परमेश्वर हैं। वे ही इस ब्रह्माण्डके रचयिता, पालनकर्ता एवं संहर्ता हैं, वे ही जगत्के अभिन्न-निमित्तोपादान-कारण हैं, वे ही निज शक्ति मायाके द्वारा त्रिगुणात्मक जगत्के अन्दर ओत-प्रोत होते हुए भी स्वरूपसे त्रिगुणातीत हैं, वे ही समस्त जीवोंके नियन्ता, प्रेरक एवं परम गति हैं। वेदों तथा उपनिषदोंके वाक्य भी, जिनमें अनिर्देश्य ब्रह्मकी सत्ता प्रतिपादित की गयी है, शिवपरक ही माने जाने चाहिये। कैवल्य, श्वेताश्वतर, अथर्वशिख इत्यादि कतिपय उपनिषदोंमें स्पष्टरूपसे शिवकी महिमाका वर्णन किया गया है। अतएव उनके और आगमोंके प्रतिपाद्य विषयमें कोई भेद नहीं है। सुबाल आदि जिन थोड़े-से उपनिषदोंमें विष्णुकी महिमा गायी गयी है उन्हें आयोपान्त पढ़ने तथा उनके अर्थपर विचार करनेसे यह पता लगेगा कि वे या तो अप्रामाणिक

हैं अथवा लाक्षणिक अर्थका बोध कराते हैं। उदाहरणतः महानारायणोपनिषद्का एक पूरा-का-पूरा खण्ड जो नारायणानुवाकके नामसे प्रसिद्ध है, देखनेमें विष्णुकी महिमासे भरा हुआ है। किन्तु उक्त उपनिषद्के आदि, मध्य तथा अन्तके मन्त्रोंको देखनेसे यह पता लगता है कि सारा उपनिषद् शिवकी ही प्रधानताका प्रतिपादन करता है। इससे यह समझमें आता है कि नारायणानुवाकका प्रतिपाद्य विषय भी यही होना चाहिये। 'नारायणपर ब्रह्म' का अर्थ यही होना चाहिये कि ब्रह्म (अर्थात् शिव) नारायणसे भी परे (अर्थात् श्रेष्ठ) हैं।

यही ब्रह्म जो इसप्रकार आगमप्रतिपादित शिवसे अभिन्न सिद्ध होता है, जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान-कारण है। उपादान (कारण) होनेपर भी वह परिणामी नहीं है; जिसका परिणाम होता है वह उसकी चिच्छक्ति है। किन्तु शक्ति और शक्तिमान्में परस्पर अभेद होनेके कारण ब्रह्मको ही उपादान-कारण कहते हैं। जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती, वे नित्य हैं। उन्हें नित्य न माननेसे यह दोष आवेगा कि उनकी उत्पत्ति और नाशके साथ ही कृत-कर्मोंका नाश एवं अकृत कर्मोंकी प्राप्ति माननी पड़ेगी। भौतिक सृष्टिका उद्देश्य जीवोंको कर्ममें प्रवृत्त करना है, जिसके द्वारा वे अपने अन्तःकरणके मलको धो सकें। जगत् वास्तवमें बिल्कुल असार होनेपर भी जबतक लुभावना और सारवान् प्रतीत नहीं होता तबतक जीवोंकी कर्ममें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसीलिये भगवान् उसके असली स्वरूपको छिपाये रखते हैं। यही उनका तिरोभावरूप व्यापार है। जब समय पाकर जीव पूर्णताको प्राप्त हो जाता है तब वे उसपर दया करके उसे भव-बन्धन-से मुक्त कर देते हैं। यही उनका अनुग्रहरूप कार्य है। रुद्ररूप होते हुए भी वे हमारे परम सुहृद् एवं करुणामय हैं। उनकी संहार (प्रलय) लीला भी दयासे पूर्ण होती है, क्योंकि उसका उद्देश्य भवाटवीमें भ्रमण करनेसे परिश्रान्त हुए जीवोंको विश्राम देना है। वे रुद्र इसीलिये कहलाते हैं कि वे दुःखको दूर भगा देते हैं। (रुद्र दुःखं द्रावयतीति)

शक्तिके बिना शिव अकिञ्चित्कर हैं। शक्तिके अभावमें उनके साथ सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् कारुणिक इत्यादि किसी भी विशेषणका प्रयोग नहीं हो सकता। शक्तिमान्के बिना शक्ति नहीं रह सकती और शक्तिसे वियुक्त शक्तिमान् नहीं

ठहर सकता। असीम और ससीमके बीचमें शक्ति मानो एक मध्यस्थ है। इसप्रकारकी चित्शक्तिके माननेसे ही, जो भगवान्से अभिन्न होनेपर भी भिन्न है, एक और अनेक तथा ब्रह्मकी सोपाधिक तथा निरुपाधिकताके प्रश्न सुगमताके साथ हल हो जाते हैं। जीव शिवसे न तो सर्वथा अभिन्न है और न नितान्त भिन्न ही है और न उनके सम्बन्धको हम भेदाभेद-शब्दसे ही व्यक्त कर सकते हैं। किन्तु चित्शक्तिसे अभिन्न होनेके कारण वे परम्परासे शिवसे भिन्न और अभिन्न दोनों ही हैं। अधिकारी जीव वेदों एवं आगमोंका अनुशीलन करते हैं; उनके तत्त्वोंका मनन करते हैं, उनमें बतायी हुई ध्यानकी प्रक्रियाओंमेंसे किसी एक विधिकी अनुसरण कर अन्तमें ब्रह्मका साक्षात्कार कर लेते हैं। परम तत्त्व अर्थात् शिवका साक्षात्कार हो जानेपर वे चाहे स्थूल जगत्को देखते रहें किन्तु वह उन्हें फिर जगत्स्वरूपमें नहीं भासता। वे आनन्दार्णवमें निमग्न हो जाते हैं और उनकी दृष्टिमें सारा दृश्य प्रपञ्च आनन्दरूप, शिवरूप हो जाता है। जीव स्वरूपसे अणु होनेपर भी (यहाँ यह आश्चर्यकी-सी बात है कि श्रीकण्ठने पाञ्चरात्र तथा विशिष्टाद्वैत सम्प्रदायके वैष्णवोंका सिद्धान्त ग्रहण किया है) मुक्त हो जानेके पश्चात् विभु हो जाता है, स्वयं आनन्दाम्बुधि बन जाता है। वह फिर ब्रह्म जीव नहीं रहता, वह दोषसे सर्वथा निर्मुक्त हो जाता है। वह अपने ही पूर्ण स्वरूपमें प्रकट हो जाता है। वह स्वयंज्योति एवं सकल शुभ गुणोंका आकर बन जाता है। वह सर्वज्ञता, तृप्ति, स्वतन्त्रता, अनादि-बोध, अलस शक्ति इत्यादि शिवजीके आठ गुणोंको प्राप्त कर लेता है। उसके लिये तो भगवान् भी नियन्ता नहीं रह जाते, क्योंकि वह विधि-निषेधकी सीमाको लॉघ्य जाता है। किन्तु उसकी शिवके साथ समानता केवल आनन्दोपभोगकी तथा उसके लिये जिन-जिन वस्तुओंकी आवश्यकता है उनको उत्पन्न करनेकी शक्तिकी, लेकर है। विश्व-ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, रक्षा इत्यादि कार्य तो स्वयं शिवके ही हैं।

यद्यपि अन्तिम अवस्थामें भी शिव और मुक्त जीवमें इतना अन्तर रह ही जाता है, फिर भी मुक्तिका साधन तो शिवके साथ पूर्ण अभेदकी भावना ही मानी गयी है। साधक यही कहता है कि 'मैं तू ही हूँ', 'तू मैं ही है।' वह यह नहीं कहता कि मैं तेरा स्वरूप अथवा अंश अथवा अङ्ग या किङ्कर हूँ। यद्यपि श्रीकण्ठने कहीं-कहीं अद्वैतका स्पष्टरूपसे खण्डन

किया है फिर भी उन्होंने इतने अंशमें तो पूर्ण अभेदको स्वीकार किया ही है, जिसका आगे चलकर बिना किसी बाधाके अद्वैत-वेदान्तमें पर्यवसान हो सकता है। एक स्थानपर निरवयव अर्थात् निरुपाधि ब्रह्मके उपासकोंका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि निम्नश्रेणीके साधकोंकी भाँति ये लोग अर्चिमार्गसे गमन नहीं करते। अप्पय्य दीक्षितने अपने शिवाद्वैतनिर्णय नामक ग्रन्थमें उपर्युक्त तथा इसप्रकारके अन्य वचनोंको लेकर यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि श्रीकण्ठ हृदयसे अद्वैतको माननेवाले थे। और जहाँ उन्होंने परम तत्त्वका सगुणरूपसे वर्णन किया है और चराचर जगत्को उनका शरीर बतलाया है वहाँ उन्होंने केवल मन्द अधिकारियोंके हितको दृष्टिमें रखकर ऐसा किया है।

श्रीकण्ठके ग्रन्थमें जो साम्प्रदायिक कट्टरताका अभाव दृष्टिगोचर होता है उसपर भी अप्पय्यने विशेष ध्यान दिलाया है और उससे अपने सिद्धान्तकी पुष्टि की है। जबतक मनुष्य किसी एक देवताकी उपासना करता है और उसका एक विशिष्ट स्वरूप मानता है तबतक उसकी एक स्वरूपके प्रति अन्य स्वरूपोंकी अपेक्षा अधिक श्रद्धा होना अनिवार्य है। यहाँ-तक कि जब वह आगे बढ़कर सात्त्विक, राजस एवं तामस इन तीनों रूपोंसे अतीत ईश्वरकी कल्पना करता है तब भी वह उन्हें उसी नामसे पुकारता है जिस नामसे वह गुणात्मक स्वरूपको पुकारता है। उदाहरणतः भगवान् विष्णुका स्वरूप शुद्ध सात्त्विक माना जाता है, ब्रह्माका स्वरूप शुद्ध राजस और रुद्रका स्वरूप शुद्ध तामस माना जाता है। ईश्वरको त्रिगुणातीत एवं त्रिमूर्तिसे परे माननेवाला उन्हें विष्णुरूप ही मानता है। यही बात शिव-भक्तोंके सम्बन्धमें पायी जाती है। त्रिमूर्तिसे परे जो सगुण ब्रह्म है उसे भी वे रुद्र ही कहते हैं। त्रिदेवोंमेंसे तमःप्रधान देवताको वे उससे भिन्न मानते हैं और संहाररुद्र कहते हैं। किसी भी आस्तिक सिद्धान्तमें साम्प्रदायिकताकी इतनी मात्रा अनिवार्यरूपसे रहती है। किन्तु साम्प्रदायिक कट्टरताकी यही समाप्ति नहीं हो जाती। उसकी मात्रा आगे चलकर इतनी बढ़ जाती है कि फिर इतर सम्प्रदायोंके सिद्धान्तोंकी निन्दा होने लगती है और हँसी उड़ायी जाती है। वैष्णवलोग शिवको भिल्लमंगा तथा साँपोंको उनका भूषण और श्मशानको उनका लीला-निकेतन कहकर उनकी दिल्लगी करते हैं। इधर शिष्योपासक विष्णुके सम्बन्धमें यह कहकर उनका उपहास करते हैं कि उन्हें विवश होकर

संसारमें बार-बार जन्म लेना पड़ता है और उनमें एवं जीव-में कोई अन्तर नहीं है। शैव वैष्णव-आगमोंकी और वैष्णव शैव-आगमोंकी अवज्ञा करते हैं। श्रीकण्ठके ग्रन्थोंमें इस-प्रकारके दूषित भाव नहीं मिलते। उनकी दृष्टिमें विष्णु शिवसे नीचे अवश्य हैं, क्योंकि शिव तो सर्वोपरि ठहरे परन्तु वे शिवसे ही नीचे हैं और किसीसे नहीं। वे चित्-शक्तिकी मूल अभिव्यक्ति हैं। वासुदेव पुरुष हैं और पुरुष एवं परमेश्वरमें कोई भेद नहीं है। 'पुरुषो वै रुद्रः।' पाञ्चरात्र आगमको श्रीकण्ठने भ्रमपूर्ण बताया है, उनकी इस मान्यताके कारण वेदान्तसूत्रमें दिये हुए हैं। किन्तु उन्होंने विष्णुकी उपासनाका निषेध नहीं किया है, क्योंकि उनकी उपासनासे मनुष्य समय पाकर ब्रह्मका साक्षात्कार कर सकता है। अप्यय दीक्षितने भी अन्य देवताओं तथा अन्य मतोंके प्रति सम्मानका भाव प्रदर्शित किया है। जो लोग विष्णुको जीव सिद्ध करते हैं उनकी युक्तियोंका विस्तृत-रूपसे उल्लेख करते हुए श्रीकण्ठ लिखते हैं कि हमलोग यदि इधर-उधरसे चुनी हुई युक्तियोंका आश्रय लेकर इन नास्तिकतापूर्ण सिद्धान्तोंको अङ्गीकार करें तो हमारा सिर फूट जायगा। उनके मनमें शिव, शक्ति और विष्णु ये तीन

रत्न (रत्नत्रय) हैं। परमेश्वर ही एकमात्र सत् हैं और वे मायाके कारण देखनेमें दो-धर्म और धर्मी-हो जाते हैं। धर्मी निरपेक्ष निमित्त-कारण है। उनकी इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्तिका नाम धर्म है। यही शक्ति आगे चलकर स्त्री और पुरुषके रूपमें द्विविधा हो जाती है। पुरुषरूपमें वह अखिल विश्वका उपादान-कारण है और नारायण कहलाती है एवं स्त्रीरूपमें वह उस मूल कारणकी सहधर्मिणी है और अम्बिका अथवा उमा कहलाती है। केवल धर्मी ही नहीं अपितु धर्म भी ईश्वरका ही स्वरूप है। अतः विष्णुका ईश्वरत्व अक्षत है। उन (विष्णु) को प्राप्त कर लेनेपर ही उन अव्यय, आद्य, आनन्दमय पुरुषके पदकी प्राप्ति हो सकती है जो ज्योतिःस्वरूप हैं और जो देवपुत्रों एवं देव-देवों तथा पुराण पुरुषोंके द्वारा उपास्य हैं।

प्राप्यं कृत्वैव तस्य प्रपन्नममृतस्याद्यमानन्दमूर्ति-
स्थानं भर्गस्य जुष्टं तदमृततनयैर्देवदेवैः पुराणैः ॥

(रत्नत्रयपरीक्षा)

भारतीय दर्शनके समन्वय-सिद्धान्तका असली स्वरूप इन शब्दोंमें वर्णित है और श्रीकण्ठीय शिवदर्शनका वास्तविक स्वरूप भी यही है।

श्रीशिव और श्रीराम-नाम

(लेखक—महामहोपाध्याय डा० श्रीगंगानाथजी झा, एम० ए०, डि० लिट०, एल-एल० डी०)

पद्मपुराण (उत्तर खण्ड, अध्याय ७२, श्लोक ३३५)
में यह कथा है—

एक दिन पार्वतीजीने महादेवजीसे पूछा—'आप हरदम क्या जपते रहते हैं?'

उत्तरमें महादेवजी विष्णुसहस्रनाम कह गये।

अन्तमें पार्वतीजीने कहा—'ये तो एक हजार नाम आपने कहे। इतना जपना तो सामान्य मनुष्यके लिये असम्भव है। कोई एक नाम कहिये जो सहस्रों नामोंके बराबर हो और उनके स्थानमें जपा जाय।'

इसपर महादेवजीने कहा—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुभ्यं रामनाम वरानने ॥
राम राम शुभ नाम रटि, सबखन आनंद-धाम ।
सहस्र नामके तुल्य है, राम-नाम शुभ नाम ॥

फिर इसी पुराणके उत्तर खण्ड, अध्याय २७० श्लोक ४०में शिवजी श्रीरामजीसे कहते हैं—

मुमूर्षोर्मणिकर्ण्यो तु अर्घोदकनिवासिनः ।
अहं ददामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मदायकम् ॥

अर्थात् मरनेके समय मणिकर्णिका-घाटपर गङ्गाजीमें जिस मनुष्यका शरीर गङ्गाजलमें पड़ा रहता है उसको मैं आपका तारक-मन्त्र देता हूँ जिससे वह ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

शङ्कर और शङ्करकी उपासना

(लेखक—पं० श्रीमधुसूदनजी कौल शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०)



मस्त विश्वमें क्या कोई हिन्दू-नाम-लेवा है जिसकी हृदय-वीणा अहोरात्र बजती हुई हो और वह आधुनिक हिन्दू-समाजकी दुरवस्था देखकर आठ-आठ आँसू न-रोवे ? हिन्दू-समाजकी दशा दिनोंदिन एक जर्रद्वकी-सी हो रही है। आज एक अङ्ग टूटता है तो कल दूसरा। सिरको पैर काटनेकी सृजनी है तो पैर सिरको चकनाचूर किया चाहता है। इसका एकमात्र कारण यह है कि हिन्दू-संसारमें सच्चे आराध्य देवकी भूल-सी हो गयी है। इसे तो प्राचीन कालसे इस बातका सर्वप्रशंसनीय गर्व था कि इसके पास परमात्माके अक्षय ज्ञान-भण्डारकी कुञ्जी है। परन्तु अनेक कारणोंसे यह उस अनमोल रत्नको खो बैठा है।

पिपीलिकासे लेकर ब्रह्मातककी यह सहज मनोभिलाषा है कि सर्वोच्च गति मुझको ही प्राप्त हो। परन्तु ज्ञानके तारतम्यसे सर्वोच्च कोटिके आदर्शका स्वरूप भिन्न-भिन्न है। इसी तत्त्वका दर्शन यत्र-तत्र वेदके मन्त्रोंद्वारा हमें मिलता है।

नमः स्तेनेभ्यः स्तेनानां पतये च नमः।

‘जय हो चोरोंकी और जय हो चोरोंके सरदारकी।’ जहाँ चोरों और चोरोंके सरदारकी जय पुकारी है वहीं यह मन्त्र पाया जाता है—

उतैनं गोपा अहश्रमुतैनमुदहार्यः। उतैनं विश्वा भूतानि।

‘इसे गुयालोंने देखा है। इसे जीवरनियोंने भाला है। इसे सम्पूर्ण चराचर जगत्ने दृष्टिगोचर किया है।’

यह दृष्टिकी क्षुद्रता है कि जीव यत्न करता है कि भगवद्रूप रत्नकी जो झलक उसके हृदयके नेत्रके पाससे गुज़री है वह उसीके निकट डिवियामें बन्द होकर सदैव रहे। परन्तु इस चिद्रविकी छवि ऐसी है कि छिपाये छिपती नहीं। ऋषियों और महर्षियोंने, युक्तों और अभियुक्तोंने मितदृष्टिकी जवनिका फाड़ डाली है। और उच्चस्तरसे एकतान होकर इस मन्त्रका गान किया है—

यैव चिद्रगनाभोगभूषणे भाति भास्करे।
धराविवरकोशस्थे सैव चिःक्रीटकोदरे॥

जिस चिदर्कका प्रकाश अति विस्तृत नभस्तलमें जाज्वल्यमान है उसीकी चमक पृथ्वीके रन्ध्रके कोनेमें बसनेवाले कीड़ेके उदरमें है। इसी ज़र्रे-ज़र्रेमें विद्यमान पुरज्जे-पुरज्जेमें चमकते हुए चिदर्कको द्रष्टाओंने शिवाङ्कके नामसे, ‘हरि-हर्यश्व’ से और ‘ब्रह्मभानु’ से अभिधेय और बोध्य किया है। स्थूल आकाशमें इसके रहनेकी गुंजाइश नहीं। यह तो उस अनन्त आकाशका प्रतिबिम्ब है जिस आकाशमें हमारे चिदर्क परमात्मा अथवा परम शिव अथवा नारायण अथवा परब्रह्म शयन करते हैं।

ॐ नमः परमाकाशशायिने परमारमने।

जिस विश्वशरीरकी जीवनाड़ीके पास, जिस त्रैलोक्य-नगरके मूलस्तम्भके समीप पहुँचनेमें मन और बुद्धिके घोड़ोंकी दौड़ नहीं है उसका शब्दोंसे चित्रण करना समुद्रको कुम्भमें भर देना है। परन्तु यह जानते हुए भी हम अपरिमितकी ओर पहुँचनेके निमित्त परिमितकी ही शरण लेते हैं। क्योंकि हम स्वयं परिमित हैं। परिमित होनेका मूलकारण केवल अन्तस्तत्त्वकी ओरसे मुख मोड़ना और बाह्यकी ओर ही सर्वथा झुकना है। बाह्य जगत् नामरूपके वृत्तमें बँधा हुआ है। अतएव हमने उस निःसीम ज्ञानराशिका भी नामकरण ‘परम शिव’, ‘परम विष्णु’ या ‘परब्रह्म’ के नामसे कर लिया है। नामोंके साथ ही रूप-रूपान्तर भी जोड़े हैं। एक शूलपाणि हैं तो दूसरे गदाधर हैं। एक उमा-रमण हैं तो दूसरे रमा-रमण। एक वृषवाहन हैं तो दूसरे गरुडयान और तीसरे हंसारूढ़। परन्तु इस-प्रकारके असंख्य नाम और रूपोंद्वारा सर्वोपेय एक ही भगवान्का परामर्श किया जाता है और एक ही भगवान्की उपासना की जाती है। यह पथ प्राणिमात्रके तल्लीन होनेका पथ है। इस पथपर स्टेशन बहुत-से हैं। उन्हींमेंसे हर एकको गमन करना है। परन्तु गम्य स्थान सब यात्रियोंका एक ही है।

इस अमरनाथ-यात्रामें वर्ण और आश्रम, जाति और पौत्रिका कुछ विचार नहीं है। राजासे रङ्गतकको इस

यात्राका अधिकार है। इस अमरनाथकी गुफाका द्वार नहीं है। तालोंपर ताले नहीं लगे हैं। हाँ, एक वस्तुकी आवश्यकता है। वह क्या है? वह लगन है। लगन हो तो तुम्हारे भगवान् अमरनाथ तुम्हारे ही पास हैं, नेत्रोंके निकट हैं। अटूट लगन होनेपर अमरनाथकी गुफा हृद्गुहा ही दीखेगी, जिसमें भगवान् शङ्कर प्रतिक्षण दीपककी नाई चमकते रहते हैं। जगद्धर भट्टने इस जगद्धासक दीपकका क्या ही मनोहर सजीव चित्र अपनी 'स्तुतिकुसुमाञ्जलि' में खींचा है।

हृद्गुहागहनगोहगुह्यं भासिताखिलजगत्त्रयोदरम् ।
कन्दकन्दरदरीमुखोद्गतप्राणमास्तकृतस्थिरस्थितिम् ॥
त्यक्तसर्वदशमक्षयोदयं रूपवर्जितमभित्तिसंश्रयम् ।
यं निरञ्जनमनक्षगोचरं दीपमद्भुतमुशन्ति तं स्तुमः ॥

‘हम उस अद्भुत दीपको प्रणाम करते हैं जो हृद्दय-गुफाके तंग कमरेमें आच्छादित रहता है, जिससे तीनों लोक प्रकाशित हैं, कन्द-स्थानके रन्ध्ररूप रन्ध्रके मुखसे निकलते हुए प्राण-वायुसे जिसकी स्थिति स्थिर है, जिसकी कोई दशा वा वृत्ती नहीं, जिसका बुझना-जलना नहीं, जो रूपरहित है, जो किसी स्थानका सहारा नहीं लिये है, जो मायारहित अथवा जिसका काजल नहीं, और जिसका ज्ञान इन्द्रियोंसे नहीं होता।’

इस दीपकरूपमें होनेके कारण भगवान् शङ्कर हर एकके मूलधन हैं। वैष्णव हरि-पूजनसे, बौद्ध बुद्ध-पूजनसे, जैन जिन-पूजनसे, यहूदी जिहोवाके पूजनसे, किरिस्तानी जगत्-पिता लार्डके पूजनसे और मुसल्मान अल्लाहके पूजनसे इसीको पाते हैं। प्रत्येक मतानुयायी अपने ही शरीरके मन्दिर, चैत्य, पगोडा, चर्च अथवा मसजिदमें अपने इष्टतम भगवान्को पाता है। शैवसर्गशिरोमणि पवित्र ग्रन्थोंमें इसी मानसिक पूजाके गीत गाये गये हैं।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्

‘मेरी आत्मा तू है, मेरी बुद्धि पार्वती है, मेरे प्राण तेरे साथी हैं, मेरा शरीर तेरी कुटिया है।’

इस इष्टतमकी पुं-रूपसे मानों तो परम शिवका ध्यान होता है, स्त्रीरूपसे मानों तो पराशक्तिका भास होता है। शक्ति और शक्तिमान्का अभिन्नभाव त्रिकाल-सिद्ध है। शक्तिकी सत्ता शक्तिमान्के बिना हो नहीं सकती, इसी प्रकार शक्तिमान्का अस्तित्व शक्तिसे रहित नहीं हो सकता।

उपनिषदोंमें इस अविनाभावको यों दर्साया है—

रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रः सूर्य उमा छाया तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रः सोम उमा तारा तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रो दिवा उमा रात्रिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो यज्ञ उमा वेदिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रो वह्निरुमा स्वाहा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रो वृक्ष उमा वल्ली तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रः पुष्पमुमा गन्धस्तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रोऽर्थः अक्षरा सोमा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो लिङ्गमुमा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः ॥

शैवोंने इसीके आधारपर प्रत्येक पदार्थको शिव और शक्तिके समष्टिरूपसे देखा है।

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदीरिता ।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स स सर्वो भगेश्वरः ॥

‘जिस-जिस पदार्थकी जो-जो वस्तु-शक्ति है वह-वह वस्तु-शक्ति देवी है और वह-वह पदार्थ शिव है।’ वृक्ष शिव है तो वृक्षता शक्ति। मनुष्य शिव है तो मनुष्यता शक्ति। शिवकी अनुत्तर अवस्थाको समझानेके लिये शिवका स्वरूप यों बताया है कि वह प्रकाश-विमर्शस्वरूप है। प्रकाश शिवके शक्तिमद्-भागको स्थूल प्रक्रियामें प्रकट करता है और विमर्श शक्ति-भागको। बारम्बार इस बातको दुहराया गया है कि शक्ति और शक्तिमान्के विषयमें भाग-कल्पना केवल जिज्ञासुके जाननेके निमित्त ही है। इस प्रकाश-विमर्शके बहुत-से नामान्तर हैं जिनमें मुख्य पर्याय ‘चित्’ और ‘आनन्द’ हैं। ‘अस्ति’ रूपमें प्रकाश है और ‘भाति’ रूपमें विमर्श। अतएव आन्तरीय जगत् अथवा बाह्य जगत् अस्ति-भातिमय होनेके कारण शिव-शक्तिमय है। जिस तत्त्वकी भाग-कल्पना यों की जाती है वह तो ऐसा है—

यस्य रूपं शरीरं वा नास्ति वर्णः क्रिया तथा ।
नैष वर्णो न वा शब्दो न चैवायं कलात्मकः ।
केवलः परमानन्दो बीरो निर्योदितो रविः ॥
नास्तमेति न चोदेति न शान्तो न विकारवान् ।
सर्वभूतान्तरचरो भानुर्भग इति स्मृतः ॥

‘जिसकी आकृति नहीं, जिसकी काया नहीं, जिसका रङ्ग नहीं और जिसकी क्रिया नहीं। न यह अक्षररूप है, न शब्दरूप है, न कलारूप। केवल परमानन्दरूप है और सदैव उदयमें ही रहता हुआ सूरज है। न इसका कभी अस्त है और न कभी उदय। न यह शान्त है और न यह विकृतिको पाता है। सभी जीवोंके अन्दर यह भर्गरूप सूर्य विद्यमान है।’ स्थूल-जगत्के दीपक—सूर्य अथवा आन्तरीय-जगत्के दीपक—क्षेत्रज्ञके प्रकाशके केन्द्र भी भर्ग-नामसे अङ्कित भगवान् शङ्कर ही हैं।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
‘उस सूर्यभगवान्के तेजका हम ध्यान करते हैं।’

भगवान् शङ्करकी क्रीड़ा प्रतिक्षण होती रहती है। यही क्रीड़ा पाँच कृत्यों अथवा क्रियाओंमें विभाजित की गयी है—सृष्टि, स्थिति, संहार, लय और अनुग्रह। चिद्रूपका सम्बन्ध अनुग्रहसे है, आनन्दरूपका लयसे और इच्छारूप, ज्ञानरूप और क्रियारूपका सम्बन्ध सृष्टि, स्थिति और संहारसे है। इन्हीं पाँच रूपोंके कारण भगवान् शङ्करके पाँच नाम हैं—ईशान, तत्पुरुष, अधोर, वामदेव और सद्योजात। तुर्यातीत और तुर्य-दशाकी व्याप्ति ईशान और तत्पुरुषसे है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिकी ‘सद्योजात’, ‘वामदेव’ और ‘अधोर’ से है। इसी क्रमसे पाँच महाभूतोंकी व्याप्ति इनसे कही गयी है। सद्योजात ब्रह्मदेव हैं, वामदेव विष्णुदेव हैं और अधोर रुद्रदेव हैं।

एकरूपताके कारण इन पाँचों कारणोंको ‘पञ्चब्रह्म’ कहते हैं। इन्हें पाँच प्रेतोंके नामसे भी पुकारते हैं, इन पाँच प्रेतोंके आसनपर पराशक्ति सदैव स्थित रहती है। प्रेतताका रहस्य यह है कि शक्तिके बिना शक्तिमान्की अवस्था मृतकी-सी होती है, इसका सूचन ‘शिव’ और ‘शव’ दो शब्दोंके रूपसे स्पष्ट पाया जाता है। इ-स्वरके होनेसे शिव शिव हैं और इसके न होनेसे शव। इ-स्वर इच्छा-शक्ति अथवा सामान्य शक्तिका बोधन करता है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।

‘शिव यदि शक्तिके सहित हो तो करने न करने अथवा अन्यथा करनेको समर्थ हो सकता है। अन्यथा वह चेष्टातक नहीं कर सकेगा।’

कवियोंके शिखामणि महाकवि बाणभट्टने त्रिगुणरूप

त्रिमूर्तिमें सर्वानुस्यूत भगवान् शङ्करकी ही स्तुति की है।

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये
स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे ।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥

‘उन्हीं जन्मरहित, सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले, त्रिमूर्तिरूप, त्रिगुणात्मा भगवान् शङ्करको नमस्कार हो जिनमें जगत्की सृष्टिके समय रजोगुणकी मात्रा अधिक होती है, पालनके समय सत्त्वगुणकी और संहारके समय तमोगुणकी।’ भगवान् प्रमथनाथके एक गण पुष्पदन्तने इसी तानको अलापा है—

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोद्विक्तौ मृडाय नमो नमः ॥
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥

‘जगत्की उत्पत्तिमें रजोगुणप्रधान भगवान् भवदेवको प्रणाम हो। जगत्के सुखके निमित्त सत्त्वगुणप्रधान भगवान् मृडको प्रणाम हो, उसके संहारमें तमोगुणप्रधान भगवान् हरको प्रणाम हो। इन तीन गुणोंसे अतीत महाप्रकाश-स्थान-पर स्थित भगवान् शिवको प्रणाम हो।’

भगवान् शङ्करकी प्रातिके दो ही द्वार हैं—एकका नाम मूर्तोपासना है, दूसरेका नाम अमूर्तोपासना। अमूर्तोपासना मूर्तिमान् मनुष्यके लिये अत्यन्त कठिन है। अतएव भगवान् शङ्करके मूर्ति-अष्टककी पूजा यत्र तत्र वर्णित है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा और यजमान—यह आठ मूर्तियाँ हैं। भूमिरूप परमेश्वरका आवाहन शर्व-नामसे होता है, जलरूपका भव-नामसे, अग्निरूपका रुद्र-नामसे, वायुरूपका उग्र-नामसे, आकाशरूपका भीम-नामसे, सूर्यरूपका ईशान-नामसे, सोमरूपका महादेव-नामसे और यजमानरूपका पशुपति-नामसे होता है। परम शिव-के तीन व्यूह हैं और इकतीस प्रकार हैं। तीन व्यूहोंके नाम शिव, सदाशिव और महेश्वर हैं। शिवको एकरूप माना है, सदाशिवको पञ्चरूप माना है और महेश्वर पञ्चविंशतिरूप हैं।

शिवमेकं विजानीयात्सादाख्यं पञ्चधा भवेत् ।
महेशस्तु समासेन पञ्चविंशतिभेदकः ॥

शानी पुरुष चिद्देवकी पूजा अपने हृदयमें ही करता है,

अग्नौ तिष्ठति विप्राणां हृदि देवो मनीषिणाम् ।

प्रतिमास्वरूपबुद्धीनां सर्वत्र विदितात्मनाम् ॥

‘ब्राह्मणलोगोंका देवता अग्निमें रहता है । बुद्धिमानोंका हृदयमें, अल्पबुद्धियोंका प्रतिमाओंमें और आत्मज्ञानियोंका हर जगह ।’

शिवके पानेके मार्गपर पहले-पहल पग रखनेवालेको साकार शङ्करकी पूजाका अवलम्बन करनेमें ही श्रेय और प्रेय है । क्योंकि साकार मूर्ति भी भगवान् शङ्करका एक लिङ्ग है, एक चिह्न है, एक Symbol है । शङ्करकी मूर्तिकी जटाएँ सागर और समुद्रमय भगवान्का बोधन कराती हैं । इनके सिरपर एक गङ्गा क्या तीन गङ्गाएँ हैं । यही त्रिवेणी-सङ्गम है, क्योंकि यही स्थान तीन नाड़ियोंका बिन्दुस्थान है । इडा यमुना है, पिङ्गला गङ्गा है और सुषुम्णा सरस्वती है—

गङ्गा तु पिङ्गला नाडी यमुनेडा प्रकीर्तिता ।

सरस्वती सुषुम्णोक्ता..... ॥

षोडशी कला जो भगवान्के किरीटपर विराजती है परमामृतरूप है, उसीसे जगत्का आप्यायन होता है । भगवान्के तीन नेत्र हैं जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि तथा मान-मेघ-मातृरूप हैं । निरावरण होनेके कारण भगवान्को दिग्गम्बर कहते हैं । इनके करकमलका त्रिशूल तीन शक्तियाँ हैं—इच्छा, ज्ञान और क्रिया । शुद्ध सत्त्वगुणको प्रवृत्तिमें लानेवाली यही तीन शक्तियाँ भगवान्का ‘खट्वाङ्ग’ है ।

इच्छाज्ञानक्रियारूपात्रिशूलं शक्तयो मताः ।

उक्तास्ता एव खट्वाङ्गं शुद्धसत्त्वप्रवर्तिकाः ॥

जिस वृषभपर भगवान् सवार होते हैं वह स्फटिकके समान निर्मल धर्म है—

शुद्धस्फटिकसङ्काशो धर्मरूपो वृषः स्मृतः ।

भगवान्का मिश्राटन करण-ईश्वरियोंद्वारा भोग्य जगत्के अमृतका अन्वेषण करना है । इनके सहचर—वेताल संकल्प-विकल्परूप हैं । श्मशान अथवा परेतभूमि इनका निवासस्थान है । श्मशान ‘शमशयन’ का संक्षिप्त रूप है । इसका अर्थ शान्ति-लय-स्थान है । परेतभूमिसे उस धामका अभिप्राय है, जिसमें भगवान् परेत हैं अर्थात् पराशक्तिसे जुड़े हुए हैं । इनके हाथका कपाल ‘वेद्य जगत् है’ जिसमेंसे भगवान् अमृतका पान करते हैं ।

तत्तद्भिन्द्रियमुखेन सन्ततं युष्मद्वर्चनरम्यायनासवम् ।

सर्वभावचक्रकेषु पूरितेष्वापिब्रजपि भवेयमुन्मदः ॥

‘तुम्हारे पूजनरूप, अजर और अमर करनेवाले अमृतको सदैव उस-उस इन्द्रियके द्वारा भरे हुए समग्र पदार्थरूप पियालोंमेंसे पीता हुआ मैं उन्मत्त हो जाऊँ ।’ भगवान्ने अपने नाट्यका मर्म यों बताया है—

निरयमात्तकरणक्रमोन्मिषश्चित्रभावशतसन्निवेशिनीः ।

निष्क्रियो निजमरीचिनर्तकीर्नर्तयामि परनृत्तिर्द्वैशिकः ॥

‘मैं सबसे उत्तम नाट्यका आचार्य निष्क्रिय होकर अपनी करणेश्वरीरूपी नटियोंको नचाता हूँ, जो इन्द्रिय-देवियाँ सदैव अपने नृत्तिक्रमके प्रत्याहरणसे उदय होनेवाले अद्भुत और भिन्न-भिन्न प्रकारके भावोंके सन्निवेशवाली हैं । जिस चिताभूतिसे भगवान्की काया नित्यप्रति लिप्त रहती है वह भस्म नहीं है, वह सर्व-संशयरूप परचैतन्य है । पर-संशित्की दृष्टिसे पाँचों ही महाभूत भस्म हैं । इसका प्रति-पादन निम्नलिखित मन्त्रसे स्पष्ट होता है—

अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म ।

भगवान्का जप जिस मालासे किया जाता है उसके सौ दाने हैं । वर्णमालाके एक-एक अक्षरके दो-दो दाने प्रतिनिधि हैं । वर्णोंकी संख्या पचास है और एक-एक अक्षर शक्ति और शक्तिमत्तरूपसे दो प्रकारका है । जपमालाको अक्षमालाके नामसे पुकारनेका कारण यह है कि वर्णमालाका प्रथम वर्ण अकार है और अन्त्य वर्ण क्षकार । भगवान्के भूषण नाग हैं—यह विषयरूप हैं । इनका इसप्रकार उपयोग करना इस बातका सूचक है कि संसारी पुरुष जिन विषयोंसे डरता है उन्हींसे भगवान्का विश्व-शरीर भूषित है ।

भगवान् शङ्करके प्रेमियोंकी दृष्टिमें छूत-अछूतका प्रश्न सर्वथा मिथ्या है ।

वह प्रति प्रातःकाल यह प्रार्थना करते हैं—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।

हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

यह महर्षि भगवान् रुद्र हमारे अन्दर शुभ मतिको उत्पन्न करें जो देवताओंकी महिमा और उत्पत्तिके स्थान हैं, जो जगत्से उत्तीर्ण हैं और जिन्होंने सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्माको उत्पन्न किया । क्योंकि उन प्रेमियोंके जीवनसर्वस्व भगवान् शङ्कर इस रूपके हैं—

यस्मिन् सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वतश्च यः ।

यश्च सर्वमयो निरयं..... ॥

शिव-पार्वतीकी पूजाकी लोकप्रियता

(लेखक—रायबहादुर अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए० 'भूप')

यों तो ब्राह्मण अपनेको 'स्वभावतः' शैव बतलाते हैं परन्तु हिन्दुओंमें अनेक देवताओंकी उपासना होते हुए भी शिव-गौरीकी उपासना अत्यन्त लोकप्रिय है और एक अङ्गरेज विद्वान्के इस वाक्यको चरितार्थ करती है कि 'हम-को वैकुण्ठके ईश्वरकी आवश्यकता नहीं है; हमको ऐसा ईश्वर चाहिये जो हमारे बीचमें पृथिवीपर रहे।' * कालिदासने कुमारसम्भव काव्यमें लिखा है—

प्रयुक्तपाणिग्रहणं यदन्यद्
वधूवरं पुष्यति कान्तिमग्र्याम् ।
साक्षिध्ययोगादनयोस्तदानीं
किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य ॥

पानिग्रहन छिन यहि संसारा । बर-दुलहिनि-छवि लहत अपारा ॥
धरे निकट जा जारि अनूपा । केहि मुख कहै तासु छवि भूपा ॥
(कु० स० भा० ला० सीतारामकृत)

अर्थात् 'जिस शिव-पार्वतीकी जोड़ीके पास रहनेसे संसार-के वधूवरोंकी शोभा बढ़ जाती है उस जोड़ीकी शोभाका क्या कहना ?' कालिदासके समय विवाहमें शिव-पार्वतीका आह्वान होता था, अब गौरी-गणेशकी पूजा होती है ।

गौरी विवाहकी देवी है और सोहागकी रक्षा करती है । हरितालिकाव्रत गौरीका व्रत है और उस व्रतका रखना प्रत्येक हिन्दू-स्त्रीका धर्म है । जिनको सुहागकी परवा नहीं है उनकी कहावत है कि 'गौरा रिसैहैं तो आपन सुहागै लेहैं कि और कुछ' । यह कहावत पुरुषोंमें भी प्रयुक्त होती है जिन्हें किसी अधिकारीसे लाभकी उपेक्षा है ।

सौभाग्य ही स्त्रीका भूषण है । हमारी स्वर्गवासिनी धर्मपत्नी कहा करती थी कि विधवा स्त्रीका जीवन अकारण है । अङ्गरेज बहुत कहा करते हैं कि हमारे यहाँ स्त्री-पुरुषके अधिकार बराबर हैं परन्तु सम्राट् एडवर्डके मरनेपर उनकी विधवा रानी महलमें भी रहने न पायी, यद्यपि उसी पेटका लड़का जार्ज सम्राट् हो गया था ।

गौरीकी उपासनाकी लोकप्रियताका इससे बढ़कर और

* We want God on earth, we do not want God in heaven.

क्या कारण हो सकता है ? यह कोई न कहे कि शिव-पूजा बड़ी सुगम है । स्नान करके एक लोटा पानी शिवलिङ्गपर चढ़ा दिया, चन्दन-फूल मिला तो थोड़ी-सी और पूजा हो गयी—मुँह बजा दिया या बम्-बम् कह दिया और भोलानाथजी प्रसन्न हो गये । शिवजी त्रैलपर चढ़ते हैं, डमरू बजाते हैं, सिंहकी खाल और कभी-कभी नाग (हाथी) की खाल ओढ़ते और नाचते हैं, भाँग-धनूरा खाते और मस्त रहते हैं । शिवभक्तके लिये किसी बातका निषेध नहीं है । एक साल पानी न बरसा तो गाँववालोंने शिवलिङ्गको उठाकर तालमें फेंक दिया । इस रीतिसे महादेवजीको दण्ड भी दिया जाता है ।

ऐसा विरला ही कुआँ या जलाशय होगा जिसके पास एक चौतरिया बनाकर दो-चार गोल पत्थर न रख दिये, और शिवजीकी स्थापना हो गयी । जो नहाता है वह एक लोटा पानी डालकर पूजासे निवृत्त हो जाता है ।

गौरी शिवजीसे भी बढ़कर हमलोगोंके बीचमें आ गयीं, नीचे लिखे प्रसिद्ध पद्यमें वह साधारण स्त्रीकी भाँति अपना दुखड़ा रो रही हैं—

बालः कुमारः स छ मुण्डधारी
उपा अहीणा हमु एक नारी ।
अहर्निशं खाह विषं भिखारी
गतिभवित्री किल का हमारी ॥

'लड़का है, उसके छः मुँह हैं । एक 'मुँह' को खिलाना कठिन है, छः मुँह कैसे खिलाये जायँ ? स्वामी भिखारी है सो भी दिन-रात विष खाया करता है । न जाने हमारी क्या गति होगी !'

यह जगदम्बा अन्नपूर्णा कह रही हैं, कैसा विचित्र है ! एक और गीत हमने अपने लड़कपनमें सुना था, वह भी कल्याणके पाठकोंके विचारार्थ अथवा विनोदार्थ लिखा जाता है—

मचिया बइठि गौरा बटिया निहारें
कब अइहैं तपसी हमार रे ।
बरहें बरिस जब लैटे महादेव
के लोये दुसरा बियाह रे ।

की रे महादेव सेवामें चुकी
की घोंटनमें माँग रे।
ना तुम गौरदेई सेवामें चुकी
ना तुम घोंटनमें माँग रे।
होउ न उदास गौरा मनमें नाहीं
हम तो करि लाये दुसरा बियाह रे।

सोचो न गौरदेई, सवति न लाये हम
ई होइहै चेरिया तुहार रे।
इसमें शिवजी दूसरा ब्याह कर लाये हैं और गौरीको
समझा रहे हैं कि हमारी दूसरी स्त्री तुम्हारी टहलनी होकर
रहेगी। शिवजीने दूसरा विवाह गौरीके होते हुए कब किया,
इसे डुकरियापुराणके शास्त्री ही बता सकेंगे।

शिव नीलकण्ठ

(लेखक—रूसी ऋषि श्रीनिकोलस रॉयरिक)



पोनिष्ठ ऋषियोंकी प्यारी आवासभूमि हिमालय-
के एक गगनचुम्बी शिखरपर गन्धो-लाका
प्राचीन मन्दिर है। उसके नीचे उपत्यकामें
चन्द्र और भागा नामकी दो नदियोंका सङ्गम
है। पुराणोंमें कलियुगके अन्तके प्रसङ्गमें जिन
नदियोंका अभिप्राययुक्त वर्णन मिलता है, क्या
ये वे ही नदियाँ तो नहीं हैं? निज मन्दिरके मध्यभागमें
अवलोकितेश्वर महादेवकी एक प्राचीन कोरी हुई सुन्दर
मूर्तिका शिरोभाग विराजमान है। इस प्राचीन मूर्तिके
विषयमें एक बड़ा अपूर्व इतिहास है। वहाँके पुजारी
बतलाते हैं कि कई बार कुछ लफड़ोंने इस निधिको वहाँसे
उड़ानेकी चेष्टा की, किन्तु प्रत्येक बार वह अलौकिक ढंगसे
मन्दिरमें वापस लौट आयी। अवलोकितेश्वर भगवान्
शङ्करके अत्यन्त चमत्कारी विग्रहोंमेंसे एक हैं। इस महान्
क्षेत्रपालके चन्द्र-भाग-नदीके तटको छोड़कर अन्यत्र कहीं
न जानेमें कोई हेतु अवश्य होगा।

इसी नदीके किनारे-किनारे यात्री लोग त्रिलोकनाथके
प्रसिद्ध मन्दिरको जाते हैं। अनेकों योगी तथा साधु-
ब्राह्मण अपने-अपने मस्तकोंको विविध प्रकारसे तिलकोंसे
मण्डितकर इस सिद्धपीठकी ओर अग्रसर होते हैं। उनमेंसे
कई कूटूके प्राचीन नगरसे, कई आर्यावर्तसे, कई चम्पाके
पर्वतीय प्रान्तसे, इसप्रकार भारतके दूर-दूर स्थानोंसे आते
हैं। केवल भारतवर्षसे ही नहीं, अपितु लाहुल (Lahul),
स्पीती (Spiti), लदाख (Ladakh) और तिब्बतसे
लामा लोग त्रिशूल, घण्टा और डमरू लिये हुए इस शान्ति-
निकेतनमें आते हैं। ये सारे-के-सारे यात्री भगवान् शङ्कर—
अवलोकितेश्वर महादेवके मन्दिरकी ओर ही जाते हैं। उनमें-

से जो अधिक साहसी एवं उत्साही होते हैं वे उसी
पर्वतके दूसरे शिखरपर स्थित भगवान् शङ्करके दूसरे प्रभाव-
शाली विग्रह—महाकालकी ओर अपनी चित्तवृत्तिको लगाते
हैं। भगवान् शङ्करके अतिरिक्त और किसके इतने विविध
स्वरूपोंका वर्णन मिलता है?

उपनिषदोंमें शिवके रुद्ररूपको ईश्वर कहकर उसकी
महिमा गायी गयी है और उसके सम्बन्धमें यह लिखा गया
है कि वैदिक परम्परासे अभिन्न प्रत्येक आर्यको उनकी पूजा
करनी चाहिये। ऋग्वेद तथा अथर्वणमें शिवके रुद्ररूपको
मङ्गलमय कहा गया है, सारे वैदिकसाहित्यमें उन्हें अग्निका
रूप माना गया है। पृथ्वीके संयोगसे उन्हींसे उनचास
मरुद्गणोंकी उत्पत्ति कही गयी है। अथर्वणमें लिखा है—
भव (शङ्कर) ही गगन-मण्डलके अधिपति हैं। वही भू-
मण्डलके स्वामी हैं। वही विस्तृत वायु-मण्डलमें व्याप्त हैं।
शिवसे ही नादका सम्बन्ध है—जिससे संसारमें उत्पन्न होने-
वाले सारे पदार्थोंके नामोंकी कल्पना होती है। काम-कलाका
भी—जिससे सृष्टिका प्रादुर्भाव होता है—शिवके साथ सम्बन्ध
है। कार्य-कारण, योगविधि, दुःखान्त इन सबका मूल
शिव ही हैं। शिव योग-प्रवर्त्तक, ज्ञान, भक्ति, मुक्तिके दाता,
सत्य एवं सुन्दर तथा मृत्युञ्जय हैं। यदि हम सारे सद्गुणोंकी
परिभाषा करें तो उनके द्वारा इस महान् शक्तिके विविध
स्वरूपोंका ही वर्णन होगा।

त्रिमूर्तिके सिद्धान्तको माननेवाले भगवान् शङ्करको
प्रायः संहारकारी कहते हैं, अग्नि भी कुछ लोगोंके लिये
संहारकारिणी है, किन्तु अग्नि पुरुषोंके लिये वही
सर्गशक्ति है।

अग्नि और शिवके नामोंमें परस्पर इतना घनिष्ठ सम्बन्ध

है। अग्निसे हमें इसीलिये भय लगता है कि उसकी ध्वंसक शक्ति हमारे दृष्टिगोचर है, किन्तु उसकी रचनाशक्ति स्थूलरूपसे बुद्धिगम्य नहीं है। लोगोंको यह बात विशेषरूपसे युक्तिपूर्वक समझानेकी आवश्यकता है कि उनकी प्रकृतिके अनुसार अग्नि ही उनकी एकमात्र गति है। क्या कोई सद्वैद्य रोगीसे घृणा कर सकता है? अथवा जिस सिपाहीका दिल मारे भयके काँपता हो क्या वह संग्राममें विजय प्राप्त कर सकता है? इसप्रकार हम अपने सामने सबसे ऊँचा कर्त्तव्य रखेंगे और इस नीतिसे हमें अनित्य-पद्धतिका पता लगेगा। पहले तो जितने भी तत्त्व हैं, वे सब भयसे शून्य हैं। एक क्षणके लिये भयको दबा लेनेका अर्थ उसको निर्मूल कर देना नहीं है। हमें उन छोटे बालकोंका-सा व्यवहार नहीं करना चाहिये, जो आज तो साहससे भरे हुए हैं किन्तु दूसरे ही दिन एक कल्पित पदार्थके भयसे काँप उठते हैं।

हमें उन रँगरूटोंका-सा काम नहीं करना है जो आज किसी दुर्गपर विजय प्राप्त करनेको इसीलिये प्रस्तुत हैं कि कल वे सुखपूर्वक कोमल-कोमल गद्दोंपर जाकर पड़ रहेंगे। हमें भविष्यसे भयभीत नहीं होना चाहिये, क्योंकि सारे महाभूतोंमें अग्नि ही एक ऐसा तत्त्व है जो भयको सहन नहीं करता। अग्निका गुण संहार न समझकर रचना मानना चाहिये। अग्निके इन दोनों स्वरूपोंसे मानव-प्रकृतिकी असली परीक्षा हो सकेगी।

यह सत्य है कि पार्थिव नेत्रोंसे इस महान् तत्त्वकी निर्माण-शक्तिका पता लगाना कठिन है। सृष्टिके निमित्तको लेकर जो संहार होता है उसके विकास-क्रममें भी संहारसे लोगोंको भय लगता है और सृष्टिका वे लोग अनुभव ही नहीं कर सकते।

किन्तु जो अपने मनमें सृष्टिके सुन्दर भावको समझ लेता है वह इस बातको जान लेता है कि अग्निका सम्बन्ध गायत्रीसे है और इस महामन्त्रमें सारी शुभ शक्तियाँ पुञ्जीभूत हैं। मानव-हृदय, यदि वह भाव-शून्य नहीं हो गया है, केवल सौन्दर्यकी ही नहीं, अपितु उन सारे पदार्थोंकी अभिलाषा करता रहता है जो रचनात्मक विधानके अन्तर्गत हैं।

भगवान् शङ्करके सारे शक्तिशाली स्वरूपोंमेंसे हमें त्रिनेत्रके गूढ़ अर्थको—तीसरे नेत्रकी उत्पत्तिके रहस्यको—स्मरण रखना चाहिये। इसके सम्बन्धमें इतिहास यह कहता है कि

वह घटना हिमालयमें हुई थी जो सारी महान्, उदात्त एवं महिमान्वित वस्तुओंकी खान है। वहाँकी निधियाँ दिव्य हैं। वह प्रदेश मनुष्यजातिका प्रारम्भिक क्रीडास्थल है, समुद्रमन्थन यहीं हुआ था। इसी जगह सूर्योदयसे पूर्व एक वायु सञ्चरित होकर क्षीरसागरको आन्दोलित करने लगी। तेजस्वी देवताओंने वासुकि नागकी पूँछ पकड़ ली और मन्थन प्रारम्भ हुआ। कारागारकी भग्न दीवारोंकी भाँति मेघमण्डल विशीर्ण होकर गिरने लगे। सचमुच ही तेजोमय देव आ पहुँचे। किन्तु बात क्या है? हिमराशि शोणित-वर्ण हो रही है। मेघमाला भयावना रूप धारणकर एकत्र हो रही है और अभी एक क्षण पहले जो देदीप्यमान एवं सुन्दर था वही एकदम काला हो जाता है और युद्धका रुधिर-साव अन्धकारसे आच्छादित हो जाता है। देवासुरोंमें संग्राम छिड़ जाता है, चारों ओर विषकी ज्वालाएँ फैल जाती हैं और ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो प्रलय होने-को है। किन्तु शिव—नीलकण्ठ—अपनी कुछ भी परवा न करके और हमारे सामने त्यागका महान् आदर्श उपस्थित-कर उस विषको चढ़ा जाते हैं जो संसारका नाश करनेको प्रस्तुत हो रहा था। यह सृष्टि हमें भगवान् शङ्करके इस महान् त्यागपूर्ण कार्यका सदा स्मरण दिलाती रहेगी कि उन्होंने किसप्रकार संसारकी रक्षाके लिये स्वयं विष-पान कर लिया और जब कभी हम उनके 'नीलकण्ठ' इस नामको सुनते हैं हमें अवश्य ही उस महान् वीरोचित कार्य-का स्मरण हो आता है जो सृष्टिके आदिमें हुआ था और जिसे सुनकर मनुष्यका हृदय अदम्य उत्साहसे भर जाता है। इस सुन्दर घटनाका सुन्दर हिमालयके साथ कोई-न-कोई सम्बन्ध अवश्य होना चाहिये, क्योंकि सबसे ऊँची एवं सर्वोत्कृष्ट वस्तुओंका परस्पर चुम्बक और लोहेका-सा आकर्षण होता है। तिब्बतमें कुछ ऊँची श्रेणीके लामा-लोग इन बातोंको जानते हैं कि सारे भेदोंके ऊपर एक महती एकता है जो कुछ इने-गिने लोगोंको ही उपलब्ध होती है। लामालोग समष्टि-शरीरको धर्मकायके रूपमें मानते हैं। महान् आत्माओंके सबसे ऊँचे सम्बन्धको पहाड़ी भाषामें 'दोर्जेपुण्डक' (Dorjepundak) कहते हैं। वास्तवमें प्रत्येक महान् सत्य सिद्धान्त अन्तःकरणको एकता-की ओर, वीरतापूर्ण कार्योंके प्रति, सौजन्यके प्रति एवं आध्यात्मिकताकी ओर उन्मुख कर देता है। यदि किसी विवादके कारण मतभेद अथवा संघर्ष हो जाता है, तो उससे

यही समझना चाहिये कि उस सिद्धान्तपर उचित रीतिसे तथा मौलिक दृष्टिसे विचार नहीं किया गया। महानाद—सबका समन्वय करनेवाली ओंकार-ध्वनि—प्रकृतिकी उस अमोघ शक्तिशालिनी तन्त्रीको हिला देती है, जो वेदों, 'वाव' की तथा अन्य सभी उपकारी ग्रन्थोंको ज्ञात थी। कलियुगके अन्तके अन्धकारपूर्ण कालमें भी मनुष्य यदि किसी महान् आदर्शका अवलम्बनकर सौन्दर्य, आनन्द एवं एकताको प्राप्त हो सके तो यह एक महान् गौरवकी बात है। वह सचमुच धन्य है जो इस स्वार्थपरायणताके युगमें ऊँची-ऊँची भावनाओंकी ओर अग्रसर होकर आत्मोत्सर्गके सुन्दर कार्योंसे शक्तिका अर्जन करता है। वह भी धन्य है, जो आत्माके इसप्रकारके विकासको उत्तेजना

देता है। इस बातका पता लगानेके लिये कि कहाँपर माया है, और कहाँ आत्माके नित्य दिव्य मुक्ताफल हैं, राष्ट्रोंको अपनी निधियोंका ज्ञान होना आवश्यक है। संसारकी रक्षाके लिये ही भगवान् शङ्करने विषका पान किया था। शिवके तेजोमय निकेतनमें अमरनाथकी कन्दारमें स्वामी विवेकानन्दको एक महान् ज्योति प्राप्त हुई थी। शैव महात्मा शिवके प्रति अपनी श्रद्धा एवं उनकी आदर्श कृपा, प्रेम एवं आनन्दके गीत मस्त होकर गाते थे। उपमति नामक एक शैव महात्माने अपने 'तिरुल्ल-अरुल-पायान्' (अर्थात् ईश-कृपाका फल) ग्रन्थके निम्नलिखित ओजस्वी वाक्यमें भगवान् शङ्करकी दयासे मुक्ति मिलनेका तथा अनन्तताके दिव्य प्रकाशका वर्णन किया है—'भगवान्का धाम वहाँ है जहाँ खोज समाप्त होती है।'

शिवके अठारह नाम

(लेखक—भोप्रेमी महाशय)



भगवान् शंकरके बहुत नाम हैं। उनमें एक भी निरर्थक नहीं, सब सार्थक हैं। प्रत्येक नाममें नामके गुण, प्रयोजन और तथ्य भरे हैं। यदि उसका अर्थ सोचा जाय, या उसके प्रचार होनेका मूल देखा जाय तो अधिकांश नामोंसे भ्रम-निवृत्ति, मोह-नाश और सौभाग्य-लाभादि हो सकते हैं। भक्तोंके हित-साधनार्थ यहाँ शिवके अठारह नामोंका उल्लेख किया जाता है।

(१) 'शिव'—जो समस्त कल्याणोंके निधान हैं और भक्तोंके समस्त पाप और त्रितापके नाश करनेमें सदैव समर्थ हैं, उनको 'शिव' कहते हैं।

(२) 'पशुपति'—ज्ञानशून्य-अवस्थामें सभी पशु माने गये हैं (ज्ञानेन हीनाः पशुभिस्समानाः)। दूसरे जो सबको अविशेषरूपमें देखते हों, वे भी पशु कहाते हैं। अतः ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सभी पशु माने जा सकते हैं और शिव सबको ज्ञान देनेवाले तथा उनको अज्ञानसे बचानेवाले हैं, इसलिये वह 'पशुपति' कहाते हैं।*

* ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्तिताः।

तेषाम्पतिर्महादेवः स्मृतः पशुपतिः श्रुतौ॥

(चिन्तामणि धृत०)

(३) 'मृत्युञ्जय'—यह सुप्रसिद्ध बात है कि मृत्युको कोई जीत नहीं सकता। स्वयं ब्रह्मा भी युगान्तमें मृत्यु-कन्याके द्वारा ब्रह्ममें लीन होते हैं। परन्तु उनके अनेक बार लीन होनेपर शिवका एक बार निर्गुणमें लय होता है, अन्यथा अनेक बार मृत्युका ही पराजय होता है। इसीलिये वह 'मृत्युञ्जय' कहलाते हैं।

(४) 'त्रिनेत्र'—एक बार भगवान् शिव शान्तरूपसे बैठे हुए थे। उसी अवसरमें हिमाद्रितनया भगवती पार्वतीने विनोदवश होकर पीछेसे दोनों नेत्र मूँद लिये। नेत्र क्या थे, शिवरूप त्रैलोक्यके चन्द्र और सूर्य थे। ऐसे नेत्रोंके बन्द होते ही विश्वभरमें अन्धकार छा गया और संसार अकुलाने लगा। तब शिवजीके ललाटेसे युगान्तकालीन अग्निस्वरूप तीसरा नेत्र प्रकट हुआ। उसके प्रकट होते ही दशों दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं, अन्धकार हट गया और हिमालय-जैसे पर्वत भी जलने लग गये। यह देखकर पार्वती धनड़ा गयी और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगी। तब शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने संसारकी परिस्थिति यथापूर्व बना दी। तभीसे वे 'चन्द्रार्काग्निबिलोचन' अर्थात् 'त्रिनेत्र' कहलाने लगे।

(५) 'कृत्तिवासा'—वह होते हैं जिनके गजचर्मका वस्त्र हो। ऐसे वस्त्रवाले शिव हैं। उनको इसप्रकारका वस्त्र

रखनेकी क्या आवश्यकता हुई थी, इसकी स्कन्दपुराणमें एक कथा है। उसमें लिखा है कि जिस समय महादेव पार्वतीको रत्नेश्वरका माहात्म्य सुना रहे थे उस समय महिषासुरका पुत्र गजासुर अपने बलके मदसे उन्मत्त होकर शिवके गणोंको दुःख देता हुआ शिवके समीप चला गया। ब्रह्माके वरसे वह इस बातसे निडर था कि 'कन्दर्पके वश होनेवाले किसीसे भी मेरी मृत्यु नहीं हो सकती।' किन्तु जब वह कन्दर्पके दर्पका नाश करनेवाले भगवान् शिवके सामने गया तो उन्होंने उसके शरीरको त्रिशूलमें टोंगकर आकाशमें लटका दिया। तब उसने वहाँसे शिवकी बड़ी भक्तिसे स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने वर देना चाहा। इसपर गजासुरने अति नम्र होकर प्रार्थना की, कि 'हे दिगम्बर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपाकर मेरे चर्मको धारण कीजिये और अपना 'कृत्तियासा' नाम रखिये, जिसपर शिवजीने 'एवमस्तु' कहा और वैसा ही किया।

(६) 'पञ्चवक्त्र'—एक बार भगवान् विष्णुने किशोर-अवस्थाका अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया। उसको देखनेके लिये ब्रह्मा-जैसे चतुर्मुख तथा अनन्त-जैसे बहुमुख अनेकों देवता आये और उन्होंने एक मुखवालोंकी अपेक्षा अधिक आनन्द लाभ किया। यह देखकर एक मुखवाले शिवजीको बहुत क्षोभ हुआ। यह सोचने लगे कि यदि मेरे भी अनेक मुख और अनेक नेत्र होते तो भगवान् के इस किशोर रूपका सबसे अधिक दर्शन करता। बस, फिर क्या था; इस वासनाके उदय होते ही वह पञ्चमुख हो गये और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र बन गये। तभीसे इनको 'पञ्चवक्त्र' कहते हैं।

(७) 'शितिकण्ठ'—किसी समय बदरिकाश्रममें नर और नारायण तप कर रहे थे। उसी समय दक्षयज्ञका ध्वंस करनेके लिये शिवने त्रिशूल छोड़ा था। दैवयोगसे वह त्रिशूल यज्ञ विध्वंसकर नारायणकी छातीको भी भेद गया और शिवके पास आ गया। इससे शिव क्रोधित हुए और आकाश-मार्गसे नारायणके समीप गये, तब उन्होंने शिवका गला घोट दिया। तभीसे यह 'शिति (नील) कण्ठ' कहलाने लगे।

(८) 'खण्डपरशु'—उसी अवसरमें नरने परशुके आकारके एक तृणखण्डको ईषिकास्त्रसे अभिमन्त्रितकर शिवपर छोड़ा था और शिवने उसका अपने महत्प्रभावसे

खण्ड कर दिया था। तबसे यह 'खण्डपरशु' भी कहाते हैं।

(९) 'प्रमथाधिप'—कालिकापुराणमें लिखा है कि ३६ कोटि प्रमथगण शिवकी सदा सेवा किया करते हैं। उनमें १३ हजार तो भोगविमुख, योगी और ईर्ष्यादिसे रहित हैं। शेष कामुक तथा क्रीड़ा-विषयमें शिवकी सहायता करते हैं। उनके द्वारा प्रकटमें किसीका कुछ अनिष्ट न होनेपर भी उनकी विकटतासे लोग भयकम्पित रहते हैं।

(१०) 'गङ्गाधर'—संसारके हित और सगर-पुत्रोंके उपकारके लिये भगीरथने त्रिभुवनव्यापिनी गङ्गाका आवाहन किया, तब यह सन्देह हुआ कि आकाशसे अकस्मात् पृथिवीपर प्रपात होनेसे अनेक अनिष्ट हो सकते हैं। अतः भगीरथकी प्रार्थनासे गौरीशङ्करने उसे अपने जटामण्डलमें धारण कर लिया। इसीसे इनको 'गङ्गाधर' कहते हैं।

(११) 'महेश्वर'—जो वेदोंके आदिमें ओंकाररूपसे माने गये हैं और वेदान्तमें निर्गुणरूपसे स्थित रहते हैं वे महेश्वर कहाते हैं। अथवा सम्पूर्ण देवताओंमें प्रधान होनेसे भी 'महेश्वर' नामसे विख्यात हैं।

(१२) 'रुद्र'—दुःख और उसके समस्त कारणोंके नाश करनेसे तथा संहारादिमें क्रूर रूप धारण करनेसे शिवको 'रुद्र' कहते हैं।

(१३) 'विष्णु'—पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश इन पाँच महाभूतोंमें तथा जड-चैतन्यादि सम्पूर्ण सृष्टिमें जो सदैव व्याप्त रहते हैं उन्हींको विष्णु कहते हैं। यह गुण भगवान् शिवमें सर्वदा विद्यमान रहता है। अतः शिवको 'विष्णु' कहते हैं।

(१४) 'पितामह'—अर्यमा आदि पितरोंके तथा इन्द्रादि देवोंके पिता होने और ब्रह्माके भी पूज्य होनेसे शिवजी 'पितामह' नामसे विख्यात हैं।

(१५) 'संसारवैद्य'—जिसप्रकार निदान और चिकित्साके जाननेवाले सदैव उत्तम प्रकारकी महौषधियों और अनुभूत प्रयोगोंसे संसारियोंके समस्त शारीरिक रोगोंको दूर करते हैं उसी प्रकार शिव अपनी स्वाभाविक दयालुतासे संसारियोंको भवरोगसे छुड़ाते हैं। अन्य वेदादि शास्त्रोंमें यह भी सिद्ध किया गया है कि भगवान् शिव अनेकों प्रकारकी अद्भुत, अलौकिक और चमत्कृत ओषधियोंके ज्ञाता हैं। उनके पाससे अनेकों प्रकारकी महौषधियाँ

प्राप्त हो सकती हैं। और वे मनुष्योंके सिवा पशु, पक्षी और कीट-पतङ्गादि ही नहीं, स्थावरजङ्गमात्मक सम्पूर्ण सृष्टिके प्राणिमात्रकी प्रत्येक व्याधिके ज्ञाता और उसके दूर करनेवाले भी हैं। इसीलिये वे 'संसारवैद्य' सिद्ध हुए हैं।

(१६) 'सर्वज्ञ'—तीनों लोक और तीनों कालकी सम्पूर्ण बातों (जिनको अन्य लोग नहीं जान सकते) सदाशिव अनायास ही जान लेते हैं। इसीसे उनको 'सर्वज्ञ' कहते हैं।

(१७) 'परमात्मा'—उपर्युक्त सम्पूर्ण गुणोंसे संयुक्त

होने और समस्त जीवोंके आत्मा होनेसे श्रीशिव 'परमात्मा' कहाते हैं।

(१८) 'कपाली'—ब्रह्माके मस्तकको काटकर उसके कपालको कई दिनोंतक करमें धारण करनेसे आप 'कपाली' कहे जाते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिसे ऐसे नामोंका तथा उनके तथ्य और कथाओंका कुछ और ही प्रयोजन है। सम्भवतः यह अन्य किसी लेखमें विदित हो। इसप्रकारके विश्वव्यापी, विश्व-रक्षक और विश्वेश्वर महादेवका प्राणिमात्रको स्मरण करना चाहिये।

श्रीवल्लभाचार्यके हृदयमें श्रीशिवका स्थान

(लेखक—देवर्षि पं० श्रीरमानाथजी शास्त्री)



हि-सम्प्रदायको प्रकाशमें लानेवाले, अतएव पुष्टिमार्गके आचार्य श्रीवल्लभाचार्य हैं। लोकाज्ञातहितकर वैदिकार्यको प्रकाशमें लानेवाले महापुरुष आचार्य कहलाते हैं। श्रीवल्लभाचार्य-जीके ग्रन्थ दो तरहके हैं, परोक्षपरतन्त्र और प्रत्यक्षपरतन्त्र। सुबोधिनी, अणु-भाष्य, पुरुषोत्तमसहस्रनामादि ग्रन्थ प्रत्यक्षपरतन्त्र ग्रन्थ हैं और तत्त्वदीप, षोडश-ग्रन्थ प्रभृति परोक्षपरतन्त्र ग्रन्थ हैं। दोनोंमें उन्होंने कहीं भी श्रीशंकरकी निन्दा नहीं की है। प्रत्युत अपने परोक्षपरतन्त्र ग्रन्थोंमें श्रीशिवको सर्वोत्तम मान दिया है।

षोडश ग्रन्थोंमें सर्वप्रथम 'तत्त्वग्रन्थ' में श्रीवल्लभाचार्य कहते हैं—

वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ ।
ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ ॥
निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता ।
भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि ॥
भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः ।
अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि ।
... .. द्वितीयार्थे महावक्त्रमः ॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीन देवता निर्गुण हैं; क्योंकि निर्गुण भी पुरुषोत्तम परब्रह्म ही प्रकृतिके तीन गुणों-

को अधिष्ठेयत्वेन (नियममें रखनेकी इच्छासे) ग्रहणकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप हो गये हैं। अथर्वशिखा, श्वेताश्वतरीय एवं कैवल्य आदि उपनिषदोंमें शिवका और महानारायणादि उपनिषदोंमें विष्णुका परब्रह्मरूपसे वर्णन भी है ही। इसीलिये शिवशास्त्रोंमें श्रीशङ्करको और विष्णुशास्त्रोंमें श्रीविष्णुको निर्दोष और पूर्णकल्याणगुण कहा गया है। श्रीशिव और विष्णु दोनों भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। तथापि दोनोंने दो कार्य पृथक्-पृथक् ले रखे हैं। इसलिये दोनों ही दोनों पुरुषार्थोंका दान नियतरूपसे नहीं करते। श्रीशिव सर्वदा मोक्षका भोग करते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

इसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भंगाः

स्वात्मारतस्याविदुषः समीहितम् ।

यैर्वल्लभाभरणानुलेपनैः

श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥

आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य जीवलोकस्य राधसे ।

शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान् भवः ॥

लोकमें यह बात सिद्ध है कि स्वामी स्वयं जिस पदार्थका उपभोग करता है उसे अन्य किसीको नहीं देता। शिवजी मय एवं बाणसदृश अतिप्रिय पुरुषोंको मोक्ष देते भी हैं पर नियतरूपसे नहीं देते। विष्णु निर्गुण ब्रह्म रहते हुए भी सात्त्विक जगत्के नियामक हैं। इसी प्रकार श्रीशिवजी भी

निर्गुण ब्रह्म होते हुए तामस जगत्के नियामक हैं। यही बात श्रीवल्लभाचार्यने अपने सिद्धान्तमुक्तावली ग्रन्थमें कही है—

जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवास्ततः ।

देवतारूपवत् प्रोक्ताः ॥

जगत् राजस, सात्त्विक और तामस तीन प्रकारका है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उक्त तीनों प्रकारके जगत्को नियममें रखनेके लिये निर्गुण ब्रह्म होते हुए भी उस-उस जगत्के उपास्यदेव कहे गये हैं।

ऐसी अवस्थामें श्रीशिवजी सर्वसाधारणरूपसे मोक्षका दान नहीं करते। इस बालबोधमें श्रीवल्लभाचार्यका श्रीशिवजीके विषयमें आशय देखा जाय तो यही निकलता है कि श्रीशिवजी निर्गुण परब्रह्मके अवतार हैं, स्वयं ब्रह्म हैं, निर्दोष हैं, तामस जगत्के अधिष्ठाता हैं, सृष्टिसंहारकर्ता हैं, उपास्य-देव हैं, जगत्के हितकर्ता हैं, मोक्षशास्त्रके प्रवर्तक हैं, मोक्ष देनेकी सामर्थ्य रखते हैं और मोक्षदाता भी हैं।

श्रीवल्लभाचार्यजीका एक पत्रावलम्बन-नामक ग्रन्थ भी है। यह ग्रन्थ आचार्यपादने उत्तरावस्थामें बनाया था, यह बात प्रसिद्ध है। इसमें भी श्रीशिवजीके विषयमें श्रीवल्लभाचार्य लिखते हैं—

स्थापितो ब्रह्मवादो हि सर्ववेदान्तगोचरः ।

काशीपतिखिलोक्तेः महादेवस्तु तुल्यतु ॥

‘यह सर्वश्रुत्युक्त ब्रह्मवाद मैंने स्थापित किया है, इससे काशीश(विश्वनाथ)त्रिभुवननाथ श्रीमहादेव मेरे ऊपर प्रसन्न हों’

यह तो बात परोक्षपरतन्त्र-ग्रन्थोंकी हुई। प्रत्यक्ष-परतन्त्र-ग्रन्थोंमें सुबोधिनी श्रीभागवतकी टीका (भाष्य) है। उसमें तो शिवनिन्दाका अवसर ही कहाँ है? वहाँ तो शिवजीकी स्तुति ही मिलेगी, निन्दा नहीं। अणुभाष्यमें भी यह अवसर नहीं। पुरुषोत्तमसहस्रनाम भी श्रीमद्भागवतका ही अति संक्षेप ग्रन्थ है। उसमें शिवकी निन्दा कहाँ?

इस तरह पुष्टि-सम्प्रदायको प्रकाशमें लानेवाले मूलचार्य श्रीवल्लभाचार्यके किसी ग्रन्थमें भी शिवनिन्दा नहीं है। जब मूलमें वस्तु ही नहीं तो वह की जाती है, यह कैसे कहा जाय? प्रत्युत पुष्टि-सम्प्रदायके मूलचार्य श्रीवल्लभाचार्यके ग्रन्थोंसे तो यह सिद्ध होता है कि उनके हृदयमें श्रीशिवके लिये सर्वोत्तम स्थान है।

ठीक है, श्रीवल्लभाचार्यजीके ग्रन्थोंमें तो शिवनिन्दा नहीं मिलती पर कितने ही पुष्टिमागीय श्रीशिवका सम्मान यथावत् नहीं करते, उनकी सेवा नहीं करते, यह क्यों?

यह क्यों? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि अपनी-अपनी प्रकृति ही इसमें कारण है। और प्रकृति सत्त्वादि गुणयुक्त होती है। सत्त्व आत्माका यथार्थ प्रकाश कराने-वाला है। अतएव जिसके हृदयमें सत्त्वगुणका भाग अधिक रहता है वह प्रकृति और आत्माके स्वरूपको पहचानने लगता है और आत्माकी तरफ अपने-आप खिंचता है। किसीकी भी निन्दा करना उसे नहीं सुहाता, तब शिवजीकी निन्दा तो वह करेगा ही कैसे? वस्तुके स्वरूपको अयथार्थ-रूपसे प्रकाशित करना ही निन्दा कहलाता है। यह धर्म तमोगुणका है—‘गुरु वरणकमेव तमः।’ अतएव जिनकी प्रकृतिमें तमोगुण होता है वे ही किसीकी निन्दा करना पसन्द करते हैं और वे ही शिवजीकी निन्दा भी करते होंगे। प्रकृतिका ठेका सम्प्रदाय किंवा आचार्यने नहीं लिया है।

अच्छा, आपने जो शिवजीकी सेवा नहीं करनेके विषयमें कहा सो ठीक है। इसका उत्तर देना उचित प्रतीत होता है। प्रथम तो प्रकृतिके त्रिगुणात्मक होनेसे मनुष्यमात्रकी रुचि भिन्न-भिन्न होती है। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार ही मनुष्य वस्तुपरिग्रह करता है। अपनी प्रकृतिके अनुसार यदि कोई शिवजीकी सेवा न करता हो तो वह शिवद्वेष करता है या उनकी निन्दा करता है यह कहना या समझ लेना सर्वथा बेसमझी है। यदि एक वस्तुके परिग्रहमात्रसे अन्यका निन्दक किंवा द्वेषा गिना जाय तो फिर सारा जगत् ही द्वेषा और निन्दक ठहरेगा। क्योंकि सारा जगत् सारे जगत्का परिग्रह या सेवन नहीं कर सकता। इसीलिये तो परब्रह्मने अनेक अवतार धारण किये हैं जिससे कि अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सब लोग उनका भजन कर सकें।

परब्रह्मने जगत् रूपी कार्यके लिये प्रकृतिके सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंका करणरूपसे ही ग्रहण किया है। निरन्तर तथा सर्वदाके लिये ग्रहण किया है, इसलिये वे उनकी उपाधि हो गये। अब जब कोई चारमुख, हंसवाहन

१—तथा चैते गुणाः कार्यार्थं करणत्वेन गृहीता अपि निरन्तरग्रहणादुपाधिरूपा जाताः तत्रैवं निर्णयः । सेव्यः सेवकं यादृशरूपं पश्यति स्वस्यापि तादृशं रूपं सम्पादयति । साधनानि च तानि यद्यपि अपहृतपाप्मानं भगवन्तमन्यथाकर्तुं न शक्नुवन्ति तथापि जीवमन्यथा कुर्वन्त्यपि । ततश्च यादृशेन रूपेण साधनेन वा नान्यथाभावस्तादृशरूपवानेवेश्वरः सेव्यः, नाशशङ्काऽभावात् । यदि पुनः सेवकस्य बुद्धिर्नोपाधिपर्यवसायिनी, तत्र यत्र कचित् सेवयामपि न काचिच्छिन्ता । यथा ब्रह्मविदः....।

आदिका वर्णन करता है तो अब्रह्मवेत्ता (अनात्मग्राही) लोग ब्रह्माको ही समझ लेते हैं। जब कोई साँप, बिच्छूके गहनों, भस्म-धारण, गङ्गाधर आदि वर्णन करता है तो लोग शिवको ही समझते हैं। इस तरह सब-का-सब भजन उपाधि-पर ही आकर टहरता है, परब्रह्मपर नहीं। यदि सेवककी बुद्धि उपाधियोंका ग्रहण न कर केवल परब्रह्माका ही ग्रहण करती तब तो कोई हानिकी सम्भावना ही नहीं थी, किन्तु सो तो है नहीं। यथा-तथा प्रकृतिवाले सेवकलोग अनात्मदृष्टि होनेसे अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उपाधिमें ही आसक्त होते हैं। इसलिये जिस रूपके और जिन साधनोंद्वारा सेवन करना अच्छा लगे, उन्हींसे करना ही उचित है। उन्हींसे उसे उच्चगतिकी प्राप्ति होती है और नाशकी शङ्का भी नहीं रहती। इसलिये कोई शिवजीका और कोई विष्णुका ही भजन करता हो तो कोई दोष नहीं है।

एक दूसरी बात और है। भजन दो प्रकारसे होता है—धर्मरूपसे और भजनरूपसे। अपने पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये (स्वार्थके लिये) विधिके परवश होकर जो भजन किया जाता है वह धर्मरूपसे भजन कहा जाता है और जो सेव्यके सुखके लिये, पुरुषार्थवश नहीं, किन्तु प्रेमपरवश होकर सेवन किया जाता है वह भजनरूपसे सेवा कही जाती है। यथार्थ स्वरूपका यथार्थ ज्ञान न होनेसे और प्रेमके भी न होनेसे आजकलका भजन केवल धर्मरूपसे ही होता है इसलिये वह उपाधि-पर्यवसायी होता है। ऐसी अवस्थामें अपने प्रकृतिगुणके अनुसार स्वरूपमें उन-उन साधनोंद्वारा भजन करना ही श्रेयस्कर होता है। और भक्तिमार्गमें तो, विशेषकर पुष्टिमार्गमें, सेवाका विषय सेव्यरूप ही प्रधान रहता है, साधन और प्रयोजन दुर्बल रहते हैं। अतएव हर किसी रूपका भी सेवन करना भयावह नहीं हो सकता।

इसलिये तत्तन्मार्गमें अधिकारानुसार परब्रह्मके उन-उन स्वरूपोंकी सेवा करनेका नियम कर दिया गया है। उनके लिये उन नियमोंपर चलना ही उचित है। अतः श्रीकृष्णमार्गीय जीव यदि श्रीशिवकी सेवा न करे तो उसपर श्रीशिवद्वेषकी आशङ्का करना बेसमझी है और श्रीशिवभक्त यदि श्रीकृष्णकी सेवा न करता हो तो उसपर श्रीकृष्ण-द्वेषका कलंक भी नहीं लग सकता।

नेदं भक्तिमार्गभजनं, किन्तु स्वपुरुषार्थसिद्धये धर्ममार्गेण।
भक्तिमार्गे तु विषयस्य प्राधान्यात् प्रयोजनस्य दुर्बलत्वात् सर्वाण्येव
रूपाणि भजनीयानि। (सुबोधिनी)

यह तो निर्विषयसेवन-पूजनकी बात हुई। नैमित्तिक सेवनकी बात दूसरी है। जो पूजन किसी निमित्तसे होता है वह नैमित्तिक पूजन कहा जाता है—जैसे तीर्थयात्राके समय महाकालका पूजन किंवा श्रीविठ्ठलनाथजीका पूजन और विवाहमें गणपतिका किंवा विष्णुका पूजन। यह पूजन तो धर्म (कर्त्तव्य) रूप है, इसलिये करना ही चाहिये। जो शिव-मार्गी है उसे विष्णु-पूजन और जो विष्णुमार्गी है उसे शिवका पूजन करना ही उचित है, क्योंकि शास्त्र अनुलङ्घनीय है। तीर्थादि शास्त्र सामान्य हैं अतएव सर्वाधिकारियोंको मान्य हैं, और कर्त्तव्याकर्त्तव्यमें शास्त्र ही प्रमाण है—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

कितने ही मनुष्य भाव-चोर होते हैं। ये भाव-चोर पुरुष सभी मार्गोंमें होते हैं। उनके विषयमें मेरा कोई वक्तव्य नहीं है क्योंकि 'परस्वभावकर्माणि न प्रशंसन्त गृह्येत्।'।

एक सज्जन धनिक गणपतिका पूजन कर रहे थे। जब पूज्यदेवको यन्त्र पहनानेका समय आया तो अक्षत चढ़ाकर बोले कि 'वस्त्रार्थे अक्षतान् समर्पयामि।' तो हमने कहा कि 'महाशय! अगर आप स्नान करके गीले कपड़ेसे खड़े हों और आपका नौकर यदि एक मुट्ठी चावल आपके सिरपर डालकर कह दे कि 'वस्त्रार्थे अक्षतान् समर्पयामि' तो कहिये कैसी बने?' इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि अजी साहब, ये तो देवता हैं, इन्हें वस्त्रकी क्या अपेक्षा है? ये तो हमें देते हैं, इनके यहाँ वस्त्रकी क्या कमी है?' इसी प्रकार बहुत-से लोग कह बैठते हैं कि अजी क्या शिव और क्या विष्णु, भगवान् तो सब एक हैं। बात ठीक है, यदि उन लोगोंकी बुद्धि इस तरह सहजमें ही निर्गुण और निरुपाधिक हो चुकी है तो उत्तम है, अन्यथा उनके विषयमें हम कुछ कहना नहीं चाहते। पाठक स्वयं अपना-अपना मत निश्चय कर सकते हैं।

हम तो इतना ही जानते हैं कि सम्प्रदायप्रवर्तक आचार्यगण भगवान्के अवतार होते हैं, सर्वशास्त्रोंके तत्त्वज्ञ होते हैं और सात्त्विक-प्रकृति किंवा निर्गुण-प्रकृति होते हैं; इसलिये उनके हृदयमें राग-द्वेषका होना असम्भव है। वे तो सबको ब्रह्मरूप और भगवद्रूप ही देखते हैं। श्रीवृद्धभाचार्यजीके हृदयमें श्रीशिवजीके लिये कितना उत्तम स्थान है यह हम उन्हींके वचनोंसे स्पष्ट दिखा चुके हैं। ईश्वरके लिये जो स्थान होना चाहिये वही स्थान शिवजीके लिये उनके हृदयमें है।

ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी एकता

(लेखक—पं० श्रीनित्यानन्दजी जोशी, साहित्यशास्त्राचार्य)

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे । त्रयीमयाय त्रिगुणारमधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥

●●●● स्वज्ञानियोंने अपनी अगाध श्रद्धा और
● त ● अन्तर्मुखी शुद्ध बुद्धिके द्वारा पिण्ड-ब्रह्माण्डमें
●●●● ओतप्रोत तथा उससे भी परे स्वतन्त्र, स्वयम्भू,
स्वसंवेद्य तत्त्वका अनुभव करके 'उंकेकी चोट
कह दिया है कि वह निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापी, अनाद्यनन्त,
सच्चिदानन्द, सकलैश्वर्यसम्पन्न परम तत्त्व अपनी महिमामें
प्रतिष्ठित 'एकमेवाद्वितीयम्' है ।

शास्त्रोंमें उस परमात्मा भगवान्का वर्णन महर्षियोंने
तीन प्रकार—सगुण-साकार, सगुण-निराकार और निर्गुण-
निराकाररूपसे किया है । उनके मतसे परमात्मा सत्यसङ्कल्प,
सकलकलानिधान, दयासागर, भक्तवत्सल, परम पवित्र,
परम उदार, परम पूज्य है ।

वह सगुण होकर भी निर्गुण है, साकार होकर भी
निराकार है, अपाणिपाद होकर भी ग्रहण और गमन करने-
वाला है, 'सर्वेन्द्रियगुणाभासम्' होनेपर भी 'सर्वेन्द्रिय-
विवर्जितम्' है, दूर है और समीप है, निर्विकल्प होकर भी
सविकल्प है, 'अवाङ्मनसगोचरम्' होकर भी बुद्धिगम्य है ।
वह 'अणोरणीयान्महतो महीयान्' सब कुछ है । इसप्रकार
परस्पर-विरोधी वर्णन करनेपर यद्यपि परमेश्वरमें अलौकिकत्व
सिद्ध हो जाता है तथापि यह उसका 'सर्वाङ्गीण वर्णन नहीं
है, क्योंकि अनित्य शब्द उस नित्यका निर्वचन नहीं कर
सकता । इसीसे अन्तमें शास्त्रोंने यह कह दिया कि परमात्मा
अनाद्यनन्त, निर्गुण, निरवयव, निर्विकार, 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्'
अनिर्वचनीय और 'नेति' 'नेति' है ।

इसप्रकार परमेश्वरका अनिर्वचनीयत्व दिखलाकर
उपनिषदोंमें स्पष्ट कह दिया है कि परमात्मा मन-बुद्धिका विषय
नहीं है । क्योंकि वह तो 'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा' है ।
मन-वचनके द्वारा उस परब्रह्मका निर्वचन नहीं हो सकता ।
वह पञ्चमहाभूतोंके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—
इन पाँच गुणोंसे रहित, अनादि, अनन्त और अव्यय है ।
वह किसी भाँति जाना नहीं जा सकता, क्योंकि 'विज्ञाता-
रमरे केन विजानीयात् ।' केवल ज्ञानी और भक्तजन शुद्ध
अन्तर्मुखी चित्तवृत्तिके द्वारा अन्तर्ज्ञान प्राप्त करके उसका

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' रूपमें अनुभव करते हैं । वह बतलाने-
की वस्तु नहीं है, वह तो गूँगेका गुड़ है ।

उसी अचिन्त्य परमेश्वरकी अतर्क्य लीलासे साम्यावस्था-
में स्थित त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें गुण-क्षोभ होकर सूक्ष्म-स्थूल,
निरिन्द्रिय-सेन्द्रिय, तैजस-तामस, दृश्य-अदृश्य, चर-अचर,
देव-दानव, पशु-पक्षी और मनुष्यादि विविधरूपसे विभिन्न
सृष्टिप्रवाह उसके रजोगुणप्रधान रूपसे होता है । उस
समय नानाविध शक्ति-सम्पन्न वही परब्रह्म सगुण होकर
हिरण्यगर्भ या ब्रह्मदेवके नामसे प्रसिद्ध होता है । श्रुतिमें
कहा है—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताम्रं

भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

इस भाँति जब सृष्टिका नानाविध प्रसार होनेपर उसका
पालन या रक्षण अत्यावश्यक हो जाता है तब वही भगवान्
सत्त्वगुणप्रधान विष्णुरूपसे इसका पालन करते हैं ।
अन्तमें प्राणिमात्रकी मङ्गलमय कामनासे परमेश्वर तमोगुण-
प्रधान शिवरूपमें प्रकट होकर इसका संहार करने लगते हैं ।
इसी अभिप्रायसे कविकुलगुरु कालिदासने भगवान्की इस-
प्रकार स्तुति की है—

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनुबिभ्रते ।

अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने ॥

अर्थात् सृष्टि, स्थिति, संहाररूप कार्य करनेसे ब्रह्मा, विष्णु
और शिवरूपसे स्थित हे परमात्मन् ! तुझे नमस्कार है ।
जिसप्रकार जलती हुई लालटैनमें हम क्रमशः तीन तरहकी
लाल, सफेद और काली-चिमनीकी लगाकर देखें तो मादूम
पड़ेगा कि चिमनीकी विभिन्नतासे प्रकाशमें कुछ भेद अवश्य
प्रतीत होता है किन्तु ज्योतिकी स्वरूपावस्थितिमें कुछ भेद
नहीं है । ठीक यही दृष्टान्त त्रिगुणसम्पन्न दीखनेवाले
त्रिदेवोंमें है ।

एक ही परमेश्वर इस विश्वमें विविध गुणसम्पन्न होकर
कहीं किसीका आविर्भाव और तिरोभाव अथवा उत्कर्षा-
पकर्ष करके अनेक लीला करता हुआ अनेक नाम, रूपसे
पुकारा जाता है, किन्तु इससे उसकी स्वरूपावस्थितिमें

तनिक भी भेद नहीं पड़ता। अर्जुनको 'रुद्राणां शङ्करश्चासि' या 'धाताहं विश्वतोमुखः' या 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' ऐसा केवल मौखिक उपदेश ही भगवान् श्रीकृष्णने नहीं दिया; बल्कि उसकी 'द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम' इस प्रार्थनापर विश्वरूपदर्शन कराके उसीके मुखसे—

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वास्तथा भूतविशेषसङ्खान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥

—कहलाकर उसे सन्देहमुक्त कर दिया।

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रकी भगवन्नामावलीमें भी 'सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुः' 'हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवः' या 'ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा' इत्यादि देखकर यही निर्णय किया गया है कि त्रिदेवोंमें गुणानुसार दृष्टिभेद होनेपर भी वस्तुतः एकत्व है।

किन्तु, कुछ लोग अभाग्यवश इस विषयको अच्छी तरह न समझकर ब्रह्मा, विष्णु, शिवमें भेद-भावना करके बड़ी भारी भूल करते हैं। इसी कारण भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय-के लोगोंमें मनोमालिन्य एवं द्वेष दिखायी देता है। ऐसे लोगोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे साम्प्रदायिक दुराग्रहमें न पड़कर ज्ञान और उपासनाकी दृष्टिसे समन्वय करके शास्त्रावलोकन करें।

इस विवेचनसे यह स्पष्ट है कि ब्रह्मात्मैक्य आनन्दमय स्थितिका अनिर्वचनीय अनुभव होनेपर मनुष्यको 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' या 'नेह नानास्ति किञ्चन' इस अद्वैत-सिद्धान्तमें सन्देह नहीं रहता, किन्तु द्वैतीप्रदेशमें प्रवेशकर जब वह विचार करता है तो उसे प्रतीत होता है कि वही परम कारुणिक परमेश्वर असंख्य विचित्र शक्तिसम्पन्न होकर प्राणियोंके उद्धारके लिये गुणात्मक और लीलात्मक अनेक अवतारोंको धारण करता है। तब उस विचित्र नटकी 'अघटनघटनापटीयसी' मायाके चक्करमें फँसकर यदि मनुष्य भ्रमवश उसमें अनेकत्व देखे तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि बड़े-बड़े लोग भी इस चक्करसे न बच सके। दक्ष-प्रजापति-जैसे प्रजापतियोंको भी विष्णु और शिवमें भेद-भावना हो गयी थी, किन्तु भगवत्कृपासे उनका वह अज्ञानान्धकार थोड़ी ही देरमें दूर हो गया। भगवान् श्रीमद्भागवतमें स्वयं श्रीमुखसे उन्हें उपदेश दिया है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्ने संज्ञां क्रियोचिताम् ॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥
यथा पुमान् स्वप्नेषु शिरःपाण्यादिषु कश्चित् ।
पारव्यवृद्धिं कुरुत एवं भूतेषु मत्परः ॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥

अर्थात् मैं, ब्रह्मा और शिव त्रिगुणात्मिका मायाके सृष्टि-स्थिति-संहाररूपी कार्य करनेके कारण पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं। यथार्थमें हम एक हैं। हमारी मायाको न जानकर ही अज्ञान भ्रमवश हममें भेददृष्टि रखते हैं। किन्तु ज्ञानी पुरुष जिस भाँति अपने शरीरावयवोंमें भेद नहीं देखते उसी तरह वे प्राणिमात्रमें आत्मभेद नहीं देखते। जिनका यह भेद-भाव छूट जाता है वे ही परम शान्तिको प्राप्त करते हैं। यही बात अक्षरशः शिवपुराणमें भी अङ्कित है। यथा—

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्माविष्णुहराख्यया ।
सर्गरक्षालयगुणैः निष्कलोऽयं सदा हरे ॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति ।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत् ॥

बहुत लोगोंकी यह भी धारणा है कि यह साम्प्रदायिक मनोमालिन्य एवं द्वेष तत्तत् पुराणोंमें तत्तत् देवकी महिमा और अन्य देवोंकी न्यूनता वर्णन करनेके कारण हो गया है। इसका उत्तर यही है कि जिसप्रकार पूर्व-मीमांसामें महर्षि जैमिनिने ब्राह्मणग्रन्थोंमें कर्मकाण्ड-विषयक विभिन्न वचनोंकी एकवाक्यता करके भेद मिटा दिया और आत्मविषयक उपनिषदोंके असामञ्जस्यकारक वचनोंका समन्वय महर्षि वेद-व्यासने अपने ब्रह्मसूत्रोंमें कर दिया है, उसी प्रकार यदि कोई सच पुराणोंकी एकवाक्यता करके देखे तो अन्तमें यही निष्पन्न होगा कि उपासनाकी दृष्टिसे मनुष्यको अपने स्वभावानुसार किसी एक देवतामें अनन्यभावसे भक्ति करके ज्ञान प्राप्तकर आत्मोद्धार करना चाहिये। इसीलिये तत्तत्पुराणमें तत्तत्-देवकी महिमा विशेषरूपसे गायी गयी है क्योंकि अल्पज्ञ जन एकबारगी भगवान्की विराटरूपसे या सर्वतोभावेन उपासना नहीं कर सकता। यदि भेद-भाव ही पुराणोंका

प्रतिपाद्य विषय होता तो महाभारतमें महर्षि व्यासदेव 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' ऐसा न कहते। और, जब तर्क, युक्ति और आत्मानुभवके द्वारा महर्षियोंने उपनिषदादि ग्रन्थोंमें भलीभाँति छानबीन करके अन्तमें एक ही तत्त्वके अस्तित्वकी सिद्धि की है तो फिर यदि व्यासदेव प्रत्येक पुराणके प्रत्येक देवको ही स्वयम्भू, अज, अनादि और स्वतन्त्र और विभिन्न मानते तो वह युक्ति, तर्क, भगवद्भक्त और योगियोंके अनुभवके प्रतिकूल होकर कल्याणजनक नहीं होता और उपनिषदादि ग्रन्थोंकी महत्ता और व्यासजीके प्रति संसारमें इतना आदरभाव भी न पाया जाता। और तो क्या, व्यासकृत ब्रह्मसूत्रका भी कभीका तिरोभाव हो गया होता। किन्तु व्यासजीने प्राणिमात्रके उपकारके लिये ही पुराणोंका निर्माण किया है, जिनमें बाहरी भेद दीखनेपर भी भीतरी उपासना और ज्ञानकी दृष्टिसे समन्यय करनेपर अपने आप एक ही तत्त्व अवशिष्ट रह जाता है। चाहे आप उसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि कुछ ही नाम दे डालिये।

उपर्युक्त श्रीमद्भागवत तथा शिवपुराणसे भी यह स्पष्ट है कि त्रिदेवोंमें गुणजन्य भेद होनेपर भी वास्तविक अभेद है। यही बात विष्णुपुराणसे भी पुष्ट होती है—

सृष्टिस्थित्यन्तकर्णो ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ।

स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥

अर्थात् एक ही भगवान् सृजन्, रक्षण और हरणरूप कार्य करनेसे ब्रह्मा-विष्णु-महेश नामको प्राप्त होते हैं। यही बात नारायणाथर्थांश उपनिषत्में भी लिखी है—

अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत, प्रजाः सृजेयेति ।
नारायणाद्ब्रह्मा जायते, नारायणाद्बुद्धो जायते, नारायण
एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् । निष्कलङ्को निरञ्जनो
निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न
द्वितीयोऽस्ति कश्चित् ।

अर्थात् नारायणकी अनिर्वचनीय लीलासे ही सब कुछ हुआ है और नारायणातिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। यही कथन स्पष्टरूपेण बृहदारदीय पुराणका भी है—

नारायणोऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरञ्जनः ।

तेनेदमखिलं व्यासं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।

तमादिदेवमजरं केचिदाहुः शिवाभिधम् ।

केचिद्विष्णुं सदा सत्यं ब्रह्माणं केचिदूर्ध्वरे ॥

अर्थात् घटघटवासी और समस्त विश्वमें ओतप्रोत एक

ही अलौकिक शक्तिका भिन्न-भिन्न नामसे व्यपदेश किया जाता है। मार्कण्डेय पुराणका भी वचन इसी बातको प्रकारान्तरसे प्रकट करता है।

‘लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ।’

‘एकैव सा महाशक्तिस्तया सर्वमिदं जगत् ।’

‘एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे ।

चक्षुष्मन्तोऽनुपश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ॥’

अर्थात् एक ही महाशक्ति आधार-भेदसे भिन्न-भिन्न शक्तिरूपमें प्रकाशित हो भिन्न-भिन्न कार्य करती है। वह अचिन्त्या होनेपर भी पुरुष और स्त्री दोनों रूपोंको धारण कर लेती है। इस तत्त्वको विरले ज्ञानचक्षुवाले भाग्यवान् ही समझ पाते हैं। भगवती श्रुतिमें तो कहीं पुरुषरूपसे ‘पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्’ तो कहीं ‘विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् । सर्वो ह्येष रुद्रः’ शिवरूपसे एक ही परमात्माका विवेचन है।

इस संक्षिप्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो गया कि ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें त्रिगुणात्मिका मायासे ही केवल माया-मोहित जीवोंको वैचित्र्य और विभिन्नता प्रतीत होती है, यथार्थमें कुछ भी भेद नहीं है। इसलिये इस विषयमें जो साम्प्रदायिक मनोमालिन्य और असहिष्णुता देखी जाती है वह कदापि शास्त्रानुमोदित नहीं कही जा सकती।

इस विषाक्त महान् अनर्थकारी साम्प्रदायिक द्वेषको समूल नष्ट करनेके लिये ही गोस्वामी तुलसीदासजीने बालकाण्डमें भगवान् शङ्करके मुखसे श्रीरामजीकी महिमा ‘मुनि धीर जोगी सिद्ध सन्तत विमल मन जेहि ध्यावहीं’ इत्यादिका गान कर लङ्काकाण्डमें रामेश्वरकी स्थापना करनेपर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजीसे कहलवा दिया—

संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास ।

ते नर करहिं कलपमरि, घोर नरकमहँ बास ॥

त्रिदेवोंकी एकतापर इसी प्रकार बहुत-से प्रमाण दिये जा सकते हैं। परन्तु लेखके बढ़ जानेके भयसे यहाँ ही विश्राम किया जाता है।

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।

स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं सनातनम् ।

ज्ञात्वा तं सृष्ट्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥

वेदोंमें रुद्रस्वरूप

(लेखक—स्वामी श्रीशङ्करानन्दजी गिरि)

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं

नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।

किमावरीवः कुह कस्य शर्म-

जग्मः किमासीद्बहनं गभीरम् ॥

(ऋग्वेद १०।१२९-१)

‘उस महाप्रलयमें मायारूप कारण (असत्) न था और न सूत्रात्मारूप कार्य (सत्) था, यह अधोभागवर्ती रजतकपाल न था और न मध्यभागवर्ती अन्तरिक्ष था । उस आकाशसे परे वह प्रकाशयुक्त ऊर्ध्वकपाल जो दुर्गम और अगाध है क्या था ? यह जगत् किससे ढका हुआ था, किस अवस्थामें था और किसके आधारपर था ?’

न मृत्पुरासीदमृतं न तर्हि

न रात्र्या अह्ना आसीत्प्रकेतः ।

आनीदवातं स्वधया तदेकं

तस्माद्भान्यन्न परः किञ्चनास ॥

(ऋग्वेद १०।१२९।२)

उस समय मृत्यु और जीवन नहीं था, रात्रि-दिवसका विभाग करनेवाला सूर्य भी नहीं था । तब उस प्रलयमें क्या था ? उस समय समष्टिस्वरूप सूत्रात्मा, श्वास-प्रश्वासरूप कल्प-सृष्टि और प्रलय आदि व्यवहारसे रहित, शान्त समुद्रके समान, रत्न-शब्दवाच्य ऋत्-स्वयंप्रकाशी चेतन और ‘द्र’ शब्दवाच्य अनन्ताकाशरूपिणी नित्यज्ञानशक्ति उमाके साथ एक अखण्ड, परिपूर्ण रुद्र अस्तित्वरूप कियावाला था । उस रुद्रकी अनन्त शक्तिके किसी एक भागमें माया बीजरूपसे थी । जैसे बटवृक्षकी शक्ति अपनी उत्पत्तिके पहले बटबीजमें रहती है वैसे ही अव्यक्तशक्ति उमामें रहती है । बीजशक्ति नित्य उमासे भिन्न नहीं है, क्योंकि उमा आगन्तुक अवस्थारूप मायासे पृथक् है ।

उमा नित्य ज्ञानस्वरूप है । ज्ञानका रूप नहीं तो चेतनका रूप कहाँसे होगा ? इसीलिये रुद्र ज्ञानस्वरूप निराकार है और अपरिणामिनी उमाके परिचयको देनेवाली परिणामिनी बीजशक्ति है । यदि इस बीजकी सत्ता अनादि-सान्त प्रवाहसे न होती तो जगत् रूप वृक्षकी उत्पत्ति और प्रलय कैसे होता ? तथा अनन्त शक्तिरूप रुद्रकी महिमाका

गुणगान कौन करता ? ज्ञानस्वरूपका परिचय करानेवाली यही लिङ्गरूप बीजशक्ति है । जैसे अग्निसे उसकी दाहक शक्ति पृथक् नहीं होती, वैसे ही बीजसत्तासे अपरिणामिनी शक्ति पृथक् नहीं होती ।

महाप्रलयरूप समाधिमें उस रुद्रसे उत्तम और कुछ न था—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-

र्य इमाँल्लोकानीशत ईशानीभिः ।

प्रत्यह् जनाँस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले

संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥

(श्वेता० ३।२)

‘इन ब्रह्माण्डवर्ती भुवनोपर ब्रह्मारूपसे शासन करता हुआ और उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक शरीरके मध्यमें चेतनरूपसे विराजमान तथा प्रलयके समय कोपमें भरकर संहार करता हुआ एक अद्वितीय रुद्र ही अपनी अनन्तशक्ति उमाके साथ स्थित है, उससे पृथक् दूसरा कुछ भी नहीं है ।’

यदा तमस्तदा दिवा न रात्रि-

र्न सन्न चासच्छिव एव केवलः ।

(श्वेता० ४।१८)

‘जब प्रलयरूप समाधिमें दिन-रात्रि नहीं थी, कार्य-कारण नहीं था, तब सब प्रकारके आवरणसे रहित तुरीय स्वरूप एक रुद्र ही था ।’ जब सब प्रपञ्च अव्यक्तमें लय हो जाता है और प्राणशक्ति निर्विशेषरूपसे उमामें ओतप्रोत होती है—कार्य-कारणसे रहित शयकी तरह अनन्त शक्तिमय श्मशानमें शयन करती है, तब अनन्ताकाशात्मक श्मशान-व्यापी एक रुद्र ही अवशिष्ट रहता है; उसके समान न कोई दूसरा हुआ, न होगा ।

स्वधया शम्भुः । (ऋग्वेद ३।१७।४)

‘अपनी शक्तिके सहित एक रुद्र ही है ।’

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं

त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।

(कैवल्य० ७)

‘उमायुक्त परमेश्वर समर्थ है—अग्नि, विद्युत् और

सूर्यरूप तीन नेत्रोंवाला, नीलकण्ठ और तुरीयस्वरूप है।' विश्वरचनाके पूर्व बीजशक्ति चेतनके जितने स्वरूपमें स्फुरित होती है उसका (चेतनका) उतना ही भाग नीलकण्ठ होता है, क्योंकि अधिष्ठित मायाजलको मायिकने अधिष्ठानरूपसे पान किया था।

विषं जलम् । (ऋक्संहिता १०।८७।१८)

जलका नाम विष है और माया, अव्यक्त शक्तिका नाम सलिल है।

नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ।

(यजु० संहिता १६।२८)

'नीलकण्ठ और श्वेत कण्ठवाले रुद्रके प्रति मेरा बारम्बार प्रणाम है।' सृष्टिके समय चेतनके एकभागरूप कण्ठमें बीजशक्ति मायाके रूपमें भासती है और प्रलयके समय यह माया बीजशक्तिके रूपमें रहती है। इसी अभिप्रायसे रुद्र नीलकण्ठ और श्वेतकण्ठ हैं।

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।

ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमः ॥

(तैत्तिरीयारण्यक० १०।१२)

उत्तमस्वरूप ऋतम् (रुद्र) ही सत्यम् (ब्रह्मा) है। रुद्रने कण्ठमें मायारूप तमको धारण किया है और वाम भागमें उमाको धारण किया है। उस परिणामरहित, त्रिपाद-स्वरूप, कूटस्थ, निराकार, समस्त जगत्के आकारमें विवर्तरूपसे व्यापक, प्रसिद्ध रुद्र पुरुषको नमस्कार है।

तमु द्रुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो

विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।

यक्ष्वामहे सौमनसाय रुद्रं

नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥

(ऋक्संहिता ५।४२।११)

जो रुद्र अग्निसोमात्मक सुन्दर धनुष बाणको धारण करता है, (यहाँ 'अग्नि' भोक्ता और प्रकाशरूप अमृत है और 'सोम' भोग्य तथा अप्रकाशरूप मृत्यु है। प्राणशक्ति की ही बाह्यावस्थाका नाम मृत्यु-शक्ति और क्षर है।) इस कार्यात्मक सुन्दर बाणको अक्षररूप उत्तम धनुषमें धारण करनेवाला वह तीसरा पुरुष रुद्र है, समस्त ब्रह्माण्डके परम सुखका आधार है, उसके अतिरिक्त सब प्रपञ्च दुःखस्वरूप हैं। हे मेरे चञ्चल मन ! यदि इहलोक और स्वर्गके फलके

भोगकी इच्छा है तो यज्ञोंके द्वारा उसकी पूजा कर तथा गायत्री आदि मन्त्रोंसे उसकी प्रार्थना कर अथवा परम मुक्तिरूप उत्तम शान्तिके लिये अभेदभावसे निरन्तर उसका ध्यान कर। वही प्राणादि-व्यापारसे रहित तथा प्राणशक्तिका प्रेरक स्वयंप्रकाश और शुद्ध ज्ञानस्वरूप है।

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः

क्षरात्मानावीशते देव एकः ।

तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावा-

द्भूयश्चान्ते विश्वमायानिबृत्तिः ॥

(श्वेता० १।१०)

आवरणात्मक आधार-मृत्युशक्ति क्षर और प्रकाशात्मक आधेय-आभ्यन्तर प्राण ही अक्षर है। घोर और अघोरमय शरीरोंको धारण करके ब्रह्मा और जीवरूपसे समष्टि और व्यष्टि—ब्रह्माण्ड और पिण्डका शासन करनेवाला एक अद्वितीय रुद्र ही देव है। उस रुद्रका अभेद चिन्तन करनेसे स्वस्वरूप-साक्षात्कारके साथ समष्टि-व्यष्टि-मायारूप उपाधि विलीन हो जाती है। जिसप्रकार स्वप्नके पदार्थ जाग्रत् अवस्थामें विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार अपरोक्ष ज्ञानमें माया अदृश्य हो जाती है।

प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम

(ऋक्सं० ७।४१।१)

रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे (जाबालो०)

रुद्र तारनेवाले ब्रह्म हैं, ज्ञानीको देहत्याग करते समय रुद्र भगवान् ॐकार-मन्त्रका उपदेश करते हैं।

य ॐकारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म, स एको रुद्रः, स ईशानः, स भगवान् महेश्वरः, स महादेवः ।

(अथर्वशिरोप० २।४)

'जो ॐकार है वह प्रणव है, जो प्रणव है वह सर्वव्यापी है, जो सर्वव्यापी है वह अनन्त-शक्तिस्वरूप उमा है। जो उमा है वही तारकमन्त्र ब्रह्मविद्या है, जो तारक है वही सूक्ष्म ज्ञानशक्ति है, जो सूक्ष्म है वही शुद्ध है, जो शुद्ध है वही विद्युत्-अभिमानी उमा है, जो उमा है वही परमब्रह्म है, वही एक अद्वितीय रुद्र है, वही ईशान है, वही भगवान् महेश्वर है, वही महादेव है।'।

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।

सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥

(श्वेता० ३।११)

‘वह रुद्र भगवान् समस्त प्राणियोंके सिर, ग्रीवा आदि अङ्गवाले हैं और सबके हृदयमें क्षेत्रज्ञरूपसे शयन करने-वाले हैं। वह सर्वव्यापी, सब ब्रह्माण्डमें स्थित हैं,—इसी कारण वह सुखस्वरूप शिव हैं।’

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽऽश्रयतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

अनन्त प्राणियोंके सिर, नेत्र, मुख, पैर आदि सब अङ्ग रुद्रके ही हैं, अर्थात् सब उसकी सत्तामें ही कल्पित हैं,—उसे सब प्राणियोंके भीतर शयन करनेसे पुरुष कहा जाता है। वह रुद्र समष्टि-व्यष्टि—ब्रह्माण्ड-पिण्डको अपनी सत्तासे घेरकर सर्वत्र सामान्यरूपसे व्यापक होता हुआ भी दशदिशाव्यापी ब्रह्माण्डके शिरोभाग—सत्यलोकमें विशेष ब्रह्मरूपसे स्थित है। यही ब्रह्म सूर्यमण्डलमें भग्नरूपसे विराजमान है और सूर्यमण्डल-अभिमानी, चेतन रुद्र—पुरुष ही दश-प्राणयुक्त व्यष्टि-शरीरमें ग्यारहवें जीवरूपसे प्रविष्ट हुआ है।

सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु । पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः । विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् । सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु !

(तैत्तिरीयारण्यक० १०।१६)

जो रुद्र उमापति हैं वही सब शरीरोंमें जीवरूपसे प्रविष्ट हैं, उनके निमित्त हमारा प्रणाम हो। प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र ही पुरुष है; वह ब्रह्मलोकमें ब्रह्मरूपसे, प्रजापतिलोकमें प्रजापतिरूपसे, सूर्यमण्डलमें वैराटरूपसे तथा देहमें जीवरूपसे स्थित हुआ है—उस महान् सच्चिदानन्दस्वरूप रुद्रको बारम्बार प्रणाम हो। समस्त चराचरात्मक जगत् जो विद्यमान है, हो गया है तथा होगा वह सब प्रपञ्च रुद्रकी सत्तासे भिन्न नहीं हो सकता, यह सब कुछ रुद्र ही है, इस रुद्रके प्रति प्रणाम हो।

आ चो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्वोरचित्ताद्विरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥

(सामवेदीय कौथुमीय संहिता १।७।७)

‘अपने पत्नी-रूप अव्याकृतके मध्यमें पूज्य ब्रह्माको प्रकट करनेवाले, यज्ञके प्रतिपालक, ज्योतिःस्वरूप (अग्नि),

व्यापक, स्वामी रुद्रकी, वज्रके समान भयङ्कर मृत्युके पूर्व अपनी रक्षाके लिये सब मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञानके द्वारा अर्चा करें।’

रोदसी रुद्रपत्नी—

(ऋक्सं० १०।९२।११)

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च

विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।

हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं

स नो बुद्ध्या शुभया संयुक्तु ॥

(श्वेता० ३।४)

सब प्राणियोंके पहले नित्य, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ रुद्रने ब्रह्माको प्रकट किया।

कामस्तदग्रे

समवर्तताधि-

मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन्

हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥

(ऋग्० १०।१२९।४)

प्रलयके पूर्व सृष्टिके जीवोंके भोगनेसे जो अवशिष्ट रहते हैं उन्हीं कर्मोंके संस्कार अपरिपक्व-दशामें प्रलयरूप और परिपक्व-दशामें उत्तर सृष्टिरूप हैं। यही कर्मसंस्कार बीजशक्ति हैं। जब अधिष्ठानमें बीजशक्तिका सृष्टि-संकल्परूपसे स्फुरण होता है तब उस संकल्पमें ज्ञानस्वरूप चेतन उस जड़ संकल्परूप क्रियाका प्रेरक, बीजी होता है। मायिक बीजीसे प्रेरित हुई क्रियारूप माया अव्याकृतके रूपमें प्रकट होती है। सब जगत्की उत्पत्तिके पहले जिस चिदाभासको महेश्वरने अव्याकृतरूप प्राणशक्तिमें स्थापन किया, यही प्रथम शरीरधारी स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा हुए। यही ब्रह्मा अव्याकृत पुरमें शयन करनेके कारण स्थूल विराट्के कारण हैं। ब्रह्माके परमकारण रुद्रको अन्तर्मुखी वृत्तिके द्वारा विचारकर ऋषियोंने अपनी बुद्धिरूप गुहामें स्वस्वरूपसे जाना।

यो अग्नौ रुद्रो यो अश्व-

न्तर्य ओषधीर्दीप्य आविवेश ।

य इमा विश्वा भुवनानि चाकूटे

तस्मै रुद्राय नमो अस्वघ्नये ॥

(अथर्ववेद ७।९२।१)

अग्नि, वायु, विद्युत्, सूर्य आदि प्रकाशवाले समूहमें जो रुद्र पुरुषरूपसे प्रविष्ट हुआ है तथा जो जल, चन्द्रमा,

नक्षत्रादिकोंमें व्यापक है वही प्राणियोंके हृदय, कण्ठ और चक्षुमें तथा वनस्पतियोंके अन्तर्गत अन्न, घास आदिमें स्थित है। इन नामरूपात्मक समस्त चराचरको उत्पन्न करके पालन करने तथा अन्तकालमें इनका संहार करनेमें जो समर्थ है उस अद्वितीय व्यापक रुद्रके लिये नमस्कार है।

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियामाजगाम बहुशोभमाना-
मुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद्यक्षमिति ।

(केन० १।३।१२)

उस इन्द्रने पूज्यस्वरूप रुद्रके अन्तर्धान होते ही उस निर्मल आकाशमें प्रकट हुई, प्राणशक्तिकी अधिष्ठातृ-देवी, असंख्य रूपोंको प्राणशक्तिरूप मायाके द्वारा धारण करने-वाली, अपरिमित शोभासे शोभायमान, हिमालयकी पुत्री और रुद्रकी अर्द्धाङ्गिनी, प्रसिद्ध जगन्माता उमासे पूछा कि वह पूज्यदेव जो अदृश्य हो गया, कौन था ?

अम्बिकापतय उमापतये नमो नमः

(तैत्तिरीयारण्यक० १०।१८)

जगन्माताके स्वामी, ज्ञानरूपिणी उमाको अर्द्धाङ्गमें धारण करनेवाले रुद्रके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार हो।

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।

तस्मिन्यद्यक्षमारमन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥

(अ० वे० १०।८।४३)

नवद्वारवाले स्थूलदेहके मध्य हृदय-कमल है। उसमें देहके धर्मको अभेदरूपसे अपने व्यापक स्वरूपमें मानने-वाला क्षेत्रज्ञ स्थित है, यही जीव मायाके त्रिवृतरूपसे ढका हुआ है। विराट्, सूत्रात्मा, अव्याकृत यह तीन आवरण ब्रह्माके हैं और स्थूल, सूक्ष्म, कारण देह यह तीन आवरण जीवके हैं। आवरणरहित तुरीयस्वरूप जीव और प्रसिद्ध पूज्यस्वरूप रुद्रको अभेदरूपसे वेदके जाननेवाले ही जानते हैं।

ज्योतिर्हरः (निरुक्त ४।१९)

सविता हरः (ऋग्० १०।१५८।२)

ज्योतिःस्वरूप हर हैं। जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले रुद्र हैं।

सविता पश्चात्ताः सविता पुरस्तात् सवितोत्तरात्ताः सविता-
धरात्तात् । सविता नः सुवतु सर्वतांति सविता नो रासतां
दीर्घमायुः ॥

(ऋग्० १।३६।१४)

‘रुद्र पीछे है, हर आगे है, सविता दक्षिण ओर है, ईशान उत्तर ओर है। सविता हमारे लिये सब सुखकी प्रेरणा करे, रुद्रदेव हमारे लिये दीर्घ आयु प्रदान करे।’

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-

रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वद-

न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

(ऋग्० १।१६४।४६)

इस मन्त्रमें अग्नि-शब्द दो बार आया है, एक बार देवताके लिये और दूसरी बार रुद्रके लिये। जो एक रुद्र है उसे ही बहुत प्रकारसे मन्त्रद्रष्टा ऋषि वर्णन करते हुए इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, वायु, यम और उत्तम प्रकाश-युक्त, उदय-अस्तरूपसे गमन करनेवाले, सूर्यरूप पक्षी इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं।

अग्निं वै देवानां प्रथमं यजेत्

(तैत्ति० ब्रा० ३।७।१।८)

सब देवताओंसे पहले अग्निकी पूजा (अर्थात् अग्नि-होत्र) करनी चाहिये।

अग्निर्वै देवानां प्रथमः (पैत० ब्रा० २०।१।१)

अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानाम्

(पैत० ब्रा० १।९।२)

सब देवताओंका मुख प्रथम अग्नि है। अग्निमें हवन किये हुए हविको अग्निमुखसे ग्रहणकर देवता तृप्त होते हैं। जिसप्रकार हमारे मुखद्वारा खाया हुआ अन्न सब शरीरको पुष्ट करता है उसी प्रकार अग्निमें हवन किया हुआ हवि भी सब ब्रह्माण्डवर्ती देवताओंको तृप्त करता है।

मुखं देवानामग्निः । मुखत एव प्राणं दधाति ।

(कपिष्ठल कठसं० ३१।२०)

‘देवताओंका मुख अग्नि है, अग्निरूप मुखसे ही सब कोई प्राण-धारण करते हैं।’

प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिबोमाविशाप्रदाहाय ।

(तैत्तिरीयारण्यक० १०।३४)

‘हे हुत द्रव्य ! मैं तुझे पाँच प्राणोंमें आहुतिरूपसे हवन करता हूँ। तू शिवरूप होकर मेरी भूख-प्यासके शमनके लिये मेरे शरीरमें प्रवेश कर।’

अर्यमणं पुण्यति नो सखायं केवलाधी भवति
केवलादी ।

(ऋग् १०।११७।६)

‘जो द्विज रुद्रस्वरूप सविताको और पापके हरनेवाले
अतिथिको हवनके सहित प्राणाहुतिसे तथा भोजनसे तृप्त नहीं

करता वह केवल पापी है और पापरूप भोजनका खाने-
वाला है ।’

इसप्रकार अग्निरूपमें रुद्रकी उपासना सनातनसे
द्विजातियोंमें चली आती है, वैदिक रुद्रकी उपासनाका यही
एक सर्वव्यापक स्वरूप है ।

उपनिषदोंमें शिव-तत्त्व

(लेखक—पं० श्रीजौहरीलालजी शर्मा सांख्याचार्य)

आनन्दाभिलाषी जीवको संसार-सागरसे पार उतारनेके
लिये शिव-तत्त्वावगमन ही सुदृढ़ पोत है । उपनिषदोंमें
विशदरूपसे इस तत्त्वका विवेचन है, उसीका सारांश यहाँ
दिया जाता है ।

कैवल्योपनिषद्में—

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं

शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ।

तमादिमध्यान्तविहीनमेकं

विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ॥

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं

त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।

ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं

समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सौक्ष्मः परमः स्वराट् ।

स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् ।

ज्ञात्वा तं मृत्युमश्नेति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥

(१।६-९)

इसप्रकार सभी चराचर जगत् एवं अपने आपेको
श्रीसदाशिवमें विराजमान जानकर विद्वान् शिवरूप हो जाता
है । आत्मा (आपे)को अरणि और ॐ शिवको उत्तरारणि
बनाकर इस ज्ञाननिर्मन्थन करनेके अभ्याससे बुद्धिमानके
सब पाप नष्ट हो जाते हैं और शिव-तत्त्वकी प्राप्ति होती है ।
भगवान् शिव ही निज मायाके कार्य—अन्तःकरणमें प्रति-
बिम्बित जीवरूपसे प्रकट हैं । वही तदंश जीव शरीर
धारणकर जाग्रदवस्थामें कलत्र-अन्नपान आदि नाना भोग-
विलास-पदार्थोंसे तृप्त होता है, स्वप्नके कल्पित सुख-दुःखोंको

भोगता एवं सुषुप्तिकालमें तमोगुणसे अभिभूत हो आनन्दका
अनुभव करता है और जन्मान्तरके कर्मयोगसे बार-बार
जन्मादि ग्रहणकर तीनों अवस्थाओंमें सुख-दुःख-भोगरूप
क्रीडा करता है । शिव-तत्त्ववेत्ता जीव जब यह अनुभव
कर लेता है कि जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति आदि प्रपञ्चको जो
भगवान् प्रकाशित कर रहे हैं वह सदाशिव मैं ही हूँ,
तब वह संसारके सब बन्धनोंसे छूट जाता है । अवस्थात्रयमें
जो-जो भोक्ता, भोग्य, भोगपदार्थ हैं, उनसे भिन्न साक्षी
चेतन मैं सदाशिव हूँ । जिसमें यह सकल प्रपञ्च उत्पन्न
होता है, जिसमें प्रतिष्ठित है एवं जिसमें लय हो जाता है,
वह अद्वितीय सत्-चित्-आनन्दस्वरूप शिव मैं ही हूँ ।
सब गुण मुझीमें विद्यमान हैं—

अणोरणीयानहमेव

तद्-

न्महानहं विश्वमहं विचित्रम् ।

पुरातनोऽहं

पुरुषोऽहमीशो

हिरण्यमयोऽहं शिवरूपमस्मि ॥

इन्द्रियरहित होकर भी उनके विषयोंको भोगता हूँ,
मेरी शक्ति अचिन्त्य है—

अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः

पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः ।

अहं विजानामि विविक्तरूपो

न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम् ॥

वेदैरनेकैरहमेव

वेद्यो

वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।

न पुण्यपापे मम चास्ति नाशो

न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥

न भूमिरापो न च वहिरस्ति
न चानिलो मेऽस्ति न चाम्बरञ्च ।
एवं विदित्वा परमात्मरूपं
गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ॥
समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं
प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् ।

इसप्रकार जो पुरुष 'शतरुद्रिय' का अध्ययन करता हुआ अपनेको मायासे परे, अद्वय, शिवस्वरूप समझता है वह अग्निपूत, वायुपूत होता है और ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्ण-स्तेय, कृत्याकृत्य आदि पापोंसे छूटकर पवित्र हो जाता एवं संसारके जन्म-मरण-चक्रसे परे होकर शिव-सायुज्यको प्राप्त होता है ।

भगवान् शिवके महादेव, भव, दिव्य, शङ्कर, शम्भु, उमाकान्त, हर, मृड, नीलकण्ठ, ईश, ईशान, महेश, महेश्वर, परमेश्वर, भर्ग, शर्व, रुद्र, महारुद्र, कालरुद्र, त्रिलो-चन, विरूपाक्ष, विश्वरूप, वामदेव, काल, महाकाल, कल-विकरण, पशुपति आदि अनेक नाम हैं ।

नारायणोपनिषद्में आपको अनेक नामोंसे नमस्कार किया गया है—

‘शिवाय नमः, शिवलिङ्गाय नमः, भवाय नमः, भव-लिङ्गाय नमः, शर्वाय नमः, शर्वलिङ्गाय नमः, बलाय नमः, बलप्रमथनाय नमः’ इत्यादि, एवं ‘अघोरेभ्योऽथ घोरे-भ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यस्सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।’

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपति-ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम् ।

नमो हिरण्यवाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय हिरण्यपतयेऽम्बिकापतये उमापतये पशुपतये नमो नमः ।

इवेतावतरोपनिषद्में भगवान् शिवकी सर्वव्यापकता और विराटरूपताका वर्णन है, यथा—

सर्वाननशिरोध्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥
यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्धया शुभया संयुक्तु ॥

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशानीभिः ।
.....
..... ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रै-
र्द्यौर्वाभूमी जनयन्देव एकः ॥...

सर्वतःपाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

भक्तकी भगवान् रुद्रसे अपने आरोग्य, आयुर्वृद्धि, माता-पिता, पुत्र-कलत्र, मित्र-सेवक, सैनिक तथा पशु आदिकी रक्षाके निमित्त प्रार्थना—

याते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी तथा नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि । यामिषुं गिरिशन्त इस्ते विभर्ष्यस्तवे शिवां गिरित्र तां कुरु माहिःसीः पुरुषं जगत् । प्रजां मा मे रीरिषः । आयुरुग्रं नृचक्षसं त्वा हविषा विधेम । रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् । मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकम्मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नोऽवधीः पितरम्मोत मातरम्मा नः प्रिया स्तन्वो रुद्र रीरिषः । मा न स्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः मानो वीरान् रुद्र भामिनोऽवधी-हविष्मन्तः सदमिव त्वा हवामहे ।

शिवजी सर्वोत्तम देव हैं—संसारमें शिवजी ही सब कुछ हैं—

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद्
यस्मात्तन्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् ।

इन्हीं देवके ज्ञानसे मुक्ति होती है—

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमस्यन्तमेति ।

नारायण और जाबाल उपनिषदोंमें रुद्र-गायत्री—

तत्पुरुषाय विश्वहे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः
प्रचोदयात् ।

नारायणोपनिषद्में मृत्युका जीतनेवाला शिवजीका प्रसिद्ध मृत्युञ्जय मन्त्र—

Champa' नामक ग्रन्थमें अलग प्रकाशित किया है। इस पुस्तकमें संग्रह किये हुए शिलालेखोंमेंसे अधिकांशके प्रारम्भमें 'ओं नमः शिवाय' यह मन्त्र खुदा हुआ है, जिससे यह सिद्ध होता है कि चम्पाधिपति शिवभक्त थे। इसी प्रकार Barth तथा Bergaigne नामक पाश्चात्य विद्वानोंद्वारा 'Inscriptions duf Cambodge et Campa' नामक संग्रहमें प्रकाशित शिलालेखोंमें भी कई शिलालेख ऐसे हैं जिनसे यह पता लगता है कि कम्बोजदेश (Cambodia) के अधिपति भी शिवोपासक थे। श्यामदेशमें 'स्टॉक काक थॉम' के स्तम्भपर एक शिलालेख मिला है, जिससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। Aymonier नामक पाश्चात्य विद्वान्ने सन् १९०१ के 'Journal' Asiatique (Nos 1-3-; p. ff.) में इस शिलालेखका विस्तृत वर्णन किया है। हम यहाँ 'कल्याण' के पाठकोंके लिये, जिनमेंसे अधिकांश फरासीसी भाषासे अपरिचित होंगे, उसी वृत्तान्तका सारांश संक्षेपमें देते हैं।

ईसवी सन्की आठवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें श्याम-देशके राजाओंने कम्बोजके शक्तिहीन राजाओंसे करीब-करीब वह सारा विशाल भू-भाग छीन लिया जो 'महाकासार' (Great lake) के पश्चिममें अवस्थित है और जो उस समय श्यामकी पूर्वीय सीमासे लगा हुआ था। पहले तो उन्होंने इस प्रान्तका शासन कम्बोजाधिपतिके एक स्वामि-द्रोही सामन्त तथा उसके पुत्रोंके हाथमें सौंप दिया, जिन्होंने उनकी इस प्रान्तको हस्तगत करनेमें सहायता की थी। किन्तु सन् १८४६ के आसपास उन्होंने इस प्रान्तके एक बड़े हिस्सेको उनके शासनसे हटाकर उसका एक पृथक् सूबा बना दिया, जिसका नाम उन्होंने 'सीसफन' (Sisaphon) रक्खा और वे लोग अपनी राजधानी बैङ्काक (Bangkok) से ही उसका शासन करने लगे। इस सूबेकी उत्तरीय सीमापर एक छोटी-सी पर्वतश्रेणी है जो इस भू-भागको लाओसके उन्नत भू-भाग (plateau) से पृथक् करती है।

इस प्रान्तके बीचमेंसे होकर एक ऊँचा टीला या बाँध-सा पूर्वसे पश्चिमकी ओर गया है जिसपरसे लोग उस प्रान्तमें भ्रमण किया करते थे। यात्रियोंके सुभीतेके लिये बीच-बीचमें बड़े-बड़े तालाब खुदे हुए हैं। बाँधके एक छोरसे दूसरे छोरतक तथा सूबेके अन्य भागोंमें भी कम्बोज-

देशवासियों (जो 'ख्मेर' कहलाते हैं) के बनवाये हुए बहुत-से मकानोंके ध्वंसावशेष उपलब्ध होते हैं। इनमेंसे सबसे अधिक उल्लेख-योग्य खँडहर 'स्टॉक काक थॉम' नामक एक मन्दिरका है जो इस सूबेके बीचमें उपर्युक्त बाँधसे लगभग ४४० गज दक्षिणकी ओर एक घने जंगलकी सीमापर अवस्थित है।

'स्टॉक काक थॉम' का अर्थ है महानल-हृद अर्थात् सरकण्डोंकी बड़ी झील। जिस मन्दिरका हम उल्लेख करते हैं उसके पूर्वकी ओर एक बड़ा तालाब है और मन्दिरसे तालाबपर जानेके लिये ३३० गज लम्बी एक पुलिया-सी बनी हुई है। इसीलिये मन्दिरको इस नामसे पुकारते हैं। मन्दिरकी लम्बाई १४० गज और चौड़ाई १३३ गज है और बाहरकी दीवार ९० इञ्च ऊँची है। मन्दिरमें एक ही 'गोपुर' है जो बाहरकी पूर्वी दीवारके मध्यमें है। इस 'गोपुर' में प्रवेश करते ही एक छोटी-सी खाई मिलती है जिसपर पुल बना हुआ है और पुलके उस पार परिक्रमाके आकारका एक दालान है जिससे घिरा हुआ ४४ गज लम्बा और ३३ गज चौड़ा एक चौक या आँगन है। आँगनके बीचोबीच मन्दिरका गर्भगृह है, जो विल्कुल चौरस है। इस समय वह एक खुले हुए खँडहरके रूपमें है और उसकी ऊँचाई केवल ३३ फुट रह गयी है। गर्भगृहके द्वारकी छतमें इन्द्र देवताकी एक मूर्ति है जो हाथीपर सवार है और हाथी स्वयं 'राहु'के मस्तकपर खड़ा है। गुम्बजके समीप कई हिन्दू-देवी-देवताओंकी मूर्तियोंके टुकड़े पड़े हुए मिलते हैं।

दालानके उत्तर-पूर्वके बीचके कोनेमें वह स्तम्भ है जिसपर शिलालेख खुदा हुआ है, वह अपनी असली जगहपर तथा पुराने आधारपर कायम है। स्तम्भ बहुत सुडौल बना हुआ है। आधारको बाद देकर उसकी ऊँचाई ६० इञ्च है। उसके चार पहलू हैं और शिलालेख चारोंमें समाप्त हुआ है। दक्षिणके पहलूमें ६० पंक्तियाँ हैं, पूर्ववालेमें ७७, पश्चिमवालेमें ८४ और उत्तरवालेमें ११९। इसप्रकार कुल मिलाकर ३४० पंक्तियाँ हैं जो ऊपर बताये हुए क्रमके अनुसार खुदी हुई हैं। शिलालेखके अक्षर बहुत सुन्दर हैं और करीब-करीब वैसे ही हैं जैसे दक्षिण-भारतके दसवीं और ग्यारहवीं सदीके शिलालेखोंमें मिलते हैं। लेखकी भाषा मिश्रित है, पहिली १९४ पंक्तियाँ संस्कृतमें हैं और शेष दहाँके प्राचीन निवासियोंकी भाषा

‘खमेर’ में हैं। खमेर-भाषाका लेख संस्कृतके लेखका अनुवाद नहीं है, किन्तु उसमें वही बात अपने स्वतन्त्र ढंगपर लिखी हुई है। शिलालेखका सारांश इसप्रकार है—

श्लोक १ से ४ में शिव, ब्रह्मा और विष्णुकी स्तुति की गयी है।

श्लोक ५ से २२ में सम्राट् उदयादित्यकी महिमाका बखान है।

श्लोक २३ में लिखा है कि उदयादित्यके गुरुका नाम देवजयेन्द्रवर्मा था।

श्लोक २४ से ६१—राजा जयवर्मा (द्वितीय) के, जिन्होंने महेन्द्रपर्वतपर अपना प्रासाद बनवाया था, गुरुका नाम शिवकैवल्य था। शिवकैवल्य अपने कुलमें सबसे बड़े थे और उन्होंने अनेक कर कर जयवर्माकी शक्तिको परिपुष्ट किया और उसे ‘शिक्षा’, ‘सम्मोहन’ और ‘नयोत्तर’ की विद्याएँ सिखलाई। वह अपने देवोपम गुणोंके कारण ‘देवराज’ कहलाते थे। राजाने उन्हें बहुत सम्मानित एवं पुरस्कृत किया और यह घोषणा कर दी कि शिवकैवल्य और उनके परिवारके लोग ही उसके याजकका काम करेंगे, उनके सिवा और कोई उसके कुलदेवताओंकी पूजा नहीं कर सकेगा। इसप्रकार वे सब शिवलिङ्ग, जो राजाने भावपुर, इन्द्रपुर तथा भद्रयोगिपुरमें स्थापित किये थे, शिवकैवल्यकी देख-रेखमें आ गये। उन्होंने राजासे प्रार्थना करके पूर्वके जिलेमें कुछ जमीन ली और वहाँ कुटीपुर नामक गाँव बसाकर एक मन्दिर बनवाया और परिवारसहित उसी गाँवमें रहने लगे। उन्होंने राजासे अमरेन्द्रपुरके पास थोड़ी जमीन और ली और भावलयपुर नामक ग्राम बसाकर वहाँ भी एक लिङ्गकी स्थापना की।

शिवकैवल्यका दौहित्र सूक्ष्मविन्दुक राजा जयवर्मा (द्वितीय) के पुत्र जयवर्मा (तृतीय) का पुरोहित था। शिवकैवल्यके छोटे भाई रुद्राचार्यने भी एक पहाड़की तराईमें राजासे कुछ जमीन प्राप्त की और उसमें एक गाँव बसाकर वहाँ एक शिवलिङ्ग स्थापित किया और उस पर्वतका नाम ‘भद्रगिरि’ रखा।

सूक्ष्मविन्दुका छोटा भाई वामशिव राजा यशोवर्धनका गुरु और राजा इन्द्रवर्मा (प्रथम) का ‘होता’ (याजक) था तथा इन्द्रवर्माके गुरु शिवसोमका शिष्य था। इसने अपने गुरुकी सहायतासे ‘शिवाश्रम’ बनवाया और वहाँ

एक शिवलिङ्गकी स्थापना की। ये गुरु-शिष्य दोनों ‘शिवाश्रम’ (के स्वामी) के नामसे पुकारे जाने लगे; किन्तु शिवसोमकी मृत्युके बाद शिवाश्रमपर उनके शिष्य वामदेवका एकाधिपत्य हो गया और ‘शिवाश्रम’ की उपाधि भी केवल उसीके नामके आगे लगायी जाने लगी। अब यह यशोवर्धनका गुरु हो गया, जो राजा यशोवर्माके नामसे विख्यात हुआ। इस राजाकी आज्ञासे वामशिवने यशोधर-गिरिपर एक लिङ्गकी स्थापना की। इसे दक्षिणाके रूपमें भद्रगिरिसे लगती हुई कुछ भूमि प्राप्त हुई और वहाँ इसने ‘भद्रपत्तन’ नामकी बस्ती बसायी। इस नगरमें राजाने अपने गुरुके निमित्त एक लिङ्ग स्थापित किया और लिङ्गके पूजनके लिये नारियल, कमण्डलु इत्यादि, कई गौएँ तथा अन्य कई वस्तुएँ प्रदान कीं और दो सौ दास-दासियाँ भी दीं। राजाने इस मन्दिरके पीछे ‘गणेश्वर’ नामका जिला तथा उसके अधीनस्थ गाँव इत्यादि भी अर्पण किये। ‘शिवाश्रम’ वामशिवने भद्रपत्तनके इस मन्दिरमें, जो भद्रवासपुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ, वाग्देवता सरस्वतीकी भी एक प्रतिमा प्रतिष्ठित की।

वामशिवके छोटे भाई हिरण्यरुचिको भी राजाकी ओरसे ‘वंशहृद’ नामकी भूमि प्राप्त हुई और वहाँ उसने अपने कुटुम्बके योग-क्षेमके लिये एक पुर (मन्दिर) बनवाया और उसमें शिवलिङ्गकी स्थापना की। ‘शिवाश्रम’ वामशिव और उसका भाई—दोनों कुटीग्रामसे अपनी वहिनकी दो लड़कियोंको लाये और उनमेंसे एकको भद्रपत्तनमें और दूसरीको वंशहृदमें बसाया।

‘शिवाश्रम’ वामशिवके भानजेका नाम कुमारस्वामी था। वह राजा हर्षवर्मा (प्रथम) का और उसकी मृत्युके बाद उसके उत्तराधिकारी राजा ईशानवर्मा (द्वितीय) का ‘होता’ था। उसने वंशहृदमें ‘पराशरपुरी’ का निर्माण करवाया।

‘शिवाश्रम’ वामशिवकी भानजीका पुत्र आत्मशिव राजा हर्षवर्मा (द्वितीय) का और उनकी मृत्युके बाद उनके उत्तराधिकारी राजेन्द्रवर्माका ‘होता’ था। इसने वंशहृदमें शान्तिपुर, कूटकपुर और ब्रह्मपुर नामके तीन नगर बसाये और उनमें शिव, विष्णु और सरस्वतीकी प्रतिमाएँ स्थापित कीं।

आत्मशिवकी भानजीका लड़का शिवाचार्य था, जो राजा जयवर्मा (पञ्चम) का ‘होता’ था। सूर्यवर्मा (प्रथम)

के राज्यकालमें इसने भद्रपत्तनमें एक शिव-विष्णुकी प्रतिमा और एक सरस्वतीकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की।

इसप्रकार इन राजाओंसे सम्मानित ये श्रेष्ठ सूरि (विद्वान्) राजधानीमें प्रतिदिन 'देवाधिदेव शङ्करकी आराधना करते थे, अन्य किसीको यह गौरव प्राप्त नहीं था।

श्लोक ६२ तथा उससे आगेके श्लोकोंमें लिखा है कि शिवाचार्यका भानजा सदाशिव, जो देवाधिपति महादेवकी अर्चामें कुशल था, परम्परागत अधिकारसे सूर्यवर्मा (प्रथम) के पुरोहित-पदपर प्रतिष्ठित हो गया। इस राजाने ब्राह्मणों तथा अग्निको साक्षी बनाकर अपनी पट्टमहिषी श्रीवीर-लक्ष्मीकी छोटी बहिन अपने पुरोहितजीको व्याह दी। साथ ही उसने इन्हें 'श्रीदेवजयेन्द्र पण्डित' की उपाधि, कर्माध्यक्ष-का पद, सोनेकी पालकीपर चढ़नेका अधिकार तथा और कई सम्मान प्रदान किये। सदाशिवने भद्रयोगिपुर, इन्द्रपुरी तथा अन्य स्थानोंमें कई तालाब खुदवाये और दूसरे कई पुण्यकार्य करवाये। इन्होंने भद्रपत्तनमें एक शिवलिङ्ग तथा दो मूर्तियाँ स्थापित कीं और उनके चारों ओर एक बलभी (दालान) तथा पत्थरकी चहारदीवारी बनवा दी और तीनों देवताओंके पीछे दास-दासी प्रभृति सारे उपस्करकी व्यवस्था कर दी। इन्होंने एक तालाब तथा नदीमें एक बाँध भी बनवाया। भद्रावासमें इन्होंने सरस्वतीदेवी (की प्रतिमा) को बहुत-सी सम्पत्ति अर्पण की, और उनके निमित्त उद्यानसहित एक आश्रम, गौओंसे पूर्ण एक गोशाला और एक बाँध बनवाया। भद्राद्रिके देवता (देवालय) के लिये इन्होंने गौओंसे पूर्ण एक गोशाला, एक आश्रम और एक बाँध बनवाकर प्रदान किया।

शहदके देवताको भी इन्होंने बहुत-सी सम्पत्ति प्रदान की, जिनमें बाँधसहित पानीकी एक लम्बी नाली तथा एक तालाब भी है। अमोघपुरके जिलेमें इन्होंने राजा सूर्यवर्मासे 'चङ्का' नामका एक इलाका प्राप्त किया और एक दूसरी जमीनके बदले 'महारथ' नामके तालाबके पूर्वकी जमीन, जो नदीके किनारे तक चली गयी है, हस्तगत की और इन दोनों जमीनोंको इन्होंने वंशहृदके शिवमन्दिरोंके पीछे जागीरके रूपमें लगा दिया। अमोघपुर, सान्तान और नागसुन्दर नामके इलाकोंमें इन्होंने एक सुन्दर पुर (मन्दिर) बनवाया और देवपत्तनके 'शम्भु' को अर्पण कर दिया। इन्होंने ब्रह्मपुरमें सरस्वतीकी एक प्रतिमा स्थापित की और उनको कई दास-दासी तथा एक बाँध

और एक तालाब अर्पण किया। कुटीपुरमें इन्होंने एक मन्दिर बनवाया, उसमें लिङ्ग-स्थापना की और दास-दासी आदि प्रदान किये। उदयादित्यवर्माके सिंहासनारूढ़ होनेपर सदाशिव—जयेन्द्र पण्डित, उनके गुरु हो गये और राजाकी ओरसे उन्हें 'भूति जै व्रः कर्पते अङ् श्रीजयेन्द्रवर्मा' की उपाधि तथा अन्य सम्मान प्राप्त हुए। उन्हें दक्षिणाके रूपमें राजासे कई रत्न और आभूषण, प्याले, पीकदानियाँ, सुराहियाँ, पालकियाँ, छत्ते, सुवर्णादि बहुमूल्य धातुओं तथा अन्य धातुओंके भार-के-भार, दास-दासियाँ, अन्न, फल, बड़े तथा छोटे पशु, हाथी-घोड़े, बन्ध, रथ, वाद्य, कुल्हाड़ी आदि औजार तथा अन्न-शस्त्रादि अनगिनत वस्तुएँ प्राप्त हुईं। यह सारी सम्पत्ति उन्होंने या तो भद्रेश्वर तथा अन्य शिवलिङ्गोंको अर्पित कर दी या मन्दिरोंके बनवाने, तालाबोंके खुदवाने इत्यादि कार्योंमें तथा यात्रियोंको दूसरी प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान करनेमें खर्च कर दी।

राजा उदयादित्यवर्माने शाके ९७४ में अपने गुरुकी स्मृतिमें भद्रनिकेतन नामक देशमें तथा भद्रयोगिपुरमें भी उन्हींकी भूमिपर एक शिवलिङ्गकी स्थापना की और उसे जयेन्द्रवर्मेश्वरके नामसे पुजवाया। इन्होंने जयेन्द्रवर्मेश्वर महादेवके निमित्त अपने गुरुदेवकी भूमिके निकटकी भूमि भी अर्पित कर दी। जयेन्द्रवर्माने कृतज्ञतावश इस सारी सम्पत्तिके साथ एक बड़ा तालाब और बाँध अपनी तरफसे बनवाकर अर्पण कर दिया। इन्होंने शिवकैवल्य तथा शिवाश्रम (वामशिव) की मूर्तियाँ भी ब्रह्मा, विष्णु और शिवके नामसे स्थापित की।

श्लो० १२८—अन्तिम आशीर्वाद।

इसके अनन्तर 'रुमेर' भाषाकी १४६ पंक्तियाँ हैं, जिनमें ये ही बातें अपने ढंगसे लिखी गयी हैं, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं।

इस जयेन्द्रवर्मेश्वर महादेवके मन्दिरको जिसे राजा उदयादित्यवर्माने अपने गुरुकी स्मृतिमें तथा स्वयं गुरुजीके द्वारा खुदवाये हुए तालाबको, जो मन्दिरसे संलग्न तथा मन्दिरकी ही सम्पत्ति है, र्दोंक काक थोम (अर्थात् महानलहृद) के नामसे निर्दिष्ट किया गया है। ऊपर कहा जा चुका है कि इस लिङ्गकी प्रतिष्ठा शाके ९७४ (ईस्वी सन् १०५२) में हुई थी और सम्भवतः उसी साल यह शिलालेख भी खोदा गया हो, ऐसा अनुमान होता है।

इसके अतिरिक्त यह भी बहुत सम्भव है कि आचार्य सदा-शिव—जयेन्द्रवर्माकी आज्ञासे ही शिलालेख खोदा गया था।

राजा जयेन्द्रवर्मा (द्वितीय), जो शिवकैवल्यका शिष्य था और जिसका नाम शिलालेखमें दी हुई राजाओंकी नामावलीमें सबसे प्रथम आया है, शाके ७२४ (सन् ८०२) में राजगद्दीपर बैठा और करीब शाके ७८१ तक उसने राज्य किया और राजा उदयादित्यवर्मा, जिसका नाम शिलालेखमें सबके अन्तमें आता है, शाके ९७१ से राज्य करने लगा और शाके ९७४ में उसने जयेन्द्रवर्माश्र-लिङ्गको स्थापित किया। इसप्रकार शिलालेखमें २५० वर्ष अथवा नौ पीढ़ियोंकी घटनाओंका उल्लेख किया गया है और उसके अन्दर यह वर्णन किया गया है कि इस दीर्घ-कालमें शिवकैवल्यके वंशज ही अविच्छिन्नरूपसे कम्बोज-देशके राजाओंके कुल-देवताओं अर्थात् शिवलिङ्गों तथा अन्य देवी-देवताओंका पूजन करते रहे।

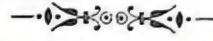
दूसरे शब्दोंमें, शिलालेखसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कम्बोज-देशमें जिन राजाओंने शाके ७२४ से ९७४ तक राज्य किया वे सब शिवभक्त थे और शिवकैवल्य तथा उनके वंशजोंका बहुत अधिक सम्मान करते थे। इनमेंसे एक राजा जयवर्मा (तृतीय) के लिये, जिन्होंने अनुमानतः शाके ७८१ से ७९९ तक राज्य किया 'रुमेर' भाषाके शिलालेखमें 'विष्णुलोक' नामका प्रयोग किया गया है। यह सम्भवतः उनकी मृत्युके पीछे रक्खा गया मालूम होता है, जिससे यह अनुमान होता है कि वह वैष्णव था। इसी प्रकार सूर्यवर्मा (प्रथम) का, जिसने शाके ९२४ से ९७१ तक राज्य किया, उसकी मृत्युके पीछे 'निर्वाणपद' अथवा 'परमनिर्वाणपद' नाम उपलब्ध होता है, जिससे यह प्रतीत होता है कि वह बौद्ध था। यहाँ यह बात ध्यान देने-योग्य है कि शिलालेखके अनुसार जयवर्मा (तृतीय) ने रुद्राचार्यको एक शिवालय बनवानेके लिये भूमि प्रदान की और सूर्यवर्मा (प्रथम) ने अपने 'होता' सदाशिवको इसी प्रकारके कार्यके लिये भूमि ही प्रदान नहीं की, अपितु 'रुमेर' भाषाके लेखमें तो यहाँतक लिखा है कि उसने भद्रपत्तन तथा वंशहृदके शिवलिङ्गोंको उखाड़ फेंकनेवाले विद्रोहियोंको दमन करनेके लिये सेना लेकर चढ़ाई की। इसके अतिरिक्त ये दोनों राजा भी अपने पूर्वजोंकी भाँति शिवकैवल्यके वंशजोंको ही अपना गुरु और पुरोहित मानते रहे।

यहाँ यह बात ध्यान देनेयोग्य है कि ये सब पुरोहित अपने-अपने पूर्वजोंके पुत्र अथवा पौत्र नहीं थे किन्तु भानजे अथवा भानजियोंके लड़के थे, अर्थात् उनकी वंश-परम्परा पितृक्रमागत न होकर मातृक्रमागत है। इस विचित्र व्यवस्थाका कारण 'रुमेर' भाषाके लेखके निम्नलिखित वाक्य-के पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है, वह यह है कि राजा सूर्यवर्माने 'सदाशिवको उनका आश्रम छुड़वाकर अपनी अग्रमहिषी श्रीवीरलक्ष्मीकी छोटी बहिन ब्याह दी।' यहाँ जिस आश्रमके छुड़वानेकी बात कही गयी है वह ब्रह्मचर्याश्रम ही प्रतीत होता है, क्योंकि हिन्दू-धर्मशास्त्रके अनुसार संन्यास-आश्रम-को छोड़कर पुनः गृहस्थी बनना उगले हुए आसको फिरसे खानेके समान जघन्य कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सदाशिव तथा उनके परवर्ती सभी पुरोहित, जिनका शिलालेखमें उल्लेख मिलता है, नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। इस-प्रकार जब उनके न तो गृहिणी थी और न बाल-बच्चे, तब उनके भानजे अथवा भानजियोंके पुत्र उनके उत्तराधिकारी हों, इसमें आश्चर्य ही क्या है? यहाँ यह बात ध्यान देने-योग्य है कि 'कन्नड़' देशके शिलालेखोंमें भी कहीं-कहीं 'कालामुख' सम्प्रदायके शैवाचार्योंके (जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी होते थे) मठों या देवालयोंका वर्णन आता है [देखिये Epigraphia Carnatica में प्रकाशित 'मावितम्मन-मुच्चडि', 'हुलियार' और 'असमोड' के शिलालेख ७, २५५; १२, १४२ और ११, १४१ और उसी तरहके दूसरे शिलालेख]।

अंकोर-झील (Angkor shom) पर एक बेयन (Bayon) नामका मन्दिर है और Aymonier का मत यह है कि शिवसोम और वामशिवके द्वारा स्थापित किया हुआ शिवाश्रम यही है। यह सम्भव नहीं मालूम होता, क्योंकि प्रथम तो शिलालेखमें इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा है कि यह आश्रम किस जिलेमें स्थापित किया गया था। इसके अतिरिक्त अंकोर-झीलके किनारेपर अङ्कोर नामकी राजधानी राजा यशोधरवर्माने बनवायी थी और यशोधरवर्मा उस राजाका उत्तराधिकारी था, जिसके राज्यकालमें उक्त शिवाश्रमकी स्थापना हुई। इसलिये मेरा मत तो यह है कि 'बेयन' नाम 'यशोधरगिरि' का है और यहींपर वाम-शिवने राजाकी आज्ञासे शिवलिङ्गकी स्थापना की थी। जो

कुछ भी हो, इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि 'वेयन' के मन्दिरमें जो लिङ्ग है वह उन्हींमेंसे एक है, जिनका प्रस्तुत शिलालेखमें शिवकैवल्य तथा उनके वंशजोंके द्वारा स्थापित किये जानेका वर्णन है। यह मन्दिर इस समय एक खँडहरके रूपमें है;

परन्तु इसके अन्दर अब भी बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनसे यह पता चलता है कि जिस समय यह अच्छी हालतमें था उस समय यह कलाकी दृष्टिसे संसारभरके मन्दिरोंमें प्रथम श्रेणीका रहा होगा।



शिव-तत्त्व-सम्बन्धी कुछ चित्र और मथुराका शैव-स्तम्भ

(लेखक—श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, एम० ए०, एल-एल० बी०)



स लेखमें हम कुछ चुनी हुई उन मूर्तियोंका परिचय देना चाहते हैं जो शैवधर्मसे सम्बन्ध रखती हैं और मथुराके सङ्ग्रहालयमें सुरक्षित हैं। इस लेखके साथ १५ चित्र हैं। इनमें चित्र-संख्या १ और २ के शिवलिङ्ग न तो मथुराके हैं और न वहाँके सङ्ग्रहालयमें ही हैं। परन्तु ये दोनों भारतवर्षके अत्यन्त प्राचीन और प्रसिद्ध शिवलिङ्ग हैं, इसकारण यहाँ इनका भी समावेश कर लिया गया है। शैव-स्तम्भका चित्र इनसे अलग है।

शिव-तत्त्वका आदिमूल वेदोंमें है। वहींसे विकसित होकर वह इस समय नाना रूपोंमें फैल गया है। शिवका स्वरूप प्राचीन योगविद्याका व्याख्यान है, यह हमने अन्यत्र दिखानेकी चेष्टा की है। यहाँ केवल कलाकी दृष्टिसे चित्रोंमें दी हुई मूर्तियोंका परिचय कराया जाता है। मथुराके प्राचीन इतिहासमें एक युग ऐसा आया जब वहाँ भक्तिधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली मूर्तियाँ प्रधानतासे बनने लगीं। ईस्वी सन्की प्रथम, द्वितीय और तृतीय शताब्दियाँ इस कार्यके लिये बहुत उपयुक्त सिद्ध हुईं। इस समय बौद्ध-धर्मकी बढ़ती हुई भक्ति-भावनाको तृप्त करनेके लिये मथुराके शिल्पियोंने ही सर्वप्रथम बुद्धभगवान्की पत्थरकी मूर्ति बनायी। इसी समय वहाँ भागवतधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली वैष्णवमूर्तियाँ और शैवधर्मकी भक्ति-भावनाओंको मूर्त करनेवाली शैव-मूर्तियोंका बहुत अधिक निर्माण हुआ। विष्णु, सूर्य, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सप्तमातृका, ब्रह्मा, इन्द्र, लोकपाल, गणपतिकी सबसे पहली मूर्तियाँ मथुरामें ही बनायी गयीं। इस बातके यथेष्ट प्रमाण मथुराकी कलामें मौजूद हैं। शिवलिङ्गकी सर्वप्रथम कल्पना मथुरासे अन्यत्र ही हुई; परन्तु कुषाणकालमें उसका अत्यधिक विकास

मथुरामें हुआ, यह असन्दिग्ध है। अब चित्रोंका वर्णन पढ़िये।

चित्र १ *—इस चित्रमें जिस शिवलिङ्गका उदाहरण है वह भारतवर्षके शिवलिङ्गोंमें सबसे प्राचीन माना जाता है। इसका ऐतिहासिक काल ईसासे दो शताब्दी पूर्वका है। मद्रास-साउथ-मराठा-लाइनपर एक स्टेशन 'रेणिगुण्ट' है। उस स्टेशनसे छः मील दूर गुडिमल्लम् नामक गाँवमें यह शिवलिङ्ग है, इसीसे यह गुडिमल्लम् लिङ्गके नामसे ऐतिहासिकोंको ज्ञात है। पर इसका असली नाम 'परशुरामेश्वर' है। रेणिगुण्ट (रेणुकाकण्ठ) नाममें भी 'रेणुका' शब्द आता है। अवश्य ही प्राचीन समयमें परशुराम और रेणुकाकी कथासे इस स्थानका कोई सम्बन्ध कल्पित किया गया था। आकृतियों में भी यह शिवलिङ्ग और सर्वोसे विलक्षण है। कायपरिमाणवाले, खड़े हुए पुरुषके बायें हाथमें परशु भी है, सम्भवतः इससे खण्डपरशु भृगुपतिका ही तात्पर्य है। उनके दाहिने हाथमें एक मेघ है जो नीचेकी ओर लटका हुआ है। बाएँ हाथमें परशुके साथ ही एक कमण्डलु भी है जो ब्राह्मधर्मका द्योतक है। भृगुपति परशुराम ब्राह्म और क्षात्र आदर्शोंके समन्वय हैं। उन्होंने कहा था—

अग्रतश्चतुरो वेदान् पृष्ठतः सशरं धनुः ।

उभाभ्यां च समर्थोऽस्मि शापापि शरादपि ॥

अर्थात् आगे चार वेदों (शास्त्र) को और पीछे धनुर्बाण (शस्त्र) लिये हुए मैं शाप और शर दोनों (से शासन करने) में समर्थ हूँ। यह लिङ्ग पाँच फुट ऊँचा है। नीचेकी चौकोर पिण्डिका इसके अतिरिक्त है। आगमोंमें स्वायम्भुव, दैवत, गाणपत्य, आसुर, सुर, आर्ष, राक्षस, मानुष, बाणलिङ्ग—ये लिङ्गोंके भेद हैं। यह मानुष-लिङ्ग है। मानुष-लिङ्गका भी एक

* यह चित्र 'बृहत्तर भारतमें शिव' शीर्षक लेखके साथ अन्यत्र प्रकाशित है। इसीसे इस लेखके साथ नहीं छापा गया।—सम्पादक



२ गुप्तकालीन भव्य शिवलिंग

३

४

५

६

७

८



३ हरिहर-मूर्तिका सिर

४ हरिहर

५ एकमुखी शिवलिंग

६ गुप्तकालीन
सुन्दर एकमुखी लिंग

७ इसवी द्वितीय शताब्दी की
महिषासुरमर्दिनी
दुर्गा

८ गुप्तकालीन
नृत्यरत गणपति-
मूर्ति



९ पञ्चमुखी शिवलिंग



१० उमा-महेश्वर-मूर्ति



११ चतुर्भुजी चन्द्रशेखर-मूर्ति



१२ सेनानी स्कन्द कार्तिकेय, गुप्तकाल

भेद 'मुखलिङ्ग' होता है, जिसमें शिवलिङ्गके ऊपर मुखकी आकृति चित्रित रहती है (देखिये चित्र २, ५, ६-९)। इस लिङ्गमें मुखाकृतिकी जगह पूरी मानुषाकृति है, अतएव यह सबसे विलक्षण है। मानुष-लिङ्गोंके शास्त्रोंमें तीन भाग माने गये हैं। अर्थात् सबसे नीचेकी पिण्डिका 'ब्रह्मभाग', बीचका स्तम्भ 'विष्णुभाग' और ऊपरकी मणि 'रुद्रभाग' कहलाता है। सम्पूर्ण लिङ्ग ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रकी समष्टि है। लिङ्ग एक सङ्केत (Symbol) है। उसके पहले अनन्त अव्यक्त है, जिसका पता ब्रह्माजीको भी नहीं लगा जो सृष्टिके आदिकर्ता हैं। उसके बाद भी अनन्त अव्यक्त है, जिसका पता विष्णुको भी नहीं लगा, जो प्रलय होनेपर शेषशायीरूपमें रहते हैं। इन दो अनन्त अव्यक्तोंके बीचमें व्यक्तकी एक झँकी है। यही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र नामक त्रैगुण्यकी समष्टि है। यही एकमात्र सङ्केत या लिङ्ग (symbol, pointer) है, जिससे अनन्तकी ख्याति होती है।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥

इस अव्यक्त-व्यक्त-अव्यक्त नियमका मूर्त चित्रण शिवलिङ्ग है। शिवके इस मूर्तरूपकी, जिसका नाम ब्रह्माण्ड है, इयत्ता आजतक किसीने नहीं जानी और न आगे कोई जान सकेगा। अण्डाकार शिवलिङ्ग ब्रह्माण्डकी पिण्डी (miniature) है। यह शान्त है, पर वृत्तकी तरह अनन्त है। इस पिण्डाकृतिके ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—तीनोंका ही खेल है। इस व्यष्टि-त्रैगुण्यका आधार शक्ति (Cosmic Force) या प्राण है, जो प्राण स्वयं ब्रह्मरूप है। हमारे पूर्वोद्धिखित सर्वप्राचीन शिवलिङ्गमें ब्रह्मभाग, विष्णुभाग, रुद्रभाग—तीनोंका पृथक् निर्देश अत्यन्त स्पष्ट है। इसके आधारपर मनुष्य स्थित है। उसका वाहन एक अपसार यक्ष है, जिसपर विजय पाकर मनुष्य देवत्व प्राप्त करता है और जिससे पराजित होनेपर वह स्वयं वामन, खर्व, पतित हो जाता है। अनन्तका जो पिण्डगत रूप है उसीसे मनुष्यका कार्य-निर्वाह हो रहा है। मनुष्यने जितने भागको आत्मसात् कर लिया है, उसीसे उसका सम्बन्ध है। अनन्त ज्ञान, बल, प्राण, अन्न—सबमें मनुष्यको अपने कायपरिमाणतक ही भाग मिला है। जितना उसकी देहमें समा गया वह उसका, अन्य सब शेष है।

चित्र २—लगभग पञ्चम शताब्दीका यह शिवलिङ्ग कलाकी दृष्टिसे पूर्णतम माना गया है। यह 'खोह' नामक स्थानमें वाकाटक सम्राटोंकी अध्यक्षतामें बना था। चतुरस्र पिण्डिका-के ऊपर मुखात्मक लिङ्गकी स्थापना है। त्रिनेत्रत्व स्पष्ट है। मस्तकपर जटाजूटको उद्भासित करनेवाली चन्द्रकला है। गुप्तकालकी सर्वश्रेष्ठ बुद्ध-मूर्तियोंसे इस शिवलिङ्गकी तुलना की जा सकती है। इसमें 'नवद्वारनिषिद्धवृत्ति मन' की समाधिमात्ता देखते ही बनती है। अखण्ड योगका अपूर्व चित्रण है।

चित्र ३ और ४—ये दोनों गुप्त-समयके हैं। इनमें हरि-हरकी एकता दिखायी गयी है। आधा भाग शिवका और आधा भाग विष्णुका है। समस्त हिन्दू-संस्कृतिका मूल-मन्त्र शिव-विष्णुकी एकता है, उसीकी अभिव्यक्ति इन मूर्तियोंमें है। कालिदासने 'कुमारसम्भव' के दूसरे सर्गमें ब्रह्मा-की स्तुतिके समय जो श्लोक कहे हैं उनमें इन उपल-मूर्तियोंके समान ही शिव-विष्णुकी एकता घटित हुई है। देवता ब्रह्माजीसे कहते हैं—

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्देदमुपेयुषे ॥

अर्थात् अव्यक्त दशामें जो तत्त्व एक है, वही व्यक्त दशामें 'त्रिमूर्ति' होता है। इन त्रिदेवोंमें छोटा-बड़ा कोई नहीं है। मधुसूदनसरस्वतीने 'महिम्न' की टीकामें लिखा है—

भूतिभूषितदेहाय द्विजराजेन राजते ।
एकात्मने नमस्तुभ्यं हरये च हराय च ॥

यही एकात्मक हरि-हरमूर्ति इस चित्रमें दर्शित है। सृष्टि और प्रलयको मिलानेसे ही चित्र पूरा बनता है। अकेली सृष्टि या अकेले प्रलयको कल्पना अवैदिक है। सृष्टि और प्रलयकी संयुक्त मूर्ति हरि-हरमूर्ति है। एक-एक परमाणु-में यह मूर्ति विराजमान है। इसके बिना चित्र अधूरा रहता है। संगठन और विघटन एक साथ ही चलते रहते हैं। हममेंसे कोई भी ऐसा नहीं है, जिसके भीतर यह संश्लिष्ट हरि-हर विराजमान न हों। इस शरीरमें प्राण और अपान ही हरि-हर हैं। वस्तुतः वैदिक प्राणापानका पौराणिक नाम 'हरि-हर' है। वेदोंमें कहा है—

नमस्तेऽस्तु प्राणते नमस्तेऽस्त्वपानते ।

इसीको पौराणिक भाषामें इसप्रकार कहा गया है—

एकात्मने नमस्तुभ्यं हरये च हराय च ॥

त्रयी विद्या, याज्ञिक कर्मकाण्ड, समस्त ब्राह्मण और उपनिषदोंमें प्राणापानके युगपत्कार्यका दिग्दर्शन है। भारतीय संस्कृतिका यह एक सूत्र है—‘प्राणापान।’ योगस्य पुरुषोंकी यही विशेषता है कि वे जिन्दगीके साथ मौतको भी देखते रहते हैं, प्राणके कार्यमें अपानको तिरोहित नहीं होने देते, हरिके वैभवमें हरके दिगम्बरत्वका भी स्मरण रखते हैं।

जिन लोगोंने यथार्थ नहीं समझा वे शिव और विष्णुके अलग दल बनाकर युद्ध करने लगे। असलियत यह है कि शिव और विष्णु एक ही तत्त्व द्विधाभिन्न हैं। ‘विद्वन्मोद-तरङ्गिणी’ के कर्ताने शैव-वैष्णवोंके भीषण मतभेदका दिग्दर्शन कराके अन्तमें यही निर्णय दिया है कि मैंने समस्त शास्त्र, पुराणोपपुराण और स्मृतियोंका अवलोकन किया है, पर कहीं भी शिव और विष्णुका भेद मुझे नहीं मिला। उत्तरी भारतमें कालिदास और तुलसीदासने इसी शिव-विष्णुकी एकताको दिखानेका जितना कार्य किया, उतना अन्य किसीने नहीं। उनके आदर्शोंका मूर्तिमन्त रूप इन्हीं हरि-हर-मूर्तियोंमें प्रकट है।

चित्र ५ और ६—ये दोनों भी एकमुखी शिवलिङ्ग हैं। नम्बर ६ कलाका उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ शक्तिकी ‘एकैव मूर्ति’ दिखायी गयी है।

चित्र ७—इस चित्रमें कुषाणकालकी महिषासुरमर्दिनी दुर्गा दिखायी गयी है। इसप्रकारकी अगणित मूर्तियाँ मथुरामें पायी गयी हैं।

वेदोंमें प्राणके उग्र और शान्त, उष्ण और शीत—दो रूप माने हैं। अशान्तको शान्त बनाना ही योग है। इन्हींका नाम ‘प्राणापान’ या ‘अग्नीषोम’ है। अपान उग्रका रूप है। इस सिद्धान्तकी बातको पौराणिक भाषामें ‘वृष’ और ‘महिष’ का नाम दिया गया। लोकमें देखनेसे वृष सफेद और शान्त है, उसे धूपकी बर्दाश्त होती है।

महिष (भैंसा) कृष्ण और उष्ण है, वह गर्मीको नहीं सह सकता। इसीकारण शिव, जो योगीश्वर हैं, जिन्होंने कामको जीत लिया है, ‘वृष-वाहन’ कहे गये हैं। योगी सदा वृषवाहन होता है। महिष यमराजका वाहन है। यम उष्ण या प्राणकी अशान्त शक्ति हैं। उनका अनुरूप वाहन महिष है। शतपथब्राह्मणमें कहा गया है—

प्राणा वै महिषाः (६।७।४।५)

अर्थात् प्राणोंकी ही एक संज्ञा ‘महिष’ है। ये उग्र, अशान्त, घोर प्राण हैं। इनको शान्त करना, इनपर अधिकार पाना—पौराणिक भाषामें इस असुरका मर्दन आवश्यक है। प्राण ही सुर-असुर है। आसुरी प्राणका संयम शान्ति, आयु और वर्चस्को देता है। असुर-संहारकी अनेक कथाओंमें इन आसुरी प्राणोंकी घोरताको शान्त-दान्त करनेका ही रूपक है। इस महिषासुरपर देवी विजय प्राप्त करती है। उसका वध करके उसे नवीन जन्म देती है, इस नये देहमें महिष दिव्यरूप होकर संग्राम बन्द करके देवीकी स्तुति करता है। महिषासुर नाशके स्थानमें जीवनका संवर्धन करने लग जाता है। काम-शक्ति, जब वह अशान्त होती है, शरीर-कोषोंका विघटन करती है और वही शान्त होकर मस्तिष्कमें अमृतवर्षा करती है। यह देवी त्रिशूलकी स्वामिनी है। त्रिककी ही संज्ञा ‘त्रिशूल’ है।

चित्र ८—यह गुप्तकालीन मूर्ति नृत्तगणपतिकी है। गणपति कमलपर ताण्डव कर रहे हैं। यह मूर्ति बहुत सुन्दर और दुर्लभ है।

चित्र ९—पञ्चमुखी शिवलिङ्ग। यह मथुराके सङ्ग्रहालयमें सुरक्षित है। इसका ऊर्ध्वस्थित पाँचवाँ सिर खण्डित हो गया है। हम यह कह चुके हैं कि शिवतत्त्व और योग-विद्या समानार्थक हैं। योगमें मूर्त-शक्तिको मेरुदण्डके पाँच चक्रोंमें स्थापित, पञ्चात्मिका माना है। एक-एक चक्रमें एक-एक तत्त्वका अधिष्ठान है। पञ्चतत्त्व, पञ्चचक्र और पञ्चेन्द्रियाँ—ये परस्पर सम्बद्ध हैं। मूलाधार (पृथिवी), स्वाधिष्ठान (जल), मणिपूर (तेज), अनाहत (वायु) और विशुद्धि (आकाश)—ये पञ्चभौतिक शक्तिके केन्द्र हैं। इनसे परे छठा आज्ञाचक्र अभौतिक है। इन्हींका पञ्चधा विकास मनुष्यकी पाँच इन्द्रियोंके द्वारा होता है। अन्तर्निहित समस्त शक्तियाँ पञ्चप्राणोंके रूपमें प्रकट हो रही हैं। एक ही शक्ति त्रैगुण्यरूपमें त्रिधा और पञ्चप्राणरूपमें पञ्चधा कल्पित है। ये पाँचों पृथक् होते हुए भी संयुक्त हैं। सुषुम्णा और मस्तिष्कके द्वारा सब संस्थानोंकी एकता है। कलामें इसका उदाहरण पञ्चमुखी शिवलिङ्ग है। कामदेवको पञ्चबाणवाला इसीलिये कहा है, क्योंकि पञ्चविषयोंके द्वारा वह इन्द्रियोंको भोगासक्त करता है। कामको भस्म करनेवाले शिव भी पञ्चात्मक हैं। अतएव शिवकी एक संज्ञा ‘पञ्चानन’ है। सबसे ऊपरका मुखलिङ्ग पूर्वाभिमुख रहता है। उसे आगमोंमें ‘ईशान’ कहते हैं। पूर्वके मुखलिङ्गको तत्पुरुष,

दक्षिणाभिमुखको अघोर, पश्चिमाभिमुखको सद्योजात और उत्तराभिमुखको 'वामदेव' कहा गया है। सन्ध्याके मनसापरिक्रमाके मन्त्रोंमें प्राची, दक्षिणा, प्रतीची, उदीची, ऊर्ध्वा—इन दिशाओंका सम्बन्ध पञ्चप्राणोंसे है, जिनके नाम आगमोंके समान ही कुछ विचित्र हैं, यथा—असित, तिरश्चिराजि, पृदाकु, स्वज और कल्माषग्रीव कहे गये हैं। ये सर्पोंके नाम समझे जाते हैं। वस्तुतः वैदिक परिभाषामें प्राण ही सर्प हैं तथा पञ्चइन्द्रियलोक ही पञ्चसर्प हैं, जिनमें निरन्तर प्राण प्रवेश या सर्पण करते हैं।

यह पञ्चमुखी शिवलिङ्ग कुषाणकालीन है। इस युगमें पञ्चमुखी नागियोंके भी अनेक चित्र बनाये गये। शरीरस्थ शक्तिकी एक संज्ञा 'नागी' या 'कुण्डलिनी' मानी गयी, इसी कारण पञ्चात्मिका शक्तिका कलात्मकरूप पञ्चमुखी नागी माना गया। इसप्रकारकी अनेक नागियाँ कुषाणकालमें बनायी गयीं।

चित्र १०—शिव-पार्वती नन्दीवृषके सहारेसे खड़े हुए हैं। यह मूर्ति दोनों ओरसे एक ही तरह खुदी हुई है। जो दृश्य मूर्तिके सम्मुख भागमें है, वही पृष्ठभागमें है। इस चित्रमें शिव ऊर्ध्वरेत दिखाये गये हैं और उनके हाथमें नीलोत्पल है। विवाहके अनन्तर कौतुकागारस्थ शिव-पार्वतीकी कल्पनाको इस चित्रमें मूर्त किया गया है। विवृणित नन्दी पहरा दे रहा है।

चित्र ११—चतुर्भुज शिवमूर्ति, जिसमें सब उपकरण स्फुट दिखाये गये हैं। डमरू, रुद्राण्ड, सर्प, त्रिशूल, कपालमाला, चन्द्रमा—सब स्फुट हैं। मूर्ति नयी है।

चित्र १२—मयूर-वाहनपर स्वामिकार्तिकेय सवार हैं, जिनको कृत्तिकाएँ स्नान करा रही हैं। स्कन्दकी बायीं ओर मेघ है। छः कृत्तिकाएँ स्कन्दकी माता थीं, इसीकारण स्कन्दको 'षाण्मातुर' कहते हैं। पुराणोंमें लिखा है कि स्कन्दके जन्मके समय कृत्तिका नक्षत्र था, कृत्तिकामें जन्म होनेके कारण उन्हें 'कृत्तिकापुष्ट' कहा गया। कृत्तिकाकी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे अग्नि-पुत्र हुए। कृत्तिकाका अधिपति भी अग्निदेवता है। अग्निका वाहन मेघ है, जिसका चित्रण स्कन्दके बायीं ओर है। स्नान करानेवाली माताओंको तीन-तीन सिरवाली बनाया गया है, जिससे षट्माताओंका बोध हो सके। वस्तुतः स्वामिकार्तिकेयके स्वरूपका इतना पूर्ण परिज्ञान करानेवाली और कोई दूसरी मूर्ति इस देशमें

नहीं मिली है। इस मूर्तिको कालिदासके कुमारसम्भवकी संक्षिप्त व्याख्या कहना चाहिये। स्कन्द शिवके मूर्त्यन्तर तेज अर्थात् उनके पुत्र हैं। षट्चक्रोंमें समुदित या सम्भृत शिवके तेजसे स्कन्दका जन्म हुआ। इनको अग्रणी या सेनापति बनाकर देवोंने तारकासुरपर विजय पायी। कालिदासने लिखा है—

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-

मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः।

अर्थात् देव-सेनाओंकी रक्षाके लिये सुपुष्णामें अपने तेजका सञ्चय करके शिवने उसे स्कन्दरूपमें प्रकट किया है।

चित्र १३—यह मूर्ति द्वितीय शताब्दीकी है। भारतवर्षमें उपलब्ध सप्तमातृकाओंकी मूर्तिमें यह सबसे प्राचीन है। सप्तमाताएँ सात स्त्रियोंके रूपमें दाहिने हाथमें कमलपुष्प लिये खड़ी हैं। उनके दोनों ओर दो आयुधधारी अङ्गरक्षक या आयुधपुरुष थे। खेद है कि बायीं ओरका आयुध-पुरुष खण्डित हो गया है और वह चित्रमें नहीं है। सप्तचक्रोंकी अधिष्ठात्री देवियाँ सप्तमातृकाएँ हैं।

चित्र १४—इस चित्रमें भी सप्तमातृकाएँ दिखायी गयी हैं। उनके एक ओर वीरभद्र और दूसरी ओर गणपति हैं, जो उनके आयुधपुरुष हैं। यह चित्र ११ वीं शताब्दीके लगभगका है। इसमें सप्तमातृकाओंके स्वरूपका बहुत विकास हो गया है और उनके भिन्न-भिन्न वाहन भी दिखाये गये हैं। सप्तमातृकाओंके नाम और वाहन ये हैं—

[१] ब्रह्माणी (हंस), [२] माहेश्वरी (वृष), [३] कौमारी (मयूर), [४] वैष्णवी (गरुड़), [५] वाराही (वराह), [६] इन्द्राणी (ऐरावत), [७] चामुण्डा (प्रेत)। चामुण्डाके सिवा और सबकी गोदमें बालक भी हैं।

चित्र १५—यह मथुरामें प्राप्त यूपका चित्र है। यूप यज्ञीय स्तम्भको कहते हैं। इसका सम्बन्ध शैव-मूर्तियोंसे नहीं है, फिर भी एक विशेष उद्देश्यसे हमने इसे यहाँ दिखाया है। वैदिक यूप मेरुदण्डकी आकृतिवाला है। इस यूपके तीन भाग हैं—पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक। यूपमें एक रशना लिपटी हुई है जिसमें साढ़े तीन लपेट हैं। रशनासे पशुबन्ध होता था। यज्ञके पुण्यसे यजमान यूपपर चढ़ता हुआ स्वर्गमें पहुँच जाता था। रशनासे नीचेका भाग और उससे ऊपरका भाग पृथिवीलोक है। सिरके

पास जो चौकोर निकला हुआ पत्थर है वह अन्तरिक्ष है, उससे ऊपर स्वर्ग है। यज्ञकी सिद्धिसे यजमान यूपके स्वर्ग-भागपर जा विराजता है। (स्वर्गको 'नाक' भी कहते हैं) अर्थात् नाकपृष्ठपर विराजमान होता है या नाकसद् बन जाता है। देवता भी 'नाकसद्' या 'दिवौकस्' कहलाते हैं। योगकी भाषामें यूपका पृथिवी-भाग मेरुदण्ड (Spinal column) है, अन्तरिक्ष मध्यभाग या Spinal bulb है, स्वर्ग मस्तिष्क (Brain) है। रशना कुण्डलिनी है। यही शिवके शरीरपर लिपटी रहती है। इसीमें पशु (Base, uncontrolled instincts) बाँधे जाते हैं। इसीसे शिव 'पशुपति' हैं। या जैसा ब्राह्मणोंमें कहा है—

रुद्रः पशूनामीष्टे

‘रुद्र पशुओंका ईश है, वह पशुओंपर शासन करता है।’ ‘पश्यतीति पशुः’—मनोभाव पशु हैं जो स्वाभाविक संस्कारों-से काम करते हैं, जिनके कार्य बुद्धिपूर्वक नहीं होते। अंग्रेजीमें इन्हें Instincts कहते हैं जो Intelligence से भिन्न हैं। वैदिक परिभाषामें Instincts अग्नि और Intelligence इन्द्र है। यज्ञमें अग्नि और इन्द्रका समन्वय है। यही पूर्णता है। ध्यानयोगमें इसी तत्त्वको शिव और कुण्डलिनी-जागरणकी कल्पनासे व्यक्त किया जाता है। कुण्डलिनी या शक्तिका क्षेत्र भी मेरुदण्डगत सुषुम्णा नाडी है। इसकी आकृति ठीक यूपके आकार-जैसी ही होती है। सुषुम्णा मस्तिष्कमें जहाँ प्रवेश करती है वहाँ वह किञ्चित् वक्र या कुटिल हो जाती है। यही बात वैदिक यूपके अग्रभागमें दिखायी गयी है। इस यूपकी विशेष विवेचनासे यह बात स्थिर हो जायगी कि यूपके चारों ओर जो याज्ञिक कर्मकाण्ड है उसका उद्देश्य यही था जो योग-के द्वारा कुण्डलिनीको जागृत करनेका था, अर्थात् मन और उसकी निहित शक्तियोंपर पूर्ण संयम और शासन प्राप्त करना, जिससे महनीय इस लोकमें और कुछ भी नहीं है।

मेरुदण्ड एक यूप है, जिसमें सब मनुष्य बंध किये जाने-के लिये बाँधे हुए हैं। एक-न-एक दिन अवश्य ही काल हमारा हनन या विशसन करेगा। वस्तुतः नित्यप्रति ही हम मृत्युकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। इस यूपके बन्धनोंसे कोई भी बचकर नहीं निकल सकता। गर्भमें बच्चेकी सृष्टिके लिये जो निर्माण-क्रिया प्रारम्भ होती है, उसमें सबसे पूर्व मेरुदण्डका ही सूत्रपात होता है। उस यूपपर ही

पीछेका सब भयन बनता है। वृक्षोंमें, पत्तियोंमें, वनस्पतियों-में भी इसी प्रकारका केन्द्र या यूप पाया जाता है। इसी यूपमें शुनःशेप बाँधा गया था। उसका बंध निश्चित था। स्वयं उसका पिता अजीर्गर्त ही उसके हननके लिये कटि-बद्ध हो गया। यह देखकर शुनःशेपने सोचा, ‘हाय! पशुकी भाँति आज ये लोग मेरा बंध कर डालेंगे। मैं अपने बचने-के लिये क्या करूँ?’ अन्तमें वह उस वरुणकी शरणमें गया जिसके नियमोंकी पूर्तिके लिये शुनःशेपकी बलि हो रही थी। जन्मसे लगाकर प्रतिपल वरुणका उग्र ‘ऋत’ बराबर इस बातकी पुकार करता है कि ‘हे मनुष्यो! तुम इस गूढ़ पहेली-को समझकर इन पाशोंसे अपने आपको मुक्त करनेका प्रयत्न करो। अन्यथा इस महान् पाशमय जालसे छोटा-बड़ा कोई जल-जन्तु आजतक बचकर नहीं निकल सका। शुनःशेपके ज्ञानसे वरुण प्रसन्न होता है। शुनःशेप इस यूपके बन्ध-बन्धनोंसे मुक्ति पा जाता है। ऐतरेयब्राह्मणके इस वैदिक उपाख्यानमें जो बन्ध-मोक्षका रहस्य है, वही योगसाधनासे प्राप्त किया जाता है। यमने नचिकेताको इसी पुरातनी योग-विद्याका उपदेश किया था। यही योग शिवतत्त्वमें पाया जाता है।

मथुराका शैव-स्तम्भ

मथुराके सङ्ग्रहालयमें साढ़े-पन्द्रह सौ वर्ष पुराना एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण शैव-स्तम्भ है। इसपर ३८० ईस्वी-का एक लेख है, जिससे शैव-सम्प्रदायके प्राचीन इतिहासपर बहुत प्रकाश पड़ता है। डाक्टर देवदत्त रामकृष्ण भाण्डार-करने जनवरी १९३१ की ‘एपिग्राफिआ इण्डिका’ में इस लेखका विस्तृत सम्पादन किया है। लेख इसप्रकार है—

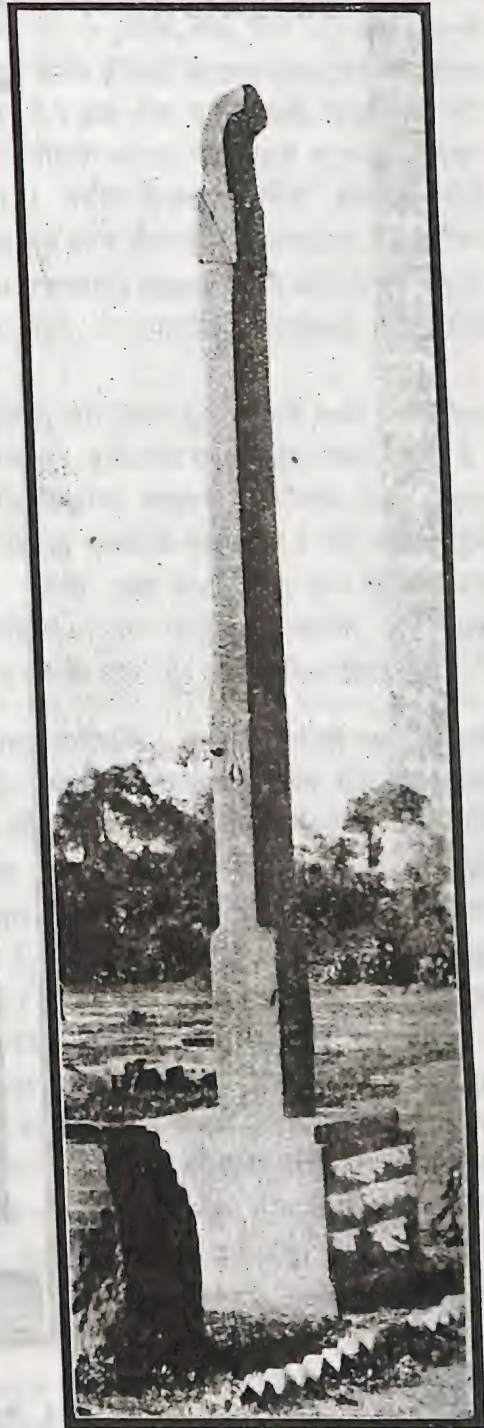
- पंक्ति १—सिद्धम्। भट्टारक-महाराज-राजाधिराज श्रीसुद्रगुप्तस-
- २—त्पुत्रस्य भट्टारक-महाराज-राजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त-
- ३—स्य विज [य] राज्य संवत्सरे ... [गुप्त] कालानुवर्तमानसं-
- ४—वत्सरे एकपष्ठे ६०१ [आपाढमासे] प्रथमे शुक्रदिवसे पं-
- ५—चम्यां। अस्यां पूर्वायां भगवत्कुशिकादशमेन भगव-
- ६—त्पराशराच्चतुर्थेन [भगवत्कपि] पि [ल]-विमल-शि-
- ७—ष्यशिष्येण भगवदु [पमित]-विमल-शिष्येण
- ८—आर्योदिताचार्येण स्वपुण्याप्यायननिमित्तं
- ९—गुरुणां च कीर्त्ये [मुपमितेश्व] र-कपिलेश्वरी
- १०—गुर्वायतने गुरु... प्रतिष्ठापितौ नै-
- ११—तत्स्थायत्यर्थमभिलिख्यते [अथ] माहेश्वराणां वि-



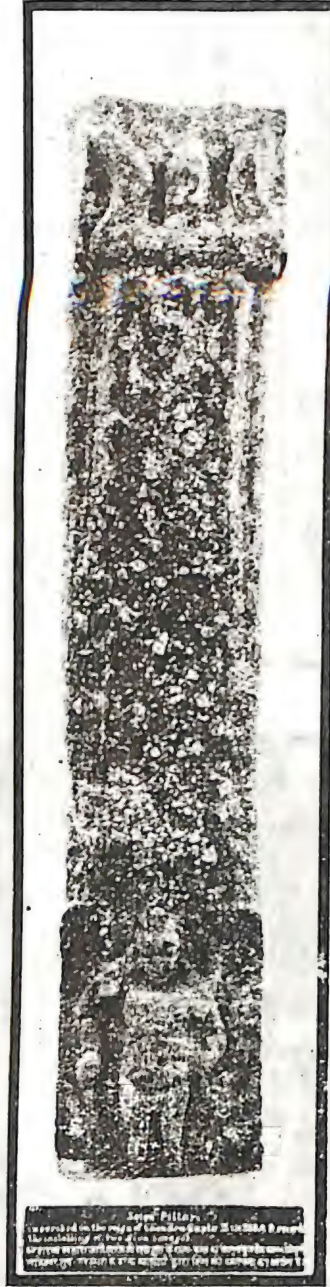
१३ इसवी द्वितीय शताब्दीकी ससमावृकाण



१४ मध्यकालीन ससमावृकाण, वीरभद्र गणपतिसमेत



१५ मथुराका यज्ञीय यूप



१६ मथुराका पाशुपत शैवस्तम्भ

- ॥ १२—शक्तिः क्रियते सम्बोधनं च यथाकालीनाचार्या-
 ॥ १३—णां परिग्रहमिति मत्वाविशङ्कं पूजा-पुर-
 ॥ १४—स्कारपरिग्रहपरिपाल्यं कुर्यादिति विशप्तिरिति ।
 ॥ १५—यश्च कीर्त्यभिद्रोहं कुर्याद्यश्चाभिलिखितमुपर्यधो
 ॥ १६—वा स पञ्चभिर्महापातकैरुपपातकैश्च संयुक्तस्स्यात् ।
 ॥ १७—जयति च भगवाण [भैरवः] रुद्रदण्डोग्रनायको नित्यम् ।

अर्थ—‘सिद्धि हो । भट्टारक महाराज राजाधिराज श्रीसमुद्र गुप्तके सत्पुत्र भट्टारक महाराज राजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तके विजयी राज्य-संवत्सरमें.....’ गुप्तकालानुवर्तमान ६१वें वर्षके प्रथम आपादमासकी शुक्ल पञ्चमीतिथिके दिन । इस तिथिमें गुरुओंकी कीर्तिके लिये और अपने पुण्यकी वृद्धिके लिये आर्योदितार्योंने गुरुमन्दिरमें उपमितेश्वर और कपिलेश्वर नामक (गुरुप्रतिमायुक्त दो) शिवलिङ्गोंकी स्थापना की । आर्य उदितार्य भगवान् कुशिकसे दशम हैं, भगवान् पराशरसे चौथे हैं, भगवान् कपिलके शिष्यके शिष्य हैं और भगवान् उपमितके शिष्य हैं । कुछ अपनी ख्यातिके लिये यह विज्ञप्ति हमने नहीं लिखायी, बल्कि इसके द्वारा सब माहेश्वरोंको सूचित किया जाता है तथा इस समयके आचार्योंकी सेवामें निवेदन किया जाता है कि इस परिग्रह-को अपना मानकर निःशङ्कभावसे इसकी पूजा, सम्मान और रक्षा करें, यह प्रार्थना है । जो इस कीर्तिके कामको नष्ट-भ्रष्ट करेगा या लेखमें कोई अक्षर घटावेगा-बढ़ावेगा वह पञ्चमहापातक और पञ्चउपपातकोंके पापका भागी होगा ।

रुद्र-दण्डवाले उग्रनेता भगवान् भैरवकी जय हो ।’

इस लेखके सम्बन्धमें इतिहाससम्बन्धी विवेचन बहुत विस्तृत है, परन्तु कल्याणके पाठकोंका उस नीरस विवादसे कुछ प्रयोजन नहीं है । निष्कर्षरूपमें पुराण और इतिहास तथा शिलालेखोंसे जो कुछ मथकर निकाला गया है, वह इसप्रकार जान लेना चाहिये ।

शैवोंमें पाशुपत-सम्प्रदाय बहुत प्राचीन है । इसमें शिवकी उपासना पशुपतिरूपमें की जाती थी । महाभारतमें शैवोंकी केवल पाशुपत-शाखा ही पायी जाती है । वायुपुराण (अध्याय २३, श्लोक २१७-२२५) और लिङ्गपुराण (अध्याय २४, श्लोक १२४-१३३) में पाशुपत-सम्प्रदाय और उसके संस्थापक शिवजीके अवतारका वर्णन है । लिङ्ग-पुराणके अनुसार शिवजीका कथन है—

‘जब कृष्ण और व्यास भूतलपर होंगे तभी मैं लकुली नामसे कायावतार नामके सिद्ध-क्षेत्रमें ऊर्ध्वरेत ब्रह्मचारीके रूपमें अवतार लूँगा । कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य—ये मेरे चार योगी शिष्य होंगे ।’ पाशुपत-सम्प्रदायके संस्थापक श्रीलकुलीश्वर थे । कुछ लोग इस नामको ‘नकुलीश्वर’ भी मानते हैं । लकुलीशका अवतार कायावतार या कायावरोहण-क्षेत्रमें हुआ । बड़ौदा-रियासतके बरौदा प्रान्तमें डभोई तालुकका कारवन स्थान ही प्राचीन कायावरोहण है । यहींपर उत्पन्न होकर लकुलीशने पाशुपत-मतकी स्थापना की अथवा अपने उग्र तपसे एक प्राचीन सम्प्रदायको पुनरुज्जीवित किया ।

लकुलीशके चार शिष्य हुए । इनमें सबसे बड़े कुशिक थे, इन्हीं भगवान् कुशिकका हमारे मथुरा-लेखमें वर्णन है । इसप्रकार शिवलिङ्गोंकी प्रस्थापना करनेवाले आर्य उदितार्य लकुलीशकी परम्परामें ग्यारहवें थे । यदि एक पीढ़ीके लिये २५ वर्षका समय मान लिया जाय तो लकुलीश उदितार्यसे २७५ वर्ष पहले हुए । अर्थात् लकुलीशका काल १०५ ई० से १३० ई० तक निश्चित होता है ।

श्रीरामानुजाचार्यके समयमें शैवोंकी चार शाखाएँ मिलती हैं—कापाल, कालामुख, पाशुपत और शैव । इनमें पाशुपत और कालामुख—ये दोनों लकुलीशके सिद्धान्तोंके माननेवाले थे । सर्वदर्शनसंग्रहमें नकुलीश-पाशुपत-दर्शनका विवेचन है और वहाँ उसकी तुलना शैव-दर्शनसे की गयी है । ज्ञात होता है कि शिव-सिद्धान्त लकुल-सिद्धान्तोंसे कुछ भिन्न थे । सर्वप्राचीन पाशुपत-दर्शनका ही अपर नाम लकुलीश-दर्शन समझना चाहिए । इन लकुलीशने उग्र तपस्याके द्वारा पाशुपत-व्रतका पुनरुद्धार किया । उनके शिष्य महाराष्ट्रके बड़ौदा स्थानसे फैलकर सुराष्ट्र, दक्षिण और उत्तर-में मथुरातक बस गये । लकुलीशकी मूर्तियाँ भी बहुत मिलती हैं । उनके दाहिने हाथमें लकुट होता है, जिसके कारण ही सम्भवतः लकुटी (ली) श नाम पड़ा होगा । बायें हाथमें बीजपूरक फल रहता है । मस्तकमें तृतीय नेत्र पाया जाता है, जिससे इनका त्र्यम्बररूप सिद्ध होता है । चीनी यात्री हुएन्त्साङ्गने भी पाशुपत-सम्प्रदायका उल्लेख किया है । बाणके ‘हर्षचरित’ में पाशुपतोंका कई बार वर्णन आया है । हर्षके पुष्पभूतिवंशमें शिवकी भक्ति विशेषरूपसे प्रचलित थी । पाशुपतलोग अपने व्रतोंका बहुत उग्रताके साथ पालन करते थे, अतएव उनमें कुछ घोर प्रथाओंका भी

समावेश हो गया। परन्तु प्राचीन पाशुपत-मत विशुद्ध योग-सिद्धान्तका प्रतिपादक था। पाशुपतलोग जीवको 'पशु' और शिवको 'पशुपति' कहते हैं। सब पशु पाशवद्ध माने गये हैं। पशुपतिकी साधनासे पाशोंपर विजय प्राप्त की जाती है।

संक्षेपमें मथुराके शिलालेखसे पाशुपत-सम्प्रदायके

इतिहासपर जो प्रकाश पड़ता है उसका वर्णन डाक्टर भाण्डारकरके लेखके आधारपर यहाँ किया गया है। इस लेखके साथ दिये गये चित्रमें स्तम्भका जो भाग दृष्टिगोचर होता है उसपर एक त्रिशूल और एक लकुलीशकी दण्डहस्त-मूर्ति अङ्कित है।

बम्बईकी कुछ विलक्षण शैवमूर्तियाँ

(लेखक—श्रीरणछोड़लालजी शानी, एम० ए०, एम० आर० ए० एस्०)

यद्यपि पौराणिक-मतानुसार ब्रह्मा सृष्टिके उत्पादक, विष्णु पोषक और शिव संहारक माने गये हैं, तथापि इन देवताओंमें विशिष्ट प्रसङ्गानुसार कहीं-कहीं उक्त तीनों गुणोंकी भावना भी की गयी है।

शियालयोंमें बहुधा हमें शिवलिङ्गके ही दर्शन होते हैं, परन्तु शिवकी भिन्न-भिन्न भावनायुक्त मनुष्याकार मूर्तियाँ बहुत ही कम स्थानोंमें स्थापित दीख पड़ती हैं। मनुष्याकार मूर्तियोंमें भी वे मूर्तियाँ दुर्लभ हैं जो शिवपुराणमें वर्णित घटनाओंको प्रदर्शित करती हैं। शिवलिङ्गको तो प्रत्येक हिन्दू पहचान सकता है; परन्तु उमा-महेश्वर-मूर्ति, चन्द्रशेखर-मूर्ति, आलिङ्गन-मूर्ति, अनुग्रह-मूर्ति और पुराणवर्णित अर्धनारीश्वर-मूर्ति, कालहर-मूर्ति, हरिहर-मूर्ति, अन्धकासुरवध-मूर्ति और गजासुरसंहार-मूर्ति आदि शैव-प्रतिमाओंको पहचाननेके लिये मूर्तिशास्त्र एवं शिवपुराणादिकी कथाओंके ज्ञानकी आवश्यकता होती है।

उपर्युक्त तीनों प्रकारकी कई मूर्तियाँ बम्बईके सङ्ग्रहालयमें संग्रहीत हैं। यदि उनका सम्पूर्ण वर्णन और तुलनात्मक दृष्टिसे विवेचन किया जाय तो शायद एक पुस्तक तैयार हो जाय। अतः स्थलसङ्कोच और समयाभावके कारण कल्याणके पाठकोंके लिये केवल दो ही घटनात्मक मूर्तियोंका इस लेखमें उल्लेख किया जाता है और इसीके साथ एक अद्वितीय शैव-प्रतिमाका भी संक्षिप्त विवरण लिखा जाता है।

अन्धकासुर-वध-मूर्ति

वराहपुराणमें लिखा है कि हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके क्रमशः वराह और नृसिंह-अवतारद्वारा नाश होनेके पश्चात् कुछ दिनोंतक प्रह्लादादि भक्तोंके समयमें

देवताओंको शान्ति मिली, परन्तु कुछ कालके अनन्तर उसी वंशमें अन्धकासुर नामक एक राक्षस उत्पन्न हुआ। वह बहुत ही शक्तिशाली था। उसने घोर तपश्चर्याके द्वारा ब्रह्माको प्रसन्न कर उनकी कृपासे इस लोकमें अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया और कुछ समय बाद वह देवलोकमें पहुँचकर देवताओंको कष्ट देने लगा। उसके डरसे स्वर्गके सारे देवता इधर-उधर भाग चले। तदनन्तर वह अपनी शक्ति और विजयसे मदोन्मत्त होकर एक बार कैलास पर्वतपर जा पहुँचा और वहाँ भगवती पार्वतीका हरण करनेको तैयार हो गया। उसकी इस नीचता और धृष्टताको देखकर शिवजी कुपित होकर उसे दण्ड देने चले। विष्णु, इन्द्रादि देवता भी साथ हो लिये। शिवजीने वासुकि, तक्षक और धनञ्जय नामक तीन महासर्पोंको उत्पन्न कर उन्हें अपने कमरबन्द और बाजूबन्दोंके रूपमें सजाया और त्रिशूल लिये आगे बढ़े। युद्धके घमसानमें अन्यान्य देवता तो अन्धकासुरके सामने नहीं टिक सके। केवल शिवजी ही उससे लड़ते रहे। अन्धकासुरपर शिवजीने कई आक्रमण किये और उसे घायल किया, परन्तु पृथिवीपर पड़नेवाले उसके रक्तके प्रत्येक बिन्दुसे एक-एक नया अन्धकासुर उत्पन्न होने लगा। बहुत देरतक मुकाबला करनेके बाद आखिर शिवजीने असली अन्धकासुरके पेटमें त्रिशूल चुभाकर उसे वैसे ही उठा लिया। इसप्रकार त्रिशूलपर अन्धकासुरको उठाकर शिवजी नृत्य करने लगे, परन्तु फिर भी उसके रक्त-बिन्दुओंसे नये-नये अन्धकासुरोंकी उत्पत्ति जारी ही रही। इस बलासे बचनेके लिये विष्णुने अपना सुदर्शन छोड़ा, जो नवजात सभी राक्षसोंको काटने लगा; परन्तु ज्यों-ज्यों रक्त अधिक बहने लगा त्यों-ही-त्यों राक्षसोंकी संख्या भी बढ़ने लगी। आखिर, शिवजीने अपनी क्रोधाग्नि की ज्वालासे एक शक्ति उत्पन्न की और इसी प्रकार ब्रह्मा, महेश्वर, कुमार



परलकी अद्वितीय शैव-मूर्ति



अन्धकासुरवध-मूर्ति



गजासुरसंहार-मूर्ति



विष्णु, वराह, इन्द्र और यमने भी अपनी-अपनी शक्तियों-को प्रेषित किया, जिनके वाहन और आयुध क्रमशः उपर्युक्त देवताओंके सदृश ही थे (इन देवियोंकी सप्तमातृकाके नामसे पूजा होती है, जिनके नाम ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा हैं) । इन देवियों और डाकिनियों आदिने मिलकर समस्त राक्षसोंका रक्त-शोषण कर लिया, जिससे पृथिवीपर खूनकी बूँदोंका गिरना बन्द हो जानेके कारण अन्धकासुरकी विस्तारलीलाका अन्त हो गया ।

इसप्रकार अन्धकासुर-वधकी कथाका ज्ञान होनेपर ही शिवजीकी उक्त घटना-प्रदर्शक मूर्तिको पहचाना जा सकता है ।

इस लेखके साथ प्रकाशित अन्धकासुर-वध-मूर्तिके चित्रको देखनेसे पता चलता है कि शिवजी विकराल स्वरूप धारण किये खड़े हैं । एक पैरके नीचे अपस्मार दैत्य (जिसका शिवकी प्रत्येक नृत्यमूर्तिमें शिवके पैरोंके नीचे होना मूर्तिशास्त्रानुसार आवश्यक है ।) दबा है । दूसरा पैर पृथिवीपर तना हुआ है । दाहिने तरफके एक हाथमें परशु और एक बाँयें हाथमें नाग है । बाकीके दो हाथोंमें आप त्रिशूल थामे हैं, जिसपर अन्धकासुरको उठाये हुए हैं । उसके रक्तकी बूँदोंको झेलकर पी जानेके लिये (या शायद दानवके मांसकी लालसासे) डाकिनी अपना मुँह ऊपरको किये अपस्मार दैत्यके बगलमें खड़ी है । अन्धकासुरकी ओर देखनेसे मान्य होता है कि अब उसका अभिमान और मद नष्ट हो चुका है और वह हाथ जोड़े शिवजीसे क्षमा-याचना कर रहा है ।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि हिन्दुओंकी प्रत्येक मूर्तिमें कुछ-न-कुछ गूढार्थ समाया हुआ होता है और उनके वर्णन प्रायः सब रूपक-अलङ्कारयुक्त हैं । ब्रह्मा, सरस्वती, शेषशायी विष्णु और गणपति आदिकी मूर्तियोंका रहस्य तो शायद कई पाठकोंको ज्ञात होगा । उन्हींकी भाँति अन्धकासुर-वधकी शिव-प्रतिमा भी अपना रहस्य रखती है । वराहपुराणमें उपर्युक्त कथाके वर्णनके अन्तमें लिखा है—

‘एतत्ते सर्वमाख्यातं आत्मविद्यामृतम्’

• अन्धकासुर-वधकी किसी-किसी मूर्तिमें सप्तमातृकाएँ भी बगलमें खड़ी दृष्टिगोचर होती हैं, परन्तु इस मूर्तिमें तो अर्धनारी और अर्धपक्षिणीकी देहवाली डाकिनी ही दीख पड़ती है ।

अर्थात् ‘इस कथासे आत्मविद्याका बोध होता है ।’ शिवको विद्याका स्वरूप समझकर अविद्यान्धकाररूपी राक्षसके नाशकी कल्पना इस कथामें की गयी है । अनुभवकी बात है कि ऐसे कार्यमें पहले-पहल एकसे अनेक आपत्तियोंका सामना होता है और जबतक मनोवृत्तियोंके निरोधसे पूरा काम नहीं लिया जाता, सफलता प्राप्त नहीं हो सकती । वराहपुराणमें उपर्युक्त सप्तमातृकाओंके साथ एक योगेश्वरीका भी उल्लेख है । इन अष्टमातृकाओंके वास्तविक अर्थ इसप्रकार हैं ।

- | | |
|-----------------------|------------------------|
| (१) योगेश्वरी = काम | (५) कौमारी = मोह |
| (२) माहेश्वरी = क्रोध | (६) इन्द्राणी = मत्सर |
| (३) वैष्णवी = लोभ | (७) चामुण्डा = पैशुन्य |
| (४) ब्राह्मी = मद | (८) वाराही = असूया |

इसप्रकार इन आठों मानसिक दोषोंपर स्वामित्व प्राप्त करनेसे विद्वान्लोग अविद्यान्धकारपर विजय प्राप्तकर आत्मविद्याद्वारा अपना कल्याण कर सकते हैं । यही इस कथाका रहस्य है ।

गजासुर-संहार-मूर्ति

एक दूसरी मूर्ति, जो प्रायः दक्षिण-भारतमें ही अबतक पायी गयी है और अब दुर्लभ है, वह है शिवकी गजासुर-संहार-मूर्ति । इस नामसे ही ज्ञात हो सकता है कि यह मूर्ति गजासुरके वधकी है । परन्तु इसकी कथाके ज्ञानके बिना मूर्तिकी पहचान नहीं की जा सकती । कथा इसप्रकार है कि काशीनगरीके कृत्तिवासेश्वर महादेवके मन्दिरमें एक बार जब ब्राह्मणलोग पाठ-पूजा, जप-तपादिमें प्रवृत्त थे, एक हाथीके शरीरवाला राक्षस-गजासुर वहाँ आया और ब्राह्मणोंको कष्ट देने लगा । तपश्चर्याके भङ्गके कारण दुखी हुए भक्त ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये शिवजी मन्दिरके पाषाणनिर्मित शिवलिङ्गसे प्रकट हुए और उन्होंने उस राक्षसका वध किया और उसके शरीरकी खाल उतारकर ओढ़ ली । शिवके इस स्वरूपकी प्रतिमाको गजासुर-संहार-मूर्ति कहते हैं । यह कथा कूर्मपुराणकी है; परन्तु वराहपुराणमें लिखा है कि जिस समय शिवजी अन्धकासुरके साथ युद्ध कर रहे थे, नील नामक राक्षस हाथीका स्वरूप धारणकर शिवजीपर आक्रमण करनेके लिये आगे बढ़ा । शिवजीने तो उसे नहीं देखा; परन्तु नन्दीकी दृष्टि उसपर पड़ गयी, जिसने फौरन वीरभद्रको इशारा कर दिया । वीरभद्रने इस भयङ्कर हाथीका

मुकाबला करनेके लिये अविलम्ब सिंहका स्वरूप धारण कर लिया और उसे मार डाला। तत्पश्चात् उसकी खाल उतारकर उसे शिवजीकी भेट कर दिया। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे उस हस्तिचर्मको लेकर ओढ़ लिया। अतएव इस स्वरूपके शिवकी मूर्ति उपर्युक्त नामसे पहचानी जाती है।

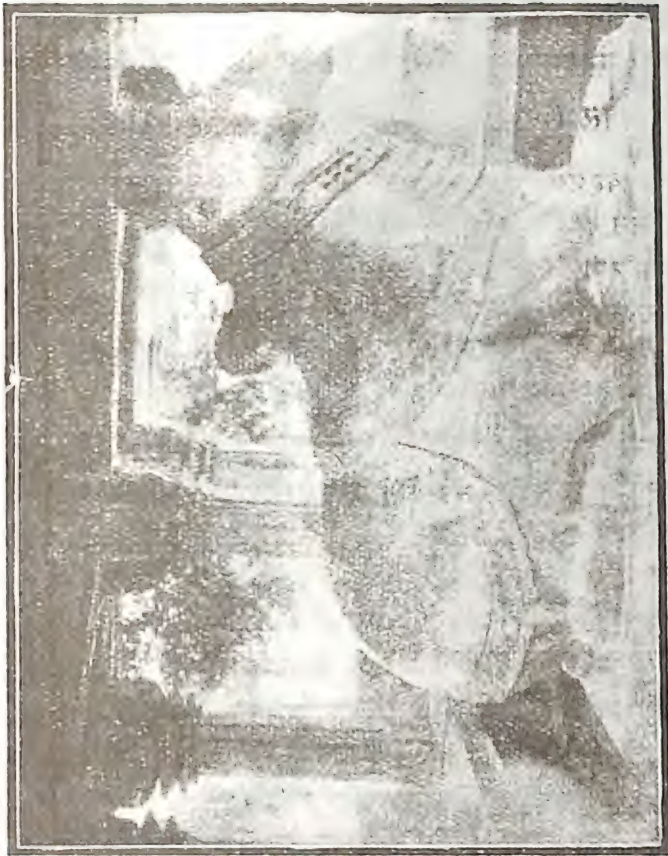
अंशुमभेदागम, शिल्परत्न और अन्य शिवागमोंमें गजा-सुर-संहार-मूर्तिका वर्णन पाया जाता है। प्रथम कथित पुस्तकके अनुसार इस स्वरूपमें शिवके आठ हाथ होने चाहियें। कभी-कभी चार हाथवाली मूर्तियाँ भी देखी गयी हैं। इस लेखके साथ दिये हुए चित्रमें मूर्तिके हाथके आयुध तो नजर नहीं आते; परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उसके आठ हाथ हैं, जो आधे-आधे खण्डित हो गये हैं। मूर्तिशास्त्रके अनुसार ऐसी मूर्तियोंके दाहिने चार हाथोंमें त्रिशूल, डमरू, पाश और हाथीकी खाल और बायें हाथोंमेंसे तीनमें क्रमशः कपाल, हाथीका दाँत, हाथीकी खाल होनी चाहिये और चौथा हाथ विस्मयमुद्रायुक्त होना चाहिये। कुछ और ग्रन्थोंके अनुसार आयुधोंमें फरक भी होता है; हमारी मूर्तिके हाथोंमें कौन-कौन-से आयुध होंगे यह तो कहा नहीं जा सकता। हाँ, दो हाथोंमें हाथीकी खाल, जो आवश्यक है, अवश्य होगी। दुर्भाग्यवश पैर भी खण्डित हैं। मूर्तिशास्त्रके अनुसार कल्पना हो सकती है कि इसका एक पैर (बायाँ) हाथीके सिरपर (जोकि नीचेकी तरफ दीखता है) होगा और दूसरा पैर (दाहिना) जङ्घातक उठा हुआ नृत्यकी अवस्थामें होगा। इस मूर्तिको गजासुर-संहारमूर्ति कह सकनेके लिये प्रमाणरूप हाथीके सिरके अतिरिक्त उसकी खाल भी है, जो मूर्तिके पीछे प्रभामण्डलकी तरह फैली हुई है। हाथीके सिरके पीछे बायीं तरफ दो छोटी मूर्तियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। वे क्रमशः पार्वती और स्वामिकार्तिकेयकी हैं, जो इस घटना (गजासुर-संहार) को आश्चर्यके साथ देख रहे हैं। इस मूर्तिमें अलङ्कारादि बड़ी खूबीके साथ खोदे गये हैं और चारों ओरके हासियेमें भी कई मनुष्याकार और पशुओंकी प्रतिमाएँ खुदी हुई हैं, जो सम्भवतः शिवके उक्त राक्षसके साथ सङ्ग्रामके घटनात्मक क्रमवार दृश्य होंगे; परन्तु मूर्तिके पुरानी होनेके कारण पत्थर बहुत घिस गया है। यह मूर्ति धारवार जिलेके लखुंदी नामक स्थलसे प्राप्त हुई है और सम्भवतः तेरहवीं शताब्दीकी है।

परेल (बम्बई) की अद्वितीय शैव-प्रतिमा

यह एक शैव-प्रतिमा है, जो बम्बईके परेल नामक भागमें सन् १९३१ के अक्टूबरमें म्यूनिसिपैलिटीके मजदूरोंको एक नयी सड़क बनाते वख्त खुदाईमें मिली थी। यह मूर्ति पुरातत्त्वान्वेषणकी दृष्टिसे बहुत ही विचित्र है, क्योंकि मूर्तिशास्त्रमें वर्णित किसी भी मूर्तिसे इसका सर्वथा साम्य नहीं है। हाँ, जटा-मुकुट और चन्द्रमा आदिके होनेके कारण इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह शैव-मूर्ति है। इसके विषयमें विभिन्न विद्वानोंने भौतिक-भौतिकी कल्पनाएँ की हैं। महेश-मूर्ति, सदाशिव-मूर्ति, विद्याधर, सङ्गीतेश्वर, सप्ताङ्गी शिव आदि अनेक अनुमान अभीतक लगाये गये हैं, जिनका उल्लेख 'गङ्गा'के पुरातत्त्वाङ्कमें किया जा चुका है। अतः इस लेखमें उसका वर्णन और उक्त लेखके प्रकाशित होनेके पश्चात् की हुई खोजका फलमात्र ही दिया जायगा।

यह अनेक मूर्तियोंवाली शिला कुछ सुर्खी लिये हुए पीले रंगकी है। इसकी लम्बाई बारह फुट और चौड़ाई करीब छः फुट है। शिलाके मध्य-भागमें जटा-मुकुट-धारी एक मूर्ति बायें हाथमें कमण्डलु और दाहिनेमें सुमिरनी लिये खड़ी है। उसके भालपट्टमें शानशक्तिरूपी तीसरा नेत्र और जटामें शानचिह्न चन्द्रमा है। कमरमें कमरबन्द (कटिमेखला) हाथोंमें कङ्कण, भुजाओंपर बाजूबन्द और गलेमें माला है। इस मूर्तिके पृष्ठभागसे एक दूसरी मूर्ति निकलती हुई दीख पड़ती है, जिसका कमरसे ऊपरका भाग ही दृष्टिगोचर होता है। इस मूर्तिके आयुध और अलङ्कार पहली मूर्तिके सदृश ही हैं। फरक केवल यही है कि पहलीका हाथ विस्मय-मुद्रामें है और दूसरीका हाथ शानमुद्रामें है और बायें हाथमें कमण्डलु लटक रहा है। इस दूसरी मूर्तिके पृष्ठ-भागसे भी एक तीसरी मूर्ति निकली है। इसका भी कमरसे ऊपरका अङ्ग ही दृष्टिगोचर होता है। इसके भी जटा-मुकुट और अलङ्कारादि उक्त मूर्तियोंके-से ही हैं, परन्तु हाथोंकी संख्या और आयुध अधिक हैं। उक्त दोनोंके दो-दो हाथ हैं परन्तु इसके दस हाथ हैं। दाहिनी तरफको पहले हाथमें रणसिंगा, दूसरेमें खड्ग, तीसरेमें शूल, चौथेमें डफ और पाँचवेंमें अक्षमाला है, बायीं ओरके पहले हाथमें पाश, दूसरेमें खेटक (ढाल), तीसरेमें धनुष, चौथेमें डमरू और पाँचवेंमें जलकमण्डलु विराजमान है।

उक्त दोनों मूर्तियोंके कन्धोंके नीचे पीठकी ओरसे



खजुराहो का विशाल नन्दो



चाकाटक हरगौरी (कैलासपर)



नचना पार्वती मन्दिरका द्वार गंगा-यमुना अंकित चौखटसहित



नचना पार्वती-मन्दिरकी पर्वतरूप शिवाल का अंश



नचनाका शिवमन्दिर



नचनाके वाकाटक महाभैरव (चतुर्मुख लिंग)



पूर्व स्मितमुख
नचनाके वाकाटक महाभैरव
उत्तर गंभीरमुख



पश्चिम शान्तमुख
नचनाके वाकाटक महाभैरव
दक्षिण महाभैरवमुख

दाहिनी और बायीं तरफ दो-दो मूर्तियाँ निकली हुई दीख पड़ती हैं। इन चारों मूर्तियोंका एक-एक पैर ऊपरकी ओर खिंचा हुआ है, मानो अभी निकलकर उड़ा ही चाहती हैं। इन चारोंकी मुखाकृति, जटामुकुट और अन्य आयुध तथा अलङ्कारादि सब पहली दो खड़ी हुई बीचकी मूर्तियोंके समान ही हैं। हाथकी मुद्राओंमें कुछ अन्तर अवश्य है।

इस मूर्तिसप्तके दाहिने और बायें भी कुछ मूर्तियाँ खुदी हैं जो सम्भवतः शिवके गण हैं और गान-तानमें मस्त हैं। दाहिनी ओर तीन मूर्तियाँ हैं जिनके हाथमें क्रमशः (१) सारंगी (२) तम्बूरा, करताल और (३) बाँसुरी हैं। बायीं ओरके दो गवैये एकतारा और करताल लिये दीख पड़ते हैं।

मालूम होता है कि यह मूर्ति महेश्वर और सदाशिवकी पञ्चमूर्तिवाले स्वरूपोंका एकीकरण है, जो अवश्य इसके बनानेवालेकी अनोखी सूझका परिचायक है। महेश्वरमूर्तिमें शिवके त्रिगुणात्मक स्वरूपकी भावना होती है। पुराणोंमें कहा गया है कि शिव सात्त्विकगुणमें विष्णुस्वरूप, राजसमें ब्रह्मास्वरूप और तामसगुणमें कालरुद्रका स्वरूप धारण करते हैं। इन तीनोंकी संयुक्त भावनावाली मूर्ति महेश्वर-

मूर्ति कहलाती है, जो खड़ी हुई एक-पर-एक तीन मूर्तियोंसे इस परेलकी मूर्तिमें प्रदर्शित की गयी है। पहली मूर्ति शिवके सात्त्विक स्वरूपकी है, उसपरकी दूसरी राजस-स्वरूपको व्यक्त करती है और सबसे ऊपरकी तीसरी तामसगुण-युक्त कालरुद्र-स्वरूपकी है, जो संहारक आयुधोंसे व्यक्त की गयी है।

अब बगलकी चार मूर्तियोंको बीचकी खड़ी हुई पहली मूर्तिके साथ लेकर पञ्चमूर्तिका स्वरूप व्यक्त किया गया है। इस पञ्चमूर्तिमें शिवके पाँच स्वरूपोंकी भावना मूर्तिशास्त्रमें की गयी है। मध्यकी मूर्ति शिवके 'ईशान' स्वरूपकी है। बाजूकी चारों शिवके चार स्वरूपों—(१) सद्योजात (२) वामदेव (३) तत्पुरुष और (४) अघोरको व्यक्त करती हैं। यह भावना सम्भवतः तैत्तिरीय आरण्यक और लिङ्गपुराणसे ली गयी है।

इसप्रकार महेश्वरमूर्ति और पञ्चमूर्तिका संयुक्त भावना-वाली मूर्ति बनाकर कारीगरने कमाल किया है। मूर्तिशास्त्रमें कहीं भी ऐसी मूर्तिका उल्लेख नहीं है, अतः यह अनोखी मूर्ति मूर्तिशास्त्रवेत्ताओंकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वकी है।



भारशिव और वाकाटक राजवंशके इष्टदेव शिव

(लेखक—श्रीशारदाप्रसादजी, सतना)



देवोंमें महेश संहारकर्ता हैं। परन्तु वे नाश किसका करते हैं? दुष्टोंका, धर्मके विरुद्ध आचरण करनेवालोंका। वे शिव हैं, कल्याणकर्ता हैं। संहारके द्वारा वे सृष्टिका कल्याण करते हैं। भारतवर्षके इतिहासमें, उनके द्वारा किये गये देशके महत् कल्याणके विवरणको संसार भूल गया था। अभी हालहीमें इसका पता चला है। यह इतिहास मैं अति संक्षेपमें पाठकोंके सम्मुख रखना चाहता हूँ।

ईस्वी सन्की प्रथम शताब्दीमें शक अथवा कुषाण-जातिने भारतपर आक्रमण किया। इस वंशमें सबसे प्रतापी सम्राट् कनिष्क हुआ। यह सन् ७८ ई० में सिंहासनपर बैठा। इसके राज्यमें कश्मीर, बुखारा, अफगानिस्तान, फारसका कुछ अंश तथा पाटलिपुत्रपर्यन्त समस्त उत्तरी

भारत सम्मिलित था। इसकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। सिंहासनारूढ़ होनेके बाद यह बौद्ध हो गया था। कनिष्कका उत्तराधिकारी हुविष्क हुआ और हुविष्कके बाद सन् १३८ ई० में वासुदेव गद्दीपर बैठा। वासुदेवकी मृत्युसे लेकर गुप्त-साम्राज्यकी स्थापनातक लगभग १५० वर्षका वृत्तान्त वर्तमान इतिहास-ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। यही वह समय है जब भगवान् शिवकी कृपासे उनके अनुयायी भारशिव (नाग) तथा वाकाटकवंशके राजाओंने देशमें धर्म स्थापन किया। इस खोजका श्रेय पटनाके श्रीकाशीप्रसाद जायसवालको है।

शक अथवा कुषाण सम्राट् हिन्दू-धर्मके घोर विरोधी थे। इन्होंने ढूँढ़-ढूँढ़कर मन्दिर तोड़वाये, ब्राह्मण-क्षत्रियोंको दबाया और नीचोंको ऊँचे पद दिये। इन्होंने कर (टैक्स) का भार प्रजापर बहुत बढ़ाया। वास्तवमें ये हिन्दुओंके सैनिक बलसे नहीं डरते थे। इन्हें भय था हिन्दू-

समाजके संगठनसे। इसी कारण वे उसे तोड़नेके लिये अत्याचार-पर-अत्याचार कर रहे थे। पृथिवी इनके भारसे धँसी जा रही थी। ऐसे ही विकट समयमें भगवान् शिवने अपने भक्त नागवंशको वह शक्ति प्रदान की जिसके द्वारा उन्होंने शकोंको देशसे निकाल बाहर किया।

नाग यादवक्षत्रिय थे और इनका प्रथम राजवंश विदिशा नगरीमें राज्य करता था। वहाँ शेषनाग, भोगनाग, रामचन्द्रनाग, भूतनन्दी, शिशुनन्दी आदि शासक हुए। कहते हैं कि देशके दुर्दिनोंमें इनके समयने भी पलटा खाया और इन्हें लगभग ६० वर्षका दीर्घकाल (सन् ८० से सन् १४० ई० तक) मध्यभारतके जङ्गलोंमें छिपकर बिताना पड़ा। यहाँ इन्होंने छोटा-मोटा जंगली राज्य स्थापित कर लिया और भगवान् शिवकी प्रेरणासे यहाँसे निकल रीवाँ बघेलखण्ड होते हुए गङ्गातटपर पहुँचकर शकोंके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। उनकी कृपासे इन्हें सफलता प्राप्त हुई। इन्होंने शकोंको देशसे बाहर निकालकर समस्त आर्यावर्तपर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। इन नय नागोंका राजवंश भारशिवके नामसे प्रख्यात हुआ और इनमें वीरसेन, हयनाग, त्रयनाग, चरजनाग और भवनाग प्रसिद्ध सम्राट् हुए। इन्होंने लगभग १५० ई० से २८४ ई० तक राज्य किया। इनके वंशका नाम 'भारशिव' पड़नेका कारण ताम्रपत्रके निम्नलिखित वाक्यसे स्पष्ट हो जाता है—

अंसभारसन्निवेशितशिवलिङ्गोद्बहनशिवपरितुष्टसमुत्पा-
दितराजवंशानां पराक्रमभिगतभागोरथ्यमलजलमूर्द्धाभि-
षिक्तानां दशाश्वमेधावभृथस्नानानां भारशिवानाम्।

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि इन्होंने शिवलिङ्गके भारको अपने कंधेपर वहन करके भगवान् शिवको प्रसन्न किया, अपने पराक्रमसे भागीरथी गङ्गाको प्राप्त किया (अर्थात् गङ्गा-तटवर्ती देशपर अधिकार किया)। गङ्गाजलसे इनका अभिषेक हुआ, इन्होंने दस अश्वमेध-यज्ञ * किये और इनका वंशनाम 'भारशिव' पड़ा। ये तो भगवान् शिवका भार वहन करनेवाले नन्दी थे। देशोद्धारके निमित्त ही पृथिवीपर इनका अवतार हुआ था। हिन्दू-धर्मशास्त्रके अनुसार ये किसी राज्यका अपहरण नहीं करते थे। राजासे अपना स्वामित्व स्वीकार कराकर उसे अपने देशपर राज्य करने देते थे। ऐसा ही एक प्रतापी शैव वाकाटकराजवंश

इनका पड़ोसी था। अन्तिम भारशिव महाराज भवनागके दौहित्र रुद्रसेन वाकाटक महाराज प्रवरसेनके पौत्र थे और यही दोनों राज्योंके उत्तराधिकारी हुए। इसप्रकार भारशिव-वंश वाकाटकवंशमें लीन हो गया।

वाकाटक-साम्राज्य भारशिवसे भी समृद्धिशाली हुआ। वाकाटकराज्य विन्ध्यशक्तिने स्थापित किया था और उनके पुत्र प्रवरसेन (प्रथम) बड़े प्रतापी हुए। इन्होंने सम्राट्पद ग्रहण किया और चार अश्वमेध-यज्ञ किये। इन्होंने दीर्घ कालपर्यन्त राज्य किया, यहाँतक कि इनके पुत्र, जिनका नाम गौतमीपुत्र था, इनके उत्तराधिकारी नहीं हुए, वरं ऊपर लिखे अनुसार इनके पौत्र रुद्रसेन (प्रथम) इनके पीछे गद्दीपर बैठे। इस वंशके अन्य नरेश पृथिवीसेन (प्रथम), रुद्रसेन (द्वितीय), दामोदरसेन, प्रवरसेन आदि हुए। इसी वंशकी एक शाखाने दक्षिणका पल्लववंश स्थापित किया। वाकाटकोंके ही समयमें हिन्दू-संस्कृतिका प्रचार दक्षिणमें हुआ और दक्षिणापथ भी इनके प्रभावसे शैव हो गया। आर्य तथा द्रविड़-सम्भ्यताका विभेद दूरकर, आर्यावर्त्त और दक्षिणापथकी संस्कृति एक करके, भारत शब्दके अन्तर्गत समस्त देशको लानेका श्रेय इसी शैव-वाकाटकवंशको प्राप्त है।

भारशिव और वाकाटक-दोनों ही वंश शैव थे। इस बातके प्रमाणस्वरूप इन वंशोंके राज्यकालमें बने हुए मन्दिर अवतक विद्यमान हैं। भारशिव-वंशका उत्थान किस प्रकार भगवान् शिवकी कृपासे हुआ, यह ऊपर लिखा जा चुका है। जिस मूर्तिविशेषका भार वहन करके उन्होंने शिव-कृपा उपलब्ध की थी, उसका पता भी अब लग गया है। यह नागौद-राज्यान्तर्गत परसमनिया पहाड़ीपर, भुमरा-गाँवके निकट, घोर वनमें एक भग्न मन्दिरमें स्थित है। अवतक वहाँके जङ्गली आदमी इस मूर्तिको 'भाकुलबाबा' कहते हैं। माळूम होता है, यह 'भाकुल' शब्द 'भारकुल'का ही अपभ्रंश है। इस मन्दिरके चारों ओर बहुत-सी ईंटें पड़ी हैं और उनमेंसे अनेकपर कुछ अक्षर लिखे हैं। ऐसी दो ईंटोंकी जाँच श्रीकाशीप्रसाद जायसवालने की है और इन्हें सन् १५० से २०० ई० तकके अक्षरोंसे अङ्कित पाया है। यही समय भारशिव वंशकी समृद्धिका था। भारशिवोंने शकोंसे गङ्गा-यमुनाकी मर्यादाकी रक्षा की थी, इस कारण उन्होंने इनकी मूर्तियोंको अपना राज्यचिह्न बनाया। इसप्रकारकी सुन्दर मूर्तियाँ इस मन्दिरकी चौखटपर भी

* सम्भवतः काशीका दशाश्वमेधघाट ही वह यज्ञस्थली है।



भुमराका भारशिव मन्दिर



भुमराके भारकुलदेव—एकमुखी



भारशिव स्तम्भ



भारशिव हरगौरी



अङ्कित हैं। इन सब बातोंपर विचार करनेसे यह सिद्ध होता है कि अपने विपत्तिकालमें नागोंने अपने कुलदेवकी मूर्त्तिको इन्हीं जङ्गलोंमें छिपाकर रखा और उनकी भक्ति-पूर्वक सेवा की। उनके प्रसादसे राज्यप्राप्ति होनेपर यह सुन्दर मन्दिर निर्माण कराया और इसकी चौखटको गङ्गा-यमुनाकी मूर्त्तिसे सुशोभित किया। यह चौखट उठकर उचेहरा पहुँच गयी है, इस कारण इसका चित्र प्रकाशित नहीं किया जा सकता। भगवान् भारकुलदेवका चित्र प्रकाशित किया जा रहा है। यह एकमुख लिङ्ग है और मुखका भाव शान्त, परम शिव है। इस प्रान्तके जङ्गलोंमें अनेक भारशिव-एकमुख लिङ्ग पाये जाते हैं।

भुमरासे लगभग १३ मीलपर गंज है, जिसके निकट नचनामें दो वाकाटक-मन्दिर हैं। एकमें भगवान् शिवका चतुर्मुख लिङ्ग स्थापित है और दूसरा पार्वतीजीके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है। इसकी मूर्त्तिका अब पता नहीं है। शिवजीके मन्दिरका आगेका भाग गिर गया था, यह हालमें शिव-भक्त स्व० पं० रामसहाय पाँडेद्वारा बनवा दिया गया है और इसप्रकार शेष भागकी रक्षा हो गयी है। पार्वतीजीका मन्दिर बिल्कुल भग्न दशामें है। इन मन्दिरोंके चित्र प्रकाशित किये जाते हैं। अवश्य ही ये मन्दिर भुमराके भारशिव-मन्दिरके बादके हैं; परन्तु कलाकी दृष्टिसे इनकी मूर्त्तियोंमें विशेष भेद नहीं है। भारशिववंश भगवान्की सौम्य मूर्त्ति—शिवका उपासक था और वाकाटकवंश

उनके रुद्ररूप-महाभैरवका। भारकुलदेवकी मूर्त्ति सौम्य है और वाकाटक प्रभु महाभैरव हैं। इनका वर्त्तमान नाम 'चम्बुकनाथ' है। 'चम्बुक' चतुर्मुखका अपभ्रंश है।

इन मन्दिरोंके निर्माणमें एक बड़ी विलक्षणता देखनेमें आयी। भुमराके मन्दिरमें दीवालके बाहरी भागमें अनेक शिवगणोंकी मूर्त्तियाँ बनी मिलीं, जिन्हें देखकर गोस्वामी तुलसीदासके शिव-वरातके गणोंका स्मरण हो आता है। इनमेंसे अब कुछ कलकत्तेके अजायबघरमें और कुछ उचेहरामें हैं। नचनाके पार्वती-मन्दिरका बाहरी दृश्य बिल्कुल पर्वतके अनुरूप बना हुआ था और उसमें अनेक गुहाएँ, ऊँचे-नीचे स्थान तथा जानवर दिखलाये गये थे। महाभैरव-मन्दिरके बाहरी भागमें शिल्पशास्त्रके नियमोंके अनुसार अङ्कित गन्धर्व-मिथुन आदिके दृश्योंके अतिरिक्त अनेक शिवगणोंकी मूर्त्तियाँ भी अङ्कित हैं। इससे यह परिणाम निकलता है कि यह मन्दिर शिवगणोंके सहित कैलासके भावको लेकर बनाया गया था और पार्वती-मन्दिरमें पर्वतका भाव दर्साया गया था। भारशिवकी गङ्गा-यमुना-मूर्त्तिसे अङ्कित चौखटका अनुकरण वाकाटकोंने किया और उनका गुप्तोंने। ये चौखटें बड़ी सुन्दर बनती थीं, जो आज भारतीय स्थापत्य-कलाकी उत्तम उदाहरण मानी जाती हैं। चौखट ही क्या, ये मन्दिर ही भारतीय स्थापत्य-आकाशके देदीप्यमान तारे हैं।

श्रीमहादेव-कामरूपराजवंशके इष्टदेव

(लेखक-अध्यापक पं० श्रीपद्मनाथजी मट्टाचार्य, विधाविनोद, एम० ए०)

भारतवर्षके ईशानकोणमें बहनेवाली करतोया-नदीके पूर्वमें जो भूभाग दीख पड़ता है, वही कामरूप नामसे प्रसिद्ध था।* इस नामके साथ ही हम श्रीमहादेवका सम्बन्ध पाते हैं, क्योंकि कालिकापुराणमें लिखा है—

शम्भुनेत्राग्निनिर्द्गन्धः कामः शम्भोरनुग्रहात् ।

तत्र रूपं यतः प्राप कामरूपं ततोऽभवत् ॥

(५१।६७)

* इसका दूसरा नाम था 'प्राग्ज्योतिष'। महाभारतमें यही नाम पाया जाता है, 'कामरूप' नाम नहीं मिलता। (आजकल 'कामरूप' नाम एक जिलेमें सीमित हो गया है।)

'महादेवकी नेत्राग्निके द्वारा भस्मीभूत काम महादेवके ही अनुग्रहसे यहाँ 'रूप' को प्राप्त हुआ, इसी कारण इस स्थानका नाम 'कामरूप' पड़ा।'

दक्ष-यज्ञमें सतीके देहत्याग करनेपर महादेव सतीके मृत शरीरको कन्धेपर रख भ्रमण करने लगे। विष्णुके चक्रसे छिन्न-भिन्न हुआ उसका अंश अनेकों स्थलोंपर गिरा। उसीसे ५१ पीठोंकी सृष्टि हुई। प्रत्येक पीठमें देवीके साथ महादेव भैरवरूपमें अवस्थान करते हैं। कामरूपमें सतीका स्त्री-अङ्ग गिरा, इसी कारण यहाँ देवी कामाख्या-

रूपमें अधिष्ठित हैं। महादेव भी यहाँ भैरवरूपसे * अवस्थान कर रहे हैं। तभी कालिकापुराणमें आता है कि—

कामरूपं महापीठं गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।

सदा सन्निहितस्तत्र पार्वत्या सह शङ्करः ॥

(५१ । ६८)

‘कामरूप गुह्यसे भी गुह्यतर श्रेष्ठ महापीठ है। यहाँ महादेव पार्वतीके साथ सर्वदा वास करते हैं।’

यह कामरूप पूर्वकालमें किरातोंका निवासस्थान था। ये लोग महादेवके अथवा देवीके उपासक थे या नहीं, यह मालूम नहीं। कालिकापुराणके मतमें† नारायणके वराहावतारमें पृथिवीमें उनका वीर्य निषिक्त होनेसे बहुत समयके उपरान्त त्रेतायुगमें नरक नामका बालक उत्पन्न हुआ। वह विदेहराज जनकके गृहमें पालित-पोषित हुआ और युवावस्थामें उसे नारायणने कामरूपका राज्य दे दिया। और तभीसे उस राज्य में ब्राह्मणादिकी बस्ती हुई। किरातलोग उनके द्वारा सताये जानेपर पूर्वकी ओर समुद्रपार चले गये। इसके पश्चात् नारायणने ‘नरक’ को उपदेश दिया, कि वह ब्राह्मणोंके साथ विरोध न करे और कामाख्यादेवीके प्रति अचल भक्ति रखे। नरक कुछ दिनोंतक पिताके उपदेशके अनुसार आचरण करता रहा, पश्चात् बाणासुरकी सङ्गतिसे वह द्विज और देवताओंका द्वेषी बन गया और असुर-संज्ञाको प्राप्त हुआ। नारायणने श्रीकृष्ण-अवतारमें ‘नरक’ का संहार करके उसके पुत्र भगदत्तको कामरूपका आधिपत्य प्रदान किया।

महाभारतमें भगदत्त और उसके पुत्र वज्रदत्तकी कथा है। वे असुर नहीं थे; परन्तु शिव-शक्तिके उपासक थे या नहीं यह बात महाभारतमें नहीं मिलती। परन्तु मध्ययुगवर्ती कामरूपके राजाओंने, जिन्होंने अपनेको नरक, वज्रदत्त तथा भगदत्तकी सन्तति बतलाया है, अपने ताम्रपत्रोंमें भगदत्त और वज्रदत्तकी शिवभक्तिके विषयमें उल्लेख किया है, यह बात आगे कही जायगी। हमें कामरूपके

* आजकल भैरवका नाम ‘उमानन्द’ है, किन्तु पहले ‘रावानन्द’ नाम था। ‘पीठमाला’ में यही नाम मिलता है।

† कालिकापुराणमें ३६ वें अध्यायसे लेकर ४० वें अध्यायतक ‘नरक’ का वर्णन हुआ है। विस्तारभयसे उन सब श्लोकोंको यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है।

मध्यकालीन सात राजाओंके ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं, जिनके नाम और समयका विवरण नीचे दिया जाता है—

(१) भास्करवर्मा—सप्तम शताब्दीका पूर्वार्द्ध।

(२) हर्जरवर्मा—नवम शताब्दीका मध्यभाग।

(३) वनमाल—हर्जरका पुत्र—नवम शताब्दीका मध्यभाग।

(४) बलवर्मा—वनमालका पौत्र, दशम शताब्दीका प्रथमांश।

(५) रत्नपाल—एकादश शताब्दीका प्रथमांश।

(६) इन्द्रपाल—रत्नपालका पौत्र, एकादश शताब्दीका मध्यभाग।

(७) धर्मपाल—इन्द्रपालका प्रपौत्र, द्वादश शताब्दीका प्रथमांश।

वनमालके ताम्रपत्रमें भगदत्तके सम्बन्धमें लिखा है—

सम्प्राप्तो भगदत्तः श्रीमत्प्राग्ज्योतिषाधिनाथरवम् ।

विनयभरणं तदेव्यं प्राराधयद्दीधरं तपसा ॥३३

भगदत्तने श्रीसम्पन्न प्राग्ज्योतिषका आधिपत्य प्राप्तकर वहाँसे आकर अत्यन्त विनयपूर्वक तपश्चरणके द्वारा भगवान् महादेवकी आराधना की थी। वज्रदत्तके सम्बन्धमें वनमालके पौत्र बलवर्माके ताम्रपत्रमें आता है—

उपगतवति सुरलोकं तस्मिन्स्थानुजोऽभवद्भूमेः ।

पतिरमलभक्तिरीशे यं प्राहुर्वज्रदत्त इति कवयः ॥†

‘उनके (भगदत्तके) सुरलोक चले जानेपर उनका अनुज महादेवमें विमलभक्ति रखनेवाला राजा हुआ है, कविलोग उसे वज्रदत्तके नामसे पुकारते हैं।’

* यह वनमालवर्माके ताम्रपत्रका ५वाँ श्लोक है। देखिये कामरूप-शासनावली, पृष्ठ ५९। (श्लोकका अनुवाद भी शासनावलीसे लिया गया है, आगे भी ऐसा ही किया जायगा।) [इस श्लोकका पाठ शुद्ध होनेमें सन्देह है। अतएव इसप्रकारकी शिवाराधना भगदत्तने की थी, यह बात अनिश्चित नहीं है। एतद्विषयक विचार शासनावलीकी ‘संयोजनी’ पृ० २०२-२०३ में देखना चाहिये।]

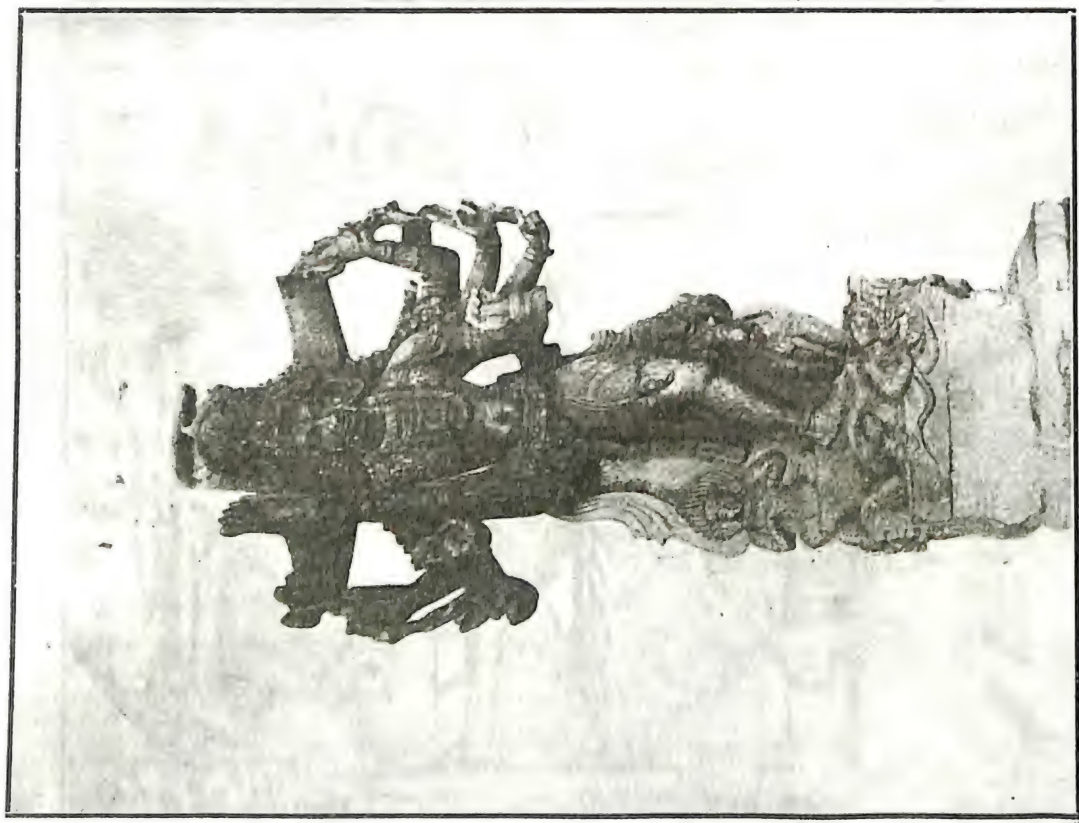
† यह बलवर्माके ताम्रपत्रमें ८वाँ श्लोक है। देखिये कामरूप-शासनावली, पृष्ठ १७४। [इस स्थानमें वज्रदत्तको भगदत्तका अनुज बतलाया है। वनमाल और रत्नपालके ताम्रपत्रमें भी इसी प्रकारका



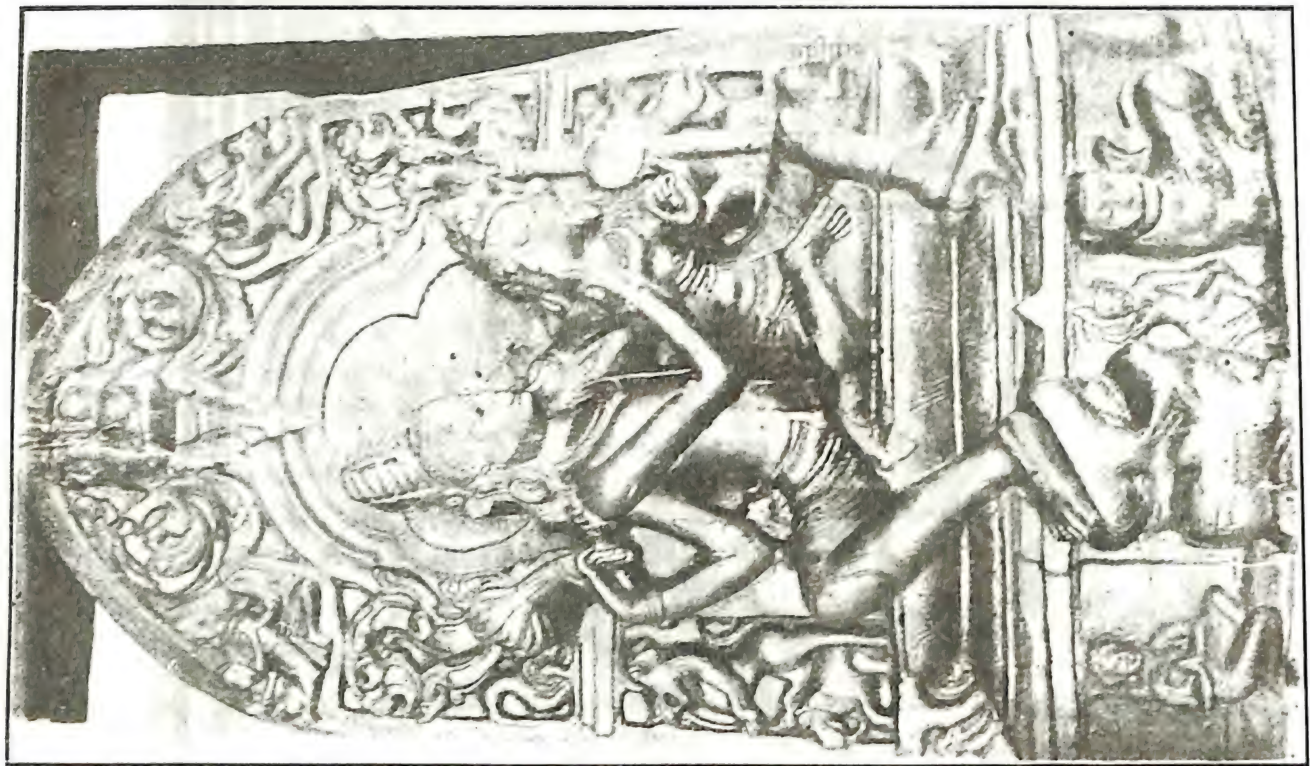
काशीके श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें श्राशिव-पार्वतीकी मूर्ति



काशीके श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें गंगावतरण



अष्टमुजा-वीरभद्रमूर्ति, अवधारकोयल



यह शिव-पार्वतीका सुन्दर मूर्ति सं० १९८१ में दरभंगा जिलेके वसुआड़ा स्थानसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर बृहानाथ महादेवके पास जमीनमें निकली और वहाँ प्रतिष्ठित की गयी ।

भगदत्त और वज्रदत्त युधिष्ठिरके सम-सामयिक थे। प्रायः ४००० वर्षतक उनकी वंश-परम्परा अव्याहत गतिसे चली और इतने दीर्घकालके पश्चात् उनके वंशधरोंने भगदत्त और वज्रदत्तके उपास्य देवताके सम्बन्धमें जो बात कही है वह कहाँतक विश्वसनीय है, यह प्रश्न यहाँ उठ सकता है; परन्तु इस विषयका उठाना यहाँ अनावश्यक है। चन्द्र एवं सूर्यवंशके राजा तथा कश्यप, वशिष्ठ प्रभृति ऋषियोंने गोत्रज ब्राह्मण आज भी विद्यमान हैं। उपास्य देवता भी वंशानुक्रमसे ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं, क्योंकि इष्टमन्त्रके त्यागको पाप कहा है।*

अस्तु, हम पौराणिक युगके राजाओंके प्रसङ्गको छोड़कर ताम्रपत्रोंमें उल्लिखित कामरूपके राजाओंके विषयमें विचार करेंगे। ताम्रपत्रोंका प्रमाण अवश्य ही मान्य समझा जायगा।

(१) भास्करवर्माके ताम्रपत्रके प्रथम श्लोकार्द्धमें इस प्रकारसे इष्टवन्दना की गयी है—

प्रणम्य देवं शशिशेखरं प्रियं

पिनाकिनं भस्मकणैर्विभूषितम् ।†

‘भस्मकणसे विभूषित इष्टदेव शशिशेखर, पिनाकपाणि महादेवको प्रणाम करके—इत्यादि।’ इसके आगे भी महादेवकी स्तुति है—

भोगीश्वरकृतपरिकरमीक्षणजितकामरूपमविमुक्तम् ।

परमेश्वरस्य रूपं निजभूतिविभूषितं जयति ॥‡

उल्लेख है; किन्तु भास्करवर्मा और इन्द्रपालके ताम्रपत्रमें एवं महाभारत-के अश्वमेधपर्वमें वज्रदत्तको भगदत्तका पुत्र ही बतलाया गया है।]

* उदाहरणार्थ इस लेखकके अपने वंशकी बात कही जा सकती है। हमारे गोत्रप्रवर्तक महीष कात्यायनकी तपस्यासे प्रसन्न हो श्रीश्रीजगन्माता उनके आश्रममें आविर्भूत हुईं एवं महर्षिके गौरव वृद्धिके लिये अवश्य उन्होंने कात्यायनी नाम धारण किया। आजतक हमलोग उन्हीं देवीके उपासक हैं। तथापि देवताका त्याग नहीं होता है, यह बात भी नहीं कही जा सकती। परन्तु ऐसा होता किसी महान् कारणसे ही है, इसलिये इसे अपवाद मानना चाहिये।

† कामरूप-शासनावली पृष्ठ ११।

‡ ” ” ” ”

‘जिनकी कटि सर्पराजसे आवेष्टित है, दृष्टिमात्रसे जिन्होंने कामदेवको निर्जित किया है, उन अविमुक्त महेश्वरकी निज-ऐश्वर्यविभूषित मूर्ति जययुक्त हो।’

ताम्रपत्रके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे भी हमें भास्करवर्माकी एकनिष्ठ शिव-भक्तिका परिचय मिलता है। विख्यात सम्राट् हर्षवर्धनके समीप भेजा गया भास्करवर्माका दूत उनके सम्बन्धमें कहता है—

अयमस्य च शैशवादारभ्य सङ्कल्पः स्थेयान्

स्थाणुपादारविन्दद्वन्द्वदृष्टे नाहमयं नमस्कुर्यामिति ॥

(हर्षचरित्र, प्रथमोच्छ्वास)

अर्थात् बाल्यकालसे ही श्रीभास्करका यह दृढ सङ्कल्प है कि वह महादेवके पादपद्मयुगलके अतिरिक्त दूसरेके आगे सिर न झुकावेंगे।

(२) हर्जरवर्माके ताम्रपत्रमें हमें एक चदर मिली है, उसमें उनके विशेषणोंमें ‘परममहेश्वर’ (अर्थात् महादेवका परमभक्त) शब्द आया है।

(३) हर्जरवर्माके पुत्र वनमालके ताम्रपत्रमें स्वस्ति-वाचनके पूर्व ही ‘९’ यह चिह्न है और मुहरपर पत्रमें भी यही चिह्न है।§ इस चिह्नका नाम आञ्जी × है और यह राजाओंके ताम्रपत्रोंमें भी किसी-न-किसी जगह (स्वस्ति-वाचनके पूर्व अथवा मुहरपर) देखनेमें आता है। यह सुषुम्णामें रहने-वाली सर्पाकृति कुलकुण्डलिनीके चित्रकी प्रतिकृति है। कुलकुण्डलिनी शिवकी शक्ति है जो मूलाधारमें स्वयम्भू-लिङ्गको वेष्टन किये रहती है। साधक तन्त्रोक्त प्रक्रियाके बलसे कुलकुण्डलिनीको जगाकर मूलाधारसे आरम्भकर क्रमशः अधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आशा-पर्यन्त षट्चक्रोंको भेदकर सहस्रारमें ले जाकर शिवसे संयुक्त कर कृतार्थ होते हैं। इस चिह्नसे ही कामरूपके

§ कामरूप-शासनावली पृष्ठ ५८ (शासनलिपिका प्रथमांश-एवं इस मुहरकी प्रतिकृति ५६ वें पृष्ठके सामनेवाले चित्रमें देखनी चाहिये।)

× इस शब्दका अर्थ कामरूप-शासनावलीके पृष्ठ ५५-५६ में खोला गया है। वहाँ आञ्जीके तीन रूप देखनेमें आते हैं, उनमें कामरूपके शासनमें ‘९’, गौड-लेखमालामें ‘९’ और ‘९’ ये दो रूप देखे जाते हैं। हमारे देशमें ‘९’ यही चिह्न विचाराम्भमें वर्षमालाके पूर्व लिखा जाता है।

राजाओंके इष्टदेवताका परिचय मिल जाता है। तत्पश्चात् शासनलिपिके दूसरे श्लोकमें है—

स पुनातु पिनाकी वो यच्छीर्षे स्वर्धुनीजलम् ।
कीर्णं रेचकवातेन तारकाप्रकरायितम् ॥*

‘जिनके मस्तकपर स्थित गङ्गाका जल रेचकवायुके द्वारा विकीर्ण होकर तारकराशिके समान सुशोभित होता है, वही पिनाकधारी महादेव तुम्हें पवित्र करें ।’

इसी राजाकी शासन-लिपिमें उसके कीर्तिस्वरूप एक शिव-मन्दिरके संस्कारकी कथाका विस्तारपूर्ण उल्लेख पाया जाता है—

धूरुहे नहुषस्य येन पतितं कालान्तरादालयं
सौधं भक्तिनताखिलामरवरत्राताचिंताद्वेः पुनः ।
प्रालेयाचलशृङ्गमुल्लसत्तुल्यग्रामेभवेश्याजनै-
र्युक्तं हाटकशूलिनः क्षितिभुजा भक्त्या नवं चक्रुषा ॥ †

‘सभी श्रेष्ठ देवगण जिनके चरणोंमें भक्तिभावसे प्रणाम करते हैं, उन्हीं हाटकेश्वर महादेवका कालक्रमसे गिरा हुआ हिमालयसदृश उच्च एवं अतुल, ग्राम, प्रजा, हाथी एवं वेश्या प्रभृतिसे समन्वित सौधगृहको भक्तिपूर्वक नये ढंगसे पुनर्निर्मित कर वह नहुषकी कीर्तिका भार वहन कर रहे हैं ।’

इससे प्रमाणित होता है कि यह शिव-मन्दिर वनमालके पूर्व-पुरुषोंके समयसे ही विद्यमान था। अतएव पुरुष-परम्परासे ये लोग शिव-भक्त थे।

राजधानी हारुपेश्वरके ‡ वर्णनमें आता है कि इस नगरके निकटवर्ती कामकूट-पर्वतके शिखरपर श्रीकामेश्वर-महागौरी का अधिष्ठान था—

श्रीकामेश्वरमहागौरीभट्टारिकाभ्यामधिष्ठितशिरसः
कामकूटगिरिः §। इत्यादि ।

* कामरूप-शासनावली पृष्ठ ५९ ।

† ” ” पृष्ठ ६२ ।

‡ यह नाम भी किसी शिवलिङ्गके नामानुसार लिखा जान पड़ता है । (कामरूप-राजावली-भूमिका, पृष्ठ २२ की पादटीका २ देखिये)

§ कामरूप-शासनावली पृष्ठ ६३ । कामेश्वर-महागौरी काम-रूपराजाओंके इष्ट-देवता थे, इस विषयकी किञ्चित् आलोचना कामरूप-राजावलीकी भूमिका पृष्ठ ३२, पादटीका २ में देखनी चाहिये ।

इसकी विशेषणावलीमें भी ‘परममाहेश्वर’ शब्द था ।*

(४) वनमालके पौत्र बलवर्माके ताम्रपत्रमें प्रथम श्लोक पूरा-पूरा नहीं मिलता । प्रथमार्ध इसप्रकार है—

भवतु भवतिमिरभिदुरं तेजो रौद्रं प्रशान्तये जगतः ।†

‘भवान्धकारका नाश करनेवाला रुद्रदेवका तेज जगत्की शान्तिका कारण बने ।’

यह भी बलवर्माकी शिव-भक्तिका परिचायक है । यही नहीं, उसके इस ताम्रपत्रमें उसके पितामह (पूर्वोल्लिखित) वनमालदेवके सम्बन्धमें जो कुछ वर्णन है, उससे केवल वनमालकी शिवभक्तिपरायणता ही नहीं सूचित होती; बल्कि उसके पौत्र बलवर्माके द्वारा अपने पूर्व-पुरुषोंकी इष्ट-देवताविषयक भक्तिका समर्थन भी प्रतिपादित होता है, इसीलिये यहाँपर उसे उद्धृत किया गया है ।

तस्यात्मजः श्रीवनमालदेवो
राजा चिरं भक्तिपरो भवेऽभूत् ॥ ‡

‘उसका (हर्जरका) पुत्र, महादेवमें भक्ति रखनेवाला श्रीवनमालवर्मा दीर्घकालतक राज्य करता रहा ।’

तथा अपने अन्तिम जीवनमें पुत्रके ऊपर राज्यभार अर्पणकर—

अनशनविधिना वीरस्तेजसि माहेश्वरे लीनः ।§

‘अनशनद्वारा वह वीर महादेवके तेजमें लीन हो गया ।’

रत्नपालके ताम्रपत्रमें प्रथम ही महादेवकी स्तुति मिलती है—

द्रष्टेव प्रतिबिम्बकैर्नखगतैः स्वैर्नृत्यसम्पद्विधैः
सौवशीवगतिं शुभां प्रकटयन् दृश्योऽनिशं ताण्डवीम् ।
एवं यः परमात्मवत्पृथुगुणो ह्येकोऽप्यनेकीभवन्
प्राकाम्यं दधदेव भाति भुवने स स्तात् श्रिये शङ्करः ॥ x

‘जो (अपने) नखोंमें प्रतिफलित अपने प्रतिबिम्बोंमें (अपने ही) नृत्यविलासकी परिपाटीके द्रष्टाके समान (विराजमान) हैं, बढियाँ घोड़ेपर सवार पुरुषकी भाँति अविरत शुभ ताण्डवगतिप्रदर्शन करते हुए दीख पड़ते हैं,

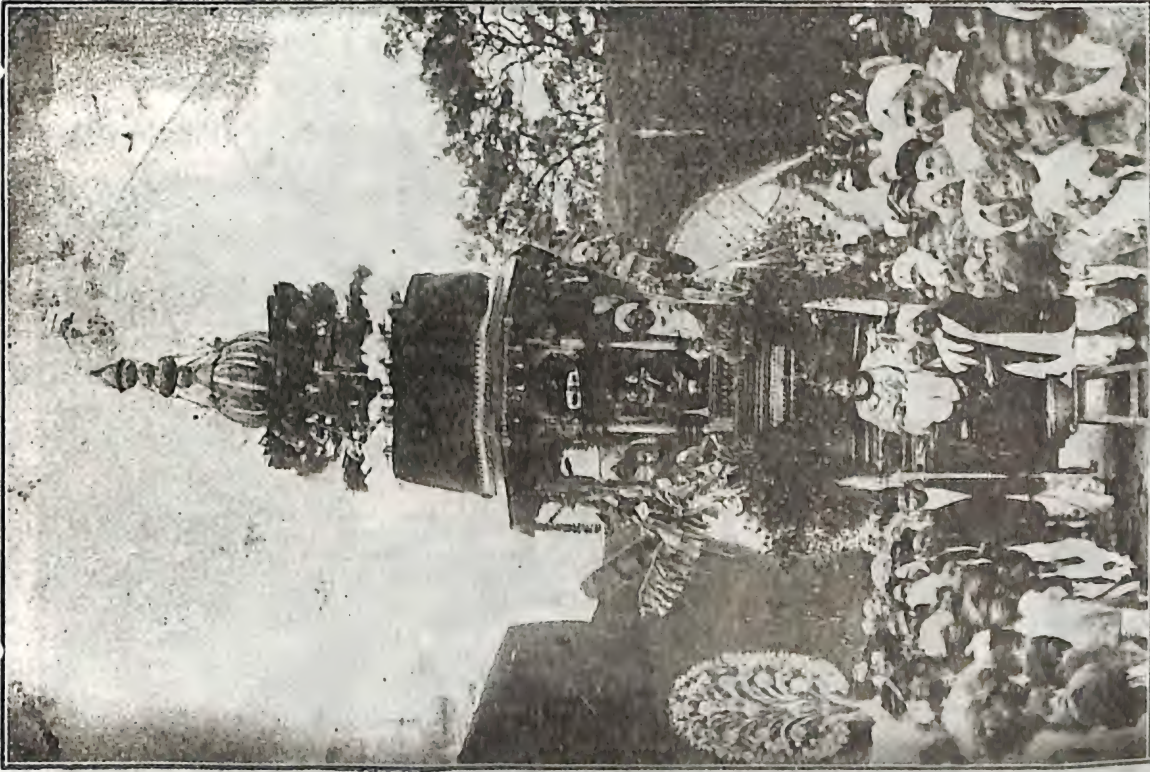
* कामरूप-शासनावली पृष्ठ ६४ ।

† ” ” ७३ ।

‡ ” ” ७५ ।

§ ” ” ७६ ।

x ” ” ९१ ।

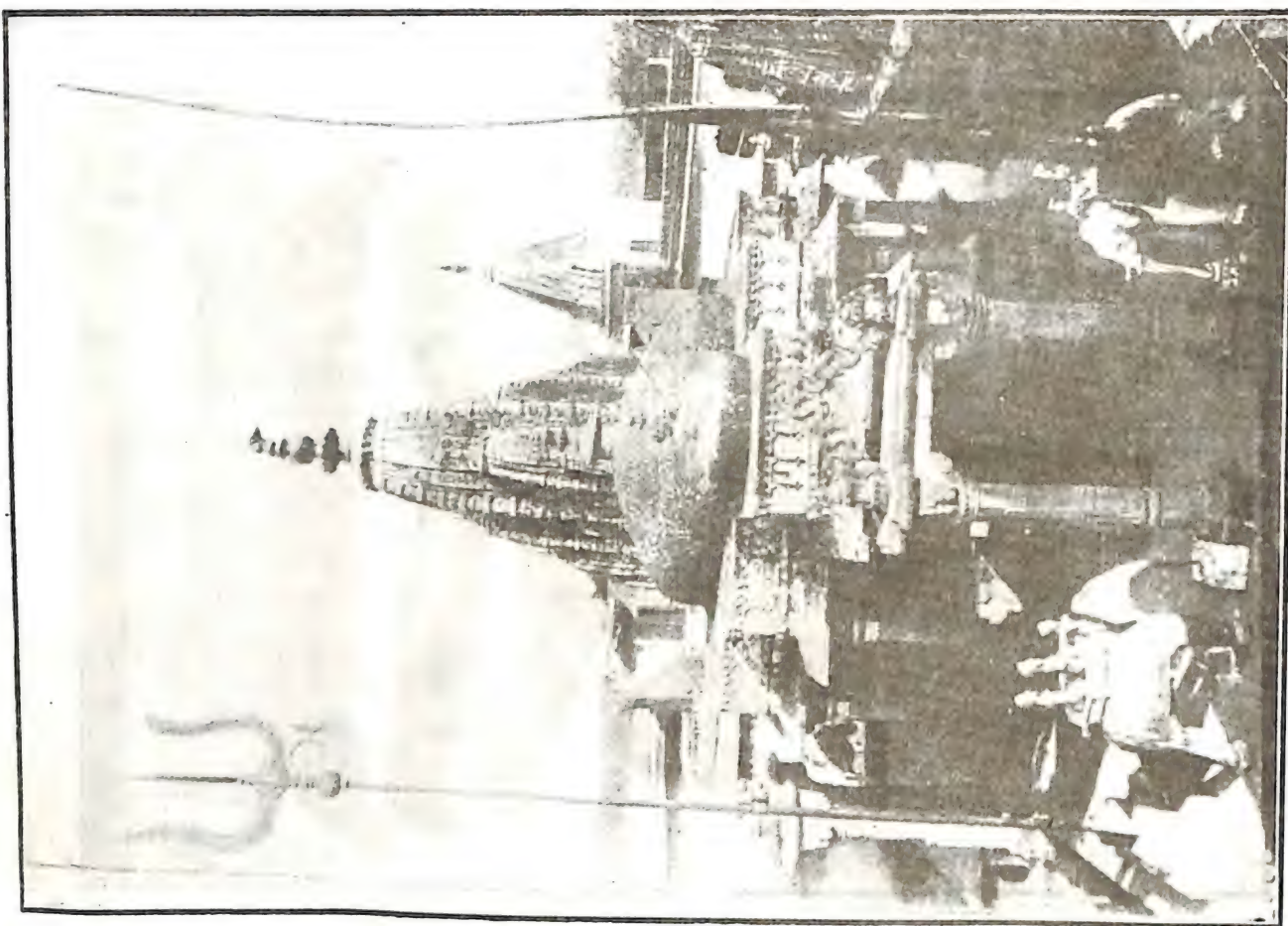


श्रीचिदम्बरम्को यात्रा

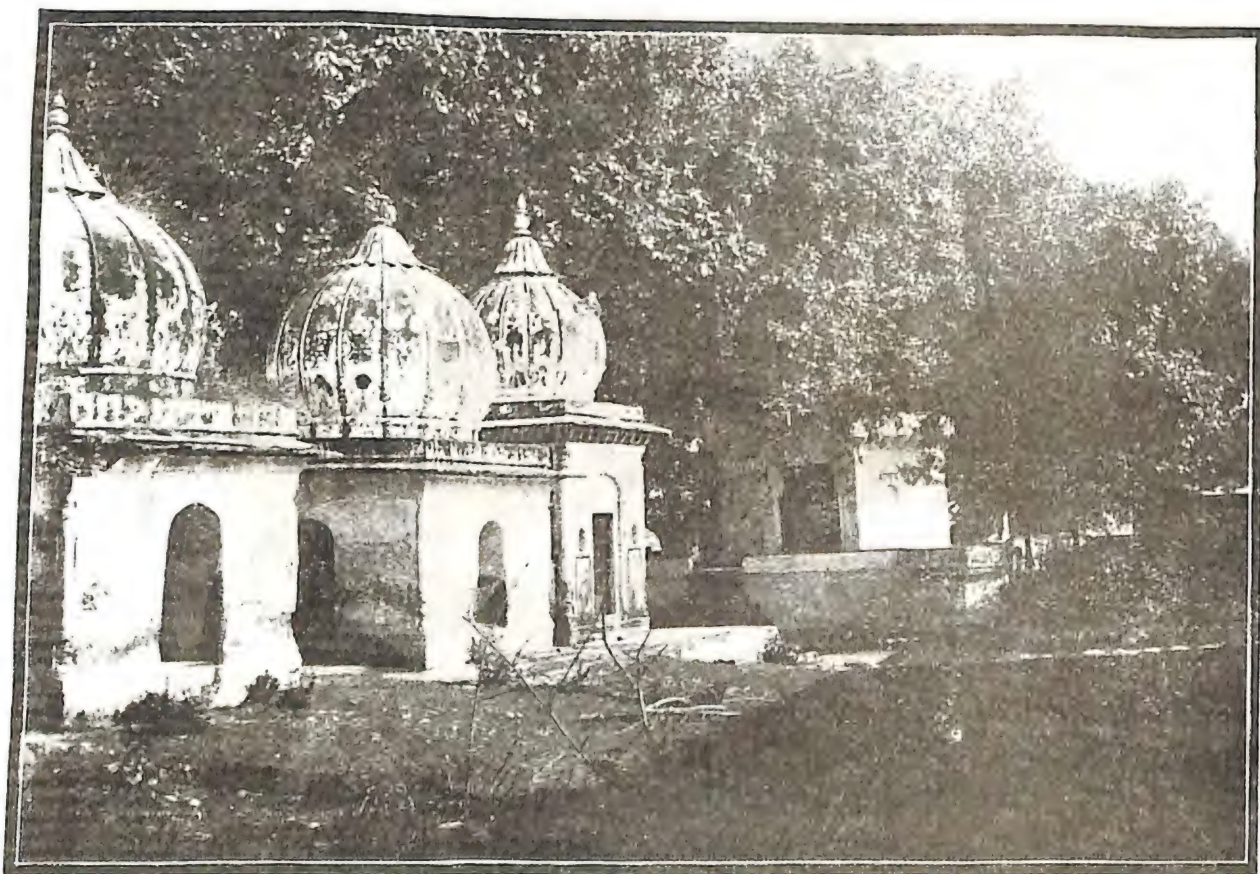
(पृष्ठ ४६०)



कांचीमें भगवान् श्रीशंकराचार्यजीकी मूर्ति



श्रीपञ्चवक्त्रेश्वर मन्दिर हरिद्वार



श्रीदक्षेश्वरका प्राचीन मन्दिर—कनखल

इसप्रकार जो प्राकाम्यरूप सिद्धिको धारणकर परमात्माके समान एक होते हुए भी अनन्त गुणोंके वश हो अनेक रूपोंसे भुवनमें प्रतिभात होते हैं, वे ही (नटेश्वर) शङ्कर (सबकी) समृद्धिके कारण बनें ।'

(५) रत्नपालके पौत्र इन्द्रपालके ताम्रपत्रके प्रथम श्लोकमें महादेव एवं महादेवीका सरसतापूर्ण वर्णन मिलता है—भक्त अपने आराध्य देवताके साथ कभी-कभी इस-प्रकारकी रसिकता किया करते हैं ।

खट्वाङ्गं परशुर्धृषः शशिकलेस्यादि त्वदीयं मया
सर्वस्वं जितमद्य नाम कितव प्रत्यर्पितं ते पुनः ।
प्रेष्या केवलमस्तु मे जलवहा गङ्गेति गौरीगिरां
शम्भोर्धूतकलाजितस्य जयति व्रीडाविनम्रं शिरः॥

‘हे कितव ! आज मैंने तुम्हारे सर्वस्व खट्वाङ्ग, परशु, वृष, शशिकला प्रभृतिको जीत लिया; किन्तु वे सब पुनः तुम्हें प्रत्यर्पित करती हूँ; केवल गङ्गा हमारा जल वहन करनेके लिये किङ्करी (दासी) बने-गौरीके इस वाक्यमें उनके द्यूतकौशलसे पराजित महादेवके लजावनत मस्तककी जय हो ।’

इससे यदि यह सन्देह हो कि इन्द्रपाल हर-गौरीका वैसा भक्त न था, तो उसके दूसरे † ताम्रपत्रके शेषांशमें उसके जो वृत्तीस उपनाम आये हैं, उनमेंसे इस अन्तिम उपनामके द्वारा यह सन्देह दूर हो जायगा—

हरगिरिजाचरणपङ्कजरजोरञ्जितोत्तमाङ्ग ।†

(६) अन्तिम राजा (इन्द्रपालके प्रपौत्र) धर्मपालके दो ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं । उनमेंसे एकके प्रथम श्लोकमें अर्द्धनारीश्वर महादेवकी वन्दना हुई है—

वन्दे तमर्धयुवतीश्वरमादिदेव-
मिन्दीवरोरगफणामणिकण्ठधन्धम् ।
उत्तुङ्गपीनकुचकुङ्कुमभस्मभिन्नं
शृङ्गाररौद्ररसयोरिव सर्गमेकम् ॥§

* कामरूप-शासनावली पृष्ठ ११७ ।

† इन्द्रपालके दो ताम्रपत्र पाये गये हैं, दोनोंके प्रथमांशमें एक ही श्लोकावली है । रत्नपालके भी इसी प्रकार दो ताम्रपत्र मिले हैं ।

‡ कामरूप-शासनावली पृष्ठ १४० ।

§ कामरूप-शासनावली पृष्ठ १५०-१५१ ।

‘उन अर्द्धनारीश्वर महादेवकी मैं वन्दना करता हूँ जिनके कण्ठमें (एक ओर) नीलोत्पल तथा (दूसरी ओर) सर्प-फणकी मणि आवद्ध है, जिसके (एक ओर) उत्तुङ्ग परिणाही स्तनमण्डलमें कुङ्कुम और (दूसरी ओर) भस्मका लेप किया हुआ है, अतएव जो आदिरस और रौद्ररसकी एक मिश्रित सृष्टिके रूपमें प्रतीत होते हैं ।’

परन्तु उसके द्वितीय ताम्रपत्रमें महादेवकी कोई वन्दना नहीं है, स्वस्तिवाचनमें वह ‘९’ (आङ्गी) है ।*

प्राचीन कामरूपके राजाओंकी बात समाप्त हुई । उनके परवर्ती राजा भी महादेव—शिव-शक्तिके उपासक थे । इसके पूर्व कामेश्वर-महागौरीका उल्लेख किया जा चुका है । प्राचीन कामतापुरमें, जिसके सम्बन्धमें यह अनुमान किया जाता है कि वह कामरूपकी अन्तिम राजधानी थी,† ये महादेव और महादेवी ‘कामतेश्वर-कामतेश्वरी’ नामसे प्रसिद्ध हुए हैं और आज भी कामतापुरके भग्नावशेषमें विराजमान होकर पूजा पा रहे हैं ।‡

कालक्रमसे जब कामरूपका पूर्वभाग आहोम-राजाओंके अधिकारमें आया और पश्चिम भागमें कोच-राजाओंका राज्य हुआ तब भी उन दोनों § राज्योंके इष्टदेवता शिव और शक्ति ही थे, यह बात आहोम और कोच-राजाओंके सिक्कोंसे प्रमाणित होती है । दोनों प्रकारके सिक्कोंमें ‘हरगौरीसेवक’ + के नामसे राजालोग निर्दिष्ट हुए हैं । कोचराज ‘शिव-

* कामरूप-शासनावली पृष्ठ १३१ । [इसी शासनके आलोचना-भागमें अनुमान किया गया है कि सम्भवतः धर्मपाल अन्तिम अवस्थामें प्रायः वैष्णव-मतका पक्षपाती हो गया था (कामरूप-शासनावली पृष्ठ १३०); परन्तु वह पूर्ण वैष्णव हो गया था, यह बात ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा होनेसे स्वस्तिका ‘९’ चिह्न नहीं पाया जाता ।]

† देखिये कामरूपकी राजावली-भूमिका, पृष्ठ ३० ।

‡ कामरूपकी राजावली-भूमिका, पृष्ठ ३० ।

§ देखिये उक्त पुस्तकके पृष्ठ ३२ की पादटीका २ ।

+ आहोमराजके सिक्कोंमें राजाके नामके आगे ‘श्रीश्रीहरगौरी-चरणपरस्य’ एवं कोचराजके सिक्कोंमें ‘श्रीश्रीहरगौरीचरणकमल-भधुकरस्य’—ये विशेषण मिलते हैं ।

वंशीय' के नामसे विख्यात हैं। क्योंकि उस वंशके प्रवर्तक विश्वसिंह शिवके ही पुत्र थे, यह योगिनीतन्त्र (प्रथम खण्ड, १३ पटल) में उल्लिखित हुआ है। वर्तमान कामाख्या-मन्दिर पहले विश्वसिंहके द्वारा ही निर्मित हुआ था, पीछे उसके भग्न हो जानेपर उनके पुत्र नरनारायणके द्वारा

पुनर्निर्मित हुआ। आहोमराज गदाधरसिंहने कामाख्याके भैरव—उमानन्दके मन्दिरका निर्माण कराया तथा शिवसिंह प्रभृति उसके पुत्रोंने शक्तिमन्त्रमें दीक्षित हो अपने गुरुको तथा उमानन्द-कामाख्या प्रभृति देवालयोंमें प्रभूत धन प्रदान-कर अपनी कीर्तिको चिरस्थायी बना दिया। *



राजपूतानेमें शिव-मूर्तियाँ

(लेखक—महागहोपाध्याय रायबहादुर पं० श्रीगौरीशङ्कर हाराचन्दजी ओझा)



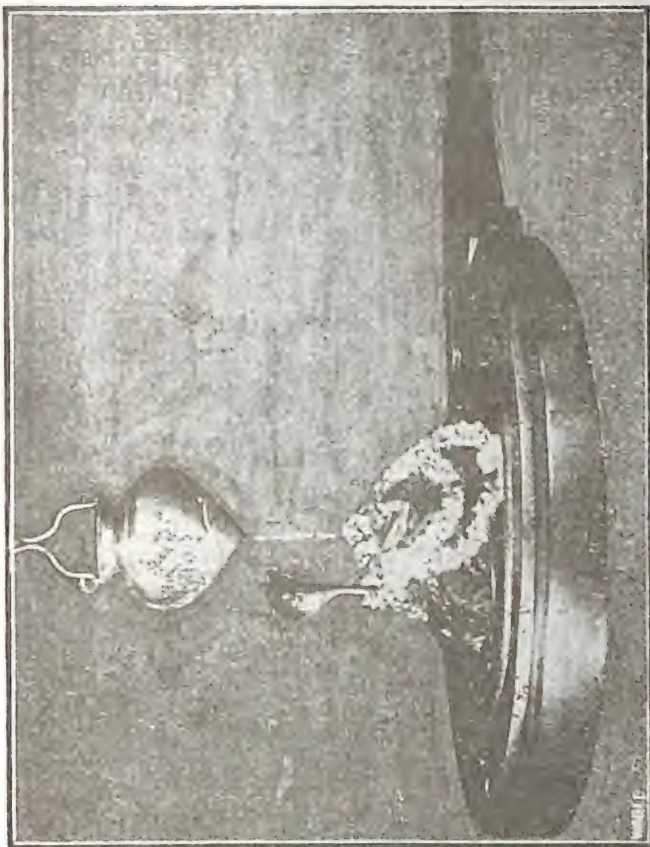
केशववादी होनेके कारण वैदिक धर्मावलम्बी भारतवासी अत्यन्त प्राचीन कालसे एक ही ईश्वर-को सृष्टिका उत्पादक, पालक एवं संहारक मानते आ रहे हैं। ईश्वरके भिन्न-भिन्न कार्योंके अनुसार उसके भिन्न-भिन्न नामोंकी कल्पना की गयी; परन्तु ये सब नाम एक ही ईश्वरके द्योतक हैं। ईश्वर-द्वारा जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार होनेसे उसके क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (शिव) नाम रखे गये। पहले ईश्वरके निर्गुण स्वरूपकी उपासना होती थी; पीछेसे उसकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी मूर्तियाँ बनने लगीं। मूर्तियोंकी कल्पनामें मनुष्यकी बुद्धि अपनेसे अधिक सुन्दर वस्तु उत्पन्न नहीं कर सकती थी, तो भी देव-मूर्तियोंकी कल्पना करते समय मनुष्यको अपनी अपेक्षा कुछ विशेषता प्रदर्शित करनेकी आवश्यकता जान पड़ी। देव-प्रतिमाओंकी कल्पनामें शरीरकी आकृति तो मनुष्य-जैसी ही मानी गयी, परन्तु कहीं-कहीं हाथों और मुखोंकी संख्या बढ़ाकर उनमें विशेषता उत्पन्न की गयी।

भारतवर्षके जलवायुमें हजारों वर्ष पूर्वके मन्दिरों अथवा मूर्तियोंका अक्षुण्ण रहना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि यहाँ अत्यन्त प्राचीन कालकी मूर्तियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। ऐसी दशामें यह स्पष्टरूपसे नहीं जान पड़ता कि प्रारम्भमें मूर्तियाँ द्विभुज बनायी जाती थीं अथवा चतुर्भुज। अबतक ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य आदि देवताओंकी जो मूर्तियाँ मिली हैं उनमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव चतुर्भुज हैं। सूर्यकी सबसे प्राचीन मूर्तियाँ द्विभुज हैं। अजमेरके 'राजपूताना-म्यूजियम' में सूर्यकी दससे अधिक प्राचीन

मूर्तियाँ हैं। उनमें केवल एक चार भुजाओंसे युक्त एवं सात घोड़ोंके रथमें विराजमान है, परन्तु यह दो सौ वर्षसे अधिक पुरानी नहीं है। शेष सभी द्विभुज हैं। इसी प्रकार आरम्भमें शिव-प्रतिमा द्विभुज और एकमुखी बनायी जाती रही हो, यह असम्भव नहीं है। ईस्वी सन्की दूसरी शताब्दीके आसपासके कई सिक्कोंपर स्कन्द, विशाख और महासेनकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जो द्विभुज और एक सिरवाली हैं। उसी शताब्दीके कुषाणवंशी राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेवके कतिपय सिक्कोंपर शिवकी द्विभुज और एक सिरवाली मूर्ति अङ्कित है। उनमें शिव अपने वाहन नन्दीके समीप हाथमें त्रिशूल लिये खड़े हैं। मूर्तिके नीचे प्राचीन यावनी (ग्रीक) लिपिमें 'ओइशो' (Oesho) अर्थात् ईशो—ईश=शिव लिखा है। इन मूर्तियोंसे हम यह मान सकते हैं कि पहले शिवकी मूर्ति द्विभुज और एक सिरवाली रही हो; परन्तु उसी समयके कुछ सिक्कोंपर शिवकी ऐसी भी मूर्तियाँ हैं, जिनके एक मुख है और चार हाथ हैं और हाथोंमें माला, वज्र, त्रिशूल और पात्र दीख पड़ते हैं। इससे जान पड़ता है कि शिवके चार हाथोंकी कल्पना भी नवीन नहीं, किन्तु उतनी ही प्राचीन है। भारतवर्षमें ईस्वी सन्की पाँचवीं शताब्दीके पूर्वकी कोई हाथ-पैरवाली पाषाण-निर्मित शिव-प्रतिमा अबतक देखनेमें नहीं आयी।

राजपूतानेमें शिव-पूजा बहुत प्राचीन कालसे चली आती है और वहाँ कई प्रकारकी शिव-मूर्तियाँ मिलती हैं। इनमेंसे बहुत-सी मूर्तियाँ तो गोलाकार लिङ्गके रूपमें जलहरी (जलाधारी) के मध्यमें स्थापित हैं। सम्भवतः वे शिवके

* विश्वसिंह—नरनारायण एवं गदाध—रुद्रसिंह प्रभृतिके दानकी कथा मत्प्रणीत प्रबन्धके अन्तर्गत 'पूर्णानन्दगिरि और कामाख्या महापीठ' शीर्षक प्रबन्धमें देखिये।



वाल्केश्वर मयई



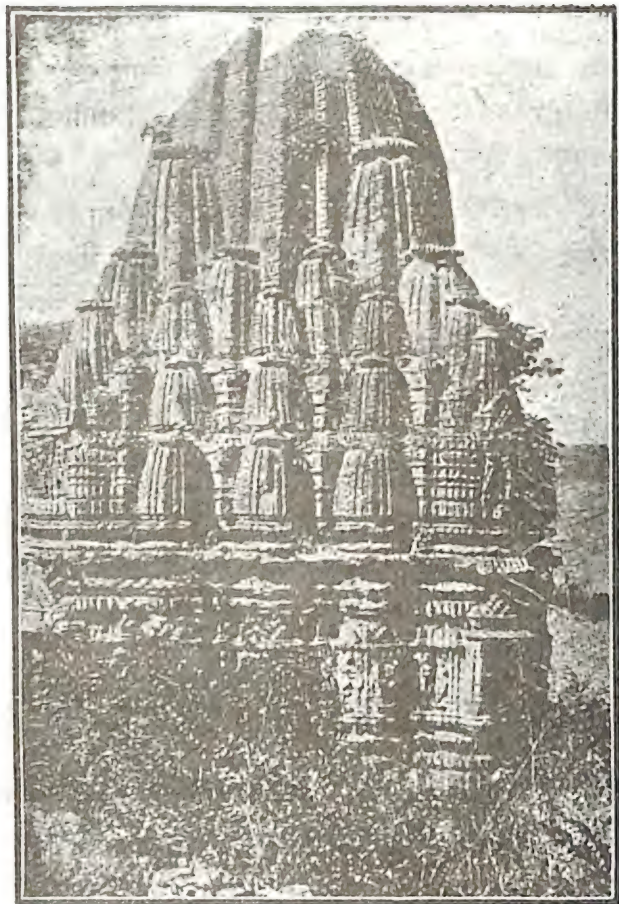
वाणगंगा मयई



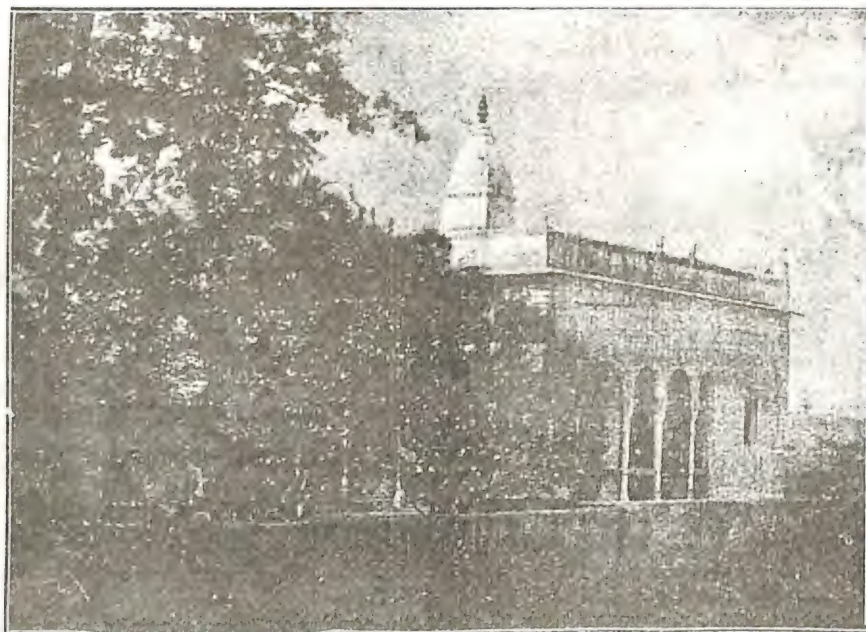
श्रीदत्तेश्वर-मन्दिर



पञ्चमुखी परमेश्वर



समिक्शेश्वर मन्दिर, चित्तौड़



शिवालय, रतनगढ़

‘स्थाणु’ नामकी सूचक हों। राजपूतानेमें कई जगह राजाओं, सरदारों आदिकी स्मारक छतरियों तथा साधुओंकी समाधियों-के मध्यमें भी ऐसे लिङ्ग स्थापित किये जाते हैं।

बहुत-सी मूर्तियोंमें ऊपरके भागमें थोड़ा-सा बाहर निकला हुआ वृत्ताकार शिवलिङ्ग और उसके चारों ओर जटाजूटसहित चार सिर होते हैं। कोटाराज्यान्तर्गत चार-चोमाके प्राचीन शियालयमें, मेवाड़में एकलिङ्गजीके प्रसिद्ध मन्दिरमें तथा अन्यत्र भी ऐसी अनेक प्रतिमाएँ विद्यमान हैं।

उपर्युक्त लिङ्गका वृत्ताकार ऊर्ध्वभाग ब्रह्माण्डका द्योतक माना जाता है और चार मुखोंमेंसे पूर्व-मुख सूर्यका, उत्तर-मुख ब्रह्माजीका, पश्चिम-मुख श्रीविष्णुका और दक्षिण-मुख रुद्र (शिव) का सूचक होता है। जिन मन्दिरोंमें प्राचीन पद्धतिके अनुसार शिवार्चन होता है, वहाँ उन मुखोंमें उन्हीं देवताओंकी कल्पना करके उनका पूजन किया जाता है और विष्णु-सूचक मुखकी पूजाके समय उसपर तुलसी भी चढ़ायी जाती है।

भरतपुर-राज्यके कामाँ (कामवन) नामक ग्रामसे मिला हुआ एक चतुरस्र शिवलिङ्ग राजपूताना-म्यूजियम (अजमेर) में सुरक्षित है। उसके ऊपरका एक इञ्च ऊँचा गोल भाग लिङ्ग (ब्रह्माण्ड) का सूचक है। शिवभक्त उसे शिवका पाँचवाँ मुख मानते हैं। उसमें नीचेके चारों भागोंमें मुखोंके स्थानपर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। पूर्वमें सूर्यकी आसीन मूर्ति है, जिसके नीचे सात घोड़े और हाथमें उनकी रास लिये हुए सूर्यका सारथि अरुण दीख पड़ता है। उत्तरकी ओर दाढ़ीवाले ब्रह्माकी चतुर्मुख (चौथा मुख अदृश्य है) मूर्ति है, पश्चिमकी ओर गरुडासीन विष्णु और दक्षिणकी ओर नन्दीसहित शिवकी मूर्ति है। पञ्चमुखी शिवकी मूर्तियोंमें चारों दिशाओंके मुख इन्हीं चार देवताओंके सूचक होनेसे यही जान पड़ता है कि ये चारों देवता एक ही ईश्वरके ब्रह्माण्डस्थित रूप हैं। कामाँसे एक और बड़ा शिवलिङ्ग मिला है, जिसके ऊपरका एक इञ्च बाहर निकला हुआ वृत्ताकार भाग शिवके पाँचवें मुख (ब्रह्माण्ड) का प्रदर्शक है। उसके नीचे चारों ओर साधारण शिवलिङ्गोंके समान जटाजूटसहित चार मुख हैं। पूर्वके मुखके नीचे घुटनोंतक लम्बे बूट पहने हुए सूर्यकी द्विभुज मूर्ति और उत्तरकी ओर दाढ़ीवाले ब्रह्माजीकी चतुर्मुख, पश्चिममें विष्णुकी चतुर्भुज एवं दक्षिणमें नन्दी-

सहित रुद्रकी चतुर्भुज मूर्तियाँ हैं। ये चारों मूर्तियाँ ढाई-ढाई फीट ऊँची और खड़ी हुई हैं। इस शिवलिङ्गको देखने-से यह निश्चय होता है कि इसके चारों दिशाओंके चारों मुख क्रमशः सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके द्योतक हैं।

ईस्वी सन्की दूसरी शताब्दीके कुषाणवंशी राजाओंके कुछ सिक्कोंपर नन्दीके पास खड़ी हुई द्विभुज, परन्तु चार मुखवाली (चौथा मुख अदृश्य है) शिवकी मूर्ति बनी है, जो ऊपरकी कल्पनाको पुष्ट करती है। इसप्रकार शिवके पाँच मुख माने जानेके कारण वे ‘पञ्चानन,’ ‘पञ्चमुख’ ‘पञ्चास्य’ अथवा ‘पञ्चवक्त्र’ आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

जोधपुर-राज्यके गोड़वाड़-प्रान्तमें सादड़ी गाँवसे कुछ दूर राणपुरका सुप्रसिद्ध जैन-मन्दिर है। उसके निकट ही एक प्राचीन सूर्य-मन्दिर है, जिसके गर्भगृहमें सूर्यकी मूर्ति है और उसके बाहरकी ओर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी ऐसी मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जिनमें कमरसे नीचेका भाग सूर्यका और ऊपरका ब्रह्मा आदि देवताओंका है। ये सारी मूर्तियाँ ७ घोड़ोंवाले रथमें बैठी हुई हैं। इन्हें देखकर यही अनुमान हो सकता है कि ये सब देवता एक ही ईश्वरके पृथक्-पृथक् नामोंके सूचक हैं। कुछ ऐसी भी मूर्तियाँ देखनेमें आयी हैं, जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यका सम्मिश्रण है। उनके हाथोंमें धरे हुए भिन्न-भिन्न आयुधोंसे उनके स्वरूपका निश्चय होता है।

राजपूताना-म्यूजियममें रखी हुई एक विशाल शिलापर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी सुन्दर मूर्तियाँ—उनके वाहन-सहित—बनी हुई हैं। ब्रह्माजीकी प्राचीन मूर्तियोंके ऊपरके एक किनारेपर विष्णु और दूसरेपर शिवकी छोटी-छोटी मूर्तियाँ रहती हैं। इसी तरह विष्णुकी मूर्तिके किनारोंपर ब्रह्मा और शिवकी, तथा शिवकी मूर्तिके दोनों ऊपरी पार्श्वोंपर ब्रह्मा और विष्णुकी मूर्तियाँ होती हैं। ये सब एक ही ईश्वरके इन तीन रूपोंको सूचित करती हैं। उनके रूप भी अलग-अलग माने गये हैं। राजपूताना-म्यूजियममें एक सुविशाल प्राचीन शिवलिङ्ग है, जिसपर ब्रह्मा नीचे (पाताल) से ऊपर (ब्रह्माण्डमें) जाते हुए प्रदर्शित किये गये हैं और एक-एकके ऊपर दो-दो मूर्तियाँ दीख पड़ती हैं। दूसरी तरफ विष्णु नीचा मुख किये हुए ऊपरसे नीचे आ रहे हैं। विष्णुकी भी एक-एकके नीचे दो-दो मूर्तियाँ बनी हुई हैं। ये मूर्तियाँ अनन्त ब्रह्माण्डरूप शिवलिङ्गकी याह लेनेके लिये ब्रह्माका ऊपरकी तरफ और विष्णुका नीचेकी

ओर जाना सूचित करती हैं। इससे हम यह मान सकते हैं कि शिवलिङ्गकी कल्पना वस्तुतः अनन्त ब्रह्माण्डकी सूचक है।

जिस समय इन देवताओंकी मूर्तियोंकी कल्पना हुई, उस समय इनकी पत्नियोंकी कल्पनाका होना भी स्वाभाविक ही था। शिवकी पत्नी शिवा, उमा, पार्वती, गौरी, दुर्गा, काली आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुई। राजपूतानेमें ऐसी बहुत-सी मूर्तियाँ मिलती हैं, जिनमें शिव नन्दीके ऊपर बैठे हुए हैं और उनकी बायीं जङ्घापर पार्वतीजी बैठी हैं। इसप्रकारकी तीन मूर्तियाँ राजपूताना-म्यूजियममें विद्यमान हैं। कहीं-कहीं शिव और पार्वतीकी नन्दीके निकट खड़ी हुई मूर्तियाँ भी मिलती हैं। शिव-पार्वतीके विवाहके दृश्य भी प्रस्तुत किए हुए हैं। इनमें आमने-सामने खड़े हुए शिव-पार्वती ऊपरी भागमें विवाहमें सम्मिलित होनेको आये हुए इन्द्र आदि देवता और मध्यमें अग्निके सामने विवाह-कार्य सम्पादित करते हुए चतुर्मुख ब्रह्मा प्रदर्शित हैं। ऐसे दो नमूने राजपूताना-म्यूजियममें सुरक्षित हैं।

जब शिव-पत्नीकी कल्पना हुई, तब शिव और पार्वती दोनोंका मिलकर एक शरीर भी माना जाने लगा—दाहिना भाग शिवका और बायाँ एक स्तनसहित पार्वतीका। ऐसी मूर्तियाँ 'अर्द्धनारीश्वर' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें शिवके साथ नन्दी और पार्वतीके साथ उनका वाहन सिंह दिखलाया जाता है। यह कल्पना भी प्राचीन है। क्योंकि संस्कृतके सुप्रसिद्ध महाकवि वाणभट्टके पुत्र पुलिनभट्टने 'कादम्बरी' के उत्तरार्द्धके प्रारम्भमें अर्द्धनारीश्वरकी स्तुति की है। * कहीं-कहीं शिवकी विशालकाय तीन मुखवाली मूर्ति (त्रिमूर्ति, महेश्वर) भी पायी जाती है। उसके छः हाथ, जटायुक्त तीन सिर और तीन मुख होते हैं, जिनमेंसे रोता हुआ एक मुख शिवके रुद्र-नामको चरितार्थ करता है। मध्यके दो हाथोंमेंसे एकमें विजौरा और दूसरेमें माला, दाहिनी ओरके दो हाथोंमेंसे एकमें सर्प और दूसरेमें खप्पर और बायीं ओरके हाथोंमेंसे एकमें पतले दण्ड-सी कोई वस्तु और दूसरेमें ढाल या काचकी आकृतिका कोई छोटा-सा गोल पदार्थ होता है। त्रिमूर्ति वेदीके ऊपर दीवारसे

सटी रहती है और उसमें वक्षःस्थलसे कुछ नीचे तकका ही भाग होता है। त्रिमूर्तिके सामने भूमिपर बहुधा शिवलिङ्ग होता है। ऐसी त्रिमूर्तियाँ चित्तौड़के किले तथा सिरौही-राज्यके कई स्थानोंमें देखनेमें आयी हैं। शिव 'नटराज' कहलाते हैं और उनकी ताण्डय-नृत्य करती हुई मूर्तियाँ भी राजपूतानेके कई स्थानोंमें देखनेमें आयी हैं।

इसप्रकार शिवकी भिन्न-भिन्न मूर्तियाँ राजपूतानेमें मिलती हैं। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार शिवभक्त किसी-न-किसी रूपमें अपने उपास्यकी पूजा करते हैं।

जिसप्रकार बौद्धोंने २४ अतीत बुद्ध, २४ वर्तमान बुद्ध एवं २४ भायी बुद्धकी और जैनोंने २४ तीर्थङ्करोंकी तथा वैष्णवोंने २४ अवतारोंकी कल्पना की, उसी तरह शिवके उपासकोंने भी शिवके कई अवतारोंकी कल्पना की; परन्तु उन सब अवतारोंकी मूर्तियाँ नहीं मिलती। राजपूतानेमें शिवके लकुलीश (नकुलीश, लकुटीश) अवतारकी मूर्तियाँ बहुत मिलती हैं। 'विश्वकर्मावतारवास्तुशास्त्रम्' नामक ग्रन्थमें लकुलीश-मूर्तिके वर्णनमें लिखा है—

न (ल) कुलीशमूर्ध्वमेढ्रं पद्मासनसुसंस्थितम् ।

दक्षिणे मातुलिङ्गं च वामे दण्डं प्रकीर्तितम् ॥

'लकुलीशकी मूर्ति ऊर्ध्वमेढ्र (ऊर्ध्वलिङ्गी) पद्मासनस्थित, दाहिने हाथमें विजौरा और बायें हाथमें दण्ड (लकुट) लिये होती है। लकुलीशके मन्दिर कई जगह मिलते हैं। लकुलीश-सम्बन्धी देवाल्योंमें उदयपुर-राज्यमें एकलिङ्गजीके मन्दिरके पास वि० सं० १०२८ का बना हुआ और कोटा-राज्यके प्रसिद्ध कवालजी (कपालेश्वर-मन्दिर) से अनुमान एक मीलपर जयपुरकी सीमामें आधा गिरा हुआ एक सुविशाल मन्दिर मेरे देखनेमें आया। इस सम्प्रदायके माननेवाले पाशुपत शैव कनफड़े साधु होते थे। लकुलीशका अवतार कब हुआ, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता; परन्तु मथुरासे मिले हुए गुप्त संवत् ६१ (वि० सं० ४३७=ई० सं० ३८०) के लेखसे पाया जाता है कि लकुलीशके शिष्य कुशिककी परम्परामें ११ वाँ आचार्य उदिताचार्य उक्त संवत्में विद्यमान था, अतः लकुलीशका प्रादुर्भाव ई० सं० की दूसरी सदीके अन्तके आस-पास होना अनुमान किया जा सकता है।

लकुलीशका प्राकट्यस्थान कायावरोहण (कायारोहण, कारवान, बड़ौदा-राज्यमें) माना गया है। उनके चार

* देहद्वयार्धघटनारचितं शरीर-

मेकं ययोरनुपलक्षितसन्धिभेदम् ।

वन्दे सुदुर्घटकथापरिशेषसिद्धयै

सृष्टेरुगुरु गिरिसुतापरमेश्वरौ तौ ॥

शिष्योंके नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य (लिङ्गपुराण २४।१३१) मिलते हैं। एकलिङ्गजी तथा राजपूतानेके अन्य मन्दिरोंके मठाधीश कुशिककी शिष्य-परम्परामें थे। ये साधु कान फड़वाते, सिरपर जटाजूट रखते और शरीरपर भस्म लगाते थे। ये विवाह नहीं करते थे; किन्तु चेले मूँड़ते थे।

राजपूतानेके शिवभक्त राजा अपने इष्टदेव शिवके बड़े-बड़े मन्दिर बनवाते थे और उनके साथ मठ भी होते थे।

ये मठ बहुधा लकुलीश-सम्प्रदायके कनफड़े साधुओंके अधिकारमें होते थे। वे लोग राजाओंके गुरु माने जाते थे। एकलिङ्गजी तथा मैनाल (मेवाड़) आदिके मठाधीश भी यही लोग थे। इन मन्दिरोंके द्वारपर लकुलीशमूर्ति रहती है। इन मन्दिरों और मठोंके निर्वाहके लिये बड़ी-बड़ी जागीरें दी जाती थीं। वर्तमानकालके 'नाथ' लोग विशेषतः उसी सम्प्रदायसे निकले हुए हैं; परन्तु अब वे लोग लकुलीश-का नामतक नहीं जानते।

नर्मदा-तटके कुछ शिव-मन्दिर

(लेखक—पं० श्रीप्रबोधचन्द्रजी मिश्र)

भारतमें धार्मिक दृष्टिसे सात नदियोंका बड़ा महत्त्व है। धार्मिकजन स्नान करते समय अपनी पवित्रताके निमित्त इन सात नदियोंके जलका आवाहन करते हैं। श्लोक इसप्रकार है—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी—ये नदियाँ अति पवित्र मानी जाती हैं। उत्तर-भारतमें जो सम्मान गङ्गा और यमुनाका है, मध्य-भारतमें वही सम्मान नर्मदाका है।

भारतमें नर्मदाके दक्षिण और उत्तर-तटमें जितने शिव-मन्दिर बने हुए हैं उतने सम्भवतः किसी भी नदीके तटपर नहीं हैं। नर्मदाके सुन्दर और पावन तटपर शिव-मन्दिरोंका बाहुल्य क्यों है? नर्मदाका इतना माहात्म्य क्यों है? शिवका नर्मदासे क्या सम्बन्ध है? इन सब बातोंकी संक्षिप्त चर्चा इस लेखमें की जाती है।

नर्मदाकी उत्पत्तिका माहात्म्य अनेक पुराणोंमें बड़ी सुन्दरताके साथ वर्णन किया गया है। मत्स्यपुराणके १८५ वें अध्यायमें एक स्थानपर यह वर्णन है कि कलिङ्ग-देशके अमरकण्टकवनमें नर्मदा नामकी एक मनोहर और रमणीय नदी है। वह भगवान् शङ्करके साक्षात् तेज-अंशसे आविर्भूत हुई है। उस नदीमें स्नान कर जो शङ्करका विधिवत् पूजन करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। कूर्मपुराणके अन्तर्गत ब्राह्मीसंहिता-उत्तरार्द्धके १८ वें

अध्यायमें वर्णन किया गया है कि नर्मदा नदी रुद्रकी देहसे निकली है। शिवपुराणके ३८ वें अध्यायमें भी यही वर्णन है कि नर्मदा नदी शिवका रूप है, इसके तटपर असंख्य शिवलिङ्ग स्थित हैं। नर्मदाका इन पुराणोंके अतिरिक्त अन्य पुराणोंमें भी वर्णन है। इसके माहात्म्यसे प्रभावित होकर प्राचीन ऋषियोंने एक स्वतन्त्र नर्मदा-पुराणकी रचना कर डाली, जिसमें इस नदीका अतीव विस्तृत एवं मनोहारी वर्णन है। नर्मदाके विषयमें स्कन्द-पुराणान्तर्गत एक स्वतन्त्र रेवाखण्ड है, उसमें इसकी अपूर्व महिमाका वर्णन है।

अपने प्रिय पुत्र स्कन्दके प्रार्थनानुसार शङ्करजीने प्रेमपूर्वक नर्मदाके माहात्म्यका वर्णन किया, जिसे पीछे स्कन्दने मार्कण्डेय ऋषिको बतलाया।

एक समय मार्कण्डेय ऋषि समस्त तीर्थोंका भ्रमण करके नर्मदाके पावन तटपर विराजमान थे। उनके चारों ओर अनेक देवगण बैठे थे। उसी समय महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों और अनेक ब्राह्मणोंसहित मार्कण्डेय मुनिके आश्रममें आ पहुँचे और मुनिको प्रणाम कर यथास्थान बैठ गये और फिर पीछे समय पाकर उन्होंने ऋषिवरसे पूछा कि—'कृपया आप हमें यह बताइये कि गङ्गा, यमुना आदि पवित्र नदियोंके तटोंको छोड़कर आप नर्मदा नदीका सेवन क्यों करते हैं?' मार्कण्डेयजीने कहा—'राजन्! इस मर्त्यलोकमें नर्मदासे बढ़कर पापोंका शीघ्र नाश करनेवाली कोई दूसरी नदी नहीं है। ये भगवान् शङ्करकी

पुत्री हैं और भगवान् शङ्करके प्रसादसे इस लोकको तारने-के लिये इस अवनीतलपर अवतीर्ण हुई हैं। एक समय भगवान् शङ्कर ऋष्यपर्वतपर तप कर रहे थे। एकाएक उनके शरीरसे श्वेत घर्म (पसीना) निकला, जिसके प्रवाहमें समस्त पर्वत बहने लगे। पीछे उसकी एक कन्या बन गयी और यही नर्मदा हो गयी। नर्मदाने शिवजीसे यह वरदान प्राप्त किया कि 'मैं अमर हो जाऊँ, मेरे जलमें स्नान करनेवाला जीव पापरहित हो जाय। उत्तरमें जैसा भागीरथीका सम्मान है, वैसा ही दक्षिणमें आपके प्रसादसे मेरा सम्मान हो।'।

भगवती नर्मदा अमरकण्टक पहाड़पर प्रकट हुई। यही नर्मदाजीका उद्गम-स्थान है। अमरकण्टकका प्रधान तीर्थ नर्मदाकुण्ड है और उसके पासकी एक सड़क-पर नर्मदाजीका मन्दिर है। मन्दिरके सामने एक और भी प्रसिद्ध मन्दिर है, जो शिवजीका है। उद्गम-स्थानसे निकलनेके बाद नर्मदाका जल इसी कुण्डमें गिरता है।

अमरकण्टक पहुँचनेके लिये रेलवेकी एक शाखा कटनी-से बिलासपुरको गयी है। इसपर पेंडरा-रोड नामक एक स्टेशन है। उत्तर भारतसे जानेवाले लोग यहींपर उतरते हैं। यहाँसे अमरकण्टक चौदह मील है। स्टेशनसे अमरकण्टक-तकका मार्ग पहाड़ी है, जिसके बीचमें सुहावना जंगल पड़ता है। अमरकण्टकसे तीन मील दूर कपिलधारा नामक एक प्रसिद्ध स्थान है। कपिलधारासे डेढ़ मीलकी दूरीपर दूधधारा है। यहाँपर नर्मदाजी एक ऊँची पहाड़ीसे नीचे गिरती हैं। इसी अमरकण्टकसे एक सोनभद्रा नदी और निकलती है।

नर्मदाका अपूर्व माहात्म्य है। हजारों मनुष्य प्रतिवर्ष इसकी परिक्रमा करते हैं। नर्मदाके विषयमें कहावत है कि—

‘नर्मदाके कंकर, सोई शिवशंकर।’

इस तरह नर्मदाका एक एक पत्थर और कंकर शिवका रूप है। नर्मदाके सम्बन्धमें कहा है—

स्मरणाञ्जन्मजं पापं दर्शनेन त्रिजन्मजम् ।

स्नानाजन्मसहस्राणां हन्ति रेवा कलौ युगे ॥

अर्थात् कलियुगमें नर्मदाका इतना माहात्म्य है कि उनके स्मरणमात्रसे जन्मभरके, दर्शनसे तीन जन्मोंके और स्नानसे सहस्र जन्मोंके पापोंका नाश होता है।

अब इस सम्बन्धमें अधिक विस्तार न कर हम नर्मदा-तटके

प्रसिद्ध-प्रसिद्ध शिव-मन्दिरोंका वर्णन करते हैं। इन मन्दिरोंका न केवल धार्मिक दृष्टिसे ही महत्त्व है, अपितु ऐतिहासिक दृष्टिसे भी इनका बहुत अधिक मूल्य है। कोई-कोई मन्दिर तो पाँच सौ और छः सौ वर्षोंसे भी अधिक प्राचीन हैं। इसलिये स्थापत्य-शिल्पकी दृष्टिसे भी दर्शनीय हैं।

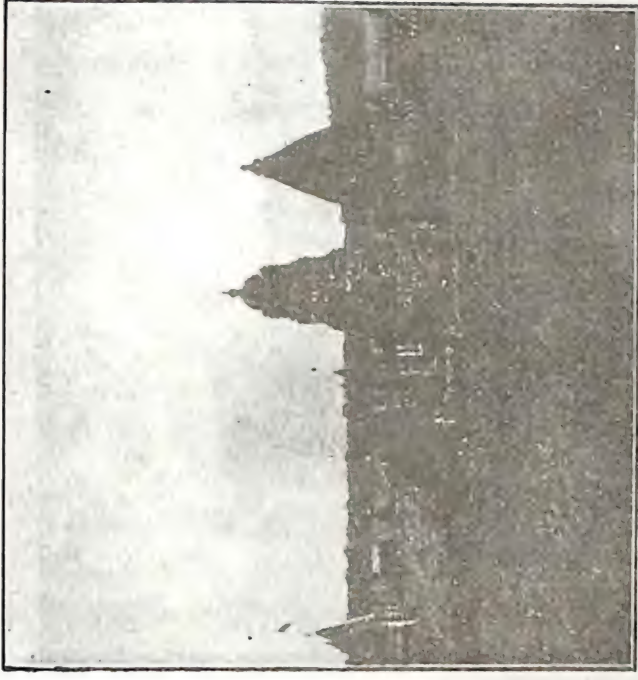
मुख्य-मुख्य स्थान ये हैं—

शूलपाणीश्वर—श्रीनर्मदाजीके किनारे मालवा और गुजरात-के बीचमें शूलपाणिकी प्रसिद्ध झाड़ी है। इसी झाड़ीमें सिन्दूरी नदीका संगम श्रीनर्मदाजीसे हुआ है। इस सिन्दूरी सङ्गमसे ग्यारह मीलकी दूरीपर शूलपाणीश्वर-तीर्थ है। मन्दिर अति प्राचीन एवं पश्चिमाभिमुख बना हुआ है। उत्तर-दिशामें कमलेश्वर तथा दक्षिणमें राजराजेश्वरके मन्दिर हैं। मन्दिरके पृष्ठ-भागमें छोटे-छोटे पञ्चपाण्डवोंके मन्दिर हैं, परन्तु उनमें द्रौपदी नहीं हैं। कमलेश्वरसे दक्षिण-दिशामें सप्तर्षियों-के सात छोटे-छोटे मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंमें भी अरुन्धती नहीं हैं। इस मन्दिरका जीर्णोद्धार विन्ध्याचलके महाराज श्रीमान् राजसिंहजीने १६९५ ई० में कराया था।

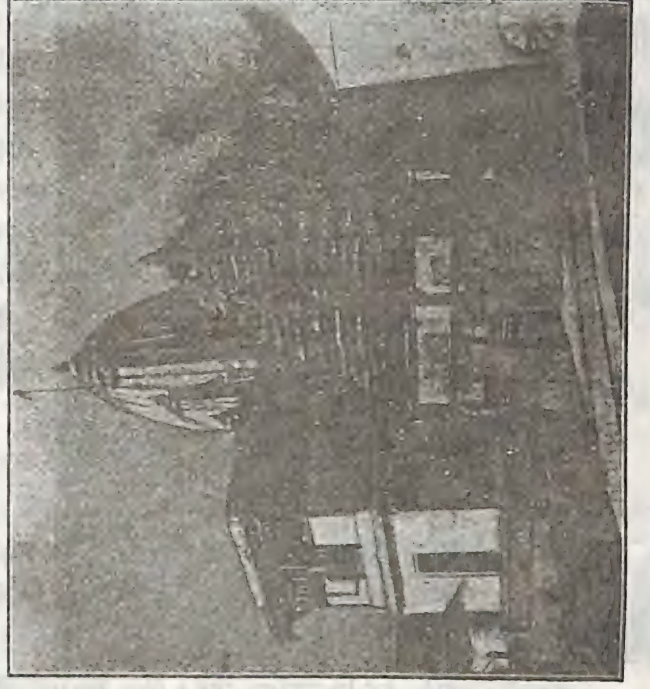
इस तीर्थकी कथा रेवाखण्डमें इसप्रकार वर्णित है—ब्रह्मा-कानाती, दैत्याधिराति अन्धकासुर बड़ा भयङ्कर था। इसने समस्त लोकोंको जीतनेके लिये घोर तपस्या की। एक सहस्र वर्षतक यह गङ्गाजीके तटपर केवल धूम्रपान करके तपस्या करता रहा, हजारों वर्षतक पञ्चाग्नि-तप आदि और भी अनेक प्रकारके तप किये। इस घोर तपके प्रभावसे उसके मस्तकसे धुआँ निकलने लगा। दैत्यके सिरसे निकला हुआ धूम सर्वत्र छा गया। संसार व्याकुल हो उठा। आखिर भगवान् भोलानाथकी भी समाधि टूटी। वे भवानीसहित भृगु-पर्वतपर, जहाँ अन्धकासुर तपस्या कर रहा था, आये और उसे दर्शन देकर बोले—‘हे वत्स ! वर माँगो। हम तुम्हारे तपसे सन्तुष्ट हैं।’

उसने कहा ‘भगवन् ! यदि आप दासपर प्रसन्न हैं तो कृपया यह वरदान दीजिये कि मेरे सम्मुख आनेवालेका पराभव हुआ करे।’ ‘अच्छा, तुम विष्णुभगवान्को छोड़कर अपने सामने आनेवाले और सबका पराभव कर सकोगे’—कहकर भगवान् शङ्कर उमासहित अन्तर्धान हो गये और इधर वह दैत्य भी अपने नगरको चल दिया।

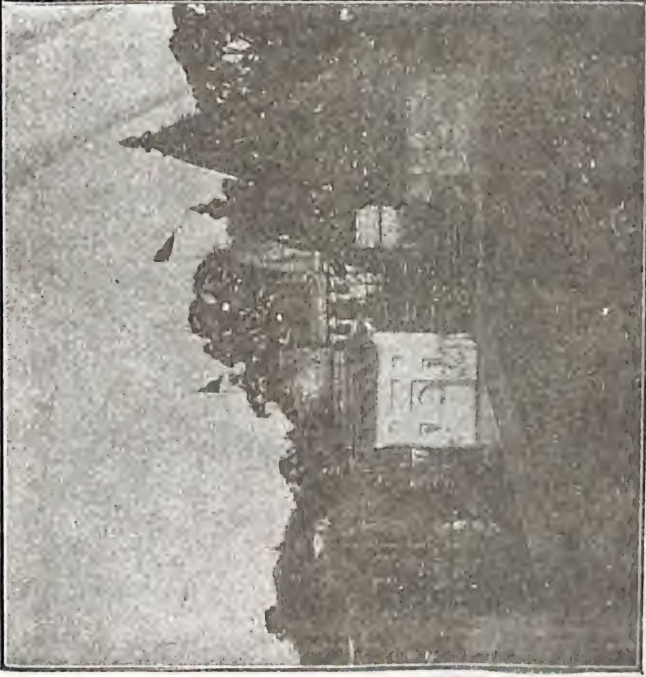
अन्धकासुर अपनी राजधानीमें पहुँचकर वरदानके बलसे प्राणिमात्रको पीड़ित करने लगा। चारों ओर त्राहि-



અમરવટી



કુમ્ભેશ્વર



શ્રીનર્મદેશ્વર



શુલ્પાણેશ્વર



कुवेरे श्वर



हाये श्वर



दशाधमेध तीर्थ



आदिश्वर

त्राहि मच्च गयी । देवतातक व्याकुल हो उठे । देवराज इन्द्रका भी आसन डोल गया ।

विष्णुभगवानकी प्रेरणासे दैत्यने शङ्करको भी युद्धके लिये निमन्त्रण भेज दिया । शङ्करजीको उसे घर देनेपर पश्चात्ताप हुआ और वे उससे युद्ध करनेके लिये चल दिये । घोर संग्राम हुआ । अन्तमें क्रुद्ध होकर भगवान् शङ्करने अपने त्रिशूलसे आहत कर उसे भूमिशायी बना दिया । प्राणान्त निकट देख, उसने भगवान् शङ्करकी स्तुति की । आशुतोष पुनः प्रसन्न हो गये और उसे अपना रूप देकर अपने गणों-में भर्त्ता कर लिया ।

दैत्यके पराजयसे सर्वत्र आनन्द मनाया जाने लगा । सारे देवता भगवान् शङ्करके दर्शनके लिये आये और उनकी स्तुति करने लगे । पीछे भगवान् शङ्करने सब देवोंसे कहा कि मेरा त्रिशूल ब्राह्मणके रक्तसे अपवित्र हो गया है, इससे मुझे ब्रह्महत्याका घोर पातक लगा है । आपलोग कोई ऐसा उपाय बतलायें कि मैं इस पापसे शीघ्र मुक्त हो जाऊँ और मेरा यह त्रिशूल धुलकर साफ हो जाय । शङ्करजीने समस्त देवोंकी सम्मतिसे उनके साथ सारे तीर्थोंमें जाकर त्रिशूलके रक्तको धोया, परन्तु रक्तके दाग नहीं मिटे । आखिर, वे भृगुपर्वतपर गये और क्रोधमें भरकर त्रिशूलको पर्वतपर दे मारा । त्रिशूलके भयङ्कर आघातसे पर्वत धसककर पातालको चला गया और त्रिशूलके रक्तके चिह्न मिट गये । जिस स्थलपर त्रिशूल लगा वहाँसे सरस्वती-गङ्गा प्रकट हुई, जो नर्मदामें जाकर मिल गयी । उसी स्थानपर एक शिवलिङ्गकी स्थापना हुई, वह शिवलिङ्ग शूलपाणीश्वरके नामसे विख्यात हो गया । यह अति पवित्र स्थान समझा जाता है । यहाँ जो पाताल-गङ्गा निकली है उसे भोगावती कहते हैं । यहाँ एक निर्वाणशिला है, जिसकी अतुल महिमा है ।

कुम्भेश्वर-शूलपाणीश्वरसे कुछ मील आगे, वानरेश्वरसे एक मील, कुम्भीवनमें जिओर (जीमूतपुर) ग्रामके समीप कुम्भेश्वर महादेवका विशाल मन्दिर है । इसकी कथा इसप्रकार है—

एक समय शनिने देवगुरु बृहस्पतिसे अपना क्रोध शान्त करनेकी युक्ति पूछी । उन्होंने कहा कि यदि तुम कुम्भेश्वर जाकर तप करो, तो तुम्हारा क्रोध शान्त हो सकता है । शनिके पूछनेपर देवगुरुने कुम्भेश्वरकी कथा सुनायी ।

उन्होंने कहा—भृगुजीके नाती मार्कण्डेयजीने एक समय घोर तपस्या की । नौ दिनमें चारों वेदोंका पारायण किया । पारायण विधिवत् करनेके उपरान्त कलसका पूजन किया और उसका उद्धार किया, उसी समय कलससे एक लिङ्ग उत्पन्न हुआ । शङ्करजी प्रकट होकर बोले कि वरदान माँग । मार्कण्डेयजीने हाथ जोड़कर कहा कि 'भगवन् ! आप यहींपर निवास करें, मैं यही वरदान आपसे माँगता हूँ ।' शङ्करने प्रसन्न होकर 'तथास्तु' कहा । तबसे भगवान् शङ्कर वहाँ बराबर निवास करते हैं ।

देवगुरुके बतलानेसे शनिने कुम्भेश्वर महादेवपर आकर एक सहस्र वर्षतक घोर तप किया और शान्ति प्राप्त की ।

इस स्थानका बड़ा माहात्म्य है । यहाँ स्नान करनेका बड़ा पुण्य है । यह तीर्थ आदि-कल्पमें ब्रह्माजीने स्थापित किया, दूसरे कल्पमें विष्णुभगवान्ने । तीसरे कल्पमें इन्द्रने यहाँ तपस्या करके सिद्धि पायी, इसलिये इसका नाम शक्रेश्वर पड़ गया । यही मेघेश्वर भी हैं । यहींपर वृत्रासुरकी लड़ाई हुई थी । चौथे कल्पमें यम-धर्मने यहाँ तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की, इसलिये इसका नाम 'धर्मेंश्वर' तीर्थ हुआ । पाँचवें कल्पमें वरुणने सिद्धि पायी, इसलिये यह 'वरुणेश्वर' तीर्थ हुआ । छठे कल्पमें कुबेरने तप करके सिद्धि प्राप्त की, इसलिये इसे 'धनदेश्वर' कहते हैं । सातवें कल्पमें मार्कण्डेयजीने तप किया और वेद-पारायण करके सिद्धि प्राप्त की, तबसे यह स्थान 'कुम्भेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

यहाँ कुम्भराशिके शनिका बड़ा माहात्म्य है । गोदावरी-का स्नान करके जबतक यहाँका स्नान नहीं किया जाता, तबतक गोदावरीके स्नानका फल नहीं होता । यहाँका मन्दिर दर्शनीय और सुन्दर है । स्थान भी अत्यन्त रमणीय है ।

हनुमन्तेश्वर-कुम्भेश्वरसे कुछ मील आगे नर्मदाके तटपर यह मन्दिर है । स्थान अति सुन्दर है । मन्दिरमें हनुमान्जीकी मूर्ति है । मन्दिर गुम्बजदार है ।

शुकेश्वर-नागेश्वरघाटसे लगभग एक मीलकी दूरीपर शुकेश्वरघाट है । घाटके ऊपर, शुकेश्वर महादेवका मन्दिर है । नर्मदासे लेकर मन्दिरतक सुन्दर पत्थरकी चौड़ी-चौड़ी सीढ़ियाँ लगी हैं, सीढ़ियोंके ऊपर दुमंजिला बड़ा दरवाजा है । भीतर मण्डपयुक्त मन्दिर है ।

यह मन्दिर प्राचीन है, पत्थरका बना हुआ है । स्थान अति रमणीय है । इस स्थानपर शुकदेवजीने बाल्यावस्थामें, जब वे

आठ वर्षके थे, तपस्या की थी। उनके सौ वर्ष तपस्या करनेके पश्चात् भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए। शुकदेवजीने अपनी मुक्ति-के साथ-साथ यह भी वरदान माँगा कि भगवान् तीर्थमें रहकर भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करते रहें। तबसे तीनों देव यहाँ रहते हैं। यहाँ तीन मूर्तियाँ ये हैं—व्यास, शुकेश्वर और मार्कण्डेयेश्वर।

माण्डव्येश्वर—यह नौगवा ग्रामसे छः मीलकी दूरीपर है। यहाँ पोस्ट आफिस है। यह बी० बी० एण्ड० सी० आई० आर० का स्टेशन भी है। इस स्थानका माण्डव्येश्वर-नाम माण्डव्य ऋषिके नामसे पड़ा है। इस स्थानका इतिहास इसप्रकार है—

प्राचीन समयमें एक देवराज नामका राजा था। उसकी एक अति रूपवती कन्या थी। कन्याका नाम कुमुदिनी था। एक दिन वह सरोवरमें स्नान कर रही थी। इतनेमें एक दैत्यने पक्षीका रूप धारण कर उसका अपहरण कर लिया। मार्गमें जाते समय कन्याने अपने कुछ आभूषण माण्डव्य ऋषिके आश्रममें गिरा दिये। जब राजाके आदमी लड़कीको ढूँढ़ते हुए ऋषिके आश्रममें आये तो वहाँ पड़े हुए लड़कीके आभूषणोंको देखा। माण्डव्य ऋषि समाधिमें बैठे थे। राजपुरुषोंने ऋषिसे पूछा—हे मुने! क्या आपने राजा देवराजकी कन्या कुमुदिनीको देखा है? आपके आश्रममें उसके कुछ अलङ्कार मिले हैं। क्या आप उसके विषयमें कुछ जानते हैं? ऋषिको कन्याके विषयमें कुछ भी ज्ञात नहीं था। वे राजपुरुषोंके प्रश्नोंका यथोचित उत्तर न दे सके। राजपुरुषोंने जाकर सब हाल राजासे कहा। राजाने ऋषिको छद्मवेषधारी समझ उसे सूलीपर चढ़ानेकी आज्ञा दे दी। राजाज्ञानुसार ऋषि सूलीपर चढ़ा दिये गये। परन्तु इस घटनासे ऋषिके छोटे भाईको बड़ा क्षोभ हुआ। उसने राजाका सर्वनाश करनेके लिये हाथमें जल लेकर मन्त्र पढ़ा और वह उस जलको छोड़ना ही चाहता था कि सूलीपर स्थित माण्डव्य ऋषिको यह मालूम हो गया और उन्होंने अपने भाईको ऐसा करनेसे मना किया। वे बोले—‘हे भाई! तुम ऐसा अनिष्ट मत करो, राजाने अज्ञान अथवा मोहके वशीभूत होकर यह राजाज्ञा जारी की है। सत्यका पता लगनेपर उसे स्वयं अपने कियेपर पश्चात्ताप होगा।’

इसी बीचमें सप्तर्षियोंसहित अनेक ऋषि वहाँ आ उपस्थित हुए और माण्डव्य ऋषिको सूलीसे उतारने लगे। परन्तु माण्डव्य ऋषि उन ऋषियोंसे बोले—‘आपलोग मुझे

सूलीपरसे न उतारें। यह मेरे पूर्व कर्मोंका फल है जो मुझे भोगना ही पड़ेगा।’ आखिर, ऋषिगण लाचार हो अपने-अपने स्थानको चले गये।

रातके समय एक शाण्डिली नामक ब्राह्मणी अपने कुट्टी पति शौनकको माथेपर लिये हुए सूलीके पाससे निकली। उसका स्पर्श माण्डव्यके पैरको हुआ। क्लेशके कारण माण्डव्य चिल्लाने लगे। माण्डव्य ऋषिके चिल्लानेको सुनकर सब लोग एकत्र हो गये। माण्डव्य ऋषिके भाईने क्रोधित होकर शाण्डिलीको यह शाप दे दिया कि ‘सूर्योदय होते ही तेरा पति मर जायगा।’ शाण्डिलीने सब ऋषियोंसे शापकी कथा कही, पर किसीने उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया। उसने कहा—आपलोगोंने मुझ ब्राह्मणीको अवला समझकर इसकी करुण-कथापर ध्यान नहीं दिया। अब आपलोग भी पतिव्रताके धर्मका प्रभाव प्रत्यक्ष देख लीजिये। यह कहकर उसने छः मासके लिये सूर्यभगवान्का उदय होना ही रोक दिया। संसारके सारे काम बन्द हो गये। देवतागण व्याकुल होकर ब्रह्माके सहित राजाको लेकर शाण्डिलीके पास आये और यह वचन दिया कि तेरा पति नहीं मरेगा। इतनेमें राज-कन्यापहारक दैत्य भी उस कन्याको लिये हुए आया और उसे वहाँ छोड़ चुपचाप भाग गया। राजकन्याके मिलनेपर सब ऋषियोंने माण्डव्य ऋषिको सूलीपरसे उतार लिया। राजाने भी माण्डव्य ऋषिसे क्षमा माँगी और उन्हींको अपनी कन्या समर्पित कर दी। माण्डव्यके भाईने जो जल राजाका नाश करनेके लिये हाथमें ले रक्खा था, उसे समुद्रमें छोड़ दिया, उसीसे कालकूट विष बन गया।

दशाश्वमेधतीर्थ—श्रीनर्मदाजीके किनारे गुजरात-प्रान्तमें भड़ौँच नामक एक प्रसिद्ध नगर है। उसी नगरके पास नर्मदाके तटपर दशाश्वमेधतीर्थ भी एक अति उत्तम और प्रसिद्ध स्थान है। यह अति प्राचीन है। यहाँपर प्रियव्रत राजाने दश अश्वमेध-यज्ञ किये थे। यहींपर एक ब्राह्मणने वेदोंके अनेक पारायण करके अपूर्व सिद्धि प्राप्त की थी। लोगोंकी धारणा है कि यहाँ सरस्वतीदेवी साक्षात् रूपसे निवास करती हैं और भक्तोंको विद्यादान देती हैं। आजकल भी लोग यहाँ आकर संन्यास ग्रहण करते हैं। स्थान रमणीक और दर्शनीय है।

कुबेरेश्वरतीर्थ—यह एक विशाल मन्दिर है। मन्दिरके मध्यमें एक बड़ा गुम्बज है। मन्दिरका प्रवेशद्वार बड़ा है, प्रवेशद्वारके दोनों ओर शिखरदार दो छोटे मन्दिर हैं। यहाँ

वरुणेश्वर, वायव्येश्वर, याम्येश्वर और कुबेरेश्वर—ये चार तीर्थ हैं। यहाँ चारों लोकपालोंको तपसे सिद्धि प्राप्त हुई थी। वरुणको जलाधिपति बनाया गया। वायुको त्रैलोक्यका स्वामित्व मिला। यमराजको जीवोंके पाप-पुण्यके अनुसार दण्ड देनेका अधिकार प्राप्त हुआ और कुबेरजीको समस्त लोकोंके धनका स्वामित्व मिला। यहाँपर भूमिदानका बड़ा पुण्य है। यह स्थान कोरलसे एक मीलकी दूरीपर है और दर्शनीय है।

व्यासेश्वर—व्यासजीने यहाँ बहुत समयतक तप किया, इसलिये यह स्थान व्यासेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्वयं व्यासभगवान्ने यहाँ शङ्करकी स्थापना की थी। व्यासजीने भगवान् शङ्करसे तपस्या करके यह वरदान माँग लिया था कि मैं भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण कर सकूँ।

एक समय दस सहस्र ऋषि व्यासजीके समीप आये। व्यासजीने उनकी यथावत् पूजा की। इसके बाद उन्होंने ऋषियोंसे भोजन करनेका अनुरोध किया। उन्होंने यह कहकर कि 'हमलोग दक्षिण-तटमें स्नान और सन्ध्या नहीं करते,' उनके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। इसपर व्यासजीने नर्मदासे प्रार्थना की—'हे देवि ! तुम सङ्कट निवारण करनेवाली हो, तुम मुझे इस सङ्कटसे पार करो। धर्मशास्त्रमें कहा है कि—

‘जिसके घरसे अतिथि बिना अन्न ग्रहण किये लौट जाता है उसके पुण्योंको यह ले जाता है और अपने पापोंको उसके लिये छोड़ जाता है। अतः ये ऋषिगण यदि मेरे स्थानसे यों ही लौट जायँगे तो मुझे बड़ा पातक लगेगा। हे देवि ! मेरा कल्याण तुम्हारे ही हाथमें है।’

व्यासजीकी प्रेममयी और करुणापूर्ण स्तुति सुनकर भगवती नर्मदा प्रसन्न हो गयीं और वे उनके आश्रमके

दक्षिण-तटमें बहने लगीं। व्यासजीका आश्रम नर्मदाके उत्तर-तटमें हो गया। ऋषियोंने उनके इस अतुल प्रभावको देखकर उनका आतिथ्य स्वीकार किया।

इस स्थानकी अत्यन्त महिमा है। लोग अबतक यहाँपर बड़े-बड़े अनुष्ठान और पुरश्चरण करते हैं।

आदित्येश्वर—यह मन्दिर भी अति प्राचीन है। लोगोंका विश्वास है कि भगवान् सूर्यने यहाँ कठिन तप किया था, जिससे इस स्थानका नाम 'आदित्येश्वर' पड़ा। मन्दिर मण्डपाकार है। उसके समीप तीन छोटे-छोटे और मन्दिर हैं। इसके अन्दर सूर्यभगवान्की मूर्ति और शिवजीका लिङ्ग है।

हयेश्वर—इस नामका पर्वतशिखरपर एक अत्यन्त सुन्दर मन्दिर है। यह बाईस खम्भोंपर बड़ी कारीगरीसे बनाया गया है। इस स्थानको प्राचीनकालमें वरुणने स्थापित किया था। यहींपर वरुणासङ्गम तीर्थ भी है। स्थान दर्शनीय है, साधु और महात्माओंके निवासके योग्य है।

धायड़ीकुण्ड—नेमाड़ प्रान्तमें श्रीनर्मदाजीका एक सुन्दर जलप्रपात है। यहाँ बड़े वेगसे जल पर्वतशिखरसे चालीस फुट नीचे एक कुण्डमें गिरता है। स्थान अति सुन्दर है। जलप्रपातके दक्षिणतटपर 'धारेेश्वर' महादेवका मन्दिर है। प्राचीन समयमें बाणासुर एक करोड़ शिवलिङ्ग बनाकर यहाँ पूजन करने बैठा। उसी समय शङ्करजीने उसका स्मरण किया। बाणासुर सभी शिवलिङ्गोंको छोड़कर शिवजीसे मिलने चल दिया। वे सारे शिवलिङ्ग नर्मदाकुण्डमें डाल दिये गये। वे ही शिवलिङ्ग, लोग कहते हैं, अबतक बराबर निकलते जाते हैं। गोता लगानेवाले लोग कुछ द्रव्य लेकर शिवलिङ्ग निकाल देते हैं। भारतके अधिकांश शिवलिङ्ग यहींसे गये हैं।

ज्योत्स्नासों सित थल तहाँ, मुदित आँसुयुत नैन।

कब रटिहीं तट गंगके, 'शिव शिव' धारत बैन ॥

देव ईश, सुरसरि सरित, दिशा वसन, गिरि गेह।

सुहृत्काल, घट कामिनी, व्रत अदैन्य सुख एह ॥

काशी-केदार-माहात्म्य

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका । पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥



योध्या, मथुरा, मायापुरी (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, उज्जैन और द्वारका—ये सात 'मोक्षदा' नगरी कहलाती हैं। इन सबमें काशीका अधिक माहात्म्य है। शेष छः पुरियोंमेंसे किसी एकमें देहत्याग करनेसे अगले जन्ममें काशी-लभ होता है और काशीमें प्राणोत्क्रमणके समय करुणामय भगवान् शङ्कर मुमुर्षुके कानमें तारकमन्त्रका उपदेश करते हैं, जिससे उसे ज्ञान-प्राप्ति होकर मुक्ति-लभ हो जाता है। स्कन्दपुराणमें लिखा है—

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि हि ।

काशीं प्राप्य विमुच्यन्ते नान्यथा तीर्थकोटिभिः ॥

इसीसे काशीका सबसे अधिक माहात्म्य है।

काशी अनादि तीर्थ है। विश्वेश्वर-लिङ्गके प्रादुर्भावसे इसकी महिमा और भी बढ़ गयी। विश्वेश्वर-लिङ्ग कलियुगमें अन्तर्हित हो जाता है और सत्य, त्रेता और द्वापरमें प्रकट रहता है। कलियुगमें विश्वेश्वरकी पुरी अन्नपूर्णाकी पुरी हो जाती है। यही क्रम अनादिकालसे चला आता है। इस पुरीमें अन्नपूर्णा-विश्वनाथकी ओरसे मुक्तिका सदावर्त चलता है।

इस पुरीमें सातों पुरियाँ और चारों धाम निवास करते हैं। इसकी यात्रासे सारे तीर्थोंकी यात्राका फल मिल जाता है। यावत् लिङ्ग, देव-मूर्तियाँ, पुण्यक्षेत्र और पुण्य-सर, नदी-नद हैं, वे सब पन्द्रह कलाओंसे काशीमें निवास करते हैं और एक-एक कलासे अपने-अपने स्थानमें रहते हैं। अतः काशीको छोड़कर अन्य तीर्थोंकी यात्रा करनेकी आवश्यकता नहीं है।

काशी-यात्राके लिये सुहृत्तका विचार नहीं करना चाहिये, दिक्शूलादि दोष देखनेकी भी आवश्यकता नहीं है। मनुष्य जिस किसी सुहृत्तमें भी काशीके लिये चल पड़े, वही शुभ है। वहाँ मरणमें भी कालका दोष नहीं है; उत्तरायण, दक्षिणायन, रात, दिन आदिका विचार भी नहीं है। न यहाँ स्थलका दोष है, न अपमृत्युका।

काशीमें क्षणमात्रके निवासका, उसके दर्शनका भी

विशेष फल है। पूर्वजन्मके तथा इस जन्ममें भी काशीसे बाहर किये हुए जितने भी पातक तथा महापातक हैं वे सब काशीमें शरीर छोड़नेसे भस्म हो जाते हैं। मृत जीवके ऋणका भार अपने ऊपर लेकर विश्वेश्वर उसे उक्लण करके आवागमनसे मुक्त कर देते हैं।

काशीमें शरीर छोड़नेवालेको श्राद्धादि करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है, यद्यपि विश्वेश्वरकी यह आज्ञा है कि हमारे क्षेत्रमें वैदिक कर्मका लोप न हो, सम्पूर्ण कर्म-काण्ड मेरी प्रीतिके लिये हो। इसीलिये श्राद्धादि प्रेत-क्रिया मृत पुरुषके मुक्त होनेपर भी शास्त्र-मर्यादाकी रक्षाके लिये अवश्य करनी चाहिये। किसी ब्राह्मणका काशीवास करा देनेसे भी काशीवासका फल मिलता है।

जहाँ काशीमें मरनेवाले प्राणीके उद्धारके लिये इतना सुभीता है, वहाँ काशीमें किये हुए पापोंके लिये दण्ड-विधान भी बहुत कड़ा है। वहाँ शरीर छोड़नेवालेपर यमराजका शासन नहीं है, काशी उनके अधिकार-क्षेत्र (Jurisdiction) से बाहर है। वहाँके शासक दण्डपाणि भैरव हैं, किन्तु उनका दण्ड यम-यातनासे भी कठोर होता है। यद्यपि वह यातना प्राणोत्क्रमणके समय तारकमन्त्र-दानसे पूर्व ही हो जाती है, तथापि उसका एक क्षण भी दण्डनीयके लिये कल्पके समान दुःखदायी हो जाता है।

काशीका परिमाण

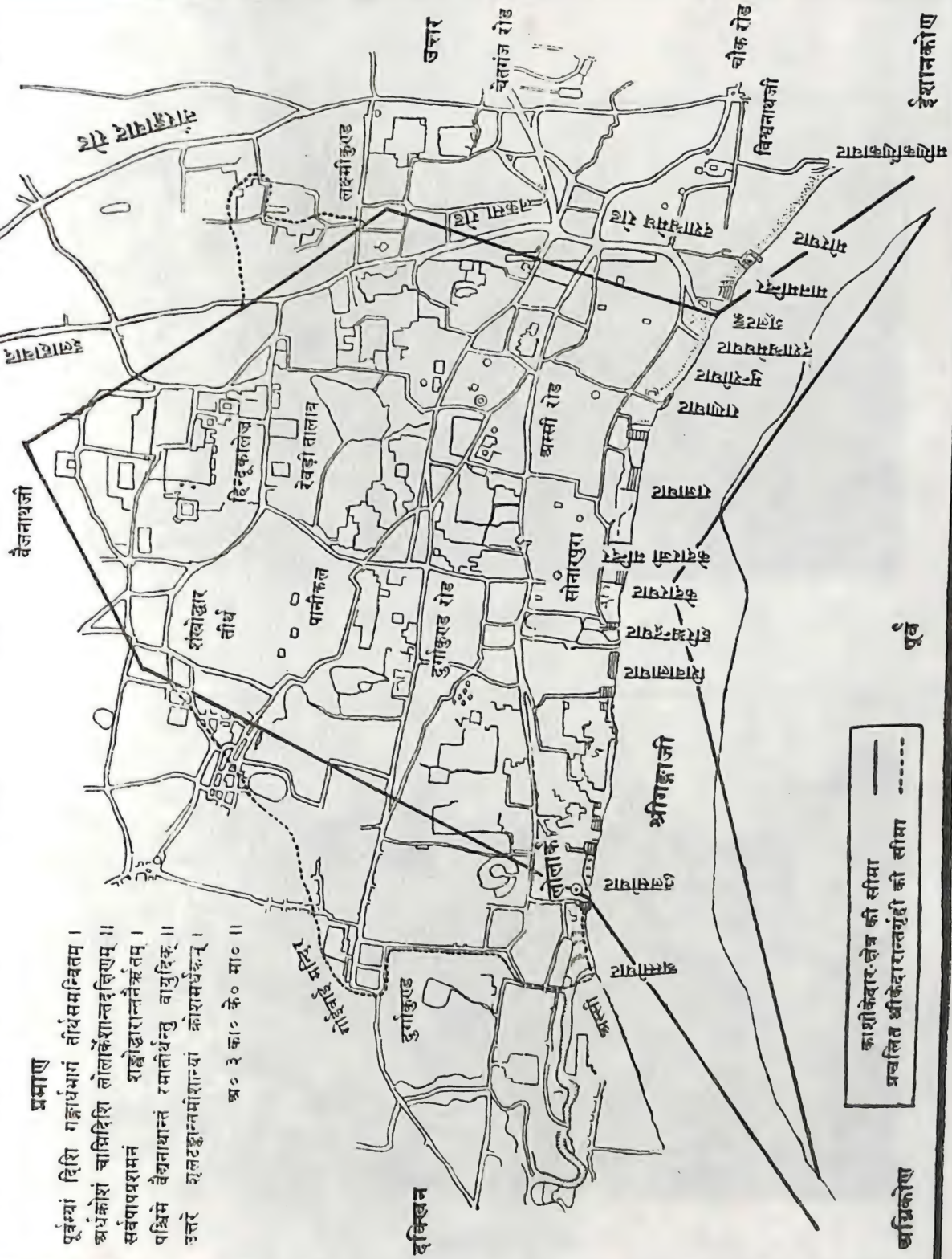
काशीमें 'मध्यमेश्वर' नामका एक लिङ्ग है। जिस मुहल्लेमें वह लिङ्ग है उस मुहल्लेको भी 'मध्यमेश्वर' कहते हैं। मध्यमेश्वरसे पाँच कोसके घेरेमें काशी-क्षेत्र है, केवल गङ्गाजी-के उस पारका काशीका अंश शापके कारण लुप्त हो गया है। काशीके भीतर वाराणसी है, वाराणसीके भीतर 'विश्वेश्वर', 'केदारेश्वर' और 'ओङ्कारेश्वर' नामके तीन अन्तर्गृह हैं और अन्तर्गृहके भीतर अविमुक्त-क्षेत्र है। वाराणसीकी उत्तर-सीमापर वरुणा नदी और दक्षिण-सीमापर असीघाट, पूर्व-सीमापर गङ्गाजी और पश्चिम-सीमापर पाशपाणि विनायक हैं। अन्तर्गृहोंमें 'ओङ्कारेश्वर' नामक अन्तर्गृहकी

काशी-केदारखण्ड का मानचित्र ।

प्रमाण

पूर्वम्यां दिशि गङ्गार्धभागं तीर्थसमन्वितम् ।
अर्धकोशं चाभिदिशि लोलाकेशान्तदक्षिणम् ॥
सर्वपापप्रशमनं शङ्खोद्वारान्तर्गतम् ।
पश्चिमे वैद्यनाथान्तं रमतीर्थन्तु वायुदिक् ॥
उत्तरे शूलटङ्कान्नमोशान्यां कोशमर्धकम् ।

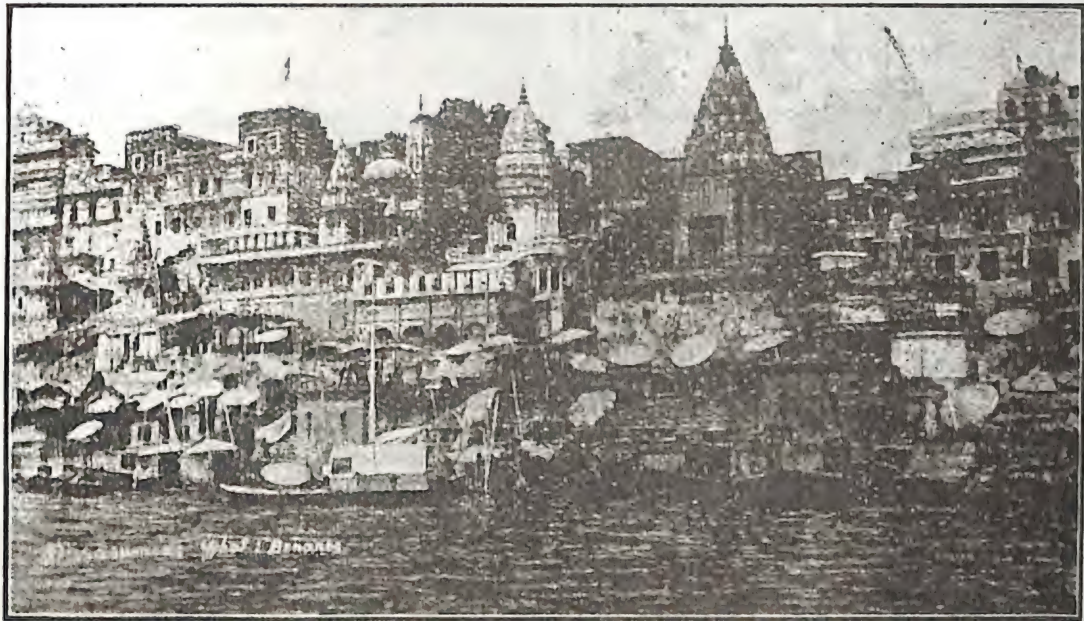
अ० ३ का० के० मा० ॥



कल्याण

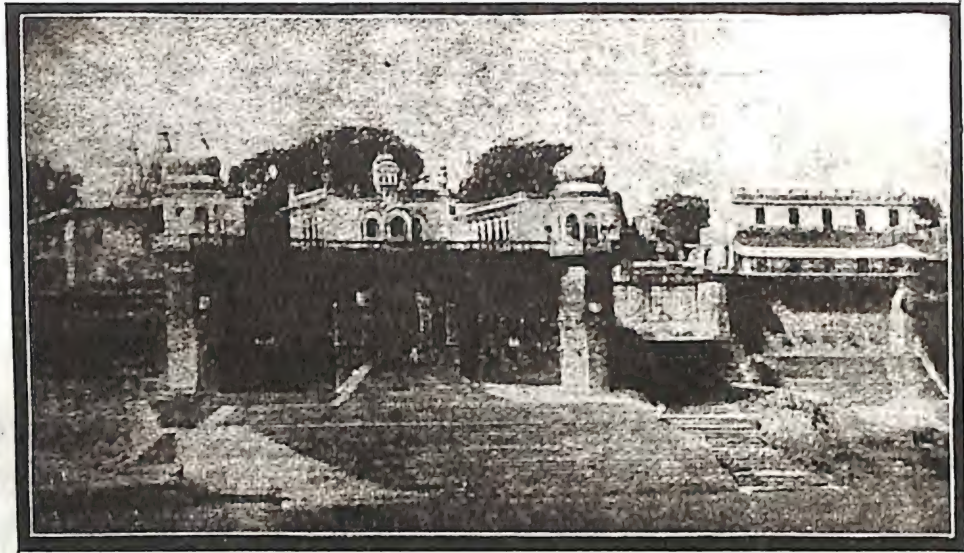


श्रीकाशी—मणिकर्णिका-घाट

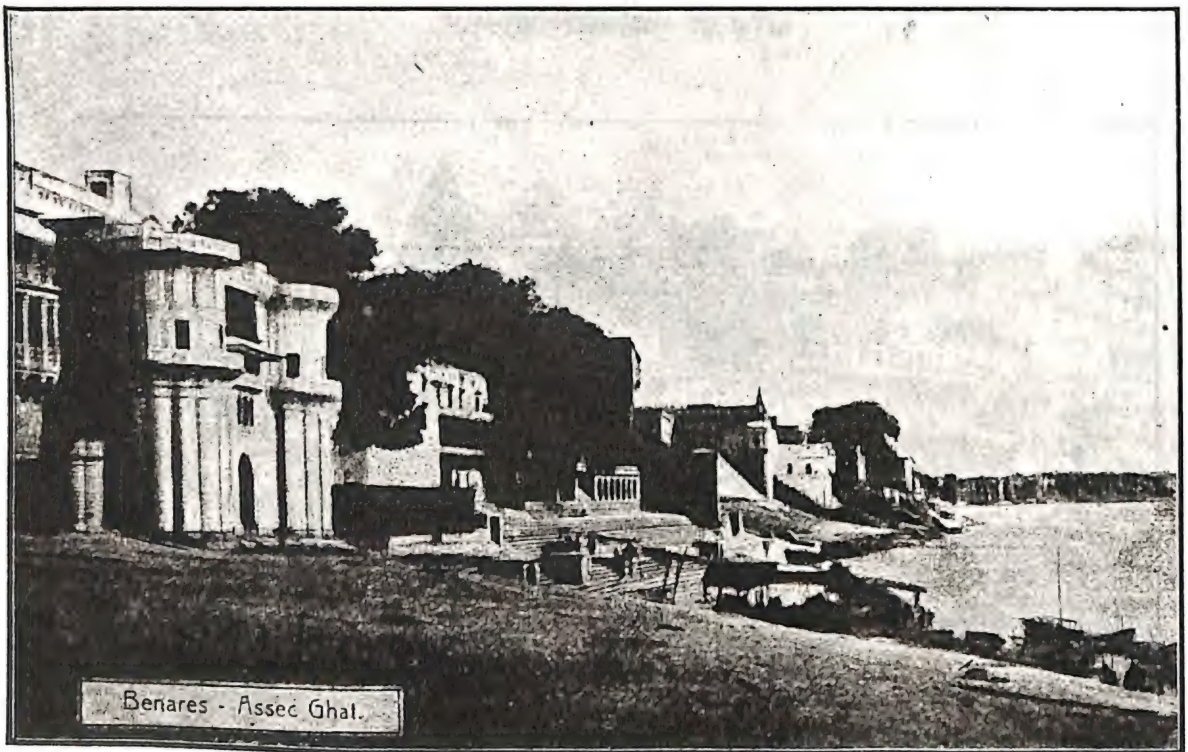


श्रीकाशी—दशाश्वमेध-घाट

कल्याण



श्रीकाशी—शिवाला-घाट



श्रीकाशी—अस्सी-घाट

सीमाका तो पता नहीं चलता। 'विश्वेश्वर' नामक अन्तर्गृह-के पूर्वमें मणिकर्णिकेश्वर, पश्चिममें गोकर्णेश्वर, उत्तरमें भारभूतेश्वर तथा दक्षिणमें ब्रह्मेश्वर हैं। केदारखण्डके पूर्वमें गङ्गाजी, पश्चिममें वैद्यनाथ (सेण्ट्रल हिन्दू-कॉलेजके पीछे), दक्षिणमें लोलार्क (भदौनी) और उत्तरमें शूलटङ्केश्वर (दशाश्वमेध) है, जैसा कि नकशा देखनेसे स्पष्ट होगा। इस खण्डकी प्रचलित यात्राके अनुसार असीसङ्गम, महामायाका सिद्धपीठ, जो दुर्गाजीके ठीक सामने है, तथा दुर्गाजीके दक्षिणमें शुष्केश्वरी (असी) देवीकी मूर्तियाँ इस क्षेत्रके अन्तर्गत हैं। अविमुक्त-क्षेत्रके पूर्वमें अट्टहासेश्वर, पश्चिममें गोकर्णेश्वर, उत्तरमें घण्टाकर्णेश्वर तथा दक्षिणमें भूतधात्रीश्वर हैं। यह क्षेत्र विश्वेश्वरके चारों ओर दो सौ धनुषतक फैला हुआ है। काशीमें शरीर छोड़नेवालेको साक्षात् सालोक्य-मुक्ति मिलती है, फिर एक कल्पके बाद सारूप्य, पुनः एक कल्पके बाद सामीप्य और तत्पश्चात् सायुज्य-मुक्ति प्राप्त होती है। काशीमें मरा हुआ फिर संसारमें नहीं आता। वाराणसीमें देहत्याग करनेवालेको सारूप्य-मुक्ति मिलती है, फिर सान्निध्य पाकर वह सायुज्यका अधिकारी हो जाता है। अन्तर्गृहोंमेंसे किसी एकमें मरनेवालेको सामीप्य-मुक्ति प्राप्त होकर फिर सायुज्य-लाभ होता है और अविमुक्तमें मरनेसे सीधी सायुज्य-प्राप्ति होती है।

काशीका स्वरूप

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भगवान् विष्णुका वचन है कि 'जब मैंने लोकरक्षाके निमित्त सदाशिवका स्मरण किया तो वे प्रादेशमात्र लिङ्गरूप धारणकर मेरे हृदयसे बाहर निकल आये और बढ़ते-बढ़ते पाँच कोसके हो गये। वे छत्राकार परंज्योतिके रूपमें आकाशमें छा गये, उसी परमज्योतिको वेदोंमें 'काशी' कहा गया है। वह कभी छत्राकार दीख पड़ती है, कभी दण्डाकार, कभी लिङ्गाकार, कभी पिण्डाकार और कभी त्रिकोणके आकारकी नजर आती है। शिवपुराणमें लिखा है कि करुणामय शिवजीने यह विचारकर कि कर्म-पाशमें बँधे हुए जीव मुझे नहीं देख सकेंगे, काशीको अपने त्रिशूलपरसे उतारकर मृत्युलोकमें रख दिया। चन्द्रवंशी राजाओंमें पुरुरवासे पाँचवीं पीढ़ीमें 'काश' नामके एक राजा हो गये हैं। यह भूमि उन्हींके अधिकारमें होनेसे 'काशी' कहलायी और उनके वंशज 'काशिराज'

कहलाये। काशकी छठी पीढ़ीमें राजा दिवोदास हुए, जिन्होंने वाराणसी बसायी।

भगवान् शङ्कर पर्वतराज हिमालयकी कन्याके रूपमें अवतरित साक्षात् जगदम्बा पार्वतीका परिणय कर कैलासमें रहने लगे, किन्तु माता पार्वतीको उनका समुरालमें रहना खटकने लगा। इसलिये उन्होंने शङ्करजीसे कहा कि मुझे अपने घर ले चलो। तब शङ्करजी उन्हें अपने सनातन गृह 'अविमुक्त महाश्मशान' (काशी) में ले आये। भगवान् इसे कभी नहीं छोड़ते, इसीसे इसे अविमुक्त-क्षेत्र कहते हैं। वे कभी यहाँ लिङ्गरूपसे प्रकट होकर रहते हैं और कभी अन्तर्हित होकर, किन्तु इसका त्याग कभी नहीं करते। अन्नपूर्णाको यह उजाड़ श्मशान पसन्द न आया। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि तीन युगोंमें काशी श्मशान रहे और कलियुगमें अन्नपूर्णाकी पुरी होकर बसे। इसीलिये कलियुगमें विश्वनाथकी मूर्ति तिरोहित हो जाती है। इस बार इसके तिरोहित होनेका बाह्य कारण बादशाह औरङ्गजेब हुआ। इस घटनाके बाद कुछ कालतक काशी बिना विश्वनाथकी रही। अन्ततः इन्दौरकी धर्मप्राणा महारानी अहल्याबाईने लखनऊके नवाबसे अनुमति प्राप्तकर पुनर्বার विश्वेश्वरकी स्थापना करवायी।

केदारलिङ्ग

करुणामय भगवान् भवानीपति भक्तजनोंके उद्धारके निमित्त बदरिकाश्रममें ज्योतिर्लिङ्गरूपसे प्रकट हुए और 'केदारेश्वर' कहलाये। ब्रह्मदेवके अपराधसे वह लिङ्गमूर्ति तिरोहित हो गयी और वहाँ केवल पृष्ठ-भागका चिह्न शेष रह गया। पद्मकल्पमें नन्दिकेश्वरकी प्रार्थनासे केदारेश्वर काशी आये; परन्तु वहाँ भी लिङ्ग-मूर्ति गुप्त रहती थी। कभी किसी भक्तको बड़ी तपस्या करनेके बाद कदाचित् दर्शन हो जाया करता था। अन्तमें अयोध्याके महाराज मान्धाताने बहुत बड़ी तपस्या करके श्रीकेदारलिङ्गका दर्शन काशीमें सब लोगोंके लिये सुलभ कर दिया। उस लिङ्गमें केदारजी पन्द्रह कलासे निवास करने लगे और महाराज मान्धाताने उनसे यह वरदान ले लिया कि काशी-केदार-क्षेत्रमें शरीर छोड़ने-वालोंको भैरवी यातना भी न हो। उस समयसे केदार-खण्डमें भैरवी यातना बन्द हो गयी और केदारखण्डकी विश्वेश्वरखण्डसे भी अधिक प्रतिष्ठा हो गयी। वाराणसेय विद्वत्समाजके मुकुटमणि कैलासवासी महामहोपाध्याय पण्डित

शिवकुमारजी शास्त्री तथा ज्योतिर्विदग्रगण्य महामहोपाध्याय पण्डित अयोध्यानाथजीका मकान केदारखण्डकी सीमाके बाहर होनेपर भी उक्त दोनों महानुभाव देहत्यागके समय केदारखण्डमें चले आये थे।

औरङ्गजेबके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि विश्वनाथजीका मन्दिर तोड़नेके बाद उसकी दृष्टि स्वभावतः केदारलिङ्गकी ओर गयी। सुनते हैं, उस समय केदारेश्वर-मन्दिरके समीप ही एक मुसल्मान औलिया रहता था, उसने बादशाहको वहाँ जानेसे मना किया; किन्तु औरङ्गजेबने उसकी एक न सुनी। वह नन्दीके समीप गया और उसपर कटारका वार किया। सुना जाता है कि नन्दीके शरीरसे रुधिरकी धारा वह निकली। जो कुछ भी हो, वह आगे न

बढ़ा; नहीं तो केदारेश्वरके मन्दिरकी भी वही दशा होती, जो आज विश्वनाथजीके प्राचीन मन्दिरकी है।

केदारलिङ्गकी विचित्रता

श्रीकेदारेश्वरजीके नादियेके बाएँ पुठेपर अब भी कटारका निशान बना हुआ है। लिङ्गके सम्बन्धमें काशी-केदार-माहात्म्यमें लिखा है कि महाराज मान्धाताने मूँगी की खिचड़ी पकायी थी, वही पाषाणरूपमें परिणत हो गयी। उस खिचड़ीमें रेखा करके राजर्षिने अतिथिका भाग अलग कर दिया था। वह रेखा आज भी उक्त लिङ्गमें वर्तमान है और कपूर आदिके तीव्र प्रकाशमें लिङ्गमें मूँगी दालकी आभा प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ती है।*

भगवान् श्रीएकलिङ्ग

(लेखक—ठाकुर श्रीचन्द्रनाथजी माथुर)

प्रारम्भिक परिचय



एकलिङ्गजीका स्थान मेवाड़की वर्तमान राजधानी उदयपुरसे करीब साढ़े तेरह मील उत्तर-दिशामें है। इस बस्तीको 'कैलासपुरी' भी कहते हैं। यह स्थान बहुत प्राचीन है और भारतवर्षमें द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गोंकी भाँति सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस मूर्तिकी स्थापना मेवाड़के महाराणाओंके पूर्वज, गुहिलवंशावतंस महारावल कालभोज† (बाप्पा) ने अपने इष्टदेवके रूपमें वि० सं०

७९१ से ८१० के बीच किसी समय की थी। वे उस समय उसके अति समीप ही नागदामें राज्य करते थे। नागदाके पास ही पहाड़ोंके बीच एक वाँसोंके थूहे (समूह) में यह स्वयम्भू-मूर्ति प्रच्छन्न थी। उसी जंगलमें हारीतराशि नामक एक तपस्वी ऋषि रहते थे। इस मूर्तिका पहले-पहल इन्हींको दर्शन हुआ और ये उस मूर्तिकी पूजा करने लगे। ये हारीतराशि बाप्पाके गुरु थे। इन्हींकी कृपासे बाप्पाको भी मूर्तिके दर्शन हुए और उन्होंने उस स्थानपर एक मन्दिर बनवा दिया। हारीतराशिके द्वारा श्रीएकलिङ्गजीका वर पाकर बाप्पाने चित्तौरपर चढ़ाई कर दी और वहाँके मौर्य-

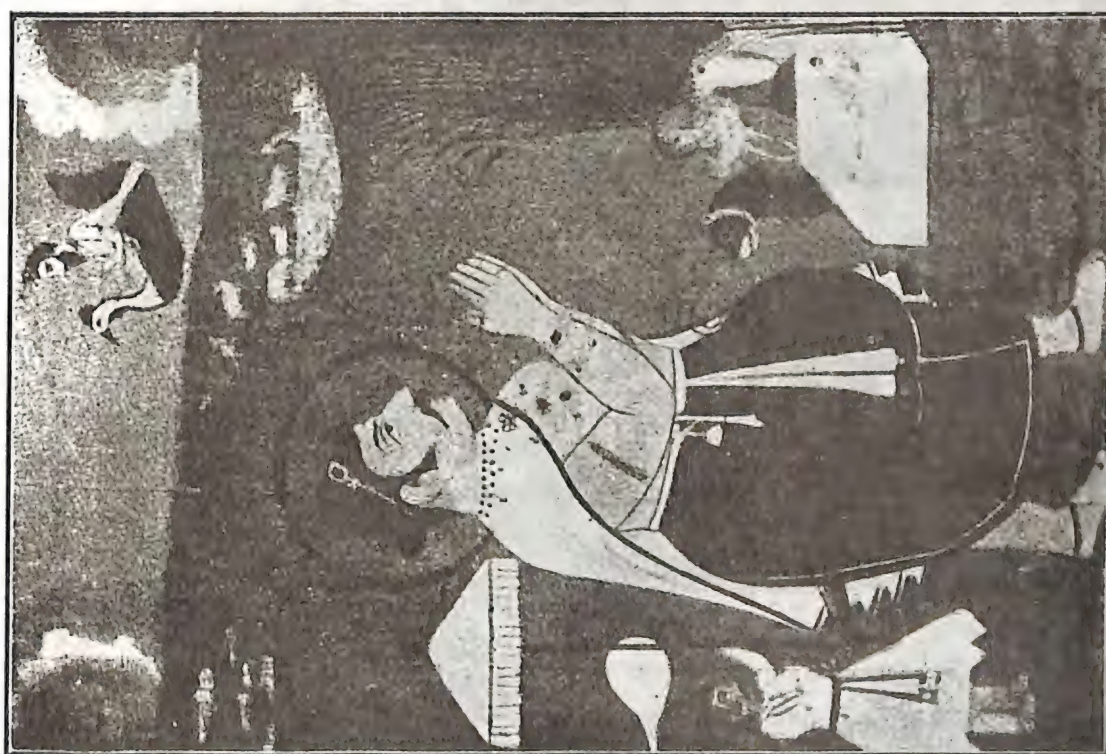
* यह लेख श्रीअच्युत-ग्रन्थमाला, काशीसे प्रकाशित 'काशी-केदार-माहात्म्यम्' नामक भाषानुवादयुक्त ग्रन्थकी भूमिकासे संकलित है। प्राचीन अमुद्रित संस्कृत-ग्रन्थोंको और ज्ञान, भक्ति, सदाचार, कर्मकाण्ड आदि विषयोंके उत्तमोत्तम संस्कृत-ग्रन्थोंको हिन्दी-भाषानुवाद-सहित प्रकाशित कर सस्ते मूल्यमें प्रचार करनेके उद्देश्यसे आदर्श सद्गुणसम्पन्न सेठ श्रीगौरीशङ्करजी गोयनकाके धन और उत्साहसे पूज्यपाद श्रीअच्युतमुनिजी महाराजके नामपर ग्रन्थमालाका कार्य सम्पादित हो रहा है। अबतक ग्रन्थमालासे १० संस्कृतके और ४ हिन्दी-अनुवादसहित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। भक्तिरसायन, ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्य और रत्नप्रभाटीकाका अनुवाद शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। प्रकाशित ग्रन्थोंके नाम-दाम इसप्रकार हैं। संस्कृत—भगवन्नामकौमुदी ॥८॥, भक्तिरसामृतसिन्धु ३), भक्तिरसायन ॥१॥, प्रेमपत्तन १), परमार्थसार १८), प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणि प्रथम भाग २), दूसरा भाग २१), कात्यायन-श्रौतसूत्र ६), शुल्वसूत्र १), तिथ्यर्क १॥), हिन्दी-भाषानुवादसहित—खण्डनखण्डखाद्य २॥१॥, प्रकरण-पंचक ॥१॥, सिद्धान्तविन्दु १॥८॥, काशीकेदारमाहात्म्य २॥१॥। विद्वान् और शास्त्रप्रेमी सज्जनोंको पुस्तकें मँगवाकर पढ़नी चाहिये। पुस्तकें गीताप्रेस, गोरखपुरसे या अच्युतग्रन्थमाला, ललिताघाट, काशीसे मिल सकती हैं।

—सम्पादक

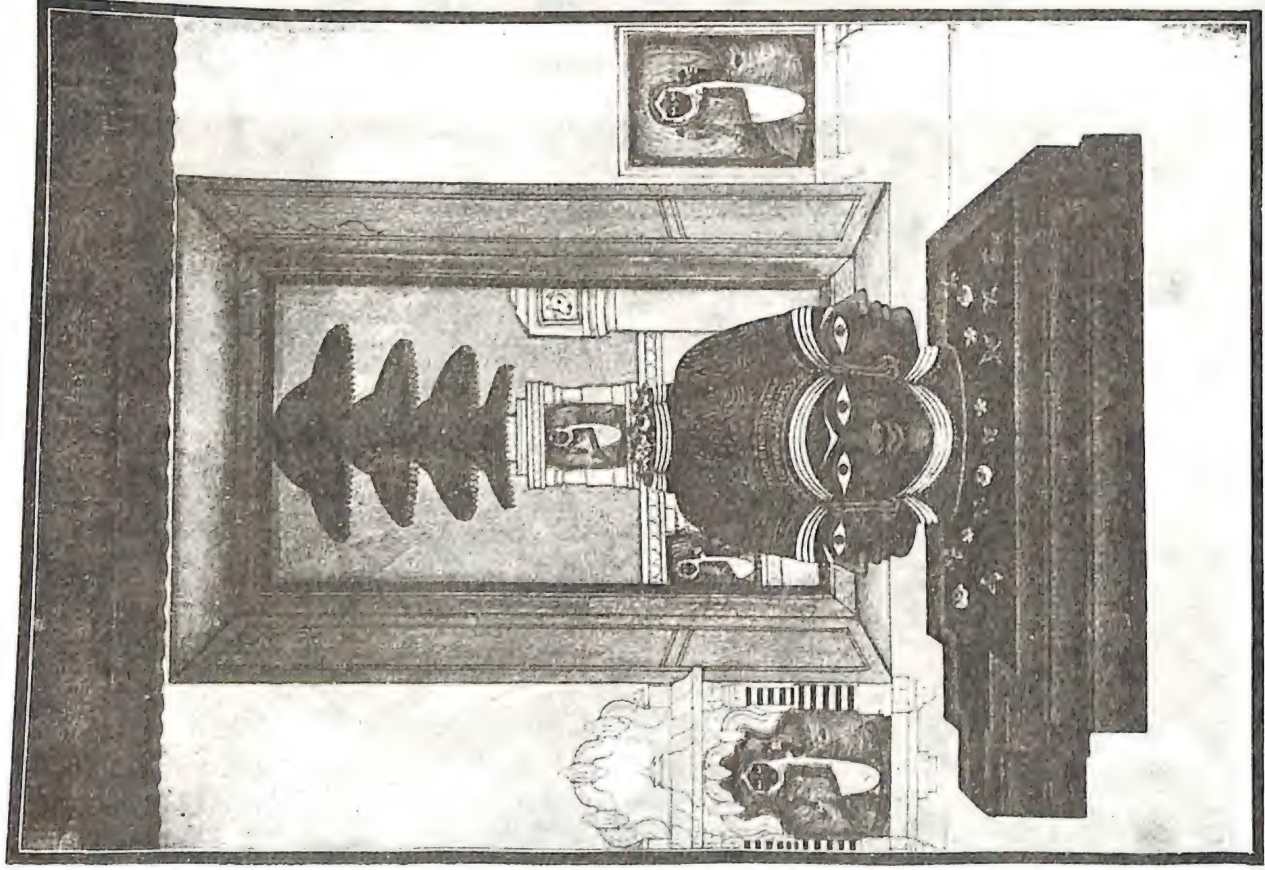
† इस विषयमें प्राचीन जनश्रुति यह है कि बाप्पा बलमीके प्रसिद्ध क्षत्रिय-वंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिता लड़ाईमें शत्रुओंके हाथसे मारे गये। इनकी माता पुष्पावती, जो उस समय गर्भवती थीं और अम्बा भवानोंके दर्शनार्थ इस लड़ाईके पहले ही आयी हुई



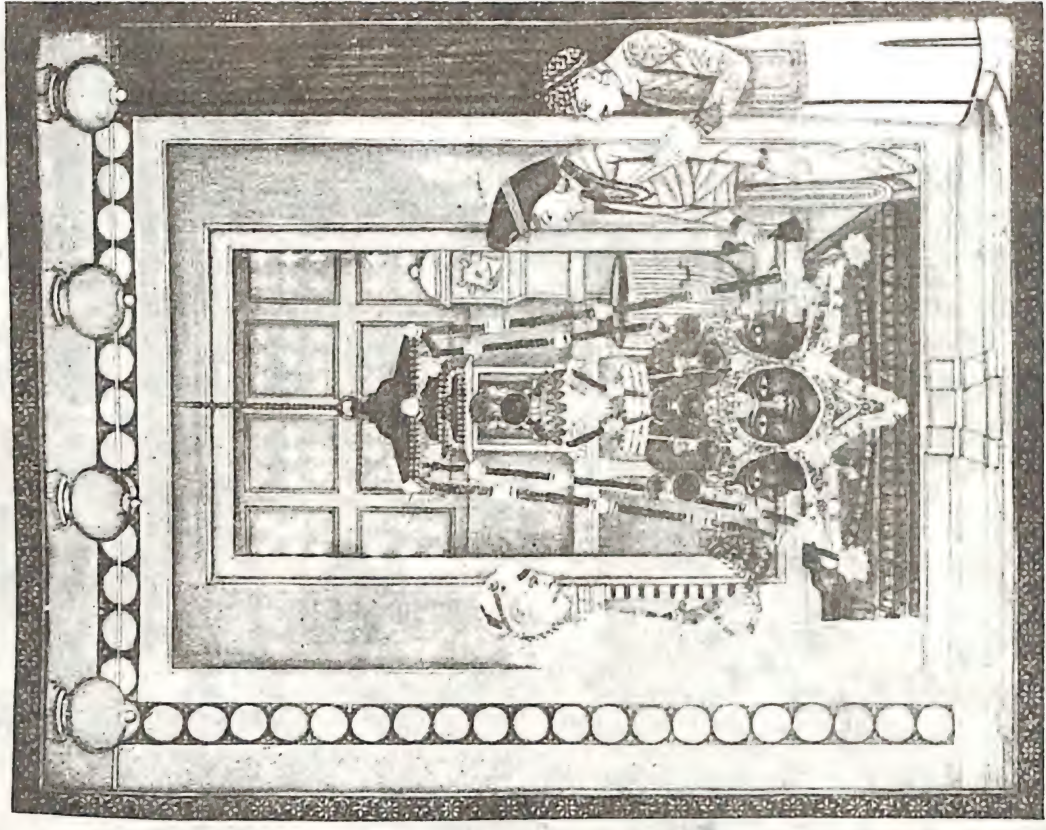
श्री एकलिंग-मन्दिर कैलासपुरी



बाप्पा रावलकी शिवोपासना



श्रीकृष्णजीका भस्मधारण



श्रीकृष्णजीका शृंगार

स्व० महाराणासाहेब आरती कर रहे हैं, वर्तमान महाराणा महोदय हाथ जोड़े खड़े हैं।

वंशी राजा मान (सिंह) को मारकर चित्तौरके दुर्ग तथा राज्यपर अपना अधिकार कर लिया। तबसे आज तक करीब बारह सौ वर्षसे उन्हींके वंशज मेवाड़पर राज्य करते आ रहे हैं। ये लोग अबतक श्रीएकलिङ्गजीको अपना इष्टदेव तथा मेवाड़का अधिपति मानते हैं और अपनेको उनका 'दीवान' प्रसिद्ध करनेमें गौरव समझते हैं। यही कारण है कि महाराणा जब श्रीएकलिङ्गजीका दर्शन करने पधारते हैं तब वे मन्दिरके अहातेसे ही शासनके चिह्नस्वरूप राजवेत्र (सोनेकी छड़ी) को स्वयं कन्धेपर धारण कर लेते हैं। राजकीय ताम्रपत्रों तथा पट्टों—परवानोंपर भी श्रीएकलिङ्गजीका ही नाम दिया जाता है।

मन्दिरपर आपत्तियाँ तथा उसका जीर्णोद्धार

मुसल्मानी शासनकालमें अन्य अनेकों हिन्दू-मन्दिरोंकी भाँति श्रीएकलिङ्गजीके मन्दिरपर भी कई आक्रमण हुए और मेवाड़के महाराणाओंके द्वारा उसकी रक्षा एवं समय-समयपर उसका जीर्णोद्धार भी होता रहा। महाराणा मोकलके राज्यकालमें (वि० सं० १४५४ से १४९० तक) गुजरातका बादशाह अहमदशाह एक विपुल सेना लेकर मेवाड़पर चढ़ आया। उसने जातीय द्वेषके वशीभूत होकर श्रीएकलिङ्गजीके मन्दिरपर भी प्रहार किया। पीछेसे इसका जीर्णोद्धार इन्हीं महाराणाके हाथसे हुआ। इन्होंने मन्दिरको भावी आक्रमणोंसे सुरक्षित रखनेके लिये उसके चारों ओर एक सुदृढ़ कोट भी बनवा दिया।

महाराणा कुम्भाके समयमें भी (वि० सं० १४९० से १५२५ तक) मालवाके बादशाह महमूदशाहने अपनी मेवाड़की चढ़ाईके समय इस मन्दिरको तोड़ा और उक्त महाराणाने इसकी मरम्मत करवायी।

महाराणा कुम्भाके पुत्र उदयकर्णके समयमें (वि० सं० १५२५ से १५३० तक) किसी कारणसे यह मन्दिर गिर गया और महाराणा रायमलने (वि० सं० १५३० से १५६५ तक) इसे दुबारा बनवाया। तबसे यह उसी रूपमें अबतक विद्यमान है।

मन्दिरका भीतरी एवं बाहरी दृश्य

मन्दिर करीब ५० फुट ऊँचा है और इसका व्यास ६० फुटके लगभग है। यह शिखरवन्द, उत्तम, सुदृढ़, सफेद पत्थरका बना हुआ है। श्रीएकलिङ्गजीकी मूर्ति श्याम-पाषाण-निर्मित एवं चतुर्मुख है। इसका एक मुख ब्रह्माका, दूसरा विष्णुका, तीसरा रुद्रका और चौथा सूर्यका है। जलहरीसहित इसकी ऊँचाई लगभग द्वाई-तीन फुट होगी। मन्दिरके दो प्रधान द्वार हैं। पश्चिमीय द्वार सर्वसाधारणके लिये दर्शनार्थ खुला रहता है, तथा दक्षिण-द्वारमेंसे अंग्रेज तथा मुसल्मान आदि अन्यधर्मावलम्बी लोग भी मन्दिरका दर्शन कर सकते हैं; पूर्वीय द्वारके अगल-बगल भीतरकी ओर काली एवं पार्वतीकी छोटी मूर्तियाँ हैं और वायु-कोणमें भीतर ही गणेशजी तथा स्वामिकार्तिकेयकी भी छोटी मूर्तियाँ हैं। परिक्रमामें पूर्वकी तरफ गङ्गाजीकी मूर्ति है और

थी, अपने पतिके खेत रहनेका समाचार सुनकर पहाड़ोंमें नागदा-स्थानपर चली आयी और वहाँ उनके उदरसे तेजस्वी बाष्पाने जन्म लिया। माता उस होनहार बालकको नागदाके सुशर्मा रावल नामक ब्राह्मणको सौंप अपने पतिके पीछे सती हो गयीं। इतप्रकार बाष्पा उस ब्राह्मणके यहाँ संवर्द्धित हुए। जब वे कुछ बड़े हुए तो उनको उस ब्राह्मणकी गाँव चरानेका काम सौंपा गया। उन गायोंमेंसे एक गाय सदा श्रीएकलिङ्गजीकी स्वयम्भू-मूर्तिपर, जो पहाड़ोंके बीच बाँसोंके श्रृंखलेमें प्रच्छन्नरूपसे स्थित थी, अपना दूध छोड़ आती और इसप्रकार वह ब्राह्मण उसके दूधसे वञ्चित रह जाता। सुशर्माने जब यह देखा तो उसे स्वाभाविक ही यह सन्देह हुआ कि हो-न-हो बाष्पा ही उसका दूध दुहकर पी जाता है। बाष्पाको जब यह बात मालूम हुई तो उसे अपने सिरपर व्यर्थका दोष मढ़ा जानेका बड़ा दुःख हुआ और वह सारी बातका पता लगानेके लिये उस गायके पीछे-पीछे रहकर उसपर कड़ी दृष्टि रखने लगा। फलतः दूसरे ही दिन सारा भेद खुल गया। निश्चित समयपर सदाकी भाँति गाय उस बाँसके श्रृंखलेमें घुस गयी और वहाँके स्वयम्भू-लिङ्गके समीप ही बैठे हुए एक साधुने (जो उस लिङ्गका ही अवतार था) अपने खपरमें उसका दूध दुहकर पी लिया। बाष्पाने सारी घटना अपनी आँखसे देखी और मूर्तिके समीप ही एक तपस्वीको सिद्धासन लगाये ध्यानावस्था-में बैठे देखा। तपस्वीका ध्यान भी उधर गया और उन्होंने साधुवेषधारी लोकपावन भगवान् भूतभावनका दर्शन कर अपना जन्म एवं नेत्र दोनों सफल किये। तपस्वीका नाम हारीतराशि था। बाष्पा उसी दिनसे इन तपस्वीको अपना गुरु मानने लगा और उनकी बड़ी भक्तिके साथ सेवा करने लगा। हारीतराशिने भी इस लोकसे प्रयाण करते समय उसकी सेवासे प्रसन्न हो बाष्पाको यह वर दिया कि तू मेवाड़का राजा होगा। कहते हैं, इसी वरदानके प्रभावसे बाष्पाको मेवाड़का राज्य प्राप्त हुआ।

दीवारोंमें पत्थरकी जालियाँ लगी हुई हैं, जिनमेंसे भीतरकी ओर काफी प्रकाश आता है। मन्दिरके बाहर पश्चिम तथा दक्षिण-द्वारकी तरफ कठघरे लगे हुए हैं, जिनके भीतर खास-खास लोग जा सकते हैं। कठघरेके आगे पश्चिमकी तरफ सभा-मण्डप है, जिसमें यात्री स्त्री-पुरुष बैठकर स्वतन्त्रतासे भगवान्‌का दर्शन करते हैं। मण्डपके बीचमें चौंदाका नन्दिकेश्वर बना हुआ है और मन्दिरके बाहर भी पश्चिम तरफ एक पाषाणका तथा छतरीमें एक पीतलका बड़ा नन्दिकेश्वर बना हुआ है। मन्दिरके दक्षिण-द्वारके बाहर अम्बा-माता, कालिका-माता तथा गणेशजीके अलग-अलग मन्दिर हैं। निज-मन्दिरके बाहर पीछेकी तरफ परकोटेमें ही पार्वतीजीकी बावड़ी तथा तुलसीकुण्ड नामके दो सुन्दर पक्के जलाशय हैं और मीराबाईका मन्दिर, सोमनाथ, चारभुजा एवं गणपतिका छोटा मन्दिर आदि कई शिखरवन्द छोटे-बड़े मन्दिर तथा देवलियाँ बनी हुई हैं। इसके सिवा कोठके भीतर कई मकान, बुजें तथा जलाशय आदि हैं। मन्दिरके पास ही इन्द्रसागर (भोडेल) नामका तालाब है, जिसके किनारे कई शिखरवन्द मन्दिर बने हुए हैं। मन्दिरके पीछे ईशान-कोणमें देलवाड़ेके रास्तेपर हारीतराक्षिकी गुफा एवं विन्ध्यवासिनीदेवी तथा भैरवके प्राचीन मन्दिर एवं राज्यकी ओरसे यात्रियोंके लिये बनवायी हुई सराय है। सरायसे थोड़ी दूरपर एक झरना है और उसपर धारेश्वर-महादेवका मन्दिर तथा तक्षककुण्ड है। कहते हैं कि राजा जनमेजयके सर्पयज्ञसे भागकर तक्षकने यहीं आकर अपने प्राण बचाये थे। इस कुण्डके जलका यह प्रभाव है कि सर्पद्वारा काटे जानेपर इसका अञ्जलिभर पानी पी लेनेसे सर्पके विषका प्रभाव जाता रहता है। पास ही बाघेला नामका तालाब है। थोड़ी दूर चलनेपर प्राचीन नागदाकी बस्ती शुरू हो जाती है। यहाँ बाप्पा रावलका समाधिस्थान तथा अनेक प्राचीन मन्दिर हैं जो स्थापत्य-कलाकी दृष्टिसे बहुत सुन्दर हैं। यहाँ अद्भुतजी (शायद जैनमतके शान्तिनाथ) की बहुत बड़ी मूर्ति एवं स्थान है, जो वास्तवमें दर्शनीय है।

पूजा एवं उत्सव

भगवान्‌की दैनिक पूजा वेदविहित एवं तान्त्रिक विधिसे दिनमें तीन बार अर्थात् प्रातःकाल, मध्याह्न एवं सायंकालके समय होती है। श्रीएकलिङ्गजीकी सेवा-सामग्री एवं भोग-

रागके लिये राज्यकी ओरसे करीब एक लाख रुपयेका बजट बना हुआ है, जिससे मन्दिरका सारा खर्च चलता है। इसके अतिरिक्त हर सोमवार तथा प्रदोषको भगवान्‌की विशेष रूपसे सेवा होती है और खास-खास उत्सवोंपर—जैसे श्रावण-शुक्ला १४ को, दीपमालिका तथा अन्नकूटके अवसरपर, मकर-संक्रान्ति, वसन्तपञ्चमी, महाशिवरात्रि एवं चैत्र कृष्ण १३ को (इस दिन भगवान्‌ फाग खेलते हैं) तथा वैशाख-कृष्ण १ को (जिस दिन श्रीएकलिङ्गजीकी स्थापना हुई थी)—विशेष उत्सव मनाया जाता है। इनमेंसे अधिकांश उत्सवोंपर महाराणा साहब स्वयं भगवान्‌के दर्शनोंके लिये पधारते हैं। पाटोत्सवके दिन उदयपुरमें ही विशेष दरबार होता है और बड़ा उत्सव मनाया जाता है।

सदावर्त

श्रीएकलिङ्गजीके स्थानमें दो सदावर्त बारहों महीने जारी रहते हैं, जिनमें एक देवस्थानके भण्डारकी तरफसे है। इसमें आगन्तुक साधु-संन्यासी एवं ब्राह्मणोंको पेटिये (सीधा) दिये जाते हैं। दूसरा सदावर्त उदयपुर-राज्यके भूतपूर्व प्रधान कोटारी केशरीसिंहजीकी तरफसे है। इसमें भी कई पेटिये अभ्यागतोंको सदा दिये जाते हैं।

कुछ और खास बातें

उदयपुरसे श्रीएकलिङ्गजीके स्थानतक पक्की सड़क बनी हुई है, जो नाथद्वारेतक चली गयी है; इसपर मोटर, गाड़ी, ताँगे बख्खी जाते हैं। रास्तेमें यात्रियोंके विश्रामके लिये अम्बेरीकी बावड़ीके पास ही एक धर्मशाला महाराणा शम्भुसिंहजीकी महारानी शालीजीकी बनवायी हुई है।

भगवान्‌को धारण करानेके लिये लाखों रुपयोंकी लागतके रत्नजटित आभूषण हैं, जो विशेष अवसरोंपर धारण कराये जाते हैं।

उदयपुर-राजधानीसे पश्चिम दिशामें पाँच मीलपर एक नान्देस्वर महादेवका स्थान है। निकट ही एक कुण्ड है, जिसका जल सदा एकरस बना रहता है। इसके अतिरिक्त एक और चमत्कारपूर्ण बात यह है कि इस कुण्डमें महादेव-जीका लिङ्ग अपने आप ही चारों ओर घूमता रहता है।



ईरानमें शिवमन्दिर

(लेखक—श्रीमहेशप्रसादजी मौलवी, आलिम-फाजिल)

ईरानका नाम ही फारस या पर्शिया है। यह वह देश है जहाँका अधिकारी मुसलमान है और जहाँकी अधिकांश प्रजा भी मुसलमान ही है। केवल थोड़े-से अन्य मतावलम्बी ईसाई, पारसी और यहूदी हैं। अपनी यात्राके अवसरपर मुझे इन लोगोंके देवालय दिखायी पड़े। पर जिन लोगोंके देवालयोंने मेरा ध्यान सबसे अधिक अपनी ओर खींचा, वे उन हिन्दुओं तथा सिक्खोंके देवालय थे, जो बहुत ही थोड़ी संख्यामें ईरानके अनेक स्थानोंमें हैं। अस्तु, इस अवसरपर केवल एक हिन्दू-मन्दिरका वर्णन दिया जायगा।

ईरानके दक्षिणी भागमें बन्दर अब्बास नामक एक प्राचीन नगर फारसकी खाड़ीके तटपर है। ऐतिहासिक दृष्टिसे इस स्थानकी कुछ कम महत्ता नहीं है, क्योंकि यहीं (अथवा इसके पास ही) यह स्थान है जहाँसे ईरानके प्राचीन और असल निवासी पारसियोंने सातवीं शताब्दीमें अरबके मुसलमानोंके आक्रमणोंसे पीड़ित होकर अपने प्यारे देशको त्यागा और भारतमें शरण ली थी। वर्तमानकालमें भी इस स्थानकी महत्ता बहुत कुछ है। यहाँ ईरानी राज्यके कई बड़े कर्मचारी रहते हैं और इसकी गणना ईरानके प्रधान नगरोंमें है। इसी स्थानमें एक विशाल मन्दिर है।

जब मैं जहाजमें ही था तो मुझे कुछ हिन्दू मिले थे, जो फारसकी खाड़ीमें दुबाई नामक स्थानमें मोतीके व्यापारार्थ जा रहे थे। उन्होंने ही मुझे सबसे पहले इस मन्दिरकी बात बतलाया था। उस समय मैंने समझा था कि कोई छोटा-सा

मन्दिर नाममात्रके लिये होगा; पर जब मैं उस मन्दिरकी ओर जा रहा था तो दूरसे ही उसकी विशालताने मुझपर अच्छा प्रभाव डाला और जब मैं मन्दिरमें पहुँचा तो जो बातें मेरे हृदयमें उत्पन्न हुईं, उनके सम्बन्धमें तो कहा ही क्या जाय ?

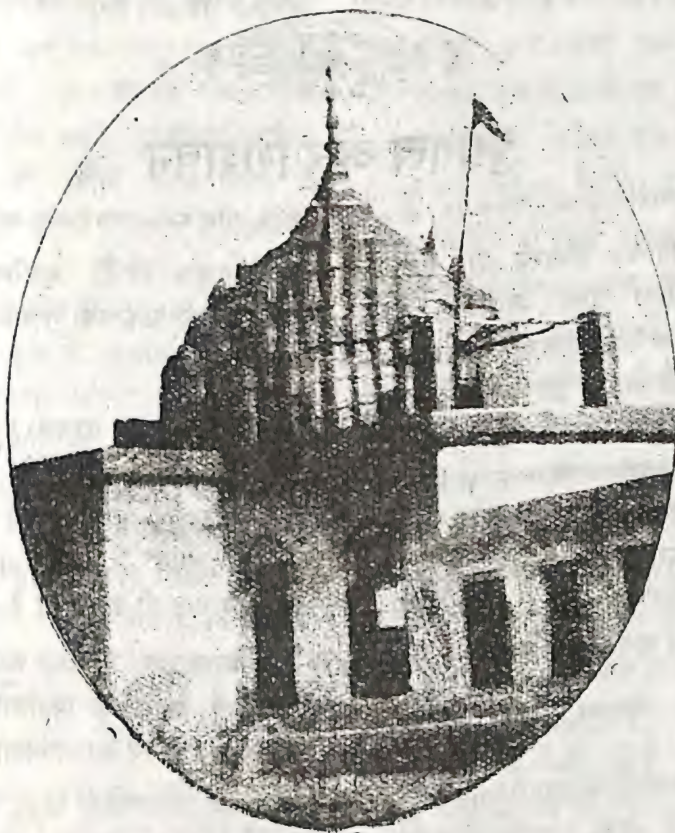
यह मन्दिर बस्तीके बीचमें है। मन्दिर और साथमें लगे हुए गुरुद्वारेकी कुल भूमि लगभग ६ बीघेके है। इसके

चारों ओर मुसलमानोंके ही घर हैं। मन्दिर या गुरुद्वारामें अनेक अवसरोंपर ढोल, शंख और झाँझ आदि बजते हैं; पर वहाँके मुसलमानोंकी ओरसे किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं होती, यद्यपि मुसलमानोंकी संख्या बन्दर अब्बासमें आठ हजारके लगभग है और हिन्दू केवल ६०-७० के ही लगभग हैं।

यह मन्दिर कब बना था ? किसने बनवाया था ? और क्योंकि इसके बननेकी नौबत आयी थी ? इसप्रकारकी बातोंका पता मुझे ठीक-ठीक कुछ नहीं लगा। हाँ, इतना

अवश्य सुननेमें आया कि वहाँ किसी समयमें हिन्दुओं और सिक्खोंकी पलटनें थीं, उन्हींकी बदौलत मन्दिर और गुरुद्वारा-दोनोंकी स्थापना हुई थी। यह मन्दिर कुछ पुराना अवश्य है और केवल मन्दिर ही लगभग १५ हजार रुपयोंकी लागतका जरूर होगा।

मन्दिरका जो चित्र मैंने शुक्रवार १७ मई सन् १९२९ को खींचा था, वही यहाँ दिया जा रहा है। इससे स्पष्ट है कि इसकी बनावट भारतीय शिवालयोंके ढंगकी है। भारतसे ही गयी हुई इसमें शिवजीकी मूर्ति है; पर साथ-ही-साथ कृष्ण-



भगवान्, महावीरस्वामी और जोगमायादेवी आदिकी मूर्तियाँ भी हैं। पास ही गुरुद्वारेमें श्रीगुरुग्रन्थसाहब भी विराजमान हैं। इनमेंसे जब किसी एककी पूजा होती है, तो सभीकी आरती की जाती है। भारतमें इसप्रकार अनेक उपास्यदेवोंका एकत्र होना अच्छा समझा जाय या न समझा जाय; पर वहाँ तो सारे उपास्यदेवोंमें मानों एकता हो गयी है, परस्पर किसी प्रकारका वैर-विरोध नहीं है।

मन्दिर और गुरुद्वारा—सब-का-सब—वहाँ 'हिन्दूवाग्' के नामसे अधिक प्रसिद्ध है। सारा खर्चा वे हिन्दू चलाते हैं जो वहाँ थोड़ी-सी संख्यामें व्यापारार्थ पहुँचे हैं। जिन

दिनों में वहाँ ठहरा था, वहाँ एक सिन्धी महाशय पुजारी थे और एक मुसलमान नौकरानी मन्दिर और गुरुद्वारेके बाहरी भागकी सफाई आदिके लिये थी। हाँ, मैंने अपने कई दिनोंके ठहरनेके समयमें यह भी देखा कि अनेक हिन्दू वहाँ नित्यप्रति आते थे और बड़ी श्रद्धापूर्वक दर्शन करके चले जाते थे। एक दिन एक सज्जनने वहाँ 'कड़ाह-प्रसाद' कराया था। उसमें वन्दर अध्वासके प्रायः सभी हिन्दू सम्मिलित हुए थे और अनेक लोग जिस श्रद्धाके साथ उसमें शरीक हुए थे, उसको मैं कदापि भूल नहीं सकता।



पुरातत्त्व और शिवार्चन

(लेखक—डा० श्रीहीरानन्दजी शास्त्री, एम० ए०, डी० लिट्, एम० ओ० एल०, गवर्नमेण्ट एपिग्राफिस्ट फार इण्डिया)



स विचित्र संसारमें दो प्रकारकी उपासना देखी जाती है, यद्यपि उपास्य देवता एक ही है। उपासक अपने इष्टको या तो पुरुषरूपमें पूजेगा या स्त्रीरूपमें। उपास्य-तत्त्व स्त्री है या पुरुष—यह भक्तके ध्यानपर निर्भर है। परमात्माको चाहे हम 'माँ' कहकर पुकारें अथवा 'पिता' कहकर, वास्तविक तत्त्व एक ही है—'एकं सद्ब्रिषा बहुधा वदन्ति'। कहते हैं कोई शक्तिका उपासक श्रीदुर्गा-सप्तशतीका पाठ करता हुआ—

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

—इस श्लोकार्धमें 'नमस्तस्यै' के स्थानमें 'नमस्तस्मै' पढ़ा करता था। उसकी भूलको किसी पण्डितने ठीक किया। इसपर उसे बहुत दुःख हुआ कि मेरी इतने सालकी पूजा नष्ट हुई। भगवतीने उसे दर्शन दिये और पण्डितको फटकारा कि क्या मैं पुरुष-वेपमें नहीं आ सकती, इत्यादि। इसप्रकारकी कथाओंका भाव यही है जो ऊपर कहा गया है। जिस तत्त्वका परमहंस रामकृष्णने कालीके रूपमें साक्षात्कार किया उसी तत्त्वका श्रीचैतन्य महाप्रभु वृन्दावन-विहारी श्रीश्यामसुन्दरके रूपमें चिन्तन करते थे और उसी तत्त्वको मार्कण्डेयने श्रीशिवरूपमें देखा था। इसी तत्त्वकी उपासना इस विविधतापूर्ण संसारमें विविध रूपमें पायी जाती

है। तत्त्व एक ही है, 'एकमेवाद्वितीयम्', 'नेह नानास्ति किञ्चन।' इस एकताको न समझना ही बल्लेड़ोंका कारण होता है।

प्रायः लोग उस तत्त्वको पुरुषरूपमें ही पूजते हैं, जिससे यही अनुमान होता है कि संसारमें पुरुष-जातिका ही प्राधान्य रहा है, अन्यथा कोई कारण नहीं कि परमात्माको 'माँ' के रूपमें न पूजा जाय। श्रीमद्भगवद्गीतामें तो भगवान्ने स्पष्ट ही कर दिया है—

'पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।'

अन्य जातियोंके उपास्यदेवताओंके विषयमें विचार करनेकी इस समय आवश्यकता ही नहीं है।

वेदोंमें परमात्माकी प्रायः पुरुषरूपमें ही उपासना की गयी है। इन्द्र, वरुण, वायु, विष्णु, रुद्र इत्यादि सब-के-सब नाम पुँल्लिङ्ग-वाचक ही हैं; स्त्री-वाचक उपास्यदेवके नाम थोड़े ही हैं—जोकि 'वागाम्भृणीय' जैसे सूक्तोंमें पाये जाते हैं। इससे यही अनुमान किया जाता है कि प्राचीन आर्य-जाति ईश्वरको प्रायः पुरुषरूपमें ही पूजती थी।

ऋग्वेदमें प्रायः 'देवतानां पत्नीः' इन पदोंका प्रयोग पाया जाता है, परन्तु उस रूपमें नहीं जिस रूपमें ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें पाया जाता है। वरुणानी, इन्द्राणी तथा अम्नायी वरुण, इन्द्र एवं अग्निकी पत्नियाँ ही हैं; तन्त्र अथवा अन्य ग्रन्थोंमें वर्णित शक्तिका स्थान इन्हें प्राप्त नहीं।

प्राणिमात्रमें केवल दो ही शक्तियाँ देखनेमें आती हैं। इनमेंसे एकको 'पुरुषशक्ति' तथा दूसरीको 'स्त्रीशक्ति' कह सकते हैं। इन्हीं दो शक्तियोंसे संसारकी उत्पत्ति तथा वृद्धि होती है। संसारके हास अथवा नाशका कारण भी यही दो शक्तियाँ कही जा सकती हैं। स्थूलरूपमें इन दो शक्तियोंको साधारण मनुष्य जननेन्द्रियके रूपमें व्यक्त कर सकता है। उसकी दृष्टिमें यही दोनों इन्द्रियाँ सृष्टिमें प्रधान हैं, अतः इन्हींको वह पूजाई अथवा उपास्य समझ लेता है। जिसने जिसे उपास्य समझा उसने उसीकी उपासना पकड़ ली। स्त्री-चिह्न अथवा पुरुष-चिह्नकी उपासना इन्हीं विचारोंपर निर्भर है। कई एक विद्वान् कहते हैं कि 'योनि-पूजा' सबसे प्राचीन है। अन्य विद्वान् 'लिङ्ग-पूजा' को ही सर्वप्रथम मानते हैं और अपने विचारोंके समर्थनमें 'शिवदेवाः'-जैसे शब्दको, जो वेदोंमें पाया जाता है, उपन्यस्त करते हैं, चाहे इसका अर्थ शिशुपरायण अर्थात् विषयलम्पट ही हो। हमारे विचारमें सबसे पहले पुंस्त्व अर्थात् पुरुषत्व (Male Principle) अथवा पुंलिङ्गकी अर्थात् 'शिव'-पूजा ही प्रचलित हुई होगी। उपास्यदेवकी मूर्ति अथवा प्रतिमा प्रायः स्थिरता अथवा दृढ़ताकी दृष्टिसे पाषाणकी ही बनायी जाती है। जिस प्रतिमामें कोई विशिष्ट आकार नहीं दीख पड़ता, पूजनेवाले अब भले ही उसे 'पुरुष'-शक्तिका चिह्न न समझें—परन्तु इस उपासनाका मूल यही प्रतीत होता है। पीछे स्त्रीशक्तिका भी प्राधान्य समझमें आनेपर उस शक्तिका पूजन भी चल पड़ा। जिन्होंने दोनोंकी प्रधानताका अनुभव किया उन्होंने दोनोंको उपास्य समझा। यह देखकर कि 'पुरुष' अर्थात् 'ईश्वर' विना शक्तिके अथवा स्थूल शब्दोंमें, स्त्री अर्थात् भार्याके कुछ भी नहीं कर सकता, उन्होंने दोनोंकी अर्चना प्रारम्भ कर दी। यही नहीं, उन्होंने यहाँतक कह डाला कि शिवरूप शब्दका 'इ' अर्थात् शक्तिके साथ संयोग होनेपर ही उसकी 'शिव' संज्ञा होती है, इन्हीं विचारोंसे 'देवी' की पूजा प्रधानरूपसे की जाने लगी। अर्धनारीश्वरका ध्यान भी, जिसमें इन दो शक्तियोंका पूर्णरूपसे योग पाया जाता है, इन्हीं विचारोंका परिणाम है। यह ध्यान हमारे यहाँ शिवकी आराधनामें पाया जाता है। प्राचीन मिश्र-देशमें भी इस रूपकी पूजा होती थी।

जहाँतक हमारा अनुमान है देवी अथवा शक्तिकी पूजा पीछेसे ही चली होगी। अतएव प्राचीनतम मन्दिरोंमें

'देवी' की प्रतिमा मन्दिर-निर्माण-कालकी नहीं मिलेगी। हिन्दू अथवा संस्कृत आर्य-जातिके मन्दिरोंको छोड़ अन्य जातियोंके पूजागारोंमें यही बात देखनेमें आती है। मोहन-जो-दड़ोंमें जो भग्नावशेष मिले हैं, उनमें पुंस्त्व-पूजनके चिह्न बहुत मिले हैं।

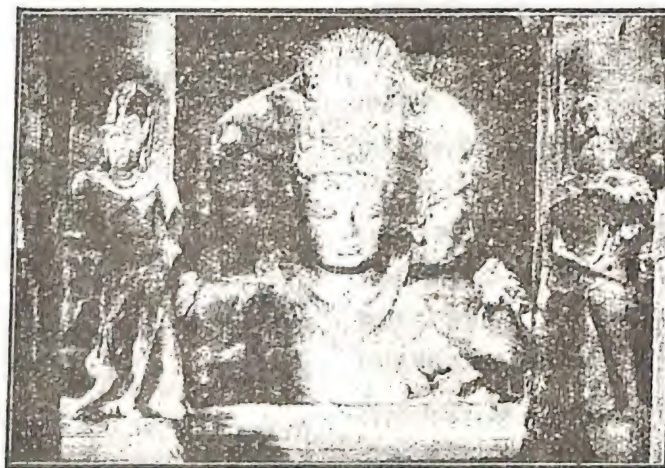
इन सब बातोंपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि जननात्मक शक्तिकी अर्चना अति प्राचीनकालसे चली आती है। इसी अर्चनाका कहीं-कहीं गँवारू-ढंगसे वर्णन किया गया है, जिसे पढ़-सुनकर कभी-कभी जुगुप्सा उत्पन्न होती है। शिवपुराण एवं लिङ्गपुराणकी कई एक कथाएँ इसी प्रकारकी हैं। यदि इनपर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाय तो स्फुटतया इस बातका पता लगेगा कि उनके अश्लील अंशको छोड़कर, जहाँतक सृष्टि-रचनाका सम्बन्ध है, प्राणि-मात्रमें यही लीला निरन्तर हो रही है। साधारणतया शिव-मन्दिरोंमें जो चिह्न अथवा मूर्तियाँ स्थापित होती हैं, उनसे इसी भावका व्यक्त करना अभीष्ट है। कोई भी हिन्दू इन मूर्तियों अथवा चिह्नोंको उपासना करते समय बुरी दृष्टिसे नहीं देखता। जिनका इस वास्तविक तत्त्वकी ओर ध्यान होगा वे उपहास कर भी कैसे सकते हैं? वे तो उनके अन्दर ईश्वरीय लीलाका दर्शन करेंगे। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो पूजोपहार करना ही अपना एकमात्र धर्म समझते हैं। शेष जन तो छिट्छानेपी होते ही हैं, जो प्रत्येक उपासनामें दिखली और हँसी-ठट्ठेकी सामग्री पाते हैं।

हम ऊपर लिख आये हैं कि हमें तो शिव-मन्दिर ही प्राचीनतम दृष्टिगोचर हुए हैं। जननात्मक शक्तिका ही नाम यदि 'शिव' रख लें तो कोई हानि नहीं होती। यद्यपि शिवके और भी अनेक रूप हैं, तथापि उनका जननात्मक कर्म ही मुख्य है। उत्पत्ति होगी तभी तो पालन-पोषण होगा और तत्पश्चात् मरण। जननमें ही कल्याण है—शिव है। जनन, मरण और मरण—इन त्रिविध अवस्थाओंसे युक्त ईश्वरको ही 'सदाशिव' कहते हैं। इसी एक शक्तिके त्रिविध रूपको 'त्रिमूर्ति' (Trinity) भी कहते हैं और इसी एक तत्त्वमें 'एकोऽहं बहु स्याम्' की उक्ति भी चरितार्थ होती है। जब मनुष्य एक तत्त्वका ध्यान करता है तब वह एकमुखलिङ्गकी अर्चना करता है अथवा अर्ध-नारीश्वरका ध्यान करता है। द्विधारूपमें वह शिव-पार्वतीकी उपासना करता है, त्रिधारूपमें सदाशिवका और

बहु रूपमें पञ्चमुखका ध्यान करता है। शिवकी प्राचीनतम मूर्ति जिसका निर्माणकाल हम निश्चितरूपसे कह सकते हैं, लखनऊके संग्रहालयमें रक्खी हुई है, इसकी प्रतिकृति हम अलग यहाँ छापते हैं। इससे प्राचीन देव-प्रतिमा जिसका निर्माणकाल हम ऐसे ही दृढ़ निश्चयके साथ बतला सकें, हमें ज्ञात नहीं है। साधारण विम्बोंको छोड़कर यह प्रतिमा प्रायः साढ़े चार हाथ ऊँची है और इलाहाबाद-प्रान्तके भीटा-ग्राममें कई वर्ष हुए मिली थी। इसका ऊर्ध्व-भाग पुरुष-शरीरके ऊपरी भाग (bust) का-सा है, बायें हाथमें एक वर्तन या भुङ्गार (सुराही) है, दक्षिण हस्त अभय-मुद्रामें उठा हुआ है। इस ऊर्ध्वकाय (bust) के नीचे प्रत्येक कोणमें एक मनुष्यके सिरकी-सी प्रतिमा है जो स्यात् स्त्रीके ऊर्ध्वकायकी द्योतक है। केशोंका परिष्कार और कर्णकुण्डल यही सूचित करते हैं। इनके ऊपरकी प्रतिमा पुरुष-प्रतिमा है और नीचेका भाग पुंस्त्व-चिह्न (Phallus) का द्योतक है। चार स्त्रियोंके ऊर्ध्वकायकी प्रतिमा चारों



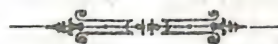
भीटा में प्राप्त पञ्चमुखी शिव-प्रतिमा



एलिफेण्टा त्रिमूर्ति-सदाशिव

दिशाओंकी स्त्रीत्व-शक्ति (Female Energy) की द्योतक हो, ऐसी कल्पना की जा सकती है और ऊपरका भाग एवं नीचेका खण्ड मिलकर जननशक्ति (Male Principle) का सूचक है, ऐसा माना जा सकता है।

इसकी बायीं ओर दो पंक्तियोंमें विक्रमकी पहिली शताब्दीकी लिपिमें लिखा हुआ एक लेख है जो हमें यह बतलाता है कि यह लिङ्ग वासिष्ठीके बेटे नागश्रीने स्थापित किया था। सदाशिवकी एक प्रायः अद्वितीय प्रतिमा बम्बईके समीप एलिफेण्टा-द्वीपमें विद्यमान है जिसकी प्रत्येक विद्वान्ने मुक्तकण्ठसे स्तुति की है। इसकी भी प्रतिकृति यहाँ छपी हुई है। अहा, कैसी अद्भुत छटा है! बीचवाला शीर्ष ब्रह्मा अथवा सृष्टिकर्ताका आकार समझिये। दक्षिणका विष्णु और बायें हाथका संहारकर्ता रुद्रका द्योतक है। इस विचित्र मूर्तिको देखते हुए उस त्रिविध शक्तिमय ईश्वरका ध्यान करनेसे कल्याण-ही-कल्याण होगा।



काशीमें अत्यन्त प्राचीन शिव-मठ

(लेखक—पं० श्रीवागीश शिवाचार्यजी)

यस्य स्मरणमात्रेण नृणां मुक्तिः करस्थिता । तं वन्दे जगदाधारं विश्वाराध्यं जगद्गुरुम् ॥



ह कम आश्चर्यकी बात नहीं है कि भारतके सुप्रसिद्ध क्षेत्र श्रीकाशीजीमें आर्यजातिके प्राचीन (शिलालेख आदि) चिह्न नहींके बराबर हैं। दक्षिणके किसी भी क्षेत्रमें देखिये तो आपको ऐसे अनेकों चिह्न मिलेंगे जिनसे ऐतिहासिक खोजमें काफी सहायता मिल सकती है। हो सकता है कि शत्रुओंके आक्रमणसे काशीके बहुत-से प्राचीन चिह्न लुप्त हो गये हों, फिर भी यदि खोज की जाय तो इस प्राचीन नगरीमें कुछ-न-कुछ महत्वपूर्ण प्राचीन चिह्न अवश्य प्राप्त होंगे। हमें आश्चर्य है कि 'सारनाथके इतिहास' की भाँति अभीतक 'काशीके इतिहास' की ओर अन्वेषकों की दृष्टि क्यों नहीं गयी। अस्तु ! यहाँ हम 'कल्याण' के पाठकोंको काशीके एक अति प्राचीन मठका परिचय कराना चाहते हैं।

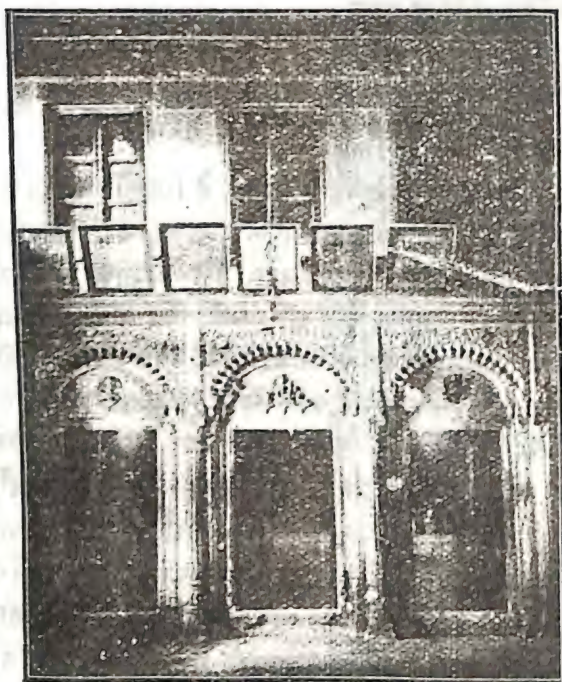
इस युगके आदिमें श्री १००८ जगद्गुरु विश्वाराध्य शिवाचार्य महाराजने संसारके कल्याणार्थ श्रीविश्वनाथलिङ्गके गर्भसे आविर्भूत होकर काशीमें एक ज्ञानसिंहासन नामक स्कन्दगोत्रीय गद्दीकी स्थापना की, जिससे कलिमलसन्तत-जनोके दुःख दूर होते हैं। श्रीविश्वाराध्यजी त्रिकालदर्शी और सकलविद्याधिपति थे। तभी तो आपके कार्य अभीतक अविच्छिन्नरूपसे चले आ रहे हैं। हमारे दुर्दैवसे आपके 'प्रस्थान-त्रयभाष्य' अभीतक उपलब्ध नहीं हुए हैं, फिर भी—

विश्वाराध्यादयस्तु अस्यामुपनिषदि दहरोपासना-विषये नारायणोपासकस्वशिवोपास्यस्वनिर्णये सहस्र-शीर्षानुवाकगतनारायणं परं ब्रह्मतत्त्वं नारायणः पर इत्यादि वचनानि विरुद्धेरजिति मा शङ्किष्ठाः ।

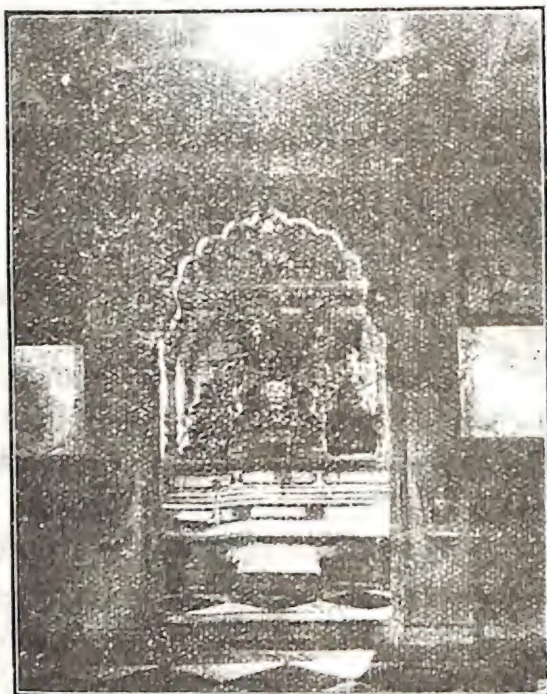
—इस उद्धरणसे श्रीविश्वाराध्यकृत 'महानारायणोपनिषच्छै-वभाष्य'† का पता अवश्य लगता है। पीठस्थ वंशावलीसे पता चलता है कि आप कलिके आदिमें ग्यारह सौ वर्षतक गद्दीपर विराजते रहे। आपके बाद श्रीजगद्गुरु मल्लिकार्जुन शिवाचार्य भी तीन सौ ग्यारह वर्षतक जीवित रहे। इन्हींके समयमें यह प्रसिद्ध और विशाल मठ (जंगमबाड़ी)

जिसका परिचय हम दे रहे हैं, बना है। जहाँ श्रीविश्वाराध्यके अनुग्रहसे आपका पट्टाभिषेक हुआ था, वहीं 'कैलास-मण्डप' नामक भव्य मण्डप बना, जो अबतक काशीमें अपने ढंगका अनोखा है। इतिहासके विद्वानोंका कहना है कि इस मण्डपका पत्थर दो हजार वर्षसे इधरका नहीं हो सकता। इस मण्डपके दक्षिणमें श्रीगुरुजीकी तपोभूमि है, जिसे 'गादीस्वामी' कहते हैं। इन दोनों स्थानोंका पत्थर बहुत ही जीर्ण-शीर्ण हो गया है, जिसे ऊपरसे जहाँ-तहाँ चूना-सिमेंट आदिका पलस्तर कराकर सुरक्षित रखा गया है। कैलासमण्डपके एक खम्भेमें श्रीमल्लिकार्जुन शिवाचार्यकी एक मूर्ति भी उसी समयकी खोदी हुई जान पड़ती है। श्रीमल्लिकार्जुन बड़े प्रभावशाली थे। श्रीविश्वाराध्यके प्रथमशिष्य होनेके कारण उन्हींकी व्यवस्था आजतक कायम है। अबतक उस कैलासमण्डपमें ही (ज्ञानसिंहासनपर) सब आचार्योंका पट्टाभिषेक होता है और सभी आचार्य 'मल्लिकार्जुन' नामवाले होते हैं। यद्यपि अंग्रेजी राज्यके प्रारम्भ होनेके बादसे व्यावहारिक नाम भी अब पाँच-छः आचार्योंके लिये रूढ़ हो गया है, तथापि समस्त व्यवहारोंमें 'मल्लिकार्जुन' उपनाम भी लगता ही है। इनके बादके अस्सी आचार्योंमें दूसरे आचार्य एक सौ चौदह वर्ष, चौथे एक सौ एक वर्ष, पाँचवें एक सौ पच्चीस वर्ष और इक्यावनवें एक सौ इक्कीस वर्ष गद्दीपर आसीन रहे। इन सभी आचार्य-चरणोंका एकमात्र कार्य यही रहा है कि देश-देशान्तरोंका भ्रमण करते हुए भक्तोंको उपदेश दे उनका उद्धार करते रहें तभी तो इन आचार्योंमेंसे बहुतोंके शरीर काश्मीर, नेपाल, हिमालय, आसाम, मलयाचल, सौराष्ट्र आदि सुदूर स्थानों या जंगल और नदियोंमें छूटे हैं। ये सबके-सब महातपस्वी और उदार हुए हैं। आधुनिक आचार्योंमेंसे उनासीवें जगद्गुरु श्रीहरीश्वर महाराज शापानुग्रहशक्तिसम्पन्न, महायोगी एवं परमदयालु थे। इनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें शान्तिका वास था। अस्सीवें आचार्य श्रीवीरभद्र महाराज बड़े समर्थ योगी थे, इन्होंने अपने समयमें भक्तोंसे आचार-विचारका बड़ी तत्परताके साथ पालन करवाया था। जंगम-बाड़ीकी प्रजाके साथ-साथ काशी नगरके कितने ही अन्य

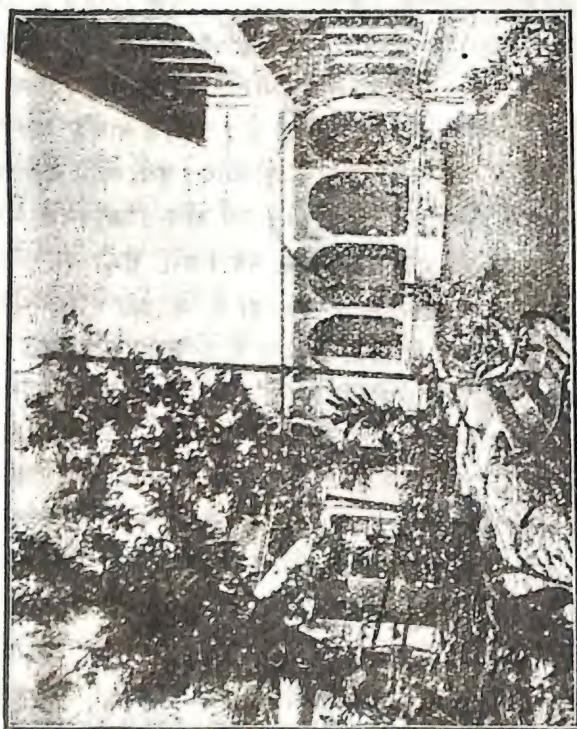
* बौद्धोंको छोड़कर । † सिकन्दराबादमें मुद्रित ।



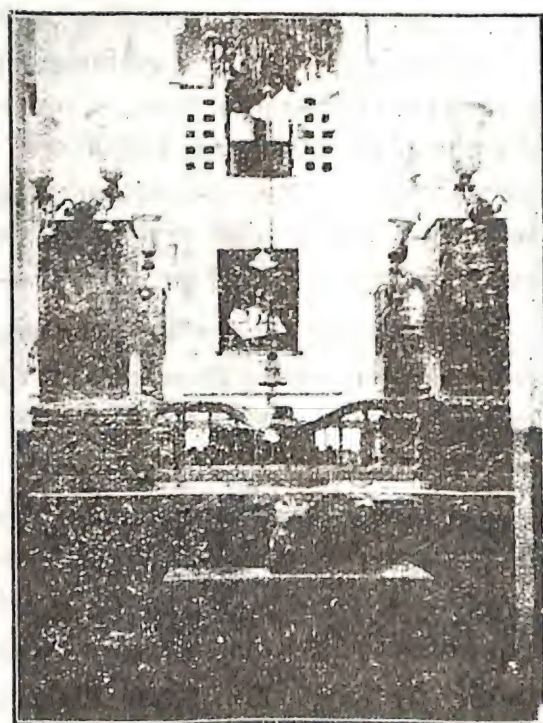
जङ्गमवाड़ी पूर्वाचार्योंकी समाधिस्थली



जङ्गमवाड़ी विश्वाराध्यकी तपोभूमि



जङ्गमवाड़ीका प्रांगण



जङ्गमवाड़ी कैलासमण्डपमें ज्ञानसिंहासन

लोग भी इनक इशारेपर चलते थे। गद्दीकी विखरी हुई सम्पत्ति-की भी इन्होंने समुचित व्यवस्था की। इक्यासीवें आचार्य श्रीराजेश्वर महाराज महादानी योगी थे। आपके पास आकर याचकलोग कभी विमुख नहीं लौटते थे। आप बड़े तपोनिष्ठ थे। अखिल भारतीय योगिमण्डलके 'योगी' नामक पत्रके आरम्भमें ही आपका चित्र दिया गया है। ब्यासीवें आचार्य श्रीशिवलिङ्ग शिवाचार्य महाराजका अभी डेढ़ वर्ष पूर्व देहावसान हो चुका है। आपके समयमें गद्दीकी व्यवस्था आदिके कार्योंमें अनेक अड़चनें आती रहीं, पर आप धैर्यपूर्वक सबको बड़ी आसानीसे पार करते रहे। आपका अधिकांश समय शिवपूजामें ही व्यतीत होता था। सन् १९११ के प्रसिद्ध दिल्लीदरबारमें सरकारकी ओरसे आपका बड़े टाट-बाटके साथ जुलूस निकाला गया था। वर्तमान आचार्य श्रीजगद्गुरु पञ्चाक्षर शिवाचार्य महाराज तिरासीवें आचार्य हैं।

कहा जाता है कि काशीका श्रीविश्वनाथजीका मन्दिर पहले इस गद्दीके ही अधीन था; परन्तु पीछे औरङ्गजेब-द्वारा उसके भ्रष्ट किये जानेपर जब उसे महाराणी श्री-अहल्याबाईने फिरसे बनवाया तबसे वह स्मार्तोंके अधिकारमें चला गया है। विश्वनाथजीके बगलमें अन्नपूर्णाजीके सामने भी इस गद्दीकी जमीन थी, जो हालहीमें दूसरोंको दे दी गयी है। साक्षीविनायक और मनकामेश्वर-मन्दिरपर गद्दीकी अब भी काफी जमीन है। 'जंगमवाड़ी' नामक करीब छःसौ पचास घरोंकी बस्तीका एक विशाल मुहल्ला और तीन सौ घरोंका 'मानससरोवर' नामक पवित्र स्थान इस मठके ही अधीन है। जंगमपुर नामक विशाल क्षेत्र हालहीमें हिन्दूविश्वविद्यालयके आधीन हुआ है। इसके अतिरिक्त बनारस जिलेके बारह ग्राम भी गद्दीकी जमींदारीमें हैं।

विक्रम सं० ६३१ में 'जयनन्द' नामक काशी-नरेशने

इस गद्दीको एक 'गोचरभूमि' भेंट की थी और इसका दानपत्र (भोजपत्र) अत्यन्त जीर्ण हो जानेके कारण स्वर्गीय काशीनरेश श्रीमहाराजा प्रभुनारायणसिंहने इसे नये सिरेसे ताम्रपत्रपर अपने हस्ताक्षर और विश्वासिके सहित लिखवाकर वि० सं० १९८२ में इसका उद्धार कर दिया है। इस गद्दीका एक शाखामठ जंगमवाड़ीके नामसे नेपाल-राज्यके भातगाँवमें भी है, जिसकी मर्यादा दरबारकी ओरसे सुरक्षित है; और यहाँ भी विक्रम सं० ६९२ का एक शिलालेख है, जिसमें लिखा है कि 'काशीके शिव श्रीजङ्गममलिकार्जुन गुरुजीने यहाँकी नष्टप्राय शिवभक्तिको पुनरुज्जीवित किया था, जिसके उपलक्ष्यमें नेपालके विश्वमल्ल नृपतिने एक मठ और विपुल भूमि भेंट की।' अत्यन्त आश्चर्यकी बात तो यह है कि बाबर, हुमायूँ, औरङ्गजेब (आलमगीर) आदि मुसलमान बादशाहोंके भी दानपत्र या सनदें इस स्थानमें हैं। जिन्हें इस बातपर विश्वास न हो वे 'वीरशैवेन्दुशेखर' नामक सचित्र पुस्तकको पढ़ें, जो हालहीमें संस्थानकी ओरसे प्रकाशित हुई है। इसके अतिरिक्त मैहर और मैसूर-महाराजाओंके भी दानपत्र मौजूद हैं। मैसूर-राज्यकी ओरसे प्रतिमास पचास रुपयेकी पूजा मिलती है। प्रयागके गङ्गातीरपर भी गद्दीका एक शाखामठ है और दक्षिणमें इस गोत्रके उपाचार्य तथा शिष्योंके बहुत-से भठ हैं, जिनकी स्थापनाका उद्देश्य सनातनवर्णाश्रमधर्मकी रक्षा ही है।

यहाँके विश्वाराध्य-गुरुकुलमें दक्षिणदेशके वीरशैव विद्यार्थी सदा अध्ययन करते और सहायता पाते आ रहे हैं। शिवपुरी काशीके इस प्राचीन और पवित्र मठका परिचय प्राप्तकर किसको आनन्द नहीं होगा! इस मठके कुछ मुख्य-मुख्य चित्र भी प्रकाशित किये जा रहे हैं।

'शिवं भूयात्'

मोह नहीं होगा

अरे काम वेकाम ! धनुष टंकारत तरजत ।

तू हू कोकिल ! व्यर्थ बोल काहेको गरजत ॥

तैसे ही तू नारि वृथा ही करत कटाछै ।

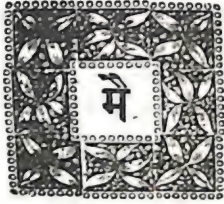
मोहि न उपजै मोह छोह सब रहिगो पाछै ॥

चित्त चन्द्रचूड़के चरनको, ध्यान-अमृत बरसत हिते ।

आनन्द अखण्डानन्दको ताहि अमृत-सुख ? क्यों हिते ॥

मैसूरराज्यके शिव-मन्दिर

(लेखक—श्रीयुत डा० एम० एच० कृष्ण, एम० ए०, डी० लिट् (लन्दन), अध्यक्ष, पुरातत्त्वविभाग, मैसूर
श्रीमान् महाराजा साहब मैसूरकी आज्ञासे)

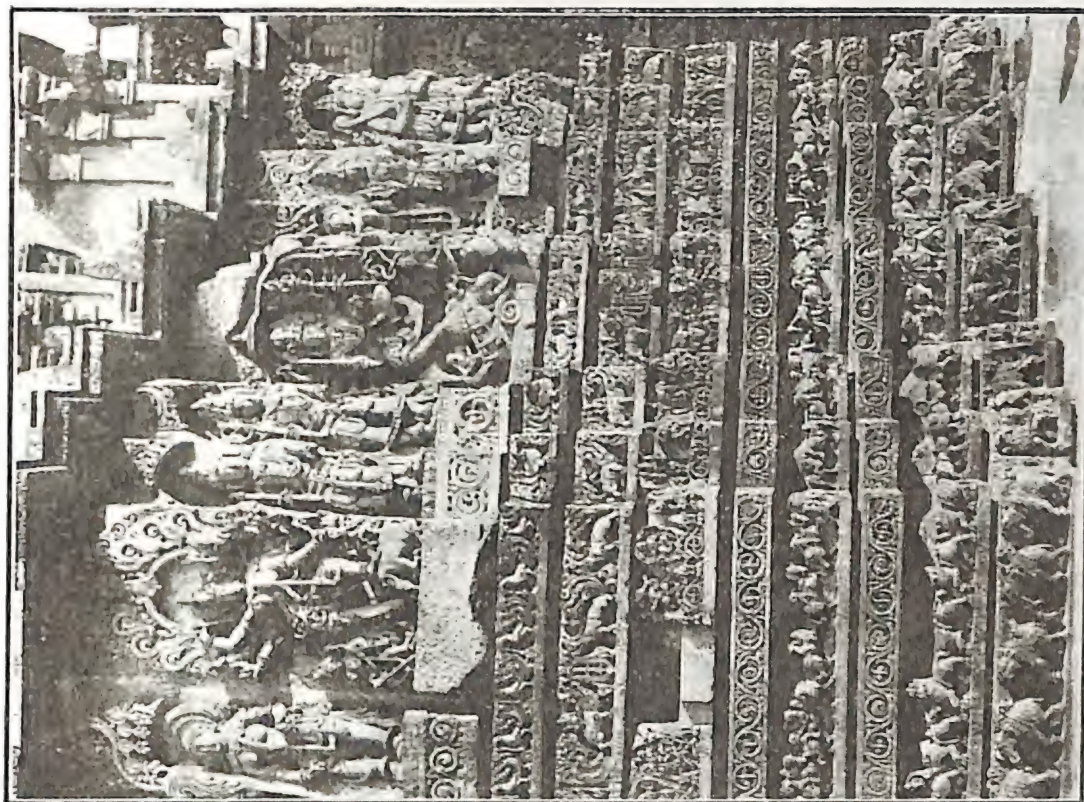


मैसूरराज्य स्थापत्य-कलाके सुन्दर नमूनों-के लिये प्रसिद्ध है। शिवमन्दिरोंकी संख्या तथा सौन्दर्यमें भी यह भारत-के किसी अन्य प्रान्तसे कम नहीं है। ये मन्दिर विगत १५०० वर्षोंके अन्दर इतिहासके भिन्न-भिन्न युगोंमें बने हुए हैं। इनकी रचनाशैली दो प्रकारकी है, एक तो द्रविडदेशकी और दूसरी चालुक्यकालकी। विशेषकर हॉयसल (Hoysala) वंशके राजाओंके कालमें बहुत-से मन्दिरोंका निर्माण हुआ। उस समय बहुत-से लोग अपने-अपने नामसे मन्दिर बनवाकर उनमें शिवजीकी प्रतिमा स्थापित कर देते थे, जिससे उनका नाम अमर एवं पवित्र हो जाय। उदाहरणतः कोरवङ्गल (Koravangala) नामक स्थानके वृक्षेश्वर, गोविन्देश्वर एवं नागेश्वर महादेवके मन्दिर तथा अर्सिकेरे (Arsikere) का कर्त्तमेश्वरका मन्दिर इसी उद्देश्यसे बने हुए हैं।

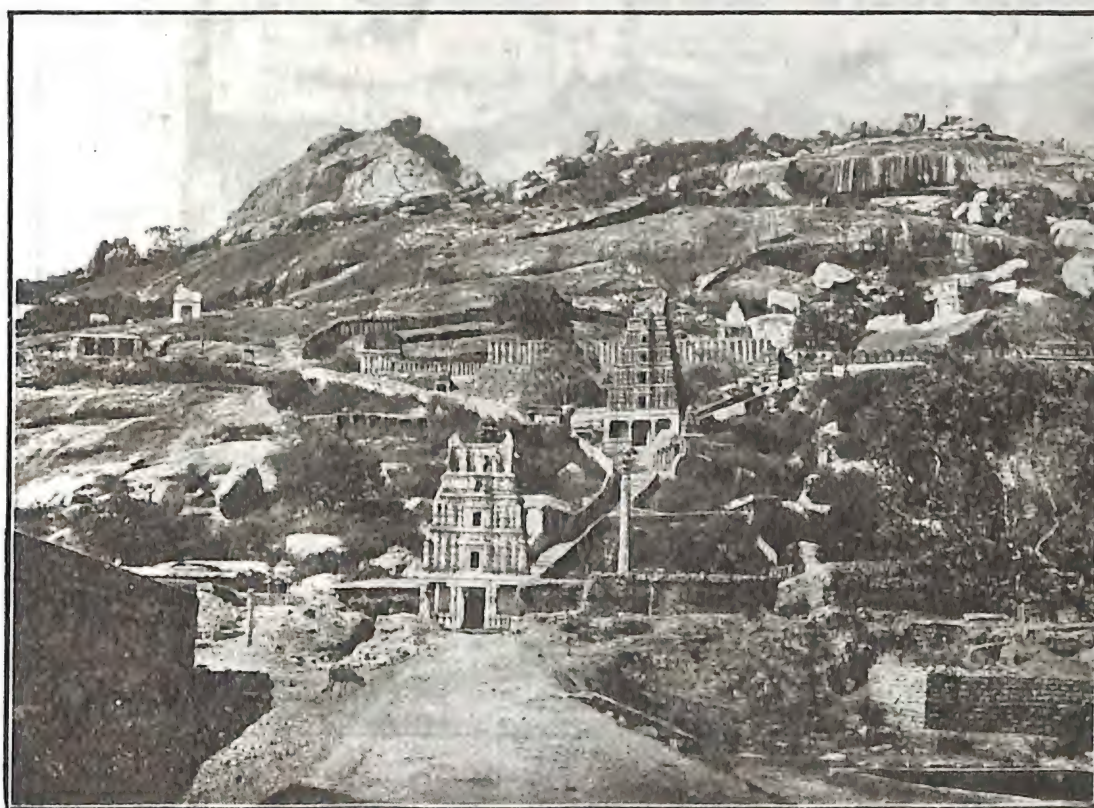
किन्तु उस समय इन मन्दिरोंसे भगवान् विष्णुका बहिष्कार नहीं किया जाता था। सच पूछिये तो ऐसा नियम-सा हो गया था कि किसी भी शिवालयमें जबतक विष्णु-भगवान्का मन्दिर न हो तबतक वह अधूरा ही समझा जाता था। इसप्रकारका भाव उस देशमें बहुत प्राचीन-कालमें ही परिपक्व हो गया था। हरिहरकी युगल-मूर्तिका—जिसमें हरि और हरकी समानता प्रदर्शित की गयी है—विकासका मूल भी यही है। सन् १२२४ ई० के एक शिलालेखमें निम्नलिखित आशयके वाक्य खुदे हुए मिले हैं—गीतकीर्ति भगवान् शिवने श्रीविष्णुका विग्रह स्वीकार किया और भगवान् विष्णुने श्रीशिवकी महिमान्वित एवं प्रसिद्ध मूर्ति धारण की। इसप्रकार रूपविनिमयमें उनका हेतु यही था कि उनकी एकताके प्रतिपादक वेदवाक्य पूर्णतया चरितार्थ हों। शिमोगा (Shimoga) जिलेके तालगुण्ड (Talagunda) नामक स्थानमें एक प्रणवेश्वर महादेवका मन्दिर है, जो राज्यभरके विद्यमान शिवमन्दिरोंमें सबसे प्राचीन है। मन्दिरके सामने ईसासे लगभग ४०० वर्ष

पीछेका कदम्बवंशके राजाओंका एक शिलालेख है, जिससे यह पता लगता है कि ईस्वी सन्की दूसरी शताब्दीमें भी शातकर्ण तथा दूसरे राजालोग इस प्रतिमाकी पूजा किया करते थे। ईस्वी सन्की पाँचवीं शताब्दीमें कदम्बवंशके राजाओंमें असली प्राचीन मन्दिरके सामने एक गोपुरका निर्माण करवाया और आगे चलकर मन्दिरके भवनका और भी विस्तार हुआ। मन्दिर विल्कुल सादे ढंगका बना हुआ है। उसके अन्दर केवल एक गर्भगृह (निजमन्दिर) तथा सुखनासी (?) है और गर्भगृहके अन्दर एक भग्न शिवलिङ्ग है, जो शुरूमें लगभग ६ फीट ऊँचा रहा होगा।

नन्दी (Nandi) नामक स्थानमें एक भोगनन्दीश्वर महादेवका मन्दिर है। उसके अन्दर तथा समीपमें जो शिलालेख हैं उनसे यह पता चलता है कि इस मन्दिरका निर्माण चोल तथा हॉयसलवंशके राजत्वकालमें हुआ था। उसके दक्षिण ओर अरुणाचलेश्वर महादेवका मन्दिर है और इन दोनों मन्दिरोंके बीचमें एक छोटा-सा मन्दिर और है, जो इन दोनोंका माध्यम बना हुआ है। हालेबिद (Halebid) का हॉयसलेश्वर महादेवका मन्दिर भी ठीक इसी ढंगपर बना हुआ है और दोनोंके सामने दो नन्दीमण्डप भी हैं। हॉयसलकालके मन्दिरोंकी भाँति इसमें भी गर्भगृह, सुखनासी और नवरङ्ग—ये तीन स्थान बने हुए हैं और पत्थरकी जाली लगी हुई है। भोगनन्दीश्वरके मन्दिरमें चोलवंशके एक राजाकी उन्हींके समयकी गढ़ी हुई प्रतिमा भी स्थापित है, जो एक विशेषताको बतलाती है। चोलवंशके नरेशोंने दक्षिणमें शैवमतका प्रचार करनेकी बहुत कुछ चेष्टा की और आगमान्त (?) शैवग्रन्थोंमें राजेन्द्रचोलके सम्बन्धमें यह उल्लेख मिलता है कि उन्होंने तोण्डई (Tondai) तथा चोल-मण्डलों (जिलों) में गोदावरीतीरवासी अनेक शैवोंको लाकर बसाया। नवरङ्गकी छातके मध्यभागमें शिव-पार्वतीकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। केवल उनके वाहन बदले हुए हैं अर्थात् शिवके वाहनपर पार्वतीजी विराजमान हैं और पार्वतीजीके वाहनपर शिवजी सवार हैं। शिव-पार्वतीकी धातुमयी प्रतिमाएँ, जो आजकल बीचवाले उमा-महेश्वरके



श्रीहयलेश्वर-मन्दिर—होलेविद
पुरातत्त्व-विभाग, मैसूरकी कृपासे



श्रीशिव-गंगा

पुरातत्त्व-विभाग, मैसूरकी कृपासे

कल्याण



श्रीहायलेस्वर शिवगौरीमूर्ति

मन्दिरमें विद्यमान हैं, पहले इसी मन्दिरमें प्रतिष्ठित थीं। उमा-महेश्वरके मन्दिरके सामने एक विशाल कल्याणमण्डप है, जो काले रंगके पत्थर (संगमूसा) का बना हुआ है। उसके अन्दर चार विचित्र स्तम्भ हैं, जो हाथकी सफाई तथा कलाकी बारीकीके नमूने हैं। जिस कालकी यह कारीगरी है, उसमें ये सारी बातें विशेषरूपसे पायी जाती हैं। इतस्ततः दोनों मन्दिरोंके भीतर तथा उनकी बाहरी दीवारोंके चारों ओर ताण्डवेश्वर, भैरव, वीरभद्र, शिव-पार्वती-विवाह आदि शिवजीकी अनेक लीलाओंकी मूर्तियाँ हैं। इनमेंसे कई मूर्तियाँ बड़ी ओजपूर्ण हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि शिल्पकारने रूढ़ि तथा नियमोंकी परवा न कर प्राकृतिकताका ही अनुसरण किया है। प्राकार (परकोटे) में भी दो मन्दिर हैं। उनमेंसे एकके अन्दर 'प्रसन्न पार्वती' की पाँच फुट ऊँची एक भव्य मूर्ति है। नन्दीका मन्दिर द्राविड़ी नमूनेके मन्दिरोंमें सबसे सुन्दर है और उसकी गणना मैसूरराज्यके सबसे प्राचीन मन्दिरोंमें है। इस मन्दिरके सम्बन्धमें जो सबसे प्राचीन लेख मिलता है वह नोलम्ब-वंशके राजा नोलम्बाधिराजके समय (नवीं शताब्दी) का है। उसमें लिखा है कि वाणवंशके राजा वाणविद्याधरकी धर्मपत्नी रत्नावलीने इसे बनवाया था। राष्ट्रकूटके राजा तृतीय गोविन्द (७९४-८१४) ने इस मन्दिरके लिये सन् ८०६ ई० में जागीरें प्रदान की थीं। और नन्दीमण्डपमें कई चोलकालीन शिलालेख हैं, जो ग्यारहवीं शताब्दीमें खोदे गये थे।

हॉयसलोंके बनवाये हुए शिवमन्दिरोंमें हालेविदका हॉयसलेश्वर महादेवका मन्दिर सबसे अधिक प्रसिद्ध है और अनेकों प्रकाशित ग्रन्थोंमें विशेषज्ञोंने इस मन्दिरका वर्णन किया है। इसका आदिम भवन सन् ११२१ में बना था, जैसा कि पहले कहा जा चुका है; इसकी बनावट भोगनन्दीश्वरके मन्दिरकी-सी है और भोगनन्दीश्वरकी तरह इसके सामने भी दो नन्दीमण्डप हैं। मन्दिरके चार द्वार हैं, उनमेंसे प्रत्येकके ऊपरी भागमें ताण्डवेश्वरकी सुन्दर मूर्तियाँ बनी हुई हैं और उनके दोनों ओर मकरतोरण हैं जिनपर बहुत मेहनत की हुई है। मन्दिरका दक्षिण-द्वार कलाकी दृष्टिसे सबसे उत्तम है। हॉयसलराज अपने महलसे आकर जो मन्दिरसे कुछ दूर दक्षिण-पश्चिमकी ओर था, इसी द्वारसे प्रवेश किया करते थे। खम्भोंके ऊपर हाथी, शेर तथा पौराणिक घटनाओंकी बहुत-सी सुन्दर मूर्तियाँ बनी हुई हैं

और उनके अतिरिक्त बाहरी दीवारोंपर चारों ओर अनेकों मूर्तियाँ बनी हैं, जिनमें शिवजीके भी अनेकों स्वरूप हैं। इस मन्दिरको हॉयसल-कालकी तक्षण-कलाका सङ्ग्रहालय (Museum) कहा गया है, जो बिल्कुल ठीक है। शृङ्गेरीका विद्याशङ्कर महादेवका मन्दिर, जो सन् १३५६ ई० के कुछ समय बाद बना था, कदाचित् राज्यभरके द्राविड़ी नमूनेके मन्दिरोंमें सबसे अधिक सुन्दर है। उसकी बनावट अपने ढंगकी निराली है। उसके दोनों किनारे उभरे हुए हैं; जिन्हें देखकर मौर्यकालीन बौद्धचैत्यों तथा कालें, अजन्ता, कन्हेंडी आदिकी गुफाओंका स्मरण हो आता है। दक्षिण-भारतके कई मन्दिरोंकी भाँति उसका मुख भी पूर्वकी ओर है तथा उसके अन्दर गर्भगृह, सुव्रनासी, परिक्रमा तथा नवरङ्ग—ये चार स्थान बने हुए हैं। नवरङ्गमें तीन द्वार हैं जो पूर्व, उत्तर और दक्षिणकी ओर खुलते हैं। इस मन्दिरकी बाहरी दीवारों खम्भोंपर भी सुन्दर बेलबूटे तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके दृश्य खुदे हुए हैं, जिनमेंसे कुछ शिव-सम्बन्धी पुराणोंके आधारपर बनाये गये हैं। बड़ी मूर्तियोंमें शिवजीके भैरव, उमामहेश्वर, ताण्डवेश्वर आदि कई स्वरूपों तथा कालसंहार, सोमस्कन्द, त्रिपुरासंहार इत्यादि अनेक लीलाओं एवं लिङ्गपूजाकी भी कई मूर्तियाँ हैं। शैवप्रतिमा विज्ञानके अध्ययनके लिये विद्याशङ्करके मन्दिरमें जितनी मूर्तियोंका सङ्ग्रह है उतना राज्यके किसी दूसरे मन्दिरमें नहीं है। सुन्दर गगनचुम्बी मीनारके मुखभागके ऊपर शिवजीकी एक कोरी हुई मूर्ति है। मन्दिरके भीतरी भागमें, जो बाहरी भाग जैसा ही सुन्दर है, एक ताण्डवेश्वरकी मूर्ति है। उसके चारों ओर एक तेजोमण्डल है और दाहिनी ओर गङ्गाजी हाथ जोड़े जटाओंपर विराजमान हैं। यह मूर्ति मद्रास तथा सीलोन (लङ्का) के नटराज-विग्रहोंसे कारीगरीकी सुन्दरता अथवा भाव-भङ्गीमें उन्नीस नहीं है। (देखिये M. A. S. 1916 Plate)। अरल-गुधी नामक स्थानके ईश्वर-मन्दिरकी छातमें बनी हुई नटराजकी मूर्ति भी बहुत सुन्दर है। यह गङ्गपल्लवकालमें बनी थी। गर्भगृहमें स्थापित शिवलिङ्गको शृंगेरी-पीठके सबसे बड़े आचार्य स्वामी विद्यातीर्थके नामपर 'विद्याशङ्कर' कहते हैं। विजयनगरके आदिम राजा इन महात्माका बहुत अधिक मान करते थे।

शिवगङ्गा नामक सुरम्य पर्वतशिखरको, जिसे स्थल-पुराणमें 'ककुद्गिरि' कहा गया है, दक्षिणकी काशी कहते हैं।

पर्वतके उत्तरी ढालपर गङ्गाधरेश्वर और होन्नादेवीके मन्दिर हैं। ये मन्दिर बड़ी-बड़ी गुफाओंको काटकर बनाये गये हैं। गङ्गाधरेश्वरका मन्दिर तो एक बहुत बड़ी गुफा है। इसके ऊपर एक बड़ी चट्टान रखी हुई है, जो छतका काम देती है, तथा मन्दिरके चारों ओर छोटी-छोटी गुफाएँ हैं। गुफाके भीतर और द्वारके ठीक सामने हरि-हर, भैरव, गुणातीत, महिषमर्दिनी, ताण्डवेश्वर एवं शिव-पार्वती आदि कई शिवमूर्तियाँ हैं। मन्दिरकी चल मूर्ति, जो यात्रा आदिमें बाहर निकाली जाती है, घातुकी बनी हुई है। इसके एक तरफ गङ्गाजी हैं और दूसरी तरफ पार्वतीजी। नन्दीमण्डपके एक खम्भेपर खुदे हुए लेखसे ज्ञात होता है कि विष्णुवर्धनके

सामन्त विष्णुसामन्तने इस मन्दिरका निर्माण बारहवीं शताब्दीमें कराया था। चामराजनगरमें द्राविड़ी ढंगका बना हुआ चामराजेश्वरका एक विशाल मन्दिर है। उसे सन् १८२६ ई० में तृतीय कृष्णराज वोडियरने अपने पिता चामराज वोडियरकी स्मृतिमें बनवाया था। उत्तरकी ओरके मन्दिरोंमें शिवजीकी पचीस लीलाओंकी मूर्तियाँ हैं, जिनमेंसे कई तो बहुत ही सुन्दर बनी हुई हैं।

मैसूरराज्यमें शिवमन्दिरोंका बनवाना बन्द नहीं हो गया है। वर्तमान शताब्दीमें भी अगणित छोटे-छोटे मन्दिर बने हैं, यद्यपि स्थापत्य-कलाकी दृष्टिसे उनमेंसे कोई भी अधिक महत्त्वका नहीं है।

दक्षिण-भारतके प्रधान शिव-मन्दिर

(लेखक—श्रीयुत जी० आर० जोशियर, एम० ए०, एफ० आर०, ई०, एस०, मैसूर)

शैवोंमें एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

धिग्भस्मरहितं फालं धिगू ग्राममशिवालयम्।

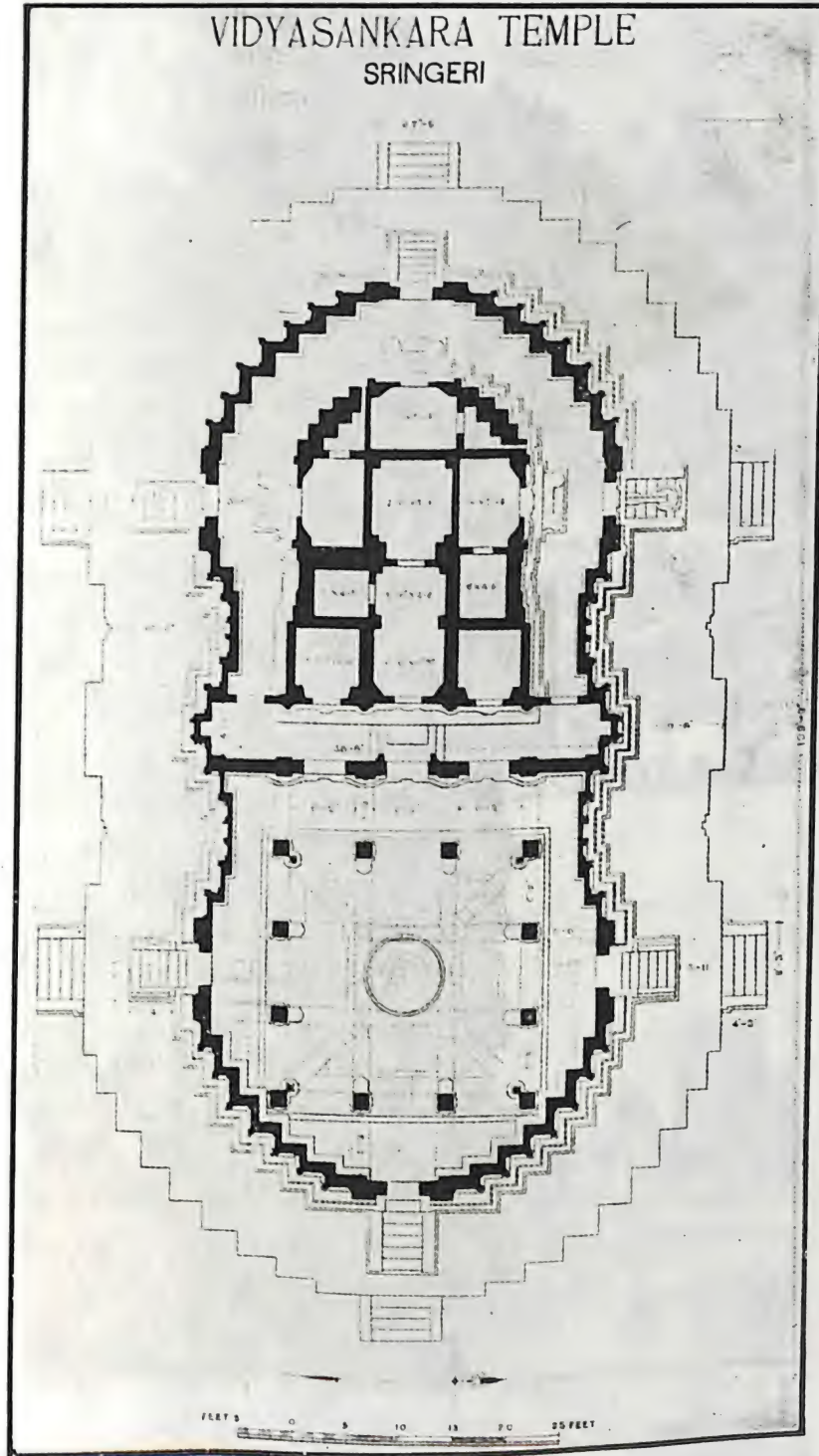
अर्थात् लानत है उस मस्तकको, जो भस्मसे सुशोभित न हो, वह गाँव किस कामका जहाँ शिवालय न हो ?

यों तो दक्षिण-भारतके प्रायः प्रत्येक हैसियतदार गाँवमें कोई-न-कोई शिवालय अवश्य है, जिसके भोग-रागका प्रबन्ध गाँवके भक्तलोग ही करते हैं किन्तु थोड़े-से स्थान उस प्रान्तमें ऐसे हैं जिनके द्वारपर सैकड़ों वर्षोंसे सारा शैव-जगत् मस्तक टेकता चला आ रहा है। इन स्थानोंमें, जहाँके प्राकृतिक सौन्दर्यको मानवीय स्थापत्य-कला ने द्विगुणित कर दिया है, विश्वान्तर्यामी शिवकी भक्तिरूप दिव्य ज्योति सदा जगमगाती रहती है। यही कारण है कि दूर-दूरके यात्री वहाँ प्रतिवर्ष खिंचे हुए चले आते हैं। इन स्थानोंमेंसे कुछके नाम ये हैं—कुम्भकोणम्, तञ्जोर, मदुरा, चिदम्बरम्, पालनी, श्रीशैलम्, और रामेश्वरम्। यों तो दक्षिण-भारतके प्रत्येक भागमें देवालय प्रचुर संख्यामें पाये जाते हैं, किन्तु मद्रास-प्रान्तके तञ्जोर जिलेमें जितने देवालय हैं उतने और किसी भागमें नहीं पाये जाते। प्रान्तभरके मन्दिरोंमेंसे करीब-करीब आधे मन्दिर अकेले इस जिलेमें हैं और नगरोंमें इस दृष्टिसे कुम्भकोणम्का स्थान सर्वप्रथम है। प्राचीन चोलवंशीय राजाओंकी राजधानी काञ्चीवरम् (काञ्ची) में भी इतने देव-मन्दिर नहीं हैं, जितने कुम्भकोणम्में हैं।

कुम्भकोणम्में १२ शिव-मन्दिर हैं, जिनमें विश्वनाथ, कुम्भेश्वर, सोमेश्वर, नागेश्वर, गौतमेश्वर और वाणेश्वरके मन्दिर प्रधान माने जाते हैं। विश्वनाथजीके मन्दिरके समीप ही 'महामलम्' नामका जलाशय है, जिसे लोग भगवती भागीरथीका प्रतिनिधि मानते हैं और इसीलिये वहाँ 'महामलम्' नामक पर्वके दिन, जो प्रति बारहवें वर्ष आता है, दस लाखसे ऊपर यात्री इकट्ठे होते हैं। कुम्भेश्वरका मन्दिर सबसे विशाल है। उसके अन्दर ३३० फुट लम्बा एक शिवजीका नटमन्दिर है और १२८ फुट ऊँचा एक गुम्बज है। दूसरा प्रधान मन्दिर नागेश्वरका है, जिसका गर्भगृह गुम्बजके आकारका बना हुआ है। उसके अन्दर भगवान् भुवनभास्करकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

कुम्भकोणम्से थोड़ी ही दूरपर तिरुवडमरुथर, दारेश्वरम्, तिरुनागेश्वरम्, तथा स्वामि-मल्लेके मन्दिर हैं जहाँ बहुत यात्री जाते हैं। ये सब मन्दिर उत्तम स्थापत्य-कलाके नमूने हैं। स्वामि-मल्लेके मन्दिरमें देवताओंके सेनानी, शिवजीके पराक्रमी पुत्र, श्रीसुब्रह्मण्यदेवकी प्रतिमा है। कुम्भकोणम्से उत्तरकी ओर श्रीशैलपर्वत है जहाँ महिकार्जुन नामका ज्योतिर्लिंग प्रतिष्ठित है। 'वीरशैव' मतके पञ्चाचार्योंमेंसे एक जगद्गुरु पण्डिताराध्यकी उत्पत्ति इसी लिङ्गसे मानी जाती है।

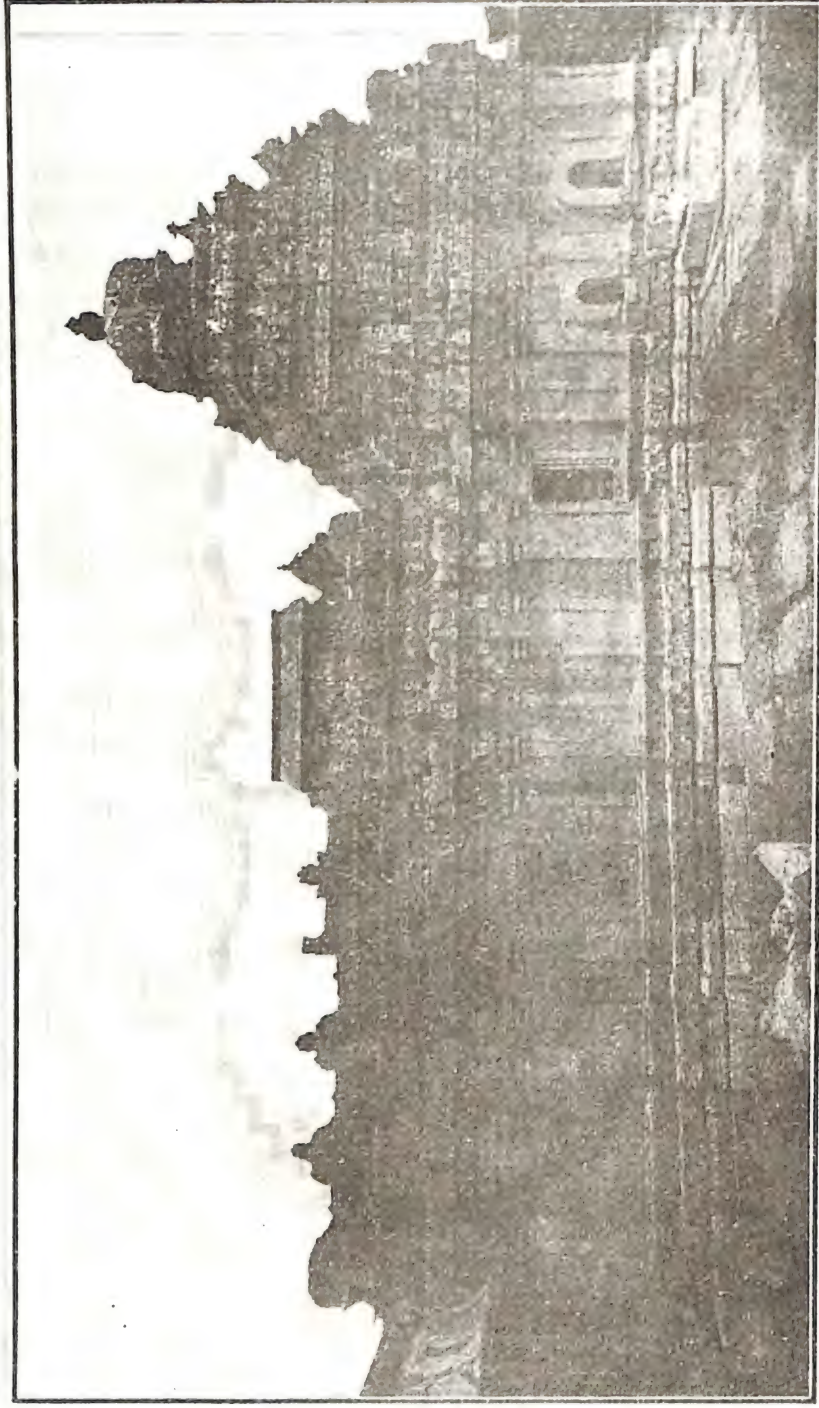
कल्याण



विद्याशंकर-मन्दिर

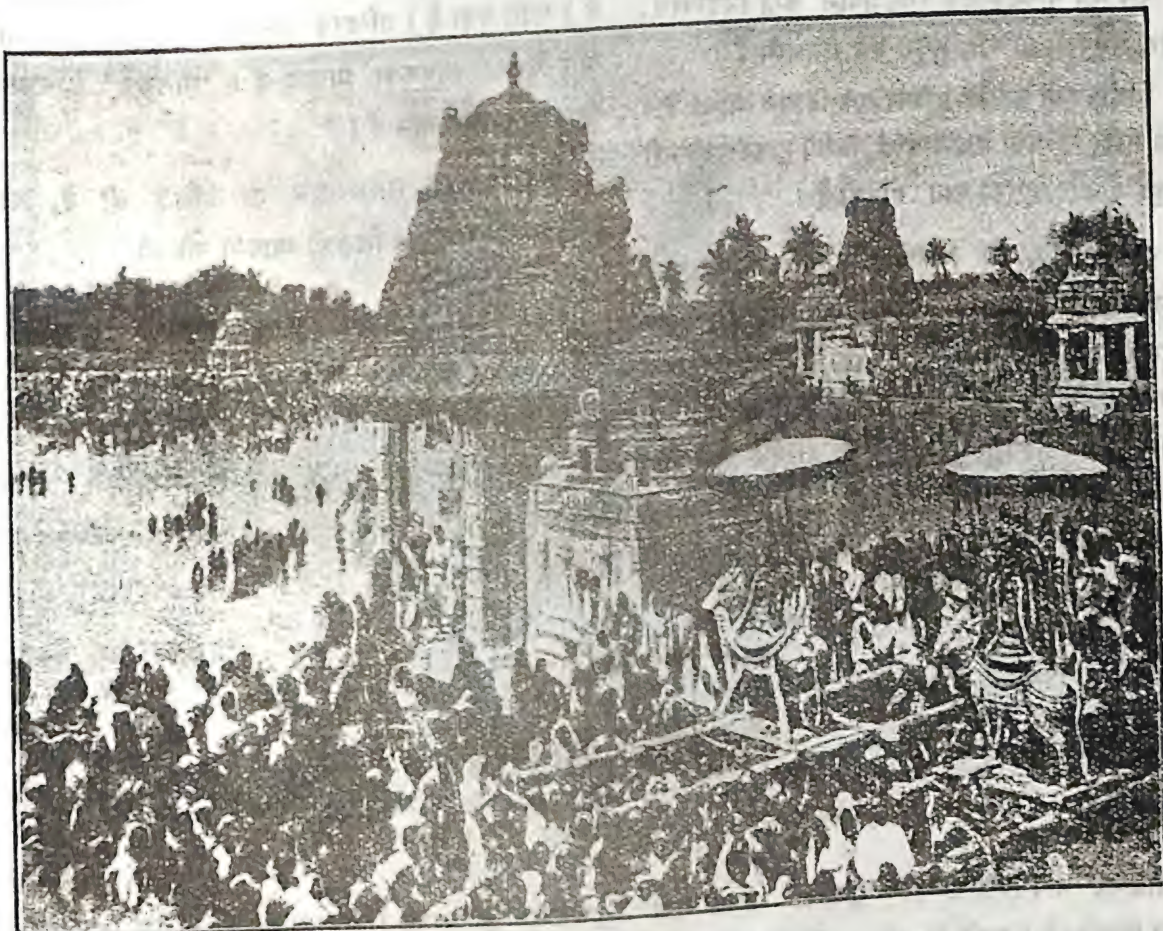
पुरातत्त्व-विभाग, मैसूरकी कृपासे

कल्याण

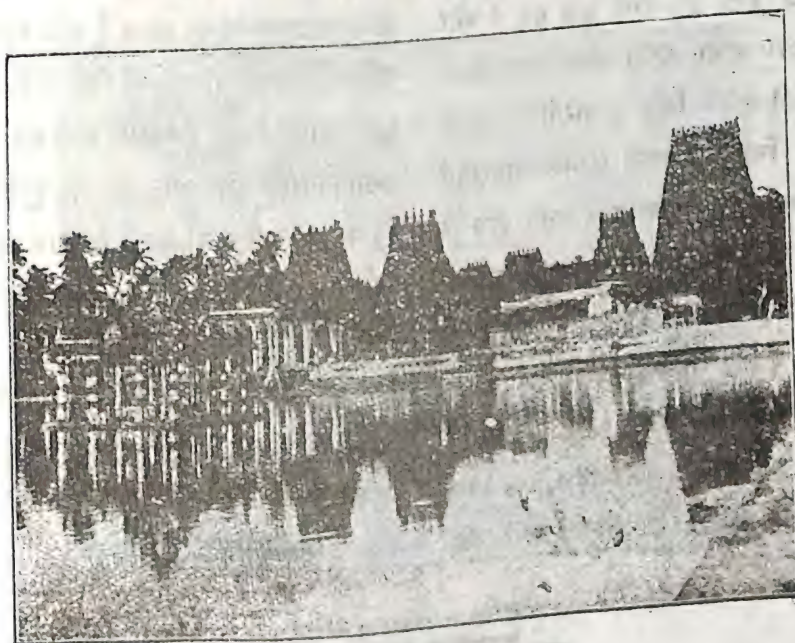


श्रीभोगनन्दीश्वरका मन्दिर

पुरातत्त्व-विभाग, भैरवकी कृपासे



महामखम्-मेला



पोठामराह कुम्भकोणम्

शैव एवं वीरशैवमतके दूसरे प्रधान केन्द्र चिदम्बरम्, तञ्जोर, धर्मपुरी, पालनी, मदुरा एवं रामेश्वरम् हैं।

चिदम्बरम्में नटराज शिवका एक विशाल मन्दिर है। उसमें सहस्र स्तम्भका एक मण्डप है, जिसमें सुन्दर पच्चीकारी की हुई है और जिसकी छात सोनेकी है।

तञ्जोरमें भी, जो किसी समय दक्षिणके महाराष्ट्र राजाओंकी राजधानी रह चुका है, बृहदीश्वर महादेवका मन्दिर है। उसमें नन्दीकी एक विशाल पाषाणमयी प्रतिमा है। पालनीमें भी सुब्रह्मण्यका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। मदुराका मीनाक्षीदेवीका मन्दिर दक्षिण-भारतके मन्दिरोंमें (अथवा यों कहिये कि संसारभरके मन्दिरोंमें, क्योंकि दक्षिण-भारतके-से विशाल मन्दिर संसारभरमें कहीं नहीं

हैं) सबसे बड़ा है। मन्दिरके पास ही एक सुन्दर तालाब और तिरुमले नायकका प्रासाद है। 'मीनाक्षी' शिवपत्नी भगवती दुर्गाका नाम है।

लोकविख्यात रामेश्वरधाम तो प्रसिद्ध ही है, यहीं भगवान् श्रीरामने शिव-लिङ्गकी स्थापना की थी।

अन्तमें हम यह लिखकर अपने वक्तव्यको समाप्त करते हैं कि तिरुपतिके प्रसिद्ध मन्दिरके सम्बन्धमें लोगोंकी यह धारणा है कि प्रारम्भमें यह भी शैवोंका ही स्थान था, पीछेसे वैष्णवोंके महान् आचार्य श्रीरामानुजने वहाँकी प्राचीन वीरभद्र-मूर्तिको हटाकर उसे वैष्णव-मन्दिरका रूप दे दिया।



‘शुचीन्द्र’ शिवक्षेत्र

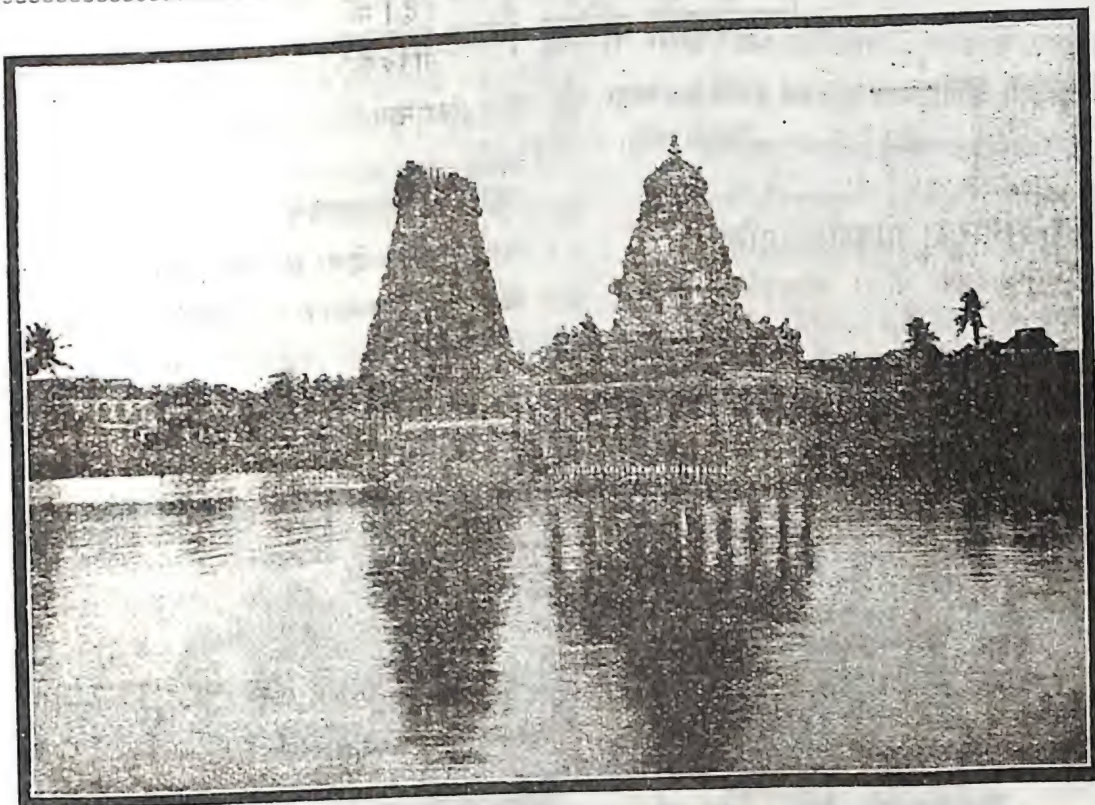
(लेखक—ड० म० प० श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत)

दक्षिणके त्रावणकोर-राज्यमें ‘शुचीन्द्र’ नामक एक विशाल शिवक्षेत्र है। इसके विषयमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि यहाँपर देवराज इन्द्र कुछ-रोगसे मुक्त हुए थे और तबसे वे नित्यप्रति यहाँ आकर श्रीशिवजीका पूजन किया करते हैं। इन्द्रके आने-जानेके चिह्न पुजारियोंको अनेक बार मिले हैं। उन चिह्नोंको प्रकट करनेके अपराधमें एक पुजारीपर देवताका प्रकोप हुआ और उसके हाथ-पैर चेतनाहीन हो गये तथा वह मूक हो गया। तबसे यहाँपर प्रातः और सायंकालकी पूजाके लिये दो व्यक्तियोंका प्रबन्ध किया गया है। एक पुजारी रात्रिमें मन्दिर बन्द करनेके समय इन्द्रके लिये पूजासामग्री तैयार करके रख देता है और प्रातःकालमें दूसरे पुजारीकी बारी होनेसे रात्रिकी रखी हुई सामग्रीमें कुछ हेर-फेर हुआ हो तो उसकी खबर दूसरे

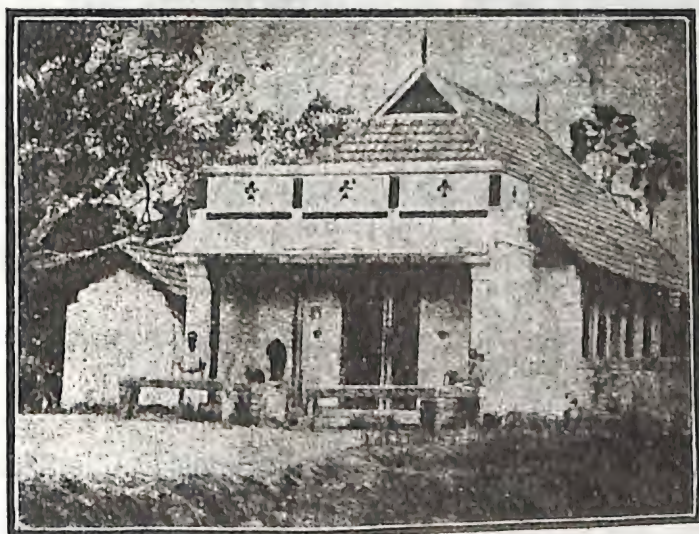
पुजारीको नहीं लगती। इस मन्दिरकी परिधि तथा ऐश्वर्य श्रीरामेश्वर-मन्दिरसे कुछ ही कम है। त्रावणकोर-राज्यमें श्रीअनन्तशयन-मन्दिर प्रमुख है और द्वितीय श्रेणीमें शुचीन्द्र-मन्दिर है। इसके भोगरागके लिये राज्यकी ओरसे रकम बँधी हुई है और नियत समयपर यहाँ बड़े-बड़े उत्सव होते हैं। कन्याकुमारीसे इधर आठ मीलकी दूरीपर यह मन्दिर स्थित है। परन्तु यात्रियोंको इसके विषयमें जानकारी न होनेसे वे दर्शनसे वञ्चित रह जाते हैं। कन्याकुमारी जानेवाले यात्रीगण इसके दर्शनसे अवश्य लाभ उठावें।

यह भी दन्तकथा है कि सत्ययुगमें श्रीदत्तात्रेयका जन्म इसी ‘शुचीन्द्रक्षेत्र’ में हुआ था। यहाँपर ‘अत्रि-आश्रम’ नामक छोटा-सा परन्तु सुन्दर स्थान है। उसका कार्य भी राज्यके खर्चसे चलता है।





कन्याकुमारीके निकट सुप्रसिद्ध शिवक्षेत्र
शुचीन्द्र—प्रज्ञातीर्थ-सरोवर



अग्नि-आश्रम (शुचीन्द्र)

कलिङ्गदेशके प्रसिद्ध शिव-मन्दिर

(लेखक—श्री ३ लक्ष्मीनारायण हरिचन्द्रन जगदेव राजावहादुर, एम० आर० ए० एस०, एम० बी० डी० एम०, पुरातत्त्वविशारद,
विद्यावाचस्पति, राजासाहब टेकाला)

(१)

महेन्द्रगिरिका गोकर्णेश्वर-मन्दिर

गोकर्णेश्वर-महादेवका मन्दिर महेन्द्रपर्वतके शिखरपर कोई ५००० फुटकी ऊँचाईपर अवस्थित है। महेन्द्रगिरि प्राकृतिक उड़ीसाके भूभागमें, जिसे प्राचीनकालमें कलिङ्गदेश कहते थे, सबसे ऊँचा पहाड़ है। आजकल यह मद्रास-

चतुर्भिरनुजैभिन्दन्नाहवे समरोत्सुकान् ।

दन्तैर्दैत्यानिवेन्द्रेभः स प्रायाद्वासवीं दिशम् ॥

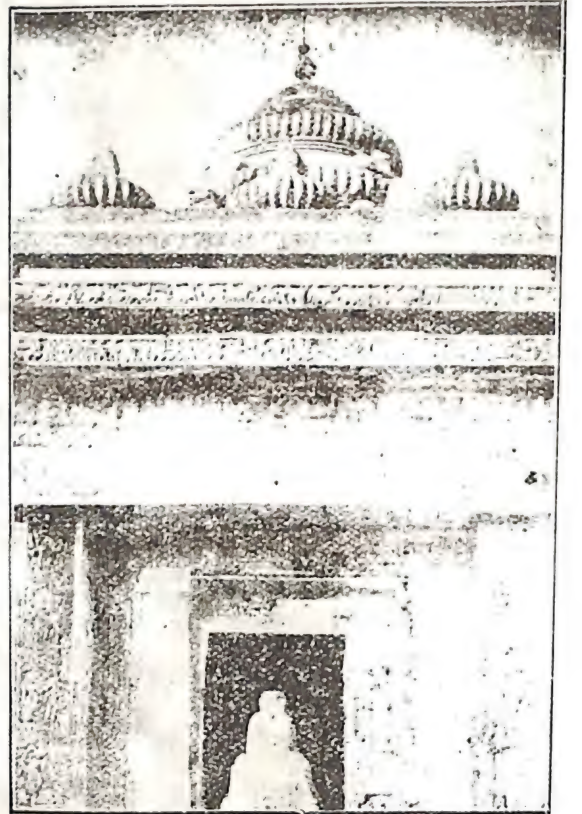
अथ वन्येभदन्तौघद्विगुणोक्तनिर्जरम् ।

विलिखन्तं नभः शृङ्गैर्महेन्द्रं प्ररुह सः ॥

तत्र च सकलसुरासुरसिद्धसाध्यपराङ्मयकिरीटनिष्ठ-
मसृणचरणपीठमाराध्य गोकर्णस्वामिनम् ।



महेन्द्रगिरिके मन्दिरमें गोकर्णेश्वर-महादेवका आसन



मुखलिङ्गमुका मधुकेश्वर-मन्दिर

आहातेके गंजाम जिलेमें है। मन्दिर बहुत प्राचीन है। यह मटारवंशके राजाओंके प्रतापसूर्यके अस्त होने तथा गंग-वंशके राजाओंके हाथमें शासनकी बागडोर आनेके पूर्व ही बन चुका था। निम्नलिखित शिलालेखोंसे इस बातकी पुष्टि होती है—

गंगवशावतंस कामार्णव तथा उनके चार भाई प्रथम गोकर्णेश्वरके दर्शनके लिये गये और उनके आशीर्वादसे ये मटारवंशके अन्तिम राजा शवरादित्यका वध करके कलिङ्ग-देशके* स्वामी बन बैठे। यह घटना ईस्वी सन्की आठवीं शताब्दीके आरम्भमें हुई; तबसे लगातार आठ सौ वर्षतक

* शवरादित्यं निहत्य कलिङ्गानग्रहीत् (Copper plate Grants of the Ancient Ganga-Dynasty of Kalinga.)

गंगवंशके राजा उस देशमें राज्य करते रहे और भगवान् गोकर्णेश्वरको कुलदेवताके रूपमें पूजते रहे। यही कारण है कि उनके प्रत्येक शिलालेख एवं ताम्रलेखमें महेन्द्रगिरिके गोकर्णेश्वरका उल्लेख अवश्य मिलता है। इसीलिये यह मन्दिर प्राचीनकालसे ही शिवोपासनाका एक प्रधान केन्द्र बन गया। प्रतिवर्ष शिवरात्रिके अवसरपर हजारों यात्री इस पर्वत-शिखरपर चढ़कर भगवान् शिवकी पूजा करते हैं। मन्दिरमें कुछ प्राचीन शिलालेख मौजूद हैं। इनमेंसे एक शिलालेख बड़े महत्त्वका है; उसमें चोलवंशके एक प्रसिद्ध नरेश कुलोत्तुङ्ग राजेन्द्रकी विजयका वर्णन है।

(२)

मुखलिङ्गम्का मधुकेश्वर-मन्दिर

यह मन्दिर मुखलिङ्गम् नामक स्थानमें वंशधारा नदीके तटपर स्थित है। इस मन्दिरमें प्रधानरूपसे भगवान् मधुकेश्वरकी पूजा होती है। इस लिङ्गके सम्बन्धमें लोगोंकी यह धारणा है कि यह पहली बार मधुकवनमें प्रकट हुआ था। प्रसिद्ध गंगवंशीय महाराज कामार्णव (द्वितीय) ने यह

मन्दिर बनवाया था। इसीलिये इन्हें 'मधुकेश्वर' कहते हैं।

तस्य तिरस्कृतत्रिविष्टपं नगरनामपुरमासीत्।

तस्मिन् सोऽपि मधूकवृक्षजननादीशस्य लिङ्गाकृतेः

कृत्वाख्यां मधुकेश इत्यरचयत् प्रासादमभ्रंलिहम्।

यद्द्वारोर्ध्वविचित्रपत्रलतिकाश्चित्राणि वा पश्यतां

सौधान्यम्बरवर्तिनां हृदि भवेन्नूनं विमानारुचिः॥'

कामार्णव (द्वितीय) ने ईस्वी सन् ७५६ से ८०६ तक कलिङ्गदेशमें राज्य किया। भगवान् मधुकेश्वरकी महिमा पुराणोंमें वर्णित है। ये काशीके भगवान् विश्वेश्वरकी भाँति प्रसिद्ध हैं। मन्दिरमें अत्तागढ़नरेशकी पुत्री तथा कपिलेश्वर-देवकी पटरानी रत्नमणिदेवीका खुदवाया हुआ एक शिलालेख है, जिससे हमें पता लगता है कि इस मन्दिरकी सम्पत्तिपर कलिङ्गकी प्रधान रानीका ही अधिकार था। मन्दिरमें और भी अनेक उपयोगी तथा ऐतिहासिक शिलालेख पाये जाते हैं। वंशधारा नदीके तटपर अवस्थित होनेके कारण इस स्थानको 'दक्षिण-काशी' कहते हैं।

श्रीवैद्यनाथ

(लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी)



वैद्यनाथजीका पूरा नाम रावणेश्वर वैद्यनाथ है; क्योंकि ये रावणद्वारा स्थापित हैं। ये द्वादश लिङ्गोंमें हैं। 'वैद्यनाथं चिताभूमौ' तथा 'सुरासुराराधितपादपद्मं श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि' आदि इसके प्रमाण हैं। यह स्थान विहारप्रदेशान्तर्गत संथाल-परगनेके दुमका जिलेका एक सब-डिवीजन है। इसका वर्तमान नाम देवघर है, जो ई० आई० रेलवेका एक स्टेशन है। जसीडीहसे देवघरतक चार मीलकी एक ब्राञ्च लाइन गयी है।

पञ्चपुराणके पातालखण्डमें इसकी कथा इसप्रकार है—

एक बार लङ्कापति रावणने कैदासवासी देवोंके देव महादेवजीसे प्रार्थना की कि 'यहाँ रोज-रोज पूजनके लिये आनेमें कठिनता होती है, अतएव कृपाकर आप लङ्का चले।' शिवजीने प्रसन्न होकर कहा—'चलो, चलता हूँ; पर

शर्त यह है कि मुझे रास्तेमें कहीं भूमिपर न रखना। अगर रख दोगे तो फिर मैं वहाँसे न टूटूँगा।' रावण साभिमान शर्त मंजूरकर शिवजीको उठाकर चला। अब तो देवताओंमें हलचल मच गयी। वे सोचने लगे कि 'अगर भोलेबाबा लङ्का पहुँच गये तो रावणका कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा।' वे लोग कोई उपाय न देख विष्णुभगवान्के पास पहुँचे। उन्होंने सहायता देना स्वीकार कर लिया। इधर देवमायासे रावणको जोरकी लज्जा लगी। उसे एक कदम आगे बढ़ना भी पहाड़ हो गया। वेचैन हो सोचने लगा, अब क्या करूँ। भूमिपर शिवजीको रखता हूँ तो वे हाथसे जाते हैं, नहीं रखता हूँ तो जान जाती है। जब वह इसप्रकार सोच रहा था तब विष्णुभगवान् वृद्ध ब्राह्मण बन वहाँ आ पहुँचे। ब्राह्मणको देख रावणकी जानमें जान आ गयी। वह बोला—'महाराज! इन्हें जरा सम्हालिये

† महेन्द्राचलामलप्रतिष्ठितस्य गोकर्णस्वामिनश्चरणारविन्दप्रसादादित्यादि। (Copper plate Grants of the Ancient Ganga-Dynasty of Kalinga.)

तो मैं पेशाव कर लूँ।' ब्राह्मणने पहले तो हीला-हवाला किया, पर पीछे रावणके बहुत कहने-सुननेपर वह राजी हो गये। बोले—'मैं एक दण्डसे अधिक नहीं ठहर सकता।' रावणने कहा—'मैं आधे दण्डमें ही निवट लूँगा।' वस, ब्राह्मणने शिवजीको ले लिया और रावण पेशाव करने बैठ गया। आधे दण्डतक तो ब्राह्मण देवता चुपचाप खड़े रहे। उसके बाद बोले 'उठो, समय हो गया;' पर रावण न उठ सका, उसे और देर लगी। आधे दण्डकी जगह एक दण्ड हो गया। अब ब्राह्मण देवता और अधिक न रुक सके। उन्होंने शिवजीको भूमिपर रख अपनी राह ली। इतनेमें रावण भी वापस आया और शिवजीको उठाने लगा, पर अब वे क्यों उठने लगे! उसने बहुत जोर लगाया, पर शिवशङ्कर टस-से-मस न हुए। निराश हो रावण चला गया और भोलानाथ वहीं जम गये। यही 'वैद्यनाथ' नामसे विख्यात हुए।

यह भी कहा जाता है कि जब रावण शिवजीको न उठा सका तो क्रुद्ध हो अँगूठेसे दबाकर बोला—'अच्छा, अब यहीं रहो।' इसीसे शिवलिङ्गपर गढ़ा-सा हो गया, जो अवतक बना है। रावणने जहाँ पेशाव किया था वहाँ एक नाला-सा है, जिसका नाम रावणखार है।

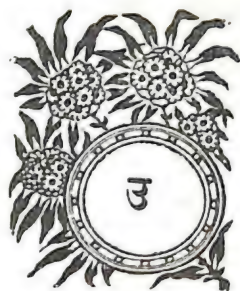
श्रीवैद्यनाथजीका बड़ा माहात्म्य है। और शिवलिङ्गोंका प्रसाद या चरणामृत नहीं लिया जाता, पर वैद्यनाथजीके

प्रसाद और चरणामृत दोनों ग्राह्य हैं। लोगोंका विश्वास है कि वैद्यनाथजीमें धरना देनेसे कार्यसिद्धि होती है। अब भी मन्दिरके पीछे दस-बीस भक्त अन्न-जल छोड़ पड़े रहते हैं। बहुतोंकी कामना पूरी हो जाती है। मेरे चाचाने भी बीमार होनेपर देवघर जा धरना दिया था। कई दिन बाद उन्हें स्वप्न हुआ कि काशी चला जा। चाचाजी काशी गये और वहीं उनका देहावसान हुआ।

देवघर सिद्धपीठ भी है। दक्षयज्ञविध्वंसके बाद शोका-कुल शङ्करभगवान् सतीजीका शव कन्धेपर रख पृथिवी-परिक्रमा कर रहे थे और विष्णुभगवान् सुदर्शनचक्रसे शवको काटते जा रहे थे, जिससे शिवजीका मोह-त्याग हो। जहाँ-जहाँ सतीका अङ्ग कट-कटकर गिरा वह सिद्धपीठ हो गया। देवघरमें अङ्गराज (हृदय) गिरा, इससे यह 'हार्दपीठ' कहलाया। शङ्करको यह स्थान बड़ा प्रिय है। काशीमें मरनेसे जैसे मुक्ति होती है वैसे ही देवघरमें भी मरनेसे होती है। काशीमें विश्वनाथजी तारकमन्त्र देते हैं और यहाँ श्रीरामचन्द्रजी देते हैं। सारांश यह कि यह स्थान भी मुक्तिदायक है। शिवरात्रिके समय यहाँ भारतके सब प्रान्तोंसे यात्री आते हैं। बड़ी भीड़ होती है। देवघरके आस-पास बहुत-से दर्शनीय स्थान हैं। यहाँ कलकत्तेके सर हरीराम गोइनका, के० टी०, सी० आई० ई० की एक बड़ी धर्मशाला है।

श्रीमहाकालेश्वर

(लेखक—श्रीसूर्यनारायणजी व्यास, उज्जैन)



जयिनीके दर्शनीय स्थानोंमें महाकालेश्वरका स्थान सर्वप्रमुख है। महाकालेश्वरकी गणना द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें भी है और मृत्यु-लोकेश होनेके कारण त्रिलिङ्गोंमें भी।

महाकालेश्वरका स्थान अत्यन्त

प्राचीन एवं नयनाभिराम है। मानवी सृष्टिका आरम्भ भी यहींसे होना बतलाया जाता है। यही कारण है कि महाकालेश्वरजीको मानवलोकेशकी संज्ञा मिली है। इतिहासज्ञोंका मन्तव्य है कि ई० स० १०६० में परमारवंशीय राजा उदयादित्यने इस मन्दिरका उद्धार किया था।* बुद्धके

समकालीन प्रद्योत राजाके समयमें भी इस मन्दिरका उल्लेख पाया जाता है।

महाभारत-वनपर्व (अ० ८२ श्लोक ४९), स्कन्द-पुराण, मत्स्यपुराण, शिवपुराण, भागवत और शिवलीलामृत आदि ग्रन्थोंमें तथा कथासरित्सागर, मेघदूत †, राजतरङ्गिणी आदि काव्योंमें भी महाकाल, कालनाथ, कालप्रियनाथ आदि नामोंसे इनका वर्णन मिलता है। अल्वेरुनी और फरिस्ताने भी यहाँकी विपुल वैभवसम्पन्न अवस्थाका उल्लेख किया है।

यह मानी हुई बात है कि मुस्लिम-आक्रमणके पूर्व उज्जैनकी भूमि सुवर्णमयी थी, भारतवर्षपर गजनीके

* कुछ लोगोंका मत है कि इस मन्दिरका उद्धार ११ वीं शताब्दीमें भोजने किया था।

† मेघदूतका 'अप्यन्यसिजलधर महाकालमासाद्य काले' श्लोक तो प्रसिद्ध है।

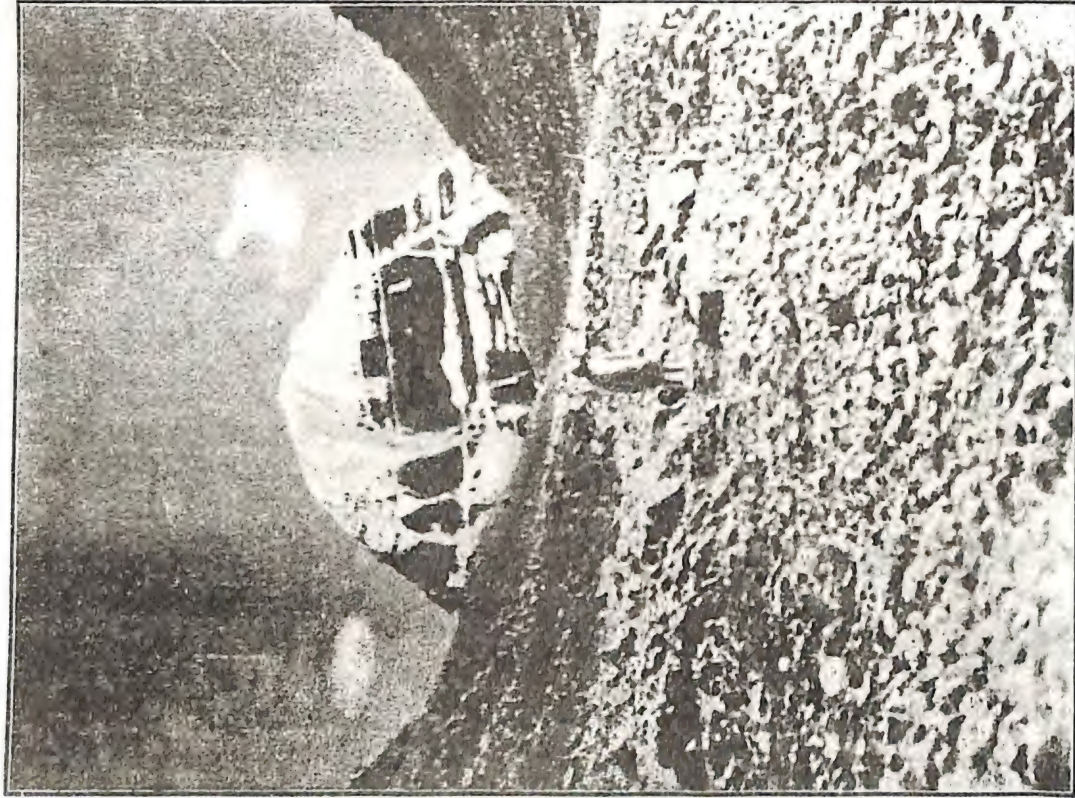
कल्याण



तीर्थपुरी गुफा



मानसरोवर



कैलाश (डेरफू-गुफासे)



कैलाश (समुद्रतलसे २१००० फीट ऊँचेपर लिया हुआ फोटो)

मुहम्मदकी आक्रमणकारी दूषित मनोवृत्तिका असर बहुत कालतक यहाँ बना रहा, इसके पूर्व महाकालेश्वरका स्थान 'स्वर्णप्राकारमण्डित' भारतभरमें अपने ढंगका अद्वितीय था। सदा सहस्रों यात्रिगण यहाँ आते रहे थे, भूतभावन भगवान्‌पर पुण्यसलिला भगवती शिप्राके जलसे सर्वदा मन्त्राभिषेक होता रहता था। सैकड़ों वेदध्वनि करनेवाले ब्रह्मवृन्दोंसे यह स्थान आवृत रहता था।

देहलीके गुलाम-वंशमें उत्पन्न सुल्तान अल्तमशने ई० स० १२३५ में यहाँ चढ़ाईकर उजैनके सौभाग्यको लूट लिया तथा देवालियोंको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। इसके पूर्व भी एक बार सिन्धके अमीर और अल्तमशके समुहने यहाँ लूट की थी। परन्तु अल्तमशने तो अपनी नीच मनोवृत्तिकी पराकाष्ठा दिखला दी। मन्दिरकी शोभापर वह वैभवकी भावनासे प्रथम ही लट्टू था। मन्दिर काफी ऊँचा था। कहते हैं, वह सौ गज ऊँचा था। गगनस्पर्शी सुन्दर शिखर मन्दिरकी विशालताको प्रकट कर रहा था। सभामण्डप स्थापत्य कलाका एक बहुत सुन्दर नमूना था। दीवारोंपर प्राचीन चित्र अङ्कित थे। प्रवेशद्वारके सामने सोनेकी जंजीरोंमें बँधी हुई घण्टाएँ तथा मोती और रत्नोंसे खचित तोरण और झालरें लटक रही थीं। मन्दिरके एक कोनेमें सम्राट् विक्रमादित्यकी एक सुवर्ण-मयी प्रतिमा स्थापित थी। सहस्रों वर्षोंसे यात्रिसमूहके आते रहनेके कारण मन्दिरके भण्डारमें अपार धनराशि सुरक्षित थी, जो सारी-की-सारी इस आक्रमणके कारण नष्ट हो गयी। मन्दिरकी ऊँचाई नाम-शेष रह गयी। यह वैभव विलीन हो गया। ई० स० १७३४ में पुनः राणोजी शिन्देके दीवान रामचन्द्र बावाने इस मन्दिरका जीर्णोद्धार करवाया। कहते हैं कि इन्होंने ही महाकालेश्वरके लिङ्गको, उस समय जो, कोटितीर्थमें था, निकलवाकर पुनः स्थापित किया, तबसे बराबर पूजन-अर्चनकी व्यवस्था ठीक चलती है। शिन्दे, होल्कर, पर्वार—तीनों राज्योंसे मिलाकर चार हजार रुपये वार्षिक व्ययका प्रबन्ध है।

प्रातःकाल चार बजे चिता-भस्मसे पूजन होता है, फिर आठ बजे तथा दिनके बारह बजे और तीसरा पूजन सन्ध्याको होता है, खासकर प्रातःकालीन चिता-भस्म-पूजन और सान्ध्य-पूजनके समय मन्दिरमें कैलासकी-सी छटा दिखायी जाती है। पूजनके पश्चात् नैवेद्यग्रहण तथा चिता-भस्मके छाननेका अधिकार गुसाईं साधुओंको है। यहाँ परम्परासे यह गद्दी चली आ रही है, जिसके अधिकारीकी महन्त संज्ञा है।

महाशिवरात्रिके नौ रोज पूर्व ही मन्दिरके ऊपरके

आँगनमें नौ रोजतक हरिकीर्तन होता है। श्रावणमासके चार सोमवारोंपर शहरमें महाकालेश्वरजीकी सवारी निकलती है। इस दृश्यको देखनेके लिये दर्शनार्थी यात्रिगण हजारोंकी संख्यामें जुटते हैं। कार्तिकमासमें भी चार सवारियाँ निकलती हैं। इसके अतिरिक्त वैकुण्ठचतुर्दशीके दिन श्रीमहाकालकी सवारी श्रीद्वारकाधीशके मन्दिरमें जाकर श्रीद्वारकाधीशका बित्त्वपत्रसे पूजन करती है, और द्वारकाधीश भस्मपूजनके समय महाकालेश्वरके स्थानपर पधारते हैं, वहाँ महाकालेश्वर-पर तुलसीपत्र चढ़ाया जाता है। यह हरि-हरके मिलापका दिन है। एक सवारी महाकालेश्वरजीकी दशहरेके दिन भी निकलती है, 'सीमोलङ्घन' के लिये सारा लवाजमा और राज्याधिकारी साथमें रहते हैं।

महाकालेश्वरकी मूर्ति (लिङ्ग) विशाल है, चाँदीकी सुन्दर जलाधारी बनी हुई है तथा एक ओर गणेश, दूसरी ओर गिरिराजमुता पार्वती और पास ही कार्तिकेयकी मूर्ति विराजमान है। सामने अखण्ड दीपक जलते रहते हैं। मन्दिरका फर्श सफेद पत्थरका बना हुआ है, जलाधारीके आस-पास चौखटे खड़े हैं। द्वारके सामने विशाल नन्दीकी प्रतिमा है। पहले एक ही द्वार था, अब दो द्वार हो गये हैं। मन्दिरके अन्दर सोलह पुजारियोंका अधिकार है, परन्तु पूजा वगैरहका कार्य राज्यके निरीक्षणमें होता है। मन्दिरके ऊपर आँगनके पास पुरातत्त्वविभागकी ओरसे प्राचीन मूर्तियोंका संग्रह किया हुआ है। महाकालेश्वर-मन्दिरसे दक्षिणकी ओर भी कई भव्य मन्दिर हैं। एक मन्दिर अनादिकालेश्वर और वृद्धकालेश्वरका है, जिन्हें लोग 'जूने' महाकालके नामसे पुकारते हैं।

मध्ययुगमें महाकालेश्वरजीके मन्दिरके चारों ओर एक कोट (परकोटा) बना हुआ था, अन्दर कई राजप्रासाद और भवन तथा उपवन थे। उस कोटके ध्वंसावशेष अब भी उसकी स्मृति दिलाते हैं, इसी कारण इस मुहल्लेका नाम ही 'कोट' हो गया है। यह स्थान महाकालवन सघन वनमें होनेके कारण इसे महाकालवन कहते थे। सङ्कल्पोंमें आज भी 'महाकालवने' कहा जाता है। मन्दिरके सभामण्डपके पास ही कोटितीर्थ नामक एक सुन्दर कुण्ड है, इसमें सर्वदा जल भरा रहता है। आस-पास छोटे-छोटे मन्दिरोंमें बहुत-से शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित हैं, कुण्डके दक्षिणमें देवासराज्यकी धर्मशाला है, पश्चिममें सरदार कीबेकी धर्मशाला है, उत्तरमें कुण्डके तटपर ही लेखकका भारतीभवन नामक स्थान और पुस्तकालय है।

गोवा-प्रान्तके श्रीमंगेश महादेव

(लेखक—श्रीरामचन्द्र शङ्कर टकी महाराज)

आर्या

देवा ! मंगेशा ! तू अससी केवल अनादि चैतन्य । दुगें संगे षड्गुण पावसि म्हुणुनी असों बहू धन्य ॥ १ ॥
गज-आननादिकां सह राहुनि देई सदा सुखारोग्य । मग तव प्रसादलेशें होऊं परमार्थसाधना योग्य ॥ २ ॥
जाडुनि सर्व हि कामा करिं तूं वापा ! आम्हांसि निष्काम । ज्ञानोत्तर भक्तीतें देउनि नेईं तुझ्याच श्रीधाम ॥ ३ ॥

‘हे मंगेशदेव ! आप केवल, अनादि और चैतन्यरूप हैं, (तथापि) श्रीदुर्गाके सङ्गसे आप षड्गुण-सम्पन्न हो जाते हैं, इसलिये आप धन्य हैं । आप गजानन आदिके साथ निवास कर हमें सदा सुख और आरोग्य देते रहें, आपके प्रसादलेशसे हम परमार्थ-साधनाके योग्य हो जायें । हे बाप ! हमारी सर्व-कामनाओंको भस्म करके हमें निष्काम बना दीजिये तथा ज्ञानोत्तर-भक्ति प्रदानकर अपने श्री-धामको ले चलिये ।’

श्रीमंगेशदेव,
(जिनकी स्तुति उपर्युक्त आर्यामें की गयी है) महाराष्ट्रमें बसे हुए पञ्चगौड ब्राह्मणोंमेंसे वत्स और कौण्डिन्य गोत्रके सारस्वत ब्राह्मणोंके कुलदेवता हैं । इनकी स्थापना त्रेतायुगमें हुई थी और पुराणोंसे यह विदित होता है कि इनका सम्बन्ध परशुरामावतारसे है ।



श्रीमांगिरीश अथवा श्रीमंगेश

कुशस्थल नामक गाँवमें (जो इस समय कुडथाल किंवा कुडालके नामसे प्रसिद्ध है) बस गये थे । दोनों बड़े तपस्वी और शिवभक्त थे; इनमें शिवशर्माकी दुधार गाय

भगवान् परशुरामने सह्याद्रि-पर्वतकी तलहटीतक पश्चिम समुद्रको पीले हटाकर यज्ञके लिये जो पवित्र भूमि निर्माण की थी, उसीमें गोमान्तक अर्थात् गोवा-प्रान्त है । यज्ञकार्यको यथाविधि पूर्ण करनेके लिये उत्तर-भारतके त्रिहोत्रपुर (वर्तमान तिरहुत) से ब्राह्मणोंके दस पवित्र कुलोंको परशुरामजी यहाँ लाये थे । उन ब्राह्मणोंद्वारा यथा-विधि यज्ञकार्य हो जानेपर वह भूमि उन्हें दानमें दे दी गयी । उनमेंसे लोमशर्मा और शिवशर्मा नामक वत्स और कौण्डिन्य-गोत्रके दो ब्राह्मण कुशावती नदीके तीरपर स्थित

प्रतिदिन अपने थनोंके दूधसे उस पवित्र स्थानके शिवलिङ्ग-का अभिषेक किया करती थी। विना बछड़ेकी गायका स्वयं ही पन्हाकर नियमितरूपसे पाषाण-लिङ्गपर दूधकी धार छोड़नेकी अद्भुत लीला देखकर ग्वालेको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने शिवशर्मासे सब बातें कह दी। शिवशर्माको भगवान् शिवने पहले ही स्वप्नमें सूचना दे दी थी कि तेरे भक्तिभावसे प्रसन्न होकर मैं समीप ही कहीं प्रकट होऊँगा। अब ग्वालेसे गायकी बात सुनकर शिवशर्माको निश्चय हो गया। वह बड़े प्रेम और उत्साहके साथ उस शिवलिङ्गकी आराधनामें लग गया। कुशस्थलीके पासमें ही केलोशी (वर्तमान केलशी) ग्राममें लोमशर्माके भानजे देवशर्मा रहा करते थे, ये भी बड़े तपोनिष्ठ थे। इनकी उपास्या जगदम्बा दुर्गादेवी थीं। एक समय कुशस्थलीकी घाटीमें प्रकट हुए शिवलिङ्गरूप परमेश्वरके दर्शनार्थ श्रीदुर्गादेवी वहाँ गयी थीं। भगवान् शङ्करने लीलासे एक अद्भुत और भयङ्कर पशुका रूप धारण किया; उस विकराल रूपको देखते ही भयभीत होकर जगदम्बाने अपने बचावके लिये 'मां गिरीश पाहि' कहकर बड़े जोरसे पुकारना चाहा, परन्तु भयके कारण उनके

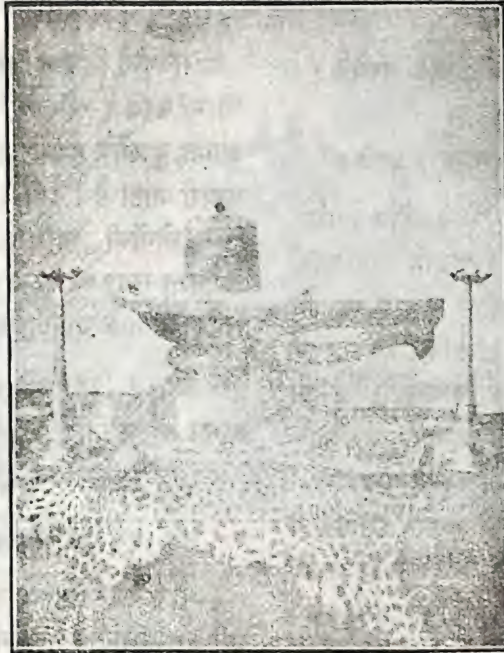
मुँहसे केवल 'मांगीश' शब्द ही निकला। भगवान् शङ्करने शीघ्र ही अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर जगदम्बाको आश्वासन दिया। इसी लीलाके स्मरणार्थ श्रीदुर्गाजीकी प्रार्थनाके अनुसार भगवान् शिवजी 'मांगीश' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

कुशस्थलीमें मांगीशजीका मन्दिर बहुत विशाल था। परन्तु पोर्चुगीज लोगोंने गोवा-प्रान्तमें घुसकर जब उपद्रव शुरू किया, तब कुछ भावुक भक्त श्रीमंगेशको पालकीमें विराजित कराकर प्रियोल नामक ग्राममें ले आये और वहाँ विदेशियोंके उपद्रवसे रहित सुरक्षित स्थानमें लिङ्गकी पूजा-अर्चा होने लगी। कुछ दिनों बाद वहीं मन्दिर बन गया।

उस समय (सन् १५६० ई०) से आजतक मंगेशजी उसी मन्दिरमें विराजमान हैं। वर्तमान समयमें भी इस मन्दिरके जैसा प्रबन्ध अन्यत्र शायद ही देखनेको मिलेगा।

श्रीक्षेत्र गोकर्णमहाबलेश्वरमें गौड सारस्वत ब्राह्मण-वृन्दद्वारा एक और शिवलिङ्गकी स्थापना हो चुकी है, उसके चमत्कारपूर्ण वृत्तान्तको भी पाठकोंके सामने रखना अनुचित न होगा।

श्रीमद् आद्यशङ्कराचार्यजीके गुरु (श्रीगोविन्द-पादाचार्य) के गुरु श्रीमद्रौडपादाचार्यकी परम्पराके श्रीकैवल्यपूरमठके अधिपति श्रीमत्पूर्णानन्द सरस्वती स्वामीजीने गोकर्णक्षेत्रमें गौड-पादाचार्यका नया मठ स्थापन किया है; उस मठमें फाल्गुन शुक्ल १० (ता० २९ फरवरी सन् १९२० ई०) के दिन श्रीचक्रवर्तीश्वर नामक शिव-लिङ्गकी स्थापना की गयी। इस लिङ्गको भारतके उत्तम कारीगरोंद्वारा तैयार करवाकर अमेरिकाके प्रसिद्ध फिला-डेल्फिया-प्रदर्शनीमें भेजा गया था, वहाँसे वह लिङ्ग इंग्लैण्डमें गया और इंग्लैण्डमें हिन्दु-स्तानके आर्यधर्मके अभिमानी सर जार्ज बर्डबुडसाहबके हाथ-में चला गया; उन्होंने उसे बम्बईके सुप्रसिद्ध वकील कै०



श्रीचक्रवर्तीश्वर शिवलिङ्ग

रा० व० घनश्याम नीलकण्ठ नादकर्णोंके मार्फत ब्रह्मीभूत श्रीगुरुमहाराज श्रीमदात्मानन्द सरस्वती स्वामीजीके पास भेज दिया। अमेरिका आदि स्थानोंमें घूमकर पुनः भारतमें लौट आनेके कारण श्री सर जार्ज बर्डबुडसाहबकी प्रेरणासे इसका नाम 'चक्रवर्तीश्वर' रक्खा गया।

सृष्टि-उत्पत्तिके पूर्वमें स्थित ॐकारमेंसे 'अ' कार अर्थात् शून्याकार या पिण्ड्याकार और ऋग्वेदके 'नासदा-सीन्नो सदासीत्तदानीम्' ऋचामें वर्णित प्रलयशेष श्रीमंगेश ही हैं। इसलिये श्रीनारायण महाराज जालवणकरकृत बोध-सागरमें सद्गुरुद्वारा प्राप्त हुए 'मैं निराकार हूँ' इस अनुभवको शिवसाक्षात्कार कहा गया है, यही चैतन्यसागर है। इस

चैतन्यसागरमें 'ब्रह्माहमस्मीति—मैं ब्रह्म हूँ' की शुद्ध सत्त्वगुणी लहर अथवा वृत्ति इसप्रकार उत्पन्न होती है, जैसे आकाशमें वायुकी लहर । इस वृत्तिके आकारको मूलमाया, पराप्रकृति, चिच्छक्ति, श्री आदि नामोंसे पुकारा जाता है और उसमें व्यापक चैतन्यको सर्वेश्वर, सगुण ब्रह्म, विष्णु अर्थात् विश्वव्यापक चैतन्य और नारायण आदि नामोंसे व्यक्त किया जाता है । यही सगुण ईश्वर ॐकारके अन्तर्गत 'उ' कार अर्थात् शुण्डाकार हैं और इन्हींने ब्रह्माको उत्पन्न कर उसे वेद प्रदान किये थे; मुमुक्षुको इसीकी शरण लेनी चाहिये, यह बात—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं

यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।

तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं

मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

—इस श्रुतिमें कही गयी है । यजुर्वेदमें वर्णित भार्गवी-वारुणी-विद्या इन्हींसे उत्पन्न हुई है । इन्हींने चतुःश्लोकी भागवतमें वर्णित आत्मज्ञान ब्रह्माजीको दिया था और ये ही अनेक गुरुओंके रूपमें संसारको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया करते हैं । परा अर्थात् शुद्ध सत्त्वगुणी प्रकृतिमें बीजरूपसे स्थित रजोगुण और तमोगुणकी प्रबलताके कारण इसमें 'एकाकी न रमते, एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय ।' अकेले रमण नहीं करता—सुखी नहीं होता, इसलिये मैं एक ही अनेक रूपमें हो जाऊँ अर्थात् जगद्रूप हो जाऊँ, यह संकल्प उत्पन्न हुआ । यह सङ्कल्प ही उस एकमें द्वितीय रूप माया है । इसीको गुणमयी माया अथवा अपरा-प्रकृति कहते हैं । परा-प्रकृतिरूपी दर्पणपर अपरा-प्रकृतिका लेप हो जानेसे, उसमें व्यापक सर्वेश्वरका, दर्पणमें जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसे 'ब्रह्मदेव' अथवा 'जीवेश्वर' कहते हैं । परा और अपरा-प्रकृतिका स्पष्टीकरण भगवद्गीतामें इस-प्रकार है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो यथेदं धार्यते जगत् ॥

देवीभागवतमें प्रकृति-शब्दमें ही परा और अपरा दोनोंका समावेश किया गया है । 'प्रकृति' शब्दमें 'प्र' पद 'प्रकृष्ट' का बोधक है और 'कृति' सृष्टिका बोधक है; इसलिये

सृष्टिके प्रारम्भमें जो देवी प्रमुख है वही प्रकृति है, ऐसा कहा गया है । सत्त्वगुणका दर्शक 'प्र' अक्षर, रजोगुणका दर्शक 'कृ' अक्षर और तमोगुणका दर्शक 'ति' अक्षर है । सारांश, 'प्र' 'कृ' 'ति'—इन तीनों अक्षरोंसे युक्त नाममें सत्त्वादि तीनों गुणोंके अर्थ व्यक्त होते हैं ।

ब्रह्माजी ॐकारमेंसे 'मकार' अर्थात् विश्वाकार हैं और सामवेदमें इसीका वर्णन—

यथा खलु सौम्येकेनैव मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात् । वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सस्यम् ॥

—इस ऋचासे किया गया है ।

भगवान् शिवको 'शं' अर्थात् कल्याणकर्ता देव 'शङ्कर'— 'शम्भु' कहते हैं और 'हृ' (हरण करना) धातुसे बने हुए 'हर' अर्थात् दुःखोंके हरण करनेवाले देवके नामसे भी उनको पुकारा जाता है । देवी-देवताओंके अवतार कुछ अनुभव-रहित लोगोंकी धारणाके अनुसार केवल रूपक ही नहीं हैं, किन्तु रामकृष्ण परमहंसादि सन्त तथा लोकमान्य तिलक आदि विद्वानोंके कथनानुसार वे प्रत्यक्ष ऐतिहासिक व्यक्ति हैं ।

उपर्युक्त विवेचनके अनुसार श्रीमंगेशके त्रिविध बोध-रूपका भगवद्गीताके १३ वें अध्यायके—

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।

तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥

—इस श्लोककी व्याख्या करते हुए वामन पण्डितने श्रुतिके आधारपर अपनी निम्नलिखित ओवियोंमें पूर्ण ब्रह्मानुभव बतलाया है—

ब्रह्म निर्गुण । ब्रह्मची ईश्वर सगुण । ब्रह्मची विश्व त्रिगुण । ऐसे कळेल, तरीच ब्रह्म कळलें ॥ श्रुतिही बोलती निर्गुण ब्रह्म । कीं 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।' आणि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।' हेही श्रुति बोलती ॥

अर्थात् ब्रह्म ही निर्गुण है, ब्रह्म ही सगुण ईश्वर है और ब्रह्म ही त्रिगुणात्मक विश्वरूप हुआ है, इसप्रकारकी प्रतीतिका नाम ही ब्रह्मज्ञान है । इसके लिये श्रुति भी कहती है कि ब्रह्म निर्गुण है (केवलो निर्गुणश्च), सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, (ईश्वर सगुण है) और 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' (त्रिगुणात्मक सारा संसार ही ब्रह्म है) ।

ब्रह्मके इस त्रिविध रूपकी आराधना (Trinity



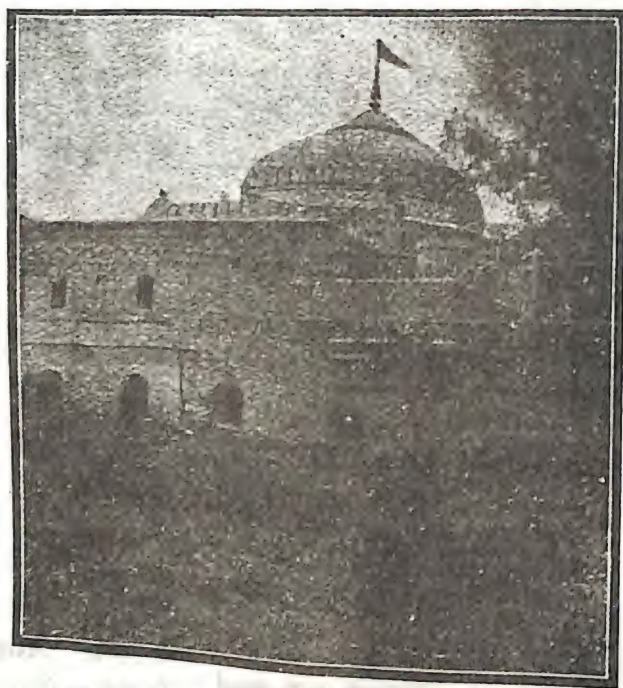
स्थाणु महादेवका मन्दिर,
थानेसर



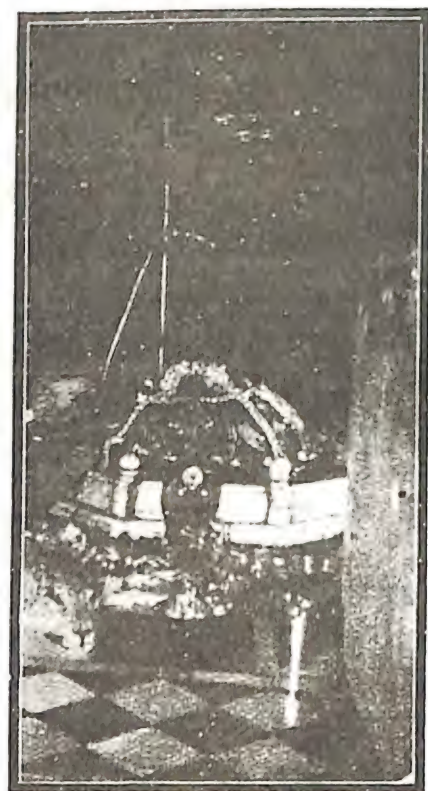
नन्दकाल बिगहा
(गया) का विशाल
शिवमन्दिर,
श्रीहरमन्दिर



भगवतीश्वरमन्दिर ओंकार



उज्जैनके भीमाशंकरमन्दिरका पूर्वद्वार (बाहरी दृश्य)



भीमाशंकर दक्षिणद्वारसे
उज्जैनक (नैनीताल)



श्रीधर्मेंश्वर-शृंगारमूर्ति—मेरठ



श्रीसर्वेश्वर महादेव श्रवणनाथ—कुरुक्षेत्र

worship) सभी धर्मोंमें किसी-न-किसी रूपमें प्रचलित है। उदाहरणार्थ हिन्दूधर्ममें ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा अकार, उकार, मकार; बौद्धधर्ममें धर्म, बुद्ध और संघ; ईसाई-धर्ममें पिता, पुत्र, पवित्र आभास अथवा जगदाभास; पारसीधर्ममें वायु, सूर्य, उदक; और इस्लामधर्ममें रहमान, रहीम, मालिक। इसीलिये पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णने जिस भगवद्गीतामें इस आराधनाका शास्त्रयुक्त प्रतिपादन किया है उसका समस्त संसारका धर्म-ग्रन्थ होना सर्वथा उचित और अत्यन्त आवश्यक है। भगवद्गीताको सारे वर्णाश्रमधर्म मान्य हैं और जो कोई भी अपने धर्मोका यथाविधि पालन करता हुआ षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न भगवान्का भजन करेगा उसे चित्त-शुद्धिद्वारा इसप्रकार ज्ञानकी प्राप्ति होगी, ऐसा अठारहवें अध्यायके—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

—इस श्लोकमें भगवान्के द्वारा आश्वासन दिया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवद्गीताको विश्वधर्म-

ग्रन्थके रूपमें स्वीकार करनेमें किसी भी धर्मको कुछ भी अड़चन नहीं होनी चाहिये।

सम्भवतः मताभिमानी लोग यह कह सकते हैं कि भगवद्गीता केवल हिन्दुस्तान और हिन्दू-जातिके लिये ही है, दूसरोंके लिये नहीं। परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं है; थोड़ा-सा विचार करनेपर यह बात ध्यानमें आ जायगी कि भगवद्गीताका निर्माण समस्त संसारके लिये ही हुआ है, न कि केवल हिन्दुओंके लिये।

श्रीयुत एफ० टी० ब्रूक्स साहबने कहा है—

‘श्रीमद्भगवद्गीता भारतवर्षमें यत्र-तत्र बिखरे हुए अनेक पन्थोंको जोड़नेवाली एक अप्रतिम शृङ्खला है और भविष्यके राष्ट्रीय जीवनकी एक अमूल्य निधि है; भारतवर्षका राष्ट्रीय धर्मग्रन्थ होनेके लिये आवश्यक समस्त गुण इसमें एकत्र किये गये हैं, इतना ही नहीं; भविष्यमें समस्त संसारका धर्मग्रन्थ होनेकी अनुपम योग्यता इसमें है। समस्त मानवजातिके भविष्यको अत्यन्त उज्ज्वल बनानेके लिये भारतके वैभवशाली भूतकालकी यह एक अपूर्व निधि है।’*

उज्जनकके भीमाशङ्कर

(लेखक—श्रीशिवशंकरजी नागर, काशीपुर)

यं डाकिनीशाकिनिकासमाजे
निषेध्यमाणं पिशिताशनैश्च।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं
तं शङ्करं भक्तहितं नमामि॥



नीताल-जिलेमें काशीपुर या गोविण्ड नामक नगर प्रख्यात है। इसके ठीक पूर्व-दिशामें एक मीलके अन्तरपर एक उज्जनक नामक स्थान है। इसी उज्जनकमें भगवान् शङ्कर अपने पूर्णशेखरे एक विशाल मन्दिरमें विराजमान हैं। यही भीमाशङ्कर-

ज्योतिर्लिङ्ग है।

यद्यपि शिवपुराणमें भीमाशङ्कर-ज्योतिर्लिङ्गका स्थान कामरूप-देशमें बतलाया गया है, तथापि अनेक

प्राचीन ग्रन्थोंको देखनेसे इसी स्थानको भीमाशङ्कर मानना पड़ता है। कारण, प्राचीन ग्रन्थोंसे ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन कालमें इसी देशको कामरूप-देश कहते थे। पीछे महाभारतके समयसे यह देश डाकिनी-देश कहलाने लगा। इसी कारण भगवान् आद्यशङ्कराचार्यने ‘डाकिन्यां भीम-शङ्करम्’ कहकर इस पुण्यस्थानका उल्लेख किया है। कालिदासने भी अपने ‘रघुवंश’में उत्तर-दिशामें ही इसका अस्तित्व बतलाया है। अतः यह बात सिद्ध होती है कि यही देश कामरूप-देश है। यह देश डाकिनी-देश क्यों कहलाया, इसका कारण यह है कि यह जो सहारनपुरसे लेकर नेपाल-तक वन-ही-वन चला गया है, उसमें डाकिनीयोनियोंमें उत्पन्न हिडिम्बा नामक राक्षसी रहती थी, जिसका विवाह महावीर, पाण्डवकुलभूषण भीमसेनसे हुआ था। वास्तवमें

* श्रद्धेय श्रीटक्की महाराजका लेख बड़ा था, पूरा प्रकाशित करनेका विचार भी था; परन्तु स्थानाभावसे उसका केवल एक अंशमात्र ही प्रकाशित किया जा सका। इसके लिये श्रीमहाराजसे हम क्षमाप्रार्थी हैं। —सम्पादक

वह डाकिनी थी, किन्तु राक्षसीरूपमें रहनेके कारण उसे राक्षसी कहते हैं। (देखिये महाभारत-वनपर्व)।

इस मन्दिरमें मूर्ति इतनी स्थूल है कि एक मनुष्यके आलिङ्गनमें नहीं आ सकती। इस प्रान्तमें ऐसा स्थूल शिवलिङ्ग तथा इस शैलीका मन्दिर दूसरा नहीं है। यह मूर्ति बढ़ते-बढ़ते दूसरी मंजिलतक पहुँच गयी है। इस मन्दिरपर शिवरात्रिके दिन बड़ा भारी मेला लगता है। मन्दिरके अन्दरके पश्चिमी भागमें खुदे हुए दो प्राचीन लेखोंसे पता चलता है कि यह मन्दिर सन् ३०२ का बना हुआ है। इसका गुम्बज बताशेके समान मालूम पड़ता है। मन्दिरके पूर्वभागमें भैरवनाथका भी मन्दिर विद्यमान है तथा मन्दिरके बाहर सामने ही एक कुण्ड है जो शिवगङ्गाके नामसे पुकारा जाता है। कुण्डके सामने कोसी-नदीकी एक नहर और उसके भी पूर्वमें बहुला नामक नदी है। मन्दिरके पश्चिम-दिशामें श्रीजगदम्बा भगवती बालसुन्दरीका मन्दिर है। यहाँ प्रतिवर्ष चैत्रशुक्ल अष्टमीको बड़ा भारी मेला लगता है। देवीजीके मन्दिरसे पश्चिममें एक स्थान है जो इस शिवमन्दिरकी प्राचीनता प्रकट करता है। वह

‘किला’ नामसे विख्यात है। इस किलेपर द्रोणाचार्यने कौरव-पाण्डवोंको धनुर्विद्या सिखायी थी। यद्यपि भीम नामक दैत्यके भस्म होनेसे और देवताओंके प्रार्थना करनेसे शङ्करभगवान् यहाँ स्थापित हो चुके थे तथापि इसका जीर्णोद्धार आवश्यक समझ द्रोणाचार्यने गुरुदक्षिणास्वरूप इस मूर्तिके चारों तरफसे झाड़ी कटाकर इसकी प्रतिष्ठा भीमसेनद्वारा करायी थी। इस किलेके पश्चिम-तटपर एक स्थान श्रवणकुमारका है, जहाँ श्रवणकुमारने अपने माता-पिताकी काँवर लाकर रखी थी और कुछ काल वास किया था। किलेके पश्चिममें एक बहुत बड़ा द्रोणसागर नामक ताल है, जिसे कौरव-पाण्डवोंने अपने गुरु द्रोणाचार्यके लिये बनाया था। मन्दिरके चारों तरफ एक सौ आठ रुद्र हैं, जो इसके चारों तरफके बहुत-से ढोलोंको खुदवानेसे मिले हैं। इन एक सौ आठ रुद्रोंमें हरिशङ्कर और जागेश्वर प्रसिद्ध हैं, जोकि इस मन्दिरके क्रमशः आग्नेय और दक्षिण-दिशामें विद्यमान हैं। इस मन्दिरकी मूर्ति अति मोटी होनेके कारण आधुनिक लोग इसे ‘मोटेेश्वरनाथ’ भी कहते हैं।

नागेशं दारुकावने

(लेखक—पं० श्रीमथुरादत्तजी त्रिवेदी)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें एक दारुकावनका नागेश (नागेशं दारुकावने) है। यह ज्योतिर्लिङ्ग कहाँ है? हमारा यह मत है कि अल्मोड़ासे १७ मील उत्तर-पूर्वदिशामें अवस्थित यागेश (जागेश्वर) को ही नागेश-ज्योतिर्लिङ्ग बतलाया गया है। परन्तु यागेशको नागेश सिद्ध करनेके पहले निम्नलिखित प्रश्नोंका विचार करना आवश्यक है—

(१) कुमाऊँके आदि निवासी कौन थे ?

(२) नाग-जातिकी कुमाऊँमें मौजूदगीका ऐतिहासिक प्रमाण क्या है ?

(३) कुमाऊँमें शिव (रुद्र) पूजाका चलन कबसे है ?

(४) पुरातत्त्वकी दृष्टिसे जागेश्वरका मन्दिर कितने वर्ष पूर्वका बना सिद्ध हो सकता है ?

(५) शिलालेख तथा इतिहासज्ञ क्या कहते हैं ?

(६) मन्दिरकी ख्याति कबसे है और क्योंकर कुमाऊँ-राज्यकी सीमासे सीमित हो गयी ?

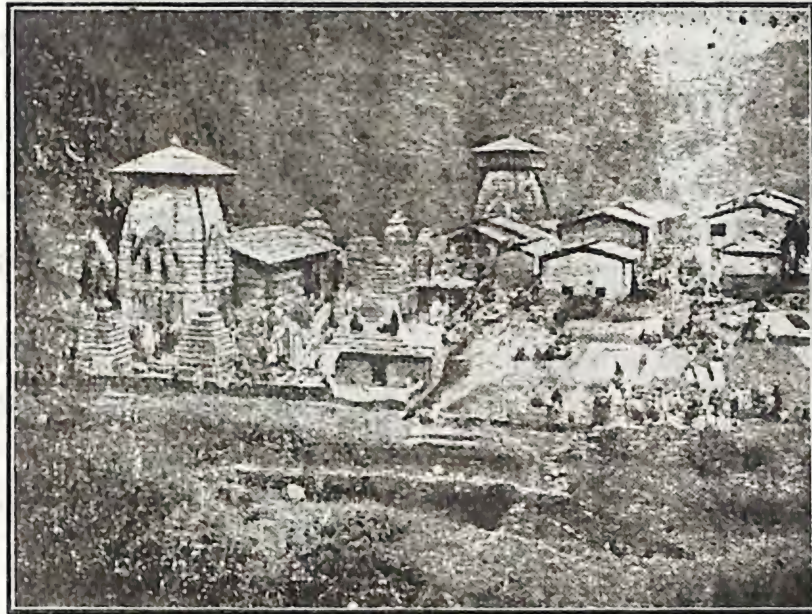
कुमाऊँके आदि निवासी कौन थे, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। पहाड़ी दरोंकी राह कश्मीर-प्रदेशसे तथा नदियोंकी घाटियोंकी राह मैदानसे आकर जो जातियाँ कुमाऊँकी पहाड़ियोंमें बस गयीं, वे बृहस्पल, गौण्डूक, द्रविड, कम्बोज, यमन, शक, पारद, पल्लव, चीनी, किरात, दरद, नाग तथा खस नामकी थीं और महाभारतमें इस बातका प्रमाण है कि ये जातियाँ सभ्य तथा शक्तिशालिनी थीं। पाण्डवोंको इन पहाड़ी जातियोंसे लड़ना पड़ा था और उन्होंने इनको सोलहों आने क्षात्रगुणसम्पन्न पाया था। भारतवर्षकी तमाम अनार्य जातियोंके मध्य कुमाऊँनी अनार्योंको इस बातका श्रेय दिया जाता है कि इन्होंने ब्राह्मण-धर्ममें प्रवेश पानेका भरसक प्रयत्न किया। वशिष्ठ-विश्वामित्रका

हजारों वर्षोंका युद्ध क्षात्रगुणसम्पन्न अनार्य तथा ब्राह्मण-धर्म-प्रतिपोषक आर्यलोगोंके बीचका झगड़ा था ।

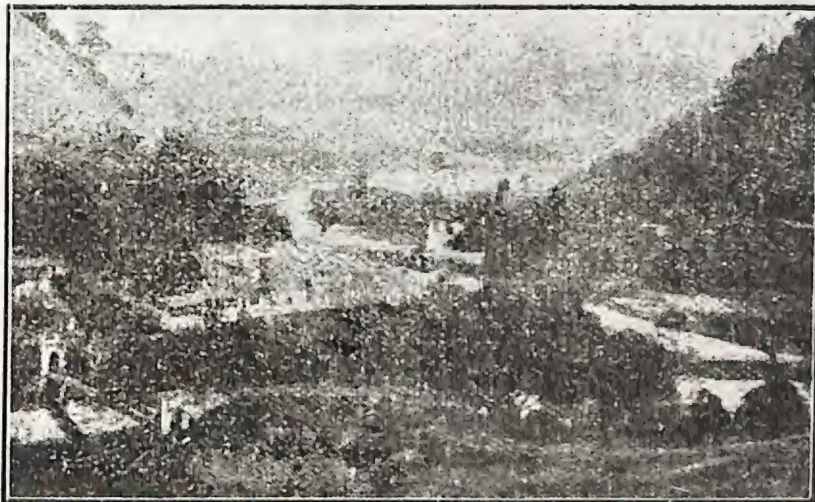
पादरी ओकले साहव अपनी पुस्तक 'पवित्र हिमालय' में लिखते हैं कि कश्मीर और गढ़वालमें नागलोगोंकी

पुराने बौद्ध-कालके चित्रों तथा मूर्तियोंमें मनुष्य और साँपकी जुड़ी हुई शक्लमें नाग-पूजाको अङ्कित किया गया है और

यह चलन कुमाऊँ और गढ़वालमें अब भी चालू है । Himalayan Districts के लेखक एट्किन्सन-



जागेश्वर



बागेश्वर

एक जाति रहती है । कोई नाग लोगोंको वास्तविक सर्पके आकारका भी बतलाते हैं । आपका यह मत है कि सर्प-पूजक होनेके कारण लोग उन्हें ऐसा कह देते हैं । बौद्ध-ग्रन्थोंके प्रसिद्ध लेखक राई डेविडस्का मत है कि

का भी यही कहना है । गढ़वालके प्रायः पचास-साठ मन्दिरोंमें आजकल भी नागपूजा होती है ।

जागेश्वरके समीपवर्ती प्रदेशमें बेरीनाग, धौलेनाग, कालियनाग इत्यादि 'नाग' शब्दकी यादगारकी जगहें मौजूद

हैं। इसीसे यह कल्पना की जाती है कि इन नाग-मन्दिरोंके मध्य नागेश-नामका कोई बड़ा मन्दिर कुमाऊँमें आदिकालसे ही मौजूद है।

बौद्ध-धर्मकी भाँति शैव-धर्म भी राष्ट्रीय धर्म है। इसके अन्दर आर्य-अनायाँका मेल हुआ है। संक्षेपमें वैदिक-पौराणिक धर्म तथा भूत-प्रेत-पूजाका ही एक नाम शिवोपासना है। शङ्कराचार्यके मतके प्रसार और प्रचारके पहले पशुपति या पाशुपतेश्वरका नाम कुमाऊँके लोगोंको अविदित था। पशुपतिनाथ बलिभोगी थे या नहीं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, पर इतनी बात दावेके साथ कही जा सकती है कि काठमाण्डूके पशुपति महादेव तथा यागेश्वरके पाशुपतेश्वर वैदिककालके पूज्य देवस्थल हैं। वैसे तो हिमालय पहाड़की सारी चोटियाँ तापस-वेशधारी शिवकी प्रतिमूर्तियाँ हैं तथापि कैलासपर्वत आदिकालसे ही प्रकृतिरचित शिव-मन्दिर घोषित किया गया है। इन सब बातोंसे सिद्ध है कि कुमाऊँ-प्रान्तमें शिव-पूजाका प्रचलन अति प्राचीनकालसे चला आ रहा है।

अस्तु, अब यह देखना है कि यह यागेश्वर-मन्दिर कब बना और इसको किसने बनवाया? दूसरे प्रश्नका उत्तर निश्चित-रूपसे नहीं दिया जा सकता, किन्तु एक किंवदन्तीके अनुसार इसका जीर्णोद्धार शालिवाहनद्वारा हुआ सिद्ध होता है।

प्राचीनकालमें भी मन्दिर-निर्माण-कला (Temple Engineering Sceince) तो भारतवर्षमें थी ही। हम मौण्ट आबूके एक ब्राह्मण शिल्पीको, जिसके पास मन्दिर-निर्माण-कलापर संस्कृत-भाषामें लिखी हुई एक हस्त-लिखित पुस्तक मौजूद थी, लेकर जागेश्वर गये थे। लेखकने इस पुस्तकको उस देव-मन्दिरके समर्पित किया था जो हिमालयके उत्तर-पश्चिम-प्रदेशमें देवदारुके सघन वनके बीच अवस्थित है और जिसकी बनावट कुछ तिब्बतीय शैलीकी और कुछ आर्य-शैलीकी है। मन्दिरका नाम पुस्तकमें दिया हुआ नहीं था, किन्तु इस मन्दिरको देखकर और उक्त पुस्तकमें दिये हुए चित्रोंसे मन्दिर तथा उसकी मूर्तियोंका मिलान करनेके बाद शिल्पीको पूर्ण निश्चय हो गया कि उल्लिखित देव-मन्दिर यही है। शिल्पीके मतानुसार जागेश्वरका मन्दिर कम-से-कम ढाई हजार वर्षका पुराना और उसके निकटवर्ती मृत्युञ्जय और डिण्डेश्वरके मन्दिर दो-डेढ़ हजार वर्ष पहलेके बने हुए हैं। शिव-शक्तिकी प्रतिमाओं तथा जागेश्वर-

मन्दिरके दरवाजेके द्वारपालोंकी मूर्तियोंको छोड़कर शेष मूर्तियाँ आठ सौ या हजार वर्ष पूर्वकी बनी मान्य हैं। कलाकी दृष्टिसे पीछेकी बनी हुई मूर्तियाँ सुन्दर हैं। डिण्डेश्वरमें डिण्डिया राजाकी अष्टधातुकी सुन्दर मूर्ति रक्खी है। यहाँ शिव-शक्तिके दर्शन नहीं होते, प्रसिद्ध केदार-तीर्थकी तरह चट्टानका एक हिस्सा ही शिव-शक्तिका काम देता है। जागेश्वरमें दीपचन्द राजाकी चाँदीकी मूर्ति है। कलाकी दृष्टिसे यह मूर्ति सुन्दर नहीं है। अब ऐतिहासिक वर्णनों तथा शिलालेखों आदिके आधारपर इस सम्बन्धमें कुछ विचार किया जाता है।

वैदिक कालके पीछे इतिहासज्ञ उस कालकी गणना करते हैं जिसमें सप्तसिन्धु, ब्रह्मवर्त्त, मध्यदेश, प्राची इत्यादि नामोंसे भारतके विभिन्न भाग कहे जाते थे। स्कन्द-पुराणान्तर्गत मानसखण्ड तथा रेवाखण्ड उन अध्यायोंका नाम है जिनमें कुमाऊँ तथा गढ़वालके पुण्य-तीर्थोंका विशद वर्णन है।

पौराणिक कालमें भारतमें कोसल, मिथिला, कुरु, पाञ्चाल, मत्स्य, मगध, अङ्ग, वज्ज, चेदी इत्यादि अनेक राज्य थे। कुमाऊँ कोसल-राज्यका ही एक हिस्सा था। हुएन्साङ् बौद्धधर्मकी खोजके निमित्त कुमाऊँकी ओर आया था। उस समय कुमाऊँमें वैदिक एवं बौद्धधर्म साथ-साथ चलते थे। रामनगरके पास टिकुली नामक स्थानमें अहिच्छत्र नामका एक बौद्धोंका विहार था। इसी समयमें मल्ल-जाति कोसल-देशके उत्तरी भागमें निवास करती थी। मृत्युञ्जयके मन्दिरका शिलालेख मल्ल-राजाओंद्वारा तब अङ्कित हुआ था जब वे पशुपतिनाथ होते हुए पाशुपतेश्वर या जागेश्वरके दर्शनके निमित्त यहाँ आये थे। वे जागेश्वरको कुछ गौंय दे गये थे। कहा जाता है कि पाशुपतेश्वर और पशुपतिनाथका अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध है, बिना एकके दूसरेका दर्शन अधूरा है।

मल्ल लिच्छवियोंके मामा थे। लिच्छवी-वंशके राजपूत नेपालकी राह, जहाँ अब भी हिन्दू-देवी-देवताओंकी मूर्तियोंके साथ-साथ बुद्धदेवकी मूर्तियाँ भी मिलती हैं, कुमाऊँ तथा गढ़वालमें शाक्य मुनिके धर्मके विरोधके लिये आये थे। गढ़वालके गोपेश्वर-मन्दिरके त्रिशूलमें लिच्छवियोंका एक लेख अङ्कित है। कुमाऊँके बालेश्वर-मन्दिरके एक लेखसे प्रकट होता है कि नेपालके राजा कच्छपदेवको कत्यूरी-राजा देशनदेवने, जो ब्राह्मण-धर्मका माननेवाला था, शिकस्त दी।

नेपालके पशुपतिनाथ-मन्दिरके त्रिशूलमें लिच्छवियोंद्वारा अङ्कित लेख अब भी पढ़ा जा सकता है। देवनामके पाल-वंशी राजाओंका कुमाऊँसे सम्बन्ध रहा। देव राजा बौद्ध-धर्मको मानते थे। माधवसेन नामका सेनवंशी राजा देवोंके राजत्वकालमें जागेश्वर आया था। इन बातोंसे स्पष्ट है कि बिहार, बंगाल, नेपाल, कुमाऊँ तथा गढ़वालका आपसमें घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा। कत्यूरियोंसे भी जागेश्वरको गाँव मिले।

अफ़ग़ान तथा मुग़ल-सल्तनतके समयमें यहाँकी यात्रा करना कठिन हो गया। सोलह सौ मील लम्बा हिमालयका पर्वतीय प्रान्त कई छोटे-छोटे राज्योंमें बँट गया। हरिद्वारके सन्निकट होनेसे बदरी-केदारकी यात्रा तो जारी रही, पर जागेश्वर मैदानवासियोंको विस्मरण हो चला। कैलासकी यात्रा, जिसके कि मध्यमें जागेश्वर पड़ता है, बिल्कुल बन्द हो गयी। स्वामी शङ्कराचार्यने जागेश्वर तथा गङ्गोली-हाटकी राहसे कैलास जानेका प्रयत्न किया था, किन्तु लामालोग उनकी राहमें बाधक सिद्ध हुए और वे कैलास न जा सके। उन्हें लाचार हो द्वाराहाटकी राह लौट जाना पड़ा। गढ़वालमें जोशी-मठको संस्थापित करके वे केदारनाथ गये, वहीं उनका शरीरान्त हुआ।

चन्द-राजाओंकी जागेश्वरके प्रति अटल श्रद्धा थी। चन्दोंका राज्य कुमाऊँकी पहाड़ियों तथा तराई-भावरके बीच सीमित था, इसलिये जागेश्वरके मन्दिरकी ख्याति भी कुमाऊँ-राज्यके भीतर सीमित हो गयी। देवीचन्द, कल्याणचन्द, रतनचन्द, रुद्रचन्द, लक्ष्मीचन्द, बाजबहादुरचन्द इत्यादि राजाओंने जागेश्वरके पीछे गाँव लगा दिये तथा धन दान किया। सन् १७४० के लगभग अली-महम्मदख़ाने अपने रूहेला-सैनिकोंके साथ कुमाऊँपर

आक्रमण किया। डोटीवाला राजा कल्याणचन्द मन्दिरके आभूषण लेकर पहले गढ़वाल भाग गया और फिर वहाँसे आगे रूहेलोंके विरुद्ध फरियाद करने मुग़ल-बादशाह तथा अवधके नवाबके दरबारमें गया। रूहेले पहाड़ोंमें पंक्ति बाँधकर बढ़े थे। उन्होंने अल्मोड़ा-शहरतकके सारे मन्दिरोंको भ्रष्ट कर दिया और मूर्तियोंको तोड़ दिया। इन्होंने जागेश्वरपर भी आक्रमण किया था। लेकिन दैवेच्छाने सहायता की। देवदारुके सघन वनसे लाखों बरें निकलकर रूहेलोंपर टूट पड़े और उन्हें भगा दिया। रूहेले इससे आगे न बढ़े। लौटती बार या तो कुमाऊँनियोंके आक्रमणसे या पर्वतोंकी ठण्डकसे पीड़ित होकर डेढ़-दो लाख रूहेले समाप्त हो गये।

बौद्धकालमें बदरीनारायणकी मूर्ति गौरीकुण्डमें तथा जागेश्वरकी देव-मूर्तियाँ ब्रह्म या सूर्यकुण्डमें कुछ दिन पड़ी रहीं। भगवान् शङ्कराचार्यने अपने दिग्विजयके समय बौद्धकालमें विश्राम दी गयी मूर्तियोंको पुनः संस्थापित किया। शङ्कराचार्य जागेश्वर-मन्दिरकी पूजा कुमार-स्वामीको, जोकि दक्षिणी-जङ्गम थे, सौंप गये थे। उनके साथ एक दक्षिणी भट्ट भी था। उसने एक पहाड़ी ब्राह्मणकी लड़कीसे शादी की। उसके वंशज 'बड़वे' कहलाते हैं। पुराने पट्टे (Royal charters) नष्ट हो चुके हैं। मौजूदा पट्टा जगच्चन्ददेवके समयका है।

यह जागेश्वरके सम्बन्धमें वर्णन हुआ। यह मन्दिर आजका नहीं, बहुत पुराना सिद्ध होता है और सभी समयोंमें इसकी अच्छी प्रतिष्ठा रही है। अनेक प्रकारके प्रमाणोंके आधारपर नागेश ज्योतिर्लिंग भी यही सिद्ध होता है।

अब भी शिवकी शरण जाओ

मनके मनहीं माहिं, मनोरथ वृद्ध भये सब।

निज अंगनमें नाश भयो, वह यौवनहु अब।

विद्या है गई बाँझ, वृक्षवारे नहिं दीसत।

दौरयौ आवत काल, कोपकर दसनन पीसत ॥

कबहुँ नहिं पूजे प्रीति सों, शूल-पाणि प्रभुके चरण।

भवबन्धन काटे कौन अब, अजहुँ गहो हरकी शरण ॥

रुद्रमाल

(प्रेषक—श्रीचन्द्रलाल बहेचरलाल पटेल, बी० ए०)



लराज सोलंकीने बाल्यकालमें ही अपने मामाकी हत्या कर उसकी गद्दीपर अधिकार जमा लिया। साथ ही, अपनी माताके अन्य सम्बन्धियोंका भी अन्त कर दिया। परन्तु पीछे उसे इन सब पापोंके लिये बड़ा पश्चात्ताप हुआ। तब उन पापोंसे निष्कृति पानेके लिये उसने उनके प्रायश्चित्तस्वरूप सिद्धपुरमें 'रुद्रमाल' नामसे श्रीशिवजीका एक भव्य मन्दिर बनवाना आरम्भ किया और गद्दीपर अपने पुत्र चखुंडको बैठा स्वयं साधु हो गया।

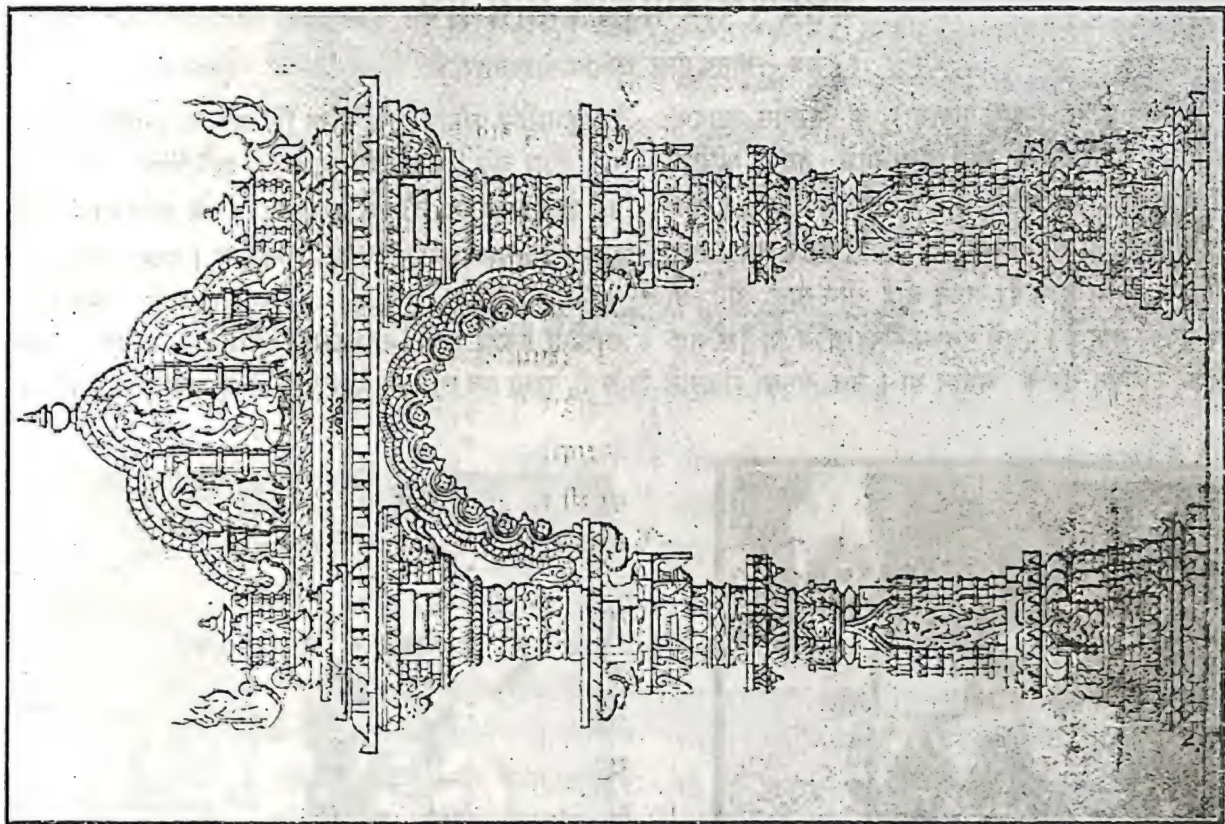
सिद्धपुर बड़ौदा-राज्यके अन्तर्गत कड़ी-प्रान्तमें है। यह क्षेत्र प्राचीन कालसे ही अति पवित्र माना जाता है। यहीं कपिलभगवान्ने अपनी माता देवहूतिको आत्मज्ञान देकर उसे परमपदकी प्राप्ति करायी थी, इसीसे यह स्थान मातृ-श्राद्धका तीर्थ माना जाता है। सिद्धपुरपर उन दिनों शत्रुओंके आक्रमण-पर-आक्रमण होते थे, इस कारण रुद्रमाल-मन्दिरका निर्माणकार्य अधूरा ही रह गया।

दो सौ वर्ष बाद पाटणके अधिपति सिद्धराजने उसे नये सिरेसे फिर बनवाकर पूरा किया। इस समय तो वह भव्य रुद्रमाल-मन्दिर खँडहरके रूपमें है। फिर भी इसे देखनेसे यह पता चलता है कि इसकी रचना-शैली बिल्कुल अनोखी है। एकके ऊपर एक, इसप्रकार ग्यारह रुद्र-मूर्तियाँ कैसी मनोहर प्रतीत होती होंगी, मन्दिरकी वर्तमान अवस्था देखकर हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते; फिर भी खँडहरको देखनेसे मात्तूम होता है कि मन्दिर तीन सौ कदम लम्बा और दो सौ तीस कदम चौड़ा, साथ ही दो-तीन मंजिल ऊँचा रहा होगा। जान पड़ता है कि इसके अन्दर

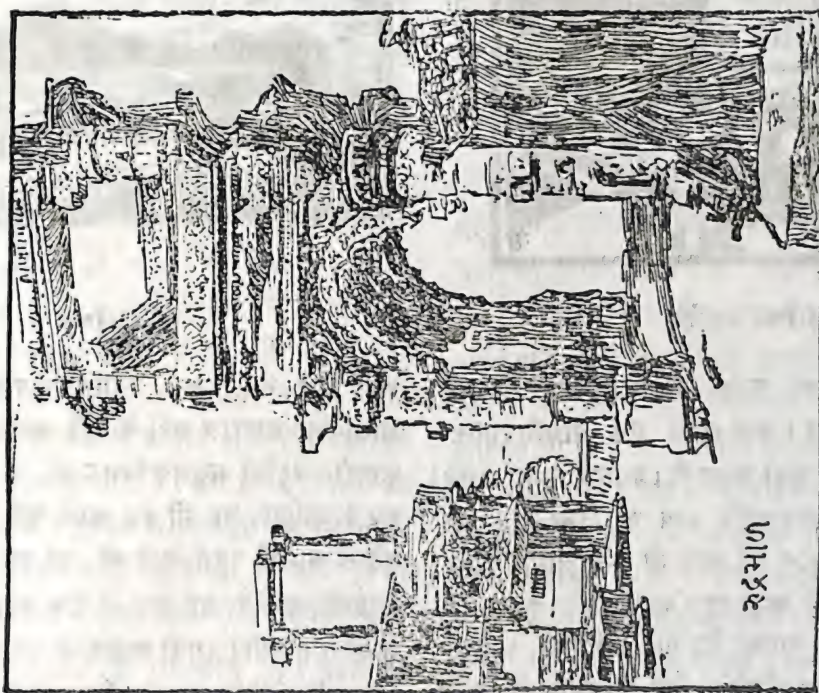
पचास कदम लम्बा-चौड़ा मण्डप था और इस मण्डपके उत्तर, पूर्व और दक्षिणमें भी एक-एक मण्डप था। इसके पश्चिममें देहरा था। बीचमें श्रीरुद्रके ग्यारह देहरे थे। मन्दिरकी पूर्व दिशामें दरवाजा और सरस्वती-नदीमें उतरनेके लिये सीढ़ीदार घाट बना था। 'गङ्गासिन्धुसरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा' आदि पापनिवारिणी सरिताओंमें सरस्वती-का भी नाम है।

रुद्रमालकी जो वर्तमान दशा है उसे देखकर खून उबलने लगता है और सिद्धराजने इसके सम्बन्धमें जो भविष्यद्वाणी की थी उसकी स्मृति हो आती है। उन्होंने अपने अन्त-समयमें समयकी प्रतिकूलता देखकर श्रीहनूमान्को इसका रक्षक बनाते हुए कहा था—

‘हे दुखियोंके आधार वायुपुत्र महावीर हनुमान् ! मैं रुद्रमालकी रक्षाका भार तुम्हें सौंपता हूँ। संसारने मुझे सिंहकी पदवी दी है; परन्तु मैं तो एक तिनकेके समान सर्वथा अकिञ्चन हूँ। मनुष्य चीज ही क्या है? कुल चालीस-पचास वर्षकी उसकी अवस्था, इसमें वह क्या पराक्रम दिखलाये? जब शत्रुकी रणदुन्दुभि आकर यहाँ गूँजेगी, तब मेरी भस्म भी कहीं ढूँढ़े नहीं मिलेगी। मैं कौन जाने कहाँ भटकता होऊँगा? तब इसकी कौन रक्षा करेगा? अरे, जब बड़े-बड़े देवता भी कालके वश हो जाते हैं, तब हम पामरोंका राजपाट और यह देवालय किस गिनतीमें है? एक दिन ऐसा आयेगा कि जहाँ आज ये राजमहल शोभायमान हो रहे हैं, वहाँ हल चलेंगे। जहाँ आज हम बैठे हैं, इस देवालयके टूटे-फूटे पत्थरोंको लोग खोद निकालकर पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिये बेचने निकालेंगे। अधिक क्या कहूँ, पाटणके रुद्रमालका नाम सुनकर वे तुम्हारी ओर टुक-टुक देखा करेंगे।



रुद्रमालका तोरणवन्द

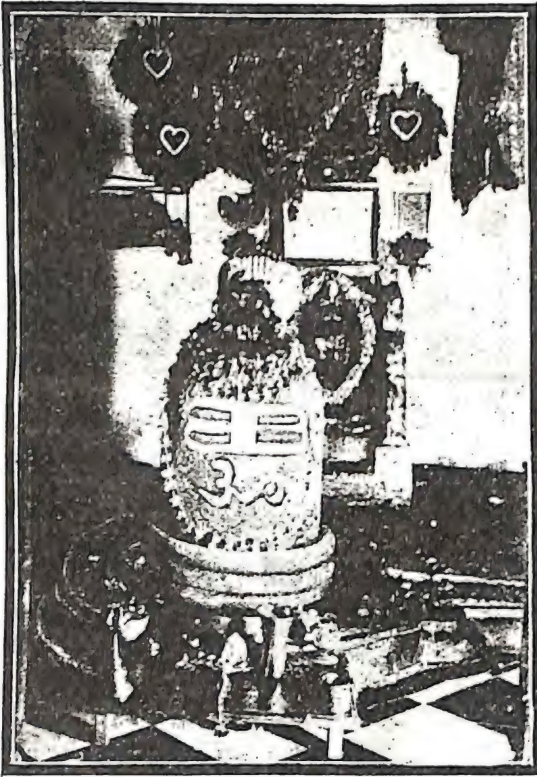


जसदण-राज्यस्थित सोमनाथ

(लेखक—श्रीमयाशंकर दयाराम मोहकावाला)

सौराष्ट्र-प्रदेश (काठियावाड़) के अन्तर्गत, जसदण-राज्यमें, शैलशिखरोंके मध्य छेलगंगाके तटपर श्रीछेला सोमनाथजीका एक पवित्र धाम है। सौराष्ट्र-प्रदेशमें प्रभास-क्षेत्रके अन्दर जो सोमनाथ-ज्योतिर्लिंग है, उसके साथ इसका इतिहास मिला हुआ है। अबसे कोई तीन-साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्वकी बात है। देशमें मुसल्मानोंका राज्य था। सौराष्ट्र-प्रदेश खम्भात सूवाके अधीन था। उस समय प्रभासमें

राजकुमारीने वरदानमें यह माँगा कि आपका ज्योतिर्लिंग भी मेरे साथ चले। शङ्करजीने उसकी अभिलाषा पूर्ण की; पर यह शर्त लगा दी कि तू अपने रथके साथ-साथ दूसरे रथमें बिठलाकर मुझे ले चल, मैं चजूँगा। परन्तु यदि कहीं तूने पीछे फिरकर देखा, तो मैं जहाँ-का-तहाँ जमकर रह जाऊँगा। वही हुआ, राजकुमारी ज्योतिर्वाणसहित प्रभास चली, परन्तु इस स्थानपर आकर भूलसे उसकी निगाह पीछेकी



ॐकारेश्वर महादेव

एक राजपूत राव राज्य करता था, परन्तु वह खम्भात सूवाका करद राजा था। उक्त रावके एक परमशिवभक्ति-परायणा मीणलदेवी नामकी कन्या थी। प्रभावमें आकर उसने उसका विवाह एक शाहजादेके साथ कर दिया था। जब बादशाहकी ओरसे लोग लेने आये तो उसे श्रीसोमेश्वरकी सेवासे वञ्चित होकर वहाँ जाना बहुत कष्टकर प्रतीत हुआ। वह मन्दिरमें जाकर ध्यान लगाकर बैठ गयी। आखिर, श्रीशिव प्रसन्न हुए और वरदान माँगनेके लिये आकाशवाणी की।



ॐकारेश्वर

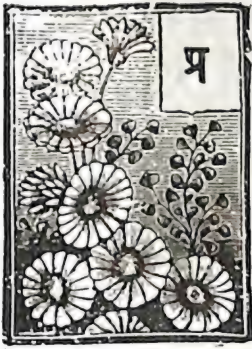
ओर पड़ गयी। बस, ज्योतिर्वाणवाला रथ फटा और श्रीसोमेश्वर महाराज जहाँ-के-तहाँ जमकर बैठ गये। फिर तो कुमारीने बहुतेरी अनुनय-विनय की, पर वह टस-से-मस नहीं हुए। आखिर, वह भी हठ करके वहीं बैठ गयी। यवनोंने उसे ले जानेकी बहुत चेष्टा की, पर वह नहीं उठी। अन्तमें जबरदस्ती करनेपर वह पास ही एक पहाड़ीपर जाकर उसके अन्दर समा गयी। उसकी सखीने भी उसीका अनुसरण किया। बस, वही श्रीसोमेश्वर वहाँ विराजमान हैं और जहाँ वह

कुमारी समाधी थी वहाँ उसके चरणचिह्न स्थापित हैं। इसके साथ जो चित्र छप रहा है वह मीणलदेवीके साथ लाये हुए स्वयम्भूदेव श्रीसोमनाथजीकी पूजाका है। इसे महन्तजीने भेजा है। दूसरा ॐकारेश्वरजीका चित्र जसदण-दरवारकी दौहित्री कुमारी श्रीभगवानवाईने भेजा है। भावनगर तथा जसदण-राज्य आदिकी ओरसे इनकी सेवा

आदिके लिये जागीर भी लगी हुई है, जिसका प्रबन्ध जसदण-राज्यके ही अधीन है। श्रावणमें यहाँ दर्शनार्थियोंका बड़ा भारी मेला लगता है। मन्दिरमें दसनामी गुसाईं महन्तकी गद्दी भी कई पीढ़ीसे चली आ रही है। वर्तमान महन्त श्रीवीरगिरिजी जीवराजगिरिजी हैं।

श्रीवैजनाथ महादेव (आगर-मालवा)

(लेखक-वि० वा० पं० श्रांगणेशदत्तजी शर्मा गौड़ 'इन्द्र')



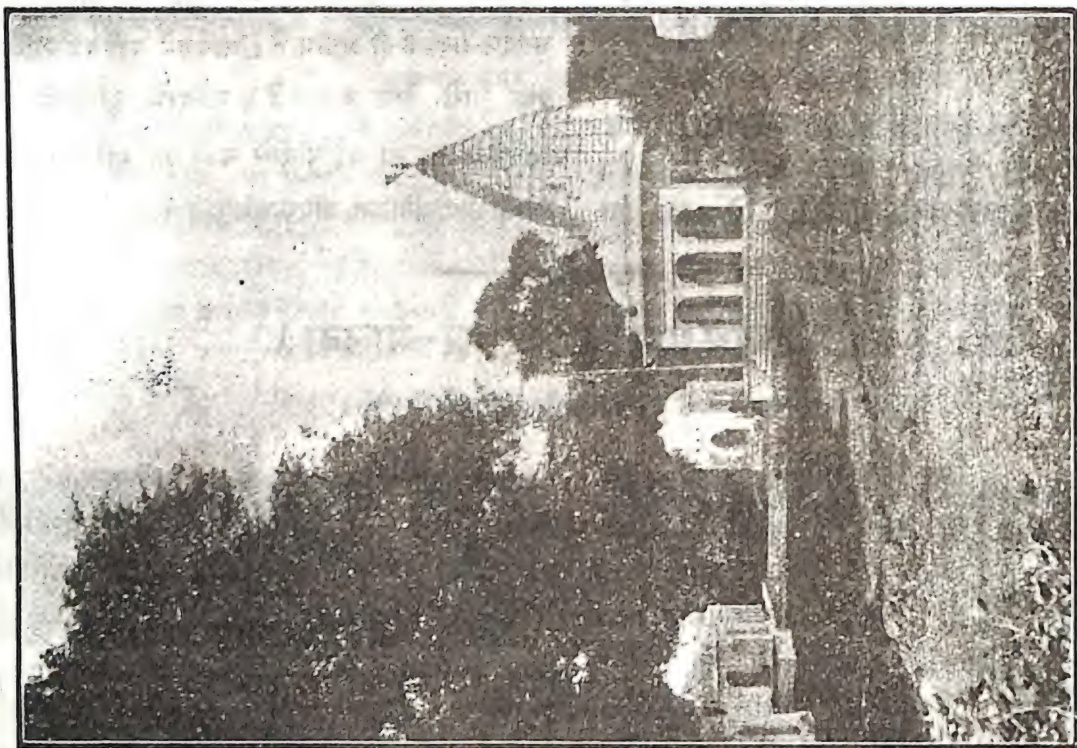
सिद्ध मोक्षदायिनी अवन्तिकापुरी (उजैन) से उत्तरकी ओर आगर नामक एक अति प्राचीन कस्बा है। यह कस्बा विक्रमकी दसवीं शताब्दीके अन्तमें बसा था। आगरसे लगभग डेढ़ मीलकी दूरीपर ईशान-कोणमें 'वैजनाथ' महादेव नामका एक प्रसिद्ध स्थान है। यह स्थान आगरके बसनेसे भी पहलेका है। यह नहीं

कहा जा सकता कि इस जगह किसने और कब शिवलिङ्गकी स्थापना की। परन्तु इतना अवश्य सिद्ध है कि यह प्रतिमा एक हजार वर्षसे अधिक प्राचीन है। जिस जगह वैजनाथ महादेव हैं, वहाँ पहले अर्थात् आजसे लगभग पचास वर्ष पूर्व बड़ा भयानक जंगल था। घनी झाड़ियोंके अन्दर महादेवका एक छोटा-सा मठ था। लोगोंको मन्दिरतक जानेके लिये वृक्षोंके समूहमेंसे निहुरकर जाना-आना पड़ता था। शिवलिङ्ग कब और किसने प्रतिष्ठित किया, इसका तो पता नहीं चलता; किन्तु पुराने कागज-पत्रसे मालूम होता है कि बेटे वैजनाथखेड़ामें महादेवजीके इस मन्दिरको मोड़ महाजनोंने आजसे चार सौ वर्ष पूर्व, सं० १५९३ में बनवाया था। आज न तो 'बेटे वैजनाथ' नामक गाँव ही है और न मोड़जातिके वनियोंका ही यहाँ नाम-निशान है। उस समय यह मन्दिर एक मट्टैयाके रूपमें था। सामने समामण्डप था। मन्दिरमें प्रकाशके आनेका मार्ग न होनेके कारण अखण्ड दीपक जलता रहता था। यह स्थान उस समय हिंसक वन्य-पशु सिंह, व्याघ्र, शूकरादिसे समाकीर्ण था। यहाँ एक

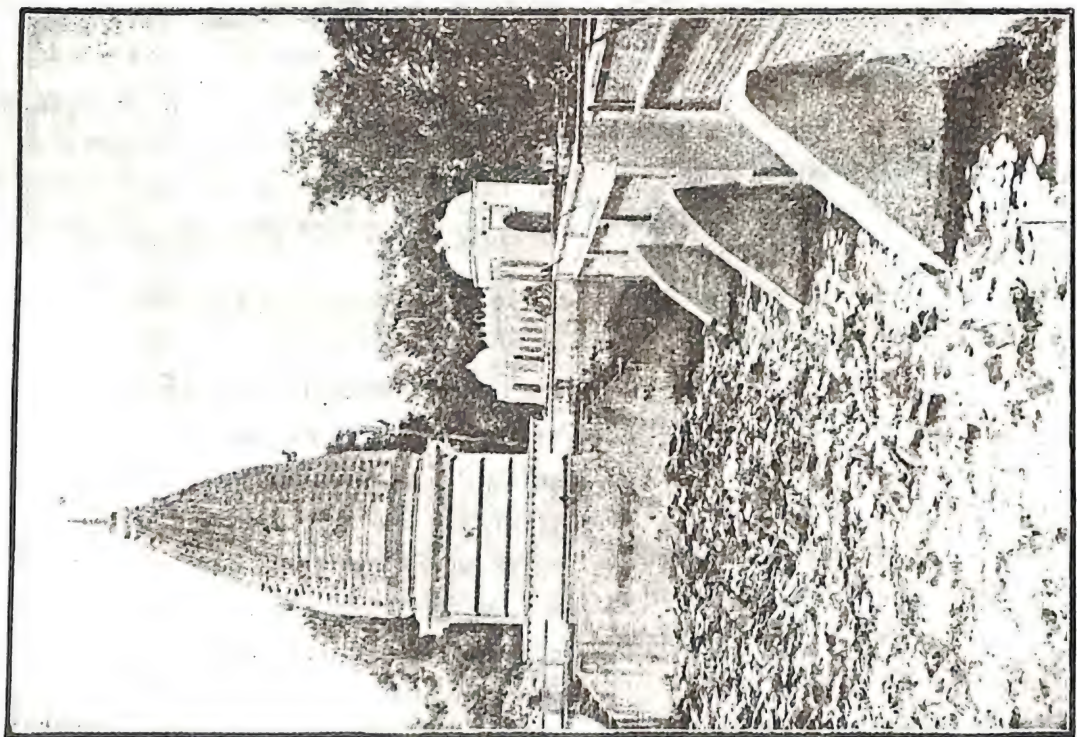
छोटी-सी नदी भी बहती है, जो यहाँसे निकलती है। इसे वाणगंगा कहते हैं। यह स्थान दो पहाड़ियोंके बीच नदीके तटपर स्थित होनेके कारण बड़ा ही सुहावना मालूम होता है।

यह स्थान बहुत दूर जंगलमें होनेपर भी दर्शकों और पूजा करनेवालोंसे सदैव परिपूर्ण रहता था। सन् १८८० ई० की बात है; मिसेज मार्टिन एक दिन उधर वायु-सेवनार्थ जा निकलीं। उन्होंने ब्राह्मणोंसे, जो वहाँ पूजा कर रहे थे, कहा—'इस मन्दिरका यह कोना गिर गया है; तुमलोग इसे ठीक बनवा लो, वरना मन्दिर गिर जायगा। पं० शिवचरणलालजी अवस्थीने उत्तर दिया—'हमलोगोंके पास इतना द्रव्य नहीं है। यदि आप चाहें तो बनवा सकती हैं।' मिसेज मार्टिन बोलीं—'हमारा साहब लड़ाईपर गया है, उसके आनेपर हम कुछ कर सकता है।' ब्राह्मणोंने उस अंग्रेज महिलाको धन्यवाद दिया। वह लौट गयी।

यथासमय सेना काबुल-युद्धसे सकुशल लौट आयो। ब्राह्मणोंने रिसालदार मेजर गोपालसिंहजीसे यह बात कहकर महादेवके मन्दिरका जीर्णोद्धार करानेके लिये कहा। रिसालदार साहबने मिसेज मार्टिनके सामने कर्नल मार्टिन, कमांडिंग ऑफिसरसे महादेवका मन्दिर बनवानेमें सहायता देनेकी प्रार्थना की। उन दिनों आगरमें पोलिटिकल एजेण्टका ऑफिस था और आस-पासकी रियासतोंके वकील यहाँ रहते थे। वकीलोंको मन्दिरके जीर्णोद्धारमें राज्यद्वारा सहायता पहुँचानेके लिये कहा गया। तदनुसार इन्दौर-राज्यने (१०००), सैलाना-राज्यने (१०००), रतलाम-राज्यने (६००), देवास-राज्यने (७००), सीतामऊ-राज्यने (३२०), रियासत पिपलोदाने (४२१), रियासत झालावाड़ने (२००), ठाकुर सा० भाट-



वैजनाथ महादेव, आगर



वैजनाथ महादेव, आगर, पीछे के कमलकुण्डसहित

खेड़ीने १६०), नवाब साहब जावराने २०), रावजी बरड़थाने ५०), दीवान सा० लालगढ़ने २५), रावजी काठूखेड़ीने २५) रावजी नरवरने २५), ठा० शिवगढ़ने २०) दिये; इसप्रकार ४५६६) रु० राजाओं, जागीरदारों और ठाकुरोंसे लिये। बाकी रुपयोंका पबलिकसे चन्दा किया गया।

सन् १८८१ में वैजनाथ महादेवके मन्दिरका जीर्णोद्धार आरम्भ हुआ। काम पचीस महीनेतक चला। अगस्त सन् १८८३ ई० में पूरा हुआ। ११३२२।-१) खर्च हुए। वैजनाथ महादेवका यह विशाल मन्दिर, जिसे आप चित्रमें देख रहे हैं, सन् १८८३ में बनकर तैयार हुआ। मूर्ति जिस स्थानपर प्रतिष्ठित थी वहीं है। सामने सभामण्डपमें नन्दीगणकी एक विशाल प्रतिमा है। अन्दर एक ताकमें शिव-पार्वती और दूसरेमें केवल पार्वतीकी प्रतिमा है। मन्दिर बननेके बाद उसी सालसे वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया) के दिन यहाँ एक मेला भरने लगा। मन्दिरतक सड़क बनवा दी गयी। इसप्रकार यह स्थान एक नये रूपमें परिवर्तित हो गया। कुछ वर्ष चलकर मेला बन्द हो गया था, किन्तु आठ-दस वर्षसे फिर चैत्र शुक्ल १ से १५ दिनके लिये भरने लगा है।

यहाँके प्रसिद्ध शैव श्रीवावू रामनारायणजी वर्मा वैजनाथके परमभक्त हैं। उनके परिश्रमसे यह स्थान और भी मनोरम हो गया है। स० १९८२ में आपने लगभग हजार-बारह सौ रुपये खर्च करके मन्दिरकी दीवारोंमें टाइल्स और संगमरमरका फर्श लगवा दिया है। अभी २०००)

डिस्ट्रिक्टबोर्डने देकर कमलकुण्डकी मरम्मत करवा दी है। सारांश यह कि यह स्थान जिला शाजापुरका एक दर्शनीय स्थान बन गया है। इस प्रान्तमें यह एक तीर्थ माना जाता है। हजारों नर-नारी यहाँ यात्राको आते हैं। यहाँ अनेक पापोंका प्रायश्चित्त होकर उनकी शुद्धि होती है। पर्वोंपर, शिवरात्रि तथा कार्तिकी पूर्णिमा एवं श्रावणके सोमवारोंपर यहाँ अपार भीड़ रहती है। खूब आनन्दोत्सव मनाया जाता है।

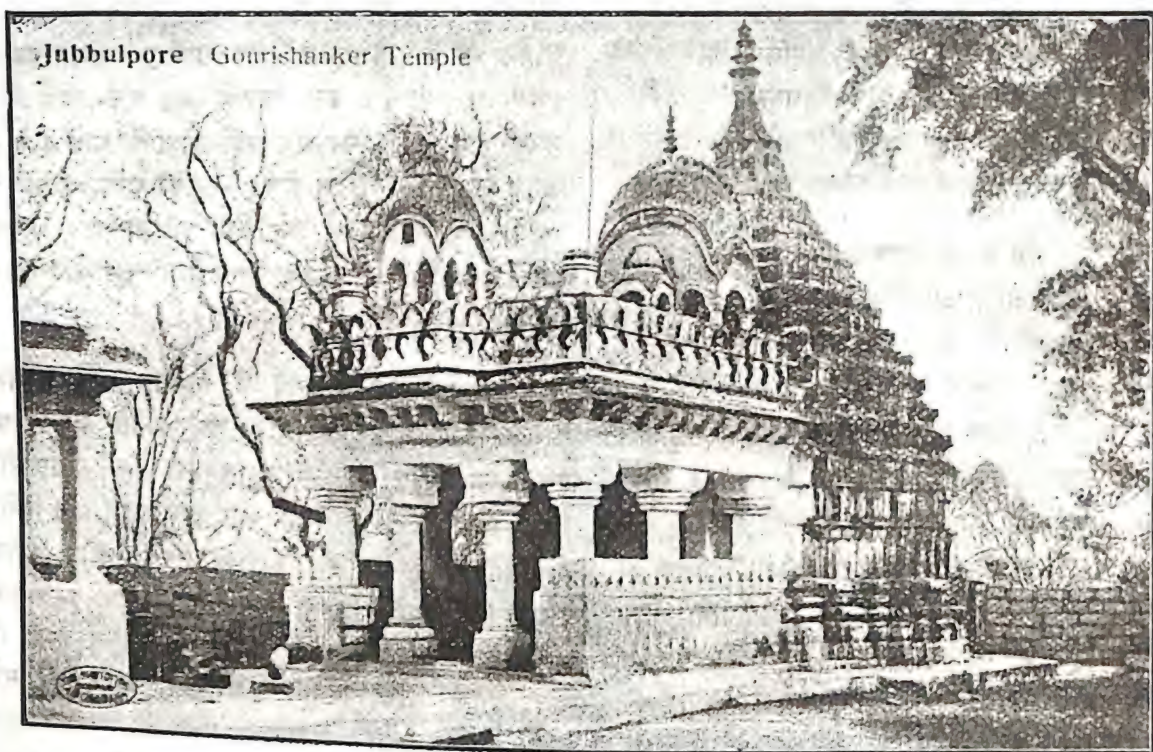
यहाँपर एक किंवदन्ती है कि जब कर्नल मार्टिन काबुल-युद्धमें गये तब उनका पत्र कई दिनोंसे नहीं आया, इस कारण मिसेज मार्टिन उदास-मन होकर हवाखोरीके लिये निकलीं। वैजनाथ महादेवकी पूजा करते देख मिसेज मार्टिनने भी अपने पतिके कुशल-समाचार प्राप्त होनेपर तथा आगर लौट आनेपर महादेवका मन्दिर बनवानेकी मानता की। शिव-कृपासे ग्यारहवें दिन पत्र भी आ गया और उसमें यह लिखा था कि 'भुझे एक अदृष्ट शक्ति सहायता देती है। जटा-दाढ़ी-वाला, बैलपर सवार एक अज्ञात पुरुष त्रिशूल हाथमें लिये रात-दिन मेरी रक्षा करता है, इत्यादि।' जब कर्नल मार्टिन युद्धक्षेत्रसे वापस लौटे तब मिसेज मार्टिनने उन्हें अपनी बात कह सुनायी और प्रतिज्ञानुसार यह मन्दिर बनवा दिया। यह बात कहाँतक ठीक है, इसके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ भी हो, यह वैजनाथ महादेवका स्थान एक अत्यन्त चमत्कारी स्थान है।

जबलपुरके श्रीगौरीशङ्कर तथा गुप्तेश्वर महादेवके मन्दिर

(लेखक—पं० श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी)

मध्यप्रान्तान्तर्गत जबलपुरसे तेरह मीलके अन्तरपर नर्मदा और सरस्वतीका सङ्गम होता है। यह स्थान मेड़ाघाटके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ पञ्चवटी, भृगु-आश्रमादि कई तीर्थ हैं। थोड़ी ही दूरपर नर्मदाका प्रसिद्ध जलप्रपात है। आसपास कोई मीलभरतक सफेद संगमरमरकी ऊँची-ऊँची चट्टानें, रजतमयी पर्वतमालिकाकी भाँति चमकती हुई खड़ी हैं। इसी स्थानपर सघन सुन्दर हरियालीसे घिरे हुए एक मनोरम मन्दिरमें श्रीगौरीशङ्कर विराजमान हैं। दृश्य इतना मनोरम एवं चित्ताकर्षक है कि देश-विदेशके यात्री बड़ी उत्सुकतासे इसे देखनेके लिये आते हैं,

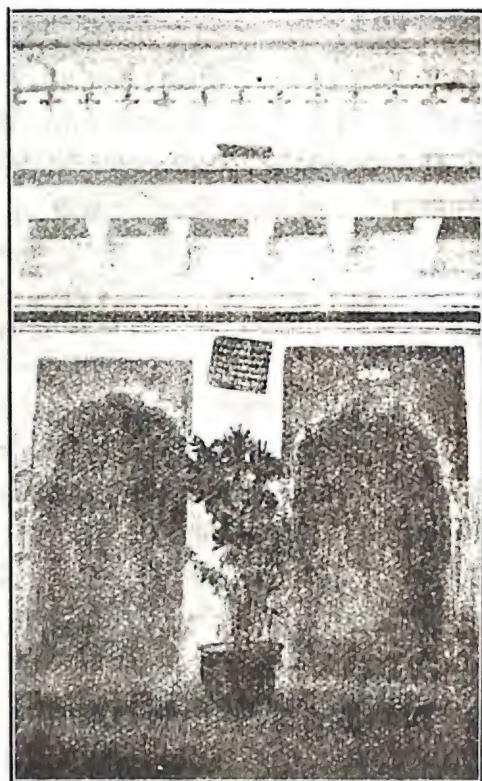
यहाँकी शुभ्र मूर्तिका, जो कालान्तरमें कतिपय प्राकृतिक नियमोंके अनुसार संगमरमरके रूपमें परिणत हो जाती है, लद-लदकर पाउडर बनानेके लिये देश-विदेशतक जाया करती है। मन्दिर प्रसिद्ध शकवंशीय राजा शालिवाहनका बनवाया हुआ बतलाया जाता है। यद्यपि आततायी मुसलमानोंकी ध्वंसलीलाके चिह्न यहाँ भी मौजूद हैं, तथापि इसमें देखनेकी बहुत कुछ सामग्री अब भी मौजूद है। मन्दिरके गर्भगृह और जगमोहनकी बनावट अतीव सुन्दर है। विशाल नन्दीपर मानुष-विग्रहमें विराजमान गौरीसहित शङ्करकी मूर्तिको देखकर नेत्र ठगे-से रह जाते हैं। शङ्करजीके



श्रीगौरीशङ्कर-मन्दिर, जबलपुर



पार्वती-मन्दिर (जबलपुर)



गुप्तेश्वरका भीतरी दृश्य (जबलपुर)

एक चरणका अँगूठा मुहम्मद गोरीकी गदासे खण्डित हो गया था। कहते हैं, अन्य अनेक देवमूर्तियोंको अंगभंग करनेके पश्चात् जब आक्रमणकारी इस प्रधान मूर्तिके निकट आया तो उसके प्रथम आघातके होते ही—जिससे यह अँगूठा भग्न हुआ—सामनेके कुण्डसे भयङ्कर भौरोंका दल उसपर दूट पड़ा, जिससे उलटे पैर भागकर ही उसने अपनी जान बचायी। मन्दिरके नीचे गुहाएँ हैं जिनका सम्बन्ध मूर्तिके सामनेवाले कुण्डसे बतलाया जाता है। अनुमान किया जाता है कि इन गुहाओंमें कई वृद्ध योगी अब भी मौजूद हैं। कहते हैं, कुछ लोग इनका पता लगानेके अभिप्रायसे इनके अन्दर घुसे भी; पर वापस नहीं लौटे। कुण्डमें यदा-कदा एक नागराजके दर्शनकी बात कही जाती है; पर आजकल वह एक शिलासे बन्द कर दिया गया है। कहते हैं, किसी पुजारीने भयभीत होकर ऐसा किया है। मन्दिरके घेरेके एक दालानमें अंगभंग की हुई चौसठ योगिनियों तथा अन्य देवताओंकी प्रतिमाएँ हैं। तान्त्रिक उपासकोंद्वारा निर्माण करायी हुई इन मूर्तियोंकी कला,

इनके आभूषण और अन्न-शस्त्रादिके भेद इस विषयके पण्डितोंके लिये विशेषरूपसे द्रष्टव्य हैं।

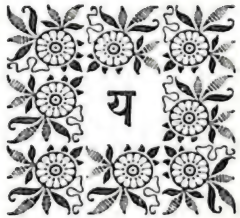
जबलपुरसे दो मील दक्षिणकी ओर नर्मदाजी तथा शहरके बीच एक पर्वत-कन्दारमें श्रीगुप्तेश्वर महादेवका स्थान है। यह स्थान अत्यन्त सुरम्य, दर्शनीय तथा स्वास्थ्यप्रद है। यहाँ अनेक वर्षों पूर्व भगवान् शङ्कर स्वयं प्रकट हुए थे। मन्दिरके भीतरी दृश्यका चित्र दिया जाता है। सामने खोहमें शिवलिङ्ग विराजित है।

श्रीगुप्तेश्वरजीके मन्दिरसे उत्तरकी ओर ठीक सामने महारानी पार्वतीजीका एक बड़ा सुन्दर मन्दिर है। मन्दिरके सामनेसे लिया हुआ एक चित्र पाठकोंकी जानकारीके लिये दिया जाता है।

श्रीगुप्तेश्वरजीके स्थानसे पश्चिमकी ओर पहाड़ीका दृश्य बड़ा मनोमोहक है। यहाँ प्रायः शहरके लोग तथा अन्य यात्री भी नित्यप्रति दर्शनार्थ एवं वायुसेवनार्थ आया करते हैं।

क्षीरपुरके प्राचीन मन्दिर

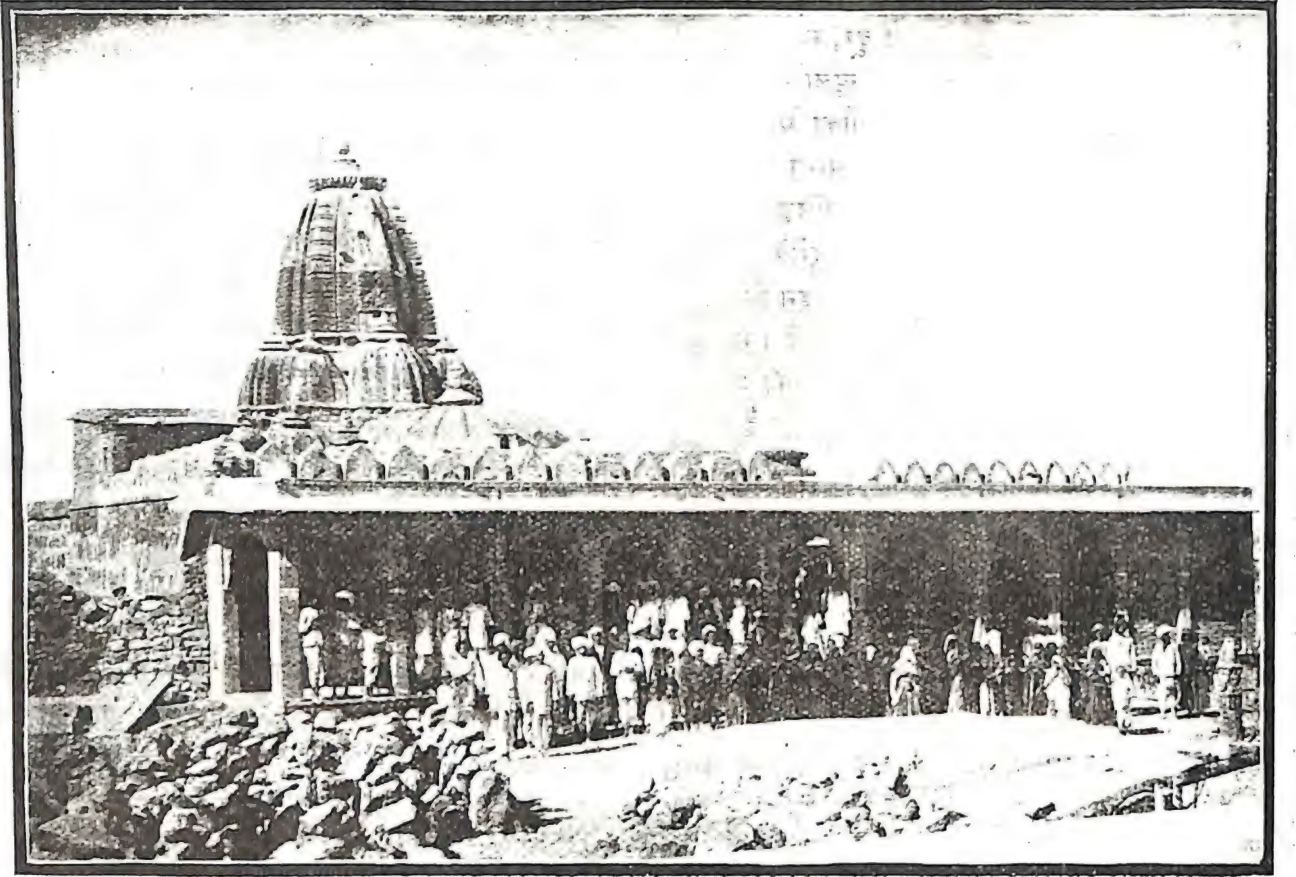
(लेखक—श्रीबद्रीप्रसादजी साकरिया)



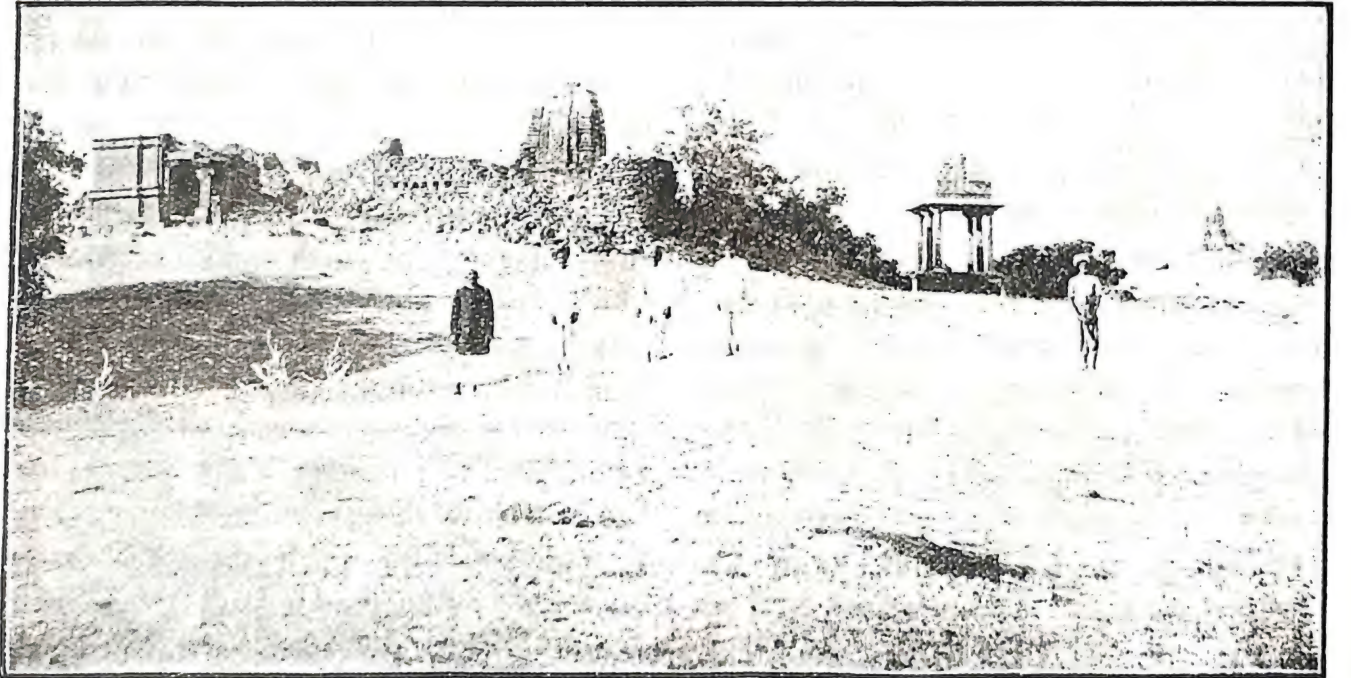
यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है जो अब 'खेड़' के नामसे प्रसिद्ध है। लोगोंमें ऐसी कियदन्ती है और पुरानी ख्यातोंसे भी ऐसा ही प्रकट है कि तिलवाड़ा (तेलीवाड़ा), कछावास, वांहरावास, वजावास, तेमावास (ताम्रवास), थान और वरिया आदि दो-दो, चार-चार कोसके इधर-उधरके ग्राम इस बृहत् नगरके मोहले थे। कुछ भी हो, ध्वंसावशेषोंके देखनेसे भी यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि किसी समय यह एक विशाल नगर ही नहीं था, किन्तु इस निर्जन और निर्जल मरुस्थलकी पुण्यसलिला पावन-कारिणी एवं पालनकारिणी नूनी नदीके किनारे यह एक बड़ा तीर्थ-स्थान था, बीसियों खँडहरोंके बड़े-बड़े ऊँचे-ऊँचे टीले, जिनके खोदनेसे अनेक प्रकारकी मूर्तियों और मन्दिरोंके पत्थर निकलते हैं, इस बातको साक्षी देते हैं। इस समय भी इस तीर्थ-क्षेत्रमें पाँच जीर्ण मन्दिर विद्यमान हैं जो उस समयके कला-वैचित्र्यसे आश्चर्य उत्पन्न

करते हैं। चित्रकला तो चित्रकला ही, पर बड़े-बड़े वैज्ञानिक तो सबसे ज्यादा इसीपर हैरान हैं कि एक कच्चे लाल पत्थरपर दर्पणके समान बिना किसी मसालेके वह चमकदार पॉलिश की गयी है जिसको छेनीसे छुटा लेनेपर ऐसा भुरभुरा पत्थर निकलता है जो अँगुलियोंके रगड़नेसे मिट्टीकी तरह क्षरण हो जाता है। मन्दिरों और मूर्तियोंकी बनावट अलौकिक-सी जान पड़ती है। भगवान् श्रीरणछोड़ायकी पाँच फुट ऊँची श्वेत चतुर्भुज मूर्तिकी चित्रकारी और शोभा अकथनीय है। इसी मन्दिरके भीतर भगवान् शङ्कर, जगत्पिता ब्रह्मा, श्रीगणेशजी और हनुमान्जीके मन्दिर हैं। भगवान् शङ्करके मन्दिरमें एक विशालकाय क्षीरसागरमें शेषके ऊपर शयन करती हुई विष्णु-भगवानकी चतुर्भुज मूर्ति भगवान् शङ्करके दर्शन कर रही है। चरणोंमें जगज्जननी लक्ष्मीजी विराज रही हैं। नीचे पाताललोकका एक अद्भुत दृश्य देखते ही बनता है। रेलवे-लाइनके पास पञ्चमुखी महादेवका एक अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है जो प्रायः शिखरके सिवा सब दूटा-फूटा है।

क्षीरपुर (मारवाड़)



१-रणछोड़रायजीका मन्दिर, २-ब्रह्माजीका मन्दिर, ३-भगवान् शिवका मन्दिर, ४-गणेशजीका मन्दिर, ५-हनूमान्जीका मन्दिर



१-महामाया दुर्गाजी औरअन्नपूर्णाका मन्दिर, २-पञ्चमुखी महादेवजीका मन्दिर, ३-शिवजीकी छत्री, ४-भगवान् रणछोड़रायजीका मन्दिर

मन्दिरके बाहर दरवाजेके सामने कुछ दूर, लाइनके पास भगवान् शङ्करकी एक सुन्दर छत्री (खुला मन्दिर) है और इन्हींके पीछेकी ओर महामाया दुर्गाका एक मन्दिर है। इसी प्रकार उत्तरकी ओर एक बड़ा, परन्तु टूटा-फूटा शिव मन्दिर है जिसमें एक विशाल शिवलिङ्ग स्थापित है। इन मन्दिरोंके सिवा और बहुत-से मन्दिरोंके खँडहर भगवती पृथिवी माताकी गोदमें सोये पड़े हैं जो इन विद्यमान मन्दिरोंके साथ ऐतिहासिकोंकी अमूल्य सामग्री हैं। भारतके एक सबसे पिछड़े देश मरुस्थल (मारवाड़) की प्राचीन सभ्यताका यह तीर्थ-क्षेत्र एक जीता-जागता नमूना है।

जोधपुर रेलवेके लूनी जंकशन स्टेशनसे सिन्धकी ओर जानेवाली रेलवे-लाइनपर बालोतरासे पाँच मील पश्चिम यह तीर्थ-क्षेत्र है। रेलवे-लाइन तीर्थ-क्षेत्रके बीच पञ्चमुन्वी-

महादेवके मन्दिरके पाससे होकर निकलती है। पर यहाँ स्टेशन नहीं है। मेलोंपर बालोतरासे स्पेशल गाड़ियों, मोटरों, बैलगाड़ियों तथा ऊँट आदिसे जानेका प्रवन्ध है।

अभी दो-तीन वर्षसे यात्रियोंके टहरनेके लिये कोठरियाँ, सालें, पानीका एक बहुत बड़ा टाँका बननेका और मन्दिरोंकी मरम्मत आदिका काम चल रहा है। टाँका और यात्रियोंके टहरनेके लिये तो पर्याप्त स्थान बन चुके हैं। मरम्मत, रंगसाजी आदिका काम चल रहा है। पहलेकी अपेक्षा अब यह क्षेत्र अधिक रमणीय हो गया है। दानीलोग इस क्षेत्रके जीर्णोद्धारमें हाथ बँटाकर पुण्य और यशके भागी बनें और तीर्थ-यात्रा करते समय इधर भी पधारकर भगवान् और प्राचीन कलाके दर्शनका लाभ उठावें।

आसामके दो शिव-मन्दिर

(लेखक—पं० श्री.वंशीधरजी शर्मा काव्यतीर्थ)

श्रीमुक्तिनाथ महादेव-का मन्दिर आसाम प्रान्तके शिवसागर स्थानमें है। इसका इतिहास यह है कि यहाँका आहोमवंशीय राजा शिवसिंह बड़ा शिव-भक्त था। उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर एक बार शङ्करजीने उसे स्वप्नमें यह आदेश दिया कि तू एक मेरे ज्योतिर्लिंगकी स्थापना कर, इससे तेरी मनः-कामनाकी पूर्ति तथा ख्याति होगी। राजाने इस आदेशको शिरोधार्य कर सन् १७२० ई० में एक अष्टदलकमलाकार सुन्दर-विशाल प्रस्तर-मन्दिर बनवाया और उसके शिखरपर सवा मनका स्वर्णकलश रखवाया और



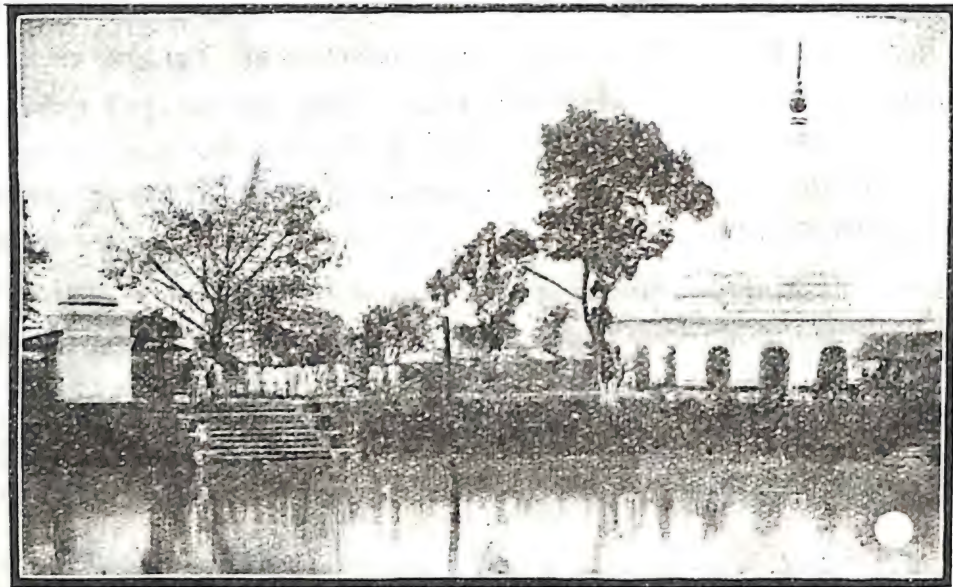
मुक्तिनाथ

उसके अन्दर श्रीमुक्तिनाथकी स्थापना करायी। कहते हैं, जब इस प्रान्तकी स्वाधीनता अपहृत हुई तब इस मन्दिरके शिखर-स्थित स्वर्णकलशको लूटनेकी चेष्टामें गोली-वर्षा हुई, जिसके चिह्न कलशपर अब तक मौजूद हैं। भगवान् शङ्करने मन्दिरकी शोभाकी रक्षा की। कहते हैं, एका-एक कलशपर सर्प-ही-सर्प दि बलायी पड़ने लगे, जिससे उसकी लूट होनेसे बच गयी।

राजा शिवसिंहने इस मन्दिरके अतिरिक्त और भी दो मन्दिर बनवाये—एक शिव-मन्दिरकी बायीं ओर श्रीविष्णुका और दूसरा इसकी दाहिनी ओर

श्रीदेवीजीका । इसके पीछे उत्तर-दिशामें एक बृहत् सरोवर भी बना है, जिसका घेरा तीन मील है । संवत् १९६१ में महाशिवरात्रिके दिन प्रातःकाल इस सरोवरमें जलके स्थान-

जंकशनसे जानेवाली एक ब्राञ्च लाइनपर स्थित है । दूसरा मन्दिर तिनसुकिया (आसाम) का है । यहाँ प्राचीन तालाबपर वहाँके व्यापारियोंने सुन्दर शिवालय



तिनसुकिया-शिव-मन्दिर

में दूध-ही-दूध हो गया । श्रीसुक्तिनाथकी बड़ी महिमा है । फा० शु० चतुर्दशीको महाशिवरात्रिके अवसरपर यहाँ मेला होता है । शिवसागर ए० बी० रेलवेके सिमलुगुडी

वनवा दिया है, स्थान दर्शनीय है । पूजा आदिकी सुन्दर व्यवस्था है । लोग बड़े भक्तिभावसे भगवान् शिवका दर्शन-पूजन किया करते हैं ।

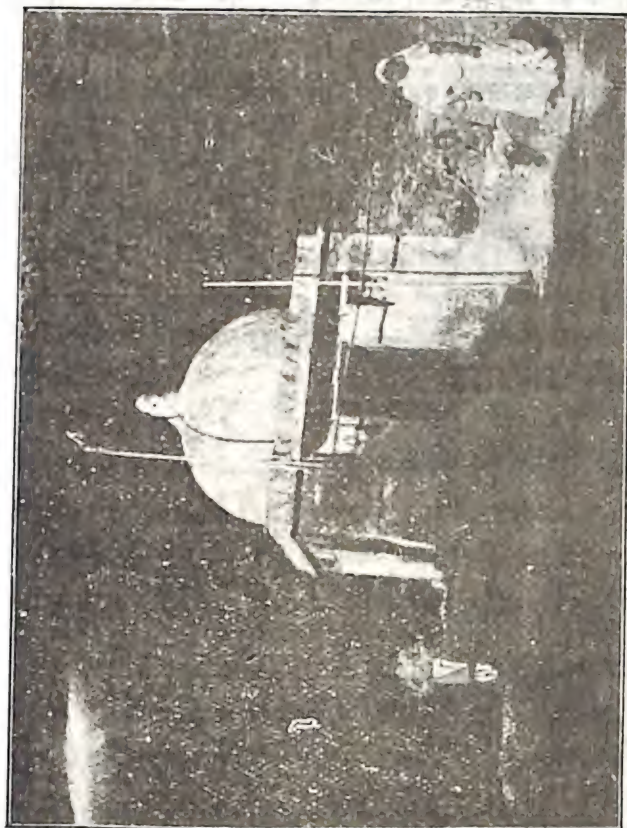
ईडर-राज्यके कुछ खास शिव-मन्दिर

(लेखक—पं० श्रीजदुराम रविशङ्करजी त्रिवेदी)

१. श्रीवीरेश्वर महादेव—यह मन्दिर विजयनगर महीकाँठा-के हदपर है । बहुत प्राचीन स्थान है । पहाड़ियोंसे घिरे हुए भयङ्कर जंगलमें है । वाणलिङ्ग स्वयम्भू और बड़ा चमत्कारी है । मन्दिरके पश्चिम पहाड़पर लगभग हजार-वर्षका पुराना एक विशाल गूलरका पेड़ है । इस पेड़की जड़से रात-दिन (गंगा) जल बहा करता है और श्रीमहादेवजीके थोड़ी ही दूरपर एक तालाबमें जाकर गिरता है, जो आसपासके कई गाँवोंके हजारों मनुष्यों और पशुओंके उपयोगमें आता है । जल कभी शेष नहीं होता । जब तालाब भर जाता है तो जल जमीनपर बहने लगता है, परन्तु आश्चर्य यह है कि वह दो-तीन खेतोंसे आगे नहीं जाता । श्रीवीरेश्वर महादेवकी जय बोलनेसे जल बढ़ता हुआ प्रत्यक्ष नजर आता है । छप्पनके प्रसिद्ध अकालमें भी यहाँ जल भरपूर था ।

यह स्थान बहुत ही निर्जन है, रातको सिंह-बाघ आदि भी आ जाते हैं, परन्तु वे किसीकी हिंसा नहीं करते । हर साल शिवरात्रिपर यहाँ बड़ा मेला लगता है ।

२. श्रीनीलकण्ठ महादेव—यह मन्दिर ईडर-स्टेटके मुटेडी नामक ग्रामके समीप ईडर-स्टेशनसे १० मीलकी दूरीपर है । भयानक जंगल पहाड़ोंसे घिरा है । यह शिवलिङ्ग भी स्वयम्भू है । लिङ्गकी ऊँचाई पाँच फुट है । यह मूर्ति पहले जमीनके अन्दर थी । कहते हैं कि लगभग ७५ वर्ष पूर्व एक ब्राह्मणको स्वप्नादेश हुआ था, तब यह मन्दिर बनाया गया था । यहाँ एक सुन्दर जलाशय है । हजारों आदमी दर्शनार्थ आते हैं । श्रावणमें तो सारे महीने ब्राह्मण यहाँ रहते हैं । मन्दिरके आसपास पुराने बड़ोंका जंगल है ।



वीरेश्वर महादेव—ईडर



मुंघेणा महादेव—ईडर



नीलकण्ठ महादेव—ईडर

श्रीमुंघेणा महादेव—यह मन्दिर ईडर महीकाँटाके जादर ग्राममें है। ईडरसे जादर ग्रामका रेलका रास्ता है। रेलवे-स्टेशन गाँवसे एक मील दूर है। मोटर तथा गाड़ियाँ भी जाती हैं।

यह स्थान पुराना है, चारों तरफ किलेबन्दी-सी की हुई है। मन्दिर एक नीमके वृक्षके नीचे है। यहाँ भादों

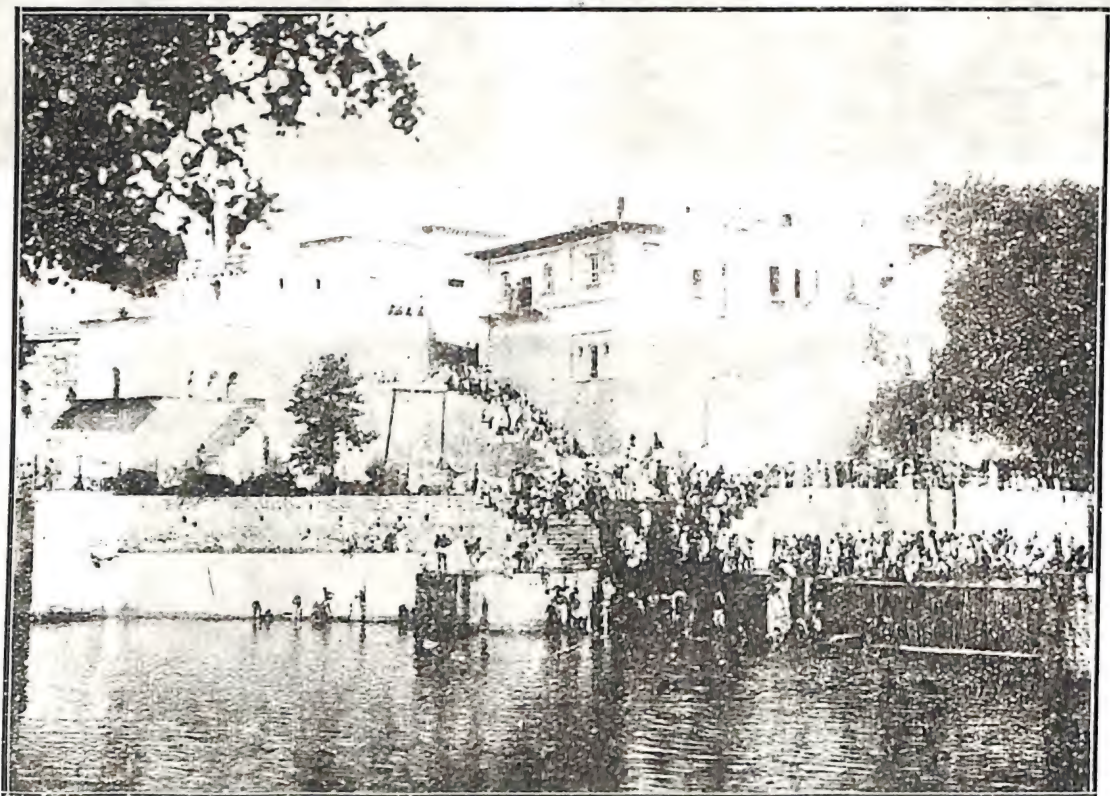
सुदी ४ को प्रतिवर्ष मेला लगता है। हजारों आदमी आते हैं। यह भी स्वयम्भूलिङ्ग है। मन्दिरके शिखरपर नीमके वृक्षकी एक डाली पड़ती है, उसके पत्ते मीठे हैं। इसके सिवा पेड़के सब पत्ते कड़वे हैं। लिङ्गके आस-पास एक भूरे रंगका नाग फिरता रहता है। नागपञ्चमीके दिन लोगोंको उसके दर्शन होते हैं।

वानपुरके श्रीकुण्डेश्वर महादेव

(लेखक—श्रीमथुराप्रसादजी)

बुन्देलखण्डके अग्रगण्य ओड़छा-राज्यमें उसकी टीकमगढ़ नामक वर्तमान राजधानीसे चार मील दक्षिण जमडार नदीके उत्तर-तटपर अति ऊँचे कँगारपर श्रीशिवजी-

वन गया है जिसकी गहराईका थाह नहीं है। एक तटपर तो विशाल तथा सुन्दर घाट, मन्दिर, गृह और समीप ही दूसरे तटपर अति सघन वन है। मन्दिरसे चार मीलपर दूसरी



वानपुरके श्रीकुण्डेश्वर महादेव

का एक प्राचीन मन्दिर है। स्थानकी रमणीयताके अतिरिक्त एक विचित्रता यह है कि ऊपर तो बहुत ही ऊँचा पहाड़ी तट है और नीचे नदी छोटी होते हुए भी एक कुण्ड ऐसा

नदी जामनेका सङ्गम है और सङ्गमसे दो मील दूरा हुआ वानपुर ग्राम है। यह वानपुर अब भी साधारण ग्रामोंसे बड़ा तथा उन्नत है, परन्तु पहले यह भी एक छोटे-से

राज्यकी राजधानी था। उस समयकी भग्नावशेष अटारियाँ अब भी विद्यमान हैं। उक्त राजधानीको तो दो तीन सौ वर्ष ही हुए; परन्तु यह शिव-मन्दिर तथा यह वानपुर स्थान बहुत ही प्राचीन कहा जाता है, और इस ओर विश्वास किया जाता है कि यह वानपुर वही स्थान है जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पौत्र अनिरुद्धके स्वसुर बाणासुरकी राजधानी था और यह वही शिव-मन्दिर है जिसकी बाणासुर तथा उसकी कन्या उषा पूजा किया करते थे। इसके साथका चित्र इसी शिव-मन्दिर, घाट इत्यादिका है जो एक

पर्व-स्नानके समयपर श्रीकुँवर मजबूतसिंह फोटोग्राफर टीकमगढ़ने नदीके दूसरे तटपरसे लिया था। स्वर्गवासी श्रीओड़छानरेशने श्रद्धा-भक्तिसे मन्दिर और नदीके बीचमें इतने भवनादि निर्माण करा दिये कि जिनमें मन्दिर मानों छिप-सा गया है। इस चित्रमें मन्दिरका शिखरमात्र बायें सिरेपर आ सका है। दाहिने सिरेपर एक जलप्रपात है। यहाँ शिवरात्रिको मेला लगता है और मकरसंक्रान्तिपर भी स्नान होता है। नदीके कुण्डपर स्थिति होनेके कारण अब इनका नाम कुण्डेश्वर महादेव हो गया है।

श्रीशिवजीके अष्टोत्तरशत दिव्य देश*

(लेखक—वैष्णव श्रीरामटहलदासजी, बड़ा स्थान, दारागंज, प्रयाग)

१ कैवल्यशैलमें श्रीकण्ठ शिव। २ हिमाचलपर केदारेश्वर। ३ काशीमें विश्वनाथ। ४ श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन। ५ प्रयागमें नीलकण्ठ। ६ गयामें महारुद्र। ७ कलिङ्गमें नीलकण्ठेश्वर। ८ द्राक्षाराम-पर्वतपर भीमेश्वर। ९ मायूरपुरमें अम्बिकेश्वर। १० ब्रह्मावर्तमें देवलङ्ग। ११ प्रभास-क्षेत्रमें शशिभूषण। १२ श्वेतहस्तिपुरमें वृषभध्वज। १३ गोकर्णमें गोकर्णनाथ। १४ सोमनाथमें सोमेश्वर। १५ श्रीरूपाख्य-पर्वतपर त्यागेश्वर (त्यागराज)। १६ वेदपुरमें वेदेश्वर। १७ भीमाराजपुरमें भीमेश्वर। १८ मन्थनपुरमें कालिकेश्वर। १९ मानसरोवरमें माधवेश्वर। २० श्रीवाञ्छकपुरमें चम्पकेश्वर। २१ पञ्चवटीमें वटेश्वर। २२ गजारण्य (वैजनाथ)में वैजनाथ। २३ तीर्थाद्रिमें तीर्थकेश्वर। २४ कुम्भकोणममें कुम्भेश्वर। २५ लेपाश्यापुरीमें पापनाशनेश्वर। २६ कण्वपुरीमें कण्वेश्वर। २७ मध्यपर्वतपर मध्यार्जुनेश्वर। २८ हरिहरक्षेत्रमें श्रीशङ्कर-नारायणेश्वर। २९ विरञ्चिपुरमें मार्गेश्वर। ३० पञ्चनदी-सङ्गममें गिरीश्वर। ३१ पम्पापुरीमें विरूपाक्षनाथ। ३२ सोमाद्रिमें मल्लिकार्जुनेश्वर। ३३ त्रिमङ्गकूटमें अगस्त्येश्वर। ३४ सुब्रह्मण्यक्षेत्रमें अहिपेश्वर। ३५ महाबलशिलोच्चयमें महाबलेश्वर। ३६ दक्षिणावर्त-पर्वतपर अकेश्वर। ३७ वेदारण्यपुरमें वेदारण्येश्वर। ३८ सोमपुरी (त्रिमुख) में सोमेश्वर। ३९ अवन्तीमें रामलिङ्गेश्वर। ४० काश्मीरमें विजयेश्वर। ४१ महानन्दीपुरमें महानन्दीपुरेश्वर। ४२ कोटि-तीर्थमें कोटीश्वरनाथ। ४३ वृद्धाचलपर अचलेश्वरनाथ। ४४ ककुद्गरिपर गङ्गाधरेश्वर। ४५ चामराजनगरमें चामराजे-

श्वर। ४६ नन्दगिरिमें नन्देश्वर। ४७ वधिराचलमें चण्डेश्वर। ४८ श्रीनगरमें नंजुण्डेश्वर। ४९ शतशृङ्गपर सर्वाधिपेश्वर। ५० घनानन्दाचलपर सोमनाथ। ५१ नल्लूरपुरमें विमेश्वर। ५२ नीडानाथपुरमें नीडानाथेश्वर। ५३ एकान्त स्थानमें राम-लिङ्गेश्वर। ५४ श्रीनागपुरमें कुण्डलीश्वर। ५५ श्रीकन्या-क्षेत्रमें त्रिभङ्गीश्वर। ५६ श्रीउत्सङ्ग-क्षेत्रमें श्रीराघवेश्वर। ५७ मत्स्यतीर्थमें तीर्थेश्वर। ५८ त्रिकूटाचलपर ताण्डवेश्वर। ५९ प्रपन्नाख्यपुरमें मार्गसहायेश्वर। ६० गण्डकीमें शिव-नाभ। ६१ श्रीपतिपुरमें श्रीपतीश्वर। ६२ धर्मपुरीमें धर्म-लिङ्ग। ६३ कन्याकुब्जमें कलाधर। ६४ वाणीग्रामपुरमें विरञ्चीश्वर। ६५ नेपालमें नकुलेश्वर। ६६ जगन्नाथपुरीमें मार्कण्डेयेश्वर। ६७ नर्मदातटपर ओङ्कारेश्वर स्वयम्भू। ६८ धर्मस्थलमें मञ्जुनाथ। ६९ त्रिरूपपुरमें व्यासेश्वर। ७० स्वर्णवतीपुरीमें कलिगेश्वर। ७१ निर्मलाचलपर पद्मगेश्वर। ७२ पुण्डरीकपुर (पण्डरपुर) में जैमिनीश्वर। ७३ अयोध्यामें मधुरेश्वर (नागेश्वर)। ७४ सिद्धवटीमें सिद्धेश्वर। ७५ श्रीकूर्माचलपर त्रिपुरान्तक। ७६ मणिकुण्डल-तीर्थमें मणिमुक्तानदीश्वर। ७७ वटाटवीमें कृत्तिवासनाथ। ७८ त्रिवेणीमें सङ्गमेश्वर। ७९ अस्तनितापुरमें महेश्वर। ८० इन्द्रकीलमें अर्जुनेश्वर। ८१ शेषाद्रिपर कपिलेश्वर। ८२ पुष्पगिरि-पर्वतपर पुष्पगिरीश्वर। ८३ चित्रकूटमें भुवनेश्वर। ८४ उज्जैनपुरीमें महाकालिकेश्वर। ८५ ज्वाला-मुखीपर्वतपर शूलटङ्केश्वर। ८६ मङ्गलगिरिशिखरपर सङ्गमेश्वर। ८७ तज्जापुरी (तज्जावर) में बृहदीश्वर।

* ललितागम, शानपाद, शिवलिङ्गप्रादुर्भाव-पटलमें वर्णित।

८८ बह्नीपुष्करक्षेत्रमें रामेश्वर । ८९ लङ्काद्वीपमें मत्स्येश्वर ।
 ९० गन्धमादनपर्वतपर कूर्मेश्वर । ९१ विन्ध्यांचलपर
 वराहेश्वर । ९२ अहोबलमें नृसिंहेश्वर । ९३ कुरुक्षेत्रमें
 वामनेश्वर । ९४ कपिलतीर्थमें परशुरामेश । ९५ सेतुबन्धपर
 रामेश्वर । ९६ साकेतपुरमें बलरामेश । ९७ वाराणावतपुरी
 (वाराणसी, दक्षिण-काशी) में बौद्धेश्वर । ९८ तत्त्वक्षेत्रमें
 कलङ्कीश्वर । ९९ महेन्द्राचलपर कृष्णेश । १०० कैलाश-
 पर्वतपर परःशिव । १०१ सूर्यविम्बमें सदाशिव । १०२ वैकुण्ठमें
 नारायणेश । १०३ पातालमें हाटकेश्वर । १०४ ब्रह्मलोकमें
 ब्रह्मेश्वर । १०५ इन्द्रप्रस्थमें लोकनाथ । १०६ अमरकण्टक-
 में अमरनाथ । १०७ लवपुरीमें पशुपतिनाथ ।
 १०८ रुद्रप्रयागमें एकादशरुद्रेश्वर ।

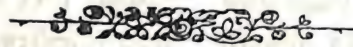
पञ्चतत्त्वमय पञ्चलिङ्गस्थापना । शिवकाञ्चीमें पृथिवी-तत्त्व-
 का लिङ्ग है । जम्बुनाथमें जललिङ्ग है । अरुणाचलपर तेजो-
 मयलिङ्ग है । कालहस्तिगिरिपर वायुलिङ्ग है । चिदम्बरम्में
 आकाशलिङ्ग है । छायावनमें छायावेश्वर—छायालिङ्ग है ।

हिरण्यगर्भ-क्षेत्रमें स्वयं महादेवेश्वरलिङ्ग है । और आम्नातक-
 क्षेत्रमें सूक्ष्मेश्वरलिङ्ग है ।

शिवके दिव्य देशोंके स्मरण-कीर्तनका बड़ा भारी माहात्म्य
 है । कहा है—

पृथ्व्यादिपञ्चतत्त्वानां लिङ्गानि स्मरतां नृणाम् ।
 मुक्तिः करस्था भवति नात्र कार्या विचारणा ॥
 त्रयोदशोत्तरशतस्थानानि परमेशितुः ।
 प्रातःकाले तु पूजान्ते स्मर्तव्यानि मनोषिभिः ॥
 पुण्यकर्माणि सर्वाणि तैः कृतानीह जन्मनि ।
 तेषां फलप्रवचने शक्तः शेषोऽपि न क्वचित् ॥

अर्थात् पृथिवीपरके पृथिव्यादि-पञ्चतत्त्वमय लिङ्गोंका
 तथा ११३ शिवजीके दिव्य देश-स्थानोंका प्रातःकाल स्मरण
 करनेवालेकी मुक्ति हाथमें रखी है और समस्त पुण्यकर्म
 इसी जन्ममें कर लेनेका फल भी उसे मिलता है । अतः शिव-
 भक्तोंको नित्य ही उक्त स्थानोंका स्मरण-ध्यान करना चाहिये ।
 (ऐसा करनेसे उन्हें) साक्षात् शिव-सायुज्य, मोक्ष प्राप्त होगा,
 इसमें कोई सन्देह नहीं है ।



मथुराके रत्नक शिव

(लेखक — ज्योतिर्विद् पं० श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी)

श्रीविष्णुके षोडशकलावतार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी
 जन्मभूमि, ब्रजमण्डलकी राजधानी श्रीमथुरापुरी वैष्णवोंकी
 एक प्रधान नगरी गिनी जाती है । 'हरि-भक्तोंकी मथुरा
 अरु हर-भक्तोंकी काशी' ऐसी कहावत प्रसिद्ध है । इतना ही
 नहीं, हरि-भक्तोंकी परमपुनीत इस पुरीकी रक्षा भी हरिके
 परमभक्त श्रीशङ्कर करते हैं । मथुराकी चारों दिशाओंमें
 दिक्पालरूपसे विराजते हुए भगवान् शङ्कर इस पुरीकी
 रक्षा करते हैं । पूर्वमें श्रीपिप्पलेश्वरनाथ, दक्षिणमें श्रीरङ्गेश्वर-
 नाथ, पश्चिममें क्षेत्रपति श्रीभूतेश्वरनाथ और उत्तरमें
 श्रीगोकर्णेश्वरनाथ हैं । मथुराकी ही नहीं, सच पूछिये तो सारे
 ब्रजमण्डलकी रक्षा श्रीशङ्कर करते हैं । आप मथुरामें भूतेश्वर,
 गोवर्धनमें चक्रेश्वर, कामवनमें कामेश्वर और वृन्दावनमें
 गोपेश्वररूपसे विराजमान हैं; पर स्थानाभावे यहाँ केवल
 मथुराके चार शिवोंका संक्षेपमें कुछ विवरण दिया जाता है—

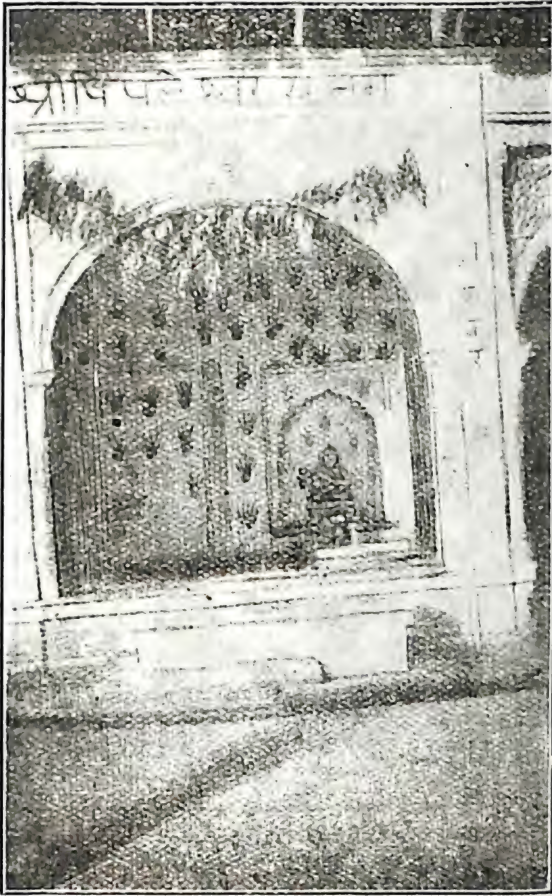
भूतेश्वर—पश्चिम-दिशाके संरक्षक मथुरापुरीके क्षेत्रपाल
 हैं । जबतक प्राणी भूतेश्वरका दर्शन नहीं करता तबतक

उसकी मथुरा-यात्रा सफल नहीं होती । वराहपुराणान्तर्गत
 मथुरा-माहात्म्यके चतुर्थ अध्यायमें भूतेश्वर-माहात्म्य है ।
 वहाँ लिखा है कि एक बार महादेवजीने एक सहस्र वर्ष-
 पर्यन्त घोर तप किया तब श्रीविष्णुने प्रसन्न होकर वरदान-
 का वचन दिया । श्रीशङ्करने यही वर माँगा कि 'आप
 अपनी मथुरापुरीमें रहनेके लिये मुझे जगह दीजिये ।'
 श्रीविष्णुने सहर्ष वरदान देकर कहा कि 'आप वहाँ क्षेत्रपति
 होकर रहिये ।' शिवमहापुराणमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके
 माहात्म्यके पश्चात् उपलिङ्गोंके वर्णनमें भी श्रीभूतेश्वरके
 सम्बन्धमें लिखा है कि—

केदारेश्वरसञ्जातं भूतेशं यमुनातटे ।

अतः श्रीभूतेश्वरकी उपज्योतिर्लिङ्गोंमें गणना की जाती
 है । श्रीभूतेश्वरकी प्राचीनताके सम्बन्धमें मथुराके प्रसिद्ध
 इतिहास (Mathura Memoirs) के लेखक एफ० एस०
 ग्राउस, एम० ए०, सी० आई० ई०, तत्कालीन मजिस्ट्रेट
 (१८८२ ई०) लिखते हैं कि 'मधु दानवके पराजयके

पश्चात् आर्योंकी नगरी मथुराका तथा भूतेश्वरके मन्दिरका निर्माण हुआ। साम्प्रतिक नगरी तीसरी बार निर्माण हुई है। इसका केन्द्र किला है, जिसप्रकार दूसरी बार बसी हुई मथुराका केन्द्र भूतेश्वर-मन्दिर था और पहली बस्तीका मधुवन (पृ० १२५)। आगे चलकर आप पुनः लिखते हैं कि 'वैष्णवधर्मके विस्तारके कहीं पहले ब्राह्मणकालके प्रारम्भिक समयमें भूतेश्वर ही लोगोंके प्रधान देवता माने जाते थे, ऐसी धारणा होती है' (पृ० १३१)।



श्रीपिपलेश्वर (मथुरा)

श्रीगोकर्णेश्वर—दक्षिण-दिशाके संरक्षक श्रीगोकर्णेश्वरनाथ महादेव हैं। श्रीवराहपुराणमें कथा है कि वसुकर्ण नामक एक वैश्य थे। उनकी स्त्रीका नाम सुशीला था। पर सन्तान न होनेसे वह अत्यन्त दुखी होकर एक दिन उग्रतपा नामक मुनिके पास गयी। मुनि उसकी दीन दशा देखकर बोले—'हे सुन्दरि! तू गोकर्ण महादेवका नित्य पूजन कर, इससे तेरी मनःकामना पूर्ण होगी।' तदनन्तर दस वर्षतक उसने श्रीगोकर्ण महादेवकी आराधना

की, जिससे प्रसन्न होकर श्रीशिवजीने वरदान दिया और इसके फलस्वरूप उसको पुत्रकी प्राप्ति हुई। उसका नाम भी गोकर्ण रक्खा गया।

इसी प्रकार पञ्चपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्यके चतुर्थ-पञ्चम अध्यायमें परमभागवत भक्त श्रीगोकर्णकी कथा प्रसिद्ध है, जिसकी भगवद्भक्तिके प्रसन्न होकर श्रीहरिने उनको हृदयसे लगाकर अपने समान बनाया—



श्रीगोकर्णेश्वरनाथ महादेव (मथुरा)

गोकर्णं तु समालिङ्गयाकरोत् स्वसदृशं हरिः ॥

(श्रीमद्भागवतमाहात्म्य ५।८०)

और जिनकी कृपासे उनके ग्रामके बसनेवाले अछूत, चाण्डालादितक भगवान् विष्णुके विमानोंमें बैठकर विष्णुलोकको भेजे गये—

तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्चचाण्डालजातयः ।

विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा ॥

प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति योगिनः ।

(श्रीमद्भागवतमाहात्म्य ५। ८३-८४)

मथुराके इतिहासलेखक मिस्टर एफ० एस० ग्राउस श्रीगोकर्णके विषयमें लिखते हैं कि 'गोकर्ण' महादेवका मन्दिर बड़ा प्रधान और महत्त्वपूर्ण है। यह विशाल नेत्र, लम्बे-लम्बे बाल, दाढ़ी-मूँछोंसहित एक वृहत्काय मूर्ति है। एक हाथमें खप्पर और दूसरेमें पुष्प हैं। मूर्तिका पाषाण अत्यन्त शीर्ण हो गया है। मूर्ति निश्चय ही अत्यन्त प्राचीन कालकी प्रतीत होती है और सम्भव है,



श्रीभूतेश्वरनाथ (मथुरा)

किसी इण्डो-सिथियन राजाके द्वारा बनायी गयी हो। बौद्ध-धर्मानुसार गोकर्ण आठ वीतराग देवपुरुषोंमेंसे एक हैं। इनके पास ही श्रीगोकर्णकी पत्नी गार्गी और शार्ङ्गीकी प्रतिमाएँ हैं। इनके सम्बन्धमें यह श्लोक है—

शार्ङ्गि देवि नमस्तुभ्यमृपिपत्ति मनोरमे ।

सुभगे वरदे गौरि सर्वदा सिद्धिदायिनि ॥

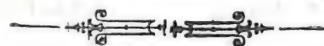
(मथुरा-मैमोयर्स पृ० १३३-१३४)

श्रीपिप्पलेश्वरनाथ—मथुराकी पूर्व-दिशाके संरक्षक कालिन्दीतटवर्ती शृङ्गार-घाटपर श्रीपिप्पलेश्वरनाथ विराजमान हैं, यह भी अति प्राचीन लिङ्ग हैं। बराहपुराणान्तर्गत मथुरा-माहात्म्यमें इनका भी वर्णन है। ये पिप्पलायतन ऋषिके स्थापित किये हुए हैं, ऐसी कथा प्रचलित है। उत्सवोंपर इस लिङ्गका शृङ्गार दर्शनीय होता है। छोटे लिङ्गको शृङ्गारद्वारा अति विशाल कर दिया जाता है।



श्रीरङ्गेश्वरनाथ महादेव (मथुरा)

श्रीरङ्गेश्वरनाथ—उत्तर-दिशाके रक्षक हैं। श्रीरङ्गेश्वरनाथका कंस-टीलेके पास ही शिवालय है। शिवपुराणमें श्रीरङ्गेश्वरनाथका भी उपज्योतिर्लिङ्गोंमें वर्णन आया है। किन्तु ग्राउससाहबके 'मथुरा-मैमोयर्स' में या अन्यत्र इनके सम्बन्धमें विशेष वृत्त नहीं मिलता।



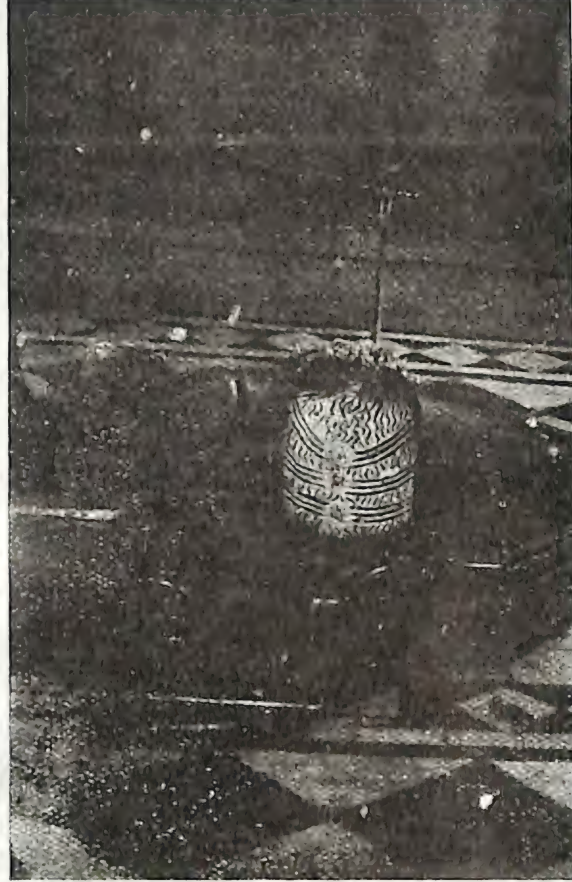
श्रीगोपेश्वर

(लेखक—आचार्य श्रीअनन्तलालजी गोस्वामी)

तासामाविरभूच्छौरिः सयमानमुखाम्बुजः । पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

(श्रीमद्भागवत)

शरदकी स्वच्छ सुहावनी
चाँदनीमें श्रीयमुनापुलिनके
व्रजरजके कण, व्रजराजकुमार-
की दिव्य-कान्तिकी झलकसे
जगमगा रहे हैं। मोहनकी
मुरलीकी मीठी तानसे तीनों
लोकोंमें ब्रह्मानन्दसे भी अधिक
अकथनीय, अपूर्व आनन्द-
का अखण्ड साम्राज्य है। आज
योगेश्वरेश्वर श्रीश्यामसुन्दर
गोपिकाओंके विशुद्ध प्रेममय
माधुर्यभावमें भावुककी भाँति
श्यामसुन्दररूपसे मध्यमें
विराजमान हैं। आज महा-
रासकी पूर्णिमा है। कैलास-
की कन्दराओंमें श्यामसुन्दर-
की मुरलीकी मधुर ध्वनि
पहुँची और उसने समाधिस्थ
शान्त शिवके हृदयमें रसकी
लहरी उत्पन्न कर दी। भोले-
नाथ अपनेको, प्रिया पार्वती-
को और कैलासको भूलकर



श्रीगोपेश्वर महादेव (वृन्दावन)

चल पड़े बावले-से हुए व्रजकी
ओर ! श्रीमहादेव आज
मोहिनी-वेषमें मोहनकी रास-
स्थलीमें गोपियोंके यूथमें
शामिल होकर अतृप्त नेत्रोंसे
विश्वविमोहनकी रूपमाधुरी-
का पान कर रहे हैं। रासेश्वरी
श्रीराधिकाके साथ नृत्य करते
हुए श्रीरासविहारिने व्रज-
वनिताओं और लताओंके
बीच, गोपी-रूपधारी गौरी-
नाथका हाथ पकड़ लिया और
मन्द-मन्द मुसकराते हुए बड़े
ही सत्कारसे आप बोले—
आइये महाराज गोपीश्वरः!
स्वागत ! बस, तभीसे श्रीगोपी-
श्वरजी श्रीमदनमोहनके रास-
रसामृतका पान व्रजमें ही
विराजकर आजपर्यन्त कर रहे
हैं। श्रीशिवका सत्य और
सुन्दर रूप तो यही है।

‘सत्यं शिवं सुन्दरम्’

गोरखपुरके तीन प्रधान शिव-लिङ्ग

१—श्रीदुग्धेश्वरनाथ

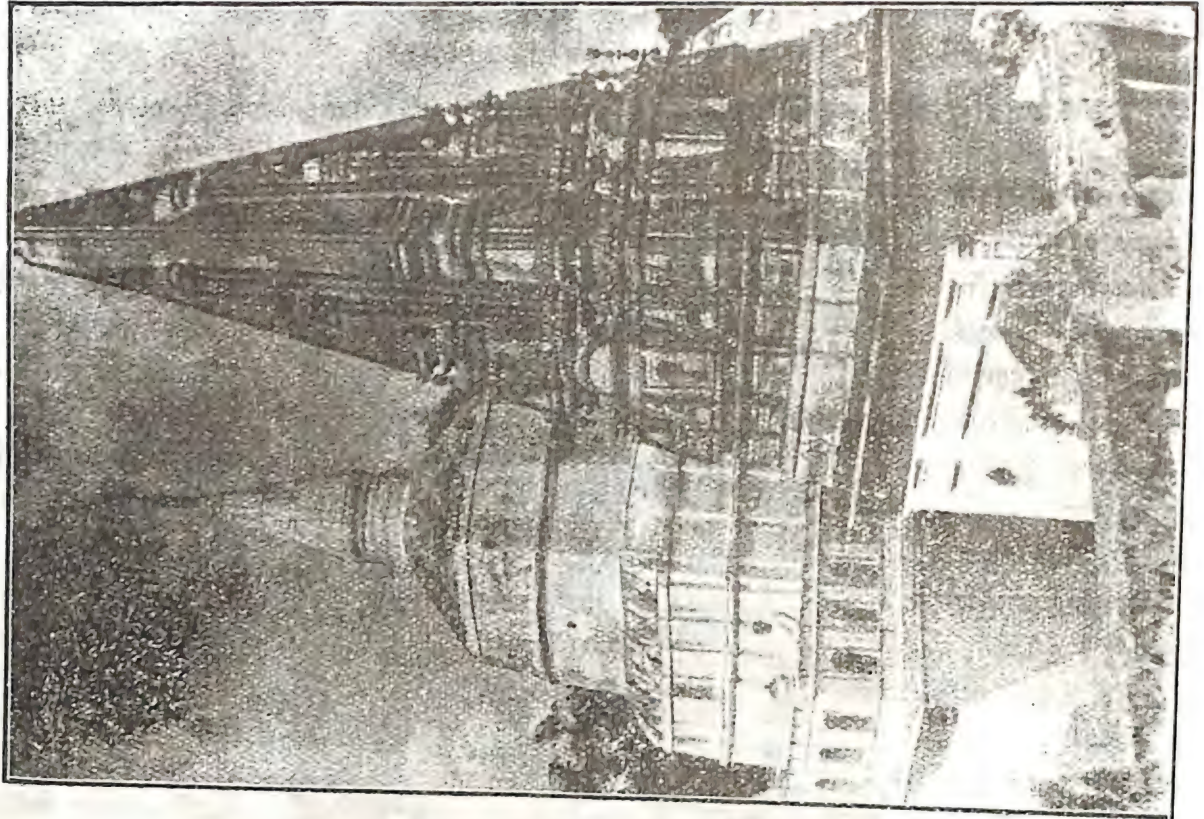
यह शिव-लिङ्ग गोरखपुर-जिलान्तर्गत गौरीवाजार
रेलवे-स्टेशनसे दस मील दक्षिण रुद्रपुर नामक ग्रामसे एक
मील उत्तर स्थित है। शिवपुराणके अनुसार यह महाकाल-
का उपज्योतिर्लिङ्ग है—

महाकालस्य यलिङ्गं दुग्धेशमिति विश्रुतम्
कहा जाता है कि इस शिव-लिङ्गकी पञ्चकोसी परिक्रमा

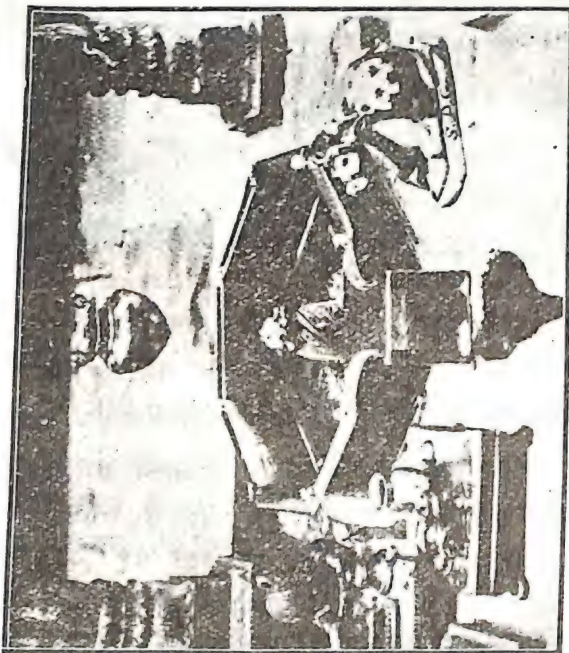
थी, जिसमें बहुतसे तीर्थस्थान थे। अब भी उसके अनेकों
चिह्न विद्यमान हैं। इस ग्रामका नाम रुद्रपुर रखे जानेका
कारण भी यह शिव-लिङ्ग ही मात्तूम होता है।

श्रीदुग्धेश्वरजीके मन्दिरके पश्चिमकी ओर सहनकोट
नामक एक बहुत लम्बा-चौड़ा टीला है, जिसकी ऊँचाई
कहीं-कहीं तीस फुट तक है। सम्भवतः यह किसी प्राचीन
राजाका कोट था। इसके पश्चिमकी ओर नदी बहती है।

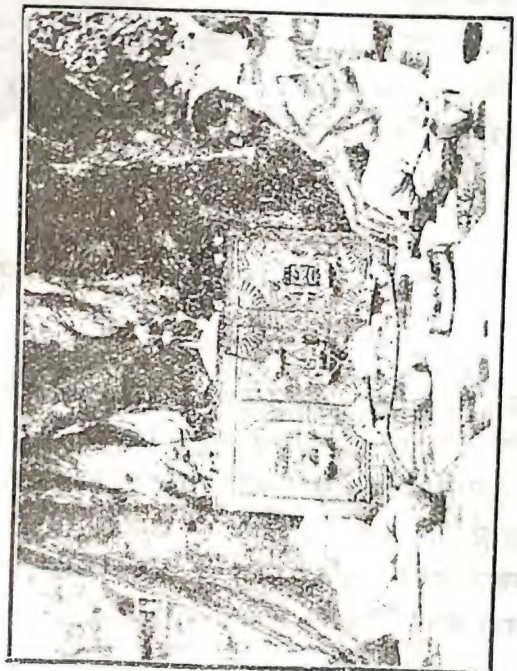
* श्रीवृन्दावनकी रासस्थलीमें पूज्यपाद श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजीकी भजनकुटीसे थोड़ी ही दूरपर श्रीगोपेश्वरजीका मन्दिर है।



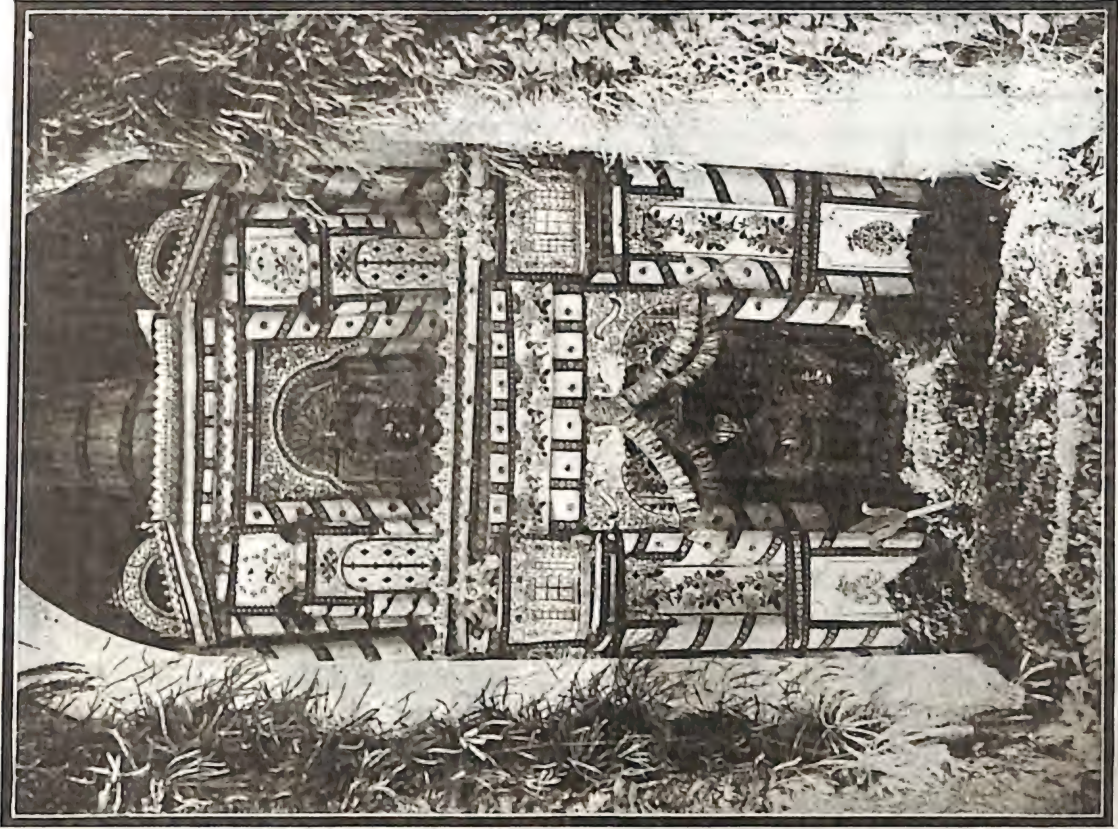
श्रीदुग्धेश्वरजीका मन्दिर



श्रीसुक्तेश्वरनाथ



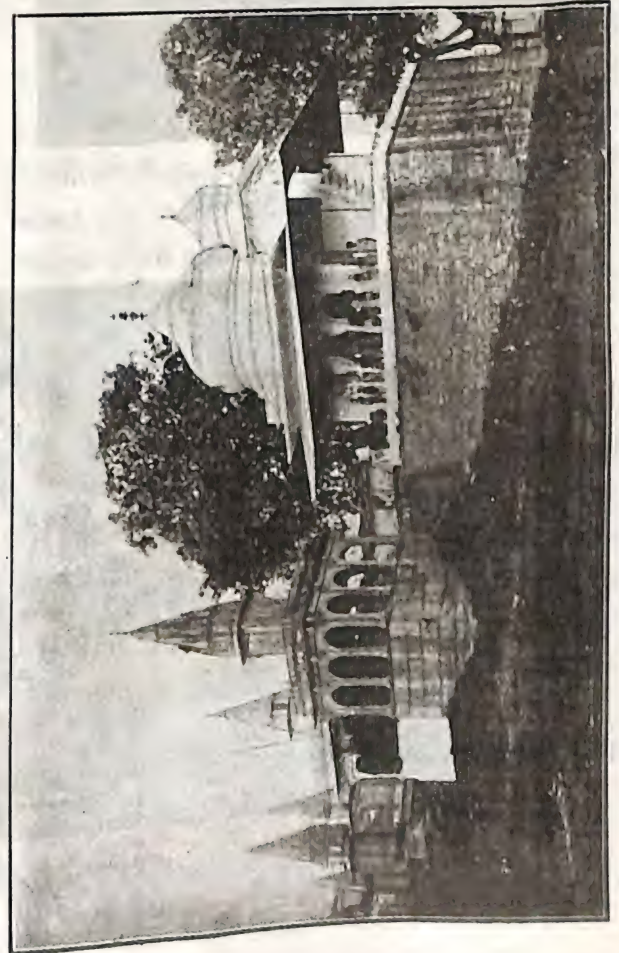
श्रीमानसरोवरेश्वर



गुप्तेश्वर महादेव गुप्तारघाट, कानपुर



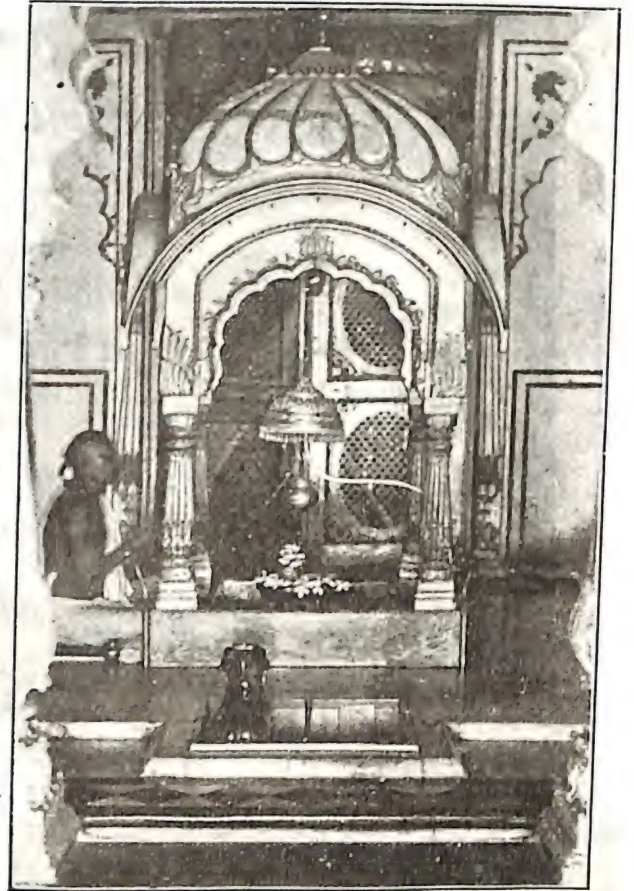
सोमेश्वर प्रयाग



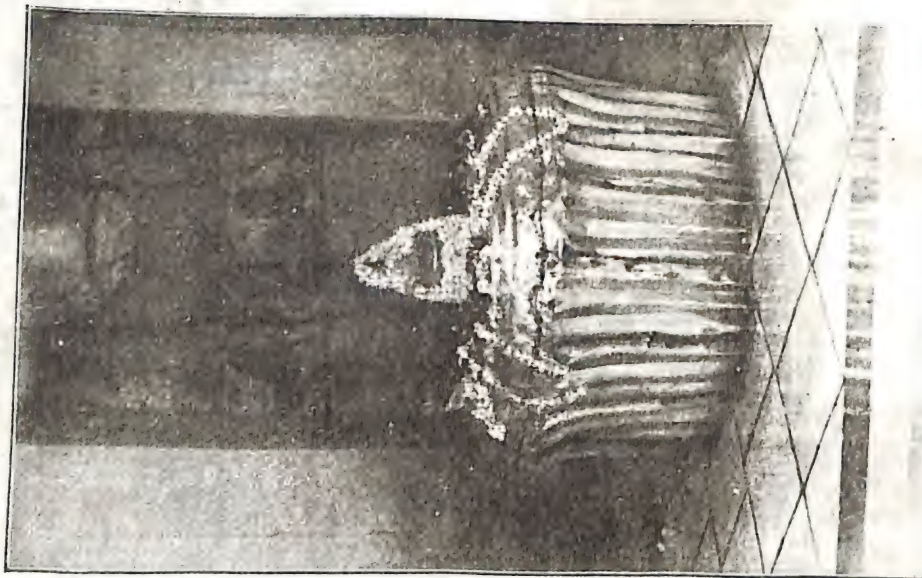
शिवकोटि मन्दिर, प्रयाग



श्रीदर्शनेश्वर, अयोध्या



श्रीदर्शनेश्वरकी मूर्ति, अयोध्या



श्रीनगेश्वर, अयोध्या

मन्दिरका प्रवेशद्वार भी कोटके ठीक सामने पश्चिममुखी है। द्वारके चौखटपर प्राचीन लिपिमें कुछ खुदा हुआ है। यहाँ अधिक-मासके समय और शिवरात्रिपर बड़े-बड़े मेले लगते हैं। मन्दिरके आस-पास बहुत-से नवीन मन्दिर भी बन गये हैं। सुना जाता है कि मन्दिरके महन्तोंकी पारस्परिक वैमन-स्यता तथा विलासिता आदिके कारण मन्दिरकी उन्नतिमें बाधा पहुँचती है। इधर एक जीर्णोद्धार और प्रबन्ध समिति बन गयी है। आशा है इससे अच्छा कार्य होगा। समिति दानी सज्जनोंकी सहायतासे जीर्णोद्धार करवा रही है। एक श्रीदुग्धेश्वर-संस्कृत-पाठशाला भी समितिकी ओरसे चल रही है।

यह शिव-लिंग जमीनसे करीब आठ फुट नीचे स्थित है और इसका सम्बन्ध सीधा जमीनसे ही है। वृद्ध लोगोंसे पता चलता है कि एक समय मूर्तिकी गहराई जाननेके लिये जमीन खोदी गयी थी। कई फुट जमीन खोदनेपर भी मूर्तिकी छोर नहीं मिला। इधर लोगोंको दुःस्वप्न होने लगे तथा अन्य प्रकारके दैवी विघ्न उपस्थित हो गये, इससे वह प्रयास छोड़ देना पड़ा।

कभी-कभी यह मूर्ति अपने आप हिलने लगती है और चौबीस घण्टेतक हिलती रहती है। चौबीस घण्टे पूरे हो जानेपर हिलनी बन्द हो जाती है और फिर मनुष्य अपनी सारी शक्ति लगाकर भी इसे नहीं हिला सकता। लोगोंमें श्रीदुग्धेश्वरजीके प्रति बहुत श्रद्धा है।

२-श्रीमानसरोवरेश्वर

यह शिव-लिंग, गोरखपुर-शहरमें पुराने गोरखपुरमें श्रीगोरखनाथजीके स्थानसे करीब दो-सौ बीघा दक्षिण, रेलवे-की गुमटीके निकट मानसरोवर नामक तालाबपर स्थित है। तालाब पक्का है और उसके दो तरफ जीर्णवस्थामें कुछ मन्दिर हैं और मुसाफिरोंके ठहरनेके लिये एक मकान है।

इस तालाबको राजा मानसिंहजीने बनवाया था। ये विशनवंशीय क्षत्रिय राजा थे। इस वंशके अवधमें तेरह राज्य हैं जो गोरखपुरके अन्तर्गत मझौली राज्यको अपना प्रधान मानते हैं। कहते हैं कि इस वंशकी तीसरी पीढ़ीमें मानसिंह-जी हुए थे। इन्होंने गोरखपुरमें अपना किला बनवाया और उसके दरवाजेपर मानसरोवर नामक तालाब खुदवाया। कहते हैं कि किला बनाते समय भगवान् शिवजीका स्वप्नमें आदेश पानेपर वहीं जमीनमेंसे शिव-लिङ्गको निकालकर उसकी स्थापना की। हर साल शिवरात्रिपर यहाँसे श्रीशिव-जीके चित्रको लेकर एक जुन्नस निकलता है। दशहरेपर रामलीला होती है।

३-श्रीमुक्तेश्वरनाथ

यह शिव-लिङ्ग गोरखपुर-शहरसे दक्षिण रापती-नदीके तीरपर वरदघाटके निकट स्थापित है। इसकी स्थापना स्वामी कृष्णानन्द नामक एक महात्माने की थी। बाँसी-नरेशने श्रीमुक्तेश्वरनाथजीकी कृपासे पुत्र प्राप्त कर सन् १९१९में मन्दिर और बगीचा बनवा दिया। पूजादिके लिये भी उन्हींकी ओरसे प्रबन्ध है।

अयोध्याके शिवमन्दिर

१ नागेश्वर-कहते हैं कि भगवान् श्रीरघुनाथजीके साकेत पधारनेपर अयोध्या प्रायः शून्य-सी हो गयी। महाराजा कुशने अयोध्यामें आकर पुनः अयोध्याको बसाया। एक समय जलक्रीड़ा करते समय राजाका कङ्कण जलमें गिर पड़ा और उसे एक नागकन्या कुमुद्वती ले गयी। कुशको इस बातका पता लगा, तब उन्होंने नागोंके नाशका विचार किया। नाग डर गये और कुमुद्वतीको साथ ले कङ्कण लेकर आये तथा क्षमा चाहने लगे। कुशका कोप शान्त नहीं हुआ; नाग शिव-भक्त था, अतः भक्तभयहारी भगवान् शिवने प्रकट होकर कुशका कोप शान्त किया। कुशने

भगवान् शिवकी विधिवत् पूजा की और सर्वदा अयोध्या-में निवास करनेकी उनसे प्रार्थना की। तबसे शिवजी वहाँ विराजने लगे। नागकी रक्षार्थ पधारें थे इसलिये नागनाथ या नागेश्वर नाम पड़ा। सरयूजीमें स्नान करके भगवान् शिव श्रीनागनाथजीकी पूजा करनेसे ही अयोध्याकी यात्रा पूर्ण होती है।

२ दर्शनेश्वर-यह मन्दिर राजा दर्शनसिंहजीका बनवाया हुआ है।

३ राजराजेश्वर-यह भी राजा दर्शनसिंहजीका बनवाया हुआ है।

उदयपुरका एक प्राचीन शिवचित्र

(लेखक-पं० श्रीगिरिधरलालजी शर्मा)

सूर्यवंशी राजा सदासे शिव-भक्त रहे हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रने लङ्का-यात्राके समय विजयकी अभिलाषासे भक्तिपूर्वक सेतुबन्ध रामेश्वरकी स्थापना की, जो आज चार धामोंमें एक प्रधान धाम माना जाता है। इसी वंशमें परमशैव महारावल बाप्पा उत्पन्न हुए, जिन्होंने भगवान् एकलङ्ग शिवकी आराधनासे मेवाड़का राज्य प्राप्त किया। महाराजसाहय अर्जुनसिंहजी भी इन्हींके वंशज हैं। आप महाराणा संग्रामसिंहजी द्वितीय (वि० सं० १७६७-१७९०) के चतुर्थ पुत्र एवं शिवरतीके स्वामी थे। माधवराय सिन्धिया आदि महापुरुषोंकी लड़ाईमें इनकी वीरताका परिचय मिलता है। इनकी प्रशंसामें भीमविलास नामक डिङ्गलकाव्यमें कृष्ण कविने एक दोहा लिखा है—

लगि अजन महाराजके, समर पंचदस घाय ।

कहुँ तन देखि सिलह कटि, खतवट छाप सुहाय ॥

ये जैसे वीर थे, वैसे ही परम शिवभक्त एवं पूर्णयोगी भी थे। इन्होंने अपनी हवेलीमें अपने इष्टदेव बाणनाथ (शिव) की प्रतिष्ठाकर पूजा आदिका विशेष प्रबन्ध कर दिया था। इनके संग्रहालयमें अनेक पुस्तकों तथा चित्रोंका

अच्छा संग्रह है। यह चित्र इनके अनुभवका है। इनके प्रधान पाठ्य-ग्रन्थ 'सनत्कुमारसंहिता, ललितारहस्य, नारदपाञ्चरात्र, दक्षिणामूर्तिसंहिता, मतङ्गवृत्ति, कालिकागम, सांख्यायनतन्त्र, नारदीय संहिता' आदि थे।

इन्होंने अपना अन्तिम समय समीप समझ काशीवास कर लिया था और वहीं इनका कैलासवास भी हुआ।

असली चित्रके पीछे निम्नलिखित श्लोक लिखे मिलते हैं—

तदुक्त स्वच्छन्दसंग्रहे—

सूर्यकोटिप्रतीकाशमतिदीप्त महद्गणम् ।

तन्मध्ये दशकोटीनां संख्यायोजनपङ्कजम् ॥

तत्कर्णिकायामासीनः शान्त्यतीतेश्वरः प्रभुः ।

पञ्चवक्त्रो दशभुजो विद्युत्पुञ्जनिभाकृतिः ॥

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिरनुक्रमात् ।

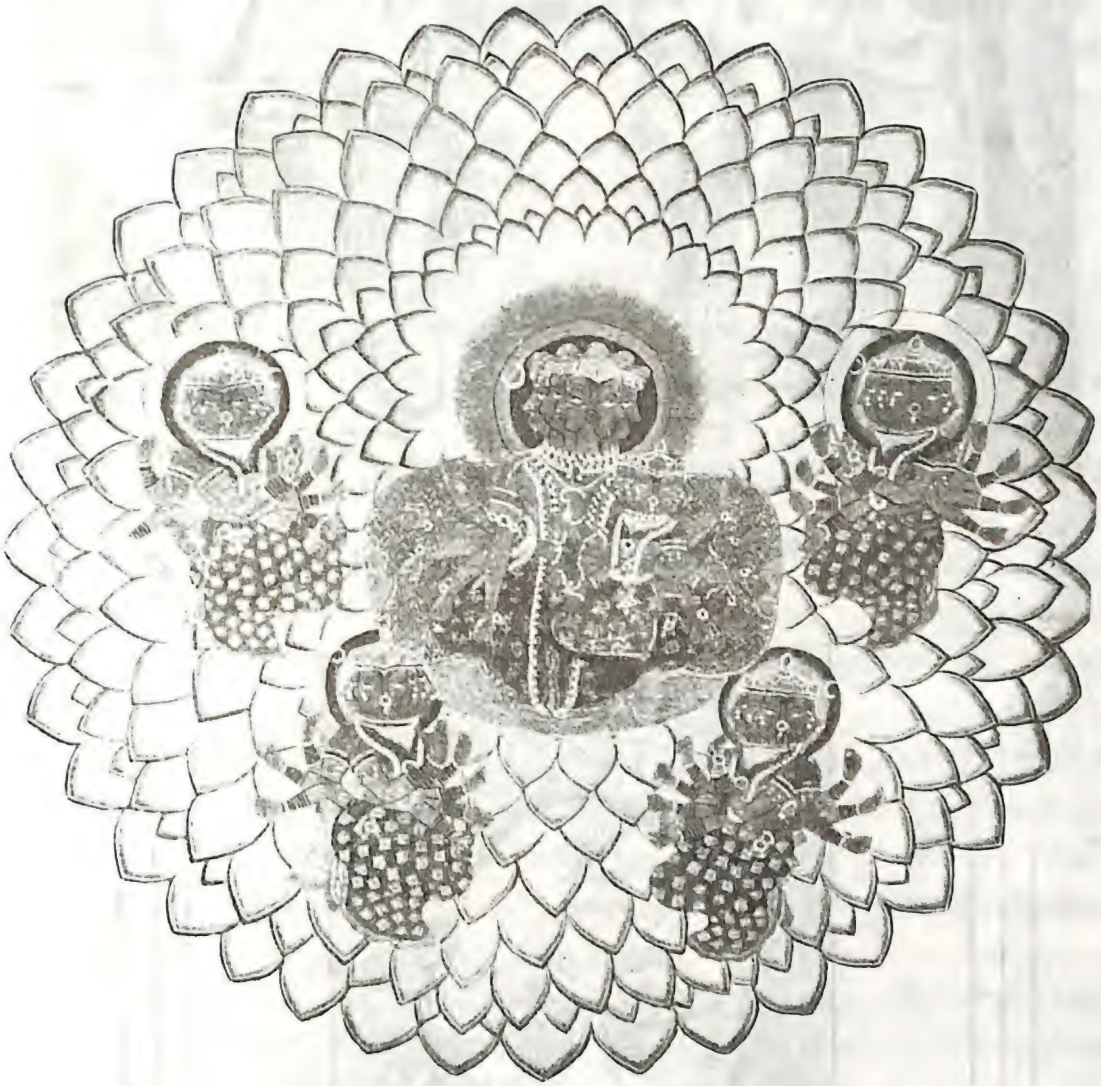
परिवार्य स्थिताश्चैताः शान्त्यतीतस्य सुन्दरि ॥

वामभागे समासीना शान्त्यतीता मनोन्मनी ।

पञ्चवक्त्रधराः सर्वा दशबाह्विन्दुभूषणाः ॥

विन्दुतत्त्वं समाख्यातं कोटयष्टुदशतैष्टुतम् ।

कल्याण



उदयपुरका प्राचीन शिव-चित्र



शिव-विष्णु और उमा-रमाका प्रेम-सम्मिलन

(पृष्ठ १२३)



शिव-कृष्णमूर्ति

(नचिसे शिव, ऊपरसे कृष्ण)

‘कल्याण’ के पुराने, लोकप्रिय पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

श्रीकृष्णाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ६, सन् १९३२ ई० (कोड नं० 1184)]—भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र इतना मधुर है कि बड़े-बड़े अमलात्मा-परमहंस भी उसमें बार-बार अवगाहन करके अपने आपको धन्य करते रहते हैं। इस विशेषाङ्कमें भगवान् श्रीकृष्णके मधुर एवं ज्ञानपरक चरित्रपर अनेक सन्त-महात्मा, विद्वान् विचारकोंके शोधपूर्ण लेखोंका अद्भुत संग्रह है।

ईश्वराङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ७, सन् १९३३ ई० (कोड नं० 749)]—यह विशेषाङ्क ईश्वरके स्वरूप, अस्तित्व, विशेषता, महत्त्व आदिका सुन्दर परिचायक है। इसमें ईश्वर-विश्वासी भक्तों, विद्वानों, सन्त-विचारकोंके ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेवाले शोधपूर्ण लेखोंका अनुपम संग्रह है।

शिवाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ८, सन् १९३४ ई० (कोड नं० 635)]—यह शिवतत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनसहित शिवार्चन, पूजन, व्रत एवं उपासनापर तात्त्विक और ज्ञानप्रद मार्ग-दर्शन कराता है। द्वादश ज्योतिर्लङ्गोंका सचित्र परिचय तथा भारतके सुप्रसिद्ध शैव-तीर्थोंका प्रामाणिक वर्णन इसके अन्यान्य महत्त्वपूर्ण (पठनीय) विषय हैं।

शक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ९, सन् १९३५ ई० (कोड नं० 41)]—इसमें परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा उनकी उपासनापद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री संगृहीत है।

योगाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १०, सन् १९३६ ई० (कोड नं० 616)]—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। साथ ही अनेक योगसिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्र तथा साधना-पद्धतियोंपर रोचक, ज्ञानप्रद वर्णन हैं।

संत-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १२, सन् १९३८ ई० (कोड नं० 627)]—इसमें उच्चकोटिके अनेक संतों—प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी भगद्विश्वासी महापुरुषों तथा त्यागी-वैरागी महात्माओंके ऐसे आदर्श जीवन-चरित्र हैं, जो पारमार्थिक गतिविधियोंके लिये प्रेरित करनेके साथ-साथ उनके सार्वभौमिक सिद्धान्तों, त्याग-वैराग्यपूर्ण तपस्वी जीवन-शैलीको उजागर करके उच्चकोटिके पारमार्थिक आदर्श जीवन-मूल्योंको रेखाङ्कित करते हैं।

साधनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १५, सन् १९४१ ई० (कोड नं० 604)]—यह अङ्क साधनापरक बहुमूल्य मार्ग-दर्शनसे ओतप्रोत है। इसमें साधना-तत्त्व, साधनाके विभिन्न स्वरूप, ईश्वरोपासना, योगसाधना, प्रेमाराधना आदि अनेक कल्याणकारी साधनों और उनके अङ्ग-उपाङ्गोंका शास्त्रीय विवेचन है।

✓ **भागवताङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १६, सन् १९४२ ई० (कोड नं० 1104)]**—इस विशेषाङ्कमें भागवतकी महत्तापर विभिन्न विचारकोंके शोधपूर्ण लेखोंके साथ श्रीमद्भागवतकी सम्पूर्ण कथाओंका अनुपम संग्रह है।

सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १८, सन् १९४४ ई० (कोड नं० 1002)]—इस विशेषाङ्कमें श्रीमद्वाल्मीकि रामायणके विभिन्न पक्षोंपर विद्वान् सन्त-महात्माओं, विचारकोंके शोधपूर्ण लेखोंके साथ वाल्मीकीय रामायणकी सम्पूर्ण कथाओंका सुन्दर संग्रह किया गया है।

नारी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २२, सन् १९४८ ई० (कोड नं० 43)]—इसमें भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी आदर्श चरित्र तथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चा और उनका भारतीय आदर्शोचित समाधान है। नारीमात्रके लिये आत्मबोध करानेवाला यह अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायी ग्रन्थ है।

उपनिषद्-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २३, सन् १९४९ ई० (कोड नं० 659)]—इसमें नौ प्रमुख उपनिषदों—(ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय तैत्तिरीय एवं श्वेताश्वतर-) का मूल, पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासहित वर्णन है और अन्य ४५ उपनिषदोंका हिन्दी-भाषान्तर, महत्त्वपूर्ण स्थलोंपर टिप्पणीसहित प्रायः सभीका अनुवाद दिया गया है।

हिन्दू-संस्कृति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २४, सन् १९५० ई० (कोड नं० 518)]—यह भारतीय संस्कृतिके विभिन्न पक्षों—हिन्दू-धर्म दर्शन, आचार-विचार, संस्कार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, कला-संस्कृति और आदर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। भारतीय संस्कृतिके उपासकों, अनुसन्धानकर्ताओं और जिज्ञासुओंके लिये यह अवश्य पठनीय तथा उपयोगी दिशा-निर्देशक है।

• संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २५, सन् १९५१ ई० (कोड नं० 279)]—इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह, कुमार कार्तिकेयके जन्मकी कथा तथा तारकासुर-वध आदिका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान एवं बहुत-से रोचक, ज्ञानप्रद प्रसंग और आदर्श चरित्र भी इसमें वर्णित हैं। शिव-पूजनकी महिमाके साथ-साथ तीर्थ, व्रत, जप, दानादिका महत्त्व आदि भी इसके विशेषरूपसे पठनीय विषय हैं।

7 ✖ भक्त-चरिताङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २६, सन् १९५२ ई० (कोड नं० 40)]—इसमें भगवद्विश्वासको बढ़ानेवाले भगवद्भक्तों, ईश्वरोपासकों और महात्माओंके जीवन-चरित्र एवं विभिन्न भक्तिपूर्ण भावोंकी ऐसी पवित्र, सरस मधुर कथाएँ हैं जो मानव-मनको प्रेम-भक्ति-सुधारससे अनायास सराबोर कर देती हैं। रोचक, ज्ञानप्रद और निरन्तर अनुशीलनयोग्य ये भक्तगाथाएँ भगवद्विश्वास और प्रेमानन्द बढ़ानेवाली तथा शान्ति प्रदान करनेवाली होनेसे नित्य पठनीय हैं।

बालक-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २७, सन् १९५३ ई० (कोड नं० 573)]—यह अङ्क बालकोंसे सम्बन्धित सभी उपयोगी विषयोंका बृहत् संग्रह है। यह सर्वजनोपयोगी होनेके साथ बालकोंके लिये आदर्श मार्ग-दर्शक है। इसमें प्राचीन कालसे अबतकके भारतके महान बालकों एवं विश्वभरके सुविख्यात आदर्श बालकोंके अनुकरणीय जीवन-वृत्त एवं आदर्श चरित्र बार-बार पठनीय और प्रेरणाप्रद हैं।

✖ संतवाणी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २९, सन् १९५५ ई० (कोड नं० 667)]—संत-महात्माओं और अध्यात्मचेता महापुरुषोंके लोककल्याणकारी उपदेश-उद्बोधनों-(वचन और सूक्तियों-) का यह बृहत् संग्रह प्रेरणाप्रद होनेसे नित्य पठनीय और सर्वथा संग्रहणीय है।

सत्कथा-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३०, सन् १९५६ ई० (कोड नं० 587)]—जीवनमें भगवत्प्रेम, सेवा, त्याग, वैराग्य, सत्य, अहिंसा, विनय, प्रेम, उदारता, दानशीलता, दया, धर्म, नीति, सदाचार और शान्तिका प्रकाश भर देनेवाली सरल, सुरुचिपूर्ण, सत्प्रेरणादायी छोटी-छोटी सत्कथाओंका यह बृहत् संग्रह सर्वदा अपने पास रखनेयोग्य है।

• तीर्थाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३१, सन् १९५७ ई० (कोड नं० 636)]—इस अङ्कमें तीर्थोंकी महिमा, उनका स्वरूप, स्थिति एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन-अध्ययनका विषय है। इसमें देव-पूजन-विधिसहित, तीर्थोंमें पालन करनेयोग्य तथा त्यागनेयोग्य उपयोगी बातोंका भी उल्लेख है। भारतके प्रायः समस्त तीर्थोंका अनुसन्धानात्मक ज्ञान करानेवाला यह एक ऐसा संकलन है जो तीर्थाटन-प्रेमियोंके लिये विशेष महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय है। (सन् १९५७ के बाद तीर्थोंके मार्गों और यातायातके साधनोंमें हुए परिवर्तन इसमें सम्मिलित नहीं हैं।)

✖ भक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३२, सन् १९५८ ई० (कोड नं० 660)]—इसमें ईश्वरोपासना, भगवद्भक्तिका स्वरूप तथा भक्तिके प्रकारों और विभिन्न पक्षोंपर शास्त्रीय दृष्टिसे व्यापक विचार किया गया है। साथ ही इसमें अनेक भगवद्भक्तोंके शिक्षाप्रद, अनुकरणीय जीवन-चरित्र भी बड़े ही मर्मस्पर्शी, प्रेरणाप्रद और सर्वदा पठनीय हैं।

संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३५, सन् १९६१ ई० (कोड नं० 574)]—योगवासिष्ठके इस संक्षिप्त रूपान्तरमें जगत्की असत्ता और परमात्मसत्ताका प्रतिपादन है। पुरुषार्थ एवं तत्त्व-ज्ञानके निरूपणके साथ-साथ इसमें शास्त्रोक्त सदाचार, त्याग-वैराग्युक्त सत्कर्म और आदर्श व्यवहार आदिपर भी सूक्ष्म विवेचन है।

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३७, सन् १९६३ ई० (कोड नं० 631)]—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति-ईश्वरी श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका विशद वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ विशिष्ट ईश्वरकोटिके सर्वशक्तिमान् देवताओंकी एकरूपता, महिमा तथा उनकी साधना-उपासनाका भी सुन्दर प्रतिपादन है।

श्रीभगवन्नाम-महिमा-प्रार्थनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३९, सन् १९६५ ई० (कोड नं० 1135)]—यह विशेषाङ्क भगवन्नाम-महिमा एवं प्रार्थनाके अमोघ प्रभावका सुन्दर विश्लेषक है। इसमें विभिन्न सन्त-महात्माओं, विद्वान् विचारकोंके भगवन्नाम-महिमा एवं प्रार्थनाके चमत्कारोंके सन्दर्भमें शास्त्रीय लेखोंका सुन्दर संग्रह है। इसके अतिरिक्त कुछ भक्त-सन्तोंके नाम-जपसे होनेवाले सुन्दर अनुभवोंका भी संकलन किया गया है।

परलोक और पुनर्जन्माङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४३, सन् १९६९ ई० (कोड नं० 572)]—मनुष्यमात्रको मानव-चरित्रके पतनकारी आसुरी सम्पदाके दोषोंसे सदा दूर रहने तथा परम विशुद्ध उज्ज्वल चरित्र होकर सर्वदा सत्कर्म करते रहनेकी शुभ प्रेरणाके साथ इसमें परलोक तथा पुनर्जन्मके रहस्यों और सिद्धान्तोंपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। आत्मकल्याणकामी पुरुषों तथा साधकमात्रके लिये इसका अध्ययन-अनुशीलन अति उपयोगी है।

गर्ग-संहिता (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४४-४५, सन् १९७०-७१ ई० (कोड नं० 517)]—इसमें श्रीराधाकृष्णकी दिव्य, मधुर लीलाओंका बड़ा ही हृदयहारी वर्णन है। इसकी सरस कथाएँ भक्तिप्रद और भगवान् श्रीकृष्णमें अनुराग बढ़ानेवाली हैं।

• **श्रीगणेश-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४८, सन् १९७४ ई० (कोड नं० 657)]**—भगवान् गणेश अनादि, सर्वपूज्य, आनन्दमय, ब्रह्ममय और सच्चिदानन्दरूप (परमात्मा) हैं। महामहिम गणेशकी इन्हीं सर्वमान्य विशेषाओं और सर्वसिद्धि-प्रदायक उपासना-पद्धतिका विस्तृत वर्णन इस विशेषाङ्कमें उपलब्ध है। इसमें श्रीगणेशकी लीला-कथाओंका भी बड़ा ही रोचक वर्णन और पूजा-अर्चना आदिपर उपयोगी दिग्दर्शन है।

• **श्रीहनुमान-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४९, सन् १९७५ ई० (कोड नं० 42)]**—इसमें श्रीहनुमान्जीका आद्योपान्त जीवन-चरित्र और श्रीरामभक्तिके प्रतापसे सदा अमर बने रहकर उनके द्वारा किये गये क्रिया-कलापोंका तात्त्विक और प्रामाणिक चित्रण है। श्रीहनुमान्जीको प्रसन्न करनेवाले विविध स्तोत्र, ध्यान एवं पूजन-विधियोंका भी इसमें उपयोगी संकलन है।

• **सूर्याङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ५३, सन् १९७९ ई० (कोड नं० 791)]**—भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। इनमें समस्त देवताओंका निवास है। अतः सूर्य सभीके लिये उपास्य और आराध्य हैं। प्रस्तुत अङ्कमें विभिन्न संत-महात्माओंके सूर्यतत्त्वपर सुन्दर लेखोंके साथ वेदों, पुराणों, उपनिषदों तथा रामायण इत्यादिमें सूर्य-सन्दर्भ, भगवान् सूर्यके उपासनापरक विभिन्न स्तोत्र, देश-विदेशमें सूर्योपासनाके विविध रूप तथा सूर्य-लीलाका सरस वर्णन है।

सं० भविष्यपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ६६, सन् १९९२ ई० (कोड नं० 548)]—यह पुराण विषय-वस्तु, वर्णन-शैली एवं काव्य-रचनाकी दृष्टिसे अत्यन्त भव्य, आकर्षक तथा उच्चकोटिका है। इसमें धर्म, सदाचार, नीति, उपदेश, आख्यानसहित, व्रत, तीर्थ, दान तथा ज्योतिष एवं आयुर्वेदशास्त्रके विषयोंका अद्भुत संग्रह हुआ है। वेताल-विक्रम-संवादके रूपमें संगृहीत कथा-प्रबन्ध इसमें अत्यन्त रमणीय है। इसके अतिरिक्त इस पुराणमें नित्यकर्म, संस्कार, सामुद्रिक-लक्षण, शान्ति-पौष्टिक मन्त्र तथा आराधना और व्रतोंका भी वर्णन है।

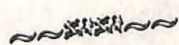
• **शिवोपासनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ६७, सन् १९९३ ई० (कोड नं० 586)]**—इस अङ्कमें शिवसे सम्बन्धित तात्त्विक निबन्धोंके साथ शास्त्रोंमें वर्णित शिवके विविध स्वरूप, शिव-उपासनाकी मुख्य विधाएँ, पञ्चमूर्ति, दक्षिणामूर्ति, ज्योतिर्लिङ्ग, नर्मदेश्वर, नटराज, हरिहर आदि विभिन्न स्वरूपोंके विवेचन, आर्ष ग्रन्थोंके आधारपर शिव-साधनाकी पद्धति, भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें अवस्थित शिवमन्दिर तथा शैव तीर्थोंका परिचय और विवरण आदि है।

श्रीरामभक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ६८, सन् १९९४ ई० (कोड नं० 628)]—भगवान् श्रीरामके चरित्रका श्रवण, मनन, आचरण तथा पठन-पाठन भवरोग-निवारणका सर्वोत्तम उपचार है। इस अङ्कमें भगवान् श्रीराम और उनकी अभिन्न शक्ति भगवती सीताके नाम, रूप, लीला-धाम, आदर्श गुण, प्रभाव आदिके तात्त्विक विवेचनके साथ श्रीरामजन्मभूमिकी महिमा आदिका विस्तृत दिग्दर्शन कराया गया है।

गो-सेवा-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ६९, सन् १९९५ ई० (कोड नं० 653)]—शास्त्रोंमें गौको सर्वदेवमयी और सर्वतीर्थमयी कहा गया है। गौके दर्शनसे समस्त देवताओंके दर्शन तथा समस्त तीर्थोंकी यात्राका पुण्य प्राप्त होता है। इस विशेषाङ्कमें गौसे सम्बन्धित आध्यात्मिक और तात्त्विक निबन्धोंके साथ, गौका विश्वरूप, गोसेवाका स्वरूप, गोपालन एवं गो-संबर्धनकी मुख्य विधाएँ तथा गोदान आदि अनेक उपयोगी विषयोंका संग्रह हुआ है।

भगवल्लीला-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ७२, सन् १९९८ ई० (कोड नं० 448)]—इस विशेषाङ्कमें भगवान् श्रीराम-कृष्णकी लीलाओंके साथ पञ्चदेवोंके विभिन्न अवतारोंकी लीलाओं, भगद्भक्तोंके चरित्र तथा लीला-कथाके प्रत्येक पक्षपर पठनीय एवं प्रेरक सामग्रीका समायोजन किया गया है।

सं० गरुड़पुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ७४, सन् २००० ई० (कोड नं० 1189)]—इस पुराणके अधिष्ठातृदेव भगवान् विष्णु हैं। इसमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, निष्कामकर्मकी महिमाके साथ यज्ञ, दान, तप तीर्थ आदि शुभ कर्मोंमें सर्व साधारणको प्रवृत्त करनेके लिये अनेक लौकिक और पारलौकिक फलोंका वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, नीतिसार आदि विषयोंके वर्णनके साथ मृत जीवके अन्तिम समयमें किये जानेवाले कृत्योंका विस्तारसे निरूपण किया गया है। आत्मज्ञानका विवेचन भी इसका मुख्य विषय है।



गीताप्रेस

पत्रालय—गीताप्रेस—273005

गोरखपुर, फोन : (०551) 334721
